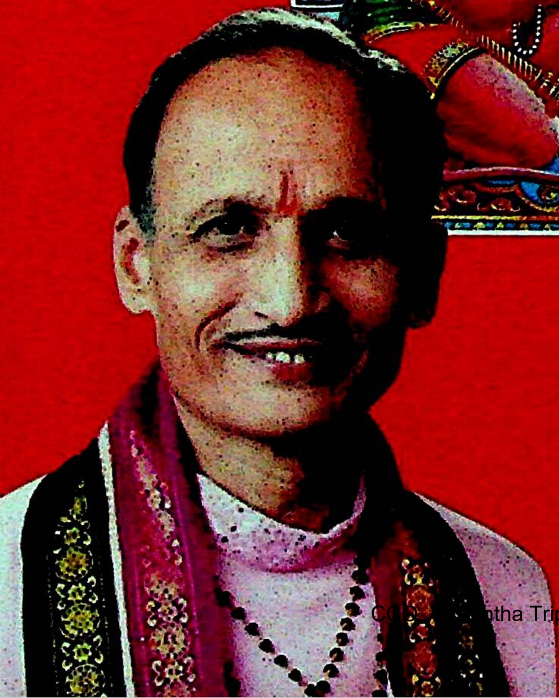
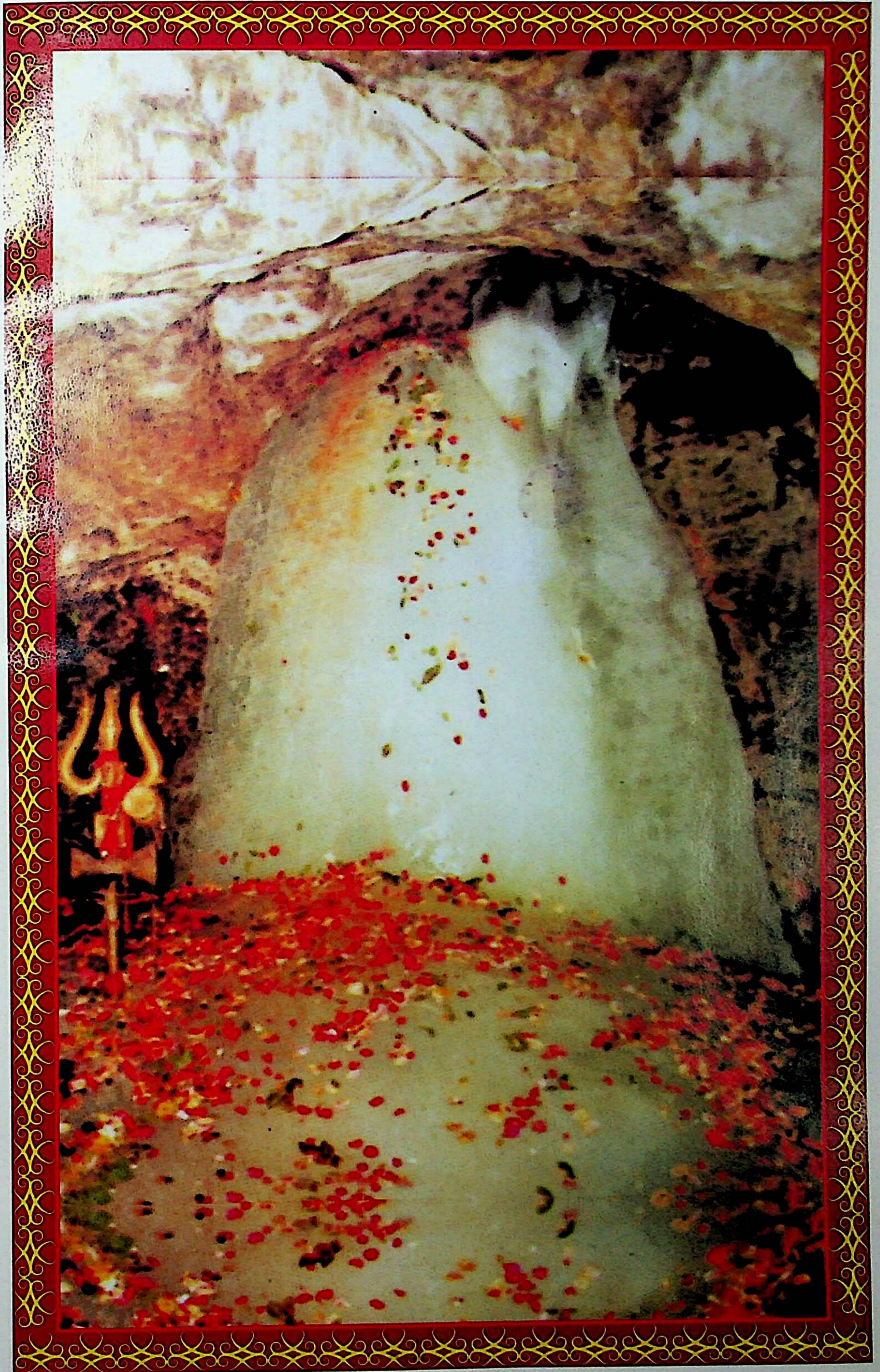
सुदर्शन रामायण

संगीतमय श्रीरामकथा

(जीवन का महाकाव्य)



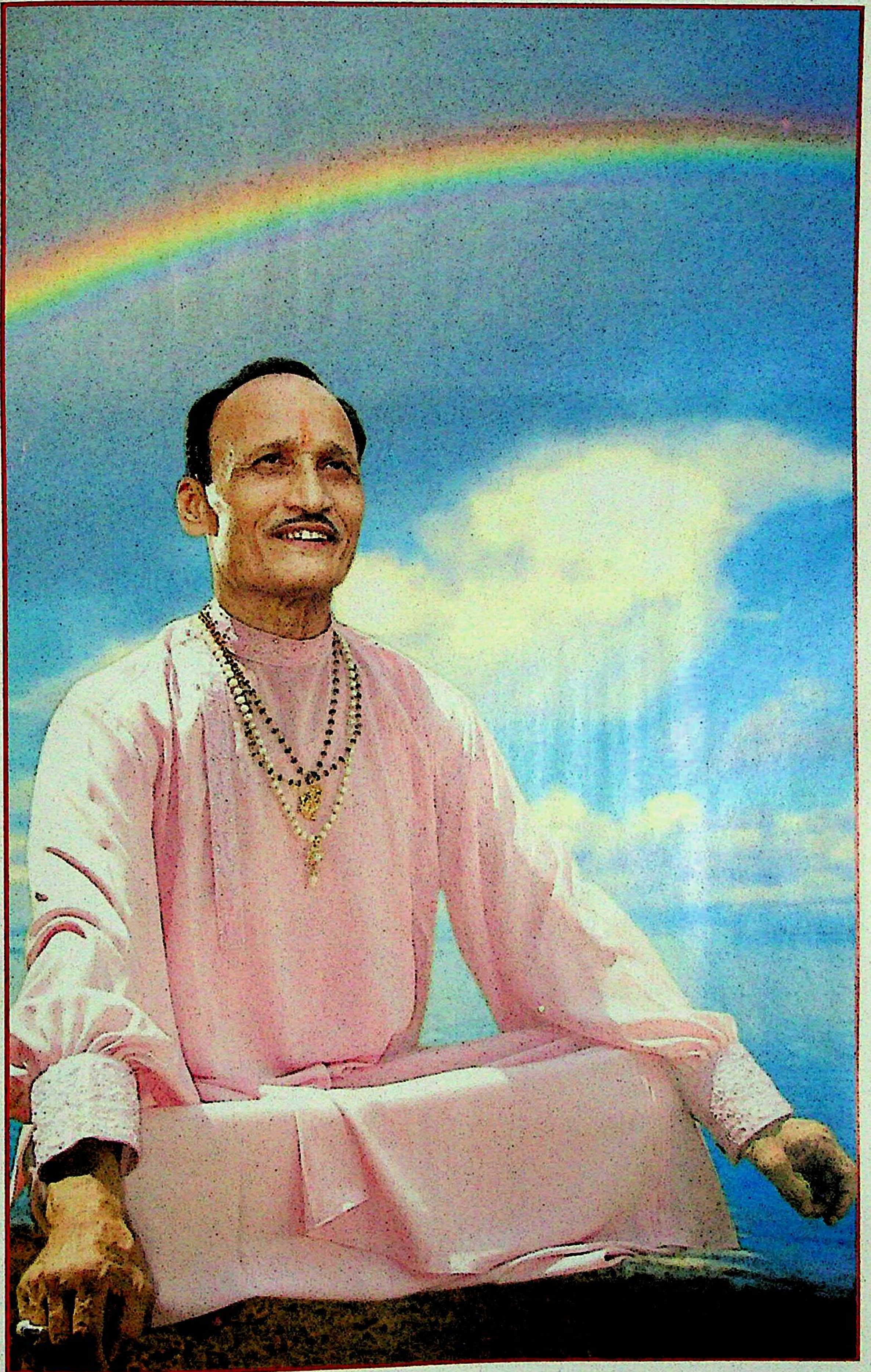
आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज



अमरनाथ-शिवलिङ्ग दर्शन



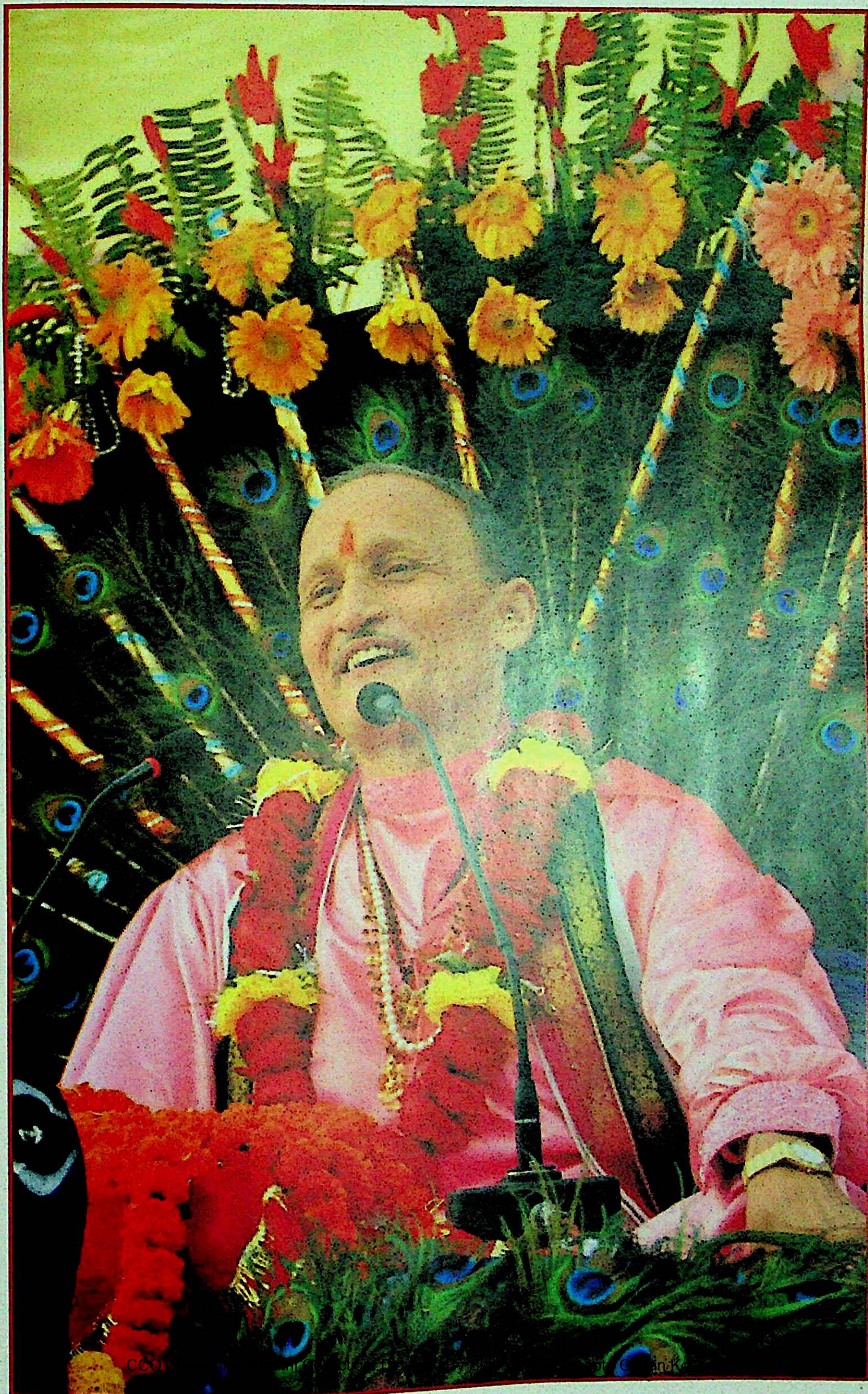
श्री रामेश्वरम्-दर्शन में आशीर्वाद प्राप्त करते हुए आचार्यश्री



महाकाव्यकार आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज

संगीतमय श्रीरामकथा का प्रवचन करते हुए

परमपूज्य आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज



सुदर्शन-रामायण

संगीतमय श्रीरामकथा

(जीवन का महाकाव्य)

आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज

-प्राप्ति स्थान-
आत्मकल्याण केन्द्र
सुदर्शनधाम, बादशाहपुर, गुड़गाँव (हरियाणा)
Visit us : www.shrisudarshanjimaharaj.org
E-mail : info@shrisudarshanjimaharaj.org

सुदर्शन-रामायण
संगीतमय श्रीरामकथा
(जीवन का महाकाव्य)



आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज



प्रथम संस्करण : जून 2009
द्वितीय परिष्कृत संस्करण
वसन्तोत्सव 2011
तृतीय परिमार्जित व परिवर्धित संस्करण
बसन्त पंचमी 2012



मूल्यः रु. 501/- मात्र



प्रकाशक
शारदा प्रकाशन
नयाटोला, काजीपुर, पटना - 800 004 (बिहार)

सुदर्शन-रामायण

संगीतमय श्रीराम कथा

(जीवन का महाकाव्य)

अनुक्रम

-: अयोध्याकाण्ड :-

-: अरण्यकाण्ड :-

-: किष्किन्धाकाण्ड :-

-: सुन्दरकाण्ड :-

-: लंकाकाण्ड :-

-: उत्तरकाण्ड :-



'सुदर्शन रामायण' का द्वितीय संस्करण क्यों?

'सुदर्शन रामायण (जीवन का महाकाव्य)' एक संगीतमय श्रीरामकथा विषयक ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन विगत वर्ष 2009 में हुआ था।

भगवान की जीवन गाथा के जिज्ञासु प्रेमियों की सेवा में मेरे अन्तर्मन के वचन, सन्तमुखश्रुत, दन्तकथा प्रचलित, लोककथा विश्रुत और गाँव के चौपालों पर कथित तथ्यों का संग्रह करके इस गाथा को गद्यकाव्याकार रूप देकर इसे प्रकाशित करवाया गया था। प्रकाशन पूर्व ही मेरे द्वारा कथित श्रीराम की संगीतमय कथा में समाहित श्रद्धालुओं की इच्छा इस साहित्य के प्रति बलवती हो गई थी। एतदर्थ प्रकाशन काल से महज कुछ ही महीनों में इसकी सभी प्रतियाँ पाठकों ने हस्तगत कर ली।

सम्प्रति, विगत दो वर्षों से श्रद्धालुओं व रामायणप्रेमियों की हस्तलिखित चिट्ठियाँ, दूरभाष व चलभाषियन्त्र (मोबाइल) से आत्मकल्याण केन्द्र के प्रति बहुनिवेदन एवं संगीतमय श्रीरामकथा के आयोजनों में आगत भक्तों की व्यासपीठ से किये गए अनुरोध आदि ने मुझे पुनः अजस्र ऊर्जा प्रदान की और इस साहित्य के द्वितीय संस्करण के लिए मैं कृतसंकल्पित हो गया।

मुझे प्रसन्नता है कि **'सुदर्शन रामायण'** का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराकर मैं अपने भक्तों व रामायणप्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाठक वृन्द इसे समुचित सत्कार देकर हृदय से स्वीकार करते हुए इस नए स्वरूप का स्वागत करेंगे। यह नवीन स्वरूप पूर्व की अपेक्षा परिवर्धित व संशोधित है।

इस संस्करण में प्रथम संस्करण के सभी भाव तो हैं ही साथ ही कुछ और तथ्य भी जोड़े गए हैं, जो निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त दूसरा संस्करण प्रस्तुत करते समय जो कुछ और समझ पाया हूँ, उसे भी मैंने लिख दिया है। इस क्रम में शनिदेव की स्तुति, सिद्धि विनायक की स्तुति और बधाई गीत आदि जोड़कर इसे उपादेयाधिक्य बना दिया गया है।

विषयगत व तथ्यात्मक बातचीत इस पन्ने में करना मैं उचित नहीं समझता हूँ, क्योंकि इस संगीतमय श्रीराम कथा में कौन-कौन रत्न है, इसे हमारे पाठकवृन्द प्रथम संस्करण को हृदयंगम करके परिचित हो चुके हैं। अतः मैं अपने साहित्य विषयक परिचित मित्रों से इतना भर कहता हूँ कि इस नवीन संस्करण का अवलोकन कर पूर्ववत् इस कृति के सम्पादन व संकलन में निरत प्रिय पात्र डॉ० द्रोणाचार्य पाण्डेय स्नेहसुधाशब्द संप्रेषित करें।

मेरे प्रियवर, इस नूतन संस्करण से आपका कुछ लाभ हो और आप प्रसन्न हों तो मुझ अकिंचन को अपना प्रेम प्रसाद अवश्य दें जिससे पुलकित होकर मैं श्रीराम की भक्ति में सतत निरत रहूँ।

– आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज

वसंत पंचमी 2011

परिमार्जित-परिष्कृत तीसरा संस्करण

परमपूज्य आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज द्वारा विरचित **'सुदर्शन रामायण (जीवन का महाकाव्य) संगीतमय श्रीरामकथा'** का दूसरा संस्करण आज से कुछ महीने पहले ही समाप्त हो गया था और यह तीसरा संस्करण पाठकों, रामायणप्रेमी जिज्ञासु भक्तों और प्रकाशक के आग्रह के बावजूद बिलम्व से सामने आ रहा है। कारण, इस महाकाव्य को प्रेस में देने से पूर्व मेरे द्वारा सम्पादकत्व-स्वरूप इसे आद्यन्त दूहरा लेने का पावन कार्य किया गया है। इस बार इसमें बची हुई वह सारी सामग्री जोड़ दी गयी है, जो कुछ कारणों से प्रथम एवं दूसरे संस्करण में नहीं जा सकी थी। श्रीरामकथा विषयक अन्य ग्रंथों व महाकाव्यों से थोड़ी अन्यान्य दृष्टि एवं विचारों के प्रकाश में यत्र-तत्र कुछ पद्यात्मक भावों को स्थान दिया गया है, कुछ प्रसंगों में भावानुकूल संगीत भी जोड़ दिए गये हैं। साथ ही, केवट-प्रसंग का गद्यात्मक परिचय-विस्तार सह केवट की प्रार्थना, भगवान का उपदेश, सागर तट पर जाम्बवान् एवं अन्य वानर वीरों द्वारा हनुमानजी की प्रार्थना, अशोक वाटिका में माता सीता के समक्ष हनुमानजी द्वारा की जा रही प्रार्थना और श्रीराम का विलाप आदि पद्यात्मक रूप में महाकाव्यकार **आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज** की विशिष्ट कल्पना प्रसूत भावों को नूतन कलेवर के साथ प्रस्तुत करके इस ग्रंथ को पूर्व के दोनों संस्करणों की अपेक्षा अधिक संतुलित और उपादेय बनाया गया है।

दूसरे संस्करण के प्रकाशनोपरांत पूज्य महाराजश्री के भक्तों, श्रद्धालुओं व रामायणप्रेमी जिज्ञासुओं ने पत्राचार के माध्यम से 'आत्मकल्याण केन्द्र' गुड़गाँव को अपना विचार सम्प्रेषित किया था, **"यह ग्रंथ अब तक प्रकाशित अन्यान्य रामकथात्मक ग्रंथों से यत्किंचत् विशिष्टता रखते हुए अनुपम है, प्रसंगानुकूल समावेशित संगीत पक्ष बेजोड़ है, श्रीराम कथा का प्रवाह जितना सुन्दर रूप में यहाँ देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है, जीवनोपयोगी तथ्यों को दोहे एवं छंद के रूप में जितनी अधिक संख्या में इस महाकाव्य में समादृत किया गया है, वह सर्वथा अन्वेषण से परे है। ईश्वर इस लेखक की लेखनी को अमरता प्रदान करे।"**

सम्प्रति, इस महाकाव्य **'सुदर्शन रामायण'** में दन्तकथाओं, लोक प्रचलित मान्यताओं एवं किंवदन्तियों को संकलित व संगृहीत कराने में सुदर्शनधाम, आत्मकल्याण केन्द्र, गुड़गाँव (हरियाणा) के प्रबंधक श्री रमेश चन्द्र झा एवं सुदर्शनधाम, आत्मकल्याण केन्द्र, मुबारकपुर, सीतामढ़ी (बिहार) के श्री विपिन कुमार ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

अन्ततः सम्पादक की ओर से उन सभी शुभैषियों और भक्तों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित है जिनका स्नेहानुराग इसमें मूर्त हुआ है; विशेषकर सीतामढ़ी (बिहार) स्थित श्रीराम जानकी मंदिर के प्रबंधक को भूरिशः धन्यवाद।

वसन्तोत्सव
9 मार्च 2012

सम्पादन एवं संकलन
– डॉ० द्रोणाचार्य पाण्डेय
धनीराम इण्टर कॉलेज, दमखोदा, बरेली (उ०प्र०)

'सुदर्शन रामायण' क्यों पढ़ें ?

'सुदर्शन रामांयण' में ऐसा क्या है जो किसी दूसरे रामायण में नहीं है?श्रीराम की कथा को सभी जानते हैं, लेकिन इस पावन गाथारूपी महासागर में ऐसे बहुतेरे अनमोल मोती हैं जिन्हें अन्य कथाकारों व ग्रंथकारों ने स्पर्श नहीं किया है । प्रभु की महती कृपा व अनुज्ञा से मैंने उन अनंत रत्नों में से कुछ रत्नों को पाया । तदनु उन्हें इस महाकाव्य में समावेशित कर अपने प्रिय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ–

1. रामायण में सातकाण्ड ही क्यों ? साथ ही परमात्मा चार ही अंश-अवतारों के साथ क्यों प्रादुर्भूत हुए ?
2. प्रभु श्रीराम परमात्मा के स्वरूप हैं, उन्होंने मनुष्य रूप में अवतरित होकर समाज में जिन मर्यादाओं और नैतिकताओं का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया है, उसकी बहुदृष्टि व्याख्या यहाँ प्रस्तुत की गई है ।
3. सीतामढ़ी, बिहार की नमनीय भूमि को चतुर्वेद की जननभूमि कह कर उस क्षेत्र के वर्तमान स्थलों को रामायणकालीन स्थलों से सम्बन्ध जोड़कर जो प्रथम प्रकाश दिया गया है, वह द्रष्टव्य व विचारणीय है ।
4. श्रीराम एक राष्ट्रीय महापुरुष हैं । उन्होंने पूरे आर्यावर्त को एक सूत्र में जोड़ा और अखण्ड भारत का निर्माण किया क्योंकि उस समय पूरा आर्यावर्त छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट रहा था, रक्ष-शक्ति आर्यावर्त को अपने अधीन करना चाहती थी । इस संकटकाल में श्रीराम ने परमात्मा होते हुए भी राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाये रखा, ऐसा किसी भी अन्य परमात्मा के अवतारों ने नहीं किया । यह नूतन दृष्टि इस रामायण की अपनी विशिष्टता है ।
5. श्रीराम के अवतरण की कथा में पहली बार लोकधुनपरक बधाईगीत व मंगलगान को स्थान दिया गया है, जो प्रसंगों के मध्य अद्‌भुत प्रभाव डालता है ।
6. पुष्पवाटिका में सीताजी के द्वारा माँ गिरिजा के समक्ष गीत गाना व नगरवासियों द्वारा प्रभु को देखकर गीत गाना, पुनः सीता को देखकर श्रीराम के मन में प्रेम का प्रकट होना और सीता का स्मरण कर भइया लक्ष्मण के समक्ष प्रेम-विरह का गीत गाना महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ भावानुकूल भी है ।
7. देवी अहिल्या पत्थर से नारी बनकर जो भक्तिपरक गीत गाती है, वह बेहद कर्णप्रिय व श्रव्य है ।
8. रंगभूमि में जनकजी ने ऐसा क्यों कहा कि **"लिखा न बिधि बैदेही बिबाहू"** ? पहली बार इस घोषणा के रहस्य को उद्‌घाटित किया गया है ।

9. प्रभु के अवतरण के समय में **"श्रीराम अवध में प्रकट हुए"** एवं मुनि विश्वामित्र के आश्रम में उनके द्वारा प्रभु को उपदेश देना, दोनों प्रसंगों को बड़े ही मोहक धुन में, विशेषकर नगाड़े की ताल पर तैयार किया गया है ।
10. सीता-स्वयंवर में श्रीराम ने शिव के उसी पिनाक धनुष को तोड़ा था जो वहाँ रखा था या वह कोई दूसरा धनुष था ? इसका प्रकाशन प्रथम बार इस रामायण में हुआ है ।
11. क्या शिव का धनुष अहंकार का प्रतीक था ? इसका रहस्योद्‌घाटन पठनीय है ।
12. पुनः **'लक्ष्मण-परशुराम संवाद'** बड़े ही मोहक धुन में नगाड़े की ताल पर तैयार किया गया है ।
13. धनुष टूटने पर सीताजी श्रीराम के पैर क्यों नहीं छूती, यहाँ एक बहुत ही कर्णप्रिय गीत गाया है ।
14. जनकपुर में प्रथम मिलन के समय परशुरामजी से लक्ष्मणजी ने क्यों कहा कि बचपन में मैंने आपके बहुत धनुषों को तोड़ा था ?
15. परशुरामजी गुरु ऋण से क्यों उऋण नहीं हुए एवं माता-पिता के ऋण से कैसे उऋण हो गये थे ?
16. जनकजी के दूत अवध जाते हैं, वहाँ वे भोजपुरी में एक निमंत्रण गीत गाते हैं जो बड़ा ही मोहक है।
17. बारात मिथिला आती है । बारात और विवाह का वैज्ञानिक महत्त्व, दुल्हा के वेशभूषा और मंडप के विधि-विधान का वैज्ञानिक महत्त्व पहली बार इस रामायण में लिखा गया है ।
18. परिछावन, मंडपगीत, विवाहगीत, कोहवर, मंडप पर मिथिला का सुमधुर मजाक । बेटी सीता की विदाई के समय माता सुनयना द्वारा गीत गाकर सदुपदेश करना, सखियों द्वारा विरह गीत, समधावन गाना एवं खोईंछा देते समय गीत गाना आदि पहली बार यहाँ वर्णित है ।
19. चारों दुल्हिनों का अवध में स्वागत करते हुए मंगलगीत गाना अपने आप में अनुपम है ।
20. माता कैकेयी को राजमाता की संज्ञा देना एवं उनके द्वारा प्रभु के लिए वनवास की माँग को प्रथम बार राष्ट्र एवं सुधीजन के कल्याण के रूप में देखा गया है । यह रहस्योपाख्यान अद्वितीय है ।
21. प्रभु श्रीराम के वनवास के समय अवध-वासियों का विरह गीत अनोखा है ।
22. केवट प्रसंग के समय अनेक गीत लोकधुन में गाये गये हैं जो बड़े ही मोहक हैं । साथ ही श्रीराम से केवट का आध्यात्मिक मिलन जीव और परमात्मा का मिलन के रूप में पहले-पहल यहाँ दिखाया गया है ।

23. गंगातट पर केवट को श्रीराम ने जीवन जीने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया है, जिसका पहली बार यहाँ वर्णन किया गया है । सच कहा जाए तो यह एक आधुनिक गीता है, साथ ही केवट द्वारा गाया गया धन्यवाद गीत अतीव मोहक है ।
24. वन के रास्ते में श्रीराम, सीता व लक्ष्मण को देख ग्रामवासियों द्वारा एक बड़ा ही सुन्दर गीत गाया है जो कौतुहल से भरा हुआ है ।
25. श्रीराम-भरत के मिलन के अवसर पर भोजपुरी भाषा के अनेक गीतों का पहली बार गान किया गया है। ये सभी गीत देश-विदेश में काफी लोकप्रिय हो रहे हैं ।
26. देवी ऊर्मिला का विरह गीत एवं हिरामन तोता द्वारा संदेश भेजने की बात को गीत के माध्यम से सर्वप्रथम यहाँ व्यक्त किया गया है ।
27. विन्ध्याचल के साधु-संतों का श्रीराम के आगमन से प्रसन्न होना कि उन्हें भी पत्थर से पत्नी मिलेगी और घर-परिवार बसेगा, यह अनुपम कल्पना है ।
28. पंचवटी में सीता-हरण के समय का गीत महत्त्वपूर्ण है, साथ ही सोना के लालच भाव पर एक बेहद प्रसंगानुकूल गीत लिखा गया है ।
29. माता शबरी के आश्रम में प्रभु के पधारने पर शबरी द्वारा भोजपुरी में गाया गया गीत लोकप्रिय एवं मनोहर है ।
30. श्रीराम को देखकर जंगल के मृगसमूह श्रीराम पर व्यंग्य करते हैं । यहाँ एक मोहक गीत व उपदेशपरक तथ्यों का प्रकाशन हुआ है ।
31. सुग्रीव से मित्रता के पश्चात् बालि-बध । पहली बार इस रहस्य का उद्घाटन हुआ है कि बालि सामने से लड़ने पर क्यों नहीं मरता था, श्रीराम ने छिप कर क्यों मारा ?
32. वर्षा काल में सीता के लिए श्रीराम का वियोग एवं उनके मनोभाव को पकड़ कर जो विरह गीत लिखा गया है, वह दृश्य व श्रव्य है ।
33. सागर तट पर जाम्बवान् एवं अन्य वानर वीरों द्वारा हनुमानजी की प्रार्थना एवं बल स्मरण कराना, इस प्रसंग में अतीव मोहक भजन प्रस्तुत किया गया है ।
34. पक्षी जटायु का श्राद्ध श्रीराम ने क्यों किया ?
35. अशोकवाटिका में हनुमानजी ने सीताजी को नौ बार माता क्यों कहा ?
36. लंका पहुँच कर हनुमानजी ने अक्षयकुमार को सबसे पहले क्यों मारा ?
37. लंका में प्रवेश के समय किस पर्वत पर हनुमानजी बिना भय के चढ़ गए । उस पर्वत पर चढ़ने में भय का क्या कारण था ?
38. लंका की उत्पत्ति कैसे हुई । लंका-दहन के समय शनिश्चर से हनुमानजी की कैसे भेंट हुई?

39. श्रीराम ने रामेश्वरम् की स्थापना कैसे की ?
40. क्या विभीषण राम के भाई थे और सुबक्षा से उनका क्या सम्बन्ध था ?
41. सीता ने त्रिजटा को माँ क्यों कहा ?
42. मन्दोदरी कौन थी और वह रावण को कैसे प्राप्त हुई ?
43. मेघनाद और लक्ष्मण में इतनी शत्रुता क्यों थी एवं लक्ष्मण को शक्तिवाण क्यों लगा ?
44. सुलोचना कौन थी ? इसका ब्याह मेघनाद से कैसे हुआ ?
45. सूर्पणखा प्रसंग में प्रभु ने लक्ष्मणजी को कुँवारा क्यों कहा ?
46. राक्षसराज रावण माता सीता पर बल प्रयोग क्यों नहीं करता था, इसके पीछे रम्भा का कौन-सा अभिशाप था ?
47. प्रभु ने भरतजी को कौन-सी राजनीति की शिक्षा दी ?
48. माता कौशल्या एवं अन्य माताओं को प्रभु ने जीवन की कौन-सी शिक्षा दी ?
49. चरण छूने एवं आशीर्वाद देने के विज्ञान का रहस्योद्घाटन पठनीय व विचारणीय है ।
50. जीवनोपयोगी दोहे की प्रसंगानुकूल उपस्थिति बेहद रोमांचकारी है ।
51. भगवान् भोलेनाथ की बाराती का गीत एवं अन्य भजन बेहद संग्रहणीय है ।

इस तरह अनेक स्थानों पर शंका-समाधान के साथ-साथ उन विषयों की भी चर्चा की गई है, जिसकी चर्चा आज तक किसी रामायण में नहीं हुई है । सभी प्रसंगों का वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है। इन सभी नूतन विषयों के साथ-साथ अन्यान्य विषयों को जानने व समझने हेतु इस **'सुदर्शन रामायण'** को पढ़ना ही एकमात्र समाधान है ।



ऊँ श्रीपरमात्मने नमः

परमात्मा का पता

परमात्मा कहाँ रहता है?

परमात्मा का अर्थ है- परम आत्मा, महान आत्मा, अति आत्मा । यह सकल सृष्टि का सिरमौर है, सर्वव्यापक, नित्य व शाश्वत है। जीव में आत्मा का निवास होता है, जिसके कारण जीव जीवित रहता है । उसी विराट परमात्मा की दिव्य अनन्त रश्मियाँ इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, जिसके कारण मनुष्य, अन्य जीवधारी जैसे पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, अण्डज-पिण्डज, जलज-स्वेदज प्राणवान बना रहता है । जब जीवात्मा का सम्बन्ध परमात्मा से टूट जाता है, तो मनुष्य अथवा अन्य जीव, पेड़-पौधे आदि मृत हो जाते हैं । पावर हाउस से जब विद्युत् आपूर्ति बन्द हो जाती है, तो बल्व बुझ जाता है । ठीक वही स्थिति जीव के साथ भी होती है । इसलिए परमात्मा समस्त जीव व सकल ब्रह्माण्ड में निवास करता है ।

- नदी बड़े वेग से बहती है, सागर में लहरें उठती हैं, घोसलों में पक्षी गीत गाते हैं, कोयल कूकती है, प्रेमी-युगल आलिंगन करते हैं, सावन में बालाएं कजरी गाती हैं, फूलों पर भँवरें गुनगुनाते हैं, सुखी हुई डालियों में रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं, सुखी हुई धरती से आम, अमरुद, सेव एवं अन्य प्रकार के मीठे-मीठे फल निकलते हैं, परमात्मा इन्हीं फल, फूल और उन्मत्त बहते हुए झरनों में निवास करता है ।
- परमात्मा प्रेम करने वाले दो प्रेमी के हृदय में निवास करता है ।
- इस प्रकृति के अंतरिक्ष में जो ग्रह-तारे, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि चमक रहे हैं, ये सब परमात्मा की आँखें ही तो हैं ।
- इस विराट अनन्त अंतरिक्ष से प्राण-संचार करने वाले तत्त्व, जिसे विज्ञान की भाषा में ऑक्सीजन कहते हैं, उसी में तो परमात्मा का निवास है । प्रत्येक जीव में प्राण ऊर्जा की आपूर्ति करने वाला ही तो परमात्मा है, क्योंकि जीव तभी तक जीवित रहता है जब तक उसमें आत्मा रहती है । जब तक परमात्मा की रश्मि आत्मा बनकर शरीर में निवास करती है, तभी तक जीव जीवित रहता है । यही कारण है कि जीवित व्यक्ति जब तक परमात्मा से जुड़ा है, तब तक वह स्वस्थ है । ज्योंही

सम्बन्ध टूटता है, वह जीवित नहीं रहता । अतः जीवन के लिए परमात्मा से जुड़ाव अनिवार्य है।

- प्रत्येक जीव सांस के द्वारा ही परमात्मा से जुड़ा है । जीव की जब तक सांस चलती है, वह परमात्मा से जुड़ा रहता है। इसलिए प्राणायाम किया जाता है, ताकि शरीर के अन्दर प्राण-वायु का संचार होता रहे । स्वस्थ रहने के लिए प्राणायाम अत्यन्त आवश्यक है । इससे शरीर के किसी अंग में सांस नहीं रुकती है, इसी सांस की शक्ति से हृदय, फेफड़ा एवं सम्पूर्ण शरीर में रक्त-संचालन ठीक से होता रहता है । इसीलिए हृदय क्षेत्र व ब्रह्म में परमात्मा का निवास माना गया है ।
- माँ जब वात्सल्य-प्रेम के कारण अपने बच्चे को दूध पिलाती है, उसे प्यार करती है, चुमती है, इसी प्रेम भरे चुम्बन में परमात्मा निवास करता है ।
- हरी-भरी वादियों में रंग-बिरंग के फूल जब सुगन्ध बिखेरते हुए क्यारियों में झूमते हैं, तो वहीं पर परमात्मा का निवास होता है ।
- खुले नीले आकाश में लहराते काले-काले बादल जब नर्तन करते हुए बूँदों की बौछार करता है और कभी-कभी घनघोर काले बादलों में बिजली चमकती है, वही तो परमात्मा की मुस्कान है ।
- ब्रह्माण्ड के समस्त लोक ही तो परमात्मा के हाथ-पाँव आदि अंग हैं ।
- यह कैसा परमात्मा है, जो एक साथ निर्गुण भी है, सगुण भी है, अजन्मा और अगोचर है, फिर भी सभी जीवों में निवास करता है । परमात्मा का पता किससे पूछें, जिससे पूछते हैं, वही तो परमात्मा है । यह अजीब रहस्य है, परमात्मा का पता पूछने वाला भी परमात्मा है, जिससे पूछा जा रहा है, वह भी परमात्मा है । क्योंकि पूछने वाला स्वयं अपना नाम और पता भूल जाता है और जिससे पूछा जाता है, उसे भी पता नहीं होता कि मैं किस परमात्मा का पता बताऊँ । जब सर्वत्र परमात्मा है, सभी जीवों में परमात्मा है तो, कौन, किसे, किसका पता बताए? पता पूछने वाला भी वही है और पता बताने वाला भी वही है । जब कोई दूसरा है ही नहीं, तो तुम्हें क्या बताऊँ कि परमात्मा कहाँ रहता है? यह तो ठीक वैसे ही है, जैसे-कोई पूछे कि मेरा नाम क्या है और मैं कहाँ रहता हूँ ? तुम अपनी गर्दन थोड़ी झुकाओ, आँखों पर चढ़ा चशमा उतारो, तुम्हें स्वयं परमात्मा का पता मिल जाएगा ।



लेखक की विनीत प्रार्थना

प्रभु श्रीराम इस अखिल ब्रह्माण्ड के परमात्मा हैं । चर-अचर, अणु-विभु और सम्पूर्ण जीव-जगत् श्रीराम की निमित्त मात्र की इच्छा से अनुप्राणित होते रहते हैं । उनकी अहैतुकी कृपा से अनेक संत-महात्माओं, मनीषियों और विचारकों ने अब तक रामकथा के अनन्त महासागर से कुछ बूंदें निकालकर अपनी-अपनी भक्ति के अनुरूप रामकथा का गान किया है। यही कारण है कि रामायण विश्व के लगभग 53 देशों में आज भी लोकप्रिय है । भारत में खेत-खलिहानों, चौपालों से लेकर विश्वविद्यालय तक के लोग जीवन के इस महाकाव्य को बड़े प्रेम से गाते और पढ़ते रहे हैं । यही कारण है कि जीवन का यह महाकाव्य भारत के घर-घर के लोगों का कंठहार बना हुआ है ।

आज तक रामायण के विषय को लेकर अनेक श्रद्धालु भक्तों ने विभिन्न नामों से रचनाएँ की हैं । जिन संतों ने इस रामकथा का गान किया, वे प्रभु श्रीराम की कृपा से समाज में समादृत हुए । इसी प्रलोभन के कारण मैंने अपनी लघुता को भूलकर श्रीराम कथा को संगीतमय बनाकर गाना प्रारम्भ किया है ।

इस संगीतमय श्रीराम कथा को गाने और लिखने का प्रयास, समुद्र को अपनी अंजुलि से उलीचने का प्रयास है । लेकिन जब गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं- **"श्रीरघुबीर प्रताप तें सिन्धु तरें पाषान ।"** जब श्रीराम के प्रताप से पानी पर पत्थर तैर सकता है, तो उनकी कृपा से समुद्र को भी अंजुलि से उलीचा जा सकता है । क्योंकि परमात्मा के भक्तों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ।

मैं बचपन से श्रीरामकथा का पारायण करता आ रहा हूँ । बचपन में इसलिए पढ़ता था कि लोकमान्यता के अनुसार इस महाग्रंथ में भगवान् श्री राम की कहानी है । मैं अपने चारों ओर देखता था कि इस महाकाव्य को लाखों लोग बड़े आदर और सम्मान से पढ़ते और इनकी चौपाइयों का कीर्तन गाते । रामायण को लोग पढ़ते थे, इसलिए मैं भी पढ़ता था । मन में शायद यह भाव रहा हो कि इसको पढ़ने से भगवान् प्रसन्न होते हैं, आशीर्वाद देते हैं और जीवन में सुख-शान्ति, धन-वैभव मिलता है । पता नहीं क्यों, जब मैं छठी कक्षा में था, तब भी रामचरितमानस का पाठ करता था । एक दिन अयोध्या से एक संत मेरे घर पधारे, मैं उनसे मिलने गया, पता नहीं उन्होंने मुझमें क्या देखा? इतना मुझे स्मरण है कि उन्होंने मुझे कहा था कि परमात्मा के प्रति तुम्हारी आस्था देखकर मुझे लगता है

कि तुम किसी दिन एक अच्छे संत बन जाओगे । उन्होंने यह भी कहा कि वेद, पुराण, उपनिषद् की बात अभी तुम समझ नहीं पाओगे, अगर कर सकते हो तो एक दिन में एक आसन पर बैठकर, मानस के सात काण्डों का पाठ पूरा करो । मैंने दूसरे ही दिन बिना किसी को बताए चार बजे सुबह से रामचरितमानस का पाठ प्रारम्भ किया ।

मुझे स्मरण है कि पूरे रामचरितमानस का पाठ करने में मुझे लगभग 20 घंटे का समय लगा । उसके बाद मैं जब सातवीं कक्षा में गया तो एक आसन पर और एक दिन में ही मानस का पाठ पूरा किया । उसके बाद यह क्रम चलता रहा । अब तक कई बार पाठ पूरा कर चुका हूँ । उस समय न अध्यात्म की कोई समझ थी और न कोई दूसरा भाव था । केवल एक ही भाव था कि पढ़ने से धर्म होता है । घंटों एकान्त में बैठकर, परमात्मा के सम्बन्ध में सोचता रहता और शेष समय में रामायण पढ़ता तथा अपनी कोर्स की पुस्तकें भी पढ़ता था । अध्यात्म का बीज, जो बचपन में अंकुरित होने लगा था, वह आज वटवृक्ष की तरह विशाल हो गया है । यह बीज कहाँ से आया? यह बात मुझे आज तक समझ में नहीं आ रही है । उसी का परिणाम है कि जब मैं विश्वविद्यालय में शोधकार्यरूप पी-एच.डी. की उपाधि ग्रहण कर रहा था तब भी मेरे ऊपर मानस का प्रभाव पड़ रहा था। विश्वविद्यालय से निकलने के पश्चात् मेरे मन में बार-बार प्रश्न उठता था कि आखिर राम-कथा मेरे जीवन को इतना प्रभावित क्यों कर रही है? इन उठते हुए प्रश्नों के उत्तर के लिए मैं वेद, उपनिषद्, दर्शन का गहन अध्ययन करने लगा । इन ग्रंथों के चक्रव्यूह में पड़कर कई बार मन भ्रमित भी हो जाता था, लेकिन परमात्मा के प्रति मन में इतनी गहरी आस्था थी कि सारे भ्रम टूट जाते थे।

पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् जब मैं प्राध्यापक बना तो, वहाँ भी मुझे रामचरितमानस पढ़ाने का मौका मिला । अब मैं सोचने लगा कि आज का युग तो विज्ञान का युग है, जब तक अपनी आस्था को विज्ञान की कसौटी पर कसकर देख न लूँ, तब तक मन के उठते हुए प्रश्नों को संतुष्ट नहीं कर सकूंगा । लेकिन मेरे सामने प्रश्न था कि विज्ञान का छात्र तो मैं कभी रहा नहीं, फिर मानस की घटनाओं को विज्ञान से कैसे जोड़ूं । पता नहीं कैसे मेरे मन में विज्ञान की विभिन्न विधाओं की समझ बढ़ने लगी । शायद यह सब मेरे एकान्तचिन्तन का प्रभाव रहा हो। मुझे तो स्वयं आश्चर्य होता है कि जिन विषयों को मैंने कभी नहीं पढ़ा, परन्तु आज जब मैं उन विषयों पर सोचता हूँ तो

उसकी सामान्य जानकारी तो हो ही जाती है । यही कारण है कि अब तक मैं अंतरिक्ष, प्राण-ऊर्जा, ग्रह, नक्षत्र एवं भूमंडल पर अनेक पुस्तकें लिख चुका हूँ । इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है, सब कुछ परमात्मा के आशीर्वाद से हो रहा है ।

परमात्मा जिन विषयों को लिखवाना चाहता है, उन पर लिखने लगता हूँ । लिखने में मैं कर्ता रूप में कहीं नहीं हूँ । क्योंकि मुझे अपनी अज्ञानता का बोध है । मुझे तो आज भी आश्चर्य हो रहा है कि मैं संगीतमय राम कथा कैसे कर लेता हूँ । न तो मैंने संगीत का कभी अभ्यास किया और न कभी गाया । लेकिन फिर भी रामचरितमानस की घटनाओं पर 200 से अधिक संगीत मैंने लिखा है और राम-कथा में इसे गाता भी हूँ । राम कथा पर मेरे द्वारा लिखे और गाये गए भक्ति संगीत को संग्रह करके मेरे मित्रों ने **श्रीराम दया करना, जीवन-संगीत एवं गीत गाता चल** नाम से पुस्तक भी प्रकाशित किया है । मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि अब तक शिक्षा, अध्यात्म, अंतरिक्ष, जीवन-दर्शन, जीवन जीने की विधि आदि विषयों पर 89 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । लेकिन जिन विषयों पर मैंने पुस्तकें लिखी है, आज भी मैं ईमानदारी से कह सकता हूँ कि उन विषयों की बहुत जानकारी मुझे नहीं है। उन विषयों पर और भी अच्छे ढंग से लिखा जा सकता है । जब मैं लोगों को इतना जानते हुए और अपने विषयों को विशिष्टता पूर्वक बोलते हुए सुनता हूँ तो, अपनी अल्पज्ञता और शून्यता का बोध मुझे होता है । तब मुझे लगता है कि मैं कितना कम जानता हूँ ।

सच पूछा जाय तो विषयों को जानना, पढ़ने पर निर्भर नहीं करता । पढ़ते तो बहुत लोग हैं, लेकिन जानते बहुत कम हैं । पढ़ना और जानना अलग-अलग चीज हैं। हमारे देश में अनेक महापुरुष हुए । वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे । कबीर कहते हैं- **"मसी कागद छुओं नहीं, कलम गहो नहीं हाथ ।"** रविदास, भगवान् बुद्ध, महावीर किसी विश्वविद्यालय के स्नातक नहीं थे लेकिन उनके पास जो ज्ञान था, वह किसी भी विश्वविद्यालय की पढ़ाई से बड़ा था । इसका अर्थ है कि केवल पढ़ने से नहीं होता है, सब कुछ चिन्तन से होता है । मनुष्य जिस विषय को गहराई से जानना चाहता है, परमात्मा उसकी जानकारी दे देता है-

जेहिं जानत तेहिं देत जनाई । जानत तिन्हहिं तिन्हहिं होई जाई

रामचरितमानस मेरे जीवन में केवल इसलिए नहीं उतरा कि मैं एक धार्मिक व्यक्ति रहा हूँ, अतः केवल धर्म प्राप्त करने के लिए रामचरितमानस को संपूर्ण रूप से जीवन में नहीं उतारा अपितु सच तो यह है कि इस महाकाव्य से जीवन जीने की विधि के नियमों को जीवन में उतारने और मर्यादित जीवन जीने की प्रेरणा भी मुझे मिलती रही है । आज के विज्ञान के युग में जब कभी रामचरितमानस की घटनाओं को परखने और समझने का प्रयास करता हूँ तो सभी दृष्टियों से मानस की घटनाएँ खरी उतरती हैं । इसलिए यह कहना कि मानस एक धार्मिक ग्रंथ है, गलत है । क्योंकि मानस में जितनी धार्मिक मान्यताएं हैं, उससे अधिक इस महाकाव्य में राष्ट्रीयता है, सांस्कृतिक मूल्यों का परिवेश है, मर्यादाओं का पालन है । यहाँ तक कि सामाजिक मान्यताओं का भी उतना ही निर्वाह किया गया है । ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर मानस भारत का एक संपूर्ण इतिहास है । उसी तरह जब कभी मानस की कथाओं पर विचार करता हूँ तो, उस समय की भौगोलिक स्थिति का भी स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है । इसलिए रामचरितमानस हमारे जीवन का नीतिशास्त्र है, भारत का धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ग्रंथ है । इस प्रकार, इस महाकाव्य का राजनैतिक, भौगोलिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

मानस की कथा में प्रवेश करने के पूर्व उन बिन्दुओं पर विशेष रूप से चर्चा की जानी चाहिए, जिसके कारण आज विश्व के लगभग 53 देशों में रामचरितमानस जनमानस का कंठहार बना हुआ है । भारत, इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, अनाम (वियतनाम), बर्मा, मॉरीशस, त्रिणीदाद, घाना, साउथ अफ्रीका, श्रीलंका, रूस, जापान, तिब्बत आदि देशों में रामकथा विभिन्न रूपों में प्रचलित है । भारत तो एक धर्मप्राण देश है । यहाँ तो जन-जन में रामकथा लोकप्रिय है । स्पष्ट है कि दुनिया के इतने देशों में जिस रामकथा का गान होता है, निश्चित रूप से वह ऐसी कथा होगी जो जीवन के रहस्यों को उद्घाटित करती हो । शायद यही कारण है कि श्रीराम कथा विश्व में सर्वाधिक प्रचारित है । इस संगीतमय रामकथा का विचार मेरे मन में इसलिए आया कि श्रीराम कथा का ज्ञान तो भारत के प्रत्येक व्यक्ति को है, अगर इस कथा को संगीतरूप में लोगों तक पहुंचाया जाय तो कहानी को संगीत में गाने से लोगों के लिए समझना काफी आसान हो जायेगा । संगीत का स्वर मधुर होता है, इसलिए कहानी में लालित्य का भाव अधिक आ जाता है । पूरी रामकथा को विभिन्न प्रकार के संगीतों में बांधकर गाना मेरे

लिए संभव नही है । मैंने केवल चुने हुए संदर्भों को विभिन्न तर्जों में लिखने और गाने का प्रयास किया है । मैं आशा करता हूँ कि इस राम कथा को और भी सुमधुर गीतों से सजाने का प्रयास लोग करेंगे । हमारे देश में एक से बढ़कर एक रामकथा के गायक हैं । उन सबों से प्रार्थना है कि इस कथा के और भी जो महत्त्वपूर्ण संदर्भ हैं, उन्हें वे अपनी शैली में गाएं, ताकि श्रीराम कथा की अमृत वर्षा सम्पूर्ण मानव जाति पर हो सके । मैंने तो महज बीज रूप में थोड़े-बहुत भजनों को कथा में पिरोने का प्रयास किया है, इसे पुष्पित और पल्लवित करना तो अभी बाकी है ।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने विभिन्न दोहों, छंदों, चौपाइयों और कविताओं में मानस को अपार जनमानस के लिए तैयार किया है । उस कथा को जनमानस, गांव और कस्बों की मान्यताओं के अनुरूप अगर स्थानीय संगीत की धुनों में तैयार किया जाय तो, इसकी लोकप्रियता और भी बढ़ सकती है । आज भी इंडोनेशिया में जात-पात और धर्म के विचार किये बिना सभी धर्मों के लोग **"तेरियन-तेरियन सेंदी तेरि रामायण"** के नाम से रामकथा का मंचन करते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि श्रीराम कथा किसी एक धर्म, जाति, सम्प्रदाय की कहानी नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानव जाति की कहानी है ।

मानस में जितने भी पात्र दिखते हैं, वे सभी विभिन्न विचारों के प्रतीक हैं । एक तरफ राम हैं तो दूसरे तरफ रावण । एक तरफ भरत हैं तो दूसरे तरफ विभीषण । बाली और सुग्रीव ऐसे दो पात्र हैं, जो विभिन्न विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं । इस महाकाव्य में ऐसे भी पात्र हैं जो कथा की भूमिका में नहीं है । लेकिन उनका योंगदान कम नहीं है, जैसे- ऊर्मिला । यह एक ऐसी नायिका है, जो मौन रहकर अपने पति लक्ष्मण की सेवा भावना को बढ़ाती है । ऊर्मिला तो त्याग की मूर्ति है । भरत जैसा भाई आज कहाँ मिलेगा? जिस धन के लिए एक भाई दूसरे भाई का दुश्मन बन रहा है, वहीं भरत राज सिंहासन को ठुकड़ाकर खड़े हो जाते हैं । मानो राजसिंहासन एक फुटबॉल हो । भरत ने जो आदर्श स्थापित किया, आज वह हमारे लिए आदर्श है । इस तरह सभी पात्र अपनी पूर्णता के साथ मानस में खड़े दिखते हैं ।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति और धन-वैभव प्राप्त करना चाहता है, इसके लिए वह अनेक अच्छे-बुरे काम करता है, वह भूल जाता है कि अपने स्वार्थ के लिए वह कैसे दूसरों की चिन्ता नहीं करता है । यहाँ तक कि अपने स्वार्थ के लिए वह दूसरों का बड़ा से बड़ा नुकसान भी कर देता है ।

हित अपना अति अल्प हो, औरों की हो हानि ।
वैसे हित को त्याग दो, कहे संत विज्ञानी ॥

सम्प्रति, आज के इस परिवेश में जब मैंने राम कथा की तुलना की, तो लगा कि यह तो जीवन का महाकाव्य है । कहीं भी कोई पात्र अथवा घटना मानस में ऐसी नहीं है जिस पर प्रश्न उठाया जाय । इसलिए मैंने रामकथा को पहले अपने जीवन में उतारा, फिर इसे जनसमूह तक पहुँचाने का संकल्प किया । भारत देश में ऐसी अनेक कथाएं हैं, जिनमें परमात्मा के चरित्र का वर्णन किया गया है । सभी कथाएं श्रेष्ठ हैं । कोई भी व्यक्ति एक साथ सभी कथाओं को जीवन में तो नहीं उतार सकता, क्योंकि इन कथाओं में अपना-अपना विश्वास जुड़ा होता है । हमारे देश में यह परम्परा रही है कि हम परमात्मा के सभी रूपों को, सभी अवतारों को आदर सहित प्रणाम करते हैं और किसी एक स्वरूप को अपने जीवन का आदर्श बनाते हैं । दरअसल परमात्मा तो एक ही है, जो हमें विभिन्न स्वरूपों में दिखाई पड़ता है । परमात्मा कभी भी-किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा पंथ को छोटा-बड़ा नहीं मानता । इन विविधताओं के बीच मैंने भगवान् श्रीराम को अपना आदर्श माना । इसलिए रामकथा के प्रचार-प्रसार में लग गया ।

कई लोग पूछते हैं कि भारत में अब तक लगभग 50 महाकवियों एवं संतों ने रामकथा का वर्णन विभिन्न भाषाओं में किया है । हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला, तमिल, तेलगु सभी भाषाओं में रामकथा की चर्चा है। फिर राम कथा को नये सिरे से लिखने की क्या आवश्यकता है? दरअसल महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामीजी और कम्बन जैसे महान संतों से अच्छा लिखने का मेरा कोई दम्भ नहीं है । लेकिन आज के परिवेश में, इस विज्ञान के युग में, श्रीराम कथा का क्या औचित्य है? इस इक्कीसवीं शताब्दी में हमारे जीवन के लिए रामकथा कितनी उपयोगी है, इस कथा के पात्र आज हमें कैसे प्रभावित कर रहे हैं, इन्हीं बिन्दुओं की चर्चा करने के लिए मैंने रामकथा को पुनः लिखने का प्रयास किया है। एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि मैंने इसे संगीतमय रामकथा कहा है । मेरा उद्देश्य है कि भारत में प्रचलित लोकगीतों की धुन पर राम कथा के महत्त्वपूर्ण अंशों को संगीतबद्ध करके रोचक और मनोरंजक बनाऊँ ।

मैंने प्रयास किया है कि परमात्मा श्रीराम को आदर सहित मंदिरों से निकालकर घर-घर और जन-जन के मन में स्थापित करूँ, ताकि हमारे प्रभु श्रीराम केवल मंदिरों की

शोभा न बढ़ावें, हमारे जीवन को ही मंदिर बना दें । श्रीराम के इसी चरित्र का उदात्तीकरण करके मैंने जनमानस में स्थापित करने का प्रयास किया है । यह राजमहल से लेकर कुटिया तक की यात्रा की कहानी है । आज हमें उसी राम की आवश्यकता है, जो राजमहल के शिखर को झोपड़ी की नींव से जोड़ सकें । तभी हम समतामूलक समाज की स्थापना कर सकते हैं ।

इसलिए मैंने एक बार पुनः इस संगीतमय श्रीराम कथा को गाने का प्रयास किया है । मेरी प्रार्थना है कि इस कथा में, तथ्य संग्रह के क्रम में मुझसे कोई भूल हुई हो तो उसे संत जन क्षमा करेंगे, क्योंकि पौराणिक और लोककथाओं पर आधारित तथ्यों में भूल होने की संभावना रहती है । इसलिए इस कथा में वर्णित कई तथ्यों को विज्ञान की कसौटी पर प्रामाणिक बताना संभव नहीं है । सौभाग्य से इस भारत भूमि में अनेक वन्दनीय संत हैं, जो श्रीराम कथा के प्रामाणिक विद्वान हैं, उन विभूतियों से मेरी प्रार्थना है कि मेरी लघुता को ध्यान में रखकर सभी भूलों को क्षमा करेंगे ।

इस महाकाव्य में कई नूतन विषयों को भी समाहित किया गया है । इस क्रम में उत्तरकाण्ड भाग में पहली बार भगवान् श्रीराम के मुख से माता कौशल्या, राजमाता कैकेयी, भ्राता भरतजी और परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति जो दर्शनपरक सदुपदेश कहवाया गया है, वह निश्चित रूप से आज के वर्तमान परिवेश में बेहद उपयोगी है और हमारे जीवन को सुंदर बनाने में सहायक उपकरण साबित होगा । इस विषय को लिखने में मेरी कोई महानता नहीं है । मैं तो एक माध्यम हूँ, मुझे अपनी लघुता का ज्ञान है । ये सभी शब्द भले ही मेरे हों लेकिन प्रेरणास्वरूप भगवान् श्रीराम की कृपा प्रसाद ही है ।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए, परिवार धर्म पालन के लिए और सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए इन संदर्भों का अध्ययन अवश्य करें ।

प्रभु श्रीराम प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दिव्यता प्रदान करें ।

- आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज

श्रीगणेशाय नमः

भूमिका

संगीतमय श्रीरामकथा

(जीवन का महाकाव्य)

श्रीरामकथा का वर्तमान युग में औचित्य

श्रीरामकथा जीवन का महाकाव्य है । इसमें संपूर्ण जीवन की कथा का वर्णन है । जीवन का महाकाव्य होने के कारण राम कथा के ऊपर सामयिक परिवेशों का क्या प्रभाव पड़ता है, उन परिवेशों की चर्चा करने से राम के औचित्य की प्रबलता और अधिक बढ़ जाती है । इसलिए मैंने रामकथा के पूर्व भूमिका में श्रीराम के अवतरण का धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और भौगोलिक अनिवार्यता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

उस परम ब्रह्म परमेश्वर को, साँसों से कैसे नाप सकूं ।
कैसे इन टूटे धागों से, उस दिव्य प्रभु को बांध सकूं ॥

यह सत्य है कि प्रभु श्रीराम परमात्मा हैं, अनादि, अनन्त और अजन्मा हैं । वे समस्त जीवों में प्राणस्वरूप विचरण करते हैं । लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण विषय है, श्रीराम का लोकमंगलकारी स्वरूप ।

श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन लोकमंगल कार्य के लिए समर्पित है। क्योंकि वे केवल परमात्मा नहीं हैं । केवल परमात्मा होते तो, वे मंदिरों में ही बैठे होते, जहाँ उनकी पूजा-अर्चना होती । लेंकिन श्रीराम तो लोकमंगलकारी हैं, इसलिए चक्रवर्ती सम्राट् के पुत्र होने पर भी वे सम्पूर्ण साम्राज्य को छोड़कर राष्ट्र के कल्याण के लिए जंगलों में भटकने लगते हैं । चक्रवर्ती सम्राट् के पुत्र गरीब केवट के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हैं, चित्रकूट में पत्नी सहित कुटिया में निवास करते हैं, भारत की संस्कृति और मर्यादा के प्रतीक संतों के पास स्वयं चलकर जाते हैं, वनवासी लोगों को गले लगाते हैं, वनों में बसे लोगों की बिखरी शक्तियों को एकत्रित कर जोड़ते हैं और उनमें आत्मसम्मान का भाव

भरते हैं, उपेक्षिता शबरी भिलनी के पास स्वयं चलकर जाते हैं, उसके जूठे बेर खाते हैं, अपने भाई द्वारा निर्वासित सुग्रीव से मित्रता कर राष्ट्र के विरूद्ध संधि करने वाले भोग-विलास में आकंठ डूबे हुए राजा बाली का नाश करते हैं, भारत की मर्यादा स्त्री जाति को अपमानित करने वाले रावण का उसी की भूमि में जाकर नाश करते हैं और अखण्ड भारत की स्थापना करते हैं। यही श्रीराम का ऐतिहासिक राष्ट्रीय व्यक्तित्व है और यही उनका उदात्त चरित्र है।

हमारा देश केवल इसलिए श्रीराम का देश नहीं है कि यह धर्मप्राण देश है और इसलिए भी नहीं है कि यहाँ की संस्कृति और संस्कार **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** पर आधारित है। बल्कि इसलिए है कि सर्वगुणसम्पन्न, परमात्मशक्ति से विभूषित श्रीराम ऊँच-नीच के भेद को मिटाते हैं, छोटे-बड़े की दीवार को तोड़ते हैं और सभी वर्गों के लोगों को जोड़कर सम्पूर्ण भारत को एकसूत्र में बांधते हैं। इस प्रकार श्रीराम का व्यक्तित्व ऐतिहासिक और राष्ट्रीय है, इसीलिए श्रीराम वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं।

श्रीराम कोई चामत्कारिक व्यक्ति नहीं हैं। वे हमेशा आदर्श और नैतिकता की भूमि पर खड़े दिखते हैं। श्रीराम कथा में यदा-कदा जो कुछ चमत्कार-सा दिखता है, जैसे- सुग्रीव के कहने पर सात ताल वृक्षों को एक बाण से काटना, समुद्र में पत्थरों से पुल बांधना, राम-रावण युद्ध में आश्चर्यजनक बाणों का प्रयोग करना। यह सब चमत्कार के समान दिखता अवश्य है लेकिन यह सब वैज्ञानिक तथ्य है।

अस्तु, सुग्रीव के कहने पर विभिन्न दिशाओं में खड़े ताल वृक्षों को एक बाण से काटना यह चमत्कार नहीं है, विज्ञान की नाभिकीय-ऊर्जा के विस्फोट से ऐसा सम्भव हुआ था। पानी पर बांध बांधने में भी आज के आर्कमीडिज का सिद्धान्त काम कर रहा था। धनुष यज्ञ के विशाल धनुष को एक हाथ से उठाकर तोड़ना भी गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त की समझ के अनुरूप था। स्पष्ट है कि श्रीराम को गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र ने विज्ञान की सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान की थी। इसीलिए भगवान् ऐसा कर सके थे। इस ग्रन्थ के माध्यम से मैंने भी प्रयास किया है कि परमात्मा राम को मानव रूप में चित्रित करूँ, ताकि साधारण लोग भी श्रीराम से मैत्री कर सकें और उनके आदर्शों का पालन कर सकें।

सम्पूर्ण श्रीराम कथा में आज के युग के लिए अनेक संदेश दिए गए हैं । आज जहाँ माता-पिता अपने ही पुत्रों द्वारा उपेक्षित जीवन जी रहे हैं, भाई-भाई थोड़े से धन के लिए एक-दूसरे के शत्रु बन गये हैं, पति-पत्नी के बीच प्रेम और करुणा का अभाव हो गया है, एक मित्र दूसरे को धोखा दे रहे हैं, जीवन में नैतिक मार्ग देने वाले गुरु अपमानित हो रहे हैं, स्वार्थ के कारण राष्ट्रहित को छोड़ा जा रहा है, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े के विभेद से समाज खण्डित होता जा रहा है, इन समस्त विभिन्नताओं में अगर एकता स्थापित करनी है और सर्वकल्याणकारी समाज की स्थापना करनी है तो श्रीराम द्वारा स्थापित मर्यादा का पालन करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है ।

विश्व में यह भारत ही ऐसा देश है जहाँ राम और भरत राज-सत्ता का फुटबॉल खेल रहे हैं । सचमुच यह भारत ही है जहाँ का महानायक राष्ट्रहित में अपना सम्पूर्ण सुख छोड़कर अपने जीवन को राष्ट्र निर्माण में समर्पित कर देता है और एक ऐसे समाज की स्थापना करता है, जहाँ के सभी लोग एक-दूसरे का आदर करते हुए समभाव से निवास करते हैं ।

श्रीराम की अनिवार्यता के लिए मेरे पास ग्रंथों के साक्ष्यों के अलावा और कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है । मैंने केवल लोकमान्यता को ही प्रमाण माना है क्योंकि लोकमान्यता से बढ़कर कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं होता । आस्था को वैज्ञानिक प्रमाण नहीं, लोकमान्यता और निष्ठा की जरूरत होती है । राम कथा आज पूरे विश्व में जनमानस का कंठस्वर है । क्योंकि यह आस्था और विश्वास पर टिकी है । मैंने राजनीतिक और भौगोलिक कारणों की चर्चा इसलिए की क्योंकि इन दृष्टियों से परखने पर भी रामकथा सफल उतरती है ।

सम्प्रति, श्रीराम की अनिवार्यता के लिए कुछ बिन्दुओं की चर्चा की जा रही है-

1. श्रीराम के अवतरण का धार्मिक कारण :

श्रीराम इस धर्मप्राण देश के परमात्मा हैं, जिनका अवतरण धर्म प्रधान समाज की स्थापना के लिए हुआ । भगवान् ने स्वयं कहा है कि जब-जब धर्म की हानि होती है और समाज में अधर्म, अनाचार बढ़ने लगता है तो, मैं अवतार लेकर अधर्म का नाश

करता हूँ और पुनः धर्म की स्थापना करता हूँ। जिस समय भगवान् श्रीराम का अवतरण हुआ उस समय पूरे देश में अनाचार बढ़ गया था। संत-महात्माओं को सताया जाता था और देवी-देवताओं, मंदिरों को नष्ट कर दिया जाता था। लंका का राजा रावण पूरे भारतवर्ष को राक्षस संस्कृति के अधीन लाना चाहता था, वैदिक संस्कृति को नष्ट कर उसकी जगह राक्षसों की संस्कृति को स्थापित करना चाहता था।

इसी कारण उसने विभिन्न स्थानों पर अपने दूतों को नियुक्त कर रखा था। ताड़का, सुबाहु, खर-दूषण लंका से आकर उत्तर भारत में रक्ष-संस्कृति का प्रचार किया करते थे। पूरा देश इन राक्षसों के अत्याचार से त्रस्त हो चुका था। सभी देवता, संत-महात्मा इन राक्षसों के अत्याचार से **"त्राहि माम्"** कर रहे थे। वैदिक-धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए देवताओं और संत-महात्माओं ने परमात्मा से प्रार्थना की। परमात्मा ने आकाशवाणी कर दी कि वे महाराज दशरथ के घर में राम रूप में अवतार लेंगे और दुष्टों का नाश करेंगे। भगवान् श्रीराम परमपिता परमेश्वर के अवतार हैं। इसलिए आज भी भक्तजन उनकी पूजा-अर्चना करते हैं और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर जीवन को धन्य बनाते हैं।

गोस्वामीजी लिखते हैं-

रामब्रह्म चिनमय अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

श्रीराम ब्रह्म हैं। इसलिए भक्तजन उनकी पूजा करते हैं और यह भी सत्य है-

दिव्य लोक से दिव्य रूप में, राम जगत में आए।
चेतन मन को करो अचेतन, तब राम समझ में आए॥

सम्प्रति, रामचरितमानस को धार्मिक ग्रंथ इसलिए भी कहा जाता है कि इस महाकाव्य में धर्म की स्थापना करके श्रीराम ने पूरे देश में रामराज्य की स्थापना की। देश में रामराज्य तभी आ सकता है, जब देश की राजनीति पर धर्म का नियंत्रण हो। धर्म का तो अर्थ ही होता है, नैतिक नियमों का पालन। जब तक देश में राजनीति पर धर्मनीति का नियंत्रण रहता है, तब तक देश की जनता रामराज्य का अनुभव करती है और ज्योंही देश की राजनीति धर्म से विमुख हो जाती है तो, देश में अनाचार और अत्याचार बढ़ जाता

है। इसलिए हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म की आवश्यकता होती है । धर्म का अर्थ है- कर्तव्य । भूल से धर्म शब्द को रूढ़ बनाकर पूजा-पाठ तक सीमित कर दिया गया है। धर्म पूजा-पाठ नहीं है, नैतिक विचारों को धारण करना ही धर्म है ।

आज का परिवेश धर्म विरूद्ध होता जा रहा है । नैतिक नियमों का अभाव होता जा रहा है और इस अभाव के कारण समाज में आज अधिकाधिक विध्वंसक प्रवृत्ति बढ़ रही है। सदाचार कम हो रहा है और व्यभिचार बढ़ रहा है, जिस कारण समाज के सभी वर्गों के लोग दुःखी हो रहे हैं ।

इस दुःख का एक ही कारण है कि लोगों ने धर्म-मार्ग छोड़ दिया है । जिस समाज में धर्म, नैतिकता और मर्यादा का लोप हो जाय, वह समाज अथवा घर असभ्य आचरण का डेरा बन जाता है। जिस परिवार में धार्मिक वातावरण रहता है, वहाँ शान्ति, सुख और प्रेम रहता है और लोगों के बीच प्रेम तथा नैतिक सम्बन्ध रहता है । लोग एक-दूसरे का आदर करते हैं ।

इसके विपरीत जिस परिवार में धर्म-विरूद्ध आचरण होने लगता है, वहाँ अशान्ति और कलह का जन्म हो जाता है । इसीलिए मैं उसी धर्म पर आधारित नैतिकतापूर्ण कर्म को धर्म मानता हूँ । गोस्वामीजी ने लिखा है-

मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानेहु निसिचर सम प्रानी ॥

भगवान् श्रीराम इन्हीं मान्यताओं को स्थापित करने के लिए अवतरित हुए । रामचरितमानस का यही धार्मिक औचित्य है । परमात्मा का तात्पर्य भी यही होता है कि जो संसार में धर्म और नैतिकता को स्थापित कर सके । जब-जब धर्म की हानि होने लगती है तब-तब धर्म की रक्षा के लिए परमात्मा को किसी न किसी रूप में अवतरित होकर उसे बचाना पड़ता है-

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

यहाँ धर्म की हानि का अर्थ है- अनैतिक प्रवृत्ति का बढ़ना और मर्यादा विरूद्ध आचरण होना । श्रीराम ऐसे समय में अवतरित हुए जब समाज में राक्षसी प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी । दशरथ और महारानी कौशल्या तो श्रीराम के अवतरण के कारण मात्र बने । लेकिन श्रीराम को उतारने का प्रयास तो मनु-शतरूपा, कश्यप-अदिति से प्रारम्भ होकर दशरथ-कौशल्या तक आया ।

श्रीराम के अवतरण के और भी कई प्रामाणिक कारण बताए गये हैं । श्रीलक्ष्मीनारायण के द्वारपाल जय-विजय को सप्तऋषियों ने शाप दिया था । उसकी मुक्ति के लिए परमात्मा को अवतरित होना पड़ा था । दूसरे रूप में नारद मोह के समय भगवान् को जो शाप मिला था वह भी एक कारण है । तीसरा, प्रतापभानु और अरिमर्दन को शाप से मुक्ति दिलाना भी एक कारण है । चौथा-रावण के अत्याचार से वैदिक धर्म की रक्षा और रावण को मुक्ति दिलाना भी एक कारण है, क्योंकि रावण स्वयं कहता है-

सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ बैरू हठि करिऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥

रावण को पता था कि उसका आचरण आसुरी प्रवृत्ति के कारण परमात्मा के अनुकूल नहीं है । उसका खान-पान तामसी था । मांसाहार करने वाले और तामसी आहार लेने वाले का विचार सात्त्विक नहीं हो सकता । इसलिए उसने निर्णय किया कि वैर करके ही परमात्मा के हाथों मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ।

रावण एक महापराक्रमी विद्वान पंडित था । वह जानता था कि परमात्मा की शरणागति के सिवाय अन्यत्र मोक्ष नहीं मिल सकता । लेकिन उसकी प्रवृत्ति हिंसक थी, इसलिए वह परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकता था । इसी कारण उसने परमात्मा से वैर किया । सीता-हरण के पश्चात् उसने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिससे मर्यादा की हानि हो । आज भी लोग मानते हैं कि रावण एक विद्वान पंडित था । भगवान् शिव का अनन्य भक्त था । स्पष्ट है कि राम के अवतरण के लिए रावण भी एक कारण था ।

दरअसल, भगवान् का अर्थ ही होता है- जो सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, आयु, यश और मर्यादा से पूरित हो । भग+वान्, मतलब जो इन छह गुणों से भरे हुए हों, वही

भगवान् हैं । श्रीराम को इन्हीं गुणों को प्रतिपादित करने के लिए अवतरित होना पड़ा, ताकि समाज में अच्छे लोगों की रक्षा हो और बुरे लोगों का नाश हो । श्रीराम ने जंगल में रहने वाले ऋषि-मुनियों की रक्षा की और उन तमाम लोगों का नाश किया, जो समाज के शत्रु थे । वैसे तो श्रीराम के अवतरण के अनेक कारण हैं । लेकिन धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे बड़ा कारण यह है कि भक्तों की रक्षा और मार्ग दर्शन के लिए समय-समय पर परमात्मा को पृथ्वी पर उतरना पड़ता है । इस संसार में पुण्यात्मा रहते हैं तो पापी भी रहते हैं । जब पापियों की संख्या बढ़ जाती है तो उन पापियों का नाश करने के लिए परमात्मा को शरीर धारण करना पड़ता है । ताकि वे धर्मात्मा की रक्षा कर सकें और पापियों का नाश कर सकें। सतयुग के बाद त्रेता युग में धीरे-धीरे समाज में अनाचार और अत्याचार बढ़ने लगा । पृथ्वी का संतुलन बिगड़ने लगा तभी श्रीराम को अवतरित होना पड़ा ।

ध्यातव्य है कि जब समाज में अनाचार बढ़ने लगा तो भगवान् शंकर को अनुभव हुआ कि अब संसार का संतुलन बिगड़ जायेगा । तभी उन्होंने निर्णय किया कि परमात्मा को अवतार लेना चाहिए । ऐसा विचार कर उन्होंने राम के व्यक्तित्व की कल्पना की-

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाषा ॥

सबसे पहले भगवान् शंकर ने अपने मन में श्रीराम कथा की योजना बनाई। इसीलिए रामचरितमानस को **"मानस"** कहा जाता है । जब भगवान् शंकर को इस कथा का बोध हो गया तो उन्होंने ऋषियों से सम्पर्क किया-

संभु गये कुम्भज रिषि पाहीं ।

भगवान् शिव कुम्भज ऋषि के पास गये और वहीं पूरी योजना बनाई गई । उसके बाद सभी देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना पर द्रवित होकर भगवान् प्रसन्न हुए और आकाशवाणी हुई-

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥

भगवान् ने स्वयं कहा कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्म रूप में नहीं, उनका अंश लेकर अवतार लूंगा। दरअसल श्रीराम पूर्ण ब्रह्म नहीं हैं, अवतार हैं । अवतार का अर्थ है जो ऊपर से अवतरित हो । कई लोग कहते हैं कि श्रीराम बारह कलाओं के साथ अवतरित हुए थे ।

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

इसी श्रीराम को प्राप्त करने के लिए भक्त जन्म-जन्मांतर तक प्रयास करता है । जीव का धर्म है कि वह अपनी साधना से परमात्मा को प्राप्त कर लें । जीव और ब्रह्म में यही अंतर है कि जीव माया के अधीन रहता है और ब्रह्म माया को अपने अधीन में रखता है । इसीलिए उन्हें मायापति कहा जाता है । उसी ब्रह्मरूप राम की कथा आज लोक प्रचलित है ।

सबसे पहले इस श्रीराम कथा को भगवान् शंकर ने माता पार्वती से कही । दूसरी बार काकभुशुंडि ने गरुड़जी से कही। तीसरी बार याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज से कही और चौथी बार महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास एवं अन्य संतों ने भक्तों को कही एवं उसी रामकथा का आज भक्त लोग गान करते हैं । भगवान् शिव कहते हैं कि राम की कथा को कहा नही जा सकता है, यह तो अनुभव किया जा सकता है-

हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥

भगवान् शिव माता पार्वती को और आगे कहते हैं-

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥

भगवान् शिव भी राम कथा को कहने में असमर्थ हैं । इसलिए कहते हैं-

मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ।

जिस राम की कथा को शिव और पार्वती सादर कहते और सुनते हैं, निश्चय ही वह कथा परम हितकारी है । इसीलिए गोस्वामीजी कहते हैं कि रामकथा को जितनी बार कही जाए उससे तृप्ति नहीं होती-

राम कथा जे सुनत अघाहि । रस विशेष जाना तिन नाहिं ॥

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥

जिसने रामकथा नहीं सुनी उसके कान सांप के बिल के समान है । मनुष्य जिस परमात्मा को पाना चाहता है, वही परमात्मा आज राम रूप में हमारे सामने खड़े हैं । कहते हैं कि जीव अगर परमात्मा को पाना चाहता है अथवा दुनिया का सुख-सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता है, संसार के संकटों से मुक्ति पाना चाहता है तो उसे उसी राम को पाना पड़ेगा, क्योंकि-

जौ इच्छा धरिहें मन माहीं । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥
हिम ते अनल प्रकट बरू होई । बिमुख राम सुख पावे न कोई ॥

बारि मथे घृत होत बरू । सिकता ते बरू तेल ॥
बिनु हरि भजन न भव तरहिं । यह सिद्धांत अपेल ॥

मनुष्य अगर जीवन में सुख पाना चाहता है, मोक्ष पाना चाहता है, इस संसार के भव-बंधन से मुक्त होना चाहता है तो उसे श्रीराम की शरणागति में जाना ही पड़ेगा ।

राम कथा को जो लोग गाते हैं, सुनते हैं और कथा का आयोजन करते हैं, उनको समान फल मिलता है । कहते हैं-

मनोवांछित फल नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गाबा ।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहिं । ते गोपद इव जलनिधि तरहिं ॥

इन बातों से लगता है कि हमारे जीवन का एक ही उद्देश्य है कि परमात्मा को प्राप्त कर लें, क्योंकि संसार का धन कभी किसी को सुख नहीं दे सकता । धन तो परिवार को तोड़ता है, कलह बढ़ाता है । धन के कारण ही शत्रुता बढ़ती है और शत्रुता के कारण अशांति बढ़ती है । आज उसी अशान्ति के कारण सभी लोग दुःखी हैं । परिवार टूट रहा है, भाई-भाई के बीच प्रेम नष्ट हो रहा है । प्रत्येक व्यक्ति अकेला होता जा रहा है ।

इसका एक ही कारण है कि हमारे घरों से राम चला गया है और रावण प्रवेश कर गया है । रामकथा हमें यही बताती है कि अगर जीवन में सुख चाहते हो तो दूसरों को प्यार करो, हमेशा परमात्मा रूपी सत्य को अपने जीवन में धारण करो । जो भी करो, यही

समझो कि तुम परमात्मा का काम कर रहे हो । जो लोग हमेशा परमात्मा का चिन्तन करते हैं, संसार का कोई भी काम करते हैं उसमें सफलता मिलती है, उसके जीवन में कभी कोई दु:ख और संकट नहीं आता है । कहते हैं कि संसार में कोई दु:ख या संकट ऐसा नहीं है जो परमात्मा से भी बड़ा हो । परमात्मा को भजने वाला प्रत्येक संकट पर विजय प्राप्त कर लेता है । संकट उसी को घेरता है जो अभिमानी हो और परमात्मा को नहीं मानता हो । परमात्मा को मानने वाला कभी दु:खी नहीं होता । क्योंकि जो हो रहा है, सब परमात्मा कर रहा है । मनुष्य तो केवल करने वाला है, कराने वाला तो कोई और है । कहा भी गया है –

सब करते हो कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है ।

सब करने वाला तो परमात्मा है, क्योंकि यह दुनिया उसकी है, तुम्हारा शरीर भी उसका है । इसलिए जो भी करते हो, वह सब उसकी प्रेरणा से हो रहा है । तुम परमात्मा का भजन करते हो तो वह तुम्हें अच्छे काम करने की प्रेरणा देता है । परमात्मा को नहीं मानते हो, उसकी पूजा–वन्दना नहीं करते हो और अभिमानी हो तो परमात्मा की कृपा तुम पर नहीं हो सकती–

काहु न कोउँ सुख दुख कर ताता । निज कृत करम भोग सब त्राता ॥

इसलिए भक्त हमेशा परमात्मा को सामने रखकर ही कर्म करता है–

कर ते करम करहुं विधि नाना । मन राखौं जहं कृपानिधाना ॥

जिस दिन तुम्हारे मन में ऐसा भाव आ जायेगा, उस दिन श्रीराम का आशीर्वाद तुम्हारे जीवन में उतर जायेगा । महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है–

यश्च रामं न पश्यति यं च रामो न पश्यति ।
निन्दित: स: वसति लोके स्वात्मतापेन विगर्हित: ॥

अर्थ है– जो व्यक्ति राम को नहीं भजता है और राम का आशीर्वाद जिस व्यक्ति को नहीं मिलता है, उसकी आत्मा भी उसको धिक्कारती है और वह जीवन भर अपने ही द्वारा निर्मित दु:खों से दु:खी रहता है । इसलिए अपना कल्याण चाहते हो, तो राम को भजो । यह भी सत्य है कि

जो जग सिरजा उसका है जग, मत गा अपना गीत ।
नदी, नाल, झरना, उपवन में, किसने भरा संगीत ॥

स्पष्ट है, यह सारा संसार प्रभु का है । तुम्हारा देह भी प्रभु का है, तुम्हारे शरीर में जो प्राण है वह भी प्रभु का है, फिर तुम्हारा क्या? रावण से यही भूल हुई कि उसने मान लिया था कि सब कुछ मेरा है, सोने की लंका मेरी है, मैं सबसे बड़ा हूँ । भगवान् किसी का अभिमान सह नहीं सकते । ऐसा नहीं है कि भगवान् किसी का नुकसान करना चाहते हैं, परमात्मा का मानना है कि तुम इस संसार में मेरे प्रतिनिधि हो, तुम यहाँ मालिक बनने की कोशिश मत करो । जिस प्रकार कोई अधिकारी किसी ऑफिस में काम करने जाए, अगर वह वहाँ मालिक बनने का प्रयास करने लगे तो, जिसने उसे वहाँ भेजा है, वह तुरंत उसे नौकरी से हटा देता है । ठीक उसी प्रकार भगवान् ने हमें मैनेजर बनाकर यहाँ भेजा है, जिस दिन हम मालिक बनने की कोशिश करने लगते हैं तो भगवान् हमसे सारा पावर छीन लेता है और हमें भिखारी स्वरूप भटकने के लिए छोड़ देता है ।

रामायण का आध्यात्मिक पक्ष यह भी है कि तुम संसार के धन का उपयोग करो, उपभोग नहीं । क्योंकि यह धन तुम्हारा नहीं है । मैनें तुम्हें रखने के लिए दिया है । अगर तुम्हें धन मिलता है, तो वह भगवान् का धरोहर है । उस धन से अच्छे काम करो, लोगों की भलाई करो, लेकिन ध्यान रखना, इस भलाई से तुम्हारे मन में अभिमान न पैदा हो जाए क्योंकि भगवान् चाहते हैं कि तुम सभी धन सम्पत्ति का उपयोग करते हुए बिना अभिमान के सुख से रहो । घमण्ड करोगे, दूसरों को सताओगे तो मैं तुम्हारा नाश कर दूंगा । क्योंकि तुम उसके योग्य नहीं हो । मैंने तुम्हें पुत्र, पत्नी, धन, नाम, यश सब दिया है । यह सब मेरा दिया हुआ है । यह तुम्हारा कतई नहीं है । अगर इसके कारण तुम घमण्ड करते हो तो मैं तुम्हारा यह सब कुछ नाश कर दूंगा । रावण को यही घमण्ड था कि सब कुछ मेरा है । इसी घमण्ड के कारण पूरी लंका को हनुमान्जी ने भस्म कर दिया। वर्णित है-

चार ईंट की महल अटारी, उस पर तेरा नाम ।
जिसने किया जगत का सृजन, फिर भी रहा गुमनाम ॥

मतलब तुमने चार ईंट का मकान बना लिया, उसपर अपना नाम खुदवा लिया, लेकिन जिस परमात्मा ने इतना बड़ा संसार बनाया, उसने अपना नाम कहीं नहीं खुदवाया। परमात्मा ने तुमसे मकान बनवा लिया है क्योंकि तुम मैनेजर हो, मैनेजर अपना नाम मकान पर नहीं खुदवाता, यही तुम्हारी सोच होनी चाहिए। तुम्हें तो यह मानना चाहिए कि यह मकान परमात्मा ने हमें आशीर्वाद स्वरूप दिया है। जो व्यक्ति ऐसा मानता है, उसे कभी दुःख नहीं होता। रावण ने घमण्ड किया तो वह मारा गया। विभीषण ने राम को परमात्मा मानकर उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया तो उसे लंका का राज्य मिला। सुग्रीव ने राम का आशीर्वाद लिया तो वह राजा बन गया।

अगर हम भी राम का आशीर्वाद प्राप्त कर लें, तो दुनिया के सारे सुख हमें मिल सकते हैं। जिस मकान पर तुमने अपना नाम खुदवाया है, थोड़ा विचार करो, तुमसे पहले उस जमीन या मकान पर किसी और का नेमप्लेट था और आगे भी किसी दूसरे का नेमप्लेट लग सकता है। कहा गया है–

जिस खूंटे पर नाम खुदाया, बदले खूंटा अनेक।
क्षण की तृप्ति कब सुख देगी, सुख देगा बस एक॥
अण्डज, पिण्डज, जलज–चराचर, सबका मालिक एक।
नेमप्लेट अपना मत गाड़ो, तेरे जैसा अनेक॥

इसलिए मैं मानता हूँ कि रामचरितमानस केवल दशरथपुत्र राम की कहानी नहीं है, यह जीवन की कहानी है। हमारे जीवन में जो कुछ हो रहा है, वही यहाँ लिखा है। रामायण की घटना तो कब की घट चुकी है, लेकिन हमारे मन में आज भी रामायण घट रहा है। लंका के रावण का तो नाश हो गया, लेकिन हमारे मन में जो रावण है, उसका नाश अभी नहीं हुआ। मन के उसी रावण को नाश करने के लिए आज फिर राम की आवश्यकता है, जो हमारे मन के विकार रूपी रावण का नाश कर सके। क्योंकि जो कुछ बाहर घटता है, वही भीतर घटता है। बाहर हम जो अच्छी–बुरी चीज देखते हैं, वही भीतर घटने लगता है।

श्रीराम कहते हैं कि तुम्हारा मन विकारों से भरा हुआ है । जब तक उन विकारों को तुम नष्ट नहीं करोगे, तब तक मुझे नहीं पाओगे । भगवान राम विभीषण से कहते हैं-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

मुझे निश्छल व्यक्ति चाहिए । जो बुराई से भरा हो, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता ।

रामचरितमानस में कोई सामंती पात्र नहीं है । केवल अयोध्या में कुछ लोग हैं, उस अयोध्या को भी श्रीराम छोड़कर वन में जाते हैं और वहाँ केवट, ऋषि-मुनि, सुग्रीव, वानर, भालू आदि की बिखरी हुई शक्तियों को इकट्ठा करते हैं और फिर रावण जैसे अत्याचारी का नाश करते हैं । शबरी की कुटिया में जाकर राम यह बताना चाहते हैं कि भगवान् भक्तों के पास स्वयं जाते हैं, ऐसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता है । अपने कार्यों से उन्होंने यह साबित कर दिया कि भगवान् केवल मंदिरों में नहीं बैठते, भक्तों की कुटिया में भी जाते हैं । भगवान् कहते हैं-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये च न ।
मम भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र वसामि संजय ॥

भगवान् वही है, जो कुटिया में बैठकर भजन करने वाले भक्तों के घर जाकर उसकी सुधि ले । इसीलिए श्रीराम अयोध्या छोड़कर, जहाँ-जहाँ उनके भक्त उन्हें पुकार रहे थे, उनके पास दौड़े चले गये ।

भगवान् का तो अर्थ ही है- अपने भक्तों को संकटों से बचाना । आज हम दुःखी इसलिए हैं, संकटों से इसलिए घिरे हुए हैं कि हमने भगवान का आश्रय छोड़ दिया है । आज किसी को पद का घमण्ड है, तो किसी को धन का, ताकत का, किसी को रूप का । इसीलिए आज सभी लोग दुःखी है । जिस दिन हम अपना सब कुछ भगवान् को समर्पित कर देंगे, उस दिन कहीं कोई दुःख नहीं रहेगा । जब तक मैं-मैं कहते रहोगे, तब तक दुःख के जाल में फंसते रहोगे । जिस दिन तू-तू अर्थात् सब कुछ तेरा है कहना शुरू करोगे, उस दिन तुम सुखी बन जाओगे । कहते हैं-

मैं मैं बकरी करत है, अपना गला कटाय ।

मैं ना, मैं ना, मैना बोले, सबका मन हरषाय ॥

दरअसल तुम्हारे सारे दुःख का कारण केवल तुम्हारा घमण्ड है जो तुम्हें झुकने नहीं देता । आजकल तो मंदिरों में लोग दर्शन करने जाते हैं, वहाँ भी सिर नहीं झुकाते, तनकर खड़े रहते हैं । सिर झुकाने का अर्थ है- प्रभु के सामने आत्मसमर्पण कर देना । भक्ति में तर्क नहीं होता, केवल समर्पण होता है ।

मैं तुम्हें चार शब्दों का अर्थ बताता हूँ- आस्था, विश्वास, समर्पण और विसर्जन । परमात्मा अथवा गुरु के प्रति पहले आस्था होती है, फिर विश्वास जमता है , विश्वास हो जाने पर ही भक्त परमात्मा के सामने अपना समर्पण करता है । विश्वास डोल भी सकता है, आस्था टूट भी सकती है, लेकिन समर्पण नहीं टूटता । समर्पण में प्रश्न नहीं पूछा जाता। फिर भी, भक्त और भगवान् के बीच दूरी बनी रहती है । समर्पण में भक्त और भगवान् का मिलन होता है, लेकिन दो का भाव बना रहता है । इसीलिए विसर्जन की आवश्यकता होती है । विसर्जन में कुछ नहीं बचता । न भक्त बचता है और न उसका अहंकार । सब कुछ लय हो जाता है -

जेहिं जानत तेहिं देत जनाई । जानत तिन्हहिं तिन्हहिं होई जाई ॥

सत्य है भक्त जब भगवान् में लय हो जाता है तो कुछ नहीं बचता । भगवान् को जानकर भगवान् के बारे में कोई किसी को क्या बता सकता है । इसलिए भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के बाद मौन हो गये । मधुमक्खी मधु पर बैठती है, तो उसी में लय हो जाती है, वहाँ से उड़ नहीं पाती है । वह कुछ बोल नहीं पाती कि मधु का स्वाद कैसा है । लेकिन भंवरा फूल को चुसकर उड़ जाता है और वह भटकता रहता है । जो बोलता है, वह परमात्मा को नहीं जानता । क्योंकि परमात्मा को जानने वाला बोल कैसे सकता है?

कबीरदास कहते हैं -

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।

जिस प्रकार पानी की बूंद नदी को देखने जाती है और वह भी नदी में मिल जाती है । उसी प्रकार जीव जब परमात्मा को देखने जाता है तो वह भी परमात्मा बन जाता है । भक्त का समर्पण द्वैत है । वहाँ दो है- भक्त और भगवान् । लेकिन जब उसका परमात्मा में विसर्जन होता है, तो वह स्वयं परमात्म स्वरूप हो जाता है । क्योंकि वहाँ संसार नहीं बचता । वैज्ञानिक आईन्सटीन कहते हैं कि जो तुम पदार्थ देख रहे हो, वह पदार्थ नहीं है, वह तो ऊर्जा है । उसी प्रकार हमें दिखने वाला यह संसार भी माया मात्र के कारण ही दिख रहा है । हमारी आंखों में विकार है । दरअसल सब तो परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। परमात्मा का अर्थ है-शून्य । गोस्वामीजी कहते हैं:-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥

परमात्मा तो अरूप है, परमात्मा सर्वव्यापी है, वह प्राण स्वरूप है, दिव्य शक्ति है। जब कभी परमात्मा को स्वरूप ग्रहण करना पड़ता है तो वह प्रकृति से पंचतत्त्व को, इकट्ठा कर स्वयं शरीर धारण कर लेता है । क्योंकि इन तत्वों में भी उसी का अंश है । राम का जन्म, सीता का जन्म, भगवती दुर्गा का अवतरण इसी तरह हुआ है । इनके लिए माता-पिता का होना अनिवार्य नहीं है । ये तो अकारण ही प्रकट हो जाते हैं । भगवान् नरसिंह, कच्छप, वाराह के कोई माता-पिता नहीं थे । ये तो प्राण स्वरूप पूरे जगत् में व्याप्त हैं । जब इच्छा होती है, रूप धारण कर प्रकट हो जाते हैं । इन पर कोई बन्धन नहीं है, ये स्वयं कालातीत हैं । इसलिए भक्त हमेशा राम को पूजते हैं कि वे हमारी सर्वत्र रक्षा करते रहें । इसी कारण आज राम और उनका मानस जन-जन के हृदय में बसा हुआ है । उसी राम की कथा मैं अपनी मति के अनुसार गाने और कहने का प्रयास करता कर रहा हूँ । मैं जानता हूँ कि राम को मैं कह नहीं पाऊँगा । क्योंकि कोई चींटी समुद्र की परिभाषा कैसे कर सकती है? कोई चिड़िया आकाश की माप कैसे बता सकती है? उसी प्रकार कोई भक्त उस विराट ब्रह्म को कैसे बता सकता है? जितनी समझ है उसी के अनुरूप राम कथा लिखने का मेरा प्रयास भर है ।

मैं जानता हूँ कि इस विराट ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। हम तो एक सूर्यमण्डल के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं जानते । विज्ञान कहता है कि हमारा जो सूर्य सामने खड़ा है । वैसा सूर्य और उसका मण्डल हजारों की संख्या में और भी हैं ।

इस ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्य और उनके मण्डल हैं । हमारे इस एक सूर्य को अनादि काल से कौन शक्ति दे रहा है ।

विज्ञान कहता है कि हिलीयम गैस के कारण सूर्य में विस्फोट हो रहा है । लेकिन यह हिलीयम गैस आता कहाँ से है? दरअसल इस ब्रह्माण्ड में हाइड्रोजन पूरा का पूरा भरा हुआ है, इसी का रूपान्तरण हो जाता है जो हिलियम बनकर सूर्य को विस्फोट करने की शक्ति देता है। सूर्य से जो ऊर्जा बनती है, वह ताप, विद्युत् और प्रकाश का योग है । सूर्य का 220 करोड़वां अंश ताप पृथ्वी को मिलता है । यह तो एक सूर्य की कहानी है । सूर्य की परिक्रमा करने वाले और नौ ग्रहों की बात कही जाती है । इस एक सूर्य का व्यास आठ लाख 86 हजार मील माना जाता है । हमारी पृथ्वी एक वर्ष में 58 करोड़ 46 लाख किलोमीटर दूरी तय करके सूर्य की परिक्रमा करती है ।

इधर विज्ञान ने कहा है कि पृथ्वी से मंगल की दूरी 06 करोड़ किलोमीटर है और शनिश्चर की 100 करोड़ किलोमीटर है । इतना बड़ा सूर्यमण्डल का क्षेत्र हमारे एक सूर्यमण्डल का है, जबकि ऐसे सैकड़ों सूर्यमण्डल है । ये सभी सूर्यमण्डल एक निहारिका के सदस्य हैं । विज्ञान के आंकड़ों के अनुसार लगभग 20 हजार निहारिका मानी गयी हैं और ये सभी निहारिकायें आकाशगंगा के सदस्य हैं ।

ऐसा भी माना जाता है कि आकाशगंगा भी अनेक हैं । इन आकाशगंगाओं को जहाँ से शक्ति प्राप्त होती है उसी को दिव्यलोक, परमशक्ति, ब्रह्मलोक अथवा परमात्मा का क्षेत्र माना जाता है । उसी दिव्यलोक से परमात्मा का अवतरण पृथ्वी पर होता है । अब तो विज्ञान भी मानने लगा है कि ब्रह्माण्ड में कोई सुपर पावर है, जो पूरे ब्रह्माण्ड का नियंत्रण कर रहा है । विज्ञान इस बात को आज मान रहा है लेकिन हमारे ऋषियों ने अनादिकाल में ही इस रहस्य को जान लिया था, तभी वे कहते हैं कि पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही तत्त्व है, वह है ब्रह्मतत्त्व । इसी के आधार पर कहा गया है–

"ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या" ।

श्रीराम का अवतरण उसी ब्रह्म तत्त्व से हुआ है । इसलिए राम स्वयं ब्रह्म होने की बात नहीं करते । वे अंश रूप में ब्रह्म हैं । भक्तों की पहुंच उस अनन्त निर्गुण ब्रह्म तक

सामान्यतः नहीं होती, क्योंकि जीव की शक्ति सीमित है, इसलिए अवतारों के माध्यम से ब्रह्म तक पहुंचने का प्रयास किया जाता है। गुरु की पूजा इसलिए की जाती है कि गुरु भक्त की अंगुली पकड़कर परमात्मा तक ले जाता है। क्योंकि भक्त की शक्ति सीमित है, वह सीधे परमात्मा से शक्ति ग्रहण नहीं कर सकता।

जिस प्रकार हम अपने घरों में जो बल्ब जलाते हैं उसे सीधे ग्रीड-विद्युत् उत्पादन केन्द्र से लाईन नहीं जोड़ सकते, बल्ब फ्यूज हो जाएगा। इसके लिए हम छोटे ट्रांसफर्मर से कनेक्शन लेते हैं।

उसी प्रकार भगवान् से शक्ति लेने में गुरुरूपी ट्रांसफर्मर का होना अनिवार्य है। हमारे देश में जितने भी अवतार हुए, वे भिन्न-भिन्न काल में हुए, इन सबों ने अपने भक्तों का संकट दूर किया है। आज हम राम-कथा का गान इसलिए करते हैं कि श्रीराम हमारे जीवन के संकट का नाश करें और हमें आशीर्वाद दें –

उसी राम का गीत, सब भक्तों को आज सुनाऊँगा।
आशीष मुझे दो राम, तेरी बात तुझे ही सुनाऊँगा ॥

2. श्रीराम के अवतरण की राजनीतिक अनिवार्यता:

परमात्मा का अवतरण किसी विशेष परिस्थिति में होता है, ऐसा माना गया है। यों तो सामान्य रूप से कोई भी महापुरुष जब खड़ा होता है तो उसके पीछे कोई न कोई परिस्थिति होती है। जिस कारण उसे खड़ा होने का मौका मिलता है। आज के परिवेश में भी जब कभी देश में कोई परिस्थिति बनती है तो, उसके सुधार अथवा समर्थन के लिए कोई खड़ा होता है, जो उस परिस्थिति विशेष का सामना करता है। क्योंकि किसी न किसी को तो समर्थन या विरोध करना ही पड़ता है। श्रीराम के अवतरण के समय में भी कुछ ऐसी ही राजनीतिक परिस्थितियां बन गई थी, जिनको सुव्यवस्थित करने के लिए और सम्पूर्ण आर्यावर्त को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्हें आना पड़ा।

श्रीराम के अवतरण के समय का भारत विभिन्न खेमों में बंटा हुआ था। अयोध्या को छोड़कर कहीं भी स्थिरता नहीं थी। अयोध्या में महाराज दशरथ बड़े ही शक्तिशाली राजा थे, इसलिए उनके राज्य में कहीं कोई अशान्ति नहीं थी। लेकिन शेष भारत में

अनेक राजा-महाराजा अलग-अलग खंडों पर अपना राज्य चला रहे थे, जंगलों में रहने वाले लाखों वनवासी असंगठित और असुरक्षित रूप में थे और गंगा के किनारे केवट जैसे अनेक राजा राज्य कर रहे थे । पूरे देश में बिखंडन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी । किष्किन्धा में बाली का राज्य था, जो अपने स्वभाव के कारण विलासी बन गया था । दक्षिण भारत की ओर से भारत पर लंका के राजा रावण का दबदबा बढ़ रहा था ।

रावण वैदिक संस्कृति का विरोध करता था, वह पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन इन सबों का प्रबल विरोधी था । वह इसके लिए विभिन्न प्रकार से अत्याचार करता था, विरोध करने वालों को मार देता था । जहाँ कहीं भी यज्ञ-हवन हो, उसे नष्ट कर ऋषियों की हत्या कर देता था, मठ-मंदिरों को उजाड़ देता था, इस तरह उसका एक ही उद्देश्य था कि भारत की जो मौलिक संस्कृति और वैदिक धर्म है, उसका नाश कर रक्ष-संस्कृति को चलाया जाए । रक्ष-संस्कृति हमारी वैदिक संस्कृति से मेल नहीं खाती थी ।

इस कारण उत्तर भारत के लोग रक्ष-संस्कृति का विरोध करते थे । रावण ने अपने विरोधियों को समूल नष्ट करने के लिए पूरे देश में अपनी सैनिक छावनी बना रखी थी । रावण इतना महत्त्वाकांक्षी था कि उसे जब पता चला कि हिमालय पर भगवान् भोलेनाथ रहते हैं, जो वैदिक संस्कृति के रक्षक हैं, तो उनसे लड़ने हिमालय पर चला गया । भगवान् शिव ने रावण को परास्त किया, परास्त होने के पश्चात् रावण उनकी शरण में गिर गया । वह बड़ा चालाक राजा था । वह जानता था कि कब कैसा काम करना चाहिए। भगवान् शिव से लड़कर जब वह हार गया तो शिव से आशीर्वाद मांगने लगा । भगवान् शिव ने उसे अभयदान दिया । अब वह हिमालय के क्षेत्र से निश्चिन्त हो गया, उसके बाद किष्किन्धा के राजा बाली पर उसने आक्रमण किया । बाली से भी वह हार गया । उसने बड़ी चालाकी की, बाली से उसने एक-दूसरे पर आक्रमण न करने और समय पड़ने पर सहायता करने की संधि कर ली। बाली भी चाहता था कि संधि करके आराम से बैठने में ही भलाई है ।

रावण ने एक और चालाकी यह की कि उसने पर्वतराज मंदराचल को पहले दोस्त बनाया, फिर उसे मध्य भारत में बहुत ऊंचा उठकर खड़ा होने का आदेश दिया । ऊँचा होने के कारण कोई भी उत्तर भारत का व्यक्ति मंदराचल पार करके दक्षिण भारत नहीं जा

सकता था । यह सब रावण की कूटनीति थी । छोटे-छोटे राजा, जो वैदिक धर्म मानने वाले थे, उसे वह मार देता था । इस तरह पूरे आर्यावर्त में रावण सैनिक शिविर बनाकर धीरे-धीरे यहाँ रक्ष-संस्कृति का प्रचार करना चाहता था । जो ऋषि-मुनि थोड़ा भी विरोध करते, उनकी हत्या कर दी जाती थी । उत्तर भारत के सभी क्षेत्रों में रावण के भाई-बन्धु, ताड़का, सुबाहु, खर-दूषण, सूर्पणखा, मारीच आदि फैले हुए थे, जो रावण का प्रचार करते थे ।

रावण एक महत्त्वाकांक्षी राजा था, वह लंका से लेकर हिमालय तक के क्षेत्रों तक अपना राज्य फैलाना चाहता था । लेकिन सबसे बड़ी बात थी कि वैदिक धर्म को नाश कर रक्ष-संस्कृति को फैलाने का संकल्प बड़ा घातक था ।

इसी कारण वैदिक धर्म मानने वाले लोग रावण का विरोध करते थे । रावण को कोई भी विरोध सहन नहीं होता था । आर्यावर्त को वह पूरी तरह घेर चुका था, लेकिन अयोध्या के निकट जाने में वह डरता था, क्योंकि दशरथ महापराक्रमी सम्राट् थे । दशरथ पर आक्रमण करना रावण के वश की बात नहीं थी । इसलिए पहले वह अयोध्या को चारों ओर से घेर लेना चाहता था ।

रावण को पता था कि दशरथ और कौशल्या से जो पुत्र पैदा होगा, वही उसके मौत का कारण बनेगा । इसलिए रावण दशरथ से प्रत्यक्ष रूप से न लड़कर छल से आक्रमण करना चाहता था । इसके लिए उसने अनेक योजना बनाई । कई जगह यह भी चर्चा है कि रावण को जब पता चला कि दशरथ और कौशल्या से जो पुत्र पैदा होगा, वह उसकी मौत का कारण बनेगा, तो रावण ने एक दिन कौशल्या का ही अपहरण कर लिया। रावण यह चाहता था कि दशरथ और कौशल्या मारे जाएं तो उनसे कोई संतान पैदा नहीं होगी और वह अपनी मृत्यु से बच जाएगा । लेकिन उसकी यह योजना सफल नहीं हो सकी । कौशल्या अयोध्या लौट आई ।

कहीं-कहीं यह भी दन्तकथा प्रचलित है कि रावण ने लंका की सुबक्षा नाम की एक राक्षसी को फुसलाया और कहा कि तुम एक रूपवती महिला बनकर दशरथ के पास जाओ और अपनी सुंदरता के जाल में उन्हें फंसाओ । सुबक्षा वहाँ गई, राजा दशरथ शिकार खेलने जंगल में आए थे, दोनों की वहीं भेंट हो गई । सुबक्षा तो रूप

बदलने में माहिर थी, उसने दशरथ को फंसा लिया । सुबक्षा को रावण ने आदेश दिया था कि संभोग के समय दशरथ की पूरी ऊर्जा शक्ति का शोषण कर लो । संभोग के पश्चात् सुबक्षा गर्भवती हो गई और दशरथ नपुंसक हो गये । उसी गर्भ से विभीषण और त्रिजटा का जन्म हुआ । मैंने इस कथा को अनेक संतों के मुंह से सुना है ।

विषय साक्ष्य

(सुन्दरकाण्ड के प्रसंग में जब भगवान के पास विभीषणजी शरण माँगने आते हैं, उस क्रम में अपना परिचय देते हुए कहते हैं–

नाथ दसानन कर मैं भ्राता । निसिचर बेस जनम सुरत्राता ॥

इस कथन पर शंका प्रकट करते हुए मानस मयंक टीकाकार कहते हैं कि विभीषणजी "निसिचर वंश" कहकर अपना परिचय देते हैं, जिसका अभिप्राय है कि विभीषणजी श्रीराम के वंश से सम्बन्ध रखते हैं ।

टीकाकारों ने 'निसिचर' का अर्थ कहा है– 'निसि' अर्थात् रात और 'चर' अर्थात् चरने वाला अथवा खा जाने वाला । इस प्रकार 'निसिचर' का अर्थ सूर्य हुआ ।

अब बात साफ है कि भगवान श्रीराम तो सूर्यवंशी हैं। अतः विभीषणजी इस वंश के साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वे श्रीराम के भाई हैं, क्योंकि समान वंश वाले आपस में भाई होते हैं और उनके इस कथन से सदियों से लोकविश्रुत दन्तकथा का प्रमाण भी मिल जाता है ।)

अब रावण इस प्रकार से दशरथ को निर्बीज बनाकर निश्चिन्त हो गया । वह जान गया कि दशरथ को अब कोई संतान नहीं होगी । विभीषंण को उसने अपना भाई बना लिया लेकिन उसे पता नहीं था कि उसका अपना भाई ही उसकी मौत का कारण बनेगा। केवल विभीषण के कारण ही रावण की मृत्यु हुई । रावण ने इतनी लम्बी योजना बना रखी थी, जिससे सारा आर्यावर्त उसके अधीन आनेवाला था । रावण को पता था कि जब तक वैदिक धर्म का नाश नहीं होगा, तब तक उसकी रक्ष-संस्कृति का विस्तार नहीं हो सकेगा ।

सच पूछा जाए तो अयोध्या को छोड़कर पूरे आर्यावर्त पर डर और भय के कारण रावण का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। रावण की एकमात्र राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा थी कि लंका से लेकर पूरा आर्यावर्त उसके अधीन हो जाए। उसकी महत्त्वाकांक्षा के विस्तार में केवल अयोध्या विरोध का पहाड़ बनकर खड़ा था। इसीलिए वह अयोध्या को चारों ओर से घेरने का प्रयास कर रहा था। रावण सचमुच राजनीतिक लड़ाई लड़ रहा था, लेकिन महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट् थे, बड़े पराक्रमी थे इसलिए रावण उनसे सीधे भिड़ने से डरता था। इसी दृष्टि से किष्किन्धा के राजा बाली से उसने सन्धि कर ली थी। सन्धि के कारण बाली से वह निश्चिन्त हो गया था। अब उसका पूरा ध्यान अयोध्या पर था।

श्रीराम के अवतरण का राजनीतिक कारण इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि राम ने खंडों में बंटते हुए आर्यावर्त को एक सूत्र में बांधा। अगर रावण की योजना सफल हो जाती, तो हमारा देश कई खंडों में बंट जाता। राम ने अपने पराक्रम से अपनी मातृभूमि को टूटने से बचाया और एक राष्ट्रीय नेता के रूप में देश की अखण्डता की रक्षा की तथा धर्म एवं संस्कृति को नष्ट होने से बचाया। इसलिए राम को केवल भगवान् मानकर ही हम नहीं पूजते हैं, बल्कि एक राष्ट्रीय नेता के रूप में भी वे हमारे आदर्श हैं। अगर राम का अवतरण नहीं हुआ होता, तो सम्पूर्ण आर्यावर्त रक्ष-संस्कृति में विकसित हो गया होता। इसकी अपनी पहचान नष्ट हो गई होती और आज हमारा यह अखण्ड भारत टुकड़ों में बंट गया होता। तब हम यह नहीं कह सकते थे कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र को भारत कहते हैं। इसीलिए राम ने हमें अपने पराक्रम से सम्पूर्ण भारत का नक्शा बनाकर दिया और हमारी संस्कृति, स्वाभिमान और मर्यादा की रक्षा की।

जब रावण का अत्याचार बढ़ रहा था और उसकी योजना सफल हो रही थी। तब सबसे पहले भगवान् शंकर को इसकी चिन्ता हुई। उन्होंने कुम्भज ऋषि की अध्यक्षता में ऋषियों की सभा बुलाई **"संभु गए कुम्भज रिषि पाहीं।"** यह संतों का पहला राजनैतिक सम्मेलन था। उसी में तय किया गया कि परमात्मा से अवतरित होने के लिए प्रार्थना की जाए और इसी बीच महर्षि अगस्त को कहा गया कि वे अपने शिष्य पर्वतराज मंदराचल को कहें कि रावण के कहने पर वह जो गगनचुम्बी बन गया है, अब वह अपने आकार को छोटा करें ताकि उत्तर भारत में जब कभी राम अवतरित होंगे तो वे अपनी

सेना लेकर मंदराचल को पार कर सकें । महर्षि अगस्त ने मंदराचल को कहा कि मुझे दक्षिण भारत जाना है, तुम तब तक अपने आकार को छोटा रखो, जब तक मैं लौटकर नहीं आ जाऊँ । मंदराचल ने वैसा ही किया । महर्षि अगस्त आज तक नहीं लौटे हैं, जिस कारण उत्तर भारत से दक्षिण भारत की यात्रा सुविधापूर्ण हो गयी । अगर रावण की योजना सफल हो गई होती और मंदराचल छोटा नहीं होता तो, उत्तर भारत से दक्षिण भारत में जाना सम्भव नहीं होता । ऐसा करना राजनीतिक आवश्यकता थी । दूसरी ओर संत महात्माओं ने परमात्मा के समक्ष अवतरण के लिए प्रार्थना की और उन्हें वरदान मिला-

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥

इस तरह भगवान् राम अवतरित हुए । उन्होंने देवताओं को आदेश दिया कि आप सभी बन्दर, भालू बनकर जन्म लें । तब सभी देवता रूप बदलकर जन्म लेने लगे । भगवान् शिव, हनुमान्जी के रूप में प्रकट हुए ।

इस तरह सभी देवता विभिन्न रूप धारण कर अवतरित हुए । रावण को बन्दर, भालू और मनुष्य ही मार सकता था क्योंकि उसने ऐसा ही वरदान मांग लिया था । अतः देवताओं ने ऐसा रूप धारण किया । यह पूरी योजना कुम्भज ऋषि के आश्रम में बनी और वहीं से राम के अवतरण की भूमिका तैयार होने लगी । श्रीराम को वन भेजना एक सोची समझी योजना थी । कैकेयी तो एक बहाना मात्र है। सूत्र तो कहीं और से संचालित हो रहा था, क्योंकि गोस्वामीजी लिखते है कि पहले मंथरा को फिर कैकेयी को **"गई गिरा मति फेर"** । सरस्वती ने पूरी योजना के अन्तर्गत ही इस तरह की मति दी थी । इसलिए मंथरा और कैकेयी को दोषी मानना उचित नहीं है। क्योंकि गोस्वामीजी कहते हैं कि भगवान् मनुष्य को सब कुछ दे देता है लेकिन छह चीजें नहीं देता है- **"हानि लाभ जीवन मरन जश अपजश बिधि हाथ ।"** इन सभी चीजों को परमात्मा अपने हाथ में रखता है । इसीलिए कहा जाता है कि तुम अगर राम की भक्ति करते हो तो तुम्हें यश, जीवन और लाभ मिलेगा । अगर राम को नहीं भजते हो तो हानि, मरण और अपयश मिलेगा । इस दुनिया में अगर मनुष्य को सुखी, स्वस्थ और आनन्दित रहना है तो उसे हर हाल में राम की शरण में जाना पड़ेगा । जो लोग राम की शरण में अपने अभिमान के

कारण नहीं जाते हैं, उनका भला नहीं होता है । सुग्रीव राम की शरण में गया, राजा बना। विभीषण राम की शरण में गया उसे लंका का राज्य मिला ।

दूसरी ओर बाली और रावण अभिमानी था तो उसका नाश हुआ । इसलिए राम का अवतरण हमारी मातृभूमि के लिए एक राजनैतिक आवश्यकता थी । आज पुनः इस देश को एक सूत्र में बांधने के लिए राम की आवश्यकता है, जो हमारी टूटती और बिखरती हुई मातृभूमि को अखण्ड भारत का रूप दे सके । इसलिए, राम केवल आध्यात्मिक महापुरुष और धर्मरक्षक ही नहीं थे अपितु देशरक्षक और देश के सपूत थे । सबसे पहले इन्होंने ही घोषणा की थी कि अपनी माँ और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है । यह घटना उस समय की है, जब लंका विजय के पश्चात् लखन ने राम से कहा कि भैया! लंका को भारत में मिला लेना चाहिए । तभी भगवान कहते हैं –

अपि स्वर्णमयी लंका न मे रोचते लक्ष्मण ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

आज सोचने पर लगता है कि राम कितने दूरदर्शी थे, वे चाहते तो लंका को भारत में मिला लेते लेकिन वे दूसरे की सम्पत्ति को पाप समझते थे, इसलिए उन्होंने वैसा नहीं किया । अगर आज हम उसी दृष्टि से सोचें तो वर्तमान युग में कभी कोई सीमा विवाद नहीं होगा । राम केवल आस्था के कारण ही हमारे आदर्श नहीं हैं, बल्कि धार्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से भी हमारे आदर्श हैं । राम मूलरूप से तो परमात्मा हैं, लेकिन वे केवल पूजा-पाठ कराने वाले परमात्मा नहीं हैं, वे हमें जीवन जीने की विधि, नैतिकता, अच्छा आचरण, बड़ों का आदर, अपने से छोटों को प्रेम करना भी सिखाते हैं । इसलिए इनको बहुआयामी कहा जाता है । ऐसे ही महापुरुषों के आदर्श से भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने की आवश्यकता है ।

यही कारण है कि भारत में जो श्रीराम का आदर्श है, उसके प्रभाव से भारत में नैतिकता बची हुई है । राम को शील, शक्ति और सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है । क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उसी मर्यादा स्वरूप को आज हमें घर-घर में उतारने की आवश्यकता है । तभी भारत में रामराज्य की स्थापना हो सकती है । इसीलिए भारत में राम की राजनीतिक अनिवार्यता मानी गई है ।

रामकथा का हमारे जीवन पर प्रभाव

रामकथा कोई कहानी नहीं है। यह जीवन जीने का शास्त्र है। इस कथा को पढ़ने, सुनने और गाने से जीवन में नैतिकता आती है। अच्छे आचरण करने की प्रेरणा मिलती है। अपने जीवन को कैसे पवित्र बनायें? अपने जीवन को कैसे मंदिर बना लें ताकि उस मंदिर में भगवान् निवास करने लगें। हमारे जीवन का एक ही उद्देश्य है कि अपने आचरण और विचार, कर्म, सब कुछ को परमात्मा का प्रसाद मानकर स्वीकार करें। यह संसार परमात्मा का है। हम भी परमात्मा के ही अंश हैं। माया के कारण हम परमात्मा से दूर हो गये हैं। जिस दिन माया का प्रभाव हमारे ऊपर से नष्ट हो जायेगा, उस दिन फिर हम परमात्मा में लय हो जायेंगे। जीव अपने अज्ञान के कारण अपने को परमात्मा से दूर समझता है।

यही अज्ञान हमारा अहंकार है, हमारे जीवन का अन्धकार है और इस अन्धकार में हम उस परमात्मा को देख नहीं पा रहे हैं। अज्ञान के कारण हम अपने-पराये के जाल में फंसे हैं। इस संसार में परमात्मा को छोड़कर कोई भी अपना नहीं होता। सारे लोग अपने स्वार्थ के कारण हमारे चारों ओर लटके रहते हैं। रामकथा हमें उसी सत्य का दर्शन कराती है। रामायण में जितने भी पात्र दिखते हैं, उन सबों का अपना-अपना आध्यात्मिक महत्त्व है। यहाँ तक कि गरीब भिलनी शबरी का भी अपना महत्त्व है। भगवान् को पाना तो सब चाहते हैं लेकिन शबरी बनना किसी को नहीं आता। अहंकार के घोड़े पर चढ़कर कोई शबरी जैसी भक्ति नहीं पा सकता है। केवट जैसा पात्र भी अपने त्याग भाव के कारण राम को सीधे ही प्राप्त कर लिया-

पद पखारि जलुपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारू करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

भक्त का यह समर्पण कितना मोहक है। भगवान् के सामने जब भक्त मन को पवित्र करके प्रार्थना करता है, तब भगवान् स्वतः प्रसन्न होकर उसे सब कुछ दे देते हैं। केवट ने भी वैसा ही किया। भगवान् श्रीराम जब केवट को कहते हैं कि लो पैर पखारो तो-

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥

जिस दिन भक्त के हृदय में वैसा प्रेम प्रकट हो जायेगा उस दिन भक्त के सामने परमात्मा खड़ा हो जाएगा।

भक्त को परमात्मा के सिवाय कुछ नहीं चाहिए। जो भक्त केवल परमात्मा को चाहता है उसे परमात्मा तो मिलते ही हैं, साथ ही धन, वैभव, पुत्र, संसार भी मिल जाता है। परमात्मा को छोड़कर जो केवल धन और पुत्र मांगता है, उसे उसी धन और पुत्र से दुःख होने लगता है। आज संसार में जो इतने लोग दुःखी हैं, उसका एक ही कारण है कि सब ने परमात्मा से दुःख ही मांगा है। सुख तो केवल परमात्मा के पास है। जो भगवान् को मांगता है उसे सुख मिलता है और जो संसार मांगता है उसे दुःख मिलता है। इस संसार का अर्थ है दुःख।

यही कारण है कि संत-महात्मा संसार को छोड़कर जंगल में चले जाते हैं और वहाँ भगवान् को पाने का प्रयास करते हैं। क्योंकि इन संतों को पता हो जाता है कि सच्चा सुख तो परमात्मा को पाने में है। संसार में तो सुख है ही नहीं, संसार तो मरूभूमि है, वहाँ पानी कहाँ मिलेगा? संसार में सभी सुख पाना चाहते हैं लेकिन उन्हें सिर्फ दुःख ही मिलता है, क्योंकि जो सुख संसार में दिखता है, वह क्षणिक है, वह नश्वर है। वह सुख का आभास मात्र है, जिसके पीछे दुःख बैठा हुआ है।

जिस प्रकार मधुमक्खी मधु पर बैठती है, उसे अच्छा लगता है लेकिन उसे पता नहीं होता कि मधु में उसके पंख फंस रहे हैं, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो सकती है। उसी प्रकार जब मनुष्य भोग में लिप्त रहता है, उस समय उसे अच्छा लगता है। लेकिन उसी भोग के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। मनुष्य प्रतिक्षण भोग के कारण मृत्यु की ओर तेजी से बढ़ रहा है। मृत्यु उसे पुकार रही है, वह स्वयं मृत्यु की ओर दौड़ता जा रहा है-

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥

जो व्यक्ति गलत आचरण करता है उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह स्वयं गलत काम करते हुए मृत्यु की गोद में चला जाता है।

रामचरितमानस की कथा हमें नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देती है । रामकथा को पढ़ने वाला कभी गलत आचरण नहीं कर सकता । मैं पूरे देश में राम कथा कहता हूँ । बहुत लोग पूछते हैं कि इस रामकथा से व्यक्ति या समाज को क्या लाभ है? दरअसल रामकथा से व्यापारिक लाभ नहीं बल्कि आध्यात्मिक लाभ होता है । रामकथा सुनने वाले को अपार सुख और शान्ति मिलती है, उनके मन का विकार नष्ट होता है । मन में अच्छे काम करने की प्रेरणा मिलती है और सबसे बड़ी बात यह है कि वह परमात्मा पर भरोसा करने लगता है, जिस कारण उसे कभी दुःख नहीं होता । राम के आश्रय में जो बैठ जाता है उसके ऊपर कभी संकट नहीं आता । क्योंकि संकटमोचन हनुमान्जी उसकी हमेशा रक्षा करते हैं ।

आज भी जब मेरा मन किसी कारण से अशान्त हो जाता है तो रामचरितमानस का पाठ करने लगता हूँ । तुरंत मन में शान्ति आ जाती है । कहा जाता है कि सुन्दरकाण्ड का पाठ करने वाला कभी किसी संकट में नहीं पड़ता है । इसलिए सुन्दरकाण्ड का पाठ नियमित रूप से करना चाहिए । इसके साथ ही रामरक्षास्तोत्र, हनुमत्रक्षाकवच, महामृत्युंजय मंत्र, इन सबों का जाप करने वाला न तो कभी संकट में पड़ता है और न उसकी कभी अकाल मृत्यु होती है । यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है । अपने छात्र जीवन से आज तक मैंने इसे प्रत्यक्ष अनुभव किया है ।

कई लोग यह भी कहते हैं कि रामायण अनपढ़, साधु-संत पढ़ते हैं । मुझे ऐसे लोगों की मूर्खता पर हँसी आती है क्योंकि मैं स्वयं विश्वविद्यालय से पढ़ाकर लौटा हूँ । मुझे तो लगता है कि मैं अभी तक रामकथा की गहराई समझ नहीं सका हूँ । सच पूछिए तो इस कथा को समझकर मैं तृप्त होना भी नहीं चाहता । मुझे तो ऐसी प्यास चाहिए जो जीवन भर बनी रहे। इसलिए सत्संगों में जब मैं बैठता हूँ तो लोगों को कहता हूँ कि परमात्मा को पाना तो तुम्हारी भक्ति पर निर्भर है, कम से कम तीन-चार घंटे तुम्हारे मन में अच्छे विचार आते रहें, तुम बुराई से बचते रहो यही बहुत है । क्योंकि इस रामकथा से उठोगे तो संसार का पाप तुम्हें फिर जकड़ लेगा । इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं कि-

राम कथा जें सुनत अघाहिं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहिं ॥

यहाँ **"अघाहि"** शब्द का प्रयोग किया गया है । मनुष्य अघाता नहीं, पशु अघाता है । गोस्वामीजी कहते हैं- रामकथा से जो अघा जाता है वह पशु है । भारत में तो कौआ, गरुड़ एवं अन्य पशु-पक्षी भी रामकथा का रस लेते हैं । इसलिए प्रतिदिन रामकथा के पारायण से जीवन में अपार सुख-शान्ति मिलती रहती है । कहा गया है-

जौं इच्छा धरिहें मन माहीं । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥

मनुष्य को इस संसार में क्या चाहिए । वह जो भी चाहेगा उसे राम कृपा से सब कुछ मिल जायेगा । कहा गया है-

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास ।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

तो आइए, हम सब लोग रामकथा के प्रचार-प्रसार में लग जाएं क्योंकि वही हमें सब सुख देगा । आजतक दुनिया में जो कुछ भी हमें मिला, वह सब राम की कृपा का फल है । राम की कृपा के कारण ही आज दुनिया में इतना मान, सम्मान, धन-वैभव, सब कुछ मिला है । मैं अपने सत्संग में हमेशा इस गीत को गाता हूँ-

अगर राम तेरा सहारा न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ॥

अगर राम तेरा... ... ...!

(इस पूरे गीत को विभीषणजी श्रीराम के समक्ष आगे चलकर गाएंगे)



रामायण के प्रमुख पात्र

1. भगवान् श्रीराम-

श्रीराम चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ के पुत्र हैं । दशरथ महाराज अज के पुत्र हैं । इनके पूर्वजों में महाराज दिलीप और दानवीर रघु प्रमुख हैं । इस वंश में और भी अनेक महाप्रतापी राजा हुए हैं । महाराज दशरथ की तीन रानियां थी । कोशल देश की राजकुमारी कौशल्या इनकी बड़ी पत्नी थी । कैकेय देश की राजकुमारी कैकेयी उनकी दूसरी पत्नी थी । मगध जो आज बिहार में है, वहाँ के राजा की सुपुत्री सुमित्रा उनकी तीसरी पत्नी थी । श्री राम कौशल्या के पुत्र थे, भरत कैकेयी के और लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न सुमित्रा के पुत्र थे ।

श्रीराम परमात्मा के अवतार थे, लक्ष्मणजी शेषनाग के अवतार थे, भरतजी धर्म के अवतार थे और शत्रुघ्नजी शौर्य शक्ति के अवतार थे ।

राम का विवाह सीता से, भरत का मांडवी से, लक्ष्मण का ऊर्मिला से और शत्रुघ्न का श्रुतिकीर्ति से हुआ ।

2. सीता-

सीताजी महाराज जनक की भूमिजा पुत्री थी । सीता का जन्म पृथ्वी से हुआ था । सीता का जन्म बिहार के सीतामढ़ी के पुनौरा ग्राम में हुआ था । दरअसल सीताजी किसी गर्भ से जन्म नहीं ली थीं, बल्कि वे जमीन से प्रकट हुई थीं ।

3. महाराज जनक-

महाराजा जनक जनकपुर के राजा थे । महाराजा जनक राजा निमि के पुत्र थे । मिथि के नाम पर मिथिला का नाम पड़ा है । जनक को भूमिजा पुत्री सीता के अतिरिक्त और कोई दूसरी संतान नहीं थी । सीता का विवाह राम से हुआ और जनकजी के भाइयों की पुत्री मांडवी, ऊर्मिला और श्रुतिकीर्ति थी, जिनका विवाह क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से हुआ ।

4. महर्षि वशिष्ट–

महर्षि वशिष्ट राजा दशरथ के कुलगुरु थे । वे ऋग्वेद के सातवें मंडल के ऋषि और स्मृति ग्रंथ के प्रणेता थे। अपने काल में ब्राह्मणोचित प्रतिष्ठा और शक्ति के आदर्श प्रतिनिधि थे ।

5. महर्षि विश्वामित्र–

महर्षि गाधि के पुत्र विश्वामित्र महान तपस्वी थे, जिन्होंने श्रीराम को बला और अतिबला विद्या प्रदान की थी । उनका आश्रम बिहार के बक्सर के निकट था । ब्रह्मा की भाँति सृष्टि की रचना करने में अत्यधिक बल का प्रदर्शन किया था । राजा त्रिशंकु को स्वर्ग भेजने का महद् यत्न किया ।

6. सती अहिल्या–

अहिल्या पहले स्वर्ग में अप्सरा थी । किसी कारण से ब्रह्मा ने अहिल्या को महातेजस्वी ऋषि गौतम को सौंप दिया था। गौतम का आश्रम जनकपुर के निकट था, जिसे आज अहिल्या स्थान कहा जाता है । इन्द्र ने अहिल्या का छल से गौतम का वेष बनाकर शीलभंग किया था । इस कारण गौतम ने उसे शाप दे दिया और अहिल्या पत्थर की तरह जड़ बन गई थी । पुनः राम ने उसका उद्धार किया था । रामायण के अनुसार वह ब्रह्मा के द्वारा पैदा की गई पहली स्त्री थी ।

7. सुनयना–

महाराज जनक की पत्नी का नाम सुनयना था ।

8. शतानन्द–

अहिल्या और गौतम के पुत्र शतानन्द जनक के दरबार में सभासद् और कुलपुरोहित थे ।

9. परशुराम–

परशुराम माता रेणुका और ऋषि जमदग्नि के बड़े प्रतापी पुत्र थे । भगवान् शिव के शिष्य थे । उनके पिता जमदग्नि की हत्या कार्तवीर्य ने कर दी थी, जिस कारण उन्होनें दुनिया से क्षत्रियों को नष्ट करने का संकल्प ले लिया था । वे महेन्द्रगिरि पर तपस्या करते थे, वहीं से धनुष यज्ञ में आए थे ।

10. केवट-

केवट मल्लाह जाति का था । वह गंगा में नाव चलाता था । भगवान् श्रीराम, सीता और लक्ष्मण उसी की नाव पर गंगा पार गए थे ।

11. महर्षि अत्रि और अनसूया-

महर्षि अत्रि और अनसूया से भगवान् दत्तात्रेय का जन्म हुआ था । अत्रि ब्रह्मा के पुत्र थे और अनसूया गौतम ऋषि की पुत्री थी । अनसूया ने ही सीता को दिव्य वसन और भूषण पहनाया था ।

12. शबरी-

शबरी भील जाति की महिला थी, जो भगवान् की परम भक्त थी । छोटी जाति के होने के कारण ऋषियों ने उसे पम्पा सरोवर में स्नान करने से रोका था । भगवान् राम उसी की कुटिया में गये और उसके जूठे बेर खाए । उसी समय राम ने लखन को भी बेर खाने को दिया था, जिसे लक्ष्मण ने जूठा समझकर पीछे की ओर फेंक दिया था, वही बेर संजीवनी बूटी बन गया था और इसी से लक्ष्मण के प्राण बचे थें ।

13. बाली-

बाली इन्द्र का बेटा था और बाली का छोटा भाई सुग्रीव सूर्य का बेटा था । ऐसा कहा जाता है कि उन दोनों की माँ परम सुन्दरी थी, उसके रूप पर मोहित होकर इन्द्र और सूर्य दोनों का ही शुक्रपात हो गया था। इन्द्र का शुक्र उसकी मां के केश पर गिरा इसलिए उसका नाम बाली और सूर्य का शुक्रपात उसकी गर्दन पर हुआ था इसलिए उससे जन्मे पुत्र का नाम सुग्रीव पड़ा । ऐसा मैने संतों से सुना है । बाली की पत्नी का नाम तारा और सुग्रीव की पत्नी का नाम रुमा था । बाली का पुत्र अंगद बड़ा ही इकवाली था ।

14. महावीर हनुमान्-

ऐसा कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने जब मोहिनी स्त्री का रूप धारण किया तो उनका रूप देखकर भगवान् शिव को शुक्रपात हो गया । उस शुक्र को देवताओं ने केसरी की पत्नी माता अंजनी के कान में वायु के द्वारा प्रवेश कराया, जिससे अंजनी गर्भवती हो गई।

वायु के द्वारा शुक्र का प्रवेश कराने के कारण उन्हें पवनपुत्र कहा गया । इसीलिए हनुमान्जी को शंकरसुवन, केसरीनन्दन, अंजनीपुत्र तथा पवनपुत्र कहा जाता है । केसरी और अंजनी का आश्रम झारखण्ड राज्य के सिमडेगा के निकट था, जो आज भी अंजनी गुफा के नाम से प्रसिद्ध है ।

कहा जाता है कि हनुमान्जी श्रीराम की सहायता के लिए लंका गये और वहाँ उन्होंने बहुत बड़ा युद्ध किया । युद्ध के बाद जब मां के दर्शन करने गये तो माता अंजनी ने हनुमान् से कहा- "पुत्र! मैंने तुम्हारी जीत और रावण के नाश के लिए संकल्प रूप में अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी । तुमने रावण को अवश्य ही परास्त किया होगा ।" हनुमान्जी ने कहा- "माँ! श्रीराम ने स्वयं रावण का नाश किया है।" यह सुनते ही अंजनी क्रोधित होकर बोली- "तुम इतने असमर्थ हो कि रावण के नाश के लिए श्रीराम को बुला लिया । मैंने व्रत रखा था कि जब तुम युद्ध जीतकर आओगे, तभी अपनी पट्टी खोलूंगी और मेरी नजर पड़ते ही तुम अजर-अमर बन जाओगे ।"

कहते हैं अंजनी ने जब अपनी पट्टी खोली तो नजर पड़ते ही सामने का पहाड़ टुकड़ा-टुकड़ा होकर बिखर गया । वही हनुमान्जी आज हमारे संकटों का नाश करते हैं और भक्तों की रक्षा करते हैं ।

यह भी कहा जाता है कि लंका विजय के बाद श्रीराम ने हनुमान्जी को कहा था कि भारत के दक्षिण कोने पर अंडमान-निकोबार द्वीप है, तुम वहाँ स्थिर हो जाओ । क्योंकि हो सकता है, भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए विभीषण कहीं भारत पर आक्रमण न कर दें । तुम्हें वहीं से उसे रोकना होगा । हनुमान्जी के नाम पर ही अंडमान का नाम पड़ा । हनुमान-हन्डमान और फिर अंडमान शब्द बना । यह भी कहा जाता है कि सीता माता ने हनुमान को आशीर्वाद दिया था कि-

"अजर अमर गुन निधि सुत होहुं । करहुं सदा रघुनायक छोहुं ॥"

15. रावण-

रावण महर्षि विश्रवा का पुत्र था । रावण की माँ कैकसी सुमाली की पुत्री थी । सुमाली तीन भाई था । माली, सुमाली और माल्यवान् । माली के कोई संतान नहीं थी । तीनों भाई

आज के साउथ अफ्रीका के किसी द्वीप में रहते थे । आज भी इन तीन भाइयों के नाम पर देश का नाम पड़ा हुआ है । विश्रवा का पहला बेटा कुबेर था जो लंका पर राज्य करता था । बाद में सुमाली ने राजनीति के तहत अपनी पुत्री कैकसी का विवाह विश्रवा से कर दिया । कैकसी से रावण और कुम्भकर्ण पुत्र एवं चन्द्रलेखा (सूर्पणखा) पुत्री का जन्म हुआ । रावण ऋषि पुत्र होने के कारण बहुत विद्वान और पराक्रमी था । वह दुनिया में रक्ष-संस्कृति फैलाना चाहता था। इसी के लिए वह देवलोक और पृथ्वीलोक पर आक्रमण किया करता था । उसके नाना सुमाली ने लंका के राजा कुबेर पर आक्रमण करवाया । कुबेर लंका छोड़कर भाग गये । तब से रावण वहाँ का राजा बना । रावण के बड़े भाई कुबेर को एक पुत्र था, जिसका नाम नलकुबेर था । उसकी पत्नी का नाम रम्भा था ।

एक दिन देवलोक में रावण ने रम्भा को देखा । उसको देखते ही वह मोहित हो गया। रावण ने रम्भा को संभोग के लिए प्रस्ताव दिया । रम्भा ने कहा कि वह उसके भतीजे नलकुबेर की पत्नी है और इस रिश्ते से वह रावण की पतोहू लगती है । लेकिन मदांध रावण ने कुछ नहीं माना । वह बल प्रयोग कर रम्भा का शील भंग कर दिया । उसी समय रम्भा ने रावण को शाप दिया कि जब कभी तुम किसी नारी पर बल प्रयोग करोगे तो तुम्हारा सिर खण्डित हो जायेगा । इसी शाप के कारण रावण ने सीता के साथ कभी बल प्रयोग नहीं किया । रावण विद्वान था, उसकी पत्नी का नाम मंदोदरी था । मेघनाथ और अक्षय कुमार मंदोदरी के पुत्र थे । रावण की अनेक पत्नियां थीं । सबों से बड़े पराक्रमी पुत्र पैदा हुए थे ।

16. सुलोचना-

सुलोचना शेषनाग की पुत्री थी और मेघनाथ की पत्नी थी । मेघनाथ ने सुलोचना का अपहरण करके विवाह कर लिया था । मेघनाथ का नाम इसलिए मेघनाथ था कि जब उसका जन्म हुआ था तो बड़े जोर से मेघ की गर्जना हुई थी । एक दिन इन्द्र से मेघनाथ की लड़ाई हो रही थी । इन्द्र मेघनाथ के आक्रमण से घबड़ा कर पाताल में शेषनाग की शरण में जा छिपे। मेघनाथ इन्द्र को खोजते-खोजते पाताल लोक पहुँचा । वहीं उसने शेषनाग की पुत्री सुलोचना को देखा । देखते ही दोनों में प्रेम हो गया । दोनों ने विवाह

करने का निश्चय किया । मेघनाथ, शेषनाग के पास सुलोचना के साथ विवाह करने का प्रस्ताव लेकर गया । उसी समय उसने इन्द्र को वहाँ छिपे देखा । मेघनाथ ने शेषनाग को कहा कि पहले तुम इन्द्र को मुझे सौंप दो । शेषनाग ने कहा कि इन्द्र मेरी शरण में आया है मैं उसे नहीं सौंप सकता । यह सुनते ही मेघनाथ क्रोधित हो उठा । इन्द्र को पकड़ने के लिए उसने शेषनाग पर आक्रमण कर दिया । दोनों में खुब लड़ाई हुई । मेघनाथ ने लड़ाई के पश्चात् सुलोचना का बलपूर्वक अपहरण कर लिया । उससे शेषनाग को बहुत अपमान लगा । सुलोचना तो मेघनाथ की पत्नी बन गई । लेकिन शेषनाग और मेघनाथ के बीच शत्रुता बनी रही ।

यही कारण है कि शेषनाग जब लक्ष्मण के रूप में अवतार लिए तब से मेघनाथ के प्रति उनकी शत्रुता बढ़ती गई । राम-रावण युद्ध में लक्ष्मणजी ने मेघनाथ से अपना वही बदला चुकाया । लेकिन यह भी बात विचार करने योग्य है कि मेघनाथ-लक्ष्मण युद्ध में, मेघनाथ ने लक्ष्मण को अपने शक्तिबाण से मूर्छित कर दिया था। क्या मेघनाथ लक्ष्मण से अधिक बलशाली था? दरअसल लक्ष्मण तो शेषावतार थे, शेषनाग पर रमापति विष्णु विश्राम करते हैं । जिस समय मेघनाथ और शेषनाग का नागलोक में युद्ध हुआ था, उस समय भगवान् विष्णु शेषनाग के साथ नहीं थे और न उनका आशीर्वाद ही प्राप्त था । इसलिए मेघनाथ ने शेषनाग को पराजित कर सुलोचना का अपहरण कर लिया था । यहाँ भी युद्धभूमि में जब बानर सैनिकों ने कहा कि युद्ध भूमि में मेघनाथ आ गया है तो लक्ष्मणजी आक्रोश में आ गए-

लछिमन चले क्रुध होई बान सरासन हाथ ।

क्रोध करना वीर पुरुष का काम नहीं है । क्रोधी व्यक्ति कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता । क्योंकि उसके शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है । यहाँ लक्ष्मण ने क्रोध किया । भगवान् को यह अच्छा नहीं लगा । राम तो युद्धभूमि में भी नैतिक नियमों का पालन करते रहे । क्रोध अभिमानी पुरुष करता है और अभिमान को भगवान् सहन नहीं करते हैं। रामायण में लिखा है कि लक्ष्मणजी ने क्रोध किया और लड़ाई में जाने के पहले भगवान् का आशीर्वाद भी नहीं लिया, भगवान् को लगा कि लखन को अभिमान हो गया है ।

यही कारण है कि मेघनाथ के बाण से लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये । दूसरी बात जब मेघनाथ निकुम्भला माता को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ कर रहा था तो, लक्ष्मणजी फिर वहाँ जाते हैं । उस समय–

रघुपति चरन नाइ सिर चलेऊ तुरंत अनन्त ।

जब लक्ष्मणजी राम को प्रणाम करके जाते हैं तो उन्हें विजय मिलती है । बिना भगवान् की कृपा से कोई भी जीवन में सफल नहीं हो सकता है ।

मेघनाथ की पत्नी सुलोचना बड़ी सती थी । उसकी घोषणा थी कि उसके रहते उसके पति को कोई मार नहीं सकता। वह प्रतिदिन अपने पिता शेषनाग की पूजा कर यही आशीर्वाद मांगती थी । अब यहाँ प्रश्न उठता है कि मेघनाथ कैसे मरा? दरअसल लड़ाई सुलोचना और ऊर्मिला के बीच में चल रही थी । मानस की व्याख्या करने वाले लोग कहते हैं कि मेघनाथ को मारना लक्ष्मणजी के लिए सम्भव नहीं था । मेघनाथ को वही मार सकता था जो बारह वर्षों तक कभी स्त्री के संग न रहा हो और न कभी सोया हो । इसके साथ ही दूसरी बात थी कि ऊर्मिला और सुलोचना की लड़ाई में सीता ने सहयोग कर दिया। एक तरफ अकेली सुलोचना रह गई दूसरी ओर सीता और ऊर्मिला हो गयी । इसलिए लक्ष्मण का पलड़ा भारी हो गया। कहते हैं कि पत्नी के धर्म से पति की आयु बढ़ती है और उसे जीवन में सफलता मिलती है । पत्नी को इसीलिए अर्द्धांगिनी कहा जाता है । मुझे लगता है कि इसी कारण से ऊर्मिला लक्ष्मण को छोड़कर अकेले अयोध्या में रह गई ताकि वह अपना व्रत पूरा कर सके । मेघनाथ और लक्ष्मण की शत्रुता का यही कारण था ।

रामचरितमानस के उलझे प्रसंग

मानस में गोस्वामीजी ने विस्तार से श्रीरामकथा का वर्णन किया है । लेकिन कई जगहों पर चौपाइयों में अर्थ उलझा हुआ दिखता है, जिसका स्पष्टीकरण गोस्वामीजी ने नहीं किया है । लेकिन जब तक इन छुपे हुए संदर्भों को साफ नहीं किया जाए, तब तक अनेक चौपाइयों का अर्थ समझ में नहीं आता ।

मैंने जो कुछ भी संतों से सुना और प्रभु कृपा से मुझे जो आशीर्वाद और आदेश मिला है, उसके अनुसार मैं इन छुपे हुए रहस्यों को खोलने का प्रयास कर रहा हूँ। पाठक इसे पढ़कर स्वयं समझ लें। मैं अपनी मति के अनुसार इसकी व्याख्या कर रहा हूँ-

1. बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥

यह चौपाई बालकाण्ड का है, जब धनुष टूटने पर परशुरामजी रंगभूमि में आते हैं और क्रोध करते हैं। इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि जब मैंने बचपन में आपके बहुत सारे धनुषों को तोड़ा था, उस समय तो आपने इतना क्रोध नहीं किया। फिर आज इस धनुष के टूटने पर इतना क्रोध क्यों? **"एहि धनु पर ममता केहि हेतू"**

प्रश्न है, जब लक्ष्मण परशुरामजी से जनकपुर में पहली बार मिल रहे हैं तो लक्ष्मणजी ने कैसे कह दिया कि बचपन में मैंने आपके बहुत सारे धनुष तोड़े हैं।

ऐसा कहा जाता है कि परशुरामजी ने जब क्षत्रियों का नाश करने का संकल्प लिया तो, वे युद्ध में क्षत्रिय राजा को हराकर उनका मुकुट और धनुष छीन लेते थे। परशुराम का अत्याचार दिनों-दिन बढ़ रहा था। परशुराम की प्रतिज्ञा थी कि इस भूमंडल से सभी क्षत्रिय राजाओं को नष्ट कर दूँगा। क्योंकि क्षत्रिय द्वारा ही इनके पिता की हत्या की गई थी। इस तरह वे सौ राजाओं को पराजित कर सौ धनुष इकट्ठा कर प्रण को पूरा करना चाहते थे। यह बात भगवान् को अच्छी नहीं लगी। भगवान् ने सोचा कि इस तरह पृथ्वी का संतुलन बिगड़ जाएगा। भगवान् ने माता पृथ्वी और शेषनाग को आदेश दिया कि परशुराम के प्रण को किसी तरह भंग करो। यह आदेश पाकर पृथ्वी एक वृद्ध ब्राह्मणी बन गई और शेषनाग उसका बेटा। दोनों परशुराम के आश्रम में गये। वृद्ध ब्राह्मणी ने परशुराम से अपने आश्रम में आश्रय देने की प्रार्थना की। ब्राह्मणी अपने पुत्र के साथ वहीं रहने लगी।

एक दिन मौका पाकर जब परशुरामजी तपस्या में लीन थे, तो बुढ़ी ब्राह्मणी ने अपने पुत्र को आदेश दिया कि यहाँ जितने भी धनुष को परशुराम ने एकत्र कर रखा है, उन सबको नष्ट कर दो। बालक रूपी शेषनाग ने सभी धनुषों को नष्ट कर दिया। जब परशुराम आश्रम में लौटे, तो उन्होंने देखा कि सारे धनुष टूटे पड़े हैं। फिर ब्राह्मणी ने उनसे अपने पुत्र की भूल पर क्षमा मांगी। परशुराम बहुत दुःखी हुए कि इन धनुषों के टूट

जाने से उनका प्रण पूरा न हो सकेगा । फिर ब्राह्मणी और उसके बालक को आश्रम से निकाल दिया गया । इसीलिए लक्ष्मणजी कहते हैं कि बचपन में मैंने आपके बहुत धनुषों को तोड़ा था ।

2. माता पितहि उरिन भए नीकें । गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ॥

यहाँ लक्ष्मणजी कहते हैं, हे परशुराम! आप तो माता-पिता के ऋण से मुक्त हो गये हैं, लेकिन अभी तक गुरु के ऋण से मुक्त नहीं हुए हैं । आज मौका मिला है, अपना बदला चुका लें ।

यह चौपाई भी लक्ष्मण-परशुराम संवाद के अवसर का है । अब प्रश्न है कि परशुराम माता-पिता के किस ऋण से मुक्त हो गये थे और गुरु के कौन से बाकी ऋण की बात यहाँ कही जा रही है? संदर्भ ऐसा है कि एक बार परशुराम की माँ जल लाने नदी के किनारे गई, वहाँ गंदर्भ जल-विहार कर रहे थे । चित्ररथ नामक गंदर्भ को जल विहार करते देख रेणुका के मन में विकार पैदा हो गया । वह देखती रही । इससे जल लाने में विलम्ब हो गया । परशुराम के पिता जमदग्नि ने योग बल से सब कुछ देख लिया। रेणुका जब जल लेकर आई तो, जमदग्नि ने परशुराम को आदेश दिया कि रेणुका ने पाप किया है, इसलिए इसका सिर काट लो । परशुराम ने पिता के आदेश का पालन किया । यह देख पिता ने परशुराम से वर मांगने को कहा । परशुराम ने कहा कि आप कृपा कर मेरी माता को जीवित कर दें और फिर ऐसा ही हुआ । इस तरह परशुराम माता-पिता के ऋण से मुक्त हो गये ।

अब प्रश्न है कि गुरु ऋण क्या था ?

जिस समय देवासुर संग्राम चल रहा था, उस समय महर्षि दधीचि के शरीर की हड्डी को देवताओं ने मांगा । योजना थी कि उस हड्डी से धनुष बनाया जाय । तभी राक्षसों का नाश किया जा सकता है । जब हड्डी मिल गई तो, विश्वकर्मा को कहा गया कि इससे धनुष बनाओ । विश्वकर्मा एक स्थान पर बैठकर जब धनुष बनाने लगे तो, बार-बार पृथ्वी हिल जाती थी । जिस कारण धनुष बन नहीं पाता था । इस पर क्रोधित होकर भगवान् शिव ने अपने शिष्य परशुराम को आदेश दिया कि पृथ्वी के नीचे शेषनाग बार-बार पृथ्वी को हिला रहा है, उसका सिर काट लो । परशुराम अपने गुरु के आदेश से

शेषनाग का सिर काटने का बार-बार प्रयास करते रहे, लेकिन शेषनाग का सिर वे काट नहीं सके । परशुराम बहुत लज्जित हुए । अन्त में शेषनाग ने धनुष बनने दिया । उस समय विश्वकर्मा ने उन हड्डियों से तीन धनुष बनाया- सारंग, पिनाक एवं गांडीव । सारंग भगवान् विष्णु को मिला, पिनाक शिव को और गांडीव इन्द्र को । मिथिला में जो धनुष रखा था उसका नाम पिनाक था, जिसे भगवान् शिव ने जनक के पूर्वज महाराज देव को दिया था ।

उसी वंश में महाराज निमि और मिथि भी हुए । इसीलिए लक्ष्मणजी ने परशुराम से कहा कि आप तो माता-पिता के ऋण से मुक्त हो चुके हैं, लेकिन अभी तक आपने अपने गुरु भगवान् शिव के आदेश का पालन नहीं किया । आज मैं आपके सामने खड़ा हूँ, आप अपना बदला चुका लें। यही कारण है कि लक्ष्मणजी ने कहा- **"गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें''** ।

3. अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ।

यहाँ कुछ लोग प्रश्न उठाते हैं कि लक्ष्मणजी तो कुंआरे नहीं थे, फिर श्रीराम ने ऐसा क्यों कहा? दरअसल श्रीराम ने कोई गलत बात नहीं कही । गोस्वामीजी ने स्वयं लिखा है-

सूपनखा राबन कै बहिनि । दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी ॥

यहाँ श्रीराम कहते हैं कि सूर्पणखा ''अहिनी'' अर्थात सांपिन की तरह है, तो सांपिन का सांप से विवाह होना चाहिए । लक्ष्मणजी विवाहित थे लेकिन शेषनाग का अंश सांप विवाहित नहीं था क्योंकि नाग विवाह नहीं करता । इसलिए श्रीराम कहते हैं "अहई" मतलब यह सांप विवाहित नहीं है । तुम सांपिन हो तो लक्ष्मण भी सांप है । इसलिए "अहई" शब्द का प्रयोग श्रीराम के द्वारा किया गया है ।

4. अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जियँ संसय कछु फिरती बारा ॥

किष्किन्धाकाण्ड के अन्तिम भाग में जब जामवन्त लोगों को लंका जाने के लिए कहते हैं तो यह सुनकर अंगद कहता है कि मैं लंका जा तो सकता हूँ लेकिन लौटने की संभावना नहीं है । आखिर वजह क्या थी जो अंगद के मन में ऐसी शंका उठी?

दरअसल अंगद और रावण का पुत्र अक्षय कुमार सहपाठी थे, दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। अंगद हमेशा अक्षय कुमार को पीटता था। यह देखकर गुरुजी ने अंगद को शाप दे दिया कि अगर किसी दिन अक्षय कुमार ने तुम्हें एक तमाचा लगा दिया तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। यह बात अंगद को अभी तक याद थी। इसलिए अंगद कहता है कि मैं लंका जा तो सकता हूँ लेकिन यदि वहाँ लंका में अक्षय कुमार से मेरी भेंट हो गई तो, वह अवसर का लाभ उठाकर मुझे तमाचा लगा सकता है। फिर तो शाप की वजह से उसका तमाचा लगते ही मेरी मृत्यु हो जाएगी।

यही कारण था कि अंगद लंका नहीं गया। अंगद और अक्षय कुमार की यह बात हनुमान्‌जी को मालूम थी। इसलिए हनुमान्‌जी जब लंका गये, तो सबसे पहले उन्होंने अक्षय कुमार को ही ढूंढ कर मारा था। क्योंकि वे निश्चिन्त हो जाना चाहते थे, अगर ऐसा नहीं होता तो फिर अंगद द्वारा रावण को चुनौती देना संभव न हो पाता।

5. जौं सठ चरन सकहिं मम टारि। फिरहिं रामु सीता मय हारि॥

अंगद की यह चुनौती सुनकर सबों ने अपना बल लगाया। लेकिन चरण को हिला नहीं सका। जब रावण अंगद का पांव उखाड़ने आया तो अंगद ने सोचा कि रावण मेरे पिता का मित्र है, इससे पैर पकड़वाना उचित नहीं है। तब अंगद ने कहा- "अरे रावण मेरा पैर पकड़कर क्या करोगे? जाओ प्रभु श्रीराम का पैर पकड़ो।" उसी समय की एक चौपाई यह भी है-

फिरहिं रामु सीता मय हारि ।

कुछ लोग पूछते हैं कि सीता को हार जाने का, अंगद को क्या अधिकार था? दरअसल टीकाकारों ने इस चौपाई का जो अर्थ लगाया है, वह ठीक नहीं लगता। क्योंकि अंगद को पता था कि वह दूत है और दूत को हारने-जीतने का अधिकार नहीं है। इसलिए इस चौपाई का अर्थ यह होना चाहिए कि **"फिरहिं राम सीता"** अर्थात् राम और सीता तो लौट जायेंगे, **"मय हारि"** मैं हार जाऊँगा।

6. ढ़ोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

ध्यातव्य है कि कई बार तो लोग इस चौपाई का भी अर्थ समझने में गड़बड़ी कर देते हैं, कुछ लोग कहते हैं गोस्वामीजी ने नारी का अपमान कर दिया। दरअसल अपमान

गोस्वामीजी ने नहीं किया, अपमान तो हम अर्थ लगाने वालों ने किया । जिस नारी को गोस्वामीजी पूजते थे उसका वे अपमान कैसे कर सकते थे । हाँ, वैसी नारी का अपमान उन्होंने जरूर किया है, जिसमें पशुता भाव अधिक हो, जिसका आचरण बुरा हो । इसलिए उन्होंने लिखा कि ढोल को पीटकर बजाया जाता है । उन्होंने शूद्र को कुछ नहीं कहा । लेकिन गंवार-शूद्र को प्रताड़ित करने की बात कही । शूद्र तो मानस में अनेक हैं, जो श्रीराम की सहायता कर रहे हैं । शबरी भी तो भिलनी थी, श्रीराम ने तो उसका भी मान बढ़ाया है । लेकिन जो गंवार शूद्र हैं, उसको ताड़ने की बात उन्होंने की । उन्होंने नारी वर्ग की निन्दा नहीं की है अपितु अपनी पंक्तियों में उन्होंने उस नारी के बारे में कहा है जो पशु के समान आचरण करती हो और वैसी नारी को प्रताड़ित करने की बात उन्होंने कही है ।

7. जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥

इन पंक्तियों का भी थोड़ा अर्थ उलझ गया है । साधारणतः टीकाकार इसका अर्थ लगाते हैं कि अगर मैं जानता कि वन में भाई से विछोह हो जाएगा, तो पिता की बात मैं नहीं मानता । परन्तु श्रीराम जैसे महापुरुष के विषय में यह कहना कि मैं पिता की बात नहीं मानता, यह उनका अपमान है । इसलिए अर्थ लगाने में थोड़ी सावधानी रखनी चाहिए अन्यथा अर्थ का अनर्थ निकल आता है ।

दरअसल श्रीराम कहते हैं कि **"जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू, पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।"** यहाँ **"ओहू"** शब्द पर विचार करना चाहिए । **"ओहू"** का अर्थ "उसका"। प्रभु कहते हैं कि मैं उसके (मेघनाथ) पिता की बात नहीं मानता । इसके पीछे एक कहानी है-

एक दिन रावण, भगवान् शिव की पूजा कर रहा था । उसने अपने पुत्र मेघनाथ को कहा कि बेटा कहीं से नीलकमल ले आओ । मेघनाथ नीलकमल की खोज में भटकने लगा । खोजते-खोजते वह अयोध्या के निकट पहुंचा । मेघनाथ ने देखा कि वहाँ एक सरोवर में नीलकमल खिला हुआ है । लेकिन सरोवर के किनारे पर बहुत लड़के खेल रहे थे ।

यह देख मेघनाथ ने सोचा कि वह घड़ियाल का वेष बनाकर सरोवर में जाए और चुपके से नीलकमल तोड़कर अपने पिता के लिए ले जाए। वह घड़ियाल बनकर सरोवर में घुस गया। धीरे-धीरे कमल को अपनी ओर खींचने लगा। कमल को खींचते हुए देख लड़कों ने उसी किनारे खेलते हुए राम और लक्ष्मण को बताया। लक्ष्मणजी तुरंत सरोवर में घुसे और उस घड़ियाल को पकड़कर बाहर ले आए और उस घड़ियाल को एक खूंटे में बांधकर लक्ष्मणजी ने उसकी पिटाई शुरू कर दी। घड़ियाल कराहता और छटपटाता रहा लेकिन लक्ष्मणजी द्वारा उसकी पिटाई होती रही।

इधर रावण चिन्तित हो गया कि मेघनाथ फूल लेकर क्यों नहीं लौटा? वह पूजा छोड़कर मेघनाथ को खोजने निकला। रावण ने देखा कि सरोवर के किनारे घड़ियाल बने मेघनाथ की पिटाई हो रही है। रावण वहाँ गया, उसने लक्ष्मणजी से कहा कि इसे माफ कर दो। लेकिन लक्ष्मणजी बार-बार कहते रहे कि इस दुष्ट ने मेरे सरोवर में चोरी करने का दुस्साहस किया। इसलिए मैं इसे मार दूँगा। रावण कलपता रहा, गिड़गिड़ाता रहा, लेकिन लक्ष्मणजी नहीं मान रहे थे।

उसी समय श्रीराम वहाँ पहुंचे, उन्हें दया आ गई और वे लक्ष्मणजी से बोले। इसके बाद अपने भाई के कहने पर लक्ष्मणजी ने उसे छोड़ दिया। गोस्वामीजी को इस कथा का ज्ञान था। इसीलिए उन्होंने लिखा कि-

पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।

उसके पिता की बात अर्थात् रावण की बात मैं नहीं मानता। इसका सीधा और सरल अर्थ है, राम अपने पिता की बात न मानते, ऐसा कैसे कह सकते हैं। अगर ठीक से अर्थ नहीं लगाया जाय तो राम के भी चरित्र पर दाग लग सकता है। इसलिए हमें इस चौपाई का अर्थ इसी विधि से लगाना चाहिए।

8. लंका दहन के समय शनिश्चर से हनुमान्जी का भेंट होना और एक रहस्य का प्रकाशन

शनिश्चर सूर्य का बेटा है। सूर्य की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम छाया और दूसरी का नाम स्वर्णा था। शनिश्चर छाया का पुत्र है। वह बचपन से ही महातेजस्वी और

बलशाली था। सूर्य से उसकी नहीं बनती थी । इसलिए वह अलग दूसरे लोक में जाकर रहने लगा । रावण और शनिश्चर दोनों एक दूसरे को जानते थे । एक दिन रावण ने शनिश्चर पर आक्रमण कर दिया और उसे बन्दी बना लंका लाकर कैद कर लिया । एक दिन जब मेघनाथ का जन्म हो रहा था तो शनिश्चर ने बन्दीगृह से ही अपना पाँव बाहर निकालकर मेघनाथ को मारना चाहा । जब रावण ने देखा कि शनिश्चर अपने पाँव से मेघनाथ को मारना चाहता है तो रावण ने गदा से शनिश्चर के कमर पर प्रहार किया । कहा तो यह भी जाता है कि रावण के उसी गदा के प्रहार से आज भी शनिश्चर लंगड़ाकर चलता है । उसके बाद रावण ने शनिश्चर को जमीन में उल्टा गाड़ दिया । जब हनुमान्जी लंका जला रहे थे, तो शनिश्चर ने हनुमान्जी को पुकारा ।

हनुमान्जी ने देखा कि एक व्यक्ति उल्टा गड़ा है । शनिश्चर ने हनुमान्जी को बताया कि आप लंका जला रहे हैं, लेकिन आग से सोने की लंका नहीं जलेगी । सोना आग से नहीं जलता है । आप मुझे कैद से मुक्त करें और मुझे पकड़कर लंका के चारों तरफ घुमा दें । मेरी नजर जहाँ-जहाँ पड़ेगी सब कुछ भस्म हो जाएगा । हनुमान्जी ने तुरंत शनिश्चर को जमीन से निकाला और पैर पकड़कर उसके शरीर को चारों तरफ घुमा दिया । शनिश्चर की नजर पड़ते ही सोने की लंका भस्म हो गई ।

उसी समय शनिश्चर और हनुमान्जी में दोस्ती हुई। दोनों में यह तय हुआ कि जो भी व्यक्ति हनुमान्जी की पूजा करेगा, उस पर शनिश्चर की भी कृपा दृष्टि होगी और उस पर शनि ग्रह का प्रभाव नहीं पड़ेगा । शनिश्चर का दिन है शनिवार और हनुमान्जी का दिन है मंगलवार । तभी से शनि और मंगलवार दोनों ही दिनों हनुमान्जी की पूजा की जाने लगी । जो लोग शनिवार और मंगलवार को हनुमान्जी के मंदिर में जाकर प्रार्थना करते हैं, उनके ऊपर कोई भी संकट नहीं आता है ।

9. सैल बिसाल देखि एक आगें । ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥

यह संदर्भ हनुमान्जी के लंका प्रवेश के समय का है। इसका साधारण अर्थ है, हनुमान्जी जब लंका गये तो उन्होंने वहाँ एक पहाड़ देखा, उस पहाड़ पर वे अपने सारे भय त्याग कर चढ़ गये । अब प्रश्न उठता है कि हनुमान्जी को कौन-सा भय था? जिसे त्यागकर वे उस पर्वत पर चढ़ गये । दरअसल, हनुमान्जी राम के परम भक्त थे, इसलिए

उन्हें कभी कोई भय हो ही नहीं सकता । क्योंकि परमात्मा के वन्दे को कभी कोई भय नहीं होता । इसी सन्दर्भ में गोस्वामीजी ने लिखा है–

"उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जौं कालहिं खाई ॥"

10. प्रश्न– पूंछ में आग लगाने पर भी हनुमान्‌जी क्यों नहीं जले?

इस बात को गोस्वामीजी ने इस चौपाई में लिखा है कि–

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा । जरा न सोउ तेहि कारन गिरिजा ॥

जिस परमात्मा ने आग, पानी, दुःख, संकट आदि सबको बनाया है, उस परमात्मा के भक्त को भला कोई कैसे हानि पहुँचा सकता है ।

इससे सम्बन्धित एक कहानी है कि एक बार माता पार्वती ने भगवान् शिव को कहा कि वैकुण्ठ में चलकर लक्ष्मीनारायण से मिलने का विचार है । भगवान् शिव और माता पार्वती वैकुण्ठ पहुँचे । इसके बाद भगवान् शिव और भगवान् विष्णु बातचीत करने लगे और उधर माता लक्ष्मी पार्वतीजी को स्वर्ग दिखाने ले गई । माता लक्ष्मी स्वर्ग की बड़ाई करके पार्वतीजी को अपना साम्राज्य दिखाने लगी। पार्वतीजी को स्वर्ग का ऐश्वर्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । वे सोचने लगी, काश! हमारे पास भी ऐसा होता । ऐसा सामान्य रूप से माना जाता है कि महिलाओं में एक से बढ़कर एक वस्तु रखने की लालसा होती है । पार्वतीजी को भी वैसी लालसा जगी ।

जब भगवान् शिव के साथ पार्वतीजी लौटने लगीं तो वह बिल्कुल चुपचाप बैठी रही । भगवान् शिव को भान हो गया कि कुछ गड़बड़ है । उन्होंने पार्वतीजी से पूछा कि क्या बात है? इस पर पार्वतीजी बोली, आपको कहने से क्या फायदा, आपको तो रहने के लिए घर नहीं है, आप क्या समझेंगे कि ऐश्वर्य क्या होता है? यह सुनकर शिव ने समझ लिया कि पार्वती को माया ने जकड़ लिया है । शिव के बहुत पूछने पर पार्वतीजी ने विष्णु लोक में जो सब देखा था, उसका वर्णन भगवान् शिव के समक्ष कर दिया और साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि मुझे विष्णु लोक से अधिक सुन्दर राज प्रासाद चाहिए ।

भगवान् शिव ने तुरन्त विश्वकर्मा को बुलाया और कहा कि एक सुन्दर स्थान खोजो, फिर वहाँ विष्णु लोक से भी बढ़िया सोने का भवन बनाओ ।

आदेश पाकर विश्वकर्मा ने त्रिकूट पर्वत के निकट एक रमणीक स्थान की खोज की । फिर उन्होंने शिव से आदेश प्राप्त कर उस स्थान पर अतिसुन्दर स्वर्ण भवन तैयार किया, जिसका नाम लंका रखा गया । भवन तैयार होने पर विश्वकर्मा भगवान् शिव के पास गये और कहा कि भगवन्! भवन तैयार है, आप गृहप्रवेश करें । भगवान् शिव और पार्वतीजी लंका आये, गृहप्रवेश के लिए पंडित की खोज हुई । विश्रवा का आश्रम भी वहीं था । भगवान् शिव ने उन्हें बुलावा भेजा । गृहप्रवेश का पूजन प्रारम्भ हुआ, पूजन के पश्चात् विश्रवा ने भगवान् से दक्षिणा की मांग की । भगवान् शिव ने कहा कि आपकी जो इच्छा हो मांग लें । यह सुनकर विश्रवा ने कहा कि प्रभु आप सोच समझ कर वचन दें। भगवान् शिव ने कहा– मेरे लिए इस संसार में क्या असम्भव है? तुम जो भी मांगोगे मैं दूंगा । यह सुनकर विश्रवा ने कहा कि अगर दक्षिणा देना चाहते हैं तो मुझे यह सोने की लंका ही दे दीजिए । यह सुनते ही भगवान् शिव मुस्कुराने लगे और पार्वतीजी आश्चर्य में पड़ गईं, लेकिन भगवान् ने **"एवमस्तु"** कह दिया । लंका विश्रवा को मिल गई । उसी लंका को विश्रवा ने अपने बड़े पुत्र कुबेर को दिया और कालांतर में कुबेर से रावण ने छीन लिया ।

जब भगवान् शिव ने लंका को दक्षिणा स्वरूप विश्रवा को दे दिया तो पार्वतीजी को बड़ा दुःख हुआ । दोनों जब वापस कैलाश लौटने लगे तो पार्वतीजी ने शाप दे दिया कि यह सोने की लंका एक दिन जलकर राख हो जाएगी । पार्वतीजी कैलाश लौट गईं । लेकिन प्रतिदिन वह त्रिकूट पर्वत पर जातीं और देखती थीं कि अब तक लंका जली या नहीं । लंका में जाकर वह एक पहाड़ पर बैठ, लंका को देखा करती थी । पहाड़ होने के कारण वहाँ अन्य जीव-जन्तु, चिड़िया आदि भी आती थीं और अपने बिट से पहाड़ को गंदा कर देती थी । इससे पार्वतीजी काफी दुःखी रहती थी । एक दिन पार्वतीजी ने भगवान् शिव को यह बात बताई । भगवान् शिव ने उसी समय यह शाप दे दिया कि जो कोई भी जीव उस पहाड़ पर चढ़ेगा, वह जल जायेगा ।

हनुमान्जी के लंका पहुंचने पर उसी त्रिकूट पर्वत पर उनके भय त्यागकर चढ़ने संबंधी पंक्ति हमें मिलती है । हनुमान्जी को पहाड़ पर चढ़े देख माता पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा कि आपके शाप का क्या हुआ? तो इसके उत्तर में भगवान् शिव ने कहा–

उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जे कालहिं खाई ॥

यही कारण था कि पहाड़ पर चढ़ने में हनुमान्‌जी को कोई भय नहीं लगा । हनुमान्‌जी एक तो शंकरसुवन हैं और दूसरे रामभक्त हैं । सत्य है रामभक्त का काल या महाकाल क्या बिगाड़ सकता है? ऐसे हैं हमारे हनुमान्‌जी ।

11. डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥

यह बात प्रकृतिसिद्ध है कि गिद्ध मरे हुए जीवों को ही खाते हैं, जीवित प्राणियों के पास नहीं जाते है । तब ऐसी स्थिति में काल की परवाह न करने वाले जाम्बवन्त, हनुमान और अंगद आदि निर्भय एवं अति धीर-वीर बहादुर इस पंखहीन गिद्ध के पास जाने में क्यों डर रहे हैं और **'मोहि अहार दीन्ह जगदीसा'**, इस प्रकार के गिद्ध वचन से किस कारण से भयभीत हो गए । वस्तुतः गोस्वामीजी के द्वारा लिखे गए इस चौपाई का लोग संगतपूर्ण अर्थ नहीं निकालते हैं और व्यर्थ की शंका से परेशान दीखते हैं । दरअसल यहाँ 'मरना' हमें सत्य जान पड़ता है ।

इस निश्चय से यह भाव निकलता है कि समुद्र किनारे कुश बिछाकर विवशतापूर्वक बैठने से पूर्व इन सबों को यह आशा थी कि भगवान हम सबों की रक्षा का कोई न कोई उपाय अवश्य ही निकाल देंगे । परन्तु जब ये सभी आश्रयविहीन होकर बैठे हुए रहते हैं कि सहसा इनके बीच अशुभ सूचक अमंगलमय गिद्ध की बोली सुनाई पड़ती है । तब वे सभी सोचने लगते हैं कि हमारी होनहार ठीक नहीं है । अब लक्षण ऐसा ही दीखता है कि हमारा यहाँ निश्चय ही मरण होगा– **'अब भा मरन सत्य हम जाना।'**

इस प्रकार से इस प्रसंग का अर्थ यह है कि वे सभी गिद्ध के कारण अपने आपको मौत के मुँह में जाना नहीं कहा अपितु आगामी भय को भाँप कर बोला, क्योंकि गिद्ध जैसे पक्षियों का कुसमय में बीमार व्यक्तियों के समीप में प्रकट होना अथवा बोलना अशुभ माना जाता है । लंकाकाण्ड में रावण की युद्ध-यात्रा के समय भी इस अशुभ दर्शन का उल्लेख मिलता है–

बैठहिं गीध उड़ाहिं सिरन्ह पर। चलत होहिं अति असुभ भयंकर॥

रामायण में सात काण्ड देने के पीछे रहस्य

आदिकाव्य रामायण की सम्पूर्ण कथाओं को सात काण्डों में बाँटकर कहने का अभिप्राय अधोलिखित है–

1. विषम संख्या– सात की संख्या खगोलशास्त्र के अनुसार विषम होने के कारण मांगलिक है और सृष्टि में अधिक प्रचलित है, जैसे कि दिन सात हैं, प्रधान सागर भी सात हैं। इसी तरह सप्तद्वीप और सप्त ऋषि भी हैं।

2. सप्त सोपान– कलियुग के कुटिल जीवों को पार करने के लिए हम इसमें सप्त सोपान रूपी सात जहाज बनाते हैं और जिनके सहारे कुटिल जीवों के गुणहीन रूपी सागर को पार करते हैं–

सुठि सप्त जहाज तयार भयो। भवसागर पार उतारन को॥

3. सात सीढ़ी– मानसरूपी सरोवर में सात सीढ़ियों के माध्यम से उतरते हैं–

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञाननयन निरखत मनमाना॥

4. सप्त पुरी– मोक्ष को प्रदान करने वाली पुरियाँ भी सात ही हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं– काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारका, अयोध्या, मथुरा, माया–

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्चिरवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका॥

शास्त्रकथन आध्यात्मिक मन्तव्य है कि इन सात पवित्र नगरों में मृत्यु होने से शाश्वत सुख मिलता है।

तद्सम्बन्धी तथ्य है कि रामायण के सातो कांड जीवों को मुक्ति देने के लिए सप्तपुरियों के समान है।

5. संगीत स्वर– संगीतशास्त्र के अध्ययन विस्तार के केन्द्र अर्थ, स्वर, इनकी संख्या भी सात हैं– षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद।

6. अधो लोक– समस्त सृष्टि में समाहित अधोलोकों की संख्या भी सात है जिनके स्मरण से दिन भर मंगलमय कार्य होता रहता है, ये इस प्रकार है– अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल।

7. सप्त पर्वत– कुल पर्वतों की संख्या भी सात है जिनको प्रातःकाल में स्मरण करना कल्याणकारक माना जाता है–

महेन्द्रोमलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥

8. सप्त ऋषि– सात तारों का समूह सप्तर्षि नामक नक्षत्रपुंज हैं जिनमें सात ऋषि अर्थात् मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ हैं । इन्हें प्रातःकाल में स्मरण करके ही अपनी दैनन्दिन कार्य-तालिका को शुरू करनी चाहिए ।

9. मूल तत्त्व– शरीर के संघटक मूलतत्त्व भी सात ही हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं– अन्नरस, रूधिर, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा, वीर्य ।

10. सप्तपदी– वैवाहिक मांगलिक अवसर पर दूल्हा और दुलहिन विवाह संस्कार के समय सात पग मिलकर चलते हैं । इसके बाद विवाह सम्बन्ध अटूट हो जाता है ।

11. सप्त प्रकृति– राज्य के सात संघटक तत्त्व अथवा अंग होते हैं जिनकी अनुकूलता से राज्य का सुसंचालन होता है ।

"स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।"

अर्थात् स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बलशाली सैनिक।

12. सप्त जिह्वा– अग्नि की जिह्वा अथवा लपटें भी सात हैं–

कराली धूमिनी श्वेता लोहिता नीललोहिता।
सुवर्णा पद्मरागा च जिह्वा सप्त विभावसोः॥

13. सात लोक– पृथ्वी के ऊपर में पाये जाने वाले लोकों की संख्या सात है । ये क्रमशः इस प्रकार हैं– भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्य या ब्रह्मलोक । ये सभी एक-दूसरे से ऊपर स्थित हैं ।

14. सात महानदी– समस्त सृष्टि में विद्यमान नदियों में सात महानदी है जिनके स्मरण से व्यक्ति मन-वचन और कर्म, तीन विधियों से पवित्र हो जाता है– गंगा, यमुना, गोदावरी, सिन्धु, सरस्वती, नर्मदा और कावेरी –

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

15. सप्त स्नान– वेद-स्मृति ग्रन्थ में कहे गए समस्त कार्यों का सम्पादन स्नान के पश्चात् ही किया है । अतएव लक्ष्मी, पुष्टि एवं आरोग्य की वृद्धि चाहने वाले व्यक्ति को स्नान सदैव करना चाहिए । इसके सात प्रकार हैं– मन्त्रस्नान, भौमस्नान, अग्निस्नान, वायव्यस्नान, दिव्यस्नान, वारूणस्नान और मानसिक स्नान ।

16. सप्तमृत्तिका– किसी भी यज्ञ व पूजा-पाठ में पवित्र कलश में सप्तमृत्तिका छोड़ने का विधान है । वे सात मिट्टी इस प्रकार हैं–

अश्वस्थानाद्गज्जस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात्।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्।।

17. सप्तधान्य– यज्ञीय विधानों में सप्तधान्य के ऊपर कलश को स्थापित किया जाता है । ये सप्तधान्य हैं–

यवधान्यतिलाः कंगुः मुद्गचणश्यामकाः।
एतानि सप्तधान्यानि सर्वकार्येषु योजयेत्।।

अर्थात् जौ, धान्य, तिल, कँगुनी, मूँग, चना और साँवा– ये सप्तधान्य कहलाते हैं ।

18. सप्तघृतमातृका– आध्यात्मिक परम्परा के अनुसार घृतमातृकाओं की संख्या भी सात ही है– श्री, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा और सरस्वती । आग्नेय कोण में इनकी स्थिति होती है । अतः मांगलिक कार्यों में किसी वेदी पर स्थापित करके इन सबों का पूजन किया जाता है ।

19. सप्त अमर पुरुष– सम्पूर्ण सृष्टि में सात विभूतियाँ अजर-अमर हैं । प्रातःकाल इनका स्मरण करने से दिनभर कुशल बना रहता है–

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

अर्थात् अश्वत्थामा, राजा बलि, व्यास मुनि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम, ये सभी चिरंजीवी हैं ।

प्रभु श्रीराम के चार भाइयों के रूप में अवतरित होने के कारण

ऐसा प्रश्न उठता है कि जब परमात्मा का एक ही स्वरूप है तो फिर प्रभु को श्रीराम आदि चार भाई के रूप में पृथक्-पृथक् अंश बनकर आने की क्या आवश्यकता थी? वैसे तो प्रभु अलग-अलग समयों में नाना नाम से चौबीस अवतार रूपों में अवतरित हुए हैं परंतु त्रेता युग में एक साथ महाराज दशरथ के घर में चार अंश में अवतरित होने के पीछे क्या कारण था?

दरअसल यह संपूर्ण सृष्टि चार गुणों से बनी है और इस सृष्टि में चार की संख्या में बहुविध तथ्य व तत्त्व मौजूद हैं। इसलिए प्रभु को चार रूपों में श्रीरामादि नाम से अवतार ग्रहण करना पड़ा। आइए, इसे पद्यात्मक रूप में इस प्रकार समझें-

पुरुषार्थ चतुष्टय चार दिशा, चार अवस्था चार वेद।
ब्रह्मा के चारों मुख बनकर आयु, विद्या बल यश का प्रभेद।।
है शील शक्ति सौन्दर्य सौम्य, इस विभु प्रभु का विश्व रूप।
जाग्रत सुषुप्ति अरू स्वप्न तुरीय से, परे प्रभु का दिव्य स्वरूप।।
वैराग्य भक्ति अरू ज्ञान मोक्ष, शाश्वत है ब्रह्म विभाकर का।
श्रद्धा भक्ति में बंधकर जो आदर्श बना है जीवन का।।
नायक-नायिका है चार-चार, है चार पहर अरू चार पीठ।
मन की वृत्ति है चार, है जीव प्रवृत्ति के चार पृष्ठ।।
इस भांति प्रभु ने चार रूप में, दशरथ घर अवतार लिया।
श्रीराम लखन अरु भरत शत्रुघ्न बन, धरती का उद्धार किया।।



शब्दबोध

1. पुरुषार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
2. चार दिशा – पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
3. चार अवस्था – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यास
4. चार वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
5. चार ऋत्विज – होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्‌गाता
6. जीवन में प्राप्य – आयु, विद्या, बल, बुद्धि, यश व बल
7. जीवन की श्री – शील, शक्ति, सौन्दर्य और सौम्यता
8. जीवन का स्वरूप – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय
9. जीवन का उद्देश्य – वैराग्य, भक्ति, ज्ञान और मोक्ष
10. नायक चार – धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित और धीरप्रशान्त
11. नायिका चार – पद्‌मिनी, मोहिनी, शंखिनी, हस्तिनी
12. चार पहर – प्रातः, ब्रह्ममुहूर्त, संध्या और रात्रि
13. चार पीठ – बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम्, द्वारिका
14. मन की वृत्ति चार – मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार
15. जीव की मूल प्रवृत्ति – आहार, निद्रा, भय और मैथुन
16. चार युग – सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग
17. चार कोण – ईशान, नैऋत्य, वायव्य, आग्नेय
18. चार वर्ण – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र
19. चार साहित्यिक काल – वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल
20. चार आयुध – अस्त्र, प्रहरण, हस्तमुक्त, यंत्रमुक्त
21. चार स्वरूप – राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न



सौ० गीताप्रेस

बालकाण्ड

श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

बालकाण्ड

ईशप्रार्थना

द्वादशज्योतिर्लिङ्गेषु वैद्यनाथ श्रेष्ठतमः ।
सर्वकामनासिद्ध्यर्थं पूज्यन्ते दिव्यात्मनः ।।

द्वादश ज्योतिर्लिंगों में बैद्यनाथ श्रेष्ठ हैं । सभी कामनाओं को पूरा करने के लिए भगवान् शिव की पूजा दिव्यात्मा वाले संत निरन्तर करते हैं ।

धन-वैभव-सुत-प्राप्त्यर्थं पूज्यते शिवकामदा ।
तस्य गृहे न विनश्यन्ति सुख-शान्ति-सम्पदा ।।

धन-वैभव एवं पुत्र की प्राप्ति के लिए कामदालिंग की पूजा की जाती है । जो इस शिव लिंग की पूजा करते हैं उसके घर से सुख शांति कभी नष्ट नहीं होती ।

माता महालक्ष्मी विष्णुप्रिया हैं, समुद्रमंथन से उत्पन्न हुई हैं । समस्त लोक का कल्याण करने वाली देवी हैं । कहते हैं कि श्री की स्तुति से भगवान् विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं । अतः भगवान् विष्णु की कृपा प्राप्ति के लिए माता लक्ष्मी की स्तुति करें-

माता लक्ष्मी को समर्पित द्वादशस्तोत्र

महालक्ष्मी नमस्तुभ्यम् ।

नमस्तुभ्यं महालक्ष्मि क्षीरसागरवासिनि ।
नमस्तुभ्यं विष्णुप्रिये सुखशान्तिप्रदायिनि ।।
नमस्तुभ्यं महामाये जगत्प्राणविमोहिनि ।
दिव्यशक्तिसुसम्पन्ने पूर्णं कुरू मनःकामनाम् ।।

नमस्तुभ्यं सहस्ररूपे ऋद्धिसिद्धिप्रदायिनि ।
मातृरूपेण महादेवि दुष्टग्रहविनाशिनि ॥
क्षम्यतां सर्वपापानि अज्ञानतिमिराछन्नोऽहम् ।
पुत्रहिताय मातृरूपे आयुर्विद्याप्रदानं कुरू ॥
सिन्धुसुते नमस्तुभ्यं यशः कीर्तिस्वरूपिणि ।
विष्णुभार्ये जगन्मात शीलशक्तिधारिणि ॥
नमस्तुभ्यं महादेवि सर्वकल्याणकारिणि ।
क्षम्यतां सर्वदोषान् आयुष्मन्तं कुरू मे ॥
चतुर्भुजि महामात मुक्तहस्तवरदायिनि ।
वरं ब्रूहि सरलहृदये प्रसीद परमेश्वरि ॥
भ्राम्यामि अनन्तकालाद् पापाग्निप्रज्वलितेषु ।
विनिर्मुक्तं कुरू बन्धनाद् प्रसीद हृदयेश्वरि ॥
रोग-शोक-अर्थसंकटं प्रकम्पितं मम गात्राणि ।
सर्वांबाधां हर देवि देहि मे परमं सुखम् ॥
मुक्तिहेतु दिव्यज्ञानं जगद्हेतु सर्वेश्वरि ।
पाहि माम् महादेवि क्षम्यतां करुणेश्वरि ॥
निर्विघ्नं कुरू मे देवि धन वैभव प्रदाय च ।
आयुर्विद्यां यशो बुद्धिं देहि मे परमेश्वरि ॥
नाहं जानामि भक्तिपूजां नाहं जानामि तव कीर्तनम् ।
नतमस्तको सुदर्शनोऽहं क्षम्यतां मे शरणदायिनि ॥

भगवान् विष्णु को समर्पित द्वादशस्तोत्र

महाविष्णुस्तोत्रम्

जगत्प्राण महाविष्णो व्याप्तसर्वचराचर ।
अनन्त ऊर्जा विभुरुप प्रकाशयेत् ब्रह्माण्डम् ॥
संस्थापनाय धर्मस्य पालनार्थं सर्वभूतानाम् ।
रोग-शोक विनाशं कृत्वा परिरक्षति भक्तवत्सलम् ॥
निर्गुणः ब्रह्मजिज्ञासुभ्यः सगुणो मूर्ति उपासकेभ्यः ।
अपरे निर्गुणसगुणरूप प्राणरूपे संस्थिताः ॥
सहस्रनाम सहस्रगुण पूजितः सर्वलोकेषु ।
दिव्यं देहि मे चक्षुः प्रसीद कमलापति ॥
आयुः विद्यां बलं देहि मे लक्ष्मीपति ।
सर्वविघ्नविनाशाय प्रसीद हे जगदीश्वर ॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं समर्पितं पुष्पाञ्जलिम् ।
क्षम्यतां सर्वपापानि स्वीकुरू मम गीताञ्जलिम् ॥
सकलकामनासिद्ध्यर्थं विष्णुपूजां करोति यः ।
प्राप्तेषु सर्वसम्पत्सु इदमिथ्यं न संशयः ॥
संशयविपर्ययौ परित्यज्य विष्णुचरणेषु वन्दिताः ।
ऋद्धि-सिद्धि-नवनिधिं प्राप्य प्रसीदन्ति सर्वे नराः ॥
पोष्यति सर्वलोकान् विष्णुप्राणदेवता ।
कृत्वा तं नित्यपूजां यशस्वी भवति मानवः ॥

कौस्तुभं शोभते हृदये शंखचक्रपद्मासनम् ।
विष्णुपादस्पर्शं लब्ध्वा रेणुः भवति हरिचन्दनम् ॥
मोक्षरूपमहाविष्णो मायारूपमहालक्ष्मि ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं पूर्णं कुरु मम कामनाम् ॥
विनिर्मुक्तो संसृतेः महाबाहो परमेश्वरः ।
आयुष्मान् कुरू देव नतमस्तको सुदर्शनः ॥

अब श्रीराम कथा में प्रवेश से पहले रामकथा की वंदना करें–

आओ सब मिल करके गायें, श्रीराम की कथा ।
जय श्रीराम कथा, जय श्रीराम कथा ॥
मिथिला की यह बेटी सीता, राम को यहाँ बुलाई ।
राम सिया के रूप मनोहर, हरे जगत की व्यथा ॥
जय श्रीराम कथा.....
मन में सीता राम विराजे, तन गावे हरि कथा ।
मिथिला के हर घर में गावे, सिया राम की कथा ॥
जय श्रीराम कथा.....
धन्य भाग मिथिला के वासी, राम की शक्ति बढ़ाई ।
जगतपति जो हरे सकल दुःख, उसे झुकाऊं माथा ॥
जय श्रीराम कथा.....

राम सम्पूर्ण जीव-जगत् के प्राणस्वरूप हैं। राम की कथा कहना, समुद्र को अपनी अंजुलि से नापने का प्रयास करना है। जिस कथा को भगवान् शिव, माता पार्वती से बार-बार कहते हैं। अनेक संत महात्मा जन्म-जन्मांतर से कह रहे हैं। काक भुशुण्डि सत्ताईस कल्प से सुना रहे हैं। उस कथा को कहने का साहस करना असम्भव-सा लगता है। लेकिन प्रभु के प्रति जो मेरे मन में भक्ति भावना है, उसी के कारण अति संक्षिप्त रूप से सभी देवी-देवताओं, चर-अचर, अण्डज-पिण्डज को प्रणाम करके, उन्हें साक्षी मानकर लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। इस जगत् में जितने भी सूक्ष्म और स्थूल जीव हैं, उन सबों में प्राण-रूप में केवल प्रभु का निवास है। श्रीराम हमारे प्राण हैं, हमारी सांसें हैं, दिल की धड़कन हैं, वे सर्वव्यापी हैं, उन्हीं के आशीर्वाद से हम जीवित हैं, धन-सम्पत्ति, मान-मर्यादा, सुख-शांति सब उन्हीं का दिया हुआ है। जब तक हमारे मन में उनके प्रति भक्ति बनी रहती है, तब तक उनका आशीर्वाद हमें मिलता रहता है-

जिस राम ने तुमको जनम दिया, सुत-दारा-सम्पत्ति मान दिया।
हर साँस में जिसने प्राण दिया, हर संकट से परित्राण किया ॥
उस राम से नेह लगाना है, जीवन में सब कुछ पाना है।
श्रीराम प्रभु के आशीष से, इस तन को राम बनाना है ॥

गोस्वामीजी कहते हैं-

हिम ते प्रकट अनल बरू होई। बिमुख राम सुख पावे न कोई ॥

श्रीराम से विमुख होकर कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। इसीलिए मैंने रामकथा के पूर्व ग्रह-नक्षत्रों, देवी-देवताओं की प्रार्थना की है कि वे सभी मुझे शक्ति दें, अपना आशीर्वाद दें, ताकि मैं इस सुमंगल काम को पूरा कर सकूं। मैंने इस महान् कार्य को पूरा करने के लिए देश में प्रचलित रामकथाओं को ही आधार बनाया है, विशेषकर **वाल्मीकि रामायण** और **रामचरितमानस** को प्रेरणास्वरूप माना है।

जिस राम ने सबको प्राण दिया, उस राम को शीश झुकाना है ।
अपनी भक्ति के आंगन में, रघुवर को यहाँ बुलाना है ॥

मैंने सुना है कि महाभारत लिखते समय वेदव्यास ने गणेशजी की सहायता ली थी । गणेशजी ने कहा था कि वेदव्यास जब कथा कहते समय रूक जाएंगे, तो मैं कथा लिखना छोड़ दूंगा । इस पर वेदव्यास ने कहा था कि गणेशजी जो भी लिखें, उसका अर्थ, समझते जाएं । इसलिए महाभारत में कई जगह गूढ़ विषयों की चर्चा की गई है । जिसको लिखते समय गणेशजी को उसका अर्थ समझना पड़ता था ।

दरअसल रामकथा तो महासागर की तरह विशाल है । मैं लाख छलांग लगाऊँगा परन्तु सागर के किनारे ही रहूँगा । कबीरदासजी भी सही कहते हैं-

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरा खोजत रहे, देख किनारे बैठ ॥

मैं जब रामकथा को पढ़ता हूँ, तो लगता है यह हम सबों के जीवन की कहानी है । अगर हम अपने जीवन को देखें, तो हमारे जीवन में राम कहीं न कहीं खड़े अवश्य ही मिलेंगे। यह बात दूसरी है कि हम अपने विकारों और अहंकारों की चादर से राम को ढके हुए हैं। जो लोग इस चादर को हटा लेते हैं, उनके सामने में राम खड़े दिखते हैं । क्योंकि संसार में जो दिख रहा है, वह सब नकली है । हम सभी लोग अपने स्वार्थ की चादर से राम को ढंक कर अपना स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं । तभी राम को कहना पड़ता है कि मुझे छोड़कर धन, रूप और पद पाना चाहते हो तो उससे तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, सब कुछ रहते हुए भी दुःखी रहोगे । लेकिन जो लोग राम को अपने जीवन में धारण कर लेते हैं उन्हें ही परम सुख मिलता है । तो आइये, हम सब लोग रामकथा को प्रारंभ करने के पूर्व मन को शांत करें और भक्तिपूर्वक रामकथा को पढ़ें और गायें । जितनी भक्ति से इसे पढ़ेंगे, उतने ही फल आपको मिलेंगे । केवल रामकथा को पढ़कर आप संसार के सारे सुख प्राप्त कर सकते हैं । कहते हैं-

चौ०– जौं इच्छा धरिहें मन माहीं । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

दुर्गा सप्तशती में माता दुर्गा कहती हैं–

यं यं चिन्तयते कामं । तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥

हमारे सभी शास्त्र कहते हैं कि मन में जो भी कामना हो उसे निष्ठापूर्वक परमात्मा के सामने प्रार्थना करो, वह अवश्य ही पूरा हो जाएगा । हम दुःख में, संकट में, तनाव में, चिन्ता और पीड़ा में इसलिए छटपटाते रहते हैं कि परमात्मा के समक्ष इन संकटों से मुक्ति के लिए प्रार्थना नहीं करते । मंदिरों में पूजा करने जाते हैं, वहाँ भी हमारा ध्यान कहीं और होता है । भगवान् सबके मन की बात समझते हैं, क्योंकि वे अंतर्यामी हैं । तुम दुनिया को ठग सकते हो, भगवान् को नहीं ठग सकते । इसलिए पूजा करते समय अथवा मंदिर में जब सच्चे मन से भगवान् की आराधना करोगे, तो तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा । मन में खोट लेकर जाओगे तो, तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा । भगवान् को अगर मन में बैठाना है तो, तुम्हारे मन में जो षड्विकार, बुराई आदि बैठी है, उसे पहले निकालो । तुमने तो पहले से ही अपने ड्राईंग रूम में दुष्टों को बैठा रखा है, फिर वहाँ भगवान् कैसे बैठेंगे? तुम एक साथ भगवान् और अपनी दुष्प्रवृत्तियों को अपने मन-मंदिर में कैसे बैठा सकोगे? कहते हैं–

तोड़ो तेरा मेरा बन्धन, कोई नहीं है तेरा ।
बीच भंवर में नैया तेरी, राम है एक किनारा ॥
भाई कहे तुम मेरा बन्धु, मातु कहे सुत मेरा ।
पत्नी कहे तुम प्राणपति हो, कैसे बनूं प्रभु तेरा ॥

इसलिए भाई मेरे! राम के सिवाय और कोई हमारा नहीं है । प्रातःकाल का समय बड़ा पवित्र होता है। प्रातःकाल कभी क्रोध न करें, आक्रोश में न बोलें और परमात्मा के सामने बैठकर उनसे आशीर्वाद माँगें कि हे परमात्मा! मेरे शरीर, मन और बुद्धि की रक्षा करना । इसके साथ में इस मंत्र का पाठ अवश्य करें–

दिव्यां देहि मे शक्तिं दिव्यां देहि शांतिं मे ।
दिव्यं देहि आयुष्यं यशो बुद्धिं समुज्ज्वलाम् ॥

इसके साथ ही भगवान् शिव, राम, हनुमान् एवं गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त कर अपनी दिनचर्या प्रारंभ करें । इससे आपके मन के सारे मनोरथ पूर्ण होंगे । गोस्वामीजी लिखते हैं-

चौ०

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे । पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥

रामायण में गोस्वामीजी ने रामकथा कहने वाले सभी मुनियों, वेद, पुराण, उपनिषद्, सुरसरी, माता-पिता, अवध के राजा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सबों की वन्दना की है और तब रामकथा को धारण किया । कहते हैं, राम शब्द के उच्चारण मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

दो०

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥

श्रीराम का नाम तो कल्पतरु है, जिसकी कथा कहने से तुलसीदास महान् बन गए। इसलिए जो कोई भी इस रामकथा को गाता है, वह महान् बन जाता है ।

'रा' कहत मुख निकसे, निकसत पाप पहाड़ ।
'म' ऐसा धूर्त है, जो चट बन्द करत किवाड़ ॥
सबसे ऊंचा राम रस, जो पीए सो मस्त ।
बाकी रस निस्सार है, कहे 'सुदर्शन' संत ॥
धन मांगे सुख बिछुड़े, सुख मांगे धन होय ।
कहे 'सुदर्शन' हरि बिना, सब सुख दुर्लभ होय ॥

मनुष्य को अपने जीवन में सुख और शांति इसलिए नहीं मिलती, क्योंकि वह परमात्मा से धन-वैभव और संसार माँगता है, सुख नहीं माँगता। जो व्यक्ति भगवान् से केवल सुख माँगता है, उसे धन भी मिलता है और तन का सुख भी मिलता है। अगर परमात्मा हमें सुखी होने का आशीर्वाद दे भी दें, तो भी हम तभी सुखी होंगे जब हमारे पास सब कुछ रहेगा। परमात्मा से सुख को तोड़कर मत माँगो, पूरा सुख माँगो। विभीषण ने परमात्मा से माँगा था कि तुम मुझे मिल जाओ। राम ने उसे क्या नहीं दिया? राम को पाते ही उसे सब कुछ मिल गया।

चौ०– सोइ सम्पदा विभीषण हि सकुचि दीन्ह रघुनाथ।

पुनः गोस्वामीजी रामकथा की महत्ता पर लिखते हैं–

चौ०– भगति हेतु बिधि भुबन बिहाई। सुमिरत सारद आबति धाई॥

जब कभी कोई व्यक्ति रामकथा लिखना या कहना चाहता है तो उसकी जीभ पर सरस्वती स्वयं बैठ जाती है इस पंक्ति का यही अर्थ है। क्योंकि सरस्वती भी यही चाहती है। शायद इसलिए ही मैं इस रामकथा को कहने का साहस भी कर सका। मैं यह जानता हूँ कि मैंने बचपन से आज तक जीवन में कोई अच्छा काम नहीं किया, इस संसार में भटकता रहा। जो सुख बहुत पहले ही मुझे प्राप्त कर लेना चाहिए था, आज तक मैं प्राप्त नहीं कर सका। क्योंकि मन में अभिमान बैठा हुआ था कि जब बुढ़ापा आएगा तो देखा जाएगा। लेकिन बुढ़ापा तो बहुत पहले ही आ गया। धन्य हैं वे लोग जिन्हें बचपन में होश आ जाता है। धन्य हैं जगद्गुरु शंकराचार्य, जो ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही संन्यस्त हो गए थे। धन्य हैं हमारे देश के अनेक संत, जिन्होंने बचपन से ही राम नाम का ध्वज उठाकर अपने जीवन को धन्य बना लिया। धन्य हैं गोस्वामी तुलसीदास, जिन्होंने सब कुछ छोड़कर राम को अपने जीवन में उतारा। मैं उन सभी माताओं को प्रणाम करता हूँ जिनके पुत्र और पुत्रियाँ रामभक्त बन गए। कहा भी जाता है कि–

है धन्य सुहागिन वो जिसने, भारत को तुलसीदास दिया ।
मेंहदी, महावर रच कर भी, सुख सपनों से संन्यास लिया ॥

भगवान राम के नाम उच्चारण के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है–

कागज के पन्नों-पन्नों को तुलसी, तुलसीदल बना गए ।

सचमुच वह व्यक्ति धन्य है जो राम का गुणगान करता है । मैं तो कोई लेखक, विद्वान अथवा रामकथा का ज्ञाता नहीं हूँ, मेरी तो प्रभु के प्रति एकपक्षीय भक्ति है । क्योंकि प्रभु ने मुझे अब तक अपनी भक्ति नहीं दी है । शायद वे जानते हैं मेरी भक्ति निष्काम नहीं है। अगर मेरी भक्ति निष्काम होती तो अब तक संसार के झूठे धन, यश, मान के पीछे क्यों दौड़ता रहा? अब, जब होश आया है तब रामकथा की पोथी लेकर घूम रहा हूँ। सम्भव है इस सेवा से प्रसन्न होकर प्रभु श्रीराम मुझ पर दया करें–

कवि न होऊ नहीं चतुर कहाबहुं । मति अनुरूप राम गुन गाबहुं ।
कह रघुपति के चरित अपारा । कह मति मोर निरत संसारा ॥

अब इस कार्य हेतु मैं सबसे पहले हनुमान्जी की प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे शक्ति दें ताकि मैं अपनी टूटी-फूटी वाणी में रामकथा कह सकूं–

दो०

प्रनवऊँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥

इसके साथ ही फिर मैं माता सीता को भी प्रणाम करता हूँ, जो प्रभु करूणानिधान को बहुत प्रिय हैं–

जनक सुता जग जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥

मुझे अब ज्ञान हो गया है कि जब तक जीवन में राम नाम का दीप नहीं जलेगा, तब तक मन का अन्धकार नहीं हटेगा ।

दो०

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहंसि उजिआर ॥

तुम अनन्त हो, दिव्यप्रभा हो, राम तुम्हारा मूल ।
ऐसी करनी करो जगत में, राम रहे अनुकूल ॥

सत्य निष्कर्ष है कि यह राम नाम ही हमारे जीवन के सारे कष्टों को हर सकता है । क्योंकि-

कथा श्रवण व नाम जाप से, कोटि परम पद पाये ।
अबकी तेरी बारी बंधु, मौका छूट न जाये ॥

मैं यह भी जानता हूँ कि, मेरे मन में हमेशा पाप भरा रहता है फिर भी- **"भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥"** चाहे जिस भाव से भी हो, राम का नाम लेने में सबका भला होता है । कहते हैं "घी की लड्डू टेढ़ो भला ।" अगर मैं पापी हूँ तो मेरा उद्धार कौन करेगा? अब तो राम ही मुझे सुधारेंगे-

क्यों पछताए देर हो गई जब जागे तब हुआ सवेरा ।
राम के नेह से संकट सारे कट जाएंगे तेरा ॥
मत कहना कि किसी सन्त ने, राह नहीं बतलाया ।
फिर कहता हूँ राम सत्य है, शेष जगत सब माया ॥
ना घर तेरा ना घर मेरा, कौन किसे समझाए ।
रैन बसेरा यह जग भाई, रात कटे घर जाए ॥

इसलिए मैंने निश्चय किया है कि जीवन भर राम नाम का ध्वजा पताका लेकर घर-घर घूमता रहूँगा । तो आइए, हम सब मिलकर राम नाम का ध्वजा पताका लेकर चलें, इस गीत को मैंने बड़े प्रेम-भाव से लिखा है-

राम नाम का ध्वजा पताका मैं फहराऊँ गली गली ।
है कोई ऐसा राम का वन्दा साथ चले जो गली गली ।
जब से तेरा सहारा पाया, संकट सारे दूर हुए,
जीवन में खुशियाँ भर आई, सारे बन्धन टूट गये ॥
घर बाहर मेरी बगिया में, धूप सुगन्ध की कली खिली,
है कोई ऐसा राम का ... ...॥
पूजा और पूजापा बनकर, मंदिर के द्वारे अटका,
मन भरमाया चैन न पाया, बीच डगर में ही अटका ।
दर्शन संतों के जब पाया, मन में तब से शांति मिली,
है कोई ऐसा राम का... ... ...॥
अब तो जीवन सौंप दिया प्रभु चाह नहीं कोई मन में है,
तेरे चरणों के प्रताप से, आह नहीं अब तन में है ।
पूजा की जब थाल बन गया, सांसो की पुरवाई चले,
है कोई ऐसा राम का... ... ...॥

अब इस क्रम में मैं भगवान् शिव को प्रणाम करके इस रामकथा में प्रवेश करना चाहता हूँ।

चौ०

सादर सिवहि नाइ अब माथा । बरनउँ बिसद राम गुन गाथा ॥

इतिहास प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी ने सम्वत् 1631 में श्रीराम कथा कही–

चौ०

संबत सोरह सै एकतीसा । करउँ कथा हरि पद धरि सीसा ॥

गोस्वामीजी के इस चौपाई को आज मैं अपनी मति से इस प्रकार कहता हूँ–

"द्विशत आठ इस्वी सन् रवि सोम का पावन दर्शन ।"

अस्तु, श्रीराम के अवतरण की अनेक कथा कही जाती है, लेकिन भगवान् शिव ने सबसे पहले इस देश और समाज के कल्याण के लिए एक योजना बनाई और ऋषियों की बैठक की–

चौ०

एक बार त्रेता जुग माहीं । संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥

वहीं राम के अवतरण की पूरी योजना बनाई गई । सभी देवी–देवता मिलकर परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे । देवताओं की प्रार्थना पर प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई कि–

चौ०

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥

आकाशवाणी हुई कि हे देवता! आप सभी लोग अपने–अपने घर जाएं । मैं अयोध्या के राजा दशरथ के घर में पुत्र बनकर जन्म लूंगा और आप सभी लोग–

चौ०

बानर तनु धरि–धरि महिं हरिपद सेवहु जाइ ।

इस प्रकार भगवान् का आदेश पाकर सभी देवता वानर योनि में जन्म लेने चल पड़े । इस प्रसंग को आगे बढ़ाने से पूर्व भगवान् शिव और माता पार्वती के अवतरण की कथा समझनी होगी, क्योंकि आगे की कथा के लिए यह पूर्व पीठिका है।

शिव-पार्वती का अवतरण और विवाह

भगवान् शिव और माता सती एक दिन भ्रमण कर रहे थे, भगवान् शिव ने देखा कि श्रीराम अपनी पत्नी सीता की खोज में जंगल में भटक रहे हैं। भगवान् शिव ने वहीं से राम को प्रणाम किया। यह देख सती के मन में संदेह हुआ कि हमारे पति तो देवाधिदेव हैं। फिर इन्होंने पत्नी वियोग में भटकते राम को क्यों प्रणाम किया? सती के पूछने पर शिव ने कहा कि राम परमेश्वर हैं, वे लीला कर रहे हैं। यह सुन सती के मन में और अधिक संदेह बढ़ गया वे राम की परीक्षा लेने के लिए चल पड़ीं। भगवान् शिव ने उन्हें बहुत रोका लेकिन स्त्री स्वभाव के कारण सती नहीं मानीं। सती सीता का वेष बनाकर राम की परीक्षा लेने के लिए पहुंच गई। राम जिधर-जिधर वन में घूम रहे थे, सीतारूपी सती उनके आगे-आगे चल रही थी। एक बार सती राम के आगे आ गई। सती ने देखा कि चारों तरफ अनेक राम खड़े हैं और सभी देवता राम के चारों ओर खड़े हैं। यह देख सती चकरा गई और आंख मूंद कर बैठ गई। थोड़ी देर बाद जब आंख खुली तो राम ने उन्हें प्रणाम किया और कहा-

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहुँ केहि हेतू॥

अर्थात् श्रीराम ने पूछा- हे माता, किस कारण आप जंगल में घूम रही हैं। भगवान् शिव कहाँ है? यह देख सती आत्मग्लानि में पड़ गयी। वहाँ से जब शिव के पास लौटी तो शिव ने पूछा कि तुमने क्या परीक्षा ली? यह सुन सती ने कहा-

कछु न परीछा लिन्हिं गोसाईं। कीन्हं प्रनामु तुम्हारिहिं नाईं॥

लेकिन भगवान् शिव ने सब रहस्य समझ लिया, पुनः शिवजी ने सोचा कि जब सती माता सीता का वेष बना चुकी हैं तो उन्हें पत्नी रूप में रखना अब ठीक नहीं है। थोड़े दिनों के बाद सती के पिता महाराज दक्ष ने एक यज्ञ किया, जिसमें शिव और सती को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाये दक्ष के यज्ञ में पहुंची। वहाँ शिव के लिए कोई स्थान नहीं बनाया गया था। यह जानकर सती को बड़ा दुःख हुआ। जब सती ने अपने पिता से इसका कारण पूछा तो दक्ष ने कहा कि तुम्हारा पति बहुत अभिमानी है। एक दिन एक

सभा में वह बैठा था । मैं जब वहाँ गया तो वह खड़ा नहीं हुआ । उसने मेरा अपमान किया ।

सती ने कहा- पिताजी! ऐसी बात नहीं है, वे तो ध्यान में बैठे हुए थे, उन्होंने आप को आते नहीं देखा। इस पर दक्ष, शिव के प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करने लगे। सती अपने पति का अपमान सहन नहीं कर सकी और हवन कुंड में कूद कर जान दे दी। यह खबर जब भगवान् शिव को मिली, तो वे बड़े क्रुद्ध हुए । उन्होंने अपने गणों को भेजा कि जाकर दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर दो । फिर भगवान् शिव वहाँ आये और उन्होंने अपने त्रिशूल से दक्ष का सिर काट दिया । यह देख सभी देवता लोग शिव से प्रार्थना करने लगे कि दक्ष को जीवित कर दें । भगवान् शिव के आदेश से उसी समय एक बकरे का सिर लाकर दक्ष को लगा दिया गया । इसीलिए शिव भक्त, पूजा करते समय बकरे की आवाज बोल कर शिव को प्रसन्न करते हैं । क्रोधित शिव सती का शरीर लेकर घुमने लगे, उनके क्रोध से सारा संसार जलने लगा । यह देख भगवान् विष्णु को बहुत चिंता हुई । उन्होंने सोचा कि जब तक सती का शरीर भगवान् शिव के कंधे पर रहेगा, तब तक इनका क्रोध कम नहीं होगा । भगवान् विष्णु छिप कर पीछे से अपने चक्र से शिव के कंधे पर पड़ी सती के शरीर को काटने लगे । जहाँ-जहाँ शिव जाते, विष्णु अपने चक्र से शरीर के एक-एक भाग को काटकर वहाँ गिरा देते थे ।

इस तरह 52 स्थानों पर सती का शरीर गिरा । कहा जाता है कि कामरूप कामाख्या में सती की जंघा गिरी । कलकत्ता में अंगुली गिरी, विन्ध्याचल एवं अन्य स्थानों पर भिन्न-भिन्न अंग गिरे। इस तरह सती के 52 शक्ति पीठ आज प्रसिद्ध हैं । सिद्धि प्राप्त करने वाले, इन्हीं शक्ति पीठों में साधना करते हैं । ये सारे शक्ति पीठ बहुत पवित्र और सिद्ध स्थल माने जाते हैं । इसके बाद शिव तपस्या में लीन हो गये । इधर तारकासुर आदि दानवों की शक्ति बढ़ने लगी, तब भगवान् विष्णु ने सोचा कि इन दानवों के अत्याचार से मुक्ति के लिए भगवान् शिव को प्रसन्न करना होगा । उन्हें पुनः विवाह के लिए राजी करना होगा और तब जो सन्तान होगी वही दानवों का नाश करेगी ।

ध्यातव्य है कि भगवान् शिव तो साधना में बैठे थे । इधर सती देह त्याग करके हिमालय के घर में मेना के गर्भ से अवतरित हुई । कुछ वर्ष बाद नारदजी पधारे और उनके कहने

से पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने लगी । देवताओं ने हिमालय की पुत्री पार्वती को बहुत भटकाने को कोशिश की । लेकिन उसने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि "वह केवल शिव से ही विवाह करेगी ।"

चौ०

जनम कोटि लय रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ।।

भगवान् विष्णु और लक्ष्मी ने भी पार्वती से शिव को छोड़ देने का आग्रह किया । लक्ष्मी ने कहा– पति को पाने के लिए इतना हठ अच्छा नहीं है । माता मेना ने भी अपनी पुत्री को समझाते हुए कहा–

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्स क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।।

इधर देवताओं ने शिव का ध्यान भंग करने के लिए कामदेव और उसकी पत्नी रति को भेजा । शिव को जब पता चला कि कोई उनका तप भंग कर रहा है तो, उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया जिससे कामदेव जलकर भस्म हो गया । पति को जलते देख रति मूर्छित हो गई । उसे कुछ भी पता न चल सका कि ये सब कैसे हो गया? वह दहाड़ मारकर रोने लगी । तभी एक संत वहाँ आए और रति को इस रूप में समझाने लगे–

भ०

अब तक बाबा को काँवर चढ़ाया नहीं,
गम में आँसू बहाने से क्या फायदा ।
इस दुनिया में जो कुछ मिला है तुम्हें,
उनकी छोटी कृपा का आशीर्वाद है ।
तूने ममता के कारण भुलाया उसे,
रो-रो आँसू बहाने से क्या फायदा ।।

अब तक ... ...

भोला दानी हैं दुनिया में सबसे बड़ा,
बेलपत्ता, धतूरा भक्ति से चढ़ा ।
जब से भूला है उनको संकट में पड़ा,
रो-रो आँसू बहाने से क्या फायदा ॥

अब तक ... ...

यह जीवन प्रभु ने दिया है तुम्हें,
इस दुनिया में सब कुछ मिला है तुम्हें ।
जब आँखों से भक्ति का जल न गिराया,
तो अब आँसू बहाने से क्या फायदा ॥

अब तक ... ...

कामदेव के दहन के पश्चात् जब भगवान् शिव ने अपना ध्यान तोड़ा, तो रति को विलाप करते देखा । रति के अनुनय-विनय करने के पश्चात् भगवान् शिव ने उसे अरूप रखकर संसार में रहने का आशीर्वाद दिया । वही कामदेव द्वापर में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न बनकर उत्पन्न हुए । भगवान् शिव के रौद्र रूप को कोमल करने के लिये देवताओं ने बहुत प्रार्थना की ।

शिव जब देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हुए तो देवताओं ने उन्हें माता पार्वती की तपस्या के संबंध में जानकारी दी । इसके बाद शिवजी स्वयं पार्वतीजी के पास जाकर तप से उन्हें भटकाने की कोशिश किया परन्तु पार्वती की एकपरता देखकर अपने वास्तविक रूप में आकर उनको स्वीकार किया । पार्वतीजी ने विवाह करने का अनुरोध किया । अब भगवान् शिव मान गये और पार्वती से उनके विवाह की तैयारी शुरू हो गयी । भगवान् शिव ने अपने गणों से कहा कि बारात के साथ सज-धज कर हिमालय के घर चलने की तैयारी करो । बारात की तैयारी शुरू हो गयी । सबसे पहले भगवान् शिव को दुल्हा के रूप में सजाया गया । उन्हें वृषभ पर बैठाया गया, शरीर में भभूत और गले में

सांपों की माला, मृगछाल आदि के साथ शिव को तैयार किया गया । पुनः शिव ने गणों से कहा कि भूत-प्रेतों को भी बारात में बुलाया जाए । भगवान् विष्णु भी देवताओं के साथ पीताम्बर पहन कर बारात में शामिल हुए । जब विष्णु ने देखा कि उनके साथ भूत-प्रेत भी चल रहे हैं तो उन्होंने देवताओं को इशारा किया कि आप सभी लोग इन भूत-प्रेतों से अलग हटकर चलें । विष्णु की चालाकी देखकर शिव मुस्कुराने लगे । उन्होंने गणों को आदेश दिया कि दुनिया में जितने भी भूत-प्रेत, डाकीन हैं, सबों को बारात में बुलाओ । पूरी दुनिया के भूत-प्रेत इकट्ठा हो गए और बारात ऐसी लग रही थी जैसे भूतों का जमघट हो । किसी भूत के दो सिर है, किसी को पांच, तो किसी को दस, कोई बिना सिर का है, तो कोई बिना हाथ का । इन भूतों की बारात जब हिमालय के घर के निकट पहुँची तो गाँव के छोटे-छोटे बच्चे बारात देखने के लिए घर से बाहर आ गए । जब लड़कों ने इन भूतों को देखा तो डर के मारे भागने लगे । लड़के अपने-अपने घरों में घुस गये, किवाड़ बन्द कर लिए और अपनी माताओं को कहा कि माँ भागो! भूत आ गया है । यह सुनकर सारे गाँव में दहशत का वातावरण बन गया ।

जब पार्वती की सखियों ने सुना कि बारात में भूत-प्रेत आया है, तो झुण्ड बनाकर सखियाँ बारात देखने के लिए एक दूसरे से कहने लगी । यह बड़ा सुन्दर प्रसंग है, इसी प्रसंग पर मैंने सखियों की ओर से एक गीत लिखा है, आइए सब मिलकर भोलेनाथ की बारात देखने चलें-

गीत

चलु सखि देख आऊं गौरी के बरतिया,
गौरी के बरतिया, भोला के बरतिया ।
चलु सखि देख...।
लोग कहे आएल बाटे, भूत के बरतिया,
डर डर के भागल जाले, गांव के सरतिया ।
चलु सखि देख...॥

भूत, बैताल, योगिन, ऋद्धि-सिद्धि डाकिया,

केहु के है पांच मुंह, दस-दस अँखिया ।

चलु सखि देख...॥

बैल के सवारी पर बैठल पहुनमा,

गलवा में सांप बाटे, देह में भभुतिया ।

चलु सखि देख...॥

ढोल, मृदंग, सिंहा दुंदुभि के बोलिया,

हिम के कुमारी कैसे पएलन एहन पतिया ।

चलु सखि देख...॥

देखु देखु देवगण कैसे बिलगात बिया,

पहुना के कैसे भएल भूत से पिरितया ।

चलु सखि देख...॥

केहन निरमोही राजा कइसे मनलन बतिया,

गौरी के देख-देख फाटल जाले छतिया ।

चलु सखि देख...॥

कैसे छिछियात रहे चढ़ल बा सवरिया,

पहुना के संग कैसे आएल बा बरतिया ।

चलु सखि देख...॥

पार्वती की सखियाँ बारात देखकर लौटीं, सभी सखी राजा हिमालय को कोस रही थीं कि उन्होंने इतनी सुन्दर पार्वती के लिए ऐसा वर क्यों चुना? तब तक बारात दरवाजे पर आ गयी । बारात में भूत-प्रेत सब नाच-गा रहे थे-

दो०

नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब ।
देखत अति बिपरित बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ॥

चौ०

जस दूलहु तसि बनी बाराता । कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥

जब बारात दरवाजे पर आकर लगी तो, राजा हिमालय ने सबका स्वागत किया । सबको जनवासा में ठहराया और पार्वती की माँ मेना आरती लेकर दुल्हा का परिछावन करने चली । मेना ने जैसे ही शिव का विकट रूप देखा, हाथ से आरती की थाली गिर गयी और डर के मारे वे घर के अन्दर भाग गयीं । वह शिव का परिछावन नहीं कर सकी । इस पर कई लोग कहते हैं कि मेना भगवान् के सम्मुख इसलिए नहीं जा सकी कि वे भगवान् शिव को केवल दुल्हा समझ रही थी और जब शिव का स्वरुप उन्होंने देखा तो उसका सम्मान नहीं कर सकी । कई लोग तो यह भी कहते हैं कि मेना ने जब शिव को देखा तो उसे समाधि लग गयी ।

मेना अपनी पुत्री पार्वती को बड़े स्नेह से बुलाई और कहने लगी–

चौ०

नारद कर मैं काह बिगारा । भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥

मेना विभिन्न प्रकार से विलाप करने लगी कि ऐसी सुन्दर पार्वती का ऐसे दुल्हा से कैसे विवाह किया जाय? माता की चिन्ता देखकर पार्वती ने माता को समझाते हुए कहा–

चौ०

करम लिखा जौं बाउर नाहू । तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥

अर्थात् पार्वती ने कहा– "हे माँ! जिसके भाग्य में जो रहता है, वही होता है । तुम व्यर्थ चिन्ता मत करो ।"

उसी समय नारद वहाँ आते हैं और मेना को समझाते हैं– "यह पार्वती कोई साधारण लड़की नहीं है । यह पहले सती थी, अब पार्वती बनकर तुम्हारे घर पैदा हुई है । यह

जगत् का कल्याण करने वाली है ।" नारद की बात सुनकर मेना इस विवाह के लिए तैयार हो गई । उसके बाद मंडप सजाया गया । विवाह का विधि-विधान प्रारंभ हो गया । पार्वती की सखियां मधुर-मधुर गीत गाने लगीं । जिस प्रकार वेदों में विवाह का नियम बनाया गया है उसीके अनुसार संतों ने विवाह सम्पन्न कराया-

चौ०

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ॥

उसके बाद माता मेना ने पार्वती को गृहस्थ धर्म का उपदेश दिया और पर्वतराज हिमालय ने सभी बारातियों को यथा-योग्य स्वागत कर विदा किया । भगवान् शिव कैलाश पर लौट आये ।

भगवान् कार्तिकेय के अवतरण का प्रसंग

देवासुर संग्राम में जब देवताओं को कई बार हार खानी पड़ी तो सभी लोग भगवान् भोलेनाथ की शरण में गये। देवताओं ने शिवजी से अनुरोध किया कि आपसे जो पुत्र पैदा होगा वही राक्षसों को मारकर हमारी रक्षा कर सकता है ।

बहुत दिनों के बाद देवता लोग राक्षसों की मार से दुःखी होकर **"त्राहि माम्"** कहते हुए कैलाश पर्वत पर पहुंचे । उस समय भगवान् शिव, माता उमा के साथ विहार कर रहे थे । देवताओं का क्रन्दन सुनकर भगवान् शिव को चिंता हुई, वे शीघ्र ही बाहर निकले । तब माता उमा को बड़ा दुःख हुआ कि देवताओं ने विहार के समय शिव को क्यों पुकारा । उमा ने देवताओं की इस हरकत पर शाप दे दिया कि आज से किसी देवता को सन्तान नहीं होगी ।

उधर भगवान् शिव जब विहार छोड़कर बाहर आये तो उनके शरीर से शुक्र(तेज) का स्खलन हो गया । वह तेज इतना प्रभावशाली था कि पृथ्वी पर गिरते ही पृथ्वी जलने लगी । पृथ्वी उस तेज को धारण नहीं कर सकी । वह गंगा नदी में उस तेज को फेंक दी। यह देख उमा ने पृथ्वी को भी शाप दे दिया कि तुम अनेक पुरुषों की भार्या बनोगी । पृथ्वी ने जब उस तेज पुंज को गंगा में फेंका तो गंगा ने उसे स्वीकार कर लिया । क्योंकि गंगा गिरिराज की बड़ी बेटी है । इस प्रकार गंगा भी उस तेज को धारण नहीं कर सकी ।

भगवान् शिव का तेज जहाँ-जहाँ गिरा वहाँ सुवर्ण बन गया । जब उस तेज से गंगा जलने लगी तो किनारे पर उगे हुए सरकण्डों पर फेंक दी । वह तेज उस सरकण्डों पर अटक गया और बाल रूप में प्रकट हो गया । उसी समय आकाश मार्ग से कृतिकायें जा रही थी । उन लोगों ने उस तेज पुंज बालक को सरकण्डों पर पड़ा देखा । छह कृतिकायें एक साथ उस बालक को दूध पिलाने के लिए दौड़ी । सबों के स्तन में दूध आ गये । एक साथ छह कृतिकायें बालक को दूध पिलाना चाहती थी । इसलिए उस बालक को छह मुख हो गया । अतः उसे षडानन भी कहते हैं और शिव के शुक्र स्खलन के कारण उस बालक को स्कन्द कहते हैं– **"एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्।"**। कृतिकाओं द्वारा पालन-पोषण होने के कारण उनका नाम कार्तिकेय रखा गया । आगे चलकर कार्तिकेय ने देव सेनापति बनकर राक्षसों का और तारकासुर का नाश किया । कहा जाता है कि "जो लोग भगवान् कार्तिकेय को भक्ति भाव से पूजता है, वह दीर्घायु बनता है । क्योंकि कार्तिकेय भगवान् शिव के ज्येष्ठ पुत्र हैं ।"

एक दिन माता पार्वती ने शिव से पूछा- हे त्रिपुरारि! श्रीराम की महिमा के बारे में बताकर मेरे मन में जो अज्ञान है उसे नष्ट करें । इस पर शिवजी ने कहा-

चौ०

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । किन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥

तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, क्योंकि-

चौ०

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥

हे पार्वती! जिसने राम की कथा नहीं सुनी, उसके कान सांप के बिल के समान है । उसकी छाती पत्थर के समान कठोर है जो राम की कथा सुनकर प्रसन्न नहीं होता है । सत्य कथन है कि-

भक्ति गीत से बंजर मन में, नव-नव अंकुर आए ।

भक्ति प्रेम की रस वर्षा से, चमन में फूल उगाए ॥

पुनः शिवजी ने कहा कि राम तो ब्रह्म हैं, वे सभी रूपों में विराजमान हैं । सभी अण्डज, पिण्डज में उनका ही रूप है-

चौ०

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥

क्योंकि-

चौ०

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥

आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥

एवम्

जब भाव समर्पण मन से हो, वहाँ तर्क विवेक नहीं होता ।

आस्था का जहाँ विसर्जन हो, वहाँ खंडित विश्वास नहीं होता ॥

इसलिए हे पार्वती, उस राम का ध्यान करो, क्योंकि-

सम्पूर्ण नहीं अपूर्ण होता, सूरज न कभी आधा होता ।

जो चक्षु दोष से पीड़ित हो, उसे सत्य दिखाई नहीं देता ॥

इस तरह की बातों को सुनकर पार्वतीजी ने राम के अवतरण का कारण पूछा कि राम को अवतार क्यों लेना पड़ा? भगवान् शिव ने कहा- हे पार्वती! प्रभु श्रीराम के अवतरण के अनेक कारण हैं, जिनमें से एक है- **जय-विजय की कथा ।**

"एक बार भगवान् विष्णु से मिलने सप्त ऋषि गये। वहाँ द्वारपाल के रूप में जय और विजय खड़े थे । किसी उद्दंडता के कारण सप्त ऋषि ने उसे राक्षस होने का शाप दे दिया जो हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बन कर पैदा हुए जिसे भगवान् नरसिंह ने मारा ।

वही दोनों राक्षस रावण और कुम्भकरण बनकर पैदा हुए । उसी के उद्धार के लिए राम ने अवतार लिया ।"

इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए शिवजी ने माता पार्वती को भगवान विष्णु के प्रति नारदजी के द्वारा दिए गए शाप की चर्चा की ।

नारद मोह

एक दिन पार्वतीजी ने भगवान् शिव से पूछा कि नारदजी तो भगवान् के भक्त हैं, फिर उन्होंने विष्णु को शाप क्यों दे दिया ।

भगवान् शिव ने कहा– "स्त्री के मोह में पड़कर नारदजी ने अपने प्रभु को भी शाप दे दिया । क्योंकि स्त्री के लोभ ने नारदजी को नीचे गिरा दिया था ।" इस विषय को साफ करते हुए पुनः शिवजी ने कहा–

दो०

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥

सत्य है, काम के अधीन होते ही मनुष्य का विवेक मिट जाता है–

काम की शक्ति अनन्त है, ऊर्ध्वगामी जब होय ।
निम्नगामी है अधमता, काल के ग्रास में जाय ॥
कनक कामिनी मन को मोहे, कनक बनाये उत्तंग ।
रूपवती हो कामिनी, काटे जैसे भुजंग ॥

शिवजी ने कहा कि "एक दिन नारदजी हिमालय की ओर भ्रमण पर निकले और एक स्थान पर रूक गए, जबकि दक्ष के शाप की वजह से वे वहाँ रूक नहीं सकते थे । ज्ञात हो कि दक्ष और नारद दोनों ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं । परस्पर की अनबन के कारण दक्ष ने

एक दिन नारद को शाप दे दिया था कि तुम कभी भी किसी एक स्थान पर नहीं रूक सकोगे । इसी शाप के कारण नारद किसी एक स्थान पर नहीं रूकते । लेकिन वहाँ हिमालय पर उनकी समाधि लग गई । यह देख इन्द्र को डर लगने लगा कि यह कहीं इन्द्रासन न ले ले । इन्द्र ने कामदेव को नारद का तप भ्रष्ट करने को भेजा, लेकिन नारदजी कामदेव से प्रभावित नहीं हुए । जब नारदजी समाधि से उठे तब उन्हें पता चला कि उन पर कामदेव का भी कोई प्रभाव न पड़ा ।"

नारदजी यह खबर देने शिवजी के पास गए । नारदजी ने समझा कि अगर शिवजी काम को पराजित कर सकते हैं तो मैंने भी आज काम को पराजित कर दिया । नारदजी ने जब पूरी बात भगवान् शिव को बतायी तो शिव ने कहा "आपने कामदेव पर विजय प्राप्त की है, इस बात को आप किसी और से मत कहियेगा ।" यह सुनकर नारदजी ने सोचा कि शिव को मुझसे ईर्ष्या हो रही है । इसलिए वे दूसरे को बताने से रोकते हैं । वहाँ से वे सीधे विष्णु को बताने विष्णुलोक गए । नारदजी ने पूरी कहानी भगवान् विष्णु को बतायी, भगवान् विष्णु ने नारदजी को बधाई दी । थोड़ी देर के बाद नारदजी वहाँ से पृथ्वीलोक की ओर चल दिए । रास्ते में नारदजी ने देखा कि एक सुन्दर नगर बसा है, जिसे पूरी तरह सजाया गया है । नारदजी उस नगर में घुसे, वहाँ उन्हें पता चला कि यहाँ के राजा की बेटी विश्वमोहिनी का स्वयंवर हो रहा है । नारदजी राजा के पास पहुंचे । राजा ने उनका स्वागत किया-

दो०

आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि ।

कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि ॥

नारदजी उसका हाथ देखते ही उसके रूप पर मोहित हो गए । वे सोचने लगे कि तुम्बा और कमंडल देखकर यह लड़की मुझसे शादी नहीं करेगी । अब एक ही रास्ता है कि भगवान् विष्णु से उनका रूप माँग लिया जाए, तभी इस लड़की से विवाह हो सकेगा । नारदजी तुरंत विष्णु के पास पहुंचे । नारदजी अभी थोड़ी देर पहले काम पर

विजय की बात कह रहे थे और अब स्त्री के लिए काम पीड़ित हो रहे हैं । नारदजी बार-बार भगवान् विष्णु का रूप मांग रहे हैं, ताकि विश्वमोहिनी उस रूप पर आसक्त हो जाए । नारद के अनुरोध पर भगवान् ने उन्हें बन्दर का चेहरा दे दिया। नारदजी बन्दर का चेहरा लेकर स्वयंवर में आ गये, वहाँ चारों तरफ आमंत्रित राजकुमार बैठे थे, राजकुमारी माला लेकर घुम रही थी, जिधर-जिधर राजकुमारी जाती, उधर-उधर नारदजी बैठ जाते। जब राजकुमारी ने एक बार भी उनकी ओर नहीं देखा, तो वे घबराने लगे । उसी सभा में शिव के गण बैठे थे । गणों ने नारदजी को देखकर व्यंग्य किया । इस व्यंग्य को काम मोह के कारण नारदजी नहीं समझ सके । उसी समय विष्णु वहाँ प्रकट हुए । राजकुमारी ने उनके गले में माला डाल दी । शिव के गणों ने जो हंसी की थी, उस कारण नारदजी ने इन गणों को राक्षस होने का शाप दे दिया और जब इन्होंने अपना चेहरा जल में देखा तब उन्हें पता चला कि विष्णु ने मुझे बन्दर का चेहरा देकर मुझसे छल किया है, तब उन्हें विष्णु पर बड़ा क्रोध आया । उन्होंने विष्णु को देखकर कहा कि तुम संसार के मालिक हो इसी कारण तुम्हें घमंड हो गया है-

चौ०

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥

शाप सुनकर भगवान् विष्णु ने नारद को समझाया- "कामवेग के कारण तुम योग भ्रष्ट हो रहे थे, इसी कारण मैंने तुम्हें बचाया । कामी पुरुष को कभी शांति नहीं मिलती । इसलिए हे नारदजी! आप भगवान् शिव की आराधना करें ।" नारद के उसी शाप के कारण भगवान् को नर रूप लेकर वानरों की सहायता लेनी पड़ी थी ।

इसीलिए कहा है-

कामी को सुख चाम से, धन से सुखी धनेश ।
कहे सुदर्शन प्रेम सुख, हरे सकल विद्वेष ॥
कामी निर्बल होत है, धन बल रहे अनंत ।
भड़ुआई के कारण, तड़प तड़प मरे अंत ॥

नारद एक उच्च कोटि के संत हैं, जिन्हें मोह माया से कोई मतलब नहीं है, लेकिन जब वे काम के वशीभूत हो गये तो, उनका विचार नीच कोटि का हो गया । उन्होंने स्त्री को पाने के लिए अपने जीवनभर की तपस्या को भुला दिया । कोई भी मनुष्य जब काम-वासना, धन अथवा लोभ के नशे में हो जाता है तो, उसके जीवन की सारी कमाई नष्ट हो जाती है । जैसे-रावण जब सीता का हरण करने गया तो एक कमजोर व्यक्ति की तरह डरते-डरते गया । क्योंकि **"गलत काम करने वाला बहादुर नहीं हो सकता ।"**

चौ0

सो दस सीस स्वान की नाई । इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥

कामी पुरुष न कभी समाज में मर्यादा पाता है, और न परमात्मा की भक्ति ही कर सकता है ।

द्रष्टव्य तथ्य

(अहंकार और काम के वश में आने पर व्यक्ति की हालत बन्दर जैसी हो जाती है। सिद्ध सन्त नारदजी काम पर विजय पाकर अहंकारी बन गए थे। अपने आप को शिवजी के समान सांसारिक काम वासनाओं से विरक्त भोलेनाथ समझने लगे थे परन्तु विश्वमोहिनी को देखकर उनका विजयी मन डोल उठा और वे काम पीड़ित होकर विष्णुजी से उनके स्वरूप की याचना करने लगे। भगवान् विष्णु ने उन्हें बन्दर का चेहरा दे दिया, क्योंकि स्त्रीलोभ के वशीभूत कामी पुरूष की दशा बन्दर सदृश हो जाती है–

"नारि विरह नर सकल गोसाईं। नाचत मर मरकटकि नाईं ।।")

मनु-शतरुपा का तप, भगवान् का वरदान

भगवान् शिव ने माता पार्वती को नारद मोह की कहानी बताई । शिव ने कहा- हे पार्वती! अब राम के अवतरण का तीसरा कारण सुनो । मनु और शतरुपा भगवान् के परम भक्त थे । उनकी कई सन्तानें थीं । मनु अपने बड़े पुत्र उत्तानपाद को राज्य देकर तपस्या करने चले गए । उन्होंने घोर तपस्या की । **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"** इस द्वादश अक्षर

मंत्र का वे जाप करते रहे । इन दोनों की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए । भगवान् ने वरदान माँगने को कहा । मनु ने वरदान माँगा ।

"चाहऊँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ"

हे प्रभु! मैं तुम्हारे समान रूप, गुण सम्पन्न पुत्र चाहता हूँ । इस पर भगवान् ने कहा–

चौ0

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ॥

भगवान् ने कहा कि अपने समान मैं कहाँ खोजने जाऊँ । मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा । भगवान् कितने दयालु हैं भक्त के लिए उन्हें बेटा बनने में भी कोई संकोच नहीं है । इसी तरह शतरुपा ने भी भगवान् से माँगा कि "मेरे मन में तुम्हारे प्रति हमेशा माँ का भाव रहे और तुम मुझे हमेशा माँ समझो ।"

चौ0

सुत बिषइक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । मम जीवन मिति तुम्हहि अधीना॥

यह सुनकर भगवान् ने **"एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ"** इस रूप में आशीर्वाद दिया और भगवान् पुत्र रूप में अवतार लेने के लिए तैयार हो गये ।

कालान्तर में यही मनु–शतरूपा क्रमशः दशरथ–कौशल्या हुए थे ।

प्रतापभानु और अरिमर्दन का प्रसंग

भगवान् शिव ने राम के अवतरण का चौथा कारण माता पार्वती को बताया । भगवान् ने कहा कि कैकेय देश के राजा सत्यकेतु बड़े प्रतापी थे । उनके दो पुत्र थे– प्रतापभानु और अरिमर्दन । राजा अपने पुत्र को राज्य देकर तपस्या करने चले गए । प्रतापभानु बड़ा ही प्रतापी राजा था । एक दिन वह जंगल में शिकार करने गया । उन्होंने एक सुअर को भागते देखा और उसका पीछा करते–करते घने जंगल में चले गए । घने जंगल में जाने के कारण राजा घबराने लगे । उसी जगह राजा ने एक सुंदर आश्रम देखा । राजा आश्रम में

गए, वहाँ **'एकतनु'** नाम का साधु बैठा था । वह साधु नहीं था, वह कपटी था । क्योंकि प्रतापभानु ने उस व्यक्ति का राज्य हड़प लिया था । वह बदला लेना चाहता था । साधु ने प्रतापभानु को जाल में फंसा लिया । राजा के मन में लोभ पैदा हो गया । वह कपटी साधु से अपने कल्याण के लिए प्रार्थना की । साधु ने राजा को कहा कि तुम एक यज्ञ करो जिसमें ब्राह्मणों को बुलाओ । उनके आशीर्वाद से तुम्हारा कल्याण होगा । राजा उसकी बात में फंस गया ।

स्मरणीय विषय

(जब मनुष्य कोई बड़ा काम करता है तो, उसका शत्रु भी बड़ा होता है । क्योंकि बरगद का पेड़ जब बढ़ता है तो, अपने नीचे के दूसरे पेड़ों को नष्ट कर देता है । कोई मिट्टी का टीला जब बनता है तो, बगल में गड्ढा भी हो जाता है । अगर कोई धनी बनता है तो, उसके कारण कोई गरीब भी बनता हैं । इसलिए बड़ा बनने के साथ-साथ सावधानी भी बड़ी होनी चाहिए । जो सावधान नहीं रहता, वह गिरता है ।)

प्रतापभानु को लोभ हो गया, जिस कारण वह साधु के जाल में फंस गया । उस साधु के कथनानुसार राजा ने अपने राज्य में एक यज्ञ किया, जिसमें ब्राह्मणों को बुलाया । यज्ञ में पधारे हुए पुरोहितों के लिए राजा ने साधु से भोजन बनवाया और उस साधु ने ब्राह्मणों के लिए मांसाहारी भोजन बना दिया । जब यज्ञ पूरा हुआ तो, रसोई में भोजन करने के लिए ब्राह्मणों को बुलाया गया । जब राजा ब्राह्मणों को भोजन परोस रहा था, तो आकाशवाणी हुई-

चौ०

परुसन जबहिं लाग महिपाला । भै अकासबानी तेहि काला ॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू । है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू ॥

आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण क्रोधित हो उठे और शाप दिया कि तुम्हारे कुल का नाश हो जाए। वही प्रतापभानु और अरिमर्दन शाप के कारण रावण और कुम्भकरण बना ।

ध्यातव्य तथ्य–

(राजा प्रतापभानु बहुत ही पराक्रमी सम्राट् था। परन्तु उसके अन्दर अहंकार और काम की भावना प्रबल थी। इसी अहंकार के करण उसने साधु से भोजन बनवाया। परिणाम स्वरूप ब्राह्मणों का कोपभाजन बनना पड़ा। अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति को अपने अंहकार और लोभ के भाव को अपने अधीन रखना चाहिए। अन्यथा राजा प्रतापभानु और अरिमर्दन की भाँति अधम रूप में जन्म लेना पड़ता है।)

रावण और कुम्भकरण

रावण और कुम्भकरण विश्रवा के पुत्र थे । इन दोनों ने घोर तपस्या की । इसपर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और रावण को वर माँगने को कहा । ब्रह्माजी के आदेश से रावण ने वर माँगा–

चौ०

हम काहू के मरहिं न मारें । बानर मनुज जाति दुई बारें ॥

इसी तरह कुम्भकरण ने छह महीना सोने का और एक दिन जागने का वरदान माँगा । उसके बाद लंका में दोनों भाई रहने लगे । रावण का बेटा मेघनाद बड़ा बलशाली था । वह बहुत अत्याचार करता था । पूरे देश–समाज में अत्याचार बढ़ने लगा, धर्म की हानि होने लगी, सारा समाज अस्त–व्यस्त होने लगा ।

चौ०

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सम प्रानी ॥

भगवान् शिव ने माता पार्वती को बताया कि जब समाज में व्यवस्था टूट जाती है, एक–दूसरे का धन लोग लूटने लगते हैं, दूसरे की पत्नी का अपहरण करने लगते हैं, जब समाज में माता–पिता और गुरुजन का आदर कम हो जाता है तो, उस समाज का नाश हो जाता है । रावण अपने अत्याचार से साधु–सन्तों और धर्म को नष्ट करने लगा । उसका

अत्याचार इतना बढ़ गया कि वह साधु-संतों से कर वसुलने लगा। कर में जब कुछ नहीं मिलता था तो, वह संतों को और अधिक सताता था। एक दिन जंगल के संतों ने अपने-अपने शरीर से खून निकालकर घड़ा में बन्द कर रावण के पास भेजा। घड़ा को देखते ही रावण को आकाशवाणी हुई कि इसी घड़ा से तुम्हारा नाश होगा। उसने उस घड़े को, सीतामढ़ी के निकट पुनौरा ग्राम में मिट्टी के नीचे गड़वा दिया। मिथिला के राजा जनक ने जब अपने हाथ से हल चलाना शुरू किया तो, उसी घड़ा से सीताजी प्रकट हुई। इसलिए सीताजी को भूमिजा भी कहते हैं। राजा का काम प्रजा की भलाई करना है, लेकिन रावण ने प्रजा पर बड़ा अत्याचार किया। उसी अत्याचार के कारण ही उसका नाश हुआ। इस अत्याचार से उबकर संतों और देवताओं ने भगवान् से प्रार्थना की। गोस्वामीजी ने प्रार्थना विस्तार से की है। उसका सार है-

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागि अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

विशिष्ट

मनुष्य जब संसार के अपने-परायों के थपेड़ों और अत्याचारों से परेशान हो जाता है तो, वह भगवान् की शरण में जाता है। यह देखकर भगवान् मुस्कुराते हैं कि "जब तुम अच्छे थे तो भोग-विलास में लिप्त थे और जब तुम्हें सबों ने लात लगाई तब मेरे पास रोते हुए आते हो। अगर पहले से ही तुम मेरी शरण में होते तो तुम्हें कोई दुःख ही नहीं होता।"

देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए और बोले-

चौ0

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥

आप सभी लोग घर जाएं, मैं दशरथजी के घर अपने चार भाइयों सहित अवतार लूंगा। उसके बाद आशीर्वाद प्राप्त कर देवता लोग अपने-अपने घर चले गए।

कश्यप-अदिति

कश्यपजी वैदिक काल के ऋषि हैं। एक मन्वन्तर में सारी सृष्टि इन्हीं की रची हुई थी। ये सप्तर्षियों में से भी एक हैं। ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि के आदि में उत्पन्न किए मनुजी ही आगे की सृष्टि में कस्यप के रूप में अवतरित हुए। अदिति और दिति के साथ अन्य बहुत सारी स्त्रियाँ कश्यपजी की पत्नियाँ थीं। अदिति से देवताओं की उत्पत्ति हुई और दिति से दैत्यों का जन्म हुआ। इस प्रकार से सृष्टि-वर्धन होने लगा। यह अदिति ही स्वायंभुव मनु की पत्नी शतरूपा थी। कृतयुग में कश्यप और अदिति ने बहुत ही कठिन तप किए और तप प्रभाव से भगवान् ने वरदान दिया कि त्रेतायुग में जब मैं अवतार लूँगा तब आप दोनों ही मेरे माता-पिता बनेंगे। यही कश्यप-अदिति भगवान से वरदान पाकर दशरथ और कौशल्या के रूप में अवध में उत्पन्न हुए।

कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥

जलन्धर के लिए अवतार

कृतयुग की बात है, एक बार भगवान् सदाशिव क्रोधित हो गए और उनकी कोपाग्नि समुद्र में जा गिरी। गिरते ही वह पुत्र के रूप में दिखाई पड़ी। जनमते ही उस बालक ने इतने जोर से रोना प्रारम्भ किया कि इसे सुनकर सभी देवता व्याकुल हो गए। तब ब्रह्माजी ने इसे अपने गोद में उठा लिया। गोद में पड़े हुए उस बालक ने ब्रह्माजी की दाढ़ी इतनी जोर से खींची कि उनके आँसू निकल गए। इसी से ब्रह्माजी ने उसका नाम जलन्धर रखा। बड़ा होकर इसने अमरावती पर कब्जा कर लिया। इन्द्रादि सभी देवताओं को परास्त कर दिया। इसकी वृन्दा नाम की स्त्री थी। उसके सतीत्व बल के कारण ही जलन्धर को कोई हरा नहीं पाता था। यहाँ तक कि देवाधिदेव शंकर को भी हार का मुख देखना पड़ा। शिवजी ने भगवान् विष्णु से सहायता ली। भगवान् पूर्व जन्म में वृन्दा को अपनी पत्नी के रूप में वरण करने का वरदान दे चुके थे। जब वृन्दा अपने पति के हित में

ब्रह्माजी की आराधना कर रही थी, उसी समय भगवान् विष्णु उसे दिखाई पड़े। वृन्दा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया। पूजन छोड़ते ही जलन्धर के प्राण निकल गए।

भगवान् पुनः तपस्वी यति बनकर उसके पास आए और बोले– तुम्हारा पति मारा गया है। वृन्दा विश्वास नहीं कि तो थोड़ी देर में जलन्धर के शरीर के टुकड़े आकाश से उसके समीप आ गिरे। वह विलाप करने लगी तब यति ने कहा– इसके अंगों को तू जोड़ दे, तेरे पातिव्रत्य धर्म से वह जी उठेगा। उसने वैसा ही किया। अंगों के स्पर्श करते ही भगवान् उसमें प्रवेश कर जलंधर रूप हो उसका व्रत भंग किया। इस पर वृन्दा ने शाप दिया कि तेरी पत्नी को रावण हर लेगा। त्रेता युग में वही जलन्धर रावण होकर सीताजी का हरण किया था।

तासु श्राप हरि दीन्हा प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना।।
तहाँ जलन्धर रावन भएऊ। रन हति राम परमपद दएऊ।।

श्रीराम का अवतरण

कुछ दिनों के बाद समय के परिवर्तन के साथ-साथ अयोध्या के राजा महाराज दशरथ, जो आधी उम्र बीता चुके थे, सोचने लगे कि मेरे पास परमात्मा का दिया हुआ सब कुछ है लेकिन कोई संतान नहीं है ।

चौ०

एक बार भूपति मन माहीं । भै गलानि मोरें सुत नाहीं ।।

विशेष प्रसंग-

(दशरथ का अर्थ है- जो दस इन्द्रियों के रथ पर बैठा हो । दशरथ महाप्रतापी, चक्रवर्ती सम्राट् थे । इसीलिए उन्हें कोई हरा नहीं सका । क्योंकि उन्होंने अपनी दस इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया था, इसलिए गोस्वामीजी ने मानस में उनकी वन्दना की– **"बन्दौ अवध भुआल ।"** लेकिन जब उन्हें कोई संतान नहीं हुई, तो उन्होंने संतान के लिए तीन शादियाँ की ।

इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि महापराक्रमी दशरथ को शिकार खेलते समय लंका की राक्षसी सुबक्षा ने फंसाकर उनकी शक्ति का हरण कर लिया। जिस कारण उन्हें कोई संतान नहीं हो रही थी। उन्होंने संतान प्राप्ति के लिए तीन-तीन विवाह किया और कैकेई की सुन्दरता पर मोहित होकर अपनी इन्द्रियों को नियंत्रणमुक्त कर दिया। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के अधीन हो जाता है उसका पराक्रम घट जाता है। दशरथ के साथ यही हुआ। तभी महापराक्रमी दशरथ को रूपवती कैकेई के सामने घुटना टेकना पड़ा और समाज में लज्जित होना पड़ा ।

रावण भी दस इन्द्रियों वाला था, लेकिन उसकी सभी इन्द्रियाँ सिर उठाये खड़ी थी। वह इन्द्रियों का दास बन गया था। इसलिए उसे दसशीश कहा जाता था। जो व्यक्ति इन्द्रियों का दास होता है, उसके लिए गोस्वामीजी कहते हैं-

चौ०

सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥

उसे कुत्ता कहा गया। कोई राजा जब इन्द्रियों के वश में हो जाता है, तो वह पशु बन जाता है।

मैं भूमिका में बता चुका हूँ कि कैसे लंका की सुबक्षा ने छलपूर्वक संभोग काल में दशरथ को निर्बीज बना दिया था। इस कारण दशरथ की तीनों रानियों कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा से कोई संतान नहीं हो रही थी। संतान के कारण ही उन्हें तीन विवाह करने पड़े। संतान न होने के कारण दशरथ के मन में काफी चिंता हुई और एक दिन वे अपने गुरु वशिष्ट के पास गए-

चौ०

गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला ॥

गुरु ने उनकी बातें सुनीं और अपने योग बल से जानकर बताया कि आप धैर्य रखें, आपको चार पुत्र होंगे।

चौ०

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी ॥

वशिष्ठजी ने कहा- "महाराज इसके लिए हमें श्रृंगी ऋषि की सहायता लेनी पड़ेगी। क्योंकि वही पुत्रेष्टि यज्ञ करा सकते हैं।"

(अङ्ग नरेश रोमपादजी राजा दशरथ के मित्र थे। रोमपादजी की पुत्री शान्ता का ब्याह ऋष्यश्रृंग से हुआ था। पुत्रेष्टि यज्ञ हेतु श्रृंगी शान्ता के साथ अवध आए। **जन्म कथा –** एक बार विभाण्डक मुनि एक कुण्ड में समाधि में बैठे थे। उसी समय उर्वशी अप्सरा उधर आ पड़ी। उसे देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया जिसे जल के साथ एक मृगी पी गई। उसी मृगी से उनका जन्म हुआ अतः मृग के समान इनके सिर पर भी सींग निकल आने की संभावना से मुनि ने इनका नाम ऋष्यश्रृंग रखा।)

सम्प्रति, वशिष्ट ऋषि की यह बात सुनकर दशरथ श्रृंगी ऋषि के आश्रम में गये। उनसे यज्ञ कराने की प्रार्थना की। श्रृंगी ऋषि अयोध्या आए। उन्होंने यज्ञ कराया और यज्ञ से अग्निदेव हाथ में चरू लेकर प्रकट हुए। चरू को आदर सहित दशरथ ने अपने हाथ में लिया और तब राजा ने अपनी रानियों को बुलाया और चरू का आधा भाग कौशल्या के हाथ में दिया और आधे को दो भाग करके एक भाग कैकेयी को दिया और जो शेष भाग बचा उसे भी दो भाग करके राजा ने कौशल्या और कैकयी को दिया। जिसे इन दोनों ने सुमित्रा को दे दिया। इसलिए सुमित्रा के दो पुत्र हुए। कई लोग कहते हैं कि दशरथ ने सीधे सुमित्रा को क्यों नहीं दिया? इसका कारण है कि सुमित्रा सबसे छोटी थी। उन्होंने लोकलाज के कारण वैसा किया। तीनों रानियों ने चरू ग्रहण किया और तीनों के गर्भ में परमात्मा का प्रवेश हो गया। मर्यादा पुरुषोत्तम राम कौशल्या के गर्भ में प्रवेश किए। धर्मस्वरुप भरत कैकेयी के, शेषनाग के अवतार लक्ष्मण और शक्ति के प्रतीक शत्रुघ्न सुमित्रा के गर्भ में प्रवेश किए।

चौ०

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥

जब से भगवान् का अंश गर्भ में आया, तब से सारे लोक में सुख, समृद्धि छा गयी। (ऐसा देखा जाता है कि जब कभी माताएं शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक गर्भ धारण करती हैं तो गर्भ में जो बच्चा आता है उसके प्रभाव से माता को कोई कष्ट नहीं होता और वे

हमेशा प्रसन्न रहती हैं । क्योंकि विधिपूर्वक धारण किये हुए गर्भ में ही दिव्यात्मा का प्रवेश होता है । जब कभी भी गर्भ धारण हेतु वैदिक रीति रिवाजों का ध्यान नहीं रखा जाता है अथवा यों ही अकस्मात् गर्भ रह जाता है तो, उस गर्भ में किसी भी पापी आत्मा का प्रवेश हो जाता है । ऐसे गर्भ माता-पिता को कष्ट देने वाले होते हैं । इसलिए भारत में गर्भधारण को भी संस्कार का नाम दिया गया है । नियम है कि जब कभी दम्पति को संतान की इच्छा हो तो शास्त्र में वर्णित नियमों के अंतर्गत शुभ मुहूर्त में गर्भ धारण करना चाहिए । यदि गर्भधारण आकस्मिक घटना हो तो जीवन भर कष्ट बना रहता है ।)

महाराज दशरथ ने गुरु के आदेश से विधिपूर्वक अपनी पत्नियों को गर्भधारण के लिए अनुरोध किया । तभी गर्भ में पुण्यात्मा का प्रवेश हुआ । यही भारत का नैतिक नियम है । इसीलिए जब राम गर्भ में आए तो-

चौ०

मंदिर महँ सब राजहिं रानीं । सोभा सील तेज की खानीं ॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ । जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥

(दरअसल भारत की यह परंपरा रही है कि पति-पत्नी का जीवन बड़ा ही पवित्र माना जाता रहा है । पाणिग्रहण संस्कार के बाद दो अलग-अलग आत्मा एक बन जाती है और दोनों मिलकर एक नये जीव को उत्पन्न करते हैं । यह विज्ञान का नियम है कि दो सक्रिय वस्तु मिलकर एक तीसरी सक्रिय वस्तु पैदा करती है । उसी नियम के अनुसार पति-पत्नी मिलकर जब सन्तान को पैदा करते हैं तो, उस काल में उनके मन पर सात्त्विक विचार का प्रभाव होना चाहिए । क्योंकि गर्भधारण के समय माता-पिता का जैसा विचार रहता है, ठीक उसी के अनुकूल सन्तान पैदा होती है । डरे हुए, दुःखी, बीमार, चिंता और कलह की अवस्था में गर्भधारण करना आपत्तिजनक है । सन्तान की प्राप्ति के लिए संकल्प तो एक महोत्सव है । इसलिए जब कभी मन में सन्तान की कामना हो, विधिपूर्वक गर्भधारण से ही लाभ है । आकस्मिक गर्भधारण से माता-पिता का जीवन नरक बन जाता है ।

आज हमारे समाज की जो स्थिति है, उसके लिए माता-पिता का अनैतिक और अव्यवस्थित जीवन ही जिम्मेवार है। एक बार, एक माँ का बेटा बड़ा ही अत्याचारी निकला। जब माँ से इस अत्याचारी बालक के सम्बन्ध में पूछा गया तो, माँ ने बताया कि जिस दिन यह बालक गर्भ में आया उस सुबह को आंख खुलते ही मैंने एक चाण्डाल को देखा था। जिसका सीधा प्रभाव उस बच्चे पर पड़ा। इसलिए माताएं अपने कमरे के दीवार पर भगवान् अथवा गुरुजनों का चित्र लगाती हैं। ताकि उस चित्र का प्रभाव मन पर पड़े। इसलिए अगर हम नैतिक और मेधावी पुत्र चाहते हैं तो, माताओं को नैतिक संकल्प के साथ गर्भधारण करना चाहिए।)

भगवान् श्रीराम के अवतरण का समय जब आया तो सारे संसार में पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, चर-अचर सब में मांगलिक लक्षण दिखने लगा। पेड़-पौधों में नये-नये फूल खिलने लगे। मानो पूरी प्रकृति राम के स्वागत के लिए तैयार हो गई है। जब कोई शुभ काम होने वाला हो तो उसका लक्षण पहले से ही दिखने लगता है। वही स्थिति पूरी प्रकृति में दिख रही है। आखिर क्यों न हो, परमात्मा जो अवतार लेने वाले हैं। जब कभी कोई महापुरुष कहीं जाता है तो, उनके स्वागत की पूरी तैयारी की जाती है। लेकिन जहाँ परमात्मा स्वयं अवतार ले रहे हों, तब तो और बड़ी तैयारी की आवश्यकता है। पूरी प्रकृति, ग्रह, नक्षत्र, लग्न, मुहूर्त, सभी शुभ संकेत देने लगे। सारी परिस्थितियाँ अनुकूल होने लगी-

दो०

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल ।

चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल ॥

जिस समय राम के प्रकट होने का समय आया, उस समय लग्न, तिथि, ग्रह सब अनुकूल हो गये। क्योंकि जो स्वयं ग्रह, तिथि, शुभ, अशुभ को बनाता है, उसके लिए सबको अनुकूल होना ही पड़ता है।

जो जग सिरजा उसका है जग, मत गा अपना गीत ।
नदी नाल झरना उपवन में, किसने भरा संगीत ॥

चौ०

नौमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक बिश्रामा ॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ । हरषित सुर संतन मन चाऊ ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा । स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा ॥

इस मांगलिक अवसर के समय सभी देवगण अपनी-अपनी तैयारी के साथ अयोध्या पहुँचने लगे । क्योंकि उनके परमात्मा राम का अवतरण होने जा रहा है ।

चौ०

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी । गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ॥

देवता लोग प्रभु की विनती कर अपने-अपने घर चले गए । ठीक समय पर भगवान् राम, पूर्ण चतुर्भुज रूप में माता कौशल्या के कक्ष में प्रकट हुए । माता कौशल्या ने देखा कि भगवान् विष्णु चतुर्भुज रूप में राम बनकर आए हैं । कौशल्या ने पूछा कि हे प्रभु! आप इस रूप में कैसे प्रकट हुए । आपको तो बालक रूप में प्रकट होना था । यह सुनकर भगवान् बालक के रूप में अवतरित हुए ।

भगवान् ने माता से पूछा-अब क्या करूँ? माता ने कहा- तुम्हें तो बालक की तरह रोना है । इस पर भगवान् ने कहा- आज तक मैं कभी बालक बना नहीं, कभी रोया नहीं, कैसे रोऊँ । ठीक ही कहते हैं, जो परमात्मा हैं, जो दूसरों के आँसू पोंछते हैं, दूसरे को कष्ट से उबारते हैं, उन्हें रोना कैसे आएगा? वह तो आनंद स्वरूप हैं । माता कौशल्या ने कहा कि आपको बालकों की तरह व्यवहार करना पड़ेगा । हे तात! तुम यह रूप छोड़ो, और साधारण बालक की तरह शिशु लीला करो । भगवान् छोटे बच्चे की तरह लीला करने लगे । उनके रोने की आवाज सुनकर बगल के कमरे में कैकयी, सुमित्रा आदि को भ्रम हो गया कि कौशल्या को अकस्मात् पुत्र कैसे हो गया? क्योंकि प्रसव के पूर्व

कौशल्या को कोई पीड़ा नहीं हुई, किसी को कोई सूचना नहीं मिली । इसलिए गोस्वामीजी ने **"संभ्रम"** शब्द का प्रयोग किया है । सबको भ्रम हो गया कि यह कैसे हुआ । कैकेयी, सुमित्रा एवं अन्य लोग दौड़कर कौशल्या के कक्ष में आए । सबों ने देखा कि राम मुस्कुरा रहे हैं । यहाँ गोस्वामीजी ने लोक प्रचलित **"भए प्रगट कृपाला"** लिखा है– आइए इसका आनंद लें –

छं०

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता ।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

गीत

श्रीराम अवध में प्रकट हुए, त्रिलोक में जय-जयकार हुआ ।
दशरथ कौशिल्या के घर में, रघुनन्दन का अवतार हुआ ॥
जो अखिल विश्व का धारक है, कण-कण के प्राण का दाता है ।
वह मनुज रूप बनकर आया, जगती का वही विधाता है ॥
वह रूप चतुर्भुज ऐसा है, जिसमें ब्रह्माण्ड समाया है ।
चर-अचर जीव इस जगती में, उस विभु रूप की माया है ॥
कोटि सूर्यों का उदय-अस्त, इस बाल रूप में छाया है ।
श्रीराम प्रभु ने माता के, बरबस मन को भरमाया है ॥
माता ने वर मांगा ऐसा, जो मातृरूप में शोभित है ।
इस विशद विराट निरंजन का, गोदी में कैसे पोषण हो ॥
इस बाल रूप का हरि कीर्तन, जीवन में जो कोई गाता है ।
श्रीराम प्रभु के आशीष से, अपने को धन्य बनाता है ॥
जो ब्रह्म अनादि अजन्मा है, मनु रूप जगत में आया है ।
उस रूप को पाकर संत सुधि, जीवन को दिव्य बनाया है ॥
इस बाल रूप का दर्शन कर, त्रिदेव संत जन मुग्ध हुए ।
प्रभु का आशीष मिले सबको, जो कीर्तन गा संतुष्ट हुए ॥
भक्तों का दुःख हरने वाले, वे स्वयं भुवन में आये हैं ।
हर घर में राम का वंदन हो, वे स्वयं बताने आये हैं ॥

जो राम जन्म को गाता है, साक्षात् प्रभु को पाता है ।
इस रूप का मन में ध्यान करो, अपना-अपना कल्याण करो ॥
सकल सुमंगल दायक, राम जन्म का गान ।
भक्त सुदर्शन प्रभु से मांगे, सबका हो कल्याण ॥

आइए, हम पुनः प्रभु की प्रार्थना करें-

हे राम तुम्हारे चरणों में, शत बार नमन निवेदित है ।
कर सकूं सम्पन्न रामकथा, तेरा आशीष अपेक्षित है ॥
सन्तों ने गाया है तुझको, तुम दिव्य लोक से आये हो ।
जन-जन में तेरा नाम रहे, यह बोध कराने आये हो ॥
उलचे चुल्लु से सागर जो, पंखों से गगन जो नाप सकें ।
वैसा संकल्प हमारा है, विभु रूप तुम्हारा बांध सकें ॥
वाल्मीकि, तुलसी, कंबन सा मुझको कोई ज्ञान नहीं ।
गीत रामकथा का गा सकूं, इसका भी अभिमान नहीं ॥
कुछ गीतों के बीच में, राम का गीत सुनाना है ।
कथा सरलता से कह कर, जन मानस में पहुँचाना है ॥
उस परम ब्रह्म परमेश्वर को, सांसों से कैसे नाप सकूँ ।
कैसे इन टूटे धागों से, उस दिव्य प्रभु को बांध सकूँ ॥

राम जन्म के पश्चात् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ । यह सूचना जब अयोध्या के लोगों को मिली तो, सभी लोग नाचने गाने लगे । दशरथ ने काफी दान किया। पूरी अयोध्या में बन्दनवार लगाए गए । यह महोत्सव देखने, सभी देवतागण

अपना-अपना वेष बदल कर अयोध्या आ गए । राम जन्म का यह महोत्सव बड़ा ही मोहक है । इस महोत्सव को देखने सूर्यदेव भी उपस्थित हुए, जिसके कारण-

दो०

मास दिवस कर दिवस भा मरम ना जानइ कोइ ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ ॥

सूर्य के वहाँ उपस्थित होने से, एक महीना का दिन हो गया । राम का जन्म दिन के बारह बजे हुआ । जिस कारण चन्द्रमा वहाँ उपस्थित नहीं हो सका । एक दिन चन्द्रमा ने भगवान् से शिकायत की कि "हे प्रभु! आपका जन्म दिन में हुआ जिस कारण मैं वह महोत्सव नहीं देख सका ।" इस पर भगवान् ने चन्द्रमा से कहा- "जब मैं द्वापर में कृष्ण बनकर आऊँगा तो रात के बारह बजे जन्म लूंगा" । इसलिए कृष्ण का जन्म रात के बारह बजे हुआ । इधर अयोध्या में घर-घर बधाइयां बजने लगी । लोग दशरथ, कौशल्या एवं अन्य माताओं को बधाई देने लगे । आइए, हम सब लोग भी मिलकर श्रीराम के स्वागत में एक भजन गाएं । इस मोहक संगीत को मैंने बड़े ही भक्ति भाव से लिखा है-

भ०

सनन सनन बहे पुरवइया
अवध में बाजे बधइया
दिव्य लोक से राम जी आए
शेषनाग लक्ष्मण बन आए
धर्म बन भरत जी भइया
अवध में बाजे बधइया
सनन सनन...॥

रामकथा जे नित नित गाए
सुख सम्पत्ति तेहि के घर आए
राम है पार लगइया
अवध में बाजे बधइया
सनन सनन...॥

राम जनम जे सुने सुनावे
ताहि पवन सुत गले लगावे
संकट से वही बचइया
अवध में बाजे बधइया
सनन सनन...॥

कहे सुदर्शन लेहु बलैया
भव सागर के ये ही खेवैया
नाचहुँ ताता थैया-थैया
अवध में बाजे बधइया
सनन सनन...॥

इस तरह पूरी अयोध्या में महोत्सव मनाया जा रहा है । आज भी जब किसी के घर में पुत्र पैदा होता है तो, लोग महोत्सव मनाते हैं । छह दिनों तक तो छठिहार मनाने की प्रथा आज भी पूरे देश में है । जब राम का जन्म हुआ तो पूरे देश में महोत्सव मनाना स्वाभाविक है । सभी लोग राजा दशरथ, कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा को बधाई दे रहे हैं और जो सुधी लोग हैं, वे बालक बने राम को भी बधाई देने पहुंच जाते हैं । क्योंकि देवताओं को तो पता था कि यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है । यह तो परमात्मा का अंश लेकर अवतरित हुआ है । देवताओं में से कुछ देवता राम के पास जाते हैं और मनुष्य रूप में अवतरित होने के कारण उन्हें भी बधाई देते हैं । तो आइये, हम सब लोग भी अपनी ओर से राम को बधाई दें ।

दरअसल राम को हम क्या बधाई दें, भगवान् तो सर्वज्ञ हैं । वे लीला कर रहे हैं । लेकिन भक्त भी तो उन्हें पहचानता है । इसीलिए मैंने बधाई गीत लिखा–

बधाई गीत

(1)

दशरथ घर आये रघुरैया, घर-घर बाजे बधइआ ।
ऋद्धि-सिद्धि मुनिगण फूल बरसाये, देववधू सब नाच दिखाये ।
शंकर लेत बधइया, घर-घर में बाजे बधइया ।
जब से राम अवध में आए, सुख समृद्धि सबके घर छाए ।
नाचत सरयुग भइया, घर-घर में बाजे बधइआ ।
बाल बाला सब मंगल गावे, एक दूजे को गुलाल लगावे।
गावत ताता थैया, सुदर्शन लेत बधइआ।
घर-घर बाजे बधइआ.................................।

(2)

बधाई तुम्हें मेरा, मेरे दशरथ के लाला ।
तेरी आंखों में शरारत मैंने देखी है,
तेरी होठों पे मुस्कान मैंने देखी है ।
जब से तुम्हें देखा है, धड़कने बढ़ने लगी है,
तेरे निकट आने की चाह बढ़ने लगी है ।
बधाई तुम्हें मेरा, मेरे दशरथ के लाला ॥

तुम अपने होठों से हमें भी मुस्कुराने देना,
अपनी धड़कनों से हमें भी सांस लेने देना ।
न जाने कब तेरे मन में प्रेम की पुरवाई बहने लगी,
किसी और को भी अपनी पुरवाई में बहने देना ।
बधाई तुम्हें मेरा, मेरे दशरथ के लाला ॥

मैंने तेरे प्यार में लाखों को तड़पते देखा है,
तुझे पाने को लाखों को मचलते देखा है ।
न जाने किस गुलिस्ता में, तुम फूल बन मुस्कुराने लगो,
तेरे विरह में मैंने भंवरो को भी हर पल रोते देखा है ।
बधाई तुम्हें मेरा, मेरे दशरथ के लाला ॥

(3)

दशरथ घर बाजे बधइया, अवध में शोर भयो ।
ब्रह्म रूप बन रामजी आयो, शेषनाग लक्ष्मण बन आयो
धर्म बन भरतजी आयो, अवध में शोर भयो । दशरथ घर....... ।
सब देवन के देवन आयो, विधि हरि हर महा सुख पायो
संकट से सबको बचायो, अवध में शोर भयो । दशरथ घर........ ।
देव दनुज जिसे साध न पायो, सोई प्रभु मनुज रूप बन आयो
दशरथ के मान बढ़ायो, अवध में शोर भयो । दशरथ घर....... ।

(4)

बधाई गावे ननदी, बधाई गावे ननदी
बधाई गावे ननदी, ऐ मेरे बलमा

मइया लुटावली-अन-धन सोनमा
बाबा लुटावले धनसर के धनमा
भउजी लुटावली सोने के कंगनमा
बधाई गावे..............................

संग के सहेलिया धूम मचावे
एक-दुजे के गुलाल लगावे
हुड़दंग में टूट गइल हमर पलंगवा
बधाई गावे ....

छोटकी ननदिया जैसे, चंचल हिरणिया

छुप-छुप के गारी गावे, हमर परणिया

मनमा के छुए जैसे, पूर्वी पवनमा

बधाई गावे ....

प्रभु श्रीराम का अवतरण चैत महीने के नवमी शुभ तिथि में हुआ था। प्रभु के अवतरित होते ही सम्पूर्ण प्रकृति खिल गई। सभी जगह रोमांच पैदा होने लगा। चराचर जीव नाच-गान करने लगे। इस भाव को इस रूप में व्यक्त किया गया है-

(5)

दशरथ घर जनमे ललनमा हो रामा

दशरथ घर जनमे ललनमा हो रामा

चैत के महिनमा ....

नव पल्लव में अंकुर आये

डाली-डाली में फूल मुस्काये

झर-झर बहत पवनमा हो रामा

चैत के महिनमा ....

कंचन थार में आरती सजाये

नगर वधू सब मंगल गाये

अवध में आएल सुदिनवाँ हो रामा

चैत के महिनमा ....

युग-युग से सब नयन बिछाये

आज प्रभु आँखों में समाये

भर गेल हमर नयनमा हो रामा

चैत के महिनमा ....

समय बीतने लगा, भगवान् श्रीराम, बालक रूप में पालना में विहार करते रहे और पालना में माताओं की लोरी सुनते रहे । कभी अंगूठा चूसते, कभी रोते, कभी हंसते । इस तरह से ग्यारह दिन बीत गये-

चौ०

कछुक दिवस बीते एहि भाँती, जात न जानिअ दिन अरु राती।।

नामकरन कर अवसरु जानी, भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ।।

नामकरण के लिए राजा ने अपने गुरु वशिष्टजी को बुलाया । भारत में 16 संस्कारों की बात कही गयी है । इन संस्कारों से जीवन में सफलता मिलती है । हमारा जीवन गर्भ-धारण संस्कार से प्रारंभ होता है । इसके बाद पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत, विवाह आदि सोलह संस्कारों का महत्त्व है । भगवान् श्रीराम के नामकरण संस्कार के लिए गुरु बुलाये गये । गुरु ने जन्म के लग्न के अनुसार विचार करके चार भाइयों का नामकरण संस्कार पूरा किया । राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का नाम जन्म के समय जो ग्रह की स्थिति थी, उसके अनुसार किया गया । कहा जाता है कि मनुष्य के नाम का प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है । मनुष्य का नाम गुण बोधक होता है । इसका निर्णय बच्चे के जन्म के समय ग्रह, नक्षत्र की स्थिति देखकर किया जाता है । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जब जन्म लेता है तो, उस समय जो ग्रह उपस्थित रहता है उसी का प्रभाव जीवन भर पड़ता रहता है । ज्योतिषी जन्म के समय के उसी क्षण को पकड़ते हैं और होरा, लग्न और नक्षत्र की स्थिति जानकर बच्चों का नामकरण करते हैं ।

दरअसल आज जो हम जन्म के समय के अनुसार कुण्डली बनाते हैं वह भी पूर्ण विधि नहीं है । पूर्ण विधि तो तब होगी, जब हम जीव को गर्भ में प्रवेश करने के ठीक समय का पता करें । गर्भ में प्रवेश करते ही जीव का अस्तित्व इस पृथ्वी पर हो जाता है और उसी समय से ग्रहों का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगता है । यही समय है, जिसके अनुसार गणना करनी चाहिए । यही भारत की परंपरा है । लेकिन आजकल लोगों ने गर्भधारण और नामकरण संस्कार के महत्त्व को ही भुला दिया है । आजकल ऐसे-ऐसे नाम रखे जाते है जिसका कोई अर्थ नहीं होता । जैसे - बबलू, डबलू आदि । ऐसे नामों से बच्चों के मन में हीन भावना बढ़ने लगती है । क्योंकि यही बच्चा, एक दिन जब कोई अधिकारी बनता है, नेता या संत महापुरुष बनता है तो, इस नाम को कहने में उसे शर्म लगती है । जिस काम को करने में शर्म लगे, जिस नाम को बोलने में शर्म लगे तो, फिर वैसा काम क्यों हो? जब से हमारे देश में अंग्रेजी सभ्यता आयी है, तब से इसने हमारी संस्कृति और संस्कार को नष्ट कर दिया है । अंग्रेजों के नाम का कोई अर्थ नहीं होता । लेकिन भारत में नाम का अर्थ है । भारत में राम नारायण, राम प्रसाद, राम आशीष नाम इसलिए रखा जाता है ताकि श्रीराम का आशीर्वाद इस व्यक्ति को मिले ।

अजामिल एक चाण्डाल था और उसके बेटे का नाम नारायण था । मरते समय वह नारायण को पुकारने लगा, जिस कारण उसे स्वर्ग मिला । इसलिए कभी भी अपने बच्चों का नाम निरर्थक नहीं रखना चाहिए । राम के साथ उनके भाइयों का नामकरण गुरु वशिष्ट ने किया । भगवान् राम ने माता कौशल्या को प्रसन्न करने के लिए बालक के रूप में लीला प्रारंभ किया-

दो०

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ॥

इस तरह श्रीराम लीला करते हुए समय बिताने लगे ।

एक दिन ऐसा हुआ कि माता कौशल्या राम को स्नान कराकर, पूरा श्रृंगार कर पालने पर सुला दी और पूजा करने चली गयी । फिर जब रसोई में गयी, तो देखा राम वहाँ भोजन कर रहे हैं, वह घबड़ा गयी-

चौ०

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा ॥

देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥

दो०

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

राम ने माता को अपना विराट रूप दिखाया । कौशल्या ने देखा कि राम के रोम रोम से हजारों सूर्य का प्रकाश निकल रहा है। माता डर गयी। फिर राम ने माता को कहा-

चौ०

हरि जननी बहु बिधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥

हे माता! तुमने जो मेरा यह रूप देखा, इस बात को किसी से मत कहना । इस तरह भगवान् राम और भी कई लीलाएं करते रहे ।

श्रीराम बालक की तरह लीला दिखाकर सबों का मन मोह लेते हैं । इस पर एक सवैया लिखा गया है । माता कौशल्या अपने हाथ से रसोई बनाकर अपने बेटे को खिलाती है। राम भागते हैं । कौशल्या पकड़-पकड़ कर उनके मुंह में भोजन देती है । कौशल्या के लिए यह कितना सुखद क्षण रहा होगा । अपने बेटे को अपने हाथ से खिलाना कितना सुख देता है, यह तो कोई माता ही बता सकती है । लेकिन आजकल वैसी माता कहाँ है और आज कितने वैसे सौभाग्यशाली बेटे हैं जो, अपनी माँ के हाथ का भोजन खाते हैं । रेडिमेड फूड और फास्ट फूड कल्चर ने माँ के हृदय से वात्सल्य रस सुखा दिया है और बेटों को होटल कल्चर ने अपना बना लिया है । घर में नौकर खाना

बनाते हैं, जिसमें न कोई रस रहता है और न कोई प्रेम । नौकर के हाथ का भोजन करने वाला विचार से हीन मनोवृत्ति वाला बन जाता है । नौकर के शरीर से जो ऊर्जा निकलती है, वह भोजन में मिल जाती है । इसलिए माँ, बहन, पत्नी के हाथ का भोजन खाने की परंपरा हमारे यहाँ है । कहा भी गया है-

रोगी, क्रोधी, आलसी, रहे रसोईया साथ ।
रोग सदा घर में रहे, काल देत सर हाथ ॥

कहा जाता है **"जैसा अन्न वैसा मन"** जैसा भोजन करोगे, वैसा ही तुम्हारा मन और विचार होगा । तामसी, बासी और सड़ा-गला भोजन करने पर वैसा ही मन हो जाता है । विज्ञान कहता है विचार से पदार्थ प्रभावित होता है । खाना बनाने वाला अगर गंदा है, रोगी है, क्रोधी और लोभी है, भयभीत है तो विज्ञान के नियम के अनुसार उसकी सारी बुराई भोजन में चली जाती है । उसके विचारों से भोजन प्रभावित हो जाता है । इसीलिए मैंने लिखा कि कौशल्या अपने हाथ से भोजन बनाकर बेटे को खिलाती है-

-: कविता :-

निज हाथ रसोई बनाई खिलाई ।
कौशल्या धन्य करी अपनी नयनन ॥
जिस रूप को देखी सिहाई सुरेश ।
वह नाच दिखाकर नृप के अंगना ॥

कब ही ललचात विहंगम हेतु ।
कब ही चन्द्र मांग के मोद बढ़ावत ॥
किलकारी दिये परात है कैसे ।
जिमी संत परात है पाप के बाढ़त ॥

परछाई पड़ी धरणी पर जब ।
गही बांह पछारन के प्रभु धाये ॥
यह देख सुरेश दिनेश महेश ।
माया पति कैसे खेल दिखाये ॥

इसी भाव को गोस्वामीजी ने लिखा–

चौ०

कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई ॥

दो०

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥

इस दृश्य को देखकर पत्थर हृदय वाला व्यक्ति भी द्रवित हो जाए। कौशल्या ने प्रभु से यही माँगा था कि उसे माँ का वात्सल्य सुख मिले। यह सुख दशरथ को नहीं मिला। क्योंकि उन्होंने केवल पुत्र माँगा था। दशरथ को पता भी नहीं चला कि "उनका बेटा परमात्मा है।"

कहा जाता है परमात्मा को तुम जिस रूप में देखना चाहते हो, वही रूप तुम्हें दिखेगा। कौशल्या ने राम के विराट रूप को देखा लेकिन दशरथ यह रूप नहीं देख सके। दशरथ के मन में सकाम भक्ति थी और कौशल्या के मन में निष्काम भक्ति थी।

इस प्रकार चारों भाइयों का चूड़ाकरण संस्कार और यज्ञोपवित किया गया। फिर विद्यारंभ संस्कार के लिए गुरु वशिष्ट के आश्रम में चारों भाइयों को भेजा गया। विद्यारंभ संस्कार का हमारे जीवन में बड़ा महत्त्व है। इसलिए किसी योग्य चरित्रवान व्यक्ति से ही अन्नप्राशन और विद्यारंभ संस्कार कराना चाहिए। मंत्रों के साथ गुरुजी बच्चे का हाथ पकड़ कर ऐसा लिखवाते हैं–

"रा म ग ती दे हु सु म ती"

ऐसा अक्षरारंभ माँगलिक शुभकामनाओं के साथ कराया जाता था । तभी हमारे यहाँ राम, कृष्ण जैसे महापुरुष पैदा होते थे । आज तो हमारे देश में अंग्रेजी स्कूलों ने सर्वनाश कर दिया है । यही कारण है कि हमारे बच्चे राम और सीता को तो नहीं जानते लेकिन अनैतिक आचरण करने वालों को खूब जानते हैं । उन्हीं के प्रभाव के कारण हमारे बच्चे बिगड़ रहे हैं और हम कहते हैं कि बहुत खराब समय आ गया है । माता-पिता स्वयं अच्छा आचरण नहीं करते और चाहते हैं कि उनका बच्चा आदर्शवान् और चरित्रवान् बने । आज घर-घर में यही समस्या है कि माँ-बाप के आचरण को देखकर बच्चे वैसा आचरण करने लगते हैं और अपना जीवन बर्बाद कर लेते हैं । इसके लिए माता-पिता का आचरण ही जवाबदेह है । वे तो जैसा देखते हैं वैसा ही करते हैं ।

श्रीराम को गुरु के आश्रम में पढ़ने के लिए भेजा गया । दशरथ चाहते तो वशिष्ट को अपने यहाँ बुलवाकर राम को पढ़वा लेते । लेकिन उन्होंने अपने पुत्रों को गुरु के आश्रम में भेजा-

चौ०

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल बिद्या सब आई ॥

वे सभी गुरु के आश्रम में इसलिए पढ़ने गए कि आश्रम के नियम के अन्दर रहकर पढ़ाई की जाए । गुरु के यहाँ जाकर पढ़ा जाता है । गुरु को घर पर बुलाकर नहीं पढ़ा जाता । इसका परिणाम हम महाभारत के अर्जुन और दुर्योधन के चरित्र को देखकर जानते हैं । अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्य के यहाँ पढ़ने जाते थे और दुर्योधन अपने नौकर द्रोणाचार्य से पढ़ता था । दोनों का चरित्र हमारे सामने है । इसके साथ ही राम को गुरु आश्रम में पढ़ने इसीलिए भेजा गया था कि वहाँ वे सारा काम अपने हाथ से करे । इस प्रकार खाना, बागवानी, खेल, व्यायाम एवं विद्याभ्यास करके राम पूर्ण मनुष्य बन गए । अगर राम को इतना परिश्रम नहीं कराया जाता, अपना काम अपने हाथ से नहीं कराया जाता तो जीवन में आने वाली कठिनाईयों का वे मुकाबला नहीं कर पाते । वे टूट जाते । सत्य है कि जिसका बचपन फूलों की सेज पर बीतता हो, जिन बच्चों का लालन-पालन

दाइयों और नौकरों के द्वारा होता हो, जो एक ग्लास पानी भी अपने हाथ से नहीं पी सकता हो, जो पराश्रित जीवन जीता हो, वह जीवन में संघर्ष करके सफलता नहीं प्राप्त कर सकता । इसलिए राम को बचपन से ही कर्मठ जीवन जीने का अभ्यास कराया जाता था । दशरथ चाहते तो अपने पुत्र को पालने में रख कर पढ़ाते । लेकिन उन्होंने राम को संघर्षों के बीच इसलिए रखा कि वह महापुरुष बन सके । आजकल सभी माता-पिता चाहते हैं कि उनका बेटा राम के समान बने । लेकिन वे स्वयं दशरथ और कौशल्या नहीं बनना चाहते । किसी भी सफलता को पाने के लिए त्याग अनिवार्य है । बिना वृक्ष पर चढ़े मीठा फल नहीं मिलता । बिंना नदी किनारे गये शीतल जल नहीं मिलता ।

कोई भी व्यक्ति पहाड़ की चोटी पर अपने दोनों हाथ पाकेट में रख कर नहीं चढ़ सकता। जीवन में अगर सफलता पाना हो तो बचपन से ही सफल होने का मन बनाना पड़ता है । क्योंकि मन विचारों से प्रभावित होता है । बचपन में अगर अच्छा विचार मन में बनने लगे तो, उस व्यक्ति को वैसी ही सफलता मिलने लगती है जो वह पाना चाहता है । प्रकृति का यही नियम है ।

पल पल अम्बर अमृत बरसे उद्भिज पीये पोषाए ।
सर झुकाए धन नर खोजे जीवन धन गवाए ॥

श्रीराम गुरु आश्रम में रह कर जब पूर्णता प्राप्त कर लिए तो गुरु वशिष्ट ने उन्हें अयोध्या भेज दिया । अयोध्या में राम को देखकर माता कौशल्या और दशरथ अपने भाग्य को सराहने लगे । यह सब देख दशरथ को बड़ी प्रसन्नता होती थी ।

चौ०

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

पुत्र को ऐसा आचरण करते हुए देखकर राजा बड़े खुश होने लगे । क्योंकि जो पुत्र, प्रतिदिन माता-पिता को प्रणाम कर दिन प्रारंभ करता है उसे आदर्श पुत्र माना जाता

है । राम ने अपने शील और नैतिक व्यवहार से सबको प्रसन्न कर दिया । इधर राम को देखकर दूसरे भाई भी वैसा ही आचरण करने लगे । एक दिन सभी देवता प्रभु श्रीराम का दर्शन करने अवध आये। श्रीराम का युवा रूप बड़ा मोहक लग रहा था । देवताओं ने प्रभु श्रीराम की बहुविध वन्दना की–

भ०

तेरे चरणों का मैं हूँ गुलाम, ऐ मेरे अलबेले राम ।

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल,

चांद सुरज सन है मुख मण्डल,

रूप है तेरा ललाम, ऐ मेरे अलबेले राम ....।

ठुमुक-ठुमुक पग धरे मही पर,

तीन लोक विभु बसे जमीं पर ।

तेरे चरणों में चारों धाम, ऐ मेरे अलबेले राम ....।

भृकुटि विलास जगत के पालक,

कोटि दीनन के हो प्रतिपालक ।

सुमिरि-सुमिरि तेरे नाम, ऐ मेरे अलबेले राम ....।

मातु कौशिल्या पकड़न धावे,

ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु खेल दिखावे ।

जपत मुनि आठों धाम, ऐ मेरे अलबेले राम ....।

देवताओं की वन्दना सुनकर श्रीराम अति प्रसन्न हुए । थोड़ी देर बाद श्रीराम ने देवताओं को विदा कर दिया ।

सीता की उत्पत्ति

सीता मिथिला के राजा महाराज जनक की भूमिजा पुत्री थी । सीता को लक्ष्मी का अवतार माना जाता है । भगवान् विष्णु जब राम बनकर अवतार लेने के लिए तैयार हुए तो उन्होंने लक्ष्मी को सीता के रूप में जन्म लेने के लिए भेजा । यही कारण है कि राम माता-पिता के संपर्क से पैदा नहीं हुए और सीता भी भूमि से पैदा हुई । कौशल्या के घर में राम प्रकट हो गये इसलिए गोस्वामीजी ने **"भए प्रकट कृपाला"** कहा । राम और सीता दोनों परमात्मा हैं । उनका अवतरण हुआ है इसलिए उन्हें अवतार कहा जाता है । अवतार का अर्थ है जो ऊपर से अवतरित हो । अवतार को ऊपर से शक्ति आती है । क्योंकि जब तक दिव्य लोक से शक्ति नहीं उतरती, तब तक किसी व्यक्ति में विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं होता । संसार के सभी अवतार पैगम्बर और दिव्य शक्ति सम्पन्न आत्माओं का अवतरण इस भू-मण्डल पर एक ही परमात्मा से हुआ है । शक्ति तो एक ही है, नाम से क्या फर्क पड़ता है । हम किसी नाम से पुकारें, सुनने वाला तो एक ही है । उसी एक शक्ति के आशीर्वाद और दुआ से संसार के समस्त जीव अनुप्राणित हो रहे हैं । इन दिव्य शक्तियों के आशीर्वाद में कोई विभेद नहीं किया जा सकता । आशीर्वाद, आशीर्वाद होता है, वह परमात्मा का हो या गुरु का ।

यह बताना मुश्किल है कि यह आशीर्वाद परमात्मा का है, गुरु का है या माता-पिता का। क्योंकि आशीर्वाद केवल आशीर्वाद होता है । जब कोई जंगल में बैठता है तो उस पर वृक्षों की छाया पड़ती है, वह छाया किस वृक्ष की है यह बताना मुश्किल है । क्योंकि छाया तो छाया है । खजूर की छाया हो, बबूल की छाया हो, पीपल अथवा आम के वृक्ष की छाया हो । आँख बन्द करके कोई नहीं बता सकता कि किस वृक्ष की छाया शरीर पर पड़ रही है । छाया में केवल शीतलता है और शीतलता का कोई नाम नहीं होता । जब आँख बन्द रहती है तो मन में विभेद पैदा नहीं होता । क्योंकि संसार में विभेद तो है भी नहीं । आँख खुलते ही हम अपनी-अपनी आँखों से अपने अनुरूप अपनी-अपनी दीवारें खड़ी कर लेते हैं और कहने लगते हैं कि मैं राम का भक्त हूँ ।

भगवान् शिव, कृष्ण एवं अन्य अवतारों को मैं नहीं पूजता । यही दृष्टि भेद है, जिस कारण हमने अपने चारों ओर विभेदों की बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी कर ली है । इन दीवारों ने धर्म को तो तोड़ा ही है, मनुष्य को भी कई टुकड़ों में तोड़ दिया है । इसलिए आज के युग में सम्पूर्ण मनुष्य को खोजना मुश्किल है । शायद यही कारण है कि मानवता ,करूणा, प्रेम, भाईचारा, सब नष्ट होता जा रहा है । इसलिए-

मुसीबत में शरीफों की शख्शियत कम नहीं होती ।
करो सोने के सौ टुकड़े कीमत कम नहीं होती ॥

आज के युग में भी हमारे जितने भी महापुरुष या अवतार हुए हैं, उन्हें ऊपर से शक्ति प्राप्त होती रही है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, पैगम्बर मुहम्मद साहब, ईसामसीह सभी उस अनन्त परमात्मा के प्रतिनिधि बनकर इस दुनिया को स्वर्ग बनाने ही आए । इन दिव्यात्माओं का उद्देश्य इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना ही रहा है । जब-जब धर्म की हानि होती है, लोग अनाचारी और अत्याचारी बन जाते हैं तो पृथ्वी की पुकार पर कोई दिव्य आत्मा प्रकट होती है । ऐसी घोषणा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में की है और मानस में भी लिखा है-

चौ०

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

विशेष प्रसंग-

(सीता की उत्पत्ति पृथ्वी के गर्भ से हुई थी । इसमें बहुत ही गहरा अर्थ छिपा हुआ है । आखिर पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न होने की क्या आवश्यकता पड़ी । वे तो महाशक्ति थीं । कहीं से भी उत्पन्न हो सकती थीं । लेकिन वह पृथ्वी से उत्पन्न हुईं इसलिए उन्हें भूमिजा कहा गया है ।)

सीता महाराज जनक की पुत्री मानी जाती है । क्योंकि जनक के पराक्रम से ही सीता उत्पन्न हुई । जनक महाप्रतापी और विदेह थे । शरीर के मंथन से वे उत्पन्न हुए थे ।

इसलिए उन्हें जनक कहा गया है । वे इकबाली थे, इसलिए उनके राज्य में सुख, शान्ति और समृद्धि थी। अधिक सुख और समृद्धि से जनकपुरवासी अपने-अपने कर्मों को छोड़कर सुख में डूब गये थे । जिस कारण राज्य का सारा व्यवसाय और कृषि कार्य बन्द हो गया था । सभी लोग निष्क्रिय हो गए थे । धीरे-धीरे व्यवसाय के अभाव में राज्य की स्थिति खराब होने लगी । चारों तरफ हाहाकार मचने लगा, उसी को मानस में अकाल कहा गया है । क्योंकि जनक के राज्य में दुर्भिक्ष सम्भव नहीं था । फिर भी दुर्भिक्ष पड़ा, स्पष्ट है कि वहाँ के लोग अधिक सुख और सम्पन्नता के कारण अकर्मण्य बन गये थे । क्योंकि जो अपना कर्म छोड़ देता है, उसे दुःख तो भोगना ही पड़ता है। जनक विदेह बनकर निष्क्रिय हो गये थे और प्रजा काम छोड़कर अकर्मण्य बन गई थी । फलतः राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा । जनक को परामर्श दिया गया कि वे खेत में हल चलावें, मतलब राजा स्वयं परिश्रम करें । जनक ने हल चलाकर यह साबित किया कि राजा को भी राज्य के विकास के लिए काम करना चाहिए । तभी जनक ने कोई यज्ञ, पूजा-पाठ नहीं किया, सिर्फ हल चलाया । राजा को देखकर प्रजा ने भी परिश्रम शुरू किया । इस घटना का अर्थ है कि राज्य के विकास के लिए राजा को भी परिश्रम करना चाहिए । जनक के हल से सीता निकली । मतलब जो व्यक्ति हल चलायेगा, कृषि कार्य करेगा, उसे सीता जैसी दिव्य शक्ति प्राप्त होगी, उसी को लक्ष्मीरूपी सीता मिलेगी । कर्मशील को ही जीवन में सुख और शान्ति मिलती है । हल के नोक से सीता के प्रकट होने का यही अर्थ है ।

राम और सीता का अवतरण लोक कल्याण के लिए हुआ । रावण के अत्याचार से जब संत महात्मा दुःखी हो गए तो टैक्स के रूप में अपना खून निकालकर घड़ा में बन्द कर रावण के पास भेजा । अत्याचार से लिया गया टैक्स कभी किसी को नहीं फलता । घड़ा मिलते ही रावण को आकाशवाणी हुई कि इसी घड़ा के कारण तुम्हारी मृत्यु होगी। रावण ने उस घड़ा को सीतामढ़ी के निकट पुनौरा ग्राम में गड़वा दिया । जहाँ सीता, महाराज जनक के हल चलाते समय पृथ्वी से निकली । हल की नोंक से निकलने के कारण उन्हें सीता (सिता) कहा गया । सिता का अर्थ है हल की लकीर । इसीलिए भी सीता जनक की भूमिजा पुत्री मानी जाती है ।

सीतामढ़ी का महत्त्व

सीतामढ़ी वर्तमान बिहार का एक जिला है। जिसके बगल में पुनौरा गाँव है, जहाँ पर पुण्डरीक ऋषि का आश्रम था। इसी ग्राम में सीताजी प्रकट हुई थीं। यह गाँव आज भी धार्मिक स्थल के रूप में पूरे देश में जाना जाता है। प्रति वर्ष यहाँ जानकी महोत्सव सीता नवमी के दिन मनाया जाता है। उस दिन लाखों भक्त वहाँ दर्शन के लिए जाते हैं। वहाँ एक सीताकुण्ड है, जिसमें हमेशा शीतल जल भरा रहता है। श्रद्धालु उसी का पूजन करते है। मान्यता है कि इसी कुण्ड से सीताजी निकली थी। उत्पत्ति विषय को लेकर ऐसी लोकमान्यता है कि सीतामढ़ी से ठीक 8 कि०मी० दूर उत्तर में आज भी एक गाँव है, जिसे लोग **गिरमिसानी** कहते हैं। (गिरमिसानी शब्द गीरमसान का अपभ्रंश रूप है। गिर का अर्थ वाणी और मसान का अर्थ मरघट (श्मशान) है।) यहीं भगवान् शिव का एक अति प्राचीन मंदिर है, जहाँ पर महाराज जनक ने पुरोहित शतानन्द के परामर्श से शिव की पूजा की थी। आज भी वह स्थान हलेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। पूजा के बाद महाराज जनक प्रजाजन सहित पुनौरा गाँव पहुँचे, जहाँ पर हल चलाते समय हल की नोंक(सिता) से सीताजी प्रकट हुईं। इस तरह से गिरमिसानी, सीतामढ़ी और पुनौरा का विशेष महत्त्व माना जाता है। सीतामढ़ी में आज भी प्रति वर्ष राम नवमी महोत्सव और विवाह पंचमी महोत्सव धूम-धाम से मनाया जाता है। सीतामढ़ी का राम जानकी मंदिर विश्व प्रसिद्ध है। आज सीतामढ़ी भारत में है। लेकिन प्राचीन काल में यह महाराज जनक के अधीन था। जनक की राजधानी जनकपुर थी जो आज नेपाल में है।

सीतामढ़ी के चारों ओर प्राचीन काल में बड़े-बड़े संतों का आश्रम था जिनमें प्रमुख है, गौतम ऋषि का आश्रम अहिल्या स्थान, कपिल मुनि का आश्रम और सुकेश्वर स्थान। सुकेश्वर स्थान में भगवान् शिव का प्राचीन मंदिर है। सीता की जन्म भूमि से एक पवित्र नदी बागमती, सीतामढ़ी को स्पर्श करती है और दूसरी ओर से लखनजी के नाम पर लखनदेयी नदी बहती है। तीसरी कमला नदी भी इसी क्षेत्र को स्पर्श करती है। ब्रह्मपुत्र और नारायणी, जहाँ गजेन्द्रमोक्ष हुआ था, इसी क्षेत्र से निकलती है। गंगा का

प्रभाव क्षेत्र भी तो यहीं पर है । एक और पवित्र नदी सीतामढ़ी को स्पर्श करती है वह है **"सोरम"** । सोरम का प्राचीन नाम सोयम था । इस तरह सीतामढ़ी एक बहुत ही पवित्र धार्मिक और सांस्कृतिक नगर है । कहा जाता है कि सीतामढ़ी के सम्पूर्ण क्षेत्र को सुलक्षणी कहा जाता था। यहाँ की नदी लखनदेयी, सुलक्षणी नदी का ही वर्तमान नाम लगता है । आज भी यह क्षेत्र हमेशा धन-धान्य से पूर्ण रहता है । सीतामढ़ी पर हमने एक भक्ति गीत लिखा है-

गीत

चलो मन राम सिया के धाम,
ऋद्धि सिद्धि जहां चंवर डुलावे ।
ऋषि जन गावत नाम, चलो मन.........।।

सीतामढ़ी है भूमि सुहावन,
कण कण में है राम, चलो मन.........।।

विश्वामित्र, कपिल मुनि गौतम
जिनका है यह धाम, चलो मन.........।।

सीताकुण्ड पुनौरा वासी
दिव्य लोक सुर धाम, चलो मन.........।।

बागमती औ लखन नदी जहां
सुरसरि करे विश्राम, चलो मन.........।।

राम सरोवर धाम सुकेश्वर
संत भजे आठो याम, चलो मन.........।।

सत्य है कि प्राचीन काल से सीतामढ़ी का बड़ा महत्त्व है । इसका एक ही कारण है कि यह जगत् जननी सीता का जन्म स्थान है । शायद यही कारण है कि सीता कुण्ड पुनौरा में वर्ष भर धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ होते रहते है । सीतामढ़ी के उत्तर सोनबरसा (स्वर्ण वर्षा) स्थान है, जहाँ भगवान् भोलेनाथ ने प्रसन्न होकर कभी सोने की वर्षा की थी । आज भी यह क्षेत्र सुखी सम्पन्न है । उसके बगल में परिहार है, जहाँ कभी भगवान् ने लोगों के कष्ट का हरण किया था । इसीलिए उसे परिहार कहा जाता है । उसके बगल में शिवहर है, जहाँ शिव का स्थान माना जाता है । उसी जगह देव-कुली (देकुली) का प्रसिद्ध मंदिर है । भोलेनाथ के लिए बेल का भी एक वन था, जिसे आज बेलसण्ड कहा जाता है । पुपरी और उच्चैट जहाँ कालिदास ने साधना की थी, यह स्थान सीतामढ़ी के निकट है । इस तरह सीतामढ़ी के चारों ओर बड़े-बड़े संतों का आश्रम अवस्थित था । इसलिए सीतामढ़ी का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व है । कहा जाता है कि सीतामढ़ी का पूरा क्षेत्र सीताजी को महाराज जनक ने **"खोईंछा"** में दिया था । इसीलिए आज भी यह क्षेत्र सुखी सम्पन्न माना जाता है । "कृषि और ऋषि" के कारण सीतामढ़ी आज प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बना हुआ है । आज भी सीतामढ़ी में अनेक संत महात्मा हैं, जो दिन रात धर्म कार्य में लगे हुए हैं ।

(सीतामढ़ी स्वतंत्रता आंदोलन का भी केन्द्र था । सीतामढ़ी में जन्म स्थान होने के कारण बचपन से मैं सीतामढ़ी के सांस्कृतिक मूल्यों को देखता समझता रहा हूँ । मैं तो मानता हूँ कि प्रभु श्रीराम और माता सीता के आशीर्वाद से ही मैं रामकथा के प्रचार-प्रसार में लग सका हूँ । राम और सीता की असीम अनुकम्पा मुझ पर बनी रहे ऐसी कामना है । शायद यही कारण है कि संगीतमय रामकथा कहने का मैंने पहली बार प्रयास किया है । आज पूरे देश और विदेश में भी इस संगीतमय रामकथा की लोकप्रियता अधिक तेजी से बढ़ रही है ।)

वेदभूमि सीतामढ़ी

वर्तमान की संरचनात्मक स्थिति इस बात का प्रमाण है कि माता जानकी की प्रकाट्य स्थली सीतामढ़ी वेदभूमि भी रही है । लोकमान्यता के अनुसार चारों वेदों की

रचना इसी पवित्र भूमि पर की गई थी । वर्तमान में अवस्थित कस्बाई गाँव, **रीगा, ऋग्वेद** का ही बिगड़ा हुआ रूप है । ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व का पहला आलेख है जो सूक्तों और ऋचाओं का अमरकोश है । इस वेद की पाँच शाखाएं हैं – शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांख्यायन और माण्डूकायन । इनमें से शाकल शाखा की रचना यहीं हुई थी और यह आज भी उपलब्ध है । महर्षि विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा ने इसी पावन स्थल पर ध्यानस्थ मुद्रा में ऋग्वेद के सूक्तों व ऋचाओं को द्रष्टा रूप में प्राप्त किया था । दूसरी ओर सीतामढ़ी से कुछ दूरी पर बसा हुआ **यजुआर** गाँव **यजुर्वेद** की गाथा कहता है ।

कहते हैं कि यजुर्वेद की रचना इसी जगह हुई थी । आज भी यजुआर गाँव में महर्षि याज्ञवल्क्य का आश्रम स्थित है । **महर्षि याज्ञवल्क्य** यजुर्वेद के द्रष्टा थे । यजुर्वेद के पूर्व भाग शुक्ल यजुर्वेद का संज्ञान भगवान सूर्य ने वाजि अर्थात घोड़े का रूप धारण करके याज्ञवल्क्य ऋषि को दिया था इसलिए इनका नाम वाजसनेय ऋषि भी है और इस संहिता का नाम वाजसनेयी संहिता भी है ।

स्मरणीय है कि दिन के मध्य भाग में इस संहिता का संज्ञान कराया गया था, अतः इसे माध्यंदिन संहिता भी कहा जाता है । कालांतर में इसकी दो शाखा हो गई – माध्यंदिन और काण्व । आज भी इस गाँव में आदित्य सम्पद्राय के प्रतिनिधि लोग रहते हैं । इसी प्रकार कुछ दूरी पर अवस्थित वर्तमान **श्यामपुर** गाँव **सामवेद** के इतिहास का बखान करता है । इस वेद के मंत्रों का गायन इसी पवित्र स्थान पर हुआ था ।

ध्यातव्य है कि साम के नाम पर ही श्याम बना है । सामवेद की तीन शाखाएं- कौथुमीय, राणायनीय, जैमीनीय विकसित हुई थी । इस क्षेत्र में इन शाखाओं के विचारक आज भी वर्तमान हैं । इसके साथ ही सीतामढ़ी के बगल में अवस्थित गाँव **अथरी अथर्ववेद** की जन्मस्थली मानी जाती है । इसी स्थान पर **अथर्व नामक ऋषि** ने अपनी साधना को गहरा बनाकर इस वेद को प्राप्त किया और **अंगीरा ऋषि** ने अपने तप प्रभाव से इस धरती को पवित्रता की पराकाष्ठा पर पहुँचाया ।

जनकपुर

सीता का बचपन जनकपुर में बीता। जनकपुर इतना सुन्दर और व्यवस्थित नगर है कि देखते ही लगता है शायद इसे विश्वकर्मा ने बनाया हो। जनकपुर के चारों ओर अनेक बड़े-बड़े तालाब, उपवन, वाटिका अवस्थित हैं। जनकपुर के चारों ओर सैकड़ों आश्रम हैं। नगर के मध्य में सीता और राम मंदिर हैं, जिसे नवलखा मंदिर कहते हैं। नगर के मध्य में ही एक रंगभूमि भी है, जहाँ धनुष यज्ञ हुआ था। वहाँ से थोड़ी दूर पर धनुषा नगर है, जहाँ राम द्वारा तोड़े गये धनुष का एक खण्ड रखा हुआ है।

जनकपुर में ही अहिल्या और गौतम पुत्र सतानन्दजी का आश्रम था। जहाँ सीताजी की पढ़ाई लिखाई होती थी। सतानन्दजी के गुरुकुल में सीता की पढ़ाई की सारी व्यवस्था की गयी थी। यही कारण है कि सीता सर्वगुण सम्पन्न हो सकी। जनकपुर के बगल में आज भी फुरलाही गाँव है, जहाँ पुष्प वाटिका थी। वहीं राम-सीता का प्रथम मिलन हुआ था। इस सम्पूर्ण क्षेत्र को आजकल **"सीता सर्किट"** के नाम से जाना जाता है। आज भी लाखों भक्त इस क्षेत्र की परिक्रमा करते हैं। सीता अपने पिता जनक के साथ प्रतिदिन अपने बगीचे में जाती और खेलती थी। आश्रम में पढ़ना और बगीचे में खेलना यही दो महत्त्वपूर्ण काम थे।

एक दिन सीता अपने पिता जनक और माता सुनयना के साथ बगीचे में खेल रही थी। इस मोहक दृश्य पर मैंने एक गीत लिखा है। सीता बचपन में अपने बगिया में खेलती थी। उसी का चित्रण किया गया है।

<u>गीत</u>

बगिया में खेलन आई री,

मेरी सीता मइया।

मेरी प्यारी सीता मइया,

बगिया में खेलन आई री...॥

जनक राज की पुष्प वाटिका,

सखी संग रास रचावे ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरासुर,

सब मिल मोद बढ़ावे ।

बगिया में खेलन आई री...॥

तीन लोक की माता सीता,

नाचे और नचावे।

जनक राजा जब पकड़न आवे,

हंस हंस खेल दिखावे (मेरी सीता मइया) ।

बगिया में खेलन आई री...॥

विश्वामित्र का आगमन

विश्वामित्र क्षत्रिय कुल के बड़े ही सिद्ध संत थे । वे ब्रह्मर्षि बनना चाहते थे । लेकिन उस समय के सन्त महात्माओं ने उन्हें मान्यता नहीं दी थी । एक दिन महाराज त्रिशंकु ने विश्वामित्र की बड़ी पूजा की । पूजा से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने त्रिशंकु को वरदान माँगने को कहा । त्रिशंकु ने वरदान माँगा कि मैं अपने शरीर के साथ ही स्वर्ग जाना चाहता हूँ । विश्वामित्र ने वरदान दिया । त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने लगे तो देवताओं ने उन्हें रास्ते में ही रोक दिया । त्रिशंकु आज भी भू-लोक और स्वर्ग-लोक के बीच लटके हुए हैं । इस घटना से क्रोधित होकर विश्वामित्र ने दूसरी दुनिया बनाने का संकल्प किया । कहते हैं विश्वामित्र ने ही मकई का पौधा बनाया जिसकी तना में ईख का रस था। बीच में मकई का बाल और ऊपर धान की बाली । एक पौधा में तीन फसल, यह देखकर देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई । वे सोचने लगे कि इससे तो पृथ्वी का संतुलन बिगड़ जाएगा । तब देवताओं ने विश्वामित्र से समझौता कर लिया ।

विश्वामित्र अपने आश्रम में, जो बिहार के बक्सर के निकट है, वहाँ रहते थे। जब रावण के दूत विश्वामित्र को यज्ञ नहीं करने दे रहे थे तो विश्वामित्र बड़ी चिन्ता में पड़ गए। इस पूरे क्षेत्र में ताटका(ताड़का) का अत्याचार चलता था। ताटका का बेटा मारीच था। ताटका के अत्याचार से जब विश्वामित्र परेशान हो गए तब उन्होंने सोचा कि अवध के राजा दशरथ के पुत्र, जिनका यश चारों ओर फैल रहा है उन्हें कुछ दिनों के लिए माँग कर लाऊँ और ताड़का के अत्याचार से मुक्त होऊं। विश्वामित्र अवध की ओर चले। अयोध्या पहुँचकर दशरथ के दरबार में गए और वहाँ दशरथ से कहा- महाराज! मारीच और सुबाहु, दो राक्षस मेरे यज्ञ को बार-बार विध्वंस कर देते हैं। मैं उन्हें शाप तो दे नहीं सकता और उनसे लड़ने का मेरा नैतिक नियम भी नहीं बनता है। मेरे पास सभी विद्याएं हैं। मैं उन विद्याओं को आपके पुत्र राम को देकर उनसे राक्षसों का नाश कराना चाहता हूँ-

चौ०

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

यह सुनकर दशरथ को बड़ी चिंता हुई। दशरथजी ने कहा कि यह कोमल राजकुमार राक्षसों से कैसे लड़ेगा। यह तो अभी बालक है। आप मेरी सारी सेना ले जाएं लेकिन राम को न माँगे-

चौ०

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानि॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥

यह सुनकर विश्वामित्र बड़े क्रोधित हुए, लेकिन वशिष्ट के समझाने पर दशरथ मान गए। दशरथ ने राम और लक्ष्मण को बुलवाया और विश्वामित्र को सौंप दिया। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम की ओर चले। उस समय राम का रूप देखते ही बनता था।

चौ०

अरुन नयन उर बाहु बिसाला । नील जलज तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥

श्रीराम विश्वामित्र के साथ सरयू तट पर गये । आश्रम में प्रवेश के पहले रात्रि में विश्राम के लिए रुके । वहीं विश्वामित्र ने बला और अतिबला नाम की विद्या राम को दी। यों तो विश्वामित्र ने जो भी अर्जन किया था वह सब राम को दे दिया । उनमें ऐसी भी विद्या थी, जिससे राम को कभी भूख प्यास न लगे । सभी विद्या प्राप्त कर राम गुरु आश्रम की तरफ चले । राम को जाते देख ताड़का ने अपना सिर उठाया । राम ने ताड़का को देखकर पूछा- गुरुदेव यह कौन है?इस पर विश्वामित्र ने कहा- यह वही ताड़का है, जिसके अत्याचार से सभी लोग आतंकित हैं । इसी बीच ताड़का ने राम पर आक्रमण कर दिया । तभी विश्वामित्र ने आदेश दिया कि ताड़का को मार दो । आदेश मिलते ही राम ने ताड़का के ऊपर एक बाण छोड़ा, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी । यह देख उसका बेटा मारीच राम पर झपटा । राम ने एक बाण उसे भी मारा, जिससे मारीच काफी दूर जा गिरा । उसके बाद श्रीराम गुरु के आश्रम में गए । वहाँ विश्वामित्र ने अपना यज्ञ प्रारंभ किया । पुरानी आदत के कारण राक्षस यज्ञ विध्वंस करने दौड़े । राम ने सबों को मारा । यह देख सभी बचे हुए राक्षस वहाँ से भाग गए । इस तरह राम कुछ दिन विश्वामित्र के आश्रम में रुके ।

आश्रम में राम ने विश्वामित्र से पूछा- "हे गुरुवर! यह ताड़का कौन है? इस राक्षसी को इतना बल कहाँ से प्राप्त हो गया?" विश्वामित्र ने कहा- "हे राम! प्राचीन काल में सुकेतु नाम का एक यक्ष था । उसने ब्रह्माजी से पुत्र के लिए प्रार्थना की । ब्रह्माजी ने उसे एक पुत्री का वरदान दिया, क्योंकि ब्रह्माजी को पता था कि सुकेतु का पुत्र बहुत बड़ा अत्याचारी होगा । इसलिए उसे पुत्री का वरदान दिया । यह वही ताड़का है । ताड़का ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर लिया कि उसे एक हजार हाथी का बल प्राप्त हो। ताड़का का विवाह सुन्द से हुआ, जिससे उसे मारीच और सुबाहु नाम के पुत्र पैदा हुए । वही ताड़का इतना अत्याचार कर रही थी ।"

यह सुनकर श्रीराम ने विश्वामित्र से पुनः पूछा– हे गुरुवर! "ताड़का स्त्री थी, मैंने आपकी आज्ञा से उसे मारा है । क्या इससे मुझे स्त्री हत्या का पाप नहीं लगेगा ।" यह सुनकर विश्वामित्र ने कहा– "जो स्त्री कुलटा हो, पापी हो, उसे मारने से पाप नहीं होता । प्राचीन काल में इन्द्र ने विरोचन की पुत्री मन्थरा को मारा था । शुक्राचार्य की माँ और भृगु की पत्नी त्रिभुवन को भगवान् विष्णु ने मारा था । क्योंकि वह देव विरोधी हो गयी थी । जिस कारण भृगु ने विष्णु को लात मारी थी और शुक्राचार्य देव विरोधी बनकर असुरों की सहायता करते थे । इसलिए ताड़का को मार कर तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा ।"

इसके बाद विश्वामित्र ने श्रीराम को अनेक दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना सिखाया । विश्वामित्र सभी विद्या जानते थे, लेकिन वे प्रयोग नहीं कर सकते थे । क्योंकि वे संत थे। संतों के लिए हिंसा उचित नहीं है । इसलिए उन्होंने राम की सहायता ली । उसी समय विश्वामित्र ने राम को उपदेश भी दिया । श्रीराम जब विश्वामित्र के आश्रम में गये तो वहाँ गुरु ने उन्हें विभिन्न प्रकार का उपदेश दिया । यहाँ उसी उपदेश की चर्चा की गई है। राम कथा में पहली बार यह प्रसंग उठाया गया है–

श्रीराम लखन ने गुरु चरणों में, स्नेह सहित प्रणाम किया ।
आशीष देकर गुरु ने उन्हें फिर दिव्य ज्ञान प्रदान किया ॥
तुम जगत ईश हो अविनाशी, जनहित में जीवन धारे हो ।
नर लीला कर जन मानस को, भय मुक्त हेतु पधारे हो ॥
तुम ज्ञान पुंज हो दिव्य प्रभा, कारण शरीर के ध्याता हो ।
यह चांद सूरज नक्षत्र लोक, कण-कण के भाग्य विधाता हो ॥
जिस हेतु मनुज का रूप लिये, गुन मान यहाँ पधारे हो ।
पीड़ित जन का उद्धार करो, जन-जन के प्राण के प्यारे हो ॥
मैं बला और अति बला, दो दिव्य शक्ति तुम्हें देता हूँ ।
हो पाप नाश जग से कैसे, यह विधि तुम्हें बताता हूँ ॥

जब सत्य न्याय पर पग उठते, परिणाम की चिंता मत करना ।
कल्याण जहाँ दूसरों का हो, सर्वस्व त्याग से मत डरना ॥
पूजित जग में जो होता है, पर दुःख में जब वह होता है ।
अपनी आंसू की ज्वाला से, जग का कलंक वह धोता है ॥
संकल्प तुम्हारा हो ऐसा, जो दिग्-दिगन्त का केन्द्र बने ।
हर घर में राम-सा बेटा हो, ऐसा तेरा आदर्श बने ॥
जो जन मानस में जीता है, अपना न उसे कोई होता है ।
फैलाव उसी का होता है, जो अहं विसर्जन करता है ॥
तुम ब्रह्म रूप हो जगत्पति, इस भाव को तुम्हें भुलाना है ।
निज कर्मों से इतिहास नया, भारत में तुम्हें बनाना है ॥
जीवन में कंटक पूर्ण मार्ग, तेरे कदमों में जब आएगा ।
तेरे हर कर्मों का रूप सदा, इतिहास नया बनायेगा ॥
सन्मार्ग धैर्य सद्निश्चय से, संकट को धूल चटाना है ।
प्रकृति से ऊर्जा संग्रह कर, नर तन को स्वर्ग बनाना है ॥
दशरथ जैसा सम्राट् पिता, उनकी छाया में मत जीना ।
तुम कायर व परजीवी बन, औरों के घर में मत रहना ॥
जो हार स्वयं से जाता है, शत्रु उस पर चढ़ जाता है ।
वीर पुरुष हर संकट में, कभी नहीं घबड़ाता है ॥
जीवन जीना कोई लक्ष्य नहीं, यश, मान प्रतिष्ठा पाना है ।
जलचर, नभचर भी जीते हैं, जीवन का कहाँ ठिकाना है ॥

संसार धर्म का पालन कर, निरपेक्ष भाव से जीना है ।
जीवन में लाओ त्याग भाव मन के विकार को खोना है ॥
पदचिह्नों का अनुकरण छोड़, अपना पदचिह्न बनाना है ।
अपने कर्मों का शिलालेख, तुम्हें नई पीढ़ी को दिखाना है ॥

दर्शक बनकर जो जीते हैं, उनका कोई नाम नहीं होता ।
अमरत्व उसी को मिलता है, जो लहरों पर नैया खेता ॥
सुख-दुःख उसका जीवन उसका, यश अपयश मान सम्मान उसका ।
इस जग में जो कुछ बिखरा है, सब एक रूप ही है जिसका ॥

इस रक्ष संस्कृति के बढ़ने से, भूगोल देश का बिगड़ेगा ।
भारत के वैदिक चिंतन का, संस्कार नया करना होगा ॥
सिद्धि से मैंने जो पाया, हे राम तुम्हें मैं देता हूँ ।
इन असुरों का संहार करो, आशीष तुम्हें मैं देता हूँ ॥

कुछ समय आश्रम में रहने के पश्चात् मिथिला के राजा महाराज जनक की ओर से राजर्षि विश्वामित्र को निमंत्रण मिला । इस निमंत्रण में विश्वामित्र को अपने शिष्यों सहित जनकपुर आने का न्योता भेजा गया था । न्योता देखकर राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र ने जनकपुर चलने को कहा । राम ने महाराज जनक और धनुष यज्ञ के सम्बन्ध में पूछा ।

राम का प्रश्न सुनकर विश्वामित्र ने कहा- "हे राम! मिथिला के राजा महाराज जनक बड़े ही धर्मात्मा हैं । उन्हें कोई सन्तान नहीं थी । जनक के द्वारा पृथ्वी जोतते समय पृथ्वी से ही एक लड़की निकली जिसे (भूमिजा) सीता नाम रखा गया । वही सीता आज बड़ी हो गयी है, जिसके विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन किया गया है ।

भगवान् शिव ने पिनाक नामक धनुष जनक के पूर्वज देव को अपने यहाँ सुरक्षित रखने के लिए दिया था। तब से वह धनुष जनक के यहाँ रखा हुआ है। देवासुर संग्राम के लिए दधीचि की हड्डी से तीन धनुष बना था। एक सारंग, जिसे विष्णु ने रखा। दूसरा पिनाक, जिसे भगवान् शिव ने रखा। तीसरा गांडीव, जिसे इन्द्र ने रखा। पिनाक वही शिव का धनुष है, जिस पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए यह स्वयंवर रखा गया है।"

यह सुनकर राम ने पूछा- "हे गुरुवर इस धनुष में क्या विशेषता है।" गुरुवर ने जवाब दिया- "यह धनुष दिव्य है, विशाल है, इसको कई गाड़ियों पर लाद कर यहाँ से वहाँ ले जाया जाता है। जब से यह धनुष मिथिला में आया है तब से वह वहीं पड़ा हुआ है। एक दिन माता सुनयना ने सीता को कहा कि धनुष की पूजा कर लो। सीता वहाँ गयी उसने बायें हाथ से धनुष को उठाकर जमीन की सफाई की और फिर पूजा-वन्दना की। यह देखकर माता सुनयना और महाराज जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय जनक ने प्रतिज्ञा की कि जो भी व्यक्ति इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाएगा उसी से सीता का विवाह होगा। इसीलिए यह धनुष यज्ञ हो रहा है।"

अहिल्या प्रसंग

विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण के साथ महाराज जनक के निमंत्रण पर मिथिला प्रस्थान किए। बिहार में आज जो बक्सर शहर है, जहाँ विश्वामित्र का आश्रम था, वहाँ से जनकपुर जाने का सीधा रास्ता है। उसी रास्ते से तीनों जनकपुर जा रहे थे। रास्ते में अहिल्या स्थान नाम का एक तीर्थ है। यह स्थान आज भी बड़ा प्रसिद्ध है। जहाँ काफी लोग अपनी बीमारी को नष्ट करने के लिए जाते हैं और पूजा-अर्चना करते हैं। इस अवसर पर काफी बड़ा मेला वहाँ लगता है। मेला का अर्थ है जहाँ बहुत लोगों का मेल-जोल हो, जहाँ लोगों का मेल हो उसे मेला कहते हैं।

विश्वामित्र जब उस अहिल्या स्थान पर पहुंचे तो एक वीरान, सुनसान उजड़ा हुआ स्थान देखकर वहाँ रूक गए-

चौ०

तब मुनि सादर कहा बुझाई । चरित एक प्रभु देखिअ जाई ॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा । हरषि चले मुनिबर के साथा ॥
आश्रम एक दीख मग माहीं । खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी ॥

इस उजड़े हुए आश्रम को देखकर श्रीराम ने पूछा- "हे गुरुदेव, यह कैसा स्थान है।" विश्वामित्र ने राम को बताया- "यह गौतम की पत्नी अभागिन अहिल्या का आश्रम है।" राम को उत्सुकता हुई तो उन्होंने पूछा- "महर्षि गौतम तो बड़े ज्ञानी पंडित थे । उनकी पत्नी की ऐसी दशा कैसे हुई ।" यह सुन विश्वामित्र ने कहा कि अहिल्या ब्रह्माजी की मानस पुत्री है । वह बहुत रूपवती और नाच-गान में प्रवीण थी । एक दिन स्वर्ग में इन्द्र ने अहिल्या को नृत्य करते देखा । वे उसके रूप पर मोहित हो गए । इस बात की जानकारी जब ब्रह्मा को हुई, तो उन्होंने अहिल्या को धरोहर रूप में गौतम ऋषि को दे दिया । तभी से इन्द्र अहिल्या पर आसक्त थे । गौतम को दिव्य ज्ञान प्राप्त था । उनका लिखा गया दर्शन आज भी लोग पढ़ते हैं । गौतम और अहिल्या से एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम सतानन्द है । जो आज जनक के दरबार में नैतिक सलाहकार हैं ।

एक बार आश्रम में दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी । सतानन्द यही कोई महीना भर के रहे होंगे तभी इन्द्र एक दिन अहिल्या को देखकर मोहित हो गये । इन्द्र को पता हो गया कि गौतम प्रतिदिन चार बजे सुबह में स्नान करने के लिए नदी में जाते हैं । इन्द्र तो देवताओं के राजा हैं । उन्होंने चन्द्रमा को कहा कि आज रात तुम असमय में अपने प्रकाश को मन्द कर लो । ताकि लोगों को लगे कि सुबह हो गयी है । और उसी समय एक मुर्गे को तैयार किया कि तुम बांग देकर सुबह होने की घोषणा करो । सारी व्यवस्था इन्द्र ने बारीकी से कर ली । मुर्गे की बांग सुनकर गौतम असमय में नदी में स्नान करने चल दिए । उसी समय इन्द्र ने गौतम का भेष बनाया और अहिल्या के कक्ष में पहुँचा । अहिल्या को पहले आश्चर्य हुआ कि मेरे पति असमय में कैसे मेरे पास आ गए है । लेकिन पति की इच्छा

थी इसलिए अहिल्या ने मना नहीं किया। इस प्रकार इन्द्र अहिल्या का शील भंग करने में सफल हो गए।

उधर जब गौतम स्नान कर रहे थे तो लगा कि अभी तो रात बाकी है, ऐसा अनुभव मुझे क्यों हुआ? उनके मन में संदेह उठा। वे तुरंत आश्रम की ओर दौड़े। आश्रम आकर गौतम ने देखा कि मेरा भेष लिये हुए एक व्यक्ति आश्रम से निकल रहा है। गौतम ने अपने तपोबल से जान लिया कि यह छली इन्द्र है। गौतम को देखते ही इन्द्र अपने रूप में आ गया। गौतम को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा अण्डकोष गल कर गिर जाए। शाप से इन्द्र का अण्ड कोष उसी समय गिर गया। इसके पश्चात् अहिल्या को शाप दिया कि तुम कुलटा हो, अपने पति को तुमने धोखा दिया है। यह सुन अहिल्या ने अपने पति से कहा– "मैंने आपको क्या धोखा दिया है? यह इन्द्र आप का स्वरूप धारण कर मेरे पास आया था। मैंने तो आप से सम्भोग किया है। मैं कैसे जान सकती थी कि आपके भेष में कौन छिपा है?" लेकिन क्रोध के कारण गौतम कुछ नहीं सुने। उन्होंने अहिल्या को भी शाप दिया– "तुम्हारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाए, तुम जड़वत्(पत्थर के समान) बन जाओ।" शाप देकर गौतम जब आश्रम छोड़कर जाने लगे तो इन्द्र को देखकर देवताओं को बड़ी दया आयी। सबों ने मिलकर गौतम की प्रार्थना की। प्रार्थना से प्रसन्न होकर गौतम ने इन्द्र को भेड़ का अण्ड–कोष लगाने का आशीर्वाद दिया। इन्द्र अपने घर लौटे और गौतम अपनी परित्यक्ता पत्नी को छोड़कर चले गए। तब से अहिल्या जड़वत् बनकर लांछित और उपेक्षिता का जीवन जी रही है।

कई विद्वान् संत यह भी बताते हैं कि इस घटना की सूचना जब महाराज जनक को मिली तो राज दरबार में कोई भी व्यक्ति अहिल्या की सहायता करने के लिए तैयार नहीं हुआ। अहिल्या तब से पड़ी है। "हे राम तुम इस अबला का उद्धार कर दो। अपने पाँव से इसका स्पर्श करो इसका उद्धार हो जाएगा।" यह सुनकर राम बड़े द्रवित हुए–

चौ०

देखि अहिल्या की दीन दशा। करुना करके करुनापति रोये॥
चरन कमल रज पाई सुधा रस। गौतम तिय के अघ धोये॥

पहले तो राम ने देखा कि "स्त्री को पांव से कैसे स्पर्श करूं। स्त्री तो माँ होती है। भारत में स्त्री को पूजा जाता है। पांव से कैसे स्पर्श करूं।" यह सुनकर विश्वामित्र ने राम से कहा कि फिर इसका उद्धार नहीं होगा। राम ने यह सुनकर अहिल्या के स्त्री रूप को पहले प्रणाम किया, फिर अपने पांव से स्पर्श किया। राम की दिव्य-ऊर्जा के स्पर्श होते ही अहिल्या की सारी जड़ता और शिथिलता नष्ट हो गयी। वह उठी, राम के सामने में हाथ जोड़कर बैठ गयी। गोस्वामीजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है-

छं०

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

इस तरह गोस्वामीजी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। अहिल्या की प्रार्थना सुन कर राम अति प्रसन्न हुए। इस प्रसंग पर अहिल्या की ओर से मैंने एक भजन लिखा है, जो आज काफी लोकप्रिय हो रहा है। तो आइये सब मिलकर गाएं-

भ०

दशरथ के लाला मुझको देना सहारा,
कहीं छूट जाए न जीवन हमारा॥
जीवन बीता मेरा, ठोकर खाया,
अपने परायों ने जी भरमाया।
कैसी ये दुनिया, कैसी ये माया,
पग-पग पै धोखा, पग-पग पै छाया।
दशरथ के लाला...॥

मन में है काम क्रोध, तन में है माया,
विषय वासना से मन मुरझाया,
अपने ही हाथों से सर्वस्व लुटाया,
भस्म हुआ मन जल गई काया।
दशरथ के लाला...॥

वर्षों से मैं शिला बन पड़ी थी,
ठोकर पै ठोकर कब से सही थी,
किसी ने न पूछा हालत हमारा,
कैसे भुलाऊं मैं अनुग्रह तुम्हारा।
दशरथ के लाला...॥

तुमको तो कण-कण में पाया है सबने,
किस पाप की सजा पायी है हमने,
अबला हूं मैं कैसे दोगे सहारा,
कैसे कहूं तुम हो मेरा किनारा ।
दशरथ के लाला...॥

पुनः अहिल्या ने राम से पूछा- "हे परमात्मा! मैंने क्या भूल की थी जो इतनी बड़ी सजा वर्षों से भोगती रही । किसी स्त्री को लांछित कर देना कहाँ का न्याय है । मैंने तो अपने पति का आदेश माना । मेरा दोष तो तब होता जब मैं इन्द्र को उनके ही स्वरूप में स्वीकार करती । वह तो छल से मेरा पति बना था । अपने पति के साथ रति करना

क्या अपराध है ।" अहिल्या की बात सुनकर श्रीराम मौन हो गए । राम ने अहिल्या से कहा कि "मैं तुम्हारे इस त्याग के लिए तुम्हें अपने धाम भेजता हूँ । तुमने कोई पाप नहीं किया। तुमने तो स्त्री धर्म का पालन किया ।" राम ने अहिल्या को अपने धाम भेज दिया।

अहिल्यावत् आचरण करने वाली स्त्रियाँ आज भी हमारे समाज में जीवित हैं और आज भी अनेक अहिल्याओं का शील-भंग हो रहा है । कितनी अहिल्याओं को गौतम शाप देंगे । आज भी इन्द्र की तरह आचरण करने वाले लोग हैं । अगर अहिल्या की घटना से समाज में कोई परिवर्तन हो तो बड़ी अच्छी बात होगी । किसी भी सभ्य समाज की शोभा उसका नैतिक आचरण और उसकी मर्यादा होती है ।

भारत की संस्कृति में स्त्री को शील और मर्यादा का प्रतीक माना गया है । प्राचीन काल में कहा जाता था कि-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता

अर्थात्- जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है । वह समाज गिर जाता है, जिस समाज की नारियां मर्यादा तोड़ देती हैं, इसलिए भारत में स्त्री अथवा पुरुष का मूल्यांकन चरित्र के आधार पर होता है । कहावत है- "जिस व्यक्ति का चरित्र पतित हो जाता है, उसका सब कुछ लुट जाता है ।"

यह कहावत केवल भारत में मान्य है । भारत में स्त्री और पुरुष दोनों के चरित्र का महत्त्व है ।

जिस दिन समाज में नैतिक मूल्यों के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व का मूल्याकंन होने लगेगा, उस दिन पुनः दुनिया की नजरों में भारत का महत्त्व बढ़ जाएगा । इसी दृष्टि से रामकथा के माध्यम से मैं प्रत्येक व्यक्ति में राम के चरित्र को उतारना चाहता हूँ । हमारा जीवन नैतिक बन जाए । हमारा काम और विचार पवित्र बन जाए । उस दिन कोई भी इन्द्र किसी अहिल्या का शील-हरण नहीं करेगा और कोई भी दुःशासन किसी द्रौपदी का चीर-हरण नहीं करेगा । इसके लिए आज आवश्यकता है कि समाज के सभी क्षेत्रों में नैतिक वातावरण बनाया जाए । घरों में, विद्यालयों में, सभी जगह

जब तक नैतिक वातावरण नहीं बनेगा तब तक एक स्वस्थ और सुन्दर समाज की स्थापना संभव नहीं है । आज हम केवल नैतिकता की बात करते हैं, वैसा आचरण नहीं करते जिस कारण हमारे समाज में विघटन हो रहा है । नई पीढ़ी के हमारे बच्चे संस्कृति और संस्कार से जुड़ नहीं पाते हैं । इसीलिए रामकथा को घर-घर में पहुंचाने की आवश्यकता है-

प्रभु की विनती नित्य कर, छोड़ सकल अभिमान ।
मातु-पिता-गुरु तीन से, होगा तेरा कल्याण ॥
ऐसा सुत प्रभु सबको देना, वंश की ज्योति बढ़ाए ।
एक गगन के चांद से, जग शीतल बन जाए ॥

अहिल्या स्थान से आगे बढ़कर तीनों व्यक्ति जनकपुर की ओर प्रस्थान किए । जनकपुर महाराज जनक की राजधानी है । जनकपुर की शोभा देखकर राम और लक्ष्मण चकित रह गए । राम ने गुरु विश्वामित्र से पूछा- "गुरुवर इतना सुन्दर नगर किसका है?" विश्वामित्र ने कहा- "इस नगर का निर्माण महाराज निमि ने कराया था । वे बड़े धर्मात्मा राजा थे । जिनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें प्रत्येक मनुष्य की पलकों पर निवास करने का वरदान दिया था । तब से हमारी पलकों पर निमि का निवास है । इसीलिए पलकों को हम निमेष भी कहते हैं । निमि को वशिष्टजी ने शाप दे दिया था । इस कारण उनका शरीर गिर गया । निमि के शरीर का मंथन किया गया तो एक बालक उत्पन्न हुआ । जन्म लेने के कारण उसका नाम जनक पड़ा । विदेह से उत्पन्न होने के कारण उन्हें **"वैदेह"** कहा गया और शरीर के मथने से उत्पन्न होने के कारण उसी बालक को **"मिथि"** कहा गया । उसी ने मिथिलापुरी बसाई ।"

चौ०

पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेषी ॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा । कूजत कल बहुबरन बिहंगा ॥

दो०

सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास ॥

मिथिला की सुन्दरता देखकर राम मोहित हो गए । सुन्दर नगर उसको कहते हैं जहाँ सुन्दर आचरण करने वाले लोग निवास करते हों । आज भी मिथिला के संपूर्ण क्षेत्र को कोमल और मधुर क्षेत्र माना जाता है । मिथिला की बोली **"मैथिली"** बड़ी मधुर होती है । विद्यापति की मधुर कविताएं और गीत मैथिली में ही लिखी गयी है । उसी विद्यापति की भक्ति पर प्रसन्न होकर भगवान् शिव स्वयं **"उगना"** बनकर उनके यहाँ सेवा कार्य करते थे और उनकी भक्ति के गीत सुनते थे । विद्यापति की दो पंक्ति है-

सखि हे, हमर दुखक नहीं ओर ।
इ भर बादर माह भादर सुन मंदिर मोर ॥

इस तरह विद्यापति ने उसी मैथिली भाषा में अपना साहित्य लिखा । आज भी मिथिला का पान, मखान और आम बड़ा प्रसिद्ध है ।

राजा जनक का राज्य चौदह कोस में फैला हुआ था । सीतामढ़ी उन्हीं के राज्य का एक अंग था, जहाँ सीताजी प्रकट हुई थी । विश्वामित्र ने राम को जनकपुर की पूरी कहानी बता दी। तीनों जनकपुर के निकट पहुँचकर एक स्थान पर विश्राम के लिए रूके । जब जनक को पता चला कि विश्वामित्र आए हैं तो उनसे मिलने वे उनके विश्राम स्थल की ओर चले-

दो०

संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति ।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति ॥

चौ०

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥

जनकजी ने विश्वामित्र को प्रणाम किया और हाल समाचार पूछा । जनकजी की नजर जब राम और लक्ष्मण पर पड़ी तो जनक ने पूछा "मुनिवर ये दोनों बालक कौन हैं?"

चौ०

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

जनकजी ने कहा कि "हे मुनिवर! इन दोनों बालकों को तो देखकर मैं मुग्ध हो रहा हूँ। मेरा मन विराग से भरा हुआ है । इन बालकों में कैसा आकर्षण है जो मुझे खींच रहा है ।" यह सुनकर विश्वामित्र ने राम का पूरा परिचय जनकजी को दिया । जनकजी अपनी प्रतिज्ञा पर मन ही मन पछताते हुए अपने महल में लौटे ।

इधर राम वहीं विश्राम करते रहे । शाम के समय राम ने विश्वामित्र से कहा कि लखनजी जनकपुर देखना चाहते हैं–

चौ०

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥

हे गुरुदेव! लखन जनकपुर देखना चाहते हैं । अगर आपकी अनुमति हो तो इन्हें नगर दिखा लाऊँ ।

दो०

जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ॥

राम और लक्ष्मण नगर दर्शन के लिए चले । राम और लक्ष्मण को नगर में घूमते हुए देख सभी लोग इनके दर्शन के लिए दौड़ पड़े । सभी लोग अपने–अपने घरों से राम को निहारने लगे । नगर की महिलाएं इन दोनों बालकों को देखकर सोचने लगी कि इतना

सुन्दर बालक कोई साधारण राजकुमार नहीं हो सकता । लेकिन यह राजकुमार तो धनुष यज्ञ में आया है । भगवान् शिव के धनुष पर यह प्रत्यंचा कैसे चढ़ायेगा । उनमें से कुछ कहती हैं कि यह कोई साधारण बालक नहीं लगता । इसके पांव के स्पर्श से पत्थर की अहिल्या नारी बन गई । इसका अर्थ है कि यह कोई देव पुरुष है ।

सभी मिथिलावासी प्रभु श्रीराम के अनुपम रूप लावण्य को देखकर अभिभूत हो रहे हैं और एक-दूसरे की ओर देखते हुए अपने भाव को इस रूप में व्यक्त कर रहे हैं-

दशरथ के प्राणों के तारे, जगतपति मिथिला पधारे

दशरथ के प्राणों के तारे,

जगतपति मिथिला पधारे

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल

चाँद-सूरज सन है मुख मण्डल

सबके प्राणों के प्यारे

जगतपति ....

प्राण प्रिय प्रभु जगत विहारी

भक्तजनों के हैं हितकारी

बुध जन नजर उतारे

जगतपति ....

जनकसुता जग मातु जानकी

प्राण प्रिय करूणा निधान की

सब में प्रेम पसारे

जगतपति ....

राम नगर भ्रमण कर धनुष यज्ञ स्थल पर गए। यज्ञ स्थल का पूरा निरीक्षण किया। इस निरीक्षण का अर्थ है कि राम धनुष और यज्ञ के विज्ञान को समझना चाहते थे–

चौ०

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥

धनुष यज्ञ के विज्ञान को समझकर राम गुरु के पास लौट आए। रात्रि हो गई, गुरु विश्राम करने लगे, और राम लक्ष्मण उनके पैर दबाने लगे–

चौ०

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥

उसक़े बाद दोनों भाई सो गए। अगले दिन सबेरा होते ही दोनों भाई गुरु सेवा में लग गये।

दो०

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

यह प्रसंग इतना मोहक लगता है कि जो राम परमात्मा हैं। वह मुनि का पांव दबा रहा है। इसके माध्यम से राम बताना चाहते हैं कि गुरु परमात्मा से भी बड़ा होता है। राम साधारण मनुष्य की तरह व्यवहार कर रहे हैं। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण पूजा की तैयारी करने लगे। उसी समय राम और लक्ष्मण गुरु की आज्ञा से पूजा के लिए फूल लाने पुष्प वाटिका में जाते हैं–

चौ०

समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

पुष्प-वाटिका

रामचरितमानस में पुष्प वाटिका का प्रसंग मनमोहक और आनन्द प्रदान करने वाला है । क्योंकि भगवान् श्रीराम और माता सीता का प्रथम मिलन इसी स्थान पर होता है । पुष्प वाटिका आज भी जनकपुर के निकट अवस्थित है । भले ही उसका रूप बिगड़ गया है, लेकिन स्थान अभी भी है । यह हमारी धरोहर है । समाज तथा सभी संस्कृति प्रेमी बन्धुओं का यह परम दायित्व है कि इस स्थान का उद्धार करें । गुरु की आज्ञा से राम और लक्ष्मण फूल चुनने पुष्प वाटिका में जाते हैं । श्रीराम मालीगण से फूल चुनने की अनुमति माँगते है । यह राम के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है । माली से अनुमति लेकर राम पुष्प वाटिका में प्रवेश करते हैं । पूजा के लिए फूल चुनते हैं । भगवान् श्रीराम यहाँ फूल चुनने में मर्यादा का पालन करते हैं । अगर विचार की दृष्टि से देखा जाए तो परमात्मा के द्वारा फूल को चुनकर फिर परमात्मा को चढ़ाना कोई सार्थक बात नहीं है । लेकिन राम यहाँ मनुष्य बनकर गुरु के लिए फूल चुन रहे हैं । गुरु के पांव दबा रहे हैं, सेवा कर रहे हैं । यह सब इसलिए कि राम को देखकर हमें शिक्षा मिले । दूसरी ओर माता सुनयना ने अपनी बेटी सीता को गिरिजा देवी पूजने के लिए वहाँ भेजा-

चौ०

तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु मागा ॥

हमारे यहाँ आज भी किसी शुभ कार्य के पहले भगवान् की पूजा की जाती है । सीता का आज स्वयंवर हो रहा है इसलिए सीता गौरी पूजन को जाती है और अपने मन के अनुरूप वरदान माँगती है । उधर राम और लक्ष्मण सुन्दर-सुन्दर फूलों की बगिया का दर्शन कर रहे हैं। इसी बीच सीता की एक चुलबुली सखी बगिया में इधर-उधर घूमने लगी । तभी उसने देखा-

चौ०

एक सखी सिय संगु बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥

तेहिं दोउ बन्धु बिलोके जाई । प्रेम बिबस सीता पहिं आई ॥

सखी ने जब राम और लक्ष्मण को देखा तो विमोहित हो गई और सीता को कहती है- "हे सीते! वाटिका में दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमार आए हैं । वह इतने सुन्दर हैं कि मैं कह नहीं सकती ।"

चौ०

देखन बागु कुअँर दुइ आए । बय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

सखी ने कहा-ये दोनों राजकुमार **"सब भाँति सुहाए"** मतलब तुम्हारे लिए भी उपयोगी है । "हे सीते! ये राजकुमार इतने सुन्दर हैं कि मैं तुम्हें बता नहीं सकती । क्योंकि आँख ने जो रूप देखा है, शब्द उसे बता नहीं सकते ।" यह सुनकर सीता के मन में उत्सुकता जगी । सीता ने भी सुन रखा था कि नगर में कोई अति सुन्दर राजकुमार घूम रहे हैं । इसलिए वह भी राजकुमार को देखने के लिए उत्सुक हो गयी –

चौ०

तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥

दो०

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥

सीता ने नारद के द्वारा वचन में कही गयी बात का स्मरण किया कि लगता है कि अब नारद का वचन सत्य हो जाएगा । नारद ने सीता को कहा था कि इस बालिका को पति रूप में परमात्मा मिलेगा । यह जानकर सीता चारों तरफ राजकुमार को खोजने लगी। सीता की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी । वह इधर-उधर देख रही थी । जिस कारण सीता के कंगन, बाजूबन्द और पाजेब की आवाज तेजी से निकल रहे थे जिसे सुनकर राम और लक्ष्मण चकित हो गये-

चौ०

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥

कंगन की आवाज सुनकर राम लखन से कहते हैं कि लगता है आज कामदेव ने कहीं विजय प्राप्त की है । क्योंकि इतनी मधुर ध्वनि कहाँ से आ सकती है । कंकन, किंकिनी और नुपुर तीन अलंकारों से तीन तरह की निकली हुई ध्वनि को सुनकर राम आश्चर्य में पड़ गये थे । क्योंकि तीन अलंकारों की सधी हुई ध्वनि एक साथ निकलना किसी दिव्य व्यक्ति से ही संभव है ।

चौ०

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भए नयन चकोरा ॥

भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥

आवाज सुनकर रामजी जब मुड़ते हैं तो सामने सीता को देखते है । इसके बाद राम और सीता एक दूसरे को देखते ही रह गए । दो बच्चों को एक-दूसरे को देखते रहने के कारण सीता के दादा निमि आंख की पलकों को छोड़कर हट गए और उन दोनों के पलक गिरने बन्द हो गए-

चौ०

देखि सीय सोभा सुखु पावा । हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥

राम सीता को देखते हैं और सोचते हैं कि विधाता ने इसे इतनी सुन्दरता से बनाया है कि इसे देखकर तो सुन्दरता भी लजा जाए-

चौ०

सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई ॥

सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी ॥

राम सोचते हैं कि यह सुन्दरता के घर में दीपशिखा की तरह दिख रही है । इसकी उपमा किससे की जाए । सभी उपमाओं को तो कवियों ने जूठा कर दिया है । सचमुच राम और सीता के रूप की तुलना किससे की जाए । इसीलिए किसी कवि ने कहा है कि **"राम से राम और सिया से सिया"** राम के समान राम हैं और सिया के समान सिया हैं । राम अपने भाई लक्ष्मण को समझाते हैं–

चौ०

तात जनकतनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं । करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं ॥

सीता की सुन्दरता देखकर राम विमोहित हो रहे हैं । राम और सीता पहली नज़र में एक-दूसरे को देख रहे हैं । राम के मन में बोध हुआ कि किसी पराई लड़की को इस तरह देखना उनकी मर्यादा के अनुकूल नहीं है । क्योंकि–

चौ०

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥

यह सोचकर राम इधर-उधर टहलने लगे । राम को लता ओट में छिपते देख सीता चारों ओर उन्हें खोजने लगी–

चौ०

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता ॥

सीता के मन में चिंता होने लगी कि वे कहाँ छिप गए । उसी समय सखियों ने लता की ओट में छिपे राम को दिखाया–

चौ०

लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥

सीता ने जब राम को देखा तो वह देखती ही रह गई । एक बार फिर दादा निमि को सीता की पलकों से हटना पड़ा ।

चौ०

लोचन मग रामहि उर आनि । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥

सीता ने राम को देखा और उनके रूप को मन में बसा लिया ।

दो०

लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥

सीता की यह हालत देखकर एक सयानी सखी ने सीता को कहा, "हे सीते! चलो एक बार फिर माता गौरी की पूजा करें वही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगी ।"

चौ०

धरि धीरजु एक आलि सयानी । सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥

यह सुनकर सीता ने अपनी आंखें खोली और सोचने लगी कि स्वयंवर में शिव के इतने कठोर धनुष पर यह राजकुमार कैसे प्रत्यंचा चढ़ाएगा –

चौ०

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥

श्रीराम को देखकर सीता और सखियों की व्यग्रता जब बढ़ गयी तो उस समय सखियों की ओर से मैंने एक गीत लिखा है, तो आइये प्रेमपूर्वक इस गीत को गाएं–

गीत

तेरी सांवरी सूरतिया दिल के पार हो गई,
तेरी सूरत इन आंखों में आज छा गई ।
जब से बगिया में रघुवर को देखा सखी,
सुध-बुध खोई भुलाई मैं कैसे सखी ।
कैसे आंखों ही आंखों में प्रीत हो गई,
तेरी सांवरी सुरतिया दिल के पार हो गई ॥

मइया गिरजा का आशीष हमको मिले,
रघुवर सीता को जीवन साथी मिले ।
विधि का कैसा है खेल आज मेल हो गई,
तेरी सांवरी सुरतिया दिल के पार हो गई ॥

मन में संशय धनुहिया कैसे चढ़े,
रघुवर सीता के बीच में संकट बड़े ।
अवध मिथिला में कैसे मेल हो गई,
तेरी सांवरी सुरतिया दिल के पार हो गई ।
तेरी सूरत इन आंखों...॥

पुष्प वाटिका का यह मिलन प्रसंग सचमुच रामचरितमानस के सभी प्रसंगों से अधिक मोहक है । क्योंकि प्रथम बार जब लड़का-लड़की का मिलन होता है तो मन में

हजार भावनाएं उठने लगती है। वही दृश्य यहाँ उपस्थित है। आइये पुनः एक और मधुर गीत यहाँ गाएं–

गीत

दशरथ के लाला तुझसे हमें प्यार हो गया,
तेरा रूप सलोना दिल के पार हो गया।
तेरी आंखों को देखा नशा छा गया,
तेरी रूप जवानी पे मन भा गया।
मेरी सांसों व आंखों को क्या हो गया,
तेरा रूप सलोना दिल के पार हो गया॥

सीता मइया ने जब से है देखा तुम्हें,
अपनी धड़कन में तब से बसाया तुम्हें।
त्रिलोकी को मिथिला से प्यार हो गया,
तेरा रूप सलोना दिल के पार हो गया॥

जब से आये हो तुमसे से आंखें लड़ी,
तेरी सूरत इन आंखों में ऐसी गड़ी।
सांस लेना भी तब से दुस्वार हो गया,
तेरा रूप सलोना दिल के पार हो गया॥

दशरथ के लाला...॥

यह मधुर संगीत सखियों ने अपने प्यारे राम के लिए गाया है । इसके बाद सखियां गौरी की पूजा के लिए सीता को लेकर मंदिर में जाती हैं । सीता पूजा की थाल सजाती है और गौरी से प्रार्थना करती है–

चौ०

जय जय गिरिराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ॥

हे माता गौरी! तुम तो अंतर्यामी हो, मेरे मन की बात जानती हो । तुम मुझ पर दया करो और मेरी मनोकामना पूर्ण करो–

चौ०

मोर मनोरथु जानहु नीकें । बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥
किन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे बैदेहीं ॥

यह प्रसंग बड़ा मोहक है । आइये हम सब मिलकर इस प्रसंग में सीता की ओर से माता गौरी को एक गीत सुनायें–

गीत

पूजा की थाली में दीप जलायें,
चलो सखि माता को गीत सुनायें ।
जब से इन आंखों ने देखा है उनको,
सांवरी सुरतिया का दर्द कहूं किनको ।
सांसों में अग्नि की ज्वाला लगाये,
चलो सखि माता को गीत सुनाये ।
पूजा की थाली...॥

विनय सुन सीता के गौरी मुस्कुराई,
प्रियतम को पाने में कैसे मचलाई ।
मैंने जब शम्भू को तप से मनाया,
मेरी प्रेम भक्ति को तूने झुठलाया ।
पूजा की थाली...॥

सीता के प्रीत देख गौरी शरमाई,
फूलों की माला की आशीष गिराई ।
रघुवर की प्रीत लिए सीता घर आई,
देखी सिय हालत मातु पछताई ।
पूजा की थाली...॥

इस तरह सखियों ने जब गौरी की प्रार्थना की और सीता चरण पकड़ कर बैठी रही तो गौरी प्रसन्न हुई—

चौ०

बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मन कामना तुम्हारी ॥

गौरी प्रसन्न होकर आशीर्वाद रूप में अपनी माला अपने पैर पर झुकी सीता के गले में गिरा दी। पहले तो मूर्ति मुस्कुराई, फिर आशीष दी।

(कई लोग प्रश्न उठाते हैं कि मूर्ति मुस्कुराई क्यों? दरअसल सीता जब गौरी से अपने लिए पति माँगने के लिए प्रार्थना करने लगी तो गौरी सीता से मुस्कुरा कर व्यंग्य करने लगी कि "हे सीता, जब मैं अपने पति महादेव को पाने के लिए तप कर रही थी,

तो तुम लक्ष्मी रूप में वहाँ आकर कही थी कि पति को पाने के लिए इतनी मूर्खता तुम क्यों कर रही हो? तुमने उस समय मुझ पर व्यंग्य किया था इस पर मैंने कहा था कि–

चौ0

जनम कोटि लय रगर हमारी । बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥

आज वही लक्ष्मी के रूप में सीता पति पाने के लिए उसी गौरी के सामने प्रार्थना कर रही है । इसीलिए मूर्ति मुस्कुराई।) गौरी से– **"सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूजिहि मन कामना तुम्हारी"** का आशीर्वाद लेकर सीता जब अपने महल की ओर लौटी, तो सोचने लगी–

गीत

लोचन मग राम ही उर आनि
मुस्काई पराई गई निज धामा
सकुचि निहारत रुप छटा
अरू पूर्ण कियो सकल मन कामा !

उर बीच वक्र रूप धरि अटके
निकसत टरत न काढ़े
नैनन नीर झरत काजल सह
गोर रूप भये कारे !

तन-मन ज्योतीत भये तब ही से
रोम-रोम भये न्यारे
छोड़ सुदर्शन सकल कामना
चित्त में राम पधारे!!

<u>विशेष प्रसंग-</u>

<u>मंत्र</u>

"सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।"

तथा

रामचरण दृढ़ प्रेम करि, मन में ले विश्वास ।

मनोकामना सिद्ध करो प्रभु, ऐसी है अरदास ॥

(मंत्र का अर्थ है दिव्य शक्तियों का आह्वान । हमारा मन जब पूर्ण रूप से परमात्मा में लग जाता है, तो जिन मंत्रों का पाठ हम करते हैं, वैसा फल हमें प्राप्त होता है । इसलिए जब कभी किसी बड़ी कामना की पूर्ति करनी हो, तो ऊपर लिखे काव्य का पाठ ध्यानपूर्वक करना चाहिए । शादी-विवाह के लिए लड़कियों को इस मंत्र से बड़ा लाभ होता है । कुंवारी लड़कियाँ सोमवार को अपने मनोवांछित फल प्राप्त करने के लिए भगवान् शिव का पूजन करती हैं और माता गौरी के आशीर्वाद से उत्तम फल प्राप्त करती हैं । ध्यान रखना है कि परमात्मा और गुरु पर विश्वास करके इन मंत्रों का पाठ प्रारम्भ करें । इस मंत्र का फल उसी को प्राप्त होता है जो परमात्मा पर भरोसा करता है । परमात्मा इस संसार का मालिक है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । अब तक जिन लोगों ने भरोसा किया है, उन्हें पूरी सफलता मिली है । तो आइए, हम भी भगवान् शिव और माता गौरी से मनोवांछित फल प्राप्त करें ।

सुना है मांगने वालों को, दुआओं से झोली भरते हो ।

एक दिन तुझे ही मांगकर देखूंगा, कि कैसे वादा पूरी करते हो ॥

सो०

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि ।

मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥

सीता अपने घर लौट आई और उधर राम अपने गुरु के पास चलने को तैयार हुए। संध्या के समय राम और लक्ष्मण नदी किनारे गये । नित्य क्रिया से निवृत्त हुए । उस समय रात्रि के प्रथम पहर का चांद आकाश में मुस्कुराने लगा । शीतल मंद समीर बहने लगा । तभी रामजी को पुष्प वाटिका की सीता का रूप मन में उद्वेग पैदा करने लगा । राम ने सीता की उपमा चन्द्रमा से किया तो लगा कि चन्द्रमा सीता के मुख के समान नहीं हो सकता । क्योंकि इसका जन्म तो खारे समुद्र से हुआ है । चन्द्रमा में तो अनेक विकार हैं । सीता की तुलना किसी से नहीं की जा सकती । इस समय राम प्रेम-पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं । उन्हें सीता तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए कोई माध्यम नहीं मिल रहा है । तभी उन्होंने डाली पर गीत गाते हुए एक पपीहरा को देखा । राम ने सोचा कि यह पपीहरा पुष्प वाटिका तो अवश्य जाता होगा । इसके द्वारा अपने मन का संदेश सीता तक पहुँचाना चाहिए । तो आइए हम भी श्रीराम की ओर से सीता के लिए एक गीत गाएं-

<u>गीत</u>

फूलवा लोढ़न सीता अइहे, पपीहरा सुधि तू सुनैहे ।
जबसे विछोह भइल चैन नहीं मनमा,
चन्दवा के देख-देख, जरल जाले तनवा ।
संसवा के अगिया से कैसे बचइहे, पपीहरा सुधि तू सुनैहे ।
फूलवा के बगिया में कैसे मिलान भइल,
सीता के रूप देखी चैनमा भूला गइल ।
मनमा के पीर पहुचैहे, पपीहरा सुधि तू सुनैहे ।
लखन भइया पूछत हई मन के उदासी,
केकरा से कहुं हम मन के उदासी ।
बगिया के नेह तू बतइहे, पपीहरा सुधि तू सुनैहे ।

लोक मर्यादा अब कइसे निबहिहे,
मनमा में प्रीत उठल कइसे समझइहे ।
बीचवा में धनुषवा कइसे जिअइहें । पपीहरा सुधि तू सुनैहे ।
फूलवा लोढ़न सीता अइहे, पपीहरा सुधि तू सुनैहे ॥

राम ने पपीहरा को अपने मन की पीड़ा सुनाई और सीता के लिए मन में व्यग्रता लिए गुरु के पास लौटने लगे । कहते हैं प्रेम सबको अपने बन्धन में ले लेता है । प्रेम के कारण ही भक्त को भगवान् मिलते हैं । प्रेम के कारण ही प्रकृति-पुरुष मिलता है । प्रेम दुःखी मन में भी खुशी के फूल खिला देता है । प्रेम दो बिछुड़े दिलों को मिला देता है । प्रेम के कारण ही पति-पत्नी, भाई-भाई का सम्बन्ध जीवन भर चलता है । कहते हैं-

प्रेम परिचय को पहचान बना देता है,
प्रेम वीरान को गुलिस्तान बना देता है ।
प्रेम मनुष्य को इन्सान बना देता है,
प्रेम भक्त को भगवान बना देता है ॥
प्रेम जख्में जिगर के पीर भुला देता है,
प्रेम टूटे हुए दिलों को मिला देता है ।
प्रेम बेवफाई की तस्वीर बना देता है,
प्रेम रूठे हुए को आंखों में बसा लेता है ॥
प्रेम हर कौम की जंजीर तोड़ देता है
प्रेम विरह की अग्नि में खुद को जला देता है ।
प्रेम गिरते हुए को परवान चढ़ा देता है,
और प्रेम में इन्सान सब कुछ गंवा देता है ॥

इसके बाद श्रीराम और लक्ष्मणजी अपने गुरु विश्वामित्र के पास लौट आए ।

धनुष-यज्ञ

श्रीराम, लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र तीनों बात-चीत कर रहे हैं । उसी समय जनकजी का संदेश लेकर सतानन्दजी आते हैं।

चौ०

सतानंदु तब जनक बोलाए । कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए ॥

दो०

सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ ॥

सतानन्दजी के साथ विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण रंगभूमि पहुंचे । जब जनकपुर के लोगों को पता चला कि राम और लक्ष्मण रंगभूमि में आ गये हैं तो सभी लोग अपना-अपना काम छोड़ रंगभूमि की ओर चल पड़े । भीड़ को देखकर जनक ने अपने लोगों को कहा कि जितने भी राजा-महाराजा यज्ञ में आए हैं, उन्हें उचित स्थान पर बैठायें । उसी समय राम और लक्ष्मण रंगभूमि में प्रवेश किए । राम को देखकर लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि ऐसा कोमल राजकुमार इस यज्ञ में क्यों आया है?

चौ०

जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

जिसके मन में जैसी भावना थी, प्रभु राम को लोग उसी रूप में देख रहे थे । कोई उन्हें कोमल देख रहा था तो कोई उन्हें शत्रु समझ रहा था । उस सभा में जो राक्षस भेष बदल कर बैठे थे, उन्हें राम महाकाल की तरह दिख रहे थे और दूसरी ओर जनक और उनकी रानी राम को शिशु रूप में देख रहे थे और जो भक्त थे, वे परमात्मा के रूप में राम को देख रहे थे । राम पीताम्बर पहने हुए पीठ पर धनुष-बाण और माथे पर तिलक लगाये रंगभूमि पहुंचे—

चौ०

देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई ॥

जनक ने विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण को एक स्थान पर बैठाया ।

दो०

सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल ।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ॥

थोड़ी देर के बाद जब सभा में सभी लोग अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए तो जनक ने सीता को बुलाने का आदेश दिया-

दो०

जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ॥

सीताजी जब रंगभूमि में पहुंची तो सीताजी को देखकर सभी नर-नारी मोहित होने लगे-

चौ०

रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥

सीताजी का रूप देखकर स्त्री-पुरुष मोहित हो गए ।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि स्त्री को देखकर पुरुष का मोहित होना स्वाभाविक है । लेकिन सीता को देखकर नर और नारी दोनों मोहित कैसे हो गए? गोस्वामीजी ने स्वयं उत्तरकाण्ड में लिखा है कि-

चौ०

मोहे न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥

यहाँ उन्होंने लिखा है कि स्त्री को देखकर स्त्री मोहित नहीं होती ।

विशेष प्रसंग-

(दरअसल इस चौपाई का अर्थ लगाने में भूल हो जाती है। गोस्वामीजी कहते हैं कि जब रंगभूमि में सिया पहुंची तो उनको देखकर पुरुष मोहित हो गये और "पगु-धारी" जो पग से उद्धार करने वाले हैं, अर्थात् राम उनको देखकर स्त्री मोहित हो गई। कई जगह जब मैं कथा में जाता हूँ तो इस तरह का लोग प्रश्न उठाते हैं, मैं उनका स्वागत करता हूँ कि ऐसे प्रश्नों को अवश्य उठायें, ताकि रामायण के जो उलझे प्रसंग हैं, उन्हें प्रवचन-कर्त्ता स्पष्ट कर सकें। गोस्वामीजी ने तो अनेक स्थानों पर गूढ़ विषयों की चर्चा भर कर दी है। क्योंकि विषयान्तर होने पर रामकथा का अमृतप्रवाह टूट सकता था। अब यह रामकथा के पाठकों का कर्त्तव्य है कि इस कथा प्रवाह में प्रत्येक रूप में दिए गए संदर्भों की विस्तार से चर्चा करें। क्योंकि रामायण कोई कहानी नहीं है। यह जीव और परमात्मा के मिलन का महासागर है। इस कथा में जो जितना डूबेगा उसे उतना ही रस मिलेगा।)

इसी बीच माता जानकी की सभी सखियाँ प्रभु को देखकर इनके रूप ललाम की प्रशंसा करने लगी। पूरी सभा प्रभु की सुन्दरता से मुग्ध है और एक-दूसरे से गलबाहें किए हुए बड़ा ही मनोहर गीत गाती हैं। आइए, हमसब भी इस गुनगुनाएँ-

हमार रामजी के रूपबा अपार बा

लागल दिल हमार बा ना

देखली राम-लखन दुनु भईया

भुलली सुध-बुध अपन गोसईंया

अगिया लागल जैसे जेठ के बेयार बा

लागल दिल ....

बरसे सावन जैस नयना

अगिया तन में ग्रीष्म के बयना

हिया में हूक उठे सागर में ज्वार बा

लागल दिल ....

मिथिला पावन भूमि महान

जाने घर-घर सकल जहान

रामजी आइल बाड़े सीता के दुआर बा

लागल दिल ....

रंगभूमि में सभी स्त्री पुरुष भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु! जनक की मति बदल दो। ताकि वे अपना प्रण छोड़ दें और सीता और राम का विवाह कर दें।

बंदी की घोषणा

इसके बाद जनक ने बन्दी को बुलाया और कहा कि मेरे प्रण के बारे में सभा में उपस्थित सबों को बता दो–

दो०

बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।

पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥

फिर बन्दी ने घोषणा की कि जो भी व्यक्ति इस शिव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायेगा, उसी से सीताजी का विवाह होगा–

राजा जनक ने प्रण किए, यही हेतु हजारों भूप पधारे।

जो करिहें धनु भंग सिया, उनके संग जाई विवाह उचारे॥

तत्पश्चात्, यह सुनकर सभा में खलबली मच गई । सभी राजा-महाराजा प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए आकुल होने लगे । प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि पहले मैं धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाऊं। सभा में रावण और बाणासुर भी बैठे थे । वे दोनों घोषणा सुनते ही चुपके से निकल गए । क्योंकि रावण को पता था कि इस शिव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना संभव नहीं है, इसलिए वह चुपके से चला गया । लेकिन सीता को पाने की लालसा उसके मन में बनी रही । जिसे उसने सीता-हरण करके पूरा किया ।

विचारणीय स्तम्भ

(धनुषयज्ञ में पधारने हेतु महाराज जनकजी ने समस्त राजाओं को आमंत्रित किया परन्तु महापराक्रमी अवधनरेश दशरथजी को आमंत्रित नहीं किया। यह विचारणीय विषय है, **देश देश के भूपति आए"** राक्षसराज रावण, बाणासुर एवं गृहत्यागी संत विश्वामित्रजी भी धनुष भंग करने के लिए बुलाए गए, परन्तु महाराज दशरथ को कोई निमंत्रण नहीं दिया गया, इसका क्या कारण? अस्तु, जहाँ तक मेरी बुद्धि जाती है कि राक्षसराज रावण ने अयोध्या को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रीय राजाओं के साथ परस्पर युद्ध न करने की सन्धि कर ली थी । इस क्रम में यह भी विचारणीय है कि राजा जनक एक निरपेक्ष और शांतिप्रिय राजा थे । वे तटस्थ भाव से रहते हुए अपने राज्य में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना चाहते थे और रावण से किसी भी प्रकार के वैर भाव को नहीं लेना चाहते थे । उन्हें भय था कि महाराज दशरथ को आमंत्रित करने पर रावण से अकारण शत्रुता लेनी पड़ सकती है । इसी करण वे दशरथजी को आमंत्रित नहीं किए ।)

बन्दी की घोषणा के बाद सभी राजा एक-एक कर प्रत्यंचा चढ़ाने को जाने लगे।

चौ०

तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं । उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ॥

दो०

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिक अधिक गरुआइ ॥

पहले एक-एक राजा धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए बढ़ते गए और जब धनुष नहीं उठा तो लजा कर लौटते गए । एक समय ऐसा आया कि जब सभी राजा एक साथ धनुष पर टूट पड़े ।

चौ0

भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरइ न टारा ।

डगइ न संभु सरासनु कैसें । कामी बचन सती मनु जैसें ॥

एक बार हजारों राजा धनुष पर टूट पड़े ।

तोरण धाई नरेश सवै, पर डोलत नाही डोलाई बेचारे ।

सिर झुकाई लजाई सवै, मुरझाई गए निज धाम पराये ॥

यहाँ कुछ लोग प्रश्न पूछते हैं कि अगर सब मिलकर प्रत्यंचा चढ़ा लेते तो सीता किसके साथ ब्याही जाती?दरअसल राजाओं ने सोचा कि एक साथ इस भारी धनुष को उठाकर इस पर प्रत्यंचा चढ़ा लिया जाए, फिर आपस में लड़ाई करके जो जीतेगा, वही सीता से ब्याह करेगा । इसलिए एक साथ सबों ने प्रयास किया । लेकिन सभी राजा मिलकर भी धनुष को डिगा न सके । यह दृश्य देखकर जनक को पछतावा होने लगा । उन्होंने कहा-

चौ0

अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥

जनक ने ज्योंही इस तरह की बात कही, सभा में बैठे लखन क्रोधित हो उठे । उन्होंने राम को प्रणाम किया और फिर कहा महाराज जनक! जिस सभा में रघुवंशी बैठा हो, उस सभा में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए । उनहोंने कहा- **"अगर मैं प्रभु राम का आदेश पाऊं तो धनुष को कौन कहे, पूरे ब्रह्मांड को गेंद की तरह उठा लूं ।"**

(एक दिन कथा के दौरान ही एक भक्त ने पूछा कि अगर लक्ष्मणजी पूरा ब्रह्मांड उठा लेते तो वे स्वयं कहाँ खड़ा रहते। मैंने उन्हें बताया कि लक्ष्मणजी शेष नाग हैं, आज भी पृथ्वी उनके फण पर बैठी है। वे तो आज भी पृथ्वी पर खड़े नहीं है अपितु पृथ्वी उन पर खड़ी है।)

चौ०

जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥

लक्ष्मणजी ने कहा कि मैं इस पृथ्वी को कच्चे घड़े की तरह फोड़ कर सुमेरू पर्वत को तोड़ सकता हूँ। इस पुराने पिनाक धनुष को नष्ट करना कौन कठिन बात है। लक्ष्मणजी ने इसलिए ऐसा कहा कि यह धनुष शिव का है और मैं भी नाग रूप में उनके गले में लिपटा रहता हूँ। इसलिए हे प्रभु राम! मैं आपके बल के प्रताप से इस धनुष को कुकुरमुत्ते की तरह तोड़ सकता हूँ। अगर मैंने ऐसा नहीं किया तो जीवन भर धनुष को हाथ नहीं लगाऊंगा–

दो०

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

यह सुनते ही श्रीराम ने इशारा करके लक्ष्मण को अपने पास बैठा लिया। सभा पूरी तरह स्तब्ध हो गयी थी। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। सबका धैर्य टूट रहा था कि अब क्या होगा। महाराज जनक चिंता में पड़ गए। वे समझ रहे थे कि इस हालत में **"लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू"**

विशेष दृष्टि

(महाराज जनक ने कहा ''लिखा न बिधि बैदेहि बिवाहू'' इसका अर्थ है ब्रह्माजी ने वैदेही के भाग्य में विवाह नहीं लिखा। शंका की जाती है कि जनक ने ऐसा क्यों कहा? आखिर सीताजी का विवाह तो होना ही है। राम से हो या किसी राजा से हो, फिर इन्होंने क्यों कहा कि सीता के भाग्य में विवाह लिखा ही हुआ नहीं है। इस बात की सत्यता की जाँच की जानी चाहिए। मुझे लगता है महाराज जनक ने जो कहा कि ब्रह्मा ने सीता के भाग्य में विवाह नहीं लिखा ''लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू''। दरअसल ब्रह्माजी भगवान विष्णु की नाभि से प्रकट हुए हैं और विष्णु की भार्या का नाम लक्ष्मी है। वही लक्ष्मी आज सीता बनकर जनक की पुत्री के रूप में खड़ी है। स्वाभाविक है कि ब्रह्माजी के लिए सीताजी मातृतुल्य हुई। कोई बेटा अथवा कोई अंश अपनी माँ का भाग्य नहीं लिखता। स्पष्ट है कि ब्रह्माजी तो विष्णुजी से उत्पन्न हैं, फिर विष्णुजी की पत्नी का भाग्य वे कैसे लिखेंगें। मेरी समझ में जनकजी ने इसलिए कहा कि जब ब्रह्माजी ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं तो राजा लोग धनुष तोड़ने का प्रयास क्यों कर रहे हैं। हमने तो सामाजिक नियम के अनुसार स्वयंवर रखा था इस स्वयंवर में जितने अहंकारी राजा थे उन लोगों ने अपना बल आजमाया और शर्मिन्दा होकर, श्रीहीन होकर लौट गयें। अब तो उन्हें पता हो जाना चाहिए कि जब एक धनुष उनसे नहीं उठ सका तो वे शक्ति रूपी सीता से विवाह कैसे करेंगे। इसलिए सभी राजा हार स्वीकार करके घर लौट जायें। ताकि कल कोई यह न कहे कि जनक ने कोई पक्षपात किया है।

सीता और राम एक दूसरे की पूरक शक्तियाँ हैं, वे तो पहले भी साथ थी आज पुनः साथ हो रही हैं। लेकिन सामाजिक मर्यादा के निर्वाह हेतु धनुष-यज्ञ और विवाह का आयोजन किया गया। सच पूछा जाए तो सीता शक्तिरूप में अनादि काल से राम की भार्या हैं। उसके भाग्य में विवाह का संयोग ब्रह्माजी को क्यों लिखना चाहिए। इसलिए कहा गया कि ''लिखा न बिधि बैदेहि बिवाहू''।)

यह चिंता देख राजर्षि विश्वामित्र ने राम से कहा-

चौ०

उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा ॥

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥

राम को विश्वामित्र ने जब आज्ञा दी, तब राम प्रणाम करके सहज भाव से उठे । राम को उठते देख लगा कि लाल सूर्य का उदय हो रहा है–

दो०

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।

बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥

श्रीराम बड़े शांत भाव से धनुष की ओर बढ़ते हैं । जनकपुर के नर-नारी अपने-अपने देव-पितरों का स्मरण कर शिवजी के धनुष को कमल के डंडे की तरह टूटने की प्रार्थना करने लगीं । उधर सखियाँ आपस में बात कर रही हैं कि इस महामुनि को कोई समझाता क्यों नहीं कि इस कोमल बालक को धनुष के निकट जाने से रोके । क्योंकि जिस धनुष को बड़े-बड़े वीर-भूप डिगा नहीं सके, उसको यह कोमल बालक कैसे डिगाएगा । उसमें से कुछ सयानी सखी कहती है कि तुम लोग व्यर्थ चिंता न करो । अगस्त्य मुनि ने समुद्र को सोख लिया था । छोटे सूर्य के प्रकाश से गहन अंधकार मिट जाता है । एक छोटे अंकुश से हाथी को वश में कर लिया जाता है । छोटे मंत्र का बड़ा प्रभाव होता है । इधर सखियों की बात सुनकर सीताजी मन ही मन अकुला रही है । वे बार-बार शिव और गौरी से प्रार्थना कर रही हैं कि वे इस धनुष की गुरुता को कम कर दें। सीता आंख बन्द करके हाथ जोड़े गौरी की प्रार्थना कर रही है–

चौ०

बार बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥

सीता आँख बन्द किए हुए बार-बार गौरी की प्रार्थना कर रही है । सीता कहती है-

चौ०

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥

सीता का एक-एक पल, एक-एक युग के समान बीत रहा था । सीता कहती है- हे प्रभु!

चौ०

तौ भगवानु सकल उर बासी । करिहि मोहि रघुबर कै दासी ॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलह न कछु संदेहू ॥

प्रभु श्रीराम धनुष की ओर बढ़ रहे हैं । कभी वे सीता की ओर देखते हैं, कभी धनुष की ओर देखते हैं । राम को धनुष के निकट पहुंचते ही शेषनाग लखन ने सभी दिशाओं, दिग्पालों एवं पृथ्वी को सावधान कर दिया कि राम धनुष तोड़ने जा रहे हैं । इससे हो सकता है पृथ्वी हिल जाए, इसलिए सभी सावधान हो जाओ-

चौ०

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥
चाप समीप रामु जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥

जैसे ही श्रीराम धनुष के पास पहुँचते हैं, सबों की सांसे रूक जाती है । इधर सीता आंख बन्द किए अपने सभी पुण्य कार्यों को साक्षी मानकर गौरी से प्रार्थना कर रही है । राम ने जब सीता की चिंता को समझा-

चौ०

देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कलप सम तेही ॥

राम समझ गए कि सीता अब बहुत विकल हो रही है । यह देख राम ने पहले अपने गुरु वशिष्ट को प्रणाम किया और तब धनुष की विधि को समझकर तेजी से धनुष को बीच में पकड़ कर उठा लिया-

चौ०

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ॥

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

पाई आशीष महामुनि का, श्रीराम ने हाथ धनुहिं उठाई ।
दम के दामिनी से झट राम ने, शिव धनु को तोड़ गिराई ॥

(राम ने धनुष को किस विधि से उठाया कि उन्हें परेशानी नहीं हुई । संभव है धनुष पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से प्रभावित रहा होगा । धनुष के मध्य भाग पर पृथ्वी के गुरूत्व का प्रभाव कम पड़ता होगा । इसीलिए महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण में लिखा है कि धनुष के मध्य को बहुत ही बारीकी से बनाया गया था । इस बारीकी की पहचान सबों को नहीं हो पाती होगी । राम को इस विज्ञान की समझ थी । इसलिए उन्होंने धनुष का पहले निरीक्षण किया, फिर फुर्ती में उठाया । इस धनुष को देवासुर संग्राम में विश्वकर्मा ने बनाया था । इस विशाल धनुष को उठाने की कोई विशेष विधि रही होगी । जब सैकड़ों राजा एक साथ धनुष को नहीं उठा सके । परन्तु राम एक हाथ से उठा लिए । इसी धनुष को सीता ने भी एक हाथ से उठा लिया था । यह धनुष दुश्मनों पर बाण चलाने के लिए बनाया गया था । अगर इसे सैकड़ों लोग उठा नहीं सकते हो तो इस धनुष का प्रयोग कोई व्यक्ति युद्ध में कैसे करता होगा? जिस प्रकार आज भी किसी बड़े जहाज को अगर धक्का देकर बढ़ाया जाए तो नहीं बढ़ेगा । लेकिन उसी जहाज को विधिपूर्वक चलाया जाए तो हजारों मन वजन लेकर चलने लगता है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी चीज को चलाने के लिए आपको विधि का ज्ञान है या नहीं । जिस धनुष को रंग भूमि में लाने के लिए कई गाड़ियों पर लाद कर लाया गया था, उस धनुष को राम, एक हाथ से उठा लेते हैं । निश्चय ही धनुष उठाने की कोई विधि रही होगी । जिसका ज्ञान वहाँ के राजाओं को नहीं था । इस विधि की खोज की जानी चाहिए कि किसी वस्तु को गुरूत्वाकर्षण से कैसे मुक्त किया जाए । यही कारण है कि भारत के धर्म को विज्ञान कहा जाता है । इसीलिए श्रीराम ने धनुष के मध्य को पकड़ा और वहीं से

तोड़ा। वाल्मीकि ने भी धनुष के मध्य की ओर संकेत किया था। इसका ज्ञान सबों को नहीं था।

ज्ञातव्य विषय

क्या शिव का धनुष अहंकार का प्रतीक था ?

(कहा जाता है कि देवासुर संग्राम के पूर्व तीन धनुष बने थे- सारंग, पिनाक और गांडीव। इनमें से पिनाक भगवान् शिव ने धारण किया, सारंग भगवान् विष्णु ने प्राप्त किया और गांडीव इंद्र को मिला। इस संग्राम के बाद भगवान् शिव ने राजा जनक के पूर्वज महाराज देव की भक्ति देखकर अपना वह धनुष उन्हें दे दिया। कहा जाता है कि उस धनुष को कई गाड़ियों पर लादकर मिथिला लाया गया था। मिथिला, महाराज मिथि के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। उस धनुष के मिथिला पहुँचने पर राजा जनक प्रतिदिन उसकी पूजा करते थे। एक दिन राजा जनक ने देखा कि सीता ने पूजा के दौरान सफाई करने हेतु उस धनुष को अपने एक हाथ से उठाकर बगल में रख दिया। यह देखकर राजा जनक को काफी आश्चर्य हुआ कि जिस धनुष को मिथिला तक लाने में कई गाड़ियों की सहायता लेनी पड़ी, सीता ने उसे अपने एक हाथ से उठा लिया। तभी राजा जनक ने प्रतिज्ञा की, कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसी से सीता ब्याही जाएगी। आज वही धनुष रंगभूमि में रखा हुआ है। वंदीजन की घोषणा के बाद सभी राजा एक-एक कर उस धनुष को उठाने जाते हैं, उन सबों के प्रयासों से वह धनुष हिलता भी नहीं है। फिर अपने को महाबलशाली महीपति कहने वाले अनेक राजा एक साथ मिलकर उस धनुष को उठाने जाते हैं, तब भी वह धनुष नहीं हिलता। तभी महाराज जनक कहते हैं-

अब जनि कोउ माखै भट मानी, बीर बिहीन मही मैं जानी।

अब प्रश्न है कि जब रंगभूमि में सभी राजाओं ने उस धनुष को तोड़ना चाहा, लेकिन किसी से भी वह उठा ही नहीं। द्रष्टव्य है कि वहाँ राम और लक्ष्मण भी बैठे हुए

हैं और वे तो अभी धनुष के निकट गए ही नहीं, फिर जनक को इतनी जल्दी क्या पड़ी थी जो उन्होंने घोषणा कर दी कि मैं समझ गया कि अब संसार में अब कोई वीर नहीं है। ऐसा उन्होंने क्यों कहा ? जनकजी ने तो यहाँ तक कह दिया कि **"तजहु आस निज-निज गृह जाहू।"** विचारणीय है कि श्रीराम अभी बैठे ही हैं फिर उनकी इस घोषणा का क्या अर्थ हुआ ? पुनः राजा जनक ने ऐसा क्यों कहा ?

जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेऊँ न हँसाई॥

अस्तु, राजा जनक के अनुसार यह निर्णय हो गया कि अब धनुष टूटनेवाला नहीं है। यह जानकर लक्ष्मणजी को बड़ा रोष आ गया। उन्होंने महाराज जनक से कहा कि रघुवंशी जिस सभा में बैठे हों, उसमें ऐसी घोषणा नहीं करनी चाहिए। मैं तो कन्दुक के समान इस पृथ्वी को उठाकर नष्ट कर सकता हूँ, फिर इस धनुष का क्या अस्तित्व?यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग भयभीत हो गए। श्रीराम समझ गए कि यदि लक्ष्मण को नहीं रोका गया तो अनर्थ हो जाएगा। फिर श्रीराम का संकेत पाकर लक्ष्मणजी बैठ गए। तभी विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा–

उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

यहाँ दो शब्द है **"भवचापा और परितापा"**। अब सवाल यह है कि धनुष को भवचापा क्यों कहा गया ? भवचापा का तो अर्थ होता है भवसागर का चाप और परिताप का अर्थ होता है आंतरिक पीड़ा। लेकिन यहाँ इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग बहुत सोच समझकर किया गया है।

मुझे लगता है कि भवचाप का अर्थ है मोह, ममता, बंधन अथवा अहंकार। अर्थात् यह धनुष प्रतीक है विचारों का, अहंकारों का, उन तमाम लोगों के अभिमानों का जो अपने को महान् और महाशक्तिशाली समझते हैं। यह धनुष प्रतीक है उन समस्त लोगों के अहंकारों का जो घमंडी बन गए हैं और एक दूसरे को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, आपस में लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। वैसे अहंकारी राजाओं के लिए ही यह धनुष चुनौती बनकर पड़ा है। जब समस्त अहंकारी राजा धनुष के निकट जाकर उसे उठाने का प्रयास

करते हैं, लेकिन उस धनुष का उठाना तो दूर की बात है, वह तो हिलता तक नहीं । फिर वे सभी महाबली जब निराश होकर लौटते हैं, तब–

श्रीहत भये हारि हियं राजा ।

अब जब उनसे धनुष नहीं उठता तो सभी श्रीहत हो जाते हैं । मतलब उनके शरीर का अहंकार नष्ट हो जाता है । जिस कारण वे तेजहीन हो जाते हैं । लगता है कि राजा का छोटा अहंकार धनुषरूपी बड़े अहंकार के सामने नष्ट हो जाता है । जिस प्रकार विज्ञान में कहा जाता है कि जब किसी बड़े चुम्बक के सामने कोई छोटा चुम्बक रखा जाता है, तो छोटे चुम्बक का प्रभाव कम हो जाता है । यहाँ कुछ ऐसी ही बात राजाओं के अहंकार के साथ भी है ।

अब दूसरा शब्द है **"परितापा ।"** राजा जनक को परिताप इसलिए हो रहा है कि क्या सचमुच इस संसार में अब कोई वीर नहीं बचा? उन्होंने तो प्रण कर लिया है कि इस महाधनुष को (भवचाप) नष्ट करने वाला कोई नहीं है । लेकिन उसे हिलाने वाला भी जब कोई न हो तो मन में चोट लगती है कि मेरे प्रण का क्या होगा ? दूसरा अर्थ यह लग सकता है कि जनक पहले ही श्रीराम को देखकर मान चुके थे कि सीता का विवाह राम से होना ही चाहिए । लेकिन बीच में उनका प्रण खड़ा था । इसी कारण उनके मन में परिताप हो रहा था कि मैंने भूल से प्रण कर डाला। इसलिए विश्वामित्र कहते हैं कि– हे राम! यह जो धनुष रूपी अहंकार बीच में पड़ा है, उसका भंजन करो और जनक के मन में जो संदेह है, उनके भीतर उनके अपने प्रण के कारण जो पछतावा आ गया है, उसे नष्ट करो । मतलब इस समाज में जो रूढ़िता है, अंधविश्वास है, अहंकार और मूढ़ता है, उसे नष्ट करो । इस धनुष को इसलिए तोड़ने को कहा गया कि समाज से मूढ़ता नष्ट हो जाए, नहीं तो कहा जाता कि धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाओ । वहाँ कहा गया कि इसका भंजन करो ।

यहाँ एक और सवाल उठ जाता है कि आखिर क्यों उस धनुष को नष्ट करने की आवश्यकता आ पड़ी? वह तो भगवान शिव का प्रसाद था । लेकिन जनक चाहते थे कि

हमारे समाज का अहंकार नष्ट हो, आपस में जो मत-मतांतर है, वह सम्पूर्ण नष्ट हो जाए। धनुष रंगभूमि में रखा गया। एक तरफ सीताजी को बैठाया गया। सीताजी विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी हैं। उपस्थित सभी राजा जगत् जननी सीता को देखते हैं। जब जगत् जननी पर उनकी नजर पड़ती है तो उन राजाओं के मन का विकार स्वतः नष्ट हो जाता है और जब उनके मन का विषाद नष्ट हो गया तो वे अहंकार शून्य होकर, एक साधारण व्यक्ति की तरह बैठ जाते हैं। दूसरी ओर अगर सीताजी को स्त्री रूप में माना जाए तो इससे स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति स्त्री को देखकर विमोहित हो जाता है, वह कोई यश का काम नहीं कर सकता।

रंगभूमि जब सिय पगुधारि। देखि रूप मोहे नर-नारी॥

जो व्यक्ति मोहित हो गया, काम के वशीभूत हो गया, वह व्यक्ति कभी भी शिखरपुरुष नहीं बन सकता। विजयश्री पाने के लिए संयम और कठोर तप आवश्यक है।

एक और शब्द है- **"निज जड़ता लोगन्ह पर डारी।"** धनुष को जड़ता का प्रतीक कहा गया है, इससे स्पष्ट होता है कि जो जड़ता मनुष्य के जीवन में उपद्रव कर रही है, उसे नष्ट करना आवश्यक है। इसलिए धनुष प्रतीकात्मक रूप से अहंकार और जड़ता का प्रतीक है। तभी प्रभु धनुष कहते भी हैं कि तुम अपनी जड़ता को कम करो। यहाँ स्पष्ट रूप से यह भी दिखता है कि धनुष कोई पदार्थ नहीं है। वह तो भाव रूप में भवचाप है, जड़ता है।

मानस में कहा गया है-**"संकर चापु जहाज।"** यहाँ भी धनुष को जहाज कहा गया। इससे लगता है कि धनुष को वहाँ प्रतीक रूप में रखा गया था। जब विश्वामित्र श्रीराम को धनुष भंग करने हेतु कहते हैं, तो उस समय पर श्रीराम के संबंध में कहा गया-

"राम बाहुबल सिंधु अपारू।"

अर्थात् श्रीराम का बाहुबल समुद्र के समान है, इससे पता चलता है कि यहाँ सब कुछ भाव रूप में प्रयोग हो रहा है। धनुष भी भाव रूप में है। राजाओं का बल प्रयोग भी

भाव रूप में है और श्रीराम का बल भी भाव रूप में है । यानी, जो व्यक्ति भवचाप, भवसागर को पार करना चाहता है उसे श्रीराम के सहारे की आवश्यकता है, उसे सीता के रूप की नहीं, श्रीराम के आशीर्वाद की आवश्यकता है । सीता का रूप तो मनुष्य को श्रीहीन बना दे रहा है । श्रीराम धनुष के निकट जाते हैं । उसे प्रणाम करते हैं, मतलब, धनुष रूपी संसार की माया को, उसके अहंकार को प्रणाम कर रहे हैं, फिर धनुष उठाते हैं । ऐसे जैसे काई छोटी सी वस्तु उठाई जाती है । श्रीराम ने धनुष को उठाया, खींचा और तोड़ डाला ।

यहाँ एक रहस्य की बात समझ में नहीं आती कि इतनी बड़ी घटना हुई, परन्तु किसी ने देखा क्यों नहीं?

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सबु ठाढें ॥

पहले कहा गया कि धनुष के छूते ही बिजली चमकी । पूरा अंधकार हो गया । **"तेहिं छन राम मध्य धनु तोरा ।"** दो क्षणों के बीच धनुष टूटा । यह दो क्षण के बीच का समय महत्त्वपूर्ण है । इसका अर्थ है कि विज्ञान के नियम, समय, स्थान और कार्य से बाहर जाकर श्रीराम ने धनुष तोड़ा । जहाँ कोई क्षण था ही नहीं । अतः श्रीराम समय के बाहर खड़े हो गए । तभी भवचाप का प्रभाव जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं, उनका प्रभाव उन पर नहीं पड़ा । धनुष के अहंकार भाव को गुरुत्वाकर्षण से मुक्त किया । संभव है श्रीराम ने शंकर के उस धनुष को आकाश को लौटा दिया हो और दूसरा धनुष **"पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ"** वहाँ आ गया । इसलिए कोई पदार्थ का धनुष तो वहाँ था ही नहीं । पदार्थ का होता तो लोग देखते । दूसरी बात है कि महादेव के धनुष को तोड़ना, धनुष का अपमान करना था । वह तोड़ने के लिए नहीं, अपितु पूजा करने के लिए जनकजी को दिया गया था । इसलिए श्रीराम ने पहले उस धनुष को विलुप्त कर दिया ।

"दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ।"

यहाँ पुनि शब्द का प्रयोग किया है । मतलब दोबारा कोई धनुष वहाँ आ गया, जिसे श्रीराम ने तोड़ा । इस संदर्भ को मैंने स्वयं विचार कर लिखा है । यह मेरा व्यक्तिगत विचार है । क्योंकि धनुष को रंगभूमि में रखना, भंग करने की घोषणा करना, राजाओं का

बल प्रयोग इन बातों से स्पष्ट होता है कि वह धनुष भवचाप रूपी अहंकार का प्रतीक था। जिसको तोड़कर ही मनुष्य मुक्त हो सकता है । सीता रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए पहले अहंकार से मुक्त होना पड़ता है । कहते हैं लक्ष्मी उनके ही पास आती है जो शौर्यवान् और चरित्रवान् होते हैं । इसलिए सीता तक पहुँचने के लिए मनुष्य का अहंकार शून्य होना आवश्यक है । इसलिए श्रीराम को धनुष तोड़ते किसी ने नहीं देखा ।)

(यहाँ एक प्रश्न उठता है कि धनुष अहंकार का प्रतीक था, लेकिन किसके अहंकार का? जनकजी यह जानते थे कि संसार के सभी राजा अहंकारी बन गये हैं, वे अकारण आपस में लड़ते रहते हैं। इसलिए उन्होंने शिवधनुष को उठाने और उसपर प्रत्यंचा चढ़ाने की घोषण की। वे जानते थे कि किसी राजा में इतना बल नहीं जो शिव का धनुष उठा सके। जब वे लोग स्वयं धनुष को डिगाने में असमर्थ हो जायेंगे तो स्वाभाविक है स़ीता के प्रति जो उनके मन में मोह है वह भंग हो जाएगा। क्योंकि वे जबतक परास्त होकर अपनी हार स्वीकार नहीं करेंगे तबतक सीता को पाने की लालसा इनके मन में जगी रहेगी। हो सकता है, विवाहोपरान्त सीता को श्रीराम से छीनने का प्रयास भी कर सकते है।

ऐसी कथा भी वर्णित है कि सीता को जब विदा कराकर अवध लाया जा रहा था तो रास्ते में पराजित राजाओं ने श्रीराम से उन्हें छीनने का प्रयास किया था क्योंकि हारे हुए उन राजाओं के मन में तब तक अहंकार और कामभाव जगा हुआ था।)

सम्प्रति, श्रीराम के द्वारा तोड़े गए धनुष तीन खण्डों में विभक्त हो गया । एक खण्ड उपर चला गया, दूसरा खण्ड पाताल में चला गया और तीसरा खण्ड आज भी जनकपुर के बगल में धनुषा नामक स्थान में पड़ा हुआ है । धनुष को टूटते देख सभी लोग आनन्द मनाने लगे–

चौ०

बरिसहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किंनर गीत रसाला ॥

इसके बाद जनकपुर नगरी में हर्ष और उल्लास का वातावरण बन गया । उसी समय–

चौ०

सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा ॥
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छबिगन मध्य महाछबि जैसें ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई । बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई ॥

सतानन्दजी का आदेश पाकर सीता ने अपनी आंखे खोली । क्योंकि तब तक वह गौरी का ध्यान कर रही थी । बार-बार गौरी की प्रार्थना करती हुई मन ही मन कह रही थी कि "हे माता, मेरी लाज रख लो और अपने वचन का पालन करो।" उसी समय धनुष टूटने की सूचना फैली । सीता तो धनुष टूटते देखी भी नहीं । क्योंकि कहा जाता है कि मनुष्य के सामने जब जीवन-मरण का प्रश्न रहता है तो, वहाँ दूसरी कोई बात दिखाई नहीं पड़ती । सच पूछा जाए तो "जीवन में सफलता उसी को मिलती है जिसे सफल होने का मन होता है । विचार अगर पक्का है तो सफलता भी निश्चित मिलती है । असफल वही होता है, जिसके मन में सफलता का संदेह होता है ।"

सीता को सखियों ने केहुनी मार कर कहा- **"देख सीता धनुष टूट गया ।"** सीता को जैसे जान में जान आई । सीता ने देखा कि प्रभु राम धनुष भंग कर रंग-भूमि में प्रकाशवान् सूर्य की तरह खड़े हैं । सीता ने माता गौरी को मन ही मन प्रणाम किया और सतानन्दजी के आदेश से जयमाला लेकर सखियों के साथ धीरे-धीरे राम की ओर बढ़ने लगी । राम के निकट पहुँच कर सीता ने प्रभु को जयमाल पहनाई । पुनः प्रभु ने सीता को माला पहनाया । उसके बाद सखियों ने कहा कि हे सीते, राम का पैर छू ले । सीता खड़ी रही । सखियां बार-बार कह रही है कि पैर छू ले । लेकिन सीता पैर नहीं छू रही है-

दो०

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥

सीता गौतम की पत्नी अहिल्या की कहानी जानती थी । इसलिए वह पैर नहीं छू रही है कि कही पैर छूने से बगल में कोई दूसरी स्त्री न खड़ी हो जाए । उधर राम भी समझ रहे

हैं कि सीता के मन में क्या हो रहा है । राम समझ रहे हैं कि उन्होंने तो अहिल्या का उद्धार किया है, लेकिन यहाँ तो उल्टा पाला पड़ रहा है । मैंने तो अहिल्या का उद्धार कर सोचा कि एक अबला का कल्याण हो गया । लेकिन इस काम से सीता डर रही है–

मातु सुनैना से लेई आशीष, राम को सिय ने जयमाल पेन्हाई ।
गाई सुमंगल गीत मनोहर, देव सबै फूल माल गिराई ॥
परसे पग सोच रही मन में, नारी अहिल्या की बात बुझाई ।
राम लखे मन की तदवीर, देखि पुरातन प्रीति मुसकाई ॥

इस स्थान पर सीता के मन के भाव को समझकर एक बहुत ही सुन्दर गीत लिखा गया है। आइए इस गीत का आनन्द लें–

गीतं

"कैसे मैं छुऊं चरणियां हे, सिया गति पहिचाने ।
जिस चरणन से नारी बनी है, पइयां में कोई मूरी जड़ी है ।
कैसे मैं कर लूं पिरितिया हे, सिया गति पहचाने ।
कैसे में छुऊं...॥

जियवा में भय बनल, सौतन के त्रास लगल ।
दशरथ के घर-घर कहनिया हे, सिया गति पहचाने ।
कैसे में छुऊं...॥

कई जन्मों का नाता तुमसे, जनहित कारण बिछड़े मुझसे ।
कैसे मैं मानूं शरणिया हे, सिया गति पहिचाने ।
कैसे मैं छुऊं...॥

जब धनुष टूटने की आवाज चारों तरफ फैल गयी तो जो हारे हुए राजा थे, उन लोगों ने निर्णय किया कि राम पर आक्रमण करके सीता को छीन लो । यह सुनकर लक्ष्मणजी को रोष आ गया । उन्होंने कायर राजाओं को काफी डांट पिलाई । सभा में जब अधिक कोलाहल होने लगा तो सखियों ने सीता को अपने पास बुला लिया । क्योंकि यह स्वभाविक है कि जो हार जाता है वह अपनी हार को छिपाने के लिए अधिक हाथ-पाँव पटकता है ।

परशुराम-प्रसंग

धनुष टूटने की आवाज सुनकर महेन्द्रगिरि पर बैठे परशुरामजी को चिंता हुई कि धनुष टूटने की आवाज कहाँ से आ गयी । वे तो जानते थे कि शिव के धनुष को कोई नहीं डिगा सकता है । जब उन्होंने आवाज सुनी तो उनका भ्रम टूटा । वे क्रोध से लाल-पीले होते हुए हाथ में फरसा लिए हुए रंगभूमि में पहुँचे । आते ही जनक समेत सभी राजा उठ कर खड़े हो गये और बिना पूछे अपना-अपना परिचय देने लगे । उसी समय जनकजी ने प्रणाम किया । विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को परशुरामजी से मिलाया। उसके बाद परशुरामजी ने जनकजी से पूछा कि यहाँ भीड़ किसलिए इकट्ठी है-

दो०

बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर ।

पूछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ॥

चौ०

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥

सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥

अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥

परशुरामजी क्रोध से कांपते हुए पूछ रहे है कि "रे मूर्ख जनक! शिव के धनुष को किसने तोड़ा है ।" यह कोप देखकर सभी लोग डर से कांप रहे है । इस दृश्य को

देखकर माता सुनयना पछता रही है कि कहाँ से यह दुष्ट आ गया, इसने रंग में भंग कर दिया । सीताजी तो चिंता में मरी जा रही हैं । सीता की चिंता देखकर श्रीराम उठे और हाथ जोड़कर कहा–

चौ०

नाथ संभुधनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥

यह सुनकर परशुराम जी ने कहा–

चौ०

सेवकु सो जो करै सेवकाई । अरि करनी करि करिअ लराई ।
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा । सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥

हे राम! जिसने भी यह धनुष तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है । सहस्रबाहु ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मारा था । इसी कारण परशुराम ने क्षत्रियों को नाश करने का संकल्प लिया था । यह वचन सुन लखनजी को क्रोध आ गया, उठ कर खड़े हुए और बोले–

चौ०

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं । कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ॥

लक्ष्मणजी ने कहा– "हे परशुरामजी! आप इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं, मैंने बचपन में आपका बहुत धनुष तोड़ डाला था । लेकिन आपने तो ऐसा क्रोध कभी नहीं किया था । आखिर इस धनुष में कौन ऐसी बात है जिससे आपके मन में मोह हो रहा है । यही कारण है कि आपने जब क्षत्रियों को नाश करने का संकल्प लिया था और उन्हें मारकर उनका धनुष एकत्र करना शुरू किया । तो आपके दुस्साहस को देखकर देवताओं के परामर्श से मैं और पृथ्वी दोनों ने मिलकर आपके आश्रम में जाकर आपके द्वारा एकत्र किए सभी धनुष को नष्ट कर दिया था । उस समय, आपने ऐसा क्रोध तो नहीं किया था।" इस पर परशुराम जी ने कहा–

दो०

रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार ।

धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा कि धनुष तो सब एक ही होता है, यह तो फिर भी पुराना धनुष था ।

चौ०

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥

बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥

बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले कि आपने जो कहा सो सब तो ठीक है । लेकिन आप बार-बार मुझे अपना फरसा क्यों दिखा रहे हैं । आप चाहते हैं कि अपनी फूंक से पहाड़ उड़ा दूँ । जैसे हमारा कोई अस्तित्व नहीं है ।

चौ०

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

यह सुनकर परशुरामजी और आग बबूला हो गए । उन्होंने कहा- "रे बालक! तुम अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे रहे हो । अगर मैंने तुम्हें मारा तो कोई मुझे दोष न दे ।" यह सुनकर लक्ष्मणजी ने परशुराम को और उकसाते हुए कहा-

दो०

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥

लक्ष्मणजी ने कहा- "हे परशुरामजी! आपको सब जानते हैं ।"

चौ०

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा ॥

माता पितहि उरिन भए नीकें । गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ॥

मुझे पता है कि आपने अपने पिता की आज्ञा से अपनी माँ की हत्या कर दी थी। उस बेचारी निरपराध को आपने मारा था । नदी से जल लाने में थोड़ा विलम्ब हो गया तो आपके पिता को उन पर संदेह हो गया । इसी पर पिता की आज्ञा से आपने माता को काट डाला था और फिर पिता को प्रसन्न करके आपने माँ को जिलाया था । इस तरह माता-पिता दोनों के ऋण से आप मुक्त हो गए । लेकिन **"गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें"** । यह अभी बाकी है । आपके सामने खड़ा हूँ, पूरा कर लीजिए ।

विशेष प्रसंग

देवासुर संग्राम के अवसर पर भगवान् शिव के आदेश से जब दधीचि की हड्डी से विश्वकर्मा शेषनाग के सिर पर धनुष बना रहे थे तो शेषनाग बार बार अपना सिर हिला देते थे, जिससे धनुष नहीं बन पाता था । यह देख भगवान् शिव ने अपने शिष्य परशुराम को कहा कि शेषनाग की गर्दन काट लो । परशुराम ने काफी कोशिश की लेकिन शेषनाग को हरा नहीं सके । लक्ष्मणजी कहते हैं कि मैं वही शेषनाग हूँ । उस दिन तुम अपने गुरु शिव की आज्ञा पूरी नहीं कर सके, आज पूरी कर लो । इसीलिए उन्होंने कहा **"गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें"** । यह सुनते ही परशुरामजी और क्रोधित हो गए । बार-बार फरसा लेकर झपटने लगे । यह देख लक्ष्मणजी ने कहा कि आज तक आपको कोई बहादूर नहीं मिला, नहीं तो आप ऐसा नहीं बोलते । बात बढ़ते देख प्रभु श्रीराम ने लक्ष्मण को इशारे से बैठाया और बोले-

चौ०

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥

जौं लरिका कछु अचगरी करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥

प्रभु राम परमात्मा होते हुए भी परशुराम को क्रोध न करने की सलाह दे रहे हैं। परशुराम जी बहुत कुछ बोल रहे हैं। लेकिन राम शांति से जबाब दे रहे हैं। यही बड़ों का बड़प्पन है। क्रोध से किसी समस्या का समाधान नहीं होता, बल्कि बात और बिगड़ जाती है। परशुराम क्रोध में हैं और श्रीराम शांत भाव से खड़े है। क्योंकि शक्तिशाली क्रोध नहीं करता। क्रोध तो कमजोर व्यक्ति का लक्षण है। इसी बीच लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुनिवर! मैं आपका दास नहीं हूँ जो इस तरह डांट रहे हैं। धनुष तो टूट गया। कहिए तो किसी गुणी को बुलाकर इसे जोड़वा दूं। यह दृश्य देखकर सभा के सभी लोग डर से कांपने लगे कि पता नहीं अब क्या होगा। जनकजी डर कर लक्ष्मणजी को चुप रहने के लिए कहने लगे। इस बीच परशुरामजी ने प्रभु राम से कहा कि हे राम! तुम्हारा भाई समझ कर मैं इसे छोड़ रहा हूँ लेकिन यह बड़ा ही दुष्ट बालक है–

चौ०

मनु मलीन तनु सुंदर कैसें। बिष रस भरा कनक घटु जैसे॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने जबाब देना चाहा। लेकिन **"नयन तरेरे राम"** को देखकर लक्ष्मण चुप बैठ गए। उसके बाद प्रभु राम ने मुनि से कहा–

चौ०

बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥

राम ने परशुराम को समझाया कि बड़े लोग बच्चों की बात पर ध्यान नहीं देते। आप महामुनि हैं, क्रोध को शांत कीजिए। यह सुनकर मुनि ने कहा कि तुम मुझे समझा रहे हो। मेरे फरसा के डर से औरतों का गर्भ गिर जाता है और आज उसी फरसा के सामने यह बालक जीवित खड़ा है–

चौ०

एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥

परशुराम ने कहा– "हे जनक! इस बालक को मेरी नजरों से दूर करो।" यह सुनकर लक्ष्मणजी ने एक बार फिर परशुरामजी को समझाने का प्रयास किया और कहा–

"हे मुनिवर! इस शुभ स्थान पर आकर इस तरह क्रोध करना उचित नहीं है । यह भी सत्य है कि पिछले जन्म में शिव के आदेश से तुमने शेषनाग का सिर काटना चाहा था, जिसे तुम पूरा नहीं कर सके । वही शेषनाग मै हूँ । उस समय तो तुमने मेरा सिर नहीं काटा । आज चाहो तो गुरु के आदेश को पूरा कर लो । लेकिन वीरों की तरह व्यवहार करो ।" इस प्रसंग में मैंने एक गीत लिखा है, आइए इस गीत को गाएं–

गीत

तुम ऋषि कुल के तपस्वी हो, विद्वेष तुम्हारा धर्म नहीं ।
जिस मकसद से अवतार लिए, हिंसा करना तेरा कर्म नहीं ॥
संतों का यह कर्तव्य नहीं, जो परशु प्रहार का आदि हो ।
पितु मातु के ऋण निवारण में सृष्टि की जब बर्बादी हो ॥
गुरु शंभु ने आदेश दिया, मेरे मस्तक को खण्डित कर दो ।
सारे प्रयास में विफल रहे, वह शेष आज पूरा कर दो ॥
पर कहते परशुराम बने, धर्मार्थ कार्य में आए हो ।
जो पीड़ित है विकारों से, यह रूप कहाँ से लाए हो ॥
एसे संतों के कारण ही पृथ्वी माता लांछित बनती ।
अब राम आ गए है जग में, अब नहीं रहेगी यह चलती ॥
श्रीराम जगत के पालक हैं, मैं शेषनाग का बालक हूँ ।
शीतल समाज का प्रण मेरा, मैं धर्म नीति का धारक हूँ ॥
मातृ-पितृ ऋण उऋण हुए, गुरु ऋण तुम्हारा बाकी है ।
इस यज्ञ भूमि में गर्जन कर, तुमने पौरूष को आंकी है ॥

आक्रोश में जो जन जीता है, वह अल्प आयु का होता है ।
विद्वेष की अग्नि में जलता, वह स्वयं कर्म पर रोता है ॥
काटो विचार के कंटक वन जो द्वेष दृष्टि उपजाता है ।
इस से समाज बंट जाता है, विद्वेष नहीं मिट पाता है ॥
श्रीराम पूर्ण परमेश्वर है, इनके चरणों का ध्यान करो ।
शीतल समीर के अंकुर से, जन जीवन का विस्तार करो ॥

लक्ष्मणजी की बात सुनकर परशुरामजी सोच में पड़ गये । उसी समय राम कहते हैं-

चौ०

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥

श्रीराम ने परशुराम से बार-बार क्षमा माँगी । लेकिन परशुराम का क्रोध शांत नहीं हुआ । वे बार-बार राम को डांटते रहे । इस पर एक बार फिर राम ने विनयपूर्वक परशुराम से कहा-

चौ०

राम कहा मुनि कहहु बिचारी । रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

श्रीराम की विनयशीलता देखकर परशुराम को संदेह होने लगा कि लगता है कि यह कोई दिव्य शक्ति है । तभी परशुराम ने अपना धनुष दिया और कहा कि तुम मेरे धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाओ और मेरे मन का संदेह दूर करो-

चौ०

राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चाप आपुहिं चलि गयऊ परशुराम मन बिसमय भयऊ ॥

श्रीराम ने ज्योंही धनुष को हाथ में लिया, उस पर स्वतः प्रत्यंचा चढ़ गया । यह देखते ही परशुराम को बड़ा विस्मय हुआ । जब परशुराम के मन से संदेह हट गया तो परशुराम ने हाथ जोड़कर राम से कहा कि "आप मुझे क्षमा करें और मुझे जाने दें ।" लेकिन परशुराम का धनुष जो चढ़ गया था, उसको तो कहीं चलना था, क्योंकि राम ने उसे साधा था । परशुराम के मन में भय हुआ कि राम मुझे इस बाण से मार न दें । इसलिए परशुराम ने राम से कहा– "हे राम! मुझे जो कहीं आने जाने की शक्ति प्राप्त है, उसका आप हरण कर लें और मुझे जाने दें ।" श्रीराम ने उस बाण से परशुराम के आने जाने की अनन्त शक्ति का नाश कर दिया और परशुराम को छोड़ दिया । फिर राम की अनुमति लेकर परशुराम महेन्द्रगिरि पर तपस्या करने चले गए ।

जनकपुर में विवाह की तैयारी

रंगभूमि से परशुराम जी के चले जाने के बाद वहाँ उपस्थित जनकपुर के नर–नारी हर्षोन्माद में नाचने गाने लगे ।

चौ॰

अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे ॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं । करहिं गान कल कोकिलबयनीं ॥
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई । जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई ॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी । जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी ॥

देखते–देखते रंगभूमि का पूरा वातावरण महोत्सव में बदल गया । यह देख जनकजी ने विश्वामित्र से कहा– "हे मुनिवर! अब मुझे अगला आदेश दीजिये ।" यह सुन विश्वामित्र ने कहा–

चौ०

टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू । सुर नर नाग बिदित सब काहू ॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दशरथहि बोलाई ॥

जनकपुर में तैयारी शुरू हो गयी । घर-घर में बन्दनवार सजाये जाने लगे । जैसे मानो पूरे नगर में वसन्त-ऋतु आ गया हो । सभी नर-नारी विवाह की तैयारी में लग गए। इधर जनक के आदेश से सतानन्दजी विवाह का निमंत्रण-पत्र लेकर महाराज दशरथ के पास जाते हैं । मैं जब रामकथा में जाता हूँ तो उसी गीत को हमेशा राम भक्तों को सुनाता हूँ जिसे दूत सतानन्द राजा दशरथ हेतु निमंत्रण पत्र लेकर अवध जाते समय गाते हैं-

गीत

हम त पाती लेके आवत बानी पार से ।

जनक दरबार से ना........................॥

सीता बाड़ी हमर धीया, रामजी जितलन उनकर हीया,

न्योता देवे जाली दशरथ के दरबार में ।

जनक दरबार से ना........................॥

मिथिला दिव्य लोक सुरधाम, राजा जनक हई उहां महान,

राम जी जीत लेलन सीता सुकुमारी के ।

जनक दरबार से ना..........................॥

दशरथ अइहे अब बराती, हम सब बन के रहब सराती,

सीता दुल्हिन बनके जइहे ससुराल में ।

जनक दरबार से ना........................॥

जब सतानन्दजी अवध पहुँचते हैं तब दशरथ स्वयं सिंहासन से उठकर अपने हाथ से निमंत्रण पत्र लेते हैं। यहाँ कई लोग प्रश्न उठाते हैं कि दशरथ ने स्वयं अपने हाथ से पत्र क्यों लिया। पत्र लेना और पढ़ना तो मंत्री का काम है। दशरथ ने स्वयं पत्र क्यों लिया? इसका उत्तर है कि पत्र ले जाने वाला जनक के राज गुरु सतानन्द थे। वे कोई साधारण दूत नहीं थे। इसीलिए दशरथ ने उनका मान रखने के लिए स्वयं पत्र लिया। दशरथ ने जब पत्र पढ़ा, तो क्षण मात्र में पूरी अयोध्या में खबर फैल गयी। देखते-देखते भरत और शत्रुघ्न एवं सभी माताएँ वहाँ पहुँच गयीं। दशरथ की आंखों में खुशी के आंसू निकल पड़े। माताएं आनन्द-विभोर हो रही हैं। क्योंकि पुत्र के विवाह का समय माता-पिता के लिए बड़ा ही मोहक होता है। उसी समय सतानन्द कहते हैं- "हे महाराज! आप धन्य हैं कि आपको ऐसा सुन्दर पुत्र मिला है।"

चौ०

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलिन रबि सीतल लागे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥
संभु सरासनु काहुँ न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥

दो०

तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥

हे महाराज! राम ने उस विशाल शंभू-धनुष को कमल की नाल की तरह उठाया और तोड़ दिया। सतानन्द आगे कहते हैं- "वह साधारण धनुष नहीं था। वह इतना विशाल था कि अनेक लोग मिलकर गाड़ी पर लाद कर उसे रंगभूमि में लाये थे। उस धनुष को आपके पुत्र राम ने एक हाथ से उठाया और तोड़ दिया। इसका अर्थ है कि

आपके पुत्र को उन सभी विद्याओं का ज्ञान है, जिसे बड़े-बड़े विज्ञानी, ऋषि-मुनि जानते हैं। आपके पुत्र सर्वगुण सम्पन्न हैं।" यह सुनकर दशरथ भाव-विभोर हो गए। उन्होंने इतना ही कहा कि "यह सब हमारे कुल पुरोहित वशिष्टजी और महर्षि विश्वामित्र के आशीर्वाद का फल है।" सचमुच माता-पिता के लिए गौरव की बात होती है कि लोग उसके पुत्र के अच्छे कामों के लिए प्रशंसा करें। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि पिता पुत्र से और गुरु शिष्य से जब हार जाता है, तो पिता और गुरु की साधना सफल मानी जाती है-

पुत्रात् शिष्याच्च पराजये सति गुरुः सफलः।

दशरथ ने पूरे राज्य में बारात चलने की तैयारी करने का आदेश दिया।

दो०

सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥

देखते-देखते अवध में बारात सज गयी।

चौ०

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥

अवध के लोग सज-धजकर बारात लेकर चलने के लिए तैयार हो गए।

बारात जनकपुर प्रस्थान

चौ०

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
एहि बिधि किन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥

बारात जनकपुर की ओर सज-धज कर चली। लगता था कि महाराज दशरथ किसी महाअभियान में जा रहे हैं। बारात की शोभा का वर्णन करना संभव नहीं है।

विशेष प्रसंग–

(विवाह के अवसर पर बारात ले जाने की एक परंपरा है । लड़का–लड़की की शादी में बारात का क्या अर्थ है । दरअसल, यह प्राचीन परंपरा है । पिशाच विवाह भेद के अन्तर्गत लड़की पसन्द हो जाने पर लड़का अपने सैनिकों के साथ लड़की के पिता पर आक्रमण कर लड़की का बलपूर्वक हरण कर लेता था । इस क्रम में वह अस्त्र–शस्त्र से लैस होकर बाराती के साथ जाता था, क्योंकि ऐसा न हो कि लड़की पक्ष के लोग उस पर आक्रमण कर दे। इसी परम्परा के तहत लड़का पूरी तैयारी से योद्धा के वेश में मूरेठा बांधता है, हाथ में तलवार लेता है और घोड़ा पर चढ़ता है । लगता है जैसे वह किसी युद्ध में जा रहा है । दशरथजी के द्वारा सजवायी गई बाराती में भी इसी तरह की तैयारी थी।

बारात का एक अर्थ यह भी है कि विवाह में बाराती और लड़की वालों की ओर से सराती भाग लेते हैं। वे इसलिए विवाह में शामिल होते हैं कि इस विवाह को हमारा समर्थन है । हम सभी गवाह हैं ।)

बारात जनकपुर के निकट पहुंचती है । उधर जनकपुर के नर–नारी बारात के स्वागत के लिए नगर के बाहर खड़े है । बाराती नगर में प्रवेश करती है । कहते हैं, जनकपुर को ऐसे सजाया गया था कि कोई भी घर किसी से कम नहीं लग रहा था । एक संत ने अपनी कथा में कहा था कि दशरथ जब बारात लेकर नगर में प्रवेश किए तो, उन्होंने एक सजे–धजे मकान को देखकर, दरवाजा लगाने के लिए उस मकान के सामने खड़े हो गए। तब लोगों ने उन्हें बताया कि महाराज! महल आगे है । यह तो इस नगर के डोम का घर है । यह सुन दशरथ झेंप गए । उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि किस घर को राजमहल समझा जाए, इतनी तैयारी की गयी थी । बारात आगे बढ़ी । जनवासा में जाकर सभी बाराती व्यवस्था देखकर आश्चर्य में पड़े हुए थे । क्योंकि सीताजी की आज्ञा से सभी ऋद्धि–सिद्धि बारात के स्वागत में लगी थी–

चौ०

निज निज बास बिलोकि बराती । सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती ॥

राम को जब पता चला कि पिताजी आ गए हैं तो वे पिता से मिलने के लिए आकुल होने लगे । राम जनवासा में गुरु आज्ञा से गए । पिता ने दोनों को गले लगाया । दशरथ, विश्वामित्र से मिले । फिर दोनों भाइयों ने वशिष्टजी को प्रणाम किया । भरत और शत्रुघ्न ने राम से भेंट की ।

थोड़ी देर बाद महाराज जनक और सतानन्दजी जनवासा में दशरथ से मिलने गये। जनक ने अनुरोध किया कि विवाह के लिए प्रस्थान किया जाए । जब विवाह के लिए महल की ओर, महाराज दशरथ अपने पुत्रों के साथ चले, देवता लोग फूल की वर्षा करने लगे । भगवान् शिव देवताओं को समझा रहे हैं कि यह जगत् पिता परमेश्वर श्रीराम और जगत् माता सीता का विवाह है ।

राम जिस घोड़े पर सवार थे, उसकी शोभा का वर्णन करना संभव नहीं है । भगवान् शिव अपने नेत्रों से राम के इस रूप को निहार रहे हैं । बारात महल में पहुँची ।

दो०

सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि ।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि ॥

राम का परिछावन करने के लिए देव-पत्नियाँ भेष बदल कर भाग ले रही हैं । नगर की महिलाएँ मिथिला की परम्परा के अनुसार राम का परिछावन करने लगीं । परिछावन के अवसर पर मिथिला में बड़ा ही मोहक गीत गाया जाता है । इसके पश्चात् बाराती पुनः जनवासा में लौट आई । थोड़ी देर बाद जनक और दशरथ गले मिलते हैं । अब विवाह का कार्यक्रम प्रारंभ होता है-

<u>गीत</u>

मिथिला में राम की बाराती, अवध से आयेल है ।
सखी हे मंगल गान सुनाऊ, सुमंगल आयेल है ॥
दूध, दही, अच्छत मंगावहु, परिछन करावहु हे ।
सखि हे, मंगल गान सुनाऊ..........................॥

नउवा से फूलवा सजावहु, तिलक लगावहु हे,
सखि है मंगल गान सुनाऊ.............................॥

मातु सुनैना आरती उतारे, सखी सब गावत गारी ।
सखी हे, मंगल गान सुनाऊँ ....॥

इधर सीता को मण्डप में जाने के लिए सखियाँ तैयारी करने लगीं । समय होते देख सीता ने अपनी सखियों से कहा कि आओ सब मिलकर मुझे सजा दो ।

इसके बाद सीता को सखियों ने दुल्हा राम लला के लिए सजा संवार कर तैयार किया और उधर मण्डप को सजाया गया । मिथिला के विधि-विधान के अनुसार मण्डप की सारी व्यवस्था की गयी । क्योंकि मिथिला में शादी-विवाह का बड़ा ही महत्त्व है । जब सखियों को पता चला कि राम मण्डप पर आ गए हैं तो सखियाँ एक दूसरे को पुकार कर कह रही हैं कि चलो सब मिलकर मड़वा पर परिछन का गीत गाएं । मिथिला में विभिन्न प्रकार के मंगल गीत गाने की परंपरा है ।

विवाहपूर्व जब दरवाजा लगता है, तो लड़का का परिछावन किया जाता है । उस समय लड़की की माँ लड़के का स्वागत कर आशीर्वाद देती है । परंपरा है कि सबसे पहले लड़की के पिता, लड़का को देखता है फिर लड़की का भाई लड़के को शगुन देता है । फिर बारात-दरवाजा लगने पर कन्या की माँ, लड़के को अपनी स्वीकृति देती है । उसके बाद बारात के प्रमुख लोगों को मण्डप पर बुलाया जाता है । जिनमें लड़का का बड़ा भाई प्रमुख होता है । वह लड़की को पहली बार देखता है और विवाह के लिए अपनी स्वीकृति देकर लड़की को वस्त्र, अलंकार देकर उसे अपना आशीर्वाद देता है । इसी को **"निरीक्षण"** कहते हैं । उस दिन से लड़के का बड़ा भाई लड़की का स्पर्श नहीं कर सकता । क्योंकि अब वह **"भासुर"** बन गया है । मतलब कि अब वह लड़की के लिए देवता बन गया है । यह प्रथा आज भी प्रचलन में है । बड़े भाई की अनुमति के पश्चात् ही लड़का विवाह के लिए मण्डप पर जाता है। अब सखियाँ राम के परिछावन के लिए मण्डप पर पहुँचती है । आइये हम यहाँ परिछावन का एक गीत गाएं-

गीत

चलु सखी मण्डप पर परिछन गाएं,
सीता के माथे पर सेहरा सजायें ।
देखु-देखु रघुवर को कैसे मुस्कुराये,
सीता को देखकर कैसे शरमाये ।

सब मिलकर सीता को दुल्हन बनायें,
सीता के माथे पर सेहरा सजाये ॥

मण्डप पर देव गण फूल बरसाये,
सखी सब दुल्हा को तिलक लगाये ।
भँवरा सन रूपवा मन्मथ लजाये,
सीता के माथे पर सेहरा सजाये ॥

मड़वा पर बैठे है जगत बिहारी,
मने मुस्कुराये सुन मिथिला के गारी ।
गारी सुन मंडप पर सीता मुस्काएं,
चलु सखी मंडप पर परीछन गाएं ॥
देखु देखु रघुवर को...॥

धनुष यज्ञ में राम के लिए सीता का विवाह निश्चित किया गया था । लेकिन जब जनक ने लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की ओर देखा तो उन्होंने सोचा कि राम का विवाह

सीता से हो जाए और हमारे छोटे भाई कुशध्वज की बेटी ऊर्मिला का लक्ष्मण से होना चाहिए । भरत और शत्रुघ्न के लिए कुशध्वज की ही बेटी माण्डवी से भरत का और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्न से होना चाहिए। ऐसा ही निर्णय महाराज जनक ने किया। कुशध्वज सांकाश्य नगर के राजा थे । आज भी धनुषा के निकट यह स्थान माना जाता है। इस तरह चार भाइयों के लिए चार दुल्हनें तैयार की गईं और मण्डप में उन्हें लाया गया । जब भगवान् श्रीराम मण्डप पर चारों भाइयों के साथ बैठे तो वह शोभा मोहक बन गई थी। उसी समय सीता सहित चार बहनों को मण्डप पर लाया गया–

चौ०

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई । प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई ॥

सीता के मण्डप पर आते ही मिथिला की परंपरा के अनुसार शांति पाठ होने लगा । जनक और सुनयना को मण्डप पर बुलाया गया, क्योंकि माता-पिता को अपनी बेटी का कन्यादान इसी अवसर पर करना पड़ता है । जब सभी लोग मण्डप पर बैठे तो यह शोभा देखते ही बनती थी । गोस्वामीजी ने चार भाइयों और चार दुल्हिनों के रूप छटा का वर्णन बड़ा ही मनोरम ढंग से किया है–

छं०

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं ।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं ॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं ॥

मंडप पर महाराज जनक ने श्रीराम एवं अन्य तीन भाइयों को कहा कि मैं अपनी कन्या आपको दान करता हूँ (मैं कन्यादान संस्कार पूरा करता हूँ ।)

अहम् निजकन्यां तुभ्यं ददामि ।

इस पर पंडित सतानन्दजी ने कहा "हे राम! आप बोलें कि मैं इसे स्वीकार करता हूँ।" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- **"प्रतिगृह्णामि।"** लेकिन लखनलाल ने विरोध करते हुए कहा- महाराज! रघुवंशी कभी कोई दान नहीं लेते। इसलिए मैं ऐसा नहीं कह सकता। मैं दान नहीं लेता। यह सुनकर बगल में बैठी सखियों ने कहा कि कुँवरजी! आप दान नहीं लेते तो मेरी दीदी को मांगने अवध से मिथिला क्यों आए हैं? यह सुन श्रीराम तो मुस्कुराने लगे, लेकिन लक्ष्मणजी ने कहा कि "मैं यहाँ दान मांगने नहीं आया हूँ। मेरे बड़े भइया ने यहाँ धनुष यज्ञ में अपने शौर्य का प्रदर्शन करके आपकी दीदी को जीता है, इसलिए यह दान नहीं है, भाभी को तो भैया ने धनुष यज्ञ में जीता है।" श्रीराम ने संकेत किया, लक्ष्मणजी समझकर चुप हो गए। इस तरह जनक ने चार भाइयों के साथ अपनी चार पुत्रियों का कन्यादान करके विवाह कर दिया। इस समय सभी लोग वर-दुल्हन पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं।

(मिथिला की परंपरा के अनुसार विवाह एक बड़ा ही पवित्र संस्कार माना जाता है। इसे पाणिग्रहण इसलिए कहा जाता है कि वर-वधू का पाणि (हाथ) ग्रहण करता है। वर का अर्थ होता है- श्रेष्ठ और वधू का अर्थ होता है- जो बंधी हुई हो। इसलिए मंडप पर फेरे लेते समय वर की चादर में वधू की साड़ी का आँचल बंधा रहता है। उसे "गठजोड़" कहते हैं। विवाह के पहले लड़की का पिता पहले लड़का को देखता है, उसे अपनी स्वीकृति देता है, फिर लड़की का भाई तिलक चढ़ाने जाता है। वह भी अपनी बहन के योग्य वर को पाने पर तिलक लगाकर अपनी स्वीकृति देता है। जब बाराती आती है, तो लड़की की माँ "परिछावन" करती है। वह लड़के को देखकर अपनी स्वीकृति देती है। उसके बाद लड़का का बड़ा भाई मण्डप पर जाकर लड़की को देखता है, जिसे "निरीक्षण" कहते हैं। यह अधिकार केवल बड़ा भाई को है। वह लड़की को देखकर स्वर्ण आभूषण, वस्त्रादि देकर आशीर्वाद देता है और लड़की को अपने परिवार में स्वीकार करने की अनुमति देता है। उसके बाद सिन्दूरदान की विधि शुरू होती है। लड़की का पिता लड़का का पैर पूजकर अपनी बेटी को दान करता है। इस दान का अर्थ है कि आज से यह लड़की हमारे कुल से बाहर हो गई। फिर वैदिक मंत्रों के साथ

सिन्दूरदान होता है । सिन्दूरदान का अर्थ है कि आज से यह लड़की विवाहित हो गई । प्रेम का प्रतीक सिन्दूर उसके माथे के मध्य भाग में जब तक लगा रहता है, तब तक उसे **"सुहागिन"** कहा जाता है । माथे के बीच में एक सुम्नी नाड़ी होती है, जिस पर पारायुक्त सिन्दूर लगाने से सुहागिन स्त्रियों के मन में प्रेम और राग उत्पन्न होता रहता है । यही इसका विज्ञान है । इसलिए कुमारी अथवा विधवा स्त्री सिन्दूर नहीं लगाती । ताकि उसके मन में अनुराग और प्रेम उत्पन्न न हो । विवाह में पति और पत्नी के बीच समझौता होता है, जिसका अर्थ है- आज से ये दोनों एक प्राण हो गए । इसीलिए पति को प्राणपति कहा जाता है । पति और पत्नी एक वंश के नहीं होते । इसीलिए विभिन्न गोत्रों में विवाह किया जाता है । यह वैज्ञानिक भी मानते हैं कि एक वंश के लड़का-लड़की से जब संतान होती है तो संतान के शरीर में कोई न कोई विकृति अवश्य हो जाती है ।

कई संत यह भी कहते हैं कि महाराज जनक और दशरथ इक्ष्वाकु वंश के थे । फिर राम और सीता का विवाह कैसे हुआ । दरअसल राम दशरथ के शरीर से उत्पन्न नहीं हुए थे, उधर सीता भी जनक की अपनी बेटी नहीं थी । तीसरी बात यह है कि इक्ष्वाकु के वंश में सात पीढ़ियों के बाद सीता और राम आते हैं । इसलिए सात पीढ़ी के बाद दोष नहीं लगता ।

विवाह में लड़का लड़की के गले में मंगलसूत्र पहनाता है । यह मंगलसूत्र बहुत पवित्र माना जाता है । सुहागिन महिलाएं इसे गले से नहीं उतारती हैं ।

विवाह में **"घूंघट"** एक विधि होती है । इसमें लड़के का पिता लड़की के माथे पर साड़ी रखकर उसे ढंक देता है । लड़का उस साड़ी को हटा देता है । पिता फिर उसे ढंक देता है । इसका अर्थ है कि पिता अपनी बहू को मर्यादा के अन्दर रखना चाहता है । लड़का उस साड़ी को जब हटाता है तो पिता यह कहते हुए उसे साड़ी से ढंक देता है कि "यह बहू हमारे कुल की मर्यादा है, इसे हमेशा ढंककर रखो ।" मिथिला में आज भी कहा जाता है कि "भोजन और स्त्री को किसी को दिखाना नहीं चाहिए ।" इसीलिए स्त्री साड़ी पहनती है ताकि उसका कोई भी अंग बाहर न दिखे । प्रदर्शन से मन में विकार

उत्पन्न होता है । उसके बाद ध्रुवतारा को दिखाकर अचल सुहाग की कामना की जाती है। विवाह के लिए ये जितने भी विधान बनाये गए हैं, ये सभी पति-पत्नी के नैतिक बन्धन हैं । अग्नि को साक्षी मानकर दोनों स्वेच्छा से इस बन्धन को स्वीकार करते हैं । यही कारण है कि जीवन भर पति-पत्नी इस नैतिक बन्धन में बंधे रहते हैं ।

विवाह में बाराती का अर्थ है कि इतने लोगों के बीच इन दोनों का विवाह हुआ है, बाराती और साराती इसके गवाह हैं । मैंने इसके पहले बताया था कि प्राचीन काल में लड़का लड़की का अपहरण करके विवाह कर लेता था । इस अपहरण में कई बार लड़ाई भी होती थी, जिसके लिए लड़के एवं बाराती को पूरी तैयारी के साथ बारात में जाना पड़ता था । दुल्हा भी सिर पर पाग, कमर में कटार लेकर घोड़ी पर सवार होकर जाता था । आज भी यह परंपरा चल रही है । तिलक दहेज की परंपरा उसी समय से चली । जब लड़का बलपूर्वक लड़की का अपहरण करता था, तो उसके साथ वह धन का भी शोषण करता था । आज तो इसीलिए तिलक दहेज को कलंक कहा जाता है । आज तो अधिकांश घरों में इसी तिलक दहेज के कारण मन-मुटाव पैदा हो रहा है ।

मिथिला में एक और विधि है जिसे **"लहछू"** कहा जाता है । इस विधि में नाई लड़के की अंगूली से खून निकालता है और पान में रखकर चुपके से लड़की को खिला देता है और फिर लड़की के खून को लड़के को खिला देता है । इसका अर्थ है कि आज से दोनों का खून एक हो गया ।

कन्यादान का अर्थ है कि आज से यह लड़की दूसरे वंश में चली गयी, आज तक वह पिता के वंश में थी । कन्यादान होते ही वह दूसरे वंश में चली गयी । ऐसा इसलिए किया जाता है कि लड़की अब पूरी तरह ससुराल वालों की हो गयी । अब उसे नये घर में अपनी दुनिया बसानी है ।)

विवाह के पश्चात् जनक ने दशरथ से कहा- "हे महाराज आज से सीता और इनकी बहनें आपके कुल की मर्यादा बन गयीं । आपने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है ।" ये सुनते ही दशरथ ने कहा कि महाराज, मैंने नहीं आपने मेरे ऊपर उपकार किया

है। इतनी शील, गुण सम्पन्न बहू देकर मुझे सम्मानित किया है यह आपकी महानता है। मैं तो याचक बनकर आपके द्वार तक आया था। आपने मेरी झोली भर दी, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। दशरथ और जनक की जो शालीनता है वह अगर आज समाज में आ जाए तो समाज का कल्याण हो जाए। विवाह के पश्चात् मिथिला की विधि के अनुसार कोहबर, जेवनार सब कुछ होने लगा। इस तरह बाराती बहुत दिनों तक मिथिला में ही रही।

चौ0

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रज़ु बँधे बराती॥

कुछ दिन के बाद राम अपने ससुराल में अपनी साली–सरहजनी के साथ हिल–मिल गये। एक दिन एक साली ने राम से पूछा– "हे दुल्हा! जब तुम मेरी दीदी सीता को अवध ले जाओगे तो उसे कहाँ रखोगे। मिथिला के समान न तुम्हारे पास घर है और न बाग–बगीचा है। हमारी दीदी कहाँ रहेगी। और सबसे बड़ी बात यह है कि तुम्हारी तीन माताएं है। किसी लड़की के लिए एक सास ही काफी है। इन तीन सासों के बीच मेरी दीदी का क्या होगा?" इसी विषय पर सखियों ने एक बहुत सुन्दर गीत गाया है। आइए हम सब भी राम को यह गीत सुनाएं–

गीत

कहमा के रखब दुल्हा हमर बहिनियाँ,
बता द हमरा अहांक टूटल महलिया।

तीन–तीन माई अहांक सेवा करैहे,
फूल सन दुलारी बहना कैसे निभैंहे।
दंतवा में जीभ जइसन दीदी के करमिया,
बता द दुल्हा ....।

कहइत छलाह राम छथिन जगत बिहारी,
शक्ति रूप सीता खातिर अइलन दुआरी ।
धन्य धन्य मिथिला के पाव डगरिया,
बता द दुल्हा कहमा के रखबा ....।

पान मखान दुल्हा इहां से पठायब ।
लाल लाल धोती कुर्त्ता टोपी भेजवायब,
मइया ला मिथिला के साड़ी दुपलिया
बता द दुल्हा कहमा के रखबा ।

भेजब पुछारी में दउरा भर अमवा,
खाजा के मिठाई गाजर के हलुआ ।
चांदी के लोटा थाली, सोना के गगरिया,
बता द दुल्हा कहमा रखबा बहिनिया ...।

विशेष प्रसंग-

(भगवान् श्रीराम अवध के राजकुमार हैं और उनका विवाह मिथिला में हुआ है । मिथिला सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही कोमल और मीठा प्रदेश माना जाता है । मिथिला की बोली बड़ी मीठी होती है । लड़कियों के मुँह से जब यह बोली निकलती है तो बहुत ही मोहक लगती है । जैसे- अगर कोई यह कहे कि आप कहाँ जा रहे हैं, तो इस वाक्य को हम भोजपुरी में कहेगें-

- रउवा कहाँ जात बानी !

और इसी वाक्य को अगर हम मैथिली में कहेंगे तो -

- अहाँ कतऽ जाए रहल छी !

और इसी वाक्य को मगही में कहेंगे तो–

–तू कहाँ जाइत हऽ !

और इसी वाक्य को देवरिया, गोरखपुर के लोग बोलेंगे–

– आप कहाँ जा तानि !

और इसी वाक्य को अवध के लोग बोलेंगे–

– आप कहाँ जात हौं ।

और ब्रजभाषा में लोग बोलेंगे

आप कहाँ जा रहे हैं !

इस तरह हम पाते हैं कि भारत में हिन्दी बोलने की कई विधियाँ है । सबको अपनी-अपनी बोली प्रिय लगती है । हमारी सभी बोलियां दूसरे देश की बोली से तो मीठी अवश्य है । राम को मिथिला की बोली बहुत पसन्द आ रही है । मिथिला में एक कहावत है–

राग मीठ होरी के, साग मीठ तोरी के ।
बात मीठ यारी के, गारी मीठ सारी के ॥

भगवान् राम की भी सालियां हैं। वे सब मजाक कर रही है । कभी पूछती हैं- **"हे दुल्हा! हम सब सुनने छलौं कि आहाँ के पूर्वज सगर के साठ हजार पुत्र छलाह, ई केना भेलई?"** श्रीराम सुनकर मुस्कुरा देते हैं, फिर लड़कियां पूछती है, **"अहाँक बहिन सान्ता के बिआह ऋषि श्रृंगी सं केना भेल ।"** लोग किये कहैत छथिन कि–

दशरथ ससुर राम मोहिं साला, हमहिं पिता हरि पुत्र हमारा

"हमरा देश में एई तरह के बात सब लोग कह रहल छथिन"

(प्रबुद्ध पाठकों को मैं बता दूँ कि शांता, राजा रोमपाद की पुत्री थी । रोमपाद महाराज दशरथ के अभिन्न मित्र थे। महाराज दशरथ निःसंतान थे, अतः रोमपाद ने

अपनी कन्या शांता को उन्हें सौंप दिया था । शांता का लालन-पालन दशरथजी के द्वारा हुआ, इस कारण लोग शांता को उनकी प्रथम पुत्री एवं श्रीराम सहित चार भाइयों की बहन के रूप में जानते हैं । शांता जब बड़ी हुई तब महाराज दशरथ ने उसका विवाह ऋष्यश्रृंग से कर दिया । इसलिए विवाह के अवसर पर सीता की सखियों ने प्रभु श्रीराम से ऐसा परिहास किया ।)

मिथिला की लड़कियों से इस तरह की बात सुनकर श्रीराम कुछ बोल नहीं पाते । लेकिन जब मिथिला की लड़कियों ने अपने जीजा राम को खूब परेशान किया तो राम ने अन्त में कहा- तुम लोगों को जितना मजाक करना है कर लो । मुझे तो मजाक करना भी नहीं आता, लेकिन तुम लोगों का प्रेम देखकर मैं तुम लोगों को वचन देता हूँ कि- **"द्वापर में जब मैं कृष्ण बनकर आऊंगा और तुमलोग गोपियां बनकर ब्रज में जन्म लोगी तो उस समय मैं तुम सबों को एक-एक करके इस मजाक का जवाब दूंगा और इसका बदला लूंगा ।"** कहते हैं इसीलिए कृष्ण ने द्वापर में गोपियों के साथ रास लीलाएं की थीं । श्रीराम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, मिथिला में वे किसी मजाक का जवाब नहीं देते । यहाँ तक कि लड़कियां जब कहती हैं-

हम आंहां के गारी न देई छि, मजाक करई छी ।

उसी समय सखियों की दूसरी टोली आती है और फिर भगवान् राम को सुनाकर गीत गाने लगती हैं-

<u>गीत</u>

कहमा रखवा दुल्हा बहिना हमारी,
बता द हमरा कैसे रखिहौं दुलारी,
फूल से कोमल अइछ बहना हमारी ।
कहमा से लयवा दुल्हा महल अटारी,
बता द हमरा ....।

मिथिला के सुख कहां अवध नगरिया,
मीठ मीठ गीत गावें उहां के मेहरिया ।
राजा जनक के ई इहमा दुआरी ॥
बता द हमरा कैसे..........................।

राजा दशरथ के हई तीन तीन रनियां,
कइसे बन रहिहें सीता मिथिला के कनियां ।
अवध के लोग हई चुनल खेलाड़ी,
बता द हमरा ....।

मिथिला के बहिना हमर आंख में पली है,
लाल लाल पइया हिनकर जैसे कली है ।
कहवा से लयवा दुल्हा फुलवा के क्यारी ॥
बता द हमरा...।

फूलवा लोढ़न सीता कहमा जईंहें,
कहमां अवध में गौरी पूजैहें ।
कहमां सुनयना सन पयब महतारी,
बता द हमरा ....।

यह मिठास का वातावरण बहुत दिनों तक बना रहा मिथिला में अपने पहुना का बड़ा मान-सम्मान किया जाता है । इस तरह बहुत दिन गुजर गये । एक दिन राजा दशरथ ने राम को कहा कि सीता की विदाई का समय आ गया है । राम तुम जाकर महाराज

जनक और महारानी सुनयना से बिदाई के लिए अनुरोध करो । राम रंगमहल में जाते हैं और माता सुनयना से विदाई के लिए अनुरोध करते हैं । यह बात जब सखियाँ सुनती हैं तो दौड़ती हुई राम के पास जाकर कहने लगीं-

गीत

विदा मांग कर तुम दुखाते हो मन को,
कभी सोचा, क्या होगा इस तन को ।
तुम मेरे प्राण जो हैं लिये जाते हो,
इस तन में एक, टीस दिये जाते हो ॥

तुमसे कोई प्रीत न थी रीति वश आये हो,
बहना के कारण, मेरे मन में समाये हो ।
तुम होगे जगत् पति, मुझे क्या लेना देना है
दुल्हा बन आये तो यह रूप न कभी भुलाना ॥

तुमसे लगी है प्रीत, उन्हें निभाना पड़ेगा,
अपना बनाये हो तो, चरणों में बिठाना पड़ेगा ।
प्रेम भाव मिथिला के, अवध में नहीं पाओगे,
मधुर गीत मिथिला के, तुम न कभी भुल पाओगे ॥

कहते हो द्वापर में रास तुम रचाओगे,
मिथिला की होली से तुम चुक जाओगे ।
मीठ-मीठ गारी हमर फिर न सुन पाओगे,
पता नहीं किस जनम में फिर तुम मिल पाओगे ॥

सखियों का प्रेम देखकर श्रीराम विभोर हो गये । लेकिन यह तो संसार का नियम है कि विवाह के बाद विदाई भी आवश्यक है । जब माता सुनयना को यह निश्चय हो गया कि सीता को विदा करना पड़ेगा, तो माता ने अपनी बेटी सीता को गृहस्थधर्म के पालन का उपदेश दिया। प्रत्येक माँ को सुनयना की तरह अपनी बेटी को परिवार धर्म की शिक्षा देनी चाहिए । क्योंकि अब तक बेटी, माँ-बाप के सहारे नैहर में पल रही थी । अब ससुराल जाना है, तो वहाँ के कर्त्तव्य की शिक्षा देनी चाहिए । आज इस शिक्षा का अभाव हो गया है जिस कारण परिवार टूट रहा है । इसी शिक्षा के अभाव में लड़कियां जब ससुराल जाती हैं तो उसे कुछ पता नहीं होता कि सास-ससुर, देवर-देवरानी के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है । इसी अज्ञान के कारण भूल से परिवार में कलह पैदा हो जाता है और पति-पत्नी का सम्बन्ध खराब हो जाता है । माँ की शिक्षा के अभाव में ससुराल में बेटी का जीवन भी तबाह हो जाता है ।

रामचरितमानस, हमारा **"आदर्श ग्रन्थ"** है । माता सुनयना की तरह हम सबों को भी अपनी बेटियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा देनी चाहिए । आज ऐसी शिक्षा की काफी आवश्यकता है । सुनयना ने अपनी बेटी को जो शिक्षा दी, उसे थोड़े शब्दों में मैंने बांधने का प्रयास किया है । आइए, सुनयना की ओर से हम लोग भी इस गीत को गायें । यहाँ गीत तो उपदेश देने का एक माध्यम है । हमें इस तरह का उपदेश अपनी बेटियों को अवश्य देना चाहिए, ताकि हमारी लाडली बेटी का वैवाहिक जीवन सुखमय हो सके ।

गीत

मातु सुनयना ने सिय को बताया,
जग की रीत बेटी धन है पराया ।
सास ससुर की सेवा करिहों,
पति व्रत धर्म ध्यान से करिहों ।
ये दुनिया है बहुत छलावा ॥

पल-पल पांव सोच के धरिहों,
कुल की लाज बचा के रहिहों ।
नारी मुक्ति का एक सहारा ॥

परमपिता के पग अनुसरिहों,
स्नेह, शील, वात्सल्य सुमंगल ।
समझ बूझ के तू पग धरिहों ॥

तन से मन से और हृदय से,
देव सुलभ कृत करिहों ।
जन्म तुम्हारा जन हित खातिर,
सीता जन्म कृतार्थ करिहों ॥

माता सुनयना ने अपनी बेटी को घर-परिवार के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया और सीता को मानसिक रूप से ससुराल में रहकर धर्म का पालन करने के लिए तैयार किया । आज हमारे समाज में ऐसी ही माता की आवश्यकता है जो अपनी बेटी को यह समझा सके कि नये परिवार में जाकर उस परिवार की मर्यादा का पालन कैसे करें और परिवार को कैसे जोड़कर रखें । एक स्त्री चाहे तो परिवार को जोड़ भी सकती है और गलत व्यवहार करके परिवार को तोड़ भी सकती है । परिवार को चलाना स्त्री के हाथों में ही होता है । आज परिवार टूट रहे हैं क्योंकि उस परिवार में मर्यादा, नैतिकता और संस्कार का बंधन नहीं दिखता है । सभी परिवार के माता-पिता दुःखी हैं । क्योंकि हमारे समाज में बहू-बेटी को परिवार धर्म की कोई शिक्षा नहीं दी गई है । प्रत्येक व्यक्ति पढ़ी लिखी लड़की को अपनी बहू बनाना चाहते हैं। लेकिन इस **"पढ़ी-लिखी"** में परिवार धर्म है या नहीं, उसे जीवन जीने की विधि का ज्ञान है या नहीं, उस अबोध लड़की को परिवार के प्रति कर्त्तव्य का बोध कराया गया है या नहीं, इसकी चिन्ता कोई नहीं करता ।

जबकि लड़की को विधिवत् परिवार चलाने का पूर्ण प्रशिक्षण माता-पिता अथवा अभिभावक के द्वारा दिया जाना चाहिए। माता सुनयना ने अपनी बेटी सीता को वैसी ही शिक्षा दी। अब सीता की विदाई का समय आ गया। जब यह खबर नगर में फैली तो सभी लोग रोने लगे। बेटी की बिदाई का दारुण दुःख सह पाना सम्भव नहीं है। **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** में महर्षि कण्व जब शकुन्तला को विदा करते हैं तो उस समय वे भी रो रहे थे।

वे कहते हैं, **"जब मेरे समान गृह-त्यागी ऋषि, पोसी हुई बेटी के लिए इतना दुखी हो सकता है, तो गृहस्थ लोग अपनी बेटी की विदाई कैसे करते होंगे।"** सचमुच अपने कलेजे के टुकड़े समान बेटी को विदा करना बड़ा कठिन काम है। सीता की मिथिला से विदाई हो रही है। ऐसी दुःख की घड़ी मिथिला वालों ने नहीं देखी थी। बेटी की विदाई के समय आज भी मिथिला के लोग आंखों में आंसू लेकर विदाई का गीत गाते हैं, जिसे वहाँ **"समधावन"** कहा जाता है। मैंने उसी भाव को इस गीत में बांधा है कि सीता के वियोग में जनकपुर की क्या हालत हो गयी है।

समधावन

सीता के विदाई सुनी, रोए सब सखिया,
कइसे बचिहे हमर परान।
संग-संग खेलली, संग के पिरीतिया,
कइसे बचिहें माई के जान॥

नदिया के पानी सुखल, गछवा के पतवा,
गइया के दूध भेल विरान।
बगिया के फूल सुखल, रोयेला हिरिणिया।
रोई-रोई सुगवा देवे जान॥

कइसन पिरीतिया बाबा, कइसे भेजबा डोलिया,
बेटी के विदाई कइसन शान ।
केहन विधान बाबा, फाटल जाले छतिया,
कइसे कइला बेटी कन्यादान ।।

फूल सन कुमारी सीता, कइसे बसिहे देशवा,
मिथिला के कैसे छुटि ध्यान ।
कर जोड़ी बिनती करूं, बाबा हो जनक रइया,
हम सब के डोली करु दान ।।

तत्पश्चात् मिथिला के लोग रोते-रोते अपनी बेटी को विदा कर रहे है । विदाई के समय अपनी बेटी और पहुना को लोग विभिन्न प्रकार की वस्तु देकर विदा करते हैं । परंपरा है, कि बेटी नये घर में जा रही है, वहाँ उसे किसी प्रकार का कोई अभाव न हो, इसलिए दान-दहेज भी दिया जाता है । आजकल तो दहेज की प्रथा ने हमारे समाज को कलंकित कर दिया है । इस अभिशाप के कारण हजारों परिवार उजड़ रहे हैं । इस दहेज नामक राक्षस ने कितनों को निगल लिया । सीता को भी जनक ने काफी उपहार दिया । लेकिन दशरथ ने जनक का शोषण नहीं किया । जो कुछ भी दिया वह प्रेम का उपहार था । ऐसे में ही परिवार में मित्रता रहती है ।

सीता की विदाई के समय मिथिला में **"खोईछा"** देने की परंपरा है । खोईछा में चावल, दूब, दही, हल्दी और कुछ द्रव्य दिया जाता है । लड़की को खाली हाथ कभी विदा नहीं किया जाता । इस समय मिथिला की महिलाएं एक खोईछा गीत गाती है । जो भोजपुरी में लिखा गया है । भोजपुरी मुझे बहुत प्रिय है । क्योंकि इसी भोजपुरी के कारण देश और विदेश में मेरे गीतों को काफी लोकप्रियता मिली है । इस गीत में कई ऐसे शब्द हैं जो सामान्य प्रचलन में नहीं है, लेकिन भोजपुरी क्षेत्रों में बोले जाते हैं ।

गीत

ले ले बबुनी अपना अचरा में चाउर,
इ घरवा ना भुलिह ई घर बा राउर ।
ले ले बबुनी अपना...।।

हल्दी के टूसा दूबी और चाउर,
कैसे तू धरबू बबुनी धरती पर पाउर ।
ले ले बबुनी अपना...।।

खोइछा में देली हम मोतीअन के हार,
तइयो संतोष नइखे कितना दु आऊर ।
ले ले बबुनी अपना...।।

हम त अनुरोध करब रूकती दिन चार,
कैसे भुलायब हम रूपवा तोहार ।
ले ले बबुनी अपना...।।

अंखियां में लोर भरल मनमा भेल माहुर,
कइसन पिरितिया तोहार कर देला बाउर ।
ले ले बबुनी अपना...।।

लक्का कबूतर हम भेजब दुआर,
अपन संदेशवा तू दिह बिचार।
ले ले बबुनी अपना...।।

जनकपुर के लोग आंसू भरी आंखो से महाराज दशरथ एवं राम सभी भाइयों को विदा करते हैं । राजा दशरथ, जनकजी से गले मिल कर विदा होते हैं और पूरी बाराती अवध के लिए प्रस्थान कर जाती है ।

अवध में राम-सीता का स्वागत

जनकपुर से बाराती अवध के लिए प्रस्थान कर चुकी है । यह सूचना जब अवध के नर-नारी को मिली तो अयोध्या को तोरणद्वार, बन्दनवार एवं फूलों से सजाया जाने लगा । सबों के चेहरे पर फूलों सी मुस्कान फैली है । सभी एक दूसरे को कह रहे हैं **"आज हमारे राम आ रहे हैं।"**

चौ०

पुर जन आवत अकनि बाराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता।
निज निज सुंदर सदन सँवारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥

दो०

बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि ।
सूर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि ॥

चौ०

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा ॥
कौसल्यादि राम महतारीं । प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं ॥

पूरी अयोध्या में उमंग और उत्साह से लोग नाच रहे हैं, गीत गा रहे हैं । स्त्री-पुरुष अपने तन की सूध भूल गए हैं । अयोध्या में ऐसा मनोरम दृश्य कभी देखने को नहीं मिला। राम और सीता, लखन और ऊर्मिला, भरत और माण्डवी, शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति को बारी-बारी से माताएं स्वागत कर रही है । नगर के लोग जो अवध में रह गए थे, वे बाराती में गए अपने भाई-बन्धुओं से गले मिल रहे हैं । रंग-गुलाल उड़ा रहे हैं । इसी बीच चारो भाई अपनी बहूओं के साथ महल में प्रवेश करते हैं ।

राजमहल में ज्योंही चारो भाई, अपनी-अपनी दुल्हनों के साथ प्रवेश करते हैं, तो हजार मंगल कलश में चावल, हल्दी, दधि, जो इन कलशों में पहले से रखा हुआ था, उन्हें स्पर्श करते हुए आगे बढ़ते है। इन कलशों में रखे रत्न याचकों को बाँट दिया जा रहा है। सामने अवध की बालाएं हाथ में आरती लेकर चारो भाई और वधूओं का गान गाती हुई स्वागत कर रही है।

तो आइए हम भी अपने भाव की आरती लेकर इन बालाओं के पीछे खड़े हो जाएं और मंगल गान गाएं।

गीत

गाओ सुमंगल गीत, शुभ दिन आयो है।
आज अवध में राम, यह दिन लायो है॥
जनक राज की राजदुलारी, बहू बन घर में आयो है।
शुभ लक्ष्मी बन आज अवध में, सबके मन हरषायो है॥
गाओ सुमंगल गीत, शुभ दिन आयो है ....॥
कंचनथार में आरती सजाओ, बन्दनवार घर-घर में लगाओ।
देव वधू सब फूल बरसाओ, गाओ सुमंगल गीत।
शुभ दिन आयो है ....॥
सीता राम है आंख के तारे, राम जगत के प्राण के प्यारे।
घर घर दीप जलाओ, शुभ दिन आयो है ....॥
त्रसित प्राण अरू नयन हमारे, कैसे देखे राज़ दुलारे।
अब न अधिक तड़पाओ, शुभ दिन आयो है॥
गाओ सुमंगल गीत, शुभ दिन आयो है ....॥

महल में प्रवेश करने के उपरान्त सभी भाइयों ने देवता और अपने पूर्वजों की पूजा की। फिर महाराज दशरथ ने अपने पुत्रों और वधूओं को वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद दिया । माता कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा अपने पुत्र और पुत्र-वधू का स्वागत कर रही हैं । अवध के घर-घर में बधाईयों का उद्घोष हो रहा है । मंगल-गीत गाए जा रहे हैं।

उसी अवसर पर एक साधु वेशधारी संत आते हैं और महल के महोत्सव को देखकर एक बड़ा ही मोहक गीत गाते हैं। आइए, हम सब मिलकर संत बाबा के साथ इस गीत को गावें-

गीत

अवध में घर-घर बाजे बधाई

मातु कौशिल्या परिछन आवे, सखि सब मंगल गाई,
कनक थाल में आरती सजावे, पुष्पकमल बरसाई ।
सुर सनकादि सुमंगल गावे, शंकर डमरू बजाई,
भरत लखन के मातु भाल पर मंगल तिलक लगाई ।

तरूपल्लव, सर खिले कमलदल, मलय सुगन्ध बहाई,
ग्रामवधू रस भरे नृत्य कर, झर-झर बहे तरूणाई ।
कोयल मोर पपिहरा नाचे, सुरगण देख सिहाई,
ढोल बजावे भक्त सुदर्शन, सबके मन हरषाई ।

उसके बाद सभी लोग विश्राम करने चले गए । राम भाइयों सहित जब कोहबर में चले गये तो बाहर अवध की नारियां मंगल गान करती रहीं-

चौ०

घर घर करहिं जागरन नारीं । देहिं परसपर मंगल गारीं ॥

इस तरह रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रातःकाल चारो भाई जगे । पूजा-अर्चना के बाद गुरु वशिष्ट का आशीर्वाद लिया । फिर विश्वामित्र के पास गए, उनका आशीर्वाद

लिया। क्योंकि यही भारत की परंपरा है कि प्रातःकाल गुरुजनों से आशीर्वाद लेने पर जीवन में हमेशा शुभ फल मिलता है। गृहस्थ जीवन में जो लोग रहते हैं, उन्हें अपने सोने के कमरे में गुरुजनों का चित्र लगाना चाहिए। ताकि उनका चरित्र और आचरण हमेशा पवित्र बना रहे। गुरु के चित्र के सामने मन में कभी भी कुविचार नहीं आता है। इसलिए प्रत्येक परिवार में गुरु का स्थान सबसे ऊंचा माना जाता है। राम ने उसी मर्यादा का पालन किया है। उसके बाद विश्वामित्र एवं अन्य सभी गुरुजन अपने-अपने आश्रम लौट गए-

चौ0

आये ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥

इस तरह से बालकाण्ड में हमारे प्रभु राम का विवाह संपन्न हुआ। भारत में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता है। विवाह एक पूजा है, जहाँ दो आत्मा आपस में मिलती है और तीसरी आत्मा को प्रकट करती है। हमारे देश में विवाह कोई मनोरंजन नहीं है, यह मंत्रों की प्रतिज्ञाएं हैं। वर और वधू दोनों अलग-अलग एक दूसरे को साथ देने की प्रतिज्ञा करते है, शपथ लेते हैं कि हम सदैव एक दूसरे का साथ देंगे, कोई छल-कपट नहीं करेंगे। आज से दोनों एक बन कर सुखद परिवार का निर्माण करेंगे और नैतिक जीवन जीते हुए, धर्म और मर्यादा का पालन करते हुए जीवन के आनन्द को भोगेंगे।

ऐसा शपथ दोनों करते हैं। जो लोग इन शपथों को याद रखते हैं उनके जीवन में हमेशा सुख-शांति बनी रहती है और ऐसे ही लोगों के घर में सुख देने वाला पुत्र पैदा होता है। क्योंकि नैतिक माता-पिता के घर में ही नैतिक संतान पैदा होती है। इसीलिए विवाह का धार्मिक महत्त्व भारत में है।

सो0

सीय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहुँ मंगलायतन राम जसु॥



जीवन का महाकाव्य

श्रीराम का हमारे जीवन में अवतरण

जीवन में राम उतर जाये तो, और द्वार पर क्यों जाएं ।
हर सांस में राम का कीर्तन हो तो, और का गान क्यों गाएं ॥

राम परमात्मा हैं और परमात्मा का कोई रूप नहीं होता । इसीलिए शास्त्रों में ईश्वर को **"परमात्मतत्त्व"** कहा जाता है । **"रमन्ते योगिनः यस्मिन् सः रामः"** जो हमारे जीवन में रमण करे, प्राणरूप में संचरण करे, उसे राम कहते हैं ।

रामकथा को मैं जीवनकथा इसलिए कहता हूँ कि इस कथा में सम्पूर्ण जीवन का दर्शन होता है । रामकथा अथवा रामायण हम इसलिए पढ़ते हैं कि हमारे जीवन में प्रभु की भक्ति उतर जाये और हमारा जीवन आध्यात्मिक बन जाय । प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख और शान्ति चाहता है । इसी सुख और शान्ति के लिए हम विभिन्न प्रकार की पूजा-अर्चना करते हैं। पूजा का तो अर्थ ही है कि जिसके माध्यम से परमात्मा को प्रसन्न करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाय, हमारा वर्तमान जीवन सुखपूर्ण हो जाय और भावी जीवन भी परमात्मा के आशीर्वाद से सुखद बन जाय ।

अस्तु, हमारा वर्तमान जीवन शास्त्रों के अनुसार प्रायः सौ वर्षों का माना जाता है, इसलिए वेदों में प्रार्थना की गई है कि हमारा जीवन सौ वर्षों का हो **"कुर्वन्नवेह कर्माणि, जिजीविषेत् शतं समाः ।"**

पृथ्वी पर हमें यही जीवन प्राप्त है । लेकिन पृथ्वी पर आने के पूर्व और पृथ्वी से जाने के पश्चात् का भी हमारा जीवन है, जो लाखों वर्षों का होता है। आध्यात्मिक वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर जीव के उत्पन्न होने के पूर्व भी एक जीवन है, जो अनन्तकाल का है । पृथ्वी से जाने के पश्चात् भी अनन्तकाल का जीवन है । जैसे जीव

थोड़े दिनों के लिए व्यक्त हो जाता है । इसीलिए उसे व्यक्ति कहा जाता है । यह क्रम उसी प्रकार है जैसे पानी का बुलबुला थोड़ी देर के लिए निकलता है और फिर नदी में विलीन हो जाता है । इस प्रकार यह क्रमबद्धता चलती रहती है । हमारा शरीर स्थूलरूप में नहीं रहता है, लेकिन सूक्ष्म शरीर क्रमबद्ध होकर चलता रहता है । इसलिए हमारे जीवन के लाखों वर्षों का इतिहास मिलता है ।

इसीलिए जब कभी कोई ऐसा पूछता है कि आप कितने वर्षों के हैं तो, उत्तर दिया जाता है कि पचास या सत्तर वर्ष । लेकिन यह सही उत्तर नहीं है । पचास या सत्तर वर्ष का आपका शरीर है, आप नहीं । आप तो लाखों वर्षों से यात्रा पर हैं । आपका शरीर बदलता जा रहा है, जिसका गवाह आपका सूक्ष्म शरीर है । जीव को सूक्ष्म शरीर अथवा कारण शरीर से मुक्ति तभी मिलती है, जब उसे मोक्ष मिल जाता है । तत्पश्चात् जीव का अस्तित्व नष्ट हो जाता है । इसीलिए हम भक्ति, पूजा, अर्चना, वन्दना, ध्यान, ज्ञान में उतरते हैं कि हमारे जीवन में संसार की जो विकृति प्रवेश कर गई है, उन विकृतियों को पूजा-अर्चना करके प्रभु के आशीर्वाद से हम नष्ट करें और अपने जीवन को दिव्य बनायें।

दुःख, सुख, रोग, चिन्ता यह सब जीवन में अकस्मात् उत्पन्न होनेवाली विकृतियाँ हैं । इन विकृतियों को हमने स्वतः अपने जीवन में जोड़ लिया है । परमात्मा ने किसी के जीवन में दुःख, रोग नहीं दिया, यह सब मनुष्य स्वयं अपने जीवन में जोड़ लेता है । इन रोगों और दुःखों के लिए वह स्वयं जिम्मेवार है । क्योंकि वह जीव है और संसार में रहकर उसे विकृतियों में रहना, बुराईयों में जीना अच्छा लगने लगता है और बुराई में जीते-जीते वह स्वयं बुराई बन जाता है ।

इस प्रकार वह अपनी ही बुराई के विषदन्त से अपने ही शरीर को क्षत-विक्षत कर लहू-लुहान कर लेता है एवं उसके दर्द से कराहने लगता है । जब मनुष्य अपने ही द्वारा निर्मित बुराईयों से बुरी तरह टूट जाता है, तो वह उससे मुक्ति के लिए छटपटाने लगता है।

क्योंकि कोई भी बुरा आदमी अथवा पाप करने वाला एक न एक दिन पश्चाताप करता ही है । मनुष्य मनोवेग के कारण कोई गलत काम कर लेता है, काम, क्रोध, हिंसा के वशीभूत होकर कोई भूल कर लेता है और जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता है । कोई पाप कर्म या भूल मनुष्य स्थायी रूप से नहीं करता, वह मन के वेग के कारण करता है और जब वेग समाप्त हो जाता है तो पश्चाताप करने लगता है । इसीलिए हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि **"कामवासना के पश्चात् और श्मशान के दृश्य देखने के पश्चात् जो मनोवृत्ति मनुष्य की होती है, वह भाव अगर हमेशा रह जाए, तो मनुष्य का जीवन दिव्य बन जाए ।"**

मनुष्य स्वयं में निष्कपट, सरल और स्वस्थ जीव है । कोई भी मनुष्य बुरा होता नहीं है, वह बुरा बन जाता है । बुरा बनना उसके स्वयं के हाथ की बात है । कोई किसी को बुरा बनाता नहीं, वह स्वयं बनता है ।

राम तत्त्वरूप में प्रत्येक जीव में प्राण बनकर संचरण कर रहे हैं –

भूतल में जो प्राणतत्त्व है, वही प्राण है राम ।
सांस मार्ग से उसी राम तक, पहुँच बनूं निष्काम ।।
दिव्य लोक से दिव्य रूप में राम जगत में आये ।
चेतन मन को करो अचेतन तब राम समझ में आये ।।

बच्चा जब गिरता है, तो उसे चोट नहीं लगती, लेकिन जब बुजुर्ग गिरता है, तो हाथ–पाँव तोड़ लेता है । क्योंकि बुजुर्ग होश में रहता है और बच्चा बेहोशी में रहता है । बेहोशी में सरलता है, होश में सरलता नहीं है । इसीलिए मीरा, कबीर, सूर, रविदास को परमात्मा मिला, लेकिन तर्क–कुतर्क करने वालों को परमात्मा नहीं मिला । इसीलिए–

होशवालों को खबर क्या, बेखुदी क्या चीज है?

ध्यातव्य है कि परमात्मा बेहोशी में ही मिलता है । यह भी ध्यान रहे कि–

जब भाव समर्पण मन से हो, वहाँ तर्क-विवेक नहीं होता।
आस्था का जहाँ विसर्जन हो, वहाँ खण्डित विश्वास नहीं होता॥

इसलिए राम को अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है। इसी दृष्टि से मैंने रामकथा को जीवन का महाकाव्य कहा है। जहाँ हमारे जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन हो और उन घटनाओं के आलोक में हमें उन विषम परिस्थितियों से निकलने का मार्ग बताये गये हों।

जब गोस्वामीजी कहते हैं कि मेरे जैसा पापकर्म में लीन व्यक्ति को इस रामकथा ने दिव्य बना दिया, मेरे सारे विकार नष्ट हो गये और मैं सात्विक व्यक्ति बन गया तो हमलोग इस राम के चरित्र को अपनाकर रोग-शोक से मुक्त क्यों नहीं हो सकते हैं?

मैं यह नहीं कहता कि इस रामकथा के केवल पाठ करने से हमें परमात्मा मिल जाए। परमात्मा तो हमें तब मिलेगा, जब हम रामकथा के पात्रों के अनुरूप आचरण करें। इस रामकथा से हमारा आचरण, विचार बदल जाये और हम नैतिक बन जायें, जब हम नैतिक बन जायेंगे तो परमात्मा को हमारे जीवन में उतरना ही पड़ेगा।

प्रश्न है कि पहले हम अपने जीवन को सुगम और सरल बना लें। ज्योंही सुगमता हमारे जीवन में आ जाएगी, हमारा विस्तार हो जायेगा। अभी हम अपने ही द्वारा बनाये गये काम, क्रोध, लोभ आदि कुविचारों के प्रकोष्ठ में बन्द हैं। इस बन्द कमरे की खिड़कियों को, द्वार आदि को पहले खोलना पड़ेगा। तभी हम बाहर के वातावरण से जुड़ सकेंगे। परमात्मा बाहर बैठा हमारा इन्तजार कर रहा है और हम मंदिरों को चारों ओर से बन्द करके परमात्मा को खोज रहे हैं। यही कारण है कि हम परमात्मा से मिल नहीं पाते।

बालकाण्ड में हमारा विराट ब्रह्म बालक बनकर स्वरूप ग्रहण करता है। यह प्रतीक है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म हमारी पुकार सुनकर हमारे घर आ सकता है। परमात्मा हमसे बात कर सकता है। यह साधारण बात नहीं है। लेकिन इसके लिए हमें

आस्थावान् बनना होगा । हमें ऐसी पुकार लगानी होगी, जिससे परमात्मा को मेरी पुकार पर आना पड़े । इसी आस्था के विरूद्ध मन में शंका पैदा होती है और दृढ़ता के विरूद्ध संशय पैदा होता है । शंका और संशय में यही अन्तर है ।

इस रामकथा के माध्यम से मैं स्वयं को राम की भक्ति के अनुरूप ढालकर जीना चाहता हूँ, ताकि राम क्षीरसागर अथवा स्वर्ग से उतरकर हमारे घरों में आये । उनके आने से हमारे घर, हमारे समाज इन सबों का स्वर्गीकरण हो जाएगा । आकाश लोक का स्वर्ग जिस दिन धरती पर उतर जायेगा, उस दिन हमारे देश का स्वर्गीकरण हो जाएगा । महाराज दशरथ को क्षीरसागर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी । राम के रूप में क्षीरसाग़र को घरों में आना पड़ा । यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है । यदि हम इसी धरती को स्वर्ग, क्षीरसागर अथवा साकेत बनाना चाहते हैं तो राम की भक्ति में डूबनी पड़ेगी । इस दृष्टि से राम के अवतरण का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । प्रभु के अवतरण से हमारा जीवन स्वर्ग बन जाय, आनन्दमय और सुखमय बन जाय, यही तो राम के अवतरण का अर्थ है । आज के अभावग्रस्त, दुःखी, अशान्त, रोग-शोक से पीड़ित व्यक्ति के जीवन में अगर सुख-समृद्धि और शान्ति आ जाय, तो हमारे जीवन की इससे बड़ी क्या उपलब्धि हो सकती है ?

राम हमारे आँगन में बालरूप में खेल रहे हैं, इससे महाराज दशरथ को अपार सुख मिल रहा है । इसी सुख की कामना तो प्रत्येक मनुष्य करता है । महाराज दशरथ तो चक्रवर्ती सम्राट् थे । उन्हें संसार का सब सुख प्राप्त था, लेकिन उन्हें मन का सुख प्राप्त नहीं था, जिस सुख को प्रत्येक मनुष्य पाना चाहता है ।

स्पष्ट है कि धन और वैभव से जिस क्षणिक सुख का बोध होता है, वह शरीर का सुख है, इससे मन को सुख नहीं मिलता, अगर मिलता तो महाराज दशरथ के मन में अशान्ति क्यों रहती? मन का कोई कोना खाली-खाली क्यों रहता? तब उन्होंने परमात्मा को पुकारा ।

ठीक उसी प्रकार जब हमारे मन के किसी कोने में खालीपन, उदासी, चिन्ता बैठी रहती है तो, हम भी महाराज दशरथ की तरह राम को पुकारते हैं और राम स्वयं हमारे घरों में आकर अपार सुख-शान्ति से हमें भर देते हैं । आज हम प्रभु श्रीराम के दर्शनों के लिए मंदिर में जाते हैं, उनकी पूजा अर्चना करते हैं और फिर उन्हें नमस्कार कर किवाड़ बन्द करके हम पुनः अपने संसार में लौट आते हैं ।

दरअसल, राम का दर्शन हमारी दैनिक दिनचर्या नहीं है । हम कब तक राम के पास उनके मंदिरों में जाकर उनका दर्शन करते रहें । राम जब स्वयं हमारे पास हमारे घरों में आने को उत्सुक हैं तो, हम सबों ने उन्हें मंदिरों में क्यों कैद कर रखा है?आज हमारे समाज में उसी राम की आवश्यकता है जो, मंदिरों से निकलकर हमारे घरों तक आयें। तभी हम अपने समाज और देश में रामराज्य की स्थापना कर सकते हैं जहाँ सभी लोग प्रेम, समभाव और सद्भावना से रह सकें । रामचरितमानस में बालकाण्ड का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसी काण्ड में राम का अवतरण हुआ है । बालरूप में श्रीराम किलकारी मारते हुए आंगन में खेलते हैं । इसका अर्थ है- मनुष्य अगर अहंकार छोड़कर भक्तिपूर्वक परमात्मा को पुकारता है तो, परमात्मा स्वयं उपस्थित होकर हमारे घरों से रोग, शोक, संताप को नष्ट करते हैं और हमें सुख प्रदान करते हैं ।

महाराज दशरथ जब तक धन-वैभव और अपने साम्राज्य के विस्तार में लगे रहे, तब तक उन्हें राम का दर्शन नहीं हुआ । लेकिन जब वे थक गये, तब उन्होंने श्रीराम को पुकारा । मनुष्य संसार में जीतने का प्रयास करता है, लेकिन वह स्वयं से हार जाता है । जब तक संसार पर भरोसा रहता है, तब तक वह हाथ-पाँव मारता रहता है ।

इस प्रयास में उसे संसार तो मिल जाता है, लेकिन उसे प्रभु की प्राप्ति नहीं होती । मन की शान्ति और सुख से वह वंचित रह जाता है । जब वह परमात्मा के सामने आत्म-समर्पण कर देता है, तभी उसे राम प्राप्त होता है। बालकाण्ड परमात्मा के अभ्युदय का काल है । प्रत्येक व्यक्ति का जीवन बालकाण्ड से ही शुरू होता है । यहीं से जीवन

प्रारम्भ होता है। मानस के बालकाण्ड और हमारे जीवन के बालकाण्ड का प्रारम्भ एक ही जैसा है । लेकिन मानस के बालकाण्ड के श्रीराम मनुष्य के समान आचरण करते हुए अपने जीवन के अगले सोपान पर पाँव रखते हैं । वे परमात्मा बनकर बचपन नहीं बिताते । मनुष्य की तरह जीवन जीते हैं । वे प्रत्येक मनुष्य की ओर से जीवन जीने की विधि का निर्वाह करते हुए समाज में आदर्श स्थापित करते हैं कि नैतिक मूल्यों का पालन करते हुए अगर मनुष्य आचरण करता है, तो वह एक आदर्श पुत्र, पति, पिता और परिवार अथवा राज्य का मुखिया बनता है । प्रत्येक मनुष्य राम के समान बेटा चाहता है, लेकिन स्वयं पिता के दायित्व का निर्वाह नहीं करता ।

राम का चरित्र एक आदर्श चरित्र है । पूरी रामकथा में जिस प्रकार राम खड़े दिखते हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन में भी अगर नैतिकता आती है, सदाचार और सरलता आती है तो हमारे जीवन में भी सर्वत्र राम ही दिखाई देने लगेंगे और जिस दिन हमारे जीवन में राम उतर जाएगा, उस दिन मन की समस्त विषाक्त कामनाऐं नष्ट हो जायेंगी और हमारे जीवन का अर्थ पूरा हो जाएगा ।



श्रीराम की सरलता

श्रीराम कथा के पारायण के समय एक बात पर बड़ा आश्चर्य होता है कि जिस राम को **"अगम-निगम मुनि पार न पावे"**, जिस राम को वेद **नेति** कहता है, जो राम अनन्त है, अनादि है, अगम और निर्गुण है, वह राम बालरूप में महाराज दशरथ के आंगन में कभी परछाई पकड़ता है, तो कभी चन्द्रमा को हाथ से पकड़ना चाहता है । इसका अर्थ है कि राम मनुष्य रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं । श्रीराम को क्रीड़ा करते देख ब्रह्मा और महेश आश्चर्य में पड़े हुए हैं ।

इसका प्रधान कारण है कि राम अत्यन्त ही सरल और सुगम है, कहीं कोई प्रदर्शन या बनावट नहीं है । केवल सुगमता है । क्योंकि जो सुगम होता है, उसे ही प्राप्त किया जा सकता है । जो व्यक्ति परमात्मा के सरल स्वरूप को पाना चाहता है, उसे परमात्मा का सरल स्वरूप ही प्राप्त होता है और जो वेदान्त की पद्धति से परमात्मा को पाना चाहता है, उसके लिए वह और भी दुरूह बन जाता है । सूरदास ने परमात्मा के बालरूप को ही स्वीकार किया, क्योंकि सूरदास को परमात्मा का बालरूप ही पसन्द था । इसलिए सूरदास के कृष्ण कभी बड़े नहीं होते । क्योंकि बड़ा-छोटा और बुजुर्ग बनना जीव का धर्म है ।

परमात्मा बड़ा-छोटा नहीं बनता, वह तो केवल परमात्मा होता है । भक्त जिस रूप में परमात्मा को पाना चाहता है, जो रूप उसे अच्छा लगता है, उसी को वह भजता है । सूर का कृष्ण नटखट बालक हैं, माखन चुराता है, गोपियों के साथ रास रचाता है और गीता का कृष्ण जीवन के अत्यंत कठिन तत्त्वों की व्याख्या करता है ।

सूर के कृष्ण को देखकर, गीता के कृष्ण पर भरोसा नहीं होता । माखन चुराने वाला ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे कर सकता है? कबीर का परमात्मा कबीर के लिए प्रियतम है । **"पलकों के चिक डाल के, पिय को लिया रिझाय"** और तुलसी के राम विराट ब्रह्म के लघुरूप मानव हैं और दूसरी ओर जायसी ने अपने

पद्मावत महाकाव्य में परमात्मा को प्रेयसी रूप में चित्रित किया है । इसका अर्थ है, परमात्मा का कोई रूप नहीं है, क्योंकि वह निर्गुण है, अरूप है । जिस भक्त के मन में जैसा भाव आता है, परमात्मा उसी रूप में प्रकट हो जाता है ।

बालकाण्ड में राम का बालरूप सरलता का प्रतीक है । बालक प्रायः सरल होता है, अगर बचपन की सरलता जीवन में स्थायी रूप से रह जाए तो वह किसी भी विकृति के चंगुल में नहीं फंसता ।

यही कारण है कि राम कहीं भी अपनी शक्ति का अधिक प्रयोग नहीं करते । वे शक्तिशाली हैं, लेकिन शक्तिशाली दिखते नहीं । सामान्य मनुष्य की तरह वे आचरण कर रहे हैं । मनुष्य का सबसे बड़ा गुण यही है कि वह सामान्य स्थिति में रहकर परिस्थितियों का मुकाबला करे । राम ने वही आदर्श प्रस्तुत किया । बचपन में माँ को एक क्षण के लिए अपना विराट रूप दिखाते हैं, लेकिन माँ को यह भी कहते हैं- **"यह रहस्य किसी को मत बताना ।"** क्योंकि वे सामान्य मनुष्य बनकर दिव्य आचरण करना चाहते हैं ।

इस महाकाव्य को **"जीवन का महाकाव्य"** इसीलिए कहा गया कि सामान्य लोग भी अपने नैतिक कार्यों के द्वारा समाज में असाधारण बन सकते हैं । वनवास के समय केवट के सामने विनती करना, कोल-भीलों की सहायता से त्रिलोक विजेता रावण को परास्त करना, यह सब चामत्कारिक घटना लगती है, लेकिन यह चमत्कार नहीं है । चमत्कार तो तब होता, जब वे हाथ उठाते और समुद्र में पुल बंध जाता, हाथ उठाते और रावण का नाश हो जाता । लेकिन राम तो मनुष्य हैं, मनुष्य जिस प्रकार अपने परिश्रम और सूझ-बूझ से किसी बड़े काम को पूरा करता है, राम ने वैसा ही किया । अकेला राम और लक्ष्मण इतनी बड़ी सेना लेकर रावण पर आक्रमण करते हैं, यह सब उनके आत्मविश्वास के कारण ही सम्भव हुआ ।

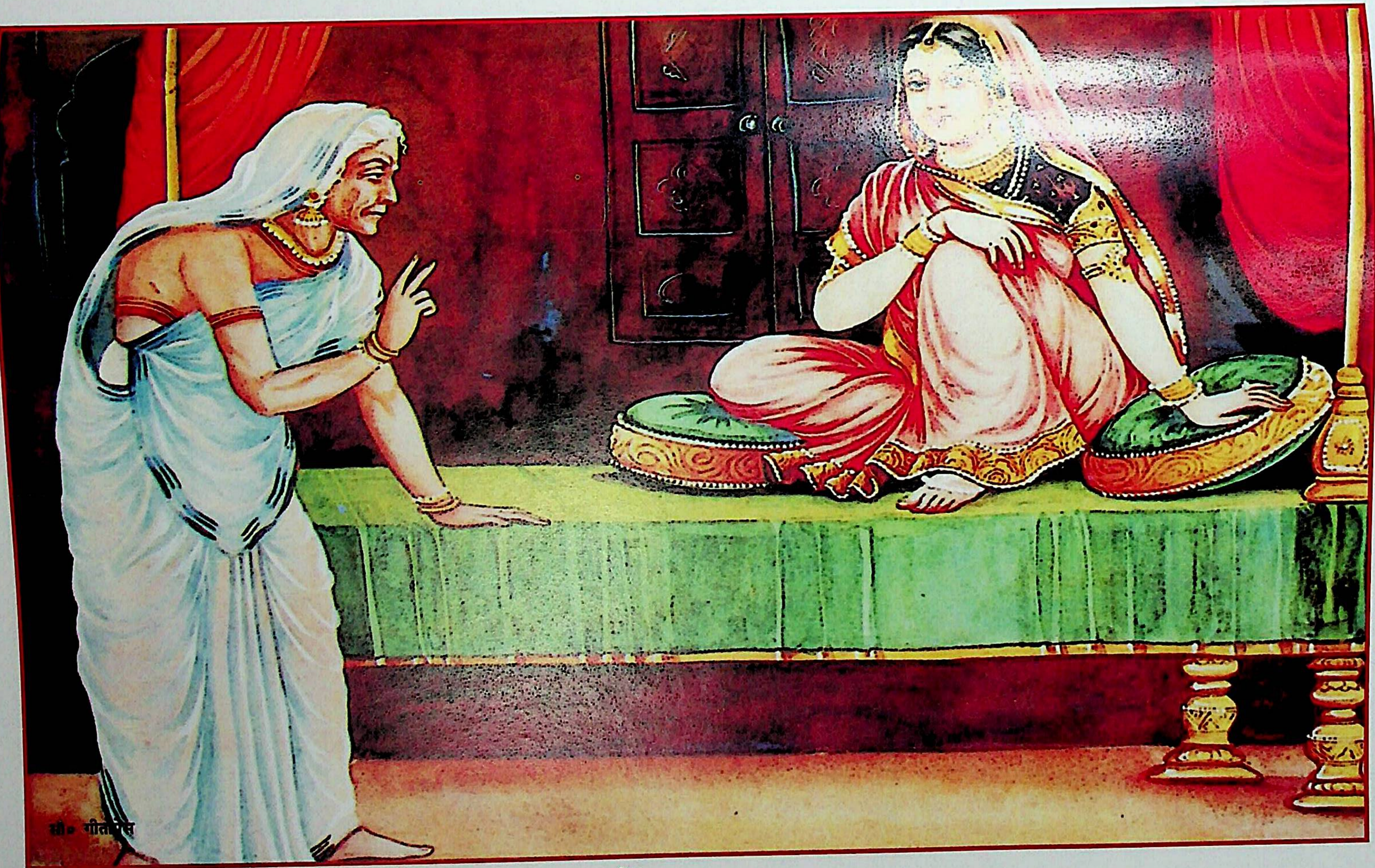
राम संकेत देते हैं कि मनुष्य छोटा नहीं होता, अगर वह सत्य का आचरण करता है और दृढ़निश्चयी है तो, उसके लिए कोई समुद्र बाधा नहीं बन सकता और कोई

त्रिलोक विजेता रावण अपने असंख्य सैनिकों के साथ लड़कर उसे परास्त नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सत्संकल्प करे और अपने लक्ष्य को प्राप्त करे। बालक रूप में राम का जो स्वरूप हम देखते हैं, वही राम का सरल स्वरूप एक दिन रावण का सर्वनाश करता है।

राम केवल दशरथ के पुत्र ही नहीं है, वे प्रतीक हैं शक्ति और सामर्थ्य के। राम की यही सरलता उन्हें शिखर तक ले जाती है। इसी सरलता के कारण राम अपनी यात्रा राजमहल से शुरू करते हैं और कुटिया तक ले जाते हैं। राम ने कुटिया को ही महल बनाने का संकल्प लिया। जिस दिन राजमहल कुटिया के द्वार तक पहुँच जायेगा, उस दिन कोई व्यक्ति दुःखी नहीं रहेगा, कोई भेद-भाव नहीं रहेगा, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच की दीवार ढह जायेगी और देश में रामराज्य की स्थापना हो जाएगी। तभी हम कह सकेंगे कि **"सर्वे भवन्तु सुखिनः।"** शायद इसीलिए हमारे देश के लोग यह गीत गाते हैं-

जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा,
वह भारत देश है मेरा ... ...।

(बालकाण्ड समाप्त)



अयोध्याकाण्ड

श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

अयोध्याकाण्ड

ईशप्रार्थना

भूमण्डले शोभन्ते रामयुक्तचराचराः ।
नमस्करोमि तं रामं सर्वमंगलं कुरु मम ॥

हे राम! इस संसार में जितने भी चर-अचर जीव हैं, सभी में तुम्हारा निवास है । मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ, आप मेरा सर्वमंगल करें ।

भवानीशंकरौ वन्दे सर्वकल्याणकारकौ ।
कालसर्पविनाशाय रक्षां कुरु मे सर्वदा ॥

हे भवानी शंकर! तुम सबों का कल्याण करने वाले हो, मेरे ऊपर जो कालसर्प दोष है, उसे विनष्ट करके मेरी रक्षा करो।

प्रथम सुमिरी गणेश को, जो हैं मंगलमूल ।
अष्टसिद्धि नवनिधि को, सदा करें अनुकूल ॥
सदा भवानी दाहिने, सन्मुख रहें गणेश ।
पांच देव मिली रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥

सबसे पहले भगवान् श्रीगणेश का स्मरण करते हुए रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड को प्रारम्भ कर रहे हैं । कथा प्रारम्भ के पूर्व भगवान् श्रीराम, माता सीता, देवाधिदेव भगवान् भोलेनाथ एवं दृश्य तथा अदृश्य दैवी शक्तियों को प्रणाम कर उन सबों का आशीर्वाद लेते हुए अयोध्याकाण्ड की रामकथा में प्रवेश कर रहा हूँ।

श्रीगणेश सभी देवताओं में अग्रगण्य हैं । इसीलिए किसी भी मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में "**श्रीगणेश**" लिखा जाता है ।

इन दिव्य शक्तियों से आशीर्वाद लेने की बात मैंने इसलिए कही कि आशीर्वाद का हमारे जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । अपने गुरुजन से जब हम आशीर्वाद लेते हैं, तो हमारे जीवन में चार दिव्य शक्तियों की बढ़ोतरी होती है । आशीर्वाद से हमारी आयु बढ़ती है, विद्या बढ़ती है, बल और बुद्धि बढ़ती है । हमारे जीवन में इन दिव्य आशीर्वादों का बड़ा महत्त्व है । प्रत्येक व्यक्ति जीवन में स्वस्थ और सुखी रहना चाहता है । लेकिन हम स्वस्थ और सुखी तब तक नहीं हो सकते, जब तक हमारे ऊपर किसी दिव्यशक्ति का अथवा अपने गुरुजनों का आशीर्वाद न हो । आज हमारे समाज में लोग इसलिए दुखी हैं क्योंकि उन पर किसी का आशीर्वाद नहीं है । वे न तो परमात्मा का आशीर्वाद लेते हैं और न अपने गुरुजनों का । उनके दुःख का यही कारण है । हम परमात्मा राम से अथवा किसी अन्य अवतारों से इसलिए आशीर्वाद लेते हैं कि हमारा जीवन उनके सीधे प्रभाव में रहे । जीवन में कोई अमंगल न हो, दुःख या संकट न आवे । तभी हम सुखी रह सकते हैं । आज हम परमात्मा से धन, पुत्र, ऊँची कुर्सी तो मांग लेते हैं, लेकिन सुख नहीं मांगते । जबकि धन, पुत्र, यश हम इसलिए चाहते हैं कि इनको प्राप्त करके ही हमें सुख प्राप्त होता है । परमात्मा कहते हैं कि अगर तुम्हें सुख चाहिए, तो संसार क्यों मांगते हो? संसार मांगोगे तो तुम्हें संसार ही मिलेगा, सुख नहीं । जबकि यदि तुम सुख मांगोगे, तो तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा । संसार का अर्थ है नश्वरता । नश्वरता में सुख नहीं है, इसलिए परमात्मा से संसार का धन मत मांगो, सुख मांगो । सुख मांगोगे तो शरीर का सुख और मन की शान्ति भी मिलेगी । सुख में सब कुछ आ जाता है –

धन मांगे सुख बिछुड़े, सुख मांगे धन होय ।
कहे सुदर्शन हरि बिना, सब सुख दुर्लभ होय ॥
मन की वृत्ति अनन्त है, कभी न पूरा होय ।
एक मिले औरों चहे, नित-नित नूतन होय ॥

परमात्मा कहते हैं, "तुम मुझसे केवल सुख मांगो, सुख के मिलते ही तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा।" सुखी तो वही व्यक्ति हो सकता है, जो सब कुछ से भरा-पूरा हो। जो केवल धन मांगता है, उसे धन तो मिल जाता है, लेकिन उस धन के भोग से वह वंचित रह जाता है। शास्त्रों में वर्णित है कि-

"कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः"

कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जियो, लेकिन हम सौ वर्षों तक तभी जी सकते हैं, जब हमारे ऊपर परमात्मा का आशीर्वाद रहे। परमात्मा तो हमें आशीर्वाद देना चाहता है, उसका कहना है कि, तुम मुझे प्रणाम करो **''मां नमस्कुरू''** लेकिन हम अहंकार के कारण परमात्मा के सामने न समर्पण करते हैं और न ही सिर झुकाते हैं। परमात्मा कहते हैं कि तुम पहले मेरे पास आओ, मैं तुम्हारे सारे संकट दूर कर दूंगा। **"मामेकं शरणं व्रज"**- मेरी शरण में आ जाओ। लेकिन भक्त कहता है कि पहले मेरा काम कर दो, तब मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। यह लड़ाई अनादिकाल से चल रही है। कहा जाता है कि -

"No one is great without spiritual inspiration"

किसी भी व्यक्ति को सफलता तभी मिलती है, जब उस पर दिव्य शक्ति का प्रभाव पड़े। इसलिए मनुष्य को अगर सुख चाहिए तो उसे श्रीराम का आशीर्वाद लेना ही पड़ेगा। क्योंकि राम और काम में केवल यही अन्तर है कि हमारे शरीर की ऊर्जा जब उर्ध्वगामी होती है तो राम बनती है और निम्नगामी होती है तो काम बन जाती है। जिस व्यक्ति की ऊर्जा (हमारा प्राणतत्त्व), नीचे के मार्ग से बहती रहती है तब उसके शरीर की लालिमा, आयु और उसका इक़बाल निम्न मार्ग से बहकर नष्ट हो जाता है और वह किसी सूखे पेड़ की तरह जीवन भर पछताता रह जाता है। कहते हैं-

जिस तन में राम निवास करे, वहाँ काम कहाँ से आयेगा।
गंगा की धारा में कैसे, पाप कीट बच पायेगा॥
चिन्तन से राम उपजता है, चिन्ता से काम का नाता है।
सत्कर्म से जीवन बढ़ता है, दुष्कर्म जीव को खाता है॥

इसलिए अगर हम जीवन में सुख चाहते हैं, तो नैतिक जीवन जीने का प्रयास करें।

हमारे जीवन में प्राण ऊर्जा का बड़ा महत्त्व है । यह प्राण ऊर्जा हमारे मूलाधार में केन्द्रित रहती है । शरीर में सात केन्द्र होते हैं । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनहद, विशुद्ध, आज्ञाचक्र और सहस्रार । सिद्ध पुरुष मूलाधार की ऊर्जा को सहस्रार तक ले जाते हैं, तभी उन्हें मुक्ति मिलती है ।

बहे निरन्तर अंतरिक्ष से, प्राण तत्त्व का सतत प्रवाह ।
जड़ चेतन व अणु विभु को, देता जीवन भर की चाह ॥
मूलाधार से ज्योति चलकर, स्वाधिष्ठान में जाये ।
मणिपूर से आभा बनकर, अनहद नाद सुनाए ॥
भाव विशुद्ध प्रखर प्रतिभा है, जीवन ज्योति बढ़ाए ।
आज्ञाचक्र विभु का दर्शन, सहस्रार में ब्रह्म बन जाए ॥

इसलिए अपने शरीर को पवित्र रखते हुए नैतिक कर्म करने वाले नर–नारी, दीर्घायु और स्वस्थ रहते हैं । प्रातःकाल एक घंटा अपने लिए सुरक्षित रखो, शेष 23 घंटे परिवार एवं व्यापार के लिए रखो । इस एक घंटे में केवल अपने लिए जीओ और शुद्ध मन से ईश्वर की प्रार्थना करो कि हे परमात्मा! तुम मुझे सुखी रखो, मेरे शरीर की रक्षा करो और मुझे विवेक दो । साथ ही तुम इस श्लोक का पाठ भी करो–

दिव्यां देहि मे शक्तिं, दिव्यां देहि शांतिं मे ।
दिव्यं देहि आयुष्यं, यशो बुद्धिं समुज्ज्वलाम् ॥

हे परमात्मा! मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा बनाए रखो । ऐसा संकल्प करके जो व्यक्ति अपने दिन का प्रारम्भ करता है, उसके जीवन में कभी कोई संकट नहीं आता।

रामचरितमानस में सात काण्ड बनाए गये हैं । हमारे जीवन में भी सात सीढ़ी है । बच्चा जन्म लेता है, बड़ा होता है, वह बालकाण्ड है । अयोध्या का अर्थ जीवन में परिवार धर्म पालन करने से है । जीवन में सुख–दुःख भी होते हैं, संकट भी आता है,

इसीलिए अरण्यकाण्ड का महत्त्व है । किष्किन्धाकाण्ड में विरोधियों का सामना भी करना पड़ता है । दूसरों से मुकाबला भी करनी पड़ती है और सहायता भी लेनी पड़ती है । जो व्यक्ति जीवन में संतुलन कर लेता है, उसके जीवन में सुखद क्षण भी आते हैं । मित्रों की सहायता से काम करने वालों का जीवन सुन्दर बन जाता है । इसीलिए सुन्दरकाण्ड नाम रखा गया, जो सर्वविध कल्याणकारी है । लेकिन जीवन में केवल सुन्दरता ही नहीं होती, प्रतिकूल परिस्थिति से लड़ना भी पड़ता है । जिस व्यक्ति का जीवन संतुलित रहता है, नैतिक और विवेकपूर्ण रहता है वही लंका को जलाकर नाश भी कर सकता है और जब जीवन से लंका और रावण का नाश हो जाता है तो, वहाँ उत्तरकाण्ड के ज्ञान–वैराग्य का दर्शन होता है, जहाँ काक भुशुण्डि की तरह पशु–पक्षियों से मनुष्य की मित्रता हो जाती है, तब मनुष्य का जीवन अत्यन्त ही सरल बन जाता है । यही सरलता हमारे जीवन का उद्देश्य भी है । बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड की यात्रा जीवन की यात्रा है । राम परमात्मा बनकर आचरण करते हैं, वैसा ही हमारे जीवन में भी संघर्ष है । कठिनाई आती है और जो नैतिक नियमों का पालन कर, संकटों से लड़ता है, वही विजयी बनता है । राम को हम इसलिए पूजते हैं कि राम ने जिस प्रकार संकटों को परास्त किया, वैसा ही हम भी करें । क्योंकि संसार है तो संकट आएगा ही । हमें उसे परास्त करना है । अयोध्या का राजकुमार अब संकट से लड़ने की तैयारी कर रहा है ।

अवध प्रकरण प्रारम्भ

दो०

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरू सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥

अयोध्याकाण्ड, मानस का दूसरा काण्ड है । अयोध्या का एक नाम अवध भी है । यह अति प्राचीन नगर है । अयोध्या का अर्थ है, जिसको युद्ध में कोई जीत न सके ।

श्रीराम के पूर्वज इक्ष्वाकु से लेकर महाराज दिलीप, रघु और दशरथ के पिता महाराज अज ने इस नगर को अजेय बना दिया था । दशरथ स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् थे, वे महान पराक्रमी योद्धा भी थे । दशरथ ने देवासुर संग्राम में देवताओं की कई बार सहायता की थी। उसी संग्राम में दशरथ ने जब असुरों को अपनी शौर्य-शक्ति से पराजित किया तो इन्द्र ने प्रसन्न होकर दशरथ को महा सौभाग्यशाली **"चूड़ामणि"** दिया था । उसी चूड़ामणि को दशरथ ने कौशल्या को दिया और कौशल्या ने अपनी बहू सीता को दिया । कहा जाता है कि उस समय तीन ही मणि थे- रघुकुलमणि, चूड़ामणि और राम के हाथ की मणि । राम ने जब अपनी अंगूठी लंका में सीता को भेज दिया तो सीता ने तुरंत चूड़ामणि राम को लौटा दिया । क्योंकि मान्यता थी कि यदि इन तीन मणियों में से दो भी एक जगह हो जाए तो वहाँ विजय सुनिश्चित होता है ।

महाराज दशरथ अपने पौरूष और नीतिकुशलता के कारण सम्पूर्ण अयोध्या को सुरक्षित रखे हुए थे । अयोध्या अति प्राचीन काल से इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की राजधानी बनी हुई थी । उसी अयोध्या का सम्राट् महाराज दशरथ थे, जिनके घर भगवान् श्रीराम का अवतरण हुआ । आज भी श्रीराम अपने चार भाइयों सहित अयोध्या में ही निवास कर रहे हैं । गोस्वामीजी ने लिखा है कि स्वयंवर के उपरान्त श्रीराम जब सीता के साथ अयोध्या लौटे तो राम के प्रभाव से पूरी अयोध्या के लोग आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे ।

चौ०

जब तें रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥

इस तरह श्रीराम अयोध्या में निवास करने लगे । वे चारो भाई प्रतिदिन शिकार खेलने जाते, लोगों से मिलते, लोगों के सुख-दुःख को सुनते । इसी बीच एक दिन सुबह के समय राम अपने भाइयों सहित नगर के बाहर बैठकर लोगों से बातें कर रहे थे, उसी समय नगर का एक लड़का वहाँ दौड़ता आया और लक्ष्मण जी को बताया कि सामने के तालाब से कोई नीलकमल चुरा रहा है । लक्ष्मणजी तुरंत तालाब किनारे पहुचे, उन्होंनें

देखा कि तालाब के बीच से नीलकमल घिसकता चला आ रहा है । लक्ष्मणजी पानी के अन्दर गये और देखा कि एक घड़ियाल कमल को अपनी ओर खींच रहा है । यह देख उन्हें संदेह हुआ, उन्होंने घड़ियाल को पकड़ा और घसीटकर किनारे पर लाकर एक रस्सी से बाँध दिया । कौतुहलवश सभी लड़के उसकी पिटाई करने लगे । पीट-पीटकर उस घड़ियाल को लड़कों ने घायल कर दिया । जब वह बुरी तरह घायल हो गया तो घड़ियाल ने अपना रूप छोड़ा और एक आदमी बनकर खड़ा हो गया । लक्ष्मणजी को उसपर क्रोध आने लगा । लक्ष्मणजी ने कहा- तुम भेष बदलकर कमल की चोरी कर रहे हो । यह कहकर उसकी और पिटाई करने लगे और वह कराहता रहा।

थोड़ी देर बाद लंका का राजा रावण अपने विमान से वहाँ उतरा, वह लक्ष्मणजी और सभी लड़कों से अनुरोध करने लगा कि इसे छोड़ दीजिए । लेकिन लक्ष्मणजी उसे छोड़ नहीं रहे थे । जब शोर-गुल अधिक होने लगा तो राम को भी पता लगा, वे तुरंत वहाँ गये, वहाँ जाकर उन्होंने लक्ष्मण से पूछा कि क्या बात है? लक्ष्मणजी ने कहा- यह दुष्ट भेष बदलकर तालाब से कमल चुरा रहा था । यह सुनकर रावण ने राम से क्षमा मांगते हुए कहा- "यह बालक मेरा बेटा मेघनाथ है, मैंने ही इसे भगवान् शिव की पूजा करने के लिए कहीं से नीलकमल लाने को कहा था । यह भूल से आपके नगर में आ गया है, आप इसे क्षमा करें ।" रावण की बात सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा- इस चोरी के लिए इस दुष्ट को मैं मृत्युदण्ड दूंगा । रावण ने बार-बार राम से अनुरोध किया कि इसे क्षमा करें । राम तो स्वभाव से करूणा के अवतार हैं, उन्होंने लक्ष्मण से कहकर मेघनाथ को छुड़वा दिया । वही मेघनाथ जब लंका के युद्ध में लक्ष्मण को शक्तिवाण मारता है तो राम विलाप करते हुए कहते हैं-

जौं जनतेऊँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेऊँ नहिं ओहू ॥

अर्थात् अगर मैं जानता कि वन में भाई से बिछोह हो जायेगा तो पूर्व में मैं उसके (मेघनाथ के) पिता की बात कभी नहीं मानता ।

इस प्रकार की अनेकानेक घटनाएं घटती हैं । विवाह के बाद श्रीराम सीता के साथ दर्शनीय स्थानों का दर्शन करते रहे ।

इधर अयोध्या के नर-नारी राम के लोक मंगलकारी रूप का प्रत्येक दिन दर्शन करते और अपने जीवन को राममय बनाने का प्रयास करते । चौपालों में जब नगर के लोग बैठते तो आपस में बात करते कि राम कोई साधारण राजकुमार नहीं हैं । ये परमात्मा स्वरूप आचरण करते हैं । अवश्य ही परमात्मा राम के रूप में अवतरित हुए हैं । उसी में से कोई कहता है-

आओ गायें गीत मनोहर, राम का आशीष पाएं ।
दुख संकट को दूर भगावें, राम को गले लगाएं ॥
भक्ति गीत से बंजर मन में, नव नव अंकुर आए ।
भक्ति प्रेम की रस वर्षा से, फूल चमन में उगाए ॥
तुम अनन्त हो, दिव्य प्रभा हो, राम तुम्हारा मूल ।
ऐसी करनी करो जगत में, राम रहे अनुकूल ॥
कथा श्रवण व नाम जाप से, कोटि परम पद पाए ।
अबकी तेरी बारी बन्धु, मौका छूट न जाए ॥
मत कहना कि किसी संत ने, राह नहीं बतलाया ।
फिर कहता हूं राम सत्य है, शेष जगत सब माया ॥
राम तुम्हारे परम देव हैं, तुम जानो या राम ।
तुम दोनों के बीच बताओ, मेरा यहाँ क्या काम ॥

इस तरह नगर के लोग चौपालों में राम के सम्बन्ध में हमेशा विभिन्न तरह की बातें करते रहते। एक दिन मिथिला से कुछ लोग राम और सीता से मिलने आए । इन लोगों ने राम को संदेश भेजवाया कि हमलोग मिथिला से आये हैं, आपका दर्शन चाहते हैं। यहाँ उन लोगों ने एक गीत गाया है। आइए हम सब मिलकर इस गीत का आनन्द लें-

गीत

मिथिला से आए तेरे द्वार, मेरे पत राखो सरकार ।

मातृ रूप मेरी सीता मइया,

तुम भव सागर पार लगइया ।

मेरा करो उद्धार, मेरे पत राखो............।

गिद्ध अजामिल-गणिका तारी,

नारी अहिल्या शाप उबारी ।

थामो मेरा पतवार, मेरे पत राखो.......।

लोग कहें राम तेरा पहुना,

जगत जननी सीता है बहिना ।

इस नाते अधिकार, मेरे पत राखो.........................।

धन्य भाग मिथिला के वासी,

मैं क्यों भटकूँ तीरथ काशी ।

तुम हो जब करतार, मेरे पत राखो...........।

थोड़ी देर बाद मिथिला वाले श्रीराम से मिलकर चले गए । कुछ दिन बाद होली के अवसर पर मिथिला से राम, सीता के साथ सभी भाइयों एवं अन्य बहुओं को मिथिला आने का निमंत्रण दिया गया । मिथिला में आज भी होली के अवसर पर अपने पहुना को बुलाने की प्रथा है । निमंत्रण पाकर राम सभी भाइयों सहित जनकपुर गये । होली के दिन श्रीराम ने जनकपुर के लोगों के साथ होली खेली । उसी अवसर का गीत है । आइए सब मिलकर गाएं–

गीत - 1

होली खेले रघुरैया,

अवध में बाजे बधैया ।

भरी-भरी थार लखनजी लाये,

भरे पिचकारी राम सिया को नहाये ।

नाचे ता ता थैया,

अवध में बाजे बधैया ।

रंग गुलाल सिया राम लगाये,

फूलों की होली से रास रचाये ।

जय जय सीता मैया

अवध में बाजे बधैया ।

बहे बसन्ती तरुवर डोले,

कोयल मोर पपीहरा बोले ।

फूलों की होली में लेत बलैया,

सुदर्शन गावे बधैया ।

गीत - 2

दशरथ के लाला बगिया में होली खेले।

बगिया में होली खेले।

सीता जी के संगे-संगे फगुआ में होली खेले॥

दशरथ के लाला...!

राम लखन भरत मारे किलकारी,

सीता जी सहेली संग खेले पिचकारी।

भीज गेल सीताजी के रंगवा से साड़ी,

दशरथ के लाला...!

होली के हुड़दंग सुनि दौड़ी आई सखियाँ,

रंग अबीरवा से दुखे लागल अखियाँ।

मिथिला में अयेला पहुना सुना अब गारी,

दशरथ के लाला...!

बेली चमेली व मेंहदी के कलिया,

रंगवा मे घिस-घिस चंदन की डलिया।

रेशम की डोरी से मारे पिचकारी,

दशरथ के लाला...!

श्रीराम कुछ दिन मिथिला में रहकर भाइयों सहित अयोध्या लौट आए। कुछ दिनों के बाद जनकपुर से राजा जनक ने अपनी बेटी और दामाद के लिए पुछारी भेजी। पुछारी का नियम है कि बेटी-दामाद के लिए वस्त्र, अलंकार, मिठाई, मेवा इत्यादि भेजा जाता है। जनक ने उसी के अनुरूप पुछारी भेजी।

इस गीत को मैंने अलग से लिखा था, लेकिन यहाँ विषय उठ गया, इसलिए यहाँ उसकी चर्चा कर रहा हूँ। यह स्वतंत्र गीत था जिसे जोड़ने का लोभ-संवरण मैं नहीं कर सका। इस गीत में श्रीकृष्ण का नाम आया है, जिसे गीत की गरिमा के लिए मैंने जोड़ा है।

गीत

सुनु सुनु जनक दुलारी, गुलाम तेरे धनुधारी।
मातृ शक्ति तू अद्भुत रूपा, सकल जीव में बसे अनुरूपा।
सबके मन की प्यारी, गुलाम तेरे धनुधारी।
सुनु सुनु जनक दुलारी ....।

मिथिला के जन-जन को तारी,
बनी रहे यह कृपा तुम्हारी।
राजा जनक कुमारी, गुलाम तेरे धनुधारी।
सुनु सुनु जनक दुलारी ....।

कृष्ण जी तारे मथुरा गोकुल,
राधा तारी सखियाँ व्याकुल,
अब है तेरी बारी, गुलाम तेरे धनुधारी।
सुनु सुनु जनक दुलारी ....।

मिथिला से आए लोग राम और सीता को बहुत प्यार करते हैं। वे बार-बार राम और सीता से मिलना चाहते हैं। इसी भाव पर एक गीत लिखा गया है।

गीत

रघुरैया तुम्हें इक नजर देखना है ।
जिधर तुम छुपे हो उधर खोजना है ॥
रघुरैया तुम्हें...॥

सुना है जहाँ के कण-कण में तुम हो ।
सितारों में तुम हो, नजारों में तुम हो ॥
जहाँ तक मैं देखूँ, वहाँ तुम ही तुम हो ।
रघुरैया तुम्हें...॥

मंदिर में तुम हो, घर-घर में तुम हो ।
मेरी हर साँसों में, आंखो में तुम हो ॥
इस जग के प्राणों में बसे तुम ही तुम हो ।
रघुरैया तुम्हें...॥

शबरी की कुटिया में, नइया में तुम हो ।
गणिका अजामिल के भावों में तुम हो ॥
भक्तिन अहिल्या के जीवन में तुम हो ।
रघुरैया तुम्हें...॥

संतों की वाणी में, दर्शन में तुम हो ।
फूलों की कलियों में, भँवरों में तुम हो ॥
माता के आंचल, दुआओं में तुम हो ।
रघुरैया तुम्हें...॥

दशरथ का राम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में सोचना

श्रीराम चारो भाइयों के साथ अयोध्या में विहार कर रहे हैं । रंगमहल में सीता, मांडवी, ऊर्मिला और श्रुतिकीर्ति निष्ठापूर्वक तीनों माताओं की सेवा करती हैं । सभी लोग साथ-साथ भोजन करते, माताओं को भोजन कराने के पश्चात् सबसे अन्त में सीता विश्राम करने चली जातीं । महल में प्रतिदिन पूजा-आरती, भजन-कीर्तन का कार्यक्रम चलता रहता ।

महाराज दशरथ अपनी बहुओं की सेवा से अति प्रसन्न रहते । दिनभर राज-काज की देखभाल करते और शाम होते ही परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत करते । यह क्रम बरसों चलता रहा । एक दिन राजा दशरथ आईना के सामने खड़े थे, तभी उन्होंनें देखा-

चौ०

श्रवन समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥

नृप जुबराज राम कहुँ देहू । जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

राजा दशरथ ने देखा कि कान के निकट कुछ बाल सफेद हो रहे हैं इसका अर्थ है कि बुढ़ापा आ रहा है । अब राज्य का भार पुत्र को दे देना चाहिए । कहा जाता है, जब मनुष्य की अवस्था 50 वर्ष की हो जाए और 51 शुरू हो तो वानप्रस्थ में प्रवेश कर जाना चाहिए । 51 का अर्थ है, 1+वन । मतलब अब वन की तैयारी शुरू करो । राजा दशरथ ने भी ऐसा ही सोचा-

दो०

यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ ॥

चौ०

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक । भए राम सब बिधि सब लायक॥

दशरथ ने अपने मन की बात वशिष्टजी को सुनाई । वशिष्टजी ने कहा– "महाराज आपका विचार बड़ा ही उत्तम है, लेकिन सबसे पहले राज्य के संतजनों से इसके लिए परामर्श करना चाहिए । फिर नगर वासियों का विचार जानना चाहिए । क्योंकि यही नियम है कि राजा वही बने, जिसे प्रजा चाहती हो । यह ठीक है कि राम सबके प्रिय हैं, उनके राजा होने पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी । लेकिन आपका धर्म है कि आप सबों का अभिमत जान लें ।" वशिष्टजी की बात सुनकर दशरथ ने संतों की बैठक बुलाई। संतों ने अपनी स्वीकृति तो दे दी, लेकिन उनके मन में अब चिन्ता बढ़ने लगी कि अगर राम राजा बन गए, तो इन राक्षसों का संहार कौन करेगा? अयोध्या चारों तरफ से राक्षस सेनाओं से घिरती जा रही है । कई बार अयोध्या की भूमि पर राक्षसों का आक्रमण भी हो चुका है, अगर राक्षसों के प्रभाव को रोका नहीं गया तो अयोध्या जो भारत की संस्कृति का स्तम्भ है, वह कभी भी ध्वस्त हो सकता है । यह विचार संतों के मन में उठने लगा । इधर दशरथ ने नगरवासियों की सभा बुलाई और उनका अभिमत भी जाना । उसके बाद बगल के राजाओं और सामंतों का अभिमत भी प्राप्त कर लिया । तब दशरथजी ने निर्णय कर लिया कि राम का राज्याभिषेक कर दिया जाए ।

एक तरफ अयोध्या के संत महात्माओं की चिन्ता बढ़ती जा रही थी कि अगर दशरथ ने राम को राजा बना दिया, तो पूर्व निर्धारित देवकार्य नहीं हो सकेगा । संतों का विचार था कि राक्षसों का आक्रमण अयोध्या पर हो, उसके पहले ही उनकी भूमि में राम आक्रमण करें और उनका संहार करें । अपनी भूमि में लड़ाई लड़ना उचित नहीं है । उससे अपना नुकसान अधिक होता है ।

दूसरी ओर अयोध्या में राज्याभिषेक की तैयारी जोरों से होने लगी–

दो०

राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि ॥

पूरी अयोध्या में सुमंगल गान होने लगा । जगह-जगह तोरणद्वार बनाए जाने लगे । दशरथ ने गुरु वशिष्ट को बुलाकर कहा- "हे गुरुदेव! राज्याभिषेक की सूचना राम को दें। उन्हें बताएं कि राज्याभिषेक के पहले किस प्रकार के नियमों का पालन किया जाता है।" वशिष्टजी प्रसन्नतापूर्वक राम के निवास स्थान पर गये । गुरुजी ने कहा- "राम! महाराज ने आपको राजा बनाने का निर्णय किया है ।"

यह सुनते ही राम ने विनयपूर्वक गुरु वशिष्ट को बताया कि "हे गुरुदेव! पिताजी ने ऐसा निर्णय क्यों लिया? वे अभी पूर्ण स्वस्थ हैं । परमात्मा उन्हें दीर्घायु बनावें, लेकिन उनका यह निर्णय असमय लिया गया निर्णय है ।" यह सुनकर गुरुजी ने बताया कि "राम! जीवन के अन्तिम काल में व्यक्ति को मोह-बन्धन से छूटना चाहिए, क्योंकि मनुष्य का जीवन यहाँ कुछ ही वर्षों का हैं, अन्त में जहाँ जाना है, वहाँ तो लाखों वर्ष रहना है । उसी को सुधारने का प्रयास करना चाहिए ।" यह सुनकर राम ने कहा- फिर मेरे चार भाइयों में मुझे ही क्यों राजा बनाया जा रहा है? बड़ा हो जाना कोई प्रमाण-पत्र तो नहीं है-

चौ०

जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा । संग-संग सब भए उछाहा ॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥

पुनः श्रीराम ने कहा- "हे गुरुदेव! आप लोगों का यह कैसा निर्णय है? हम सभी भाई साथ-साथ जन्में, पढ़े, विवाह किये, लेकिन आज केवल मुझे राजा बनाया जा रहा है । यह कैसा नियम है? मैं पिताजी के रहते सिंहासन पर कैसे बैठूँगा? उनके सामने किसी को आदेश कैसे दूंगा? राजा होने के कारण मुझे पिताजी से ऊँचे आसन पर बैठना पड़ेगा । यह अनीति है, अधर्म है, पिताजी के जीवित रहते मुझे राजा बनना स्वीकार नहीं है । अगर आपलोग ऐसा निर्णय करते हैं तो हम चार भाइयों को एक साथ राजा बनाएं ।

मैं जानता हूँ कि राजा बनाकर मुझे आपलोग माता-पिता की सेवा से वंचित करना चाहते हैं। गुरुदेव, वह पुत्र भाग्यशाली होता है जिसके सिर पर पिता का हाथ होता है । मैं पिता के चरणों में बैठकर उनका आदेश पालन करना चाहता हूँ । पुत्र पिता का उत्तराधिकारी होता है । जब पिता नहीं रहते तो पुत्र को राजा बनाया जाता है । पिता के जीवन काल में पुत्र को राजा बनाना उचित नहीं है । क्योंकि संभव है राजा बना पुत्र अपने किसी आदेश से पुराने राजा को संकट में न डाल दे । इसलिए जीवन काल में किसी को राज देना उचित नहीं है । ऐसा शास्त्र का मत है ।

विशेष प्रसंग-

(इस कलियुग में तो यह आम बात है कि पुत्र बड़ा होकर अपने पिता को ही घर से बाहर निकाल देता है । आज हजारों माता-पिता अपने पुत्र के अत्याचार से निर्वासित जीवन जी रहे हैं । पिता की सम्पत्ति पर तो पुत्र की नजर लगी ही रहती है ।)

राम की बात सुनकर गुरु वशिष्ट ने कहा- "राम! तुम सभी भाइयों से योग्य हो, आज्ञाकारी हो, सरल हो और नैतिक चरित्र जीते हो । तुममें राजा का सब गुण है और किसी व्यक्ति को राजा बनाने का अधिकार महाराज दशरथ को है ।" राम ने भारी मन से पिता की आज्ञा को स्वीकार कर लिया ।

इसी बीच कैकेय देश से भरत के मामा युधाजित् भरत को बुलाने आए । युधाजित् ने महाराज दशरथ को कहा- भरत के नाना-नानी इससे मिलना चाहते हैं, पिता की आज्ञा पाकर भरत और शत्रुघ्न ननिहाल चले गये । कैकेयी के पिता केकयराज बहुत वृद्ध हो गये थे । इसलिए उनके मन में अपने नाती को देखने की प्रबल इच्छा थी ।

विशेष दृष्टि

(एक प्रश्न सामने आता है कि इधर राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी और दूसरी ओर ऐसे महोत्सव के अवसर पर भरत को ननिहाल जाना कितना उचित है? दरअसल महाराज दशरथ ने कैकेयी से विवाह करते समय कैकेयी के पिता केकयराज

को वचन दे दिया था कि "कैकेयी से जो पुत्र होगा वही राजा बनेगा।" इस समय जब राम के राज्याभिषेक की तैयारी शुरू हुई तो दशरथ ने सोचा कि हो सकता है पश्चिम प्रदेश के राजा अश्वपति अपने वचन भंग होने के कारण उनपर आक्रमण न कर दें, इस कारण राज्याभिषेक में विघ्न पड़ सकता है। इस बात की जानकारी सबों को थी। यहाँ तक कि भरत भी जानते थे कि बचन के अनुसार उन्हें राजा बनना चाहिए। लेकिन राम और भरत में इतना प्रेम था कि भरत नहीं चाहते थे कि उनके प्रिय बड़े भाई राम के रहते, वे राजा बनें। राज्याभिषेक कुशलपूर्वक समाप्त हो जाए। इसीलिए भरत ने सोचा कि अगर इस बीच मेरे नाना और मामा अयोध्या पर आक्रमण करते हैं तो भरत और शत्रुघ्न दोनों मिलकर उन्हें आक्रमण करने से रोक देंगे। ऐसा तर्क कई संतों के मुख से मैंने सुना है। भरत का ननिहाल जाना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह पूर्वनियोजित योजना थी। इसीलिए इस महोत्सव के अवसर पर भरत को ननिहाल जाना पड़ा।

यह सोचने जैसी बात है कि जब बड़े भाई का राज्याभिषेक हो रहा हो, उस समय छोटा भाई ननिहाल चला जाए, ऐसे अवसर पर बाहर गए लोग भी परिवार में वापस आ जाते हैं। इस घटना से स्पष्ट होता है कि भरत एक महान त्यागी हैं, उन्होंने जो त्याग किया उसी कारण आज लोग भरत को धर्मावतार कहते हैं। क्योंकि समाज में वही पूजा जाता है, जो त्याग कर सकता है। कहा जाता है त्याग में जो सुख है, वह प्राप्त करने में नहीं होता।)

अब पीछे छुटी हुई कथा को आगे बढ़ाते हैं। जब पूरे नगर में राज्याभिषेक की तैयारी शुरू हो गई तो संत-महात्माओं ने सोचा कि अगर राम राजा बन गये तो धर्म, संस्कृति और देश की सुरक्षा नहीं हो सकेगी। अगर दशरथ को उनके वचन को याद कराकर किसी तरह इस बात के लिए मना लिया जाए कि वे भरत का राजतिलक करें, तो बात बन सकती है। ऐसा निर्णय संतों ने किया कि किसी तरह दशरथ को मनाया जाय। इसके लिए निर्णय किया गया कि कैकेयी की दासी मंथरा को समझाया जाए कि वह कैकेयी को विश्वास में ले और वचन के अनुसार भरत को राजा बनाने का प्रस्ताव करे। क्योंकि ऐसा वचन राजा ने कैकेयी को बहुत पहले ही दे दिया था। लेकिन प्रश्न उठता है

कि अगर भरत को राज्य दिया जाता है तो राम को अयोध्या में रहते हुए भरत राजा बनना कभी स्वीकार नहीं करेंगे । इसलिए कैकेयी को समझाया जाय कि वह भरत के लिए राज्य मांगे और राम के लिए चौदह वर्षों का वन ।

कई लोग यह भी प्रश्न उठाते हैं कि राम को चौदह वर्षों का वनवास क्यों दिया गया?दरअसल, संतों का मत था कि राम तो परमात्मा हैं, वे तो पूरी दुनिया के राजा हैं, केवल अयोध्या पर राज्य करने से शेष जगत् उनसे वंचित रह जाएगा । वे तो धर्मकार्य के लिए अवतार लिए हैं और दूसरी बात लोक समाज में यह भी कहा जाता है कि अगर किसी जमीन पर बारह वर्षों तक किसी का अधिकार रहता है, तो वह जमीन उसकी मानी जाती है । अगर भरत बारह वर्षों तक अयोध्या पर राज करते रह गये, तो कल उन्हें कोई हटा नहीं सकेगा । इसलिए बारह वर्ष से अधिक चौदह वर्षों के लिए अयोध्या से दूर रखने की योजना बनाई गई । इन चौदह वर्षों में राम राक्षसों का नाश करेंगे और भारत में अपने प्रभाव से जनकल्याणार्थ नैतिक मूल्यों की स्थापना करेंगे । क्योंकि राम राजा बनने के लिए अवतरित नहीं हुए हैं, उन्हें तो खंडित मर्यादाओं को समाज में फिर से स्थापित करना है । राम को केवल अयोध्या का राजा नहीं बनना है, वे तो पूरे ब्रह्माण्ड के राजा हैं।

एक और तर्क यह दिया जाता है कि काल गणना करने वाले ज्योतिषी ने बता दिया था कि रावण की मृत्यु में अभी चौदह वर्ष की देरी है । इसीलिए चौदह वर्षों का वनवास मांगने की योजना बनी ।

इस काम के लिए संतों ने कैकेयी की दासी मंथरा को चुना । मंथरा एक दिन सरयू में स्नान करने गई थी, उसी समय संतों ने मंथरा को अपने प्रभाव में ले लिया । मंथरा को समझाया गया कि वह कैकेयी को राजा से प्राप्त वरदान का स्मरण कराये और भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनवास मांगे । मानस में लिखा है–

दो०

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥

संतों की बात से मंथरा पूरी तरह सहमत हो गई और महल में लौटने लगी । रास्ते में कौशल्या की दासी मोती की माला पहने खड़ी दिखी । कौशल्या ने अपनी दासी को राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनाने पर काफी धन-दौलत दिया था । दासी थी, उसे इतना मान- सम्मान, धन-वैभव बर्दाश्त नहीं हुआ । क्योंकि छोटे लोगों को जब बहुत मान और धन मिल जाता है, तो वह बौखला जाता है । किसी भी व्यक्ति को उतना ही धन और मान मिलना चाहिए, जितना वह बर्दाश्त कर सके । दासी अपने को रोक नहीं सकी और मंथरा से बोली कि मेरा राम राजा बन रहा है । मैं तो कल से राजमाता बन जाऊंगी । क्योंकि मैंने ही राम को पाल-पोसकर बड़ा किया है । यह सुनकर मंथरा के मन में आग लग गई । एक तो संतों के सहयोग से सरस्वती ने उसकी मति फेर दी थी और ऊपर से इस दासी की बात सुनकर मंथरा जल-भुन गई । वहाँ से सीधे महल आई और मुँह फुलाकर बैठ गई । यह देख कैकेयी ने पूछा कि क्या बात है मंथरा, आज उदास क्यों हो? मंथरा ने कहा-

चौ०

रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥

आज अयोध्या में महारानी कौशल्या और राम की जय-जयकार हो रही है । कल राम राजा बनेगा, राजा ने चतुराई से भरत को ननिहाल भेज दिया है । तुम महल में आराम करो और कल से दासी का जीवन व्यतीत करना ।

चौ०

नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥

यह सुन कैकेयी ने मंथरा को बुरी तरह डांटा-

चौ०

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

कैकेयी ने डांटते हुए कहा- "अगर मेरे बेटे राम के सम्बन्ध में कुछ कहा तो तुम्हारी जीभ काट लूँगी ।" पुनः कैकेयी ने अपना आभूषण उतारकर मंथरा को दिया और कहा- "मैं आज बहुत खुश हूँ तुम यह इनाम लो ।" इस पर मंथरा ने कैकेयी पर व्यंग्य करते हुए कहा- "कैकेयी! राजा ने तुम्हारे साथ धोखा किया है, राम को राजा बनाकर वह भरत को दास और तुम्हें दासी बनाना चाहते हैं ।" कैकेयी ने मंथरा की बातों का काफी विरोध किया । लेकिन जब मंथरा ने कैकेयी को समझाया- "आखिर क्या कारण है कि भरतजी ननिहाल गए हुए हैं और इस बीच राम का राजतिलक हो रहा है? मंथरा ने कैकेयी को कहा- इसमें बड़ी रानी कौशल्या और महाराज दोनों का हाथ है । कौशल्या को पता है कि राजा दशरथ तुम्हारे वश में हैं, तुम्हें सबों से अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वह चाहती है कि राम को राजा बनाकर वह स्वयं राजमाता बन जाए और तुम्हें अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर कर दे ।" यह सुनते ही कैकेयी ने कहा- "नहीं मंथरा! दीदी ऐसा नहीं कर सकती । वह तो मुझे बहुत प्यार करती है ।" मंथरा को जब लग गया कि कैकेयी को उसकी बातों पर भरोसा नहीं हो रहा है, तो उसने कैकेयी पर अंतिम बाण छोड़ा और कहा- "तुम्हारे पिता महाराज केकयराज ने तुम्हें सुखी रखने के लिए महाराज दशरथ से यह वचन माँगा था कि तुम्हारा पुत्र ही राजा होगा । अगर तुमने अपने पिता के वचन को नहीं माना तो पिता की आत्मा तुम्हें क्षमा नहीं करेगी और जीवन भर तुम, भरत और मांडवी, कौशल्या की सेवा में खड़ी रहोगी ।"

यह सुनते ही कैकेयी कांप उठी । कैकेयी ने कहा- "अरि मंथरा, तुम मुझे उचित राय दो । मैं तुम्हारी बात सुनकर बहुत घबड़ा रही हूँ ।" मंथरा ने जब देखा कि कैकेयी पूरी तरह उसके वश में हो गई है तो उसने कहा- "मेरी प्रिये कैकेयी! तुम कोपभवन में चली जाओ, महाराज जब तुमसे इसका कारण पूछेंगे, तब पहले उनसे वचन लेना कि जो तुम मांगोगी, वह महाराज दे देंगे । तब उनसे दो वरदान मांग लेना । पहला- पूर्व वचन के अनुसार भरत का राजतिलक किया जाए और दूसरा राम को चौदह वर्ष के वनवास हेतु भेज दिया जाए ।"

कैकेयी का कोपभवन में जाना

चौ०

दुइ बरदान भूप सन थाती । मागहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

कैकेयी ने मंथरा की मंत्रणा मान ली ।

कैकेयी कोपभवन में चली गई । काला कपड़ा पहन ली, बाल बिखरा ली, जिससे उसका चेहरा भयंकर और कुरूप हो गया । सारे वस्त्र, अलंकार इधर-उधर फेंककर जमीन पर पड़ गई । शाम होते ही महाराज दशरथ को यह सूचना मिली कि कैकेयी कोपभवन में चली गई है । यह सुनते ही राजा आगतभय से कांप गए-

चौ०

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ । भय बस अगहुड़ पड़इ न पाऊ ॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥

जो राजा महापराक्रमी और चक्रवर्ती सम्राट् थे, कैकेयी के कोपभवन की बात सुनते ही काँपने लगे । रामायण के प्रारंभ में गोस्वामीजी ने दशरथ के लिए कहा है-

सो०

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।

जिस दशरथजी की वन्दना गोस्वामीजी ने की है वही राजा जब काम के वशीभूत हो जाते हैं तो उनका इकबाल कम हो जाता है । काम के वशीभूत व्यक्ति को समाज में मान प्रतिष्ठा नहीं मिलती । आज वही दशरथ कैकेयी के सामने जाने से डर रहे हैं । राजा काँपते हुए कोपभवन में गए, जाते ही पूछा- "हे प्रिये, तुम्हारे बेटे राम का राजतिलक होने जा रहा है, इस अवसर पर तुम रूठी क्यों हो? तुम्हारे कोपभवन में आने का क्या कारण है?" यह कहते हुए राजा ने कैकेयी का हाथ पकड़ा, कैकेयी ने अपना कोप प्रकट

करते हुए महाराज से पूछा– "अच्छा! राम का राजतिलक होने जा रहा है, मुझे किसी ने बताया नहीं । कम से कम किसी दासी के द्वारा आप खबर तो भेजवा देते, मैं भी तमाशा देखने आ जाती ।" महाराज को लगा कि मामला कुछ गड़बड़ है । महाराज ने कहा– "अभी-अभी वशिष्टजी ने राम के राजतिलक की तिथि तय की है । मैं तो स्वयं आकर यह खबर तुम्हें बताना चाहता था ।" यह सुन कैकेयी ने अपने खुले हुए बालों को झाड़ते हुए महाराज से कहा– "आज पूरी अयोध्या में लोगों को खबर है, बाजे बज रहे हैं, दीदी कौशल्या वस्त्र-आभूषण बाँट रही हैं और आप कहते हैं कि तिथि अभी तय हुई है ।" यह सुन महाराज ने कहा– "हे प्रिये, तुम्हें संवाद मिलने में विलम्ब हुआ, इसके लिए मैं दुःखी हूँ । लेकिन तुम इस विलम्ब के लिए जो मांगना चाहो मांग लो । मेरे प्राण, मेरा सर्वस्व, सब कुछ तेरे वश में है, जो चाहो सो मांग लो । लेकिन शीघ्र ही इस अशुभ भेष को छोड़ो ।" यह सुनते ही कैकेयी ने अपना सिर उठाया और कहा– "अगर आप चाहते हैं कि मैं कोपभवन से बाहर आ जाऊँ, तो पहले आप वचन दें कि जो मैं मांगूगी, उसे आप देंगे ।" महाराज ने समझा कि अब कैकेयी का कोप शांत हो रहा है, इसलिए उन्होंने कहा– "मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम जो मांगोगी, मैं वही दूँगा ।" यह सुनते ही कैकेयी उठ बैठी और कठोर वाणी में बोली– "महाराज आपने मुझे वचन दिया था कि मैं जब चाहूँ आपसे वरदान माँग लूँ ।" महाराज ने कहा– "मुझे पूरी तरह स्मरण है, तुम्हें जो वर चाहिए, बेहिचक मांग लो ।"

चौ०

बिहसि मागु मनभावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥

महाराज ने कहा– "तुम मनचाही वस्तु मांग लो ।"

दो०

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥

कैकेयी ने महाराज को उकसाया और कहा– "आप वर तो देते नहीं, केवल बात करते हैं।" यह सुन महाराज ने कहा–

चौ०

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

जब दशरथ ने राम की शपथ देकर कहा तो कैकेयी समझ गई कि अब महाराज अपनी जुबान से नहीं लौटेंगे, तब कैकेयी ने कहा–

चौ०

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥

यह सुनते ही महाराज की आंखें पथरा गईं, कंठ सूखने लगा और वे माथे पर हाथ देकर बैठ गए। यह देखते ही कैकेयी ने व्यंग्य किया– "क्या हुआ महाराज, भरत के राजतिलक की बात सुनकर आपको इतना सदमा क्यों लगा?क्या आपने मेरे पिता को वचन नहीं दिया था कि मेरा पुत्र राजा बनेगा? क्या मैं आपकी पत्नी नहीं हूँ? क्या हो गया कि आप इतने विचलित हो रहे हैं? अगर आप इतने कमजोर और वचन भंग करने वाले हैं, तो आपने वचन क्यों दिया?"

कैकेयी की बात से राजा विचलित हो रहे थे, फिर भी अपने को संभालते हुए महाराज ने कैकेयी से कहा– "हे प्रिये! अपनी मांग पर फिर से विचार करो। इस राजतिलक के महोत्सव को भंग मत करो। अगर यह बात राम को पता चलेगी तो वह बुरी तरह टूट जाएगा।" यह सुनकर कैकेयी ने चोट करते हुए कहा– "अगर मैं जानती, कि आप अपने वचन का पालन नहीं करेंगे, तो आपसे कोई वरदान नहीं मांगती। आपने वचन भंग कर मेरे पिता और मेरे साथ छल किया है।"

यह सुनते ही दशरथ ने कैकेयी को समझाते हुए कहा- "राम तुम्हारा बड़ा बेटा है और मैं यह भी जानता हूँ कि तुम उसे बहुत प्यार करती हो। यह भी समझो कि अब अगर राम को छोड़कर भरत के राजतिलक की घोषणा करता हूँ तो दूर-दूर से जितने भी राजा इस समारोह में शामिल होने आ रहे हैं, वे समझेंगे कि दशरथ के परिवार में फूट है और लोग हमारी मर्यादा का उपहास करेंगे । सच मानो कैकेयी! राम ने राजगुरु को कह दिया था कि मैं राजा बनना नहीं चाहता ।"

यह सुनकर कैकेयी ने महाराज पर एक और प्रहार किया- "महाराज, यह मैं मान लेती हूँ, लेकिन एक बात बताएं कि मेरा बेटा भरत ननिहाल गया है, तो उसकी अनुपस्थिति में राम का राजतिलक क्यों करना चाहते हैं? आप इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं?"

यह सुनकर महाराज ने कहा- "हे प्रिये, मुझे लग रहा है, कि मेरा शरीर अब थक चुका है, कभी भी इस शरीर का अन्त हो सकता है । इसलिए मैंने यह निर्णय किया था । अगर तुम कहो तो आज ही भरत को ननिहाल से बुलवाकर उसका राजतिलक कर देता हूँ ।

चौ०

रिस परिहरु अब मंगल साजू । कुछ दिन गएँ भरत जुबराजू ॥

अब तुम क्रोध छोड़ो, और भरत के राजतिलक की तैयारी करो ।" यह सुनकर कैकेयी ने कहा- "महाराज! आप कैसी बातें कर रहे हैं? मैंने आपसे दो वरदान मांगा था, एक को आप पूरा करना चाहते हैं और मेरे दूसरे वरदान का क्या होगा? क्या आप चाहते हैं कि भरत राजा बने और राम के साथ अवध के लोग विद्रोह कर दें? मैं नहीं चाहती कि अवध में भरत का विरोध करने वाला कोई भी यहाँ रहे । इसलिए राम को वन जाना ही होगा । तभी भरत सुचारू रूप से राजसत्ता का संचालन कर सकता है ।" यह सुनकर महाराज ने कैकेयी को समझाते हुए कहा- "नहीं प्रिये! राम ऐसा नहीं है । पर यह बात समझ लो कि राम के राजतिलक के लिए कौशल्या अथवा किसी ने मुझे नहीं भड़काया । मैंने स्वयं गुरु वशिष्ट से परामर्श करके यह निर्णय लिया था ।"

कैकेयी क्रोध में भनभनाते हुए उठ खड़ी हुई और रोषपूर्ण वाणी में महाराज से कहने लगी– "आपका राम बड़ा सदाचारी है, हम सभी लोग बहुत बुरे हैं । अब यह बात आप जान लें कि कल प्रातःकाल तक राम का वनगमन नहीं हुआ तो मैं मर जाऊंगी और आपको भारी अपयश होगा ।"

यह सुनकर दशरथ ने आर्तवाणी में कहा– **"कैकेयी ऐसा हठ मत करो । अगर राम वन चला गया तो मैं भी नहीं बचूँगा ।"** महाराज कैकेयी के पैर पकड़कर उसे मनाते रहे, लेकिन कैकेयी नहीं मानी । कैकेयी का व्यवहार देखकर राजा को बार-बार मूर्छा आ जाती थी। यह देख कैकेयी ने एकबार फिर चोट किया–

चौ0

छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहू ॥

कैकेयी के व्यंग्यबाण से दशरथ घायल होते जा रहे हैं और अपनी करनी पर पश्चाताप कर रहे हैं । ठीक ही कहा गया है "कामी पुरुष को अन्त में दुःख ही भोगना पड़ता है ।" रातभर कैकेयी के व्यंग्यबाण से दशरथ बेहोश होकर जमीन पर पड़े रहे । प्रातःकाल सुमंत राजमहल में राजा को जगाने पहुँचे ।

चौ0

गये सुमंत्रु तब राउर माहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥

सुमंत डरते-डरते महल में गए, कैकेयी से पूछने पर उसने सुमंत को कहा– "तुम जल्दी जाओ, राम को बुला लाओ तब और कुछ समाचार पूछना ।" सुमंत ने राम को बुलाया, राम तुरन्त महाराज से मिलने महल में आ गए । महल में आते ही उन्हें लगा कि कुछ गड़बड़ है । क्योंकि जिस महाराज की गर्जना से दिशायें कांपने लगती थीं, वही महाराज आज दयनीय स्थिति में पड़े हुए हैं । राम ने माता कैकेयी से पूछा– "हे माता! पिताजी के दुःख का कारण क्या है?" कैकेयी ने कहा– महाराज ने मुझे दो वरदान मांगने को कहा था और मैंने दोनों वरदान मांगा । उसके बाद महाराज मौन हो गए । अगर तुम

महाराज को खुश करना चाहते हो तो राजा की आज्ञा को मान लो । यह सुनकर राम ने कहा-

चौ०

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

"हे माता! आप मुझे आज्ञा करें कि पिताजी ने आपको क्या वरदान दिया है?" यह सुनकर कैकेयी ने राम को बताया- "मैनें महाराज से भरत को राज्य और तुम्हें वनवास का वर मांगा है। लेकिन तुम्हारे मोह के कारण वे अपने वचन का पालन नहीं कर पा रहे हैं ।" यह सुनकर राम ने कहा-

चौ०

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥

कैकेयी ने जब देखा कि राम कोई विरोध नहीं कर रहे हैं तो राम को समझाते हुए कहा- "तुम अपने पिता को समझाओ कि वे अपने वचन का पालन करते हुए यश का भागी बनें ।" यह सुनकर राम ने अपने पिता से कहा- "पिताजी! आप मुझे आज्ञा दें, मैं शीघ्र ही बड़ी माता से आज्ञा लेकर आता हूँ ।" लेकिन महाराज मूक बने जमीन पर पड़े रहे ।

श्रीराम के वनगमन की तैयारी

राम वनगमन की खबर पूरे नगर में फैल गई । सभी लोग दुःखी हो गये । लोग तरह-तरह की बातें कर रहे हैं और उधर राम चुपचाप माता कौशल्या के भवन में वन-गमन की अनुमति लेने जा रहे है । लेकिन मन में सोच रहे हैं कि माँ से क्या कहूंगा? श्रीराम ने माता कौशल्या से कहा- "माँ! महाराज भरत को युवराज पद दे रहे हैं और मुझे दण्डकारण्य भेज रहे हैं -

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥

फिर राम ने कहा- माँ! पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया है। तुम मुझे आज्ञा दो। मैं इस संसार में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करने जा रहा हूँ। माँ, तुम मुझे आशीर्वाद दो ताकि मैं पिताजी की आज्ञा का पालन कर शीघ्र लौटकर तुम्हारा दर्शन कर सकूँ।" माता कौशल्या ने पूछा कि किस वन के राज्य की बात कर रहे हो।

यह सुन राम ने कहा- माँ! पिताजी ने **"पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू"** उसी समय एक दासी ने कौशल्या को बताया- "माता जी! महाराज ने राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास जाने का आदेश दिया है।" यह सुनते ही माँ धड़ाम से गिरी। फिर संभलकर उठी और बोली- "महाराज ने ऐसा क्यों किया? महाराज को तो तुम प्राण से प्यारे हो, फिर उन्होंने ऐसा आदेश क्यों दिया?"

यह सुनकर राम ने कहा- "पुत्र का यह धर्म नहीं है कि पिता के आदेश का कारण पूछे। मुझे तो पिता और छोटी माता, दोनों का आदेश प्राप्त हो गया है और माता-पिता के आदेश का पालन कर मैं अपने आपको धन्य बनाना चाहता हूँ।" राम ने कहा "छोटी माता ने दिए गये वचन का पालन कराया। अगर पिताजी वचन का पालन नहीं करते तो, उन्हें भारी अपयश होता। आप तो मुझे हमेशा समझाती हैं कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए, इस कारण आपको दुखी नहीं होना चाहिए।" लेकिन माता कौशल्या तो जैसे दुःख के अपार सागर में डूबती जा रही हैं। वह समझ नहीं पा रही हैं कि देखते-देखते यह क्या हो गया? कैकेयी ने इतना कठोर वरदान क्यों मांग लिया? यह सही है कि अपने पुत्र की भलाई के लिए प्रत्येक माता प्रयास करती है, लेकिन ऐसा भी तो नहीं होना चाहिए कि अपनी भलाई के चलते दूसरे को कोई अधिक हानि हो। कैकेयी ने जो वरदान मांगा है, उससे भरत को राज्य मिल जाएगा, लेकिन राम तो हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। थोड़ी देर तक कौशल्या बुत बनी खड़ी रही। माता कौशल्या के मानसिक संत्रास को देखकर श्रीराम ने अपनी माँ को समझाया- "माँ! तुम चिन्ता मत करो, इसमें अवश्य ही हमारी कोई भलाई छिपी है और जिस आज्ञा को माता-पिता दोनों ने एक साथ दिया हो, उस आज्ञा की अवहेलना करना

पुत्र का नैतिक कर्त्तव्य नहीं है । तुम मुझे आज्ञा दो ताकि थोड़े दिनों में मैं आज्ञा का पालन करके लौट आऊँ ।" यह सुनकर माता कौशल्या ने राम को वन जाने की अनुमति दे दी । जब यह खबर सीता को मिली तो वह दौड़ती हुई अपने सास के पास गई और विनयपूर्वक कहने लगी– "हे माता! मेरे पति वन यात्रा पर जा रहे हैं, आप उनके साथ मुझे भी जाने की अनुमति दें ।" यह सुनकर कौशल्या ने सीता को बहुत समझाया कि तुमने तो अभी वन को देखा भी नहीं है । वन में तो बड़े कष्ट होते हैं । लेकिन यह सुन सीता ने कहा "हे माता!–

चौ०

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

स्त्री का धर्म पति के साथ रहना है । वन में हजार कष्ट हो, लेकिन पति साथ में हो तो कोई दुःख नहीं होता ।" राम ने भी सीता को बहुत समझाया कि ऐसा हठ मत करो। लेकिन सीता एक न मानी । सीता ने कहा– "हे प्राणनाथ! अगर आपने अपने साथ वन नहीं जाने दिया, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी ।"

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं नेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥

सीता के हठ के सामने श्रीराम चुप हो गए । जब यह खबर लक्ष्मणजी को मिली तो लक्ष्मणजी भी अपने बड़े भाई और भाभी के साथ वन जाने के लिए तैयार हो गये । इधर लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला मूकदर्शक बनकर असहाय प्राणी की तरह सब देखती रही । सीता अपने पति के साथ वन जा रही है । लक्ष्मण अपने भाई और भाभी की सेवा करने जा रहे हैं, लेकिन ऊर्मिला उपेक्षिता बनी राजमहल के एक कोने में पड़ी रही । किसी ने यह नहीं सोचा कि ऊर्मिला का क्या होगा?लक्ष्मणजी ने जब ऊर्मिला को विदा करने को कहा तो ऊर्मिला ने भींगी आँखों से अपने पति को चौदह वर्षों के लिए वन जाने के लिए विदा किया ।

इस तरह राम, लक्ष्मण और सीता वन जाने के लिए तैयार हो गये। तीनों ने वल्कल-वस्त्र धारण किया और अन्तिम विदाई लेने पिता दशरथ के पास पहुँचे। दशरथ ने सुमंत को कहा- "राम को अपने रथ पर नगर सीमा तक ले जाओ और वहाँ से लौटा लाना।"

दो०

सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥

महाराज ने मंत्री से कहा- "राम को वन दिखाकर ले आओ। अगर किसी तरह राम न माने, तो सीता को अवश्य वापस ले आना।" पिता की आज्ञा लेकर राम, लक्ष्मण और सीता रथ पर बैठकर चल दिए। (सचमुच मनुष्य परिस्थिति के सामने कितना बौना हो जाता है। जिस महाराज दशरथ की यशकृति पूरे आर्यावर्त में फैली थी, आज वही महाराज कैकेयी के सामने बेबस पड़े हैं।)

चौ०

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥

राम का रथ जब चला, तो अयोध्या के सारे लोग रथ के पीछे-पीछे चलने लगे। सभी लोग पैदल चलते रहे, शाम होते सभी लोग तमसा नदी के किनारे पहुँचे। राम वहीं विश्राम करने के लिए रूके-

दो०

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ चले लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किये प्रथम दिवस रघुनाथ॥

अयोध्या की सारी प्रजा बाल-वृद्ध-नर-नारी तमसा के तट पर विश्राम करने के लिए रूके। राम ने उन्हें काफी समझाया कि आप सभी घर लौट जाएं पर कोई मानने के

लिए तैयार नहीं । प्रजा के बीच राम की ऐसी लोकप्रियता थी कि राम को कोई छोड़ना नहीं चाहता था । राम लाख समझाते रहे, लेकिन सबों ने यही कहा- हम सब आपके साथ ही वन जाएंगे । इधर काफी रात हो चुकी थी । श्रीराम ने सोचा कि "इनके प्रेम के सामने मेरा कोई उपदेश काम नहीं करेगा ।" रात्रि में सभी लोग विश्राम करने चले गए । इसलिए उन्होंने सोचा कि अच्छा यही होगा कि इनको सोते समय छोड़कर चुपके से निकल जाएं । राम ने मंत्री सुमंत को बुलाकर कहा-"प्रजा को मनाकर लौटाना सम्भव नहीं है । इसलिए आप चुपके से रथ ऐसे निकालिये कि रथ के पहिए का चिह्न भी दिखाई न पड़े ।"

चौ०

खोज मारि रथु हाँकहु ताता । आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥

इस प्रकार से श्रीराम लोगों को सोते छोड़ रथ पर बैठकर सीता और लखन के साथ आगे की ओर निकल गये । भोर होते ही लोगों ने देखा कि राम तो चले गए, फिर प्रजा दु:खी मन से अयोध्या लौट आई।

श्रीराम शृङ्गवेरपुर की ओर प्रस्थान कर गये । इधर अवधवासी जब नगर में लौटे, तो पूरी अयोध्या में उदासी छा गई । लोग एक-दूसरे से पूछने लगे-"क्या प्रभु श्रीराम की कोई खबर आई?" विशेषकर नगर की बालाएं श्रीराम के विरह में व्यग्र हो गईं, एक सखी दूसरी सखी से पूछती हैं-

गीत

सखि हे सुधि न राम की आई ।
जब से राम अवध को त्यागे, सुध-बुध सब बिसराई ।
राजभवन सब सुन भयो हैं, सिर धुन सब पछताई ॥
सखि हे सुधि.. ... ...

वन उपवन दावानल जारे, गछियन पात जराई ।
तड़पत बछड़ू दूध बिनु कैसे, गइयन दूध सुखाई ॥
सखि हे सुधि.. ... ...

सुन भये सरयू तट पे लीला, सरिता नीर बहाई ।
कोयल कूक पपिहरा रोवे, हिरणी नीर बहाई ॥
सखि हे सुधि.. ... ...

सखियन झर-झर आँसू रोये, जब-जब बहे पुरवाई ।
कहे सुदर्शन किसे सुनाऊँ, शूल बनी तरूणाई ॥
सखि हे सुधि.. ... ...

नगरवासी राम के विरह में व्यग्र हैं । सबके मन में एक ही बात आ रही है कि कैकेयी ने महाराज के बसे हुए घर को उजाड़ दिया । नगरवासी एक-दूसरे को कह रहे हैं-

गीत

कैकेयी अवध में आग लगाई,
जब से राम अवध को त्यागे, उपवन फूल मुरझाई ।
राम बिना भेल सून नगरिया, लक्ष्मण जैसा भाई ॥
सीता जैसी सुभग सयानी, अँखियन लोर बहाई ।
रोई-रोई त्रसित भये नयनन, जब कैसे इसे समझाई ॥
असुवन डूबी सारी नगरिया, कौन किसे बचाई ।
कहे सुदर्शन रघुवर त्यागे, कैसे जीव बच जाई ॥

अब श्रीराम श्रृङ्गवेरपुर पहुँचे । सभी लोगों ने गंगा के किनारे उतरकर स्नान किया। यह खबर निषादराज को मिली । वे परिवार सहित भगवान से मिलने पहुँचे । निषादराज ने अनुरोध किया कि "आप मेरे घर चलें ।" लेकिन श्रीराम ने कहा- "वनवास काल में मैं किसी गाँव में नहीं जा सकता ।" यह सुनकर गुह ने झाड़ी के पत्तों से आसनी बनायी और तीनों को बैठाकर फल-फूल का भोजन कराया । राम, सीता और लखन वहीं विश्राम करने के लिए रूके । राम को पत्तों पर सोते देख लक्ष्मण को बड़ा दुःख हुआ कि जो राम-सीता मखमल पर चलते थे और जो साक्षात् परमात्मा हैं, आज वही वृक्ष के पत्तों पर सो रहे हैं । लक्ष्मण के विषाद को देखकर राम ने लक्ष्मण को समझाया कि- हे भाई !

चौ०

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥

राम ने लक्ष्मण को धर्मप्रद उपदेश दिया- "हे भाई, यहाँ कुछ भी सत्य नहीं है । जो तुम देख रहे हो, वह सब माया है । जिस प्रकार मनुष्य सपने में कभी राजा बन जाता है, कभी भिखारी बन जाता है लेकिन जागने पर वह वैसा कुछ नहीं रहता ।"

दो०

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥

इस तरह का प्रश्न महाराज जनक ने एक बार अपने गुरु अष्टावक्र से पूछा था "मैंने आज स्वप्न में देखा है कि मैं तितली हो गया हूँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि कहीं तितली भी स्वप्न तो नहीं देख रही है कि मैं जनक हो गयी हूँ । मेरा स्वप्न सत्य है, या तितली का ।" यह सुनकर गुरु ने जनक को बताया "जनक, तुम दोनों का स्वप्न असत्य है । यहाँ कुछ भी सत्य नहीं है । जो तुम देख रहे हो, वह है नहीं, यहाँ सब कुछ माया है।"

(महान वैज्ञानिक आईन्स्टीन कहते हैं- "जो तुम देखते हो वह पदार्थ है और पदार्थ केवल ऊर्जा है । दुनिया में कोई पदार्थ नहीं है, केवल ऊर्जा है ।" उसी को अध्यात्म कहता है- "इस संसार में केवल प्राण ऊर्जा है, जो विभिन्न प्रकार के रूपों में दिखती है लेकिन है नहीं । संसार का दिखना एक भ्रम है । विज्ञान भले ही उसे **"कास्मिक रेज"** कहता हो, लेकिन है वह चिदाकाश । ब्रह्म उसी चिदाकाश में प्राण रूप से विद्यमान है।")

राम ने लक्ष्मण को बहुत समझाया और कहा- हे भाई! किसी बात के लिए कभी किसी दूसरे को दोष मत देना-

चौ०

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब विषय बिलास बिरागा ॥

राम ने कहा- "हे भाई! इस दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति सोया हुआ है । जगा हुआ वही है, जो भोग-विलास से ऊपर उठ गया है ।"

जागने वाला जीता है, सुप्त मृत समान ।
अजगर को जीवन रहस्य का, कैसे हो पहचान ॥

(इसमें मेरा भाव है कि "जागता वही है, जो होशपूर्वक जीता है । अजगर जीता अवश्य है, लेकिन वह बेहोशी में जीता है और यह जीना मरे हुए के समान जीना हुआ ।" भगवान् बुद्ध कहते हैं- "तुम होशपूर्वक जीओ । तुम जो भी करते हो, यह जानकर करो कि तुम क्या कर रहे हो? होशपूर्वक किया हुआ काम पाप नहीं होता । पाप वह होता है, जो बेहोशी में किया जाता है ।" इसलिए तो कहते हैं- **"गुनाह करना गुनाह नहीं है, गुनाह को गुनाह मानकर करना गुनाह है ।"** पाप और पुण्य मन के भाव हैं । जिस भाव से तुम कर्म करते हो, उस भाव का महत्त्व है, काम का महत्त्व नहीं है । कोई डॉक्टर

किसी का ऑपरेशन करता है, तो उसकी नीयत रहती है कि रोगी को ठीक किया जाय। चीर-फाड़ करना उसका उद्देश्य नहीं है। चीर-फाड़ करके वह रोग तक पहुँचना चाहता है। यहाँ मन का भाव महत्त्वपूर्ण है, उस पर ही विचार किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति गलत आचरण करता है, उसे उसके लिए स्वयं आँसू बहाना पड़ता है।)

स्वयं आंख में आँसू भर ले, स्वयं उसे धोना पड़ता है।
मकड़ी जाल में स्वयं फंसती है, घुट-घुट कर मरना पड़ता है॥

उसके बाद श्रीराम नित्य कर्म से निवृत्त हुए। तब सुमंत ने कहा- "हे प्रभु! महाराज ने आदेश दिया था कि राम को जंगल दिखाकर ले आओ।" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे तात! मैं धर्म पालन कर रहा हूँ, इसमें आप मेरी सहायता करें।" यह सुनकर लक्ष्मणजी ने महाराज के प्रति कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग कर दिया, जिसे राम ने मना किया। राम ने सुमंतजी से कहा- "आप सीता को ले जाएं लेकिन मैं नहीं लौट सकता।" यह सुनकर सीता ने कहा- "हे तात! मेरे लिए पति के साथ रहना ही उपयुक्त है। इसलिए आपसे अनुरोध है कि आप लौट जाएं और हमलोगों को वन जाने दें।" सुमंतजी दुःखी मन से अयोध्या की ओर लौट आए।

गीत

जब अवधपुरी की सीमा से, श्रीराम का रथ उस पार हुआ।
सारथि सुमन्त ने हाथ जोड़ा, फिर कहा गमन पूरा हुआ॥
अब लौट चलो तुम अपने घर, माता का व्रत सम्पन्न हुआ।
श्रीराम ने उनको समझाया, क्यों मन में ऐसा ताप हुआ॥
सबसे पहले कैकेयी माँ को, प्रणाम मेरा निवेदित करना।
वह धन्य जगत की माता है, मन में संतोष उन्हें भरना॥

बलिहारी है उस माता को, जनहित में पुत्र का त्याग किया ।
निन्दित होगी यह मोह छोड़, इस जग का यह उपकार किया ॥
वह मातृ सर्वदा पूजित है, जो देव कार्य में उत्सुक है ।
जिसने पति का सम्मान किया, जो युद्ध-भूमि में वन्दित है ॥
कौशल्या माता को कहना, उसका सुपुत्र जन सेवक है ।
सुमित्रा माता को कहना, हम लखन सहित नत-मस्तक हैं ॥
उस महाव्रती ऊर्मिला को, मेरा आशीष बता देना ।
जिसकी त्याग तपस्या का, सत्कार सभी करते रहना ॥
मुझ पर है दायित्व भार, असुरों का ताण्डव अन्त करूँ ।
इस मातृ-भूमि के चरणों को, समग्र रूप निष्कंट करूँ ॥
मेरे देव तुल्य पिता ऐसे, इतिहास जिनका धरोहर है ।
उनके कार्यों को पूरा करना कीर्तिमान सदा मनोहर है ॥
जिस हेतु मातु ने वन भेजा, उस लक्ष्य को पूरा करना है ।
इस देश की रक्षा के कारण, संघर्ष मुझे अब करना है ॥

श्रीराम और केवट संवाद

(केवट एक नाविक था, जो गंगा में नाव चलाता था । नाव की उतराई से जो कुछ मिलता था, उसी से वह अपने परिवार का पालन-पोषण करता था । वह बहुत ही गरीब था, इसलिए भगवान् के प्रति मन में भक्ति थी । भारत में यह परम्परा है कि गरीब लोग ही भगवान् को अधिक मानते हैं । धनी लोग धन के अहंकार में भगवान् को नहीं मानते ।

शायद इसीलिए बाईबिल में कहा गया है कि "सुई की छेद से ऊँट निकल जाए, यह संभव है, लेकिन धनी व्यक्ति स्वर्ग पहुँच जाए, यह संभव नहीं है ।" स्पष्ट है कि धन के कारण ही लोग अहंकारी हो जाते हैं और अहंकार के चश्मे से देखने वाले को भगवान् कभी दिखाई नहीं पड़ता । इसीलिए हमारे संत, अपने को दीनहीन मानते हैं । गोस्वामीजी कहते हैं–

मो सम दीन न दिन कोई, तुम समान रघुबीर ।

शायद इसीलिए गरीब को **"दरिद्रनारायण"** कहा गया है ।

(जब मैं कथा कहने जाता हूँ तब कथा वाचन के क्रम में प्रतिदिन देखता हूँ कि रामकथा में गरीबों और महिलाओं की संख्या अधिक होती है । मुझे तो लगता है कि भारत में इन्हीं महिलाओं के आंचल में अभी तक धर्म बचा हुआ है । हमारी माताओं–बहनों ने जितना धार्मिक कार्य किया है, उतना हमारे पुरुष भाई ने नहीं किया । इसलिए हमारे शास्त्रों में नारियों की पूजा की बात कही गई है । क्योंकि जिस घर में नारी की मर्यादा सुरक्षित है, वहाँ धन, वैभव, सुख, शान्ति की कमी कभी नहीं होती और जिस परिवार में नारी की मर्यादा अमर्यादित और अनैतिक हो जाती है, उस परिवार का नाश हो जाता है, क्योंकि नारी परिवार के केन्द्र बिन्दु में रहती है ।)

प्रभु श्रीराम आगे बढ़ते हुए केवट को पुकारते हैं कि "भैया केवट! नाव लाना, मुझे पार उतरना है ।"

चौ०

मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥

राम की बात सुनकर केवट ने कहा- "हे प्रभु! मैं नाविक हूँ, मैंने सुना है कि आपके पाँव में कोई जड़ी है, जिसके छूने से पत्थर भी स्त्री बन गया था। लेकिन मेरी नाव तो काठ की है, यह तो तुरंत नारी बन जाएगी। अगर यह नारी बन गई तो मैं अपने परिवार का पालन-पोषण कैसे करूँगा? मुझे तो कोई दूसरा कबारू (व्यापार) भी नहीं आता। अब एक ही तरीका है कि आपको गंगा पार करना है, तो मैं आपका पाँव धो लूँ। तब कोई खतरा नहीं रहेगा।" यह सुनकर लखन लाल को क्रोध आ गया। लखनलाल ने केवट को डाँटते हुए कहा- "अरे केवट, तुम्हें पता है कि किससे बात कर रहे हो, इस उद्दंडता के लिए मैं तुम्हें सजा दूँगा।" सजा की बात सुनकर केवट ने उसी स्वर में जवाब दिया- "लखन भैया! मैं चाहता था कि श्रीराम का पाँव धोकर मन की शंका को दूर कर लूं, लेकिन आपकी रोषपूर्ण-वाणी सुनकर अब मेरी भी प्रतिज्ञा है कि पहले तो मैं प्रभु के पद को केवल धोना चाहता था, अब पखारूँगा।"

(धोने और पखारने में अन्तर है। धोने का अर्थ है सीधे पानी से धो देना और पखारने का अर्थ है, रगड़-रगड़कर साफ करना।)

केवट ने कहा- "श्रीराम के पाँव से स्पर्श होते ही पत्थर बनी गौतम की पत्नी अहिल्या स्त्री बन गई थी। इसलिए मैं कोई खतरा लेना नहीं चाहता। अगर आप श्रीराम का पाँव मुझे धोने नहीं देते तो इस घाट के पार नहीं उतर सकेंगे। हाँ एक रास्ता है, यहाँ से थोड़ी दूर हटकर गंगा में पानी कम है, आप वहाँ से हेल जाएँ, पार उतर जाएंगे।"

गोस्वामीजी ने भक्त और भगवान् के लाड़-प्यार का बड़ा सुन्दर चित्र अधोलिखित शब्दों में चित्रित किया है। आइए, उस चित्र को हम भी देखें-

क०

ऐहि घाट ते थोरिक दूर अहैं, कटिलौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग से पग धुरि तरै तरनि, घरनि घर क्यों समझाइहौं जू॥
तुलसी अवलम्ब न और कछु, लरिका केहि भांति जियाइहौं जू।
बरू मारिए तीर बिना पग धोए, हे नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

केवट की भक्ति निश्छल है । वह चाहता है कि प्रभु जब हमारे घाट पर आ गये हैं, तो उनका चरण स्पर्श करूँ। इसी के लिए केवट इतना तर्क-वितर्क कर रहा है । केवट की एक और प्रार्थना बहुत ही सुन्दर है, तो आइये, हम प्रेम से इसे भी गायें-

प्रार्थना

प्रभु मेरो चरण पखारन देहु

जिस चरणन को पाई अहिल्या, जीवन सफल करेहु ॥

प्रभु मेरो चरण ....!

जिस चरणन को पाई पवनसुत, भक्त राज पद लेहु ॥

प्रभु मेरो चरण ....!

धन बल पाया जनम गंवाया, छूटा प्रभु से नाता ।

पाप ताप संताप हमारा, सकल विघ्न हर लेहु ॥

प्रभु मेरो चरण ....!

धन्य मातु कैकेयी रानी, देव कार्य कर लेही ।

बनी कलंकिनी अपयश भोगी, सबको दर्शन देहु ॥

प्रभु मेरो चरण ....!

केवट की विनती सुनकर राम बहुत द्रवित हुए । लेकिन केवट की प्रार्थना लक्ष्मणजी को अच्छी नहीं लग रही थी । वे बार-बार केवट को धमका रहे थे कि तुम ऐसा हठ क्यों कर रहे हो, लेकिन केवट मानने वाला नहीं था । केवट ने फिर राम से कहा- "हे प्रभु! मुझे अपना पाँव धोने दो ।" इसी पर एक गीत लिखा गया है, आइए, हम इस गीत का आनंद इसे गाकर लें-

गीत

केवट विनती करे पड़े पइयां । पद पखारन दे हे रघुरइया ॥
तीर मारे भले लखन भइया । चढ़ न पाओगे तुम मेरी नइया ॥
केवट विनती करे ... ...!

जब से आए हो चिन्ता बढ़ी है । मेरी घरवाली पीछे खड़ी है ॥
तुम हो जादू के कैसे खेलैया । पद पखारन दे हे रघुरइया ॥
केवट विनती करे... ...!

प्रभु ने ज्योंही कहा पद पखारो । पद में मूरी कहां है निहारो ॥
बैठी जल में है गंगा मइया । पद पखारन दे हे रघुरइया ॥
केवट विनती करे... ...!

प्रभु ने हंसकर कहा क्या बुरा है । घरवाली से इतना डरा है ॥
सुनकर केवट ने प्रभु को बताया । राजा दशरथ का हाल सुनाया ॥
जिसके घर में न हो एक चटइया । कैसे खाए वो दो-दो मिठइया ॥
केवट विनती करे ... ...!

"सुदर्शन" कहे हे केवट भइया । जल लाओ धरो इनके पइयां ॥
कब तक विनती तुम करते रहोगे । सांस कब तक तुम गिनते रहोगे ॥
केवट विनती करे ... ...!

केवट बार-बार विनती कर रहा है, "हे दया के सागर, मुझ पर दया करो और मुझे अपना चरण धोने दो।" जिस चरण को छूने के लिए देवता लोग लालायित रहते हैं, उसी चरण को धोने की बात सुनकर सभी देवता केवट के सौभाग्य से स्पर्धा कर रहे हैं। केवट की विनती से प्रभावित होकर राम ने कहा- "केवट! तुम्हारे मन में डर है, कि मेरे पाँव के स्पर्श होते ही तुम्हारी नाव स्त्री बन जायेगी, तो तुम वही करो जिससे तुम्हारी नाव बच जाए।"

चौ०

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥

बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

राम ने केवट को कहा-"अब अधिक बिलम्ब न करो, मेरे पाँव धो लो।" यह सुनते ही केवट ने अपनी पत्नी और बच्चों से कहा- "जल्दी काठ के कठौता में गंगा जल भरकर ले आओ।" जब उसकी पत्नी कठौता में जल भरने लगी तो गंगा मइया ने सोचा कि अगर यह मेरे राम हैं, तो मैं इन्हीं के पाँव से निकली हूँ। इसलिए चलो यह जान भी लें कि ये हमारे प्रभु ही हैं, या अन्य कोई हैं। अगर ये हमारे प्रभु हैं, तो इनके पांव में शंख, चक्र, पद्म होगा ही, उसका भी दर्शन हो जाएगा। यह सोचकर गंगा भी कठौता में बैठ गई। यह बड़ा मोहक दृश्य है। परमात्मा का पाँव धोया जा रहा है और केवट तथा गंगा अपने को धन्य मान रहे हैं।

इसी भाव को लेकर मैंने एक गीत लिखा है, बड़ा मोहक प्रसंग है, आइए सब मिलकर के गाएं-

<u>गीत</u>

केवट के देख पिरीतिया हे, राम मने मुस्काये।

धो-धो के पोछे चरणिया हे, राम मने मुस्काये॥

केवट के देख पिरीतिया हे ... ...!

अगम निगम मुनि नित-नित ध्याये ।

देव दनुज सिद्ध समझ न पाये, राम मने मुस्काये ॥

केवट के देख पिरीतिया हे ... ...!

जनम-जनम-मुनि जतन कराये ।

अंत राम पद समझ न पाये, राम मने मुस्काये ॥

केवट के देख पिरीतिया हे ... ... !

जनम-जनम से आस लगाये ।

यह जीवन कहीं चूक न जाये, राम मने मुस्काये ॥

केवट के देख पिरीतिया हे ... ... !

चरण धोई चरणामृत पीये ।

कहे "सुदर्शन" केवट जीये, राम मने मुस्काये ॥

केवट के देख पिरीतिया हे ... ... !

केवट राम के पाँव धो रहा है और अपने भाग्य पर इतरा रहा है । पाँव धोने के बाद उसने उस जल का चरणामृत लिया, अपने पूरे परिवार को बुलाकर सबको चरणामृत दिया । फिर केवट ने डुग्गी बजाई, जितने पास-पड़ोस के लोग थे, सबों को बुलाया, सबको चरणामृत दिया ।

फिर भगवान् ने कहा- "केवट अब तो तुम्हारा काम हो गया ।" यह सुनकर केवट ने कहा- "हे प्रभु! आज हम धन्य हो गये । आपने मेरा कल्याण तो कर दिया, लेकिन मेरे पितरों का कल्याण अभी बाकी है, आप उनका भी कल्याण कर दें।" राम ने केवट की भक्ति देखकर "एवमस्तु" कहा ।

उसके बाद केवट ने राम, सीता और लक्ष्मण को नाव पर चढ़ाया । गंगा के उस पार जाने के बाद केवट ने किनारे पर नाव लगायी ।

दो०

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥

इस तरह केवट ने प्रभु को गंगा के उस पार पहुँचाया ।

ज्ञातव्य तथ्य

(केवट श्रीरामकथा का एक ऐसा पात्र है जो अपनी उपस्थिति से रामायण की घटनाओं को जोड़ता है। अति सामान्य दिखने वाला एक साधारण-सा नाविक पूरी कथा को दिशा देने में समर्थ है। गरीब, उपेक्षित और दीन-हीन अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करने वाला केवट मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम को गंगा तट पर देखकर बड़े ही स्पष्ट स्वर में कहता है कि मैं तुम्हारी आज्ञा मानने के लिए विवश नहीं हूँ। वह राम के अनुरोध को भी अस्वीकार करता है।

इस अस्वीकृति से पता चलता है कि रामकथा में श्रीराम का जो चरित्र उभरा है वह किसी चक्रवर्ती सम्राट् और महाप्रतापी राजा के पुत्र का नहीं। क्योंकि सम्राट् के पुत्र बनकर राम अगर वहाँ जाते तो एक साधारण नाविक उनकी आज्ञा को अस्वीकार नहीं करता।

स्पष्ट है कि राम भी एक सामान्य मानव की तरह केवट के पास स्वयं जाते हैं और गंगा पार कराने के लिए अनुनय- विनय करते हैं। इससे पता चलता है कि श्रीराम कोई सामन्तवादी परम्परा का पालन करने वाले नहीं है, वे समाज में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े के भाव को नष्ट करना चाहते हैं। मुझे लगता है कि प्रजातंत्र की व्यवस्था शायद यहीं से शुरू हुई। जिस दिन देश का सम्राट् किसी गरीब की कुटिया तक पहुँच जाए और उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगे तो समझना चाहिए सचमुच देश में

प्रजातांत्रिक व्यवस्था शुरू हो गई है। यहाँ तक केवट के जीवन का एक पक्ष है और उसके जीवन का दूसरा पक्ष है उसकी साख्य भाव की भक्ति । वह राम को दास्य भाव से नहीं देख रहा है, अपितु सखा भाव से देख रहा है।

इस सखा भाव से ही समतामूलक समाज की स्थापना होती है। केवट भी अपने को उपेक्षित नहीं मान रहा है। वह प्रभु का पाँव भी धोता है, लाड़-प्यार भी करता है और गले भी लगता है। उसके हठ को देखकर पहले तो लगता है कि वह उद्दण्ड है। लेकिन बाद में पता चलता है कि वह भक्त है और भक्त को लाड़-प्यार करने का पूरा अधिकार है।

स्वामी रामकृष्ण भी तो माता से झगड़ते थे और ऐसी वृत्ति उसी भक्त के मन में होती है जो निःस्वार्थ और निष्काम बन जाता है। अर्जुन भी श्रीकृष्ण का सखा था लेकिन वह उच्च कोटि का भक्त था । वही भाव केवट के हृदय में भी है। केवट की निश्छल भक्ति देखकर ही श्रीराम उसकी अवज्ञा को भी मुस्कुराते हुए झेलते हैं। लक्ष्मण जब आक्रोश करते हैं तब उसे भी शान्त करते हैं और केवट को बोलने देते हैं।

बड़ा उटपटांग लगता है उन लोगों के लिए जो श्रीराम के भक्त हैं। वे अपने भगवान को एक साधारण केवट से प्रताड़ित होते देख रहे हैं। लक्ष्मण ने जो विरोध किया, उसके विरोध का यही भाव है कि वह जानता है कि राम उसके भगवान हैं और उसके भगवान को साधारण केवट उपेक्षा किए जा रहा है। यह कोई साधारण घटना नहीं है।

रामायण का प्रमुख नायक एक केवट से उपेक्षित हो जाए, यह अद्‌भूत घटना है। इस भाव को केवट भी समझता है, लेकिन उसकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ है कि प्रभु की प्रभुता को भी अपने ही शर्तों पर स्वीकार करना चाहता है। प्रायः ऐसा नहीं होता है कि किसी नायक को कोई साधारण पात्र इस लघु रूप में समझें। इसलिए मैं केवट को एक महान् पात्र मानता हूँ।

गंगा तट पर श्रीराम खड़े हैं साथ में उनकी पत्नी और छोटा भाई खड़ा है। केवट गंगा में खड़ी नाव में बैठा है, वहीं से अपनी बातों को मनवाना चाहता है। एक दृष्टि से उन लोगों के लिए यह दुर्विनीत व्यवहार है जो छिछले ढंग से केवट को देखते हैं। लेकिन

केवट की भक्ति निश्छल है। वह अपने भगवान को पहचानता है। इस भगवान को पाने के लिए वह पिछले जन्म से प्रतीक्षा कर रहा है। इसीलिए वह अपने परमात्मा से अपनी वात्सल्य पूर्ण भक्ति के कारण लड़ रहा है। दरअसल केवट के मन में कोई रोष या अवज्ञा का भाव नहीं है। वह भक्ति में इतना अभिभूत है कि सारी औपचारिकताएँ भी भूल चुका है।

आज हम अपने परिवार के सामान्य सदस्य को भी "आप " कहते हैं। लेकिन केवट प्रभु को 'तुम' कहा रहा है। "आप" शब्द में औपचारिकता है लेकिन तुम शब्द में अपनत्त्व है। "त्वम्असि" मतलब तुम्हीं सब कुछ हो, यह भाव है केवट के मन में। इसलिए वह तमाम औपचारिक बंधनों को तोड़ते हुए अपने नाम से शर्त पूर्ण निवेदन कर रहा है।

राम की आज्ञा यह है कि तुम मुझे गंगा पार करा दो। यह राम की आज्ञा है और शर्त भी। केवट उनकी आज्ञा को अपनी शर्त पर पालन करना चाहता है। प्रभु पहले मेरी बात सुनें। पहले मेरी बात मानें, फिर मैं तुम्हारी बात सुनूंगा, यह केवट का शर्तपूर्ण अनुरोध है। इसी अनुरोध का लक्ष्मण विरोध करते हैं क्योंकि लक्ष्मण केवट को समझ नहीं पा रहे हैं। दूसरी ओर सीता सब कुछ जानते हुए केवल मुस्कुरा रही हैं। भगवान् और भक्त के भावों को देख रही हैं। लक्ष्मण ने इसलिए विरोध किया कि वह इस रहस्य को नहीं समझ सका।

लक्ष्मणजी के मन में समान्तवादी प्रथा, समाट् के पुत्र होने का अहंकार हो सकता है, जिस कारण वह इस लाड़-प्यार को नहीं समझ पा रहे हैं क्योंकि जहाँ अहंकार होता है वहाँ प्यार नहीं रहता है। मनुष्य के जीवन में जब अहंकार आता है तो प्रेम तिरोहित हो जाता है। प्रेम का निवास अहंकार के घर में नहीं होता। प्रेम तो समर्पण है। स्वयं के विसर्जन को ही प्रेम कहते हैं। जब तक दो का भाव मन में रहता है तब तक प्रेम घटित नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम आत्म विस्मरण है। केवट मानता है कि वह तो है ही नहीं। वह तो कब का विलीन हो चुका है। इसलिए वह प्रभु को एकात्म भाव से देख रहा है।

केवट कौन था?

केवट के संबंध में कहा जाता है कि वह पूर्वजन्म में महर्षि वशिष्ठ का पुत्र था। वह ज्ञानी था, लेकिन ज्ञान के कारण अहंकारी हो गया था। महर्षि वशिष्ठ और अरून्धती के सौ पुत्र हुए थे, जिसे विश्वामित्र ने लड़ाई में मार दिया था। संतों का मानना है कि केवट उन्हीं भाइयों में से एक था।

बहश्रुत कथा है कि महाराज दशरथ को जब श्रवण कुमार की हत्या के कारण ब्रह्म-हत्या का दोष लगा तो महाराज दशरथ चिन्ता में पड़ गए। क्योंकि वे जानते थे यह ब्रह्म-हत्या को दोष उन्हें अनजाने में लग गया है, लेकिन प्रकृति का यह नियम है कि पाप जान कर हो या अनजाने में हो, पाप तो पाप ही है। जैसे अनजाने में अगर आग पर हाथ पड़ जाये तो भी हाथ जलता है। अनजाने में कोई वृक्ष से गिर जाये तो भी हाथ-पांव टूटता है।

दरअसल, प्रकृति ने अपना स्पष्ट नियम बना रखा है। एक तरफ शुभकर्म है दूसरे तरफ अशुभ कर्म है। अतः जो भी कर्म करेंगे, उसका अच्छा या बुरा आपको अवश्य ही भोगना पड़ेगा। प्रकृति के नियम में अगर-मगर नहीं चलता, भूल अनजाने में हुई, लेकिन भूल तो भूल है। इसलिए महाराज दशरथ ने नैतिक नियमों का पालन करते हुए निश्चय किया कि उन्हें इसका प्रायश्चित करना चाहिए। महाराज दशरथ चाहते तो इस बात को छिपा लेते। लेकिन छिपाने से किसी घटना का प्रभाव कम नहीं होता। जैसे कोई व्यक्ति अन्धेरी रात में कहीं कोई अपराध करता है, तो यह ठीक है कि वहाँ कोई उसे देख नहीं रहा है। लेकिन दो चार दिनों में उस बात को कई लोग जानने लगते हैं। क्योंकि यह प्रकृति और विज्ञान का भी नियम है कि जो भी घटनायें घटती हैं, उसका प्रभाव अनन्त काल तक वातावरण में रहता है। इसलिए रहीम कवि कहते हैं-

''खैर खून खांसी खुशी, दाबे नहीं दबाये ।''

इसलिए महाराज दशरथ ने प्रायश्चित करने का मन बनाया। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ के पास अपना दूत भेजा, लेकिन संयोग से गुरु वशिष्ठ घर पर नहीं थे। उस समय उनका

पुत्र घर पर था। उन्होंने उस दूत से पूछा, महाराजजी ने पिताजी को क्यों बुलाया है? दूत ने पूरी बात बता दी।

पूरी घटना को सुनकर वशिष्ठजी के पुत्र ने कहा कि यह तो ब्रह्म-हत्या का साधारण-सा दोष है। इसका निराकरण तो मैं भी कर सकता हूँ। इस कार्य के लिए पिताजी की क्या आवश्यकता है? मैं स्वयं चलकर महाराजजी को दोषमुक्त कर देता हूँ। वे दूत के साथ महाराज के पास आये। पूरे विधि-विधान के साथ ब्रह्म-हत्या दोष से मुक्ति के लिए उन्होंने हवन आदि कराया और 21 बार ''राम'' शब्द का उच्चारण करवाया। यह कार्य चल ही रहा था तभी वशिष्ठजी जब अपने घर आये तो उन्हें पता चला कि महाराज दशरथ उन्हें बुला रहे थे। वे शीघ्र महराज दशरथ के पास पहुँचे। वशिष्ठजी ने पूरी घटना स्वयं देखी और अपने पुत्र से पूछा कि तुमने किस विधि का पालन किया? पुत्र से सम्पूर्ण यज्ञ विधि को सुनते ही वशिष्ठ क्रोधित हो गए। उन्होंने कहा कि तुमने यज्ञ तो ठीक कराया, लेकिन इतने छोटे दोष के लिए तुमने 21 बार ''राम'' शब्द का प्रयोग कराया। यह बहुत अनर्थ हुआ। इस दोष के लिए एक बार ही राम शब्द का प्रयोग काफी था। तुमने श्री राम की महिमा का अपमान किया है। अतः बहुत बड़ा अपराध किया है। इस अपराध के लिए मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम मलेच्छ बन जाओ।

श्राप सुनकर पुत्र ने पिता का पैर पकड़कर गिड़गिड़ाना शुरू कर दिया। वशिष्ठजी पुत्र की भक्ति देख प्रसन्न हुए और बोले कि जाओ तुम केवट बन जाओ। जब प्रभु श्रीराम अवतार लेंगे और वनवास जाने के क्रम में गंगा तट पहुँचेंगे तो तुम उनके पैर धोकर अमृतपान करोगे, उसी दिन तुम्हें इस श्राप से मुक्ति मिलेगी। गंगातट पर श्रीराम और केवट का मिलन कोई सामान्य मिलन नहीं है। यह पूर्व जन्म के संस्कारों का आध्यात्मिक मिलन है। इसलिए यहाँ केवट किसी व्यापार की बात नहीं कर रहा है, केवल पाँव धोने की जिद कर रहा है। पाँव धोना और चरणामृत लेना, यह कार्य कोई बहुत बड़ा भक्त ही पर सकता है। सामान्य पथिक से कोई नाविक मजदूरी में पैसा मांगेगा, लेकिन केवट दूर से ही पुकार कर कहता है कि पहले मुझे तुम्हारा पैर धोना है।

इससे एक बात और साफ होती है कि केवट यह भी जानना चाहता है कि क्या सचमुच राम के पैरों में इतनी शक्ति है कि अहिल्या का उद्धार हो जाएगा अगर ऐसा है तो श्रीराम अवश्य ही परमात्मा हैं। जिस परमात्मा की प्रतीक्षा वह वर्षों से कर रहा है। बगल में लक्ष्मण खड़े हैं। उन्हें कुछ पता नहीं चलता कि इन दोनों की बातचीत में कौन सी आध्यात्मिक घटना घट रही है।

अब प्रभु श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित गंगा पार उतरे और सोचने लगे–

चौ०

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥

अर्थात श्रीराम जब घाट पर उतरे तो सोचने लगे कि इस केवट को मैंने कुछ दिया नहीं । अब परमात्मा, अपने भक्त को कुछ देना चाहते हैं । यह भाव बड़ा अद्भुत है । इसी पर मैंने एक गीत लिखा है । आइए, सब मिलकर इसे गायें –

गीत

प्रभु ने ज्योंही कहा, तुम क्या लोगे ।
केवट पइयां पड़े, अब क्या दोगे ॥
जब से देखा है तुमको, नशा छा गया ।
अब क्या दोगे तुम, सब कुछ मैं पा गया ॥
जिसको पाने की खातिर, जनम बीत गया ।
जब तुम मिल गये, बाकी क्या रह गया ॥
तेरे चरणों को पाकर, अगर जी न भरा ।
नश्वर दुनिया को पाकर, कोई क्या बन गया ॥

जब से तुम मिल गये, मुझको सब मिल गया ।
अब क्या दोगे तुम, सब कुछ मैं पा गया ॥
मैं केवट हूँ, गंगा उतारा तुम्हें ।
भवसागर उतारोगे, अब तुम हमें ॥
घरवाली और बच्चे, तो सब मिल गया ।
तेरे चरणों की छाया, से मैं चूक गया ॥
दूर चरणों से मुझको तू, क्यों कर दिया ।
अपने भक्तों को संकट, में क्यों धर दिया ॥

राम ने जब सोचा कि केवट को उतराई देना चाहिए लेकिन राम के पास तो कुछ था नहीं, राम की मानसिक स्थिति देखकर सीता समझ गई कि प्रभु कुछ देना चाहते हैं–

चौ०

पिय हिय की सिय जाननिहारि । मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई । केवट चरन गहे अकुलाई ॥

सीता ने जब राम के मन की बात समझ ली तो तुरंत हाथ की अंगूठी उतारकर दे दी । श्रीराम ने केवट से कहा– "केवट तुम अपनी उतराई ले लो ।" केवट ने हाथ जोड़कर विनती की, कि हे प्रभु! ऐसा न करें–

चौ०

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥

"हे प्रभु, मैंने तो अब तक दुनिया की सेवा की है । आज पहली बार परमात्मा की सेवा करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है । मुझे तो आज संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति मिल गई । आज की यह एक दिन की कमाई तो कई जन्मों तक चलेगी ।"

चौ०

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें । दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहिं जो कछु देवा । सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा ॥

"दीनदयाल अनुग्रह तोरें" मतलब तुमने तो मेरे मन की जो लालसा थी, उसे ही तोड़ दिया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। हे राम! मेरे मन में जो विकार है, अवगुण है, उसे नष्ट कर दो और मुझे अपने शरण में स्वीकार कर लो, ताकि मैं अपना शेष जीवन निष्काम कर्म करते हुए व्यतीत करूँ। इस संसार में लम्बे समय रहना और संसार का भोग करना दोनों अनुचित है। हमें संसार का भोग नहीं उपयोग करना है। संसार में रहते हुए नैतिक कर्म करते रहें और अपना जीवन व्यतीत करते रहें, हमें वैसा ही आशीर्वाद दो क्योंकि–

तोड़ो तेरा-मेरा बन्धन, कोई नहीं है तेरा ।
बीच भंवर में नइया तेरी, राम हैं एक किनारा ॥
ना घर तेरा ना घर मेरा, कौन किसे समझाए ।
रैन बसेरा यह जग भाई, रात कटे घर जाए ॥

"हे प्रभु ! आपको देखकर आज पहली बार मन में यह बोध हो रहा है कि आज तक संसार के झूठे बन्धन में पड़ा था इसलिए हे प्रभु! मुझे कुछ देने का प्रयास न करें । अगर देना हो तो आप अपना आशीर्वाद मुझे दें । आपकी अहैतुकी कृपा मुझे प्राप्त हो, ऐसा वरदान हमें दें । एक और प्रार्थना है, आप अगर मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो एक वचन दें कि आज इस घाट पर आपको मैंने गंगा पार उतारा है तो जिस दिन मैं आपके

घाट पर आऊँगा, तो आप भी मुझे पार उतार दीजिएगा। क्योंकि आप भवसागर के खेवईया हैं और सबसे बड़ी बात है कि एक मल्लाह दूसरे मल्लाह से उतराई नहीं लेता। हे प्रभु! मेरी उतराई को उधार मानकर केवल याद रखिएगा। लौटते समय आप जो कुछ भी देंगे, उसे मैं प्रसाद समझकर ले लूँगा।"

इस प्रकार के भाव को अपने हृदय में स्थापित करते हुए केवट प्रभु के समझ प्रार्थना करता है। उस प्रार्थना को इस रूप में बाँधा गया है। आइए हम सब भी इसे गुनगुनाएँ–

केवट की प्रार्थना

हे प्रभु दीनदयाल अनुग्रह तोड़ बड़ा उपकार किया।
भव बन्धन से तोड़ा मुझको, कई जन्मों का उद्धार किया॥
हे राम! अहं के कारण ही, ऋषि कुल से मैं परित्यक्त हुआ।
ऋषि कुल अध पतन ही, केवट घर में उत्पन्न हुआ॥
अज्ञान को ज्ञान समझता था, संसार समझ नहीं पाता था।
ज्ञानी वशिष्ठ के ब्रह्म तत्त्व का, अर्थ समझ नहीं आता था॥
काम, क्रोध, अज्ञान के कारण, जीवन में जो पशुता आई।
इस पशुता को प्रभु नष्ट करो, दर्शन कर आँखें भर आई॥
जिस क्षण तट पे देखा तुझको, पल भर में दिव्य प्रकाश मिला।
अब टूट चुका बन्धन सारा, जीवन को सरल सुवास मिला॥
हे दीनबंधु, अब क्या दोगे, पद रज मैंने जब पान किया।
मधुकर सौरभ को पीकर क्या, सूखी लकड़ी का कब पान किया॥

यह जीवन सृष्टि वैभव सारा, अज्ञान तिमिर की छाया है ।
जो दृश्य मोह का कारण है, ममता वश मन भरमाया है ॥
जब तक मैं तुम से दूर रहा, संसार को सत्य समझता था ।
अब बोध हुआ पद-रज पाकर, आग्रह-विग्रह का नाता था ॥
जब ब्रह्म भक्ति से मिलता है, सब भाव स्वयं गिर जाता है ।
जीवन का सत्य हो आँखों में, अज्ञान स्वयं गिर जाता है ॥
आखों में ब्रह्म खड़ा जब हो, तब चाह स्वयं मर जाती है ।
सागर के सम्मुख जब हो, सब प्यास स्वयं मिट जाती है ॥
हम जीवों में तुम अंशी हो, हर प्राण तुम्हीं से चलता है ।
धन, वैभव, सुत, दारा, भ्राता, माया वश सब यह नाता है ॥
यह धन वैभव था बंधन, सब मोह तमिस्रा सारी है ।
कैसे जीवन को पार करूँ, संसार धर्म अति भारी है ॥
धन के अधीन है नर-नारी, धन दास नहीं कभी बनता है ।
इस धन के खातिर मातु-पिता, बान्धव शत्रु बन जाता है ॥
हे नाथ मुझे वर दो ऐसा, जीवन का अर्थ समझ पाऊँ ।
तोड़ूँ जग के सब बंधन को, संशय विग्रह से बच जाऊँ ॥
अपनी ही करनी के कारण, मानव दानव बन जाता है ।
निज कर्मों से ही शिलालेख, जीवन की दिशा बताता है ॥

अब नहीं चाहिए धन वैभव, प्रभु चरणों में स्वीकार करो ।
ताकि टूटे अज्ञान तिमिर, इस जीवन का निस्तार करो ॥
हर जीव लोभ के कारण ही, मंदिर से भी धन लाता है ।
जब स्वयं प्रभु मेरे घर आये, मधु छोड़ कीट कोई खाता है ॥
करुणा करके करुणानिधान, अघ कर्म पूर्व के नष्ट करो ।
अशीष मुझे दो हे दाता, इन आँखों में नव ज्योति भरो ॥
जिस रूप का दर्शन करने को, सुधी संत योग में लीन हुए ।
वह रूप आज इन आँखों के, प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुए ॥
मोती को छोड़ समुन्दर में, घोंघा लेना कोई अर्थ नहीं ।
इस दिव्य ज्ञान के बदले में, वैभव पाना कोई अर्थ नहीं ॥
जो ब्रह्म अनादि अगोचर है, वह द्वार हमारे आया है ।
अपने चरणों की धूलि से, इस तन को शुचि बनाया है ॥
तुम कहते हो माँगूं तुमसे, वरदान एक प्रभु दे देना ।
जब घाट तुम्हारे मैं आऊँ, मेरी नैया पार लगा देना ॥
मैं गंगा तट का केवट हूँ, तुम भवसागर के केवट हो ।
दोनों का मान बराबर है, इस हेतु तू बंधु हमारे हो ॥

प्रभु श्रीराम केवट के इस प्रार्थना से अति द्रवित हुए । उनके हृदय से करूणा की धारा बह निकली। भइया लक्ष्मण और माता सीता के साथ केवट के ऊपर अपनी कृपा

दृष्टि रखते हुए संसार धर्म का सदुपदेश करने लगे। इस सदुपदेश को मैंने इस रूप में बाँधा है, आइए इसका भी आनन्द लें–

श्रीराम का केवट को उपदेश

प्रभु ने केवट को गले लगा, करुणा का आशीर्वाद दिया ।
तुमने केवट निज भक्ति से, इस जगति का उद्धार किया ॥
हे भक्त शिरोमणि हे केवट, तप योग ज्ञान सब आधा है ।
भक्ति तो आत्म समर्पण है, षट्कर्म आदि सब बाधा है ॥
जिस तन में भक्ति उपजती है, कण-कण प्रेमी बन जाता है ॥
जो जीभर प्रेम को पीता है, उसमें विभेद मिट जाता है ।
जीवन से मत भागो केवट, जीवन प्रभु तक पहुँचाता है ॥
तुम त्यागपूर्ण जीवन कर लो, दुःख कष्ट स्वयं मिट जाता है ॥
संग्रह से दुःख बढ़ जाता है, परित्याग दुःख को खाता है ।
निष्काम कर्मयोगी बनकर, जो जीता है सुख पाता है ॥
इस गंगा तट पर हे केवट, मैं दिव्य ज्ञान तुम्हें देता हूँ ।
अनुरागपूर्ण जीवन जीना, संकट मन का हर लेता हूँ ॥
जब तक जीवन जीना तुम, षड्दोष विकृति से बचे रहना ।
यह जीवन है परिताप नहीं, नैतिक कर्मों से मत हटना ॥

जो राज महल में रहते हैं, संचित कर्मों को पाते हैं ।
क्रियमाण कर्म के फल से ही, आगे का जीवन पाते हैं ॥
हे प्रिय सखा केवट सुन लो, यह प्रकृति स्वयं अनुशासन है ।
दिव्यलोक से भूतल तक, अस्तित्व सृष्टि का शासन है ॥
एक पत्ता भी गिरता द्रुम से, उसका अस्तित्व नियोजित है ।
हम आज खड़े गंगा तट पे, यह भी घटना आयोजित है ॥
यह जीव सृष्टि मृगतृष्णा है, मृगवत् सब भाग रहे ।
क्षण भर के भोग वितृष्णा में, सब अपने को ही काट रहे ॥
तेरी भक्ति में नहीं छल हे केवट, ऐसी भक्ति मुझे सुहाती है ।
इसलिए आज गंगा तट पे, तेरी भक्ति मुझे सुहाती है ॥
शाश्वत है सत्य सदा जग में, दृश्यमान जगत् सब धोखा है ।
यह भाव सदा मन में रखना, यह जीवन बड़ा अनोखा है ॥
नर रूप में आकर हे केवट, देवों का कार्य निभाना है ।
इस रूप में संकट सहकर भी, इस देश को स्वर्ग बनाना है ॥
जब तक जाग्रत बन जीते हो, जगती का सत्य झलकता है ।
संशय, सपना, अज्ञान लोक में, सत्य नहीं चमकता है ॥

तुम में जो ज्ञान पिपासा है, यह गुण संतों में सुलभ नहीं ।
इसलिए तुम्हें बतलाता हूँ, निश्छल को यह सब अलभ नहीं ॥
संचित कर्मों के कारण ही, वर्तमान रूप नर पाता है ।
कीचड़ में पंकज चलता है, शंभु उर विषधर रहता है ॥
पिछले जन्मों के पुण्यों से, तेरे मन में यह सद्भाव उठा ।
इस भाव के कारण ही तुम अब, समझोगे क्या सच्चा-झूठा ॥
तन के सुख-दुःख में मत पड़ना, मन में तुम दिव्य प्रकाश भरो ।
संतों सम निर्धन बनकर भी, उस परमानन्द का ध्यान करो ॥
है आँखों का ये खेल-विपर्यय, हानि-लाभ, जीना-मरना ।
जैसे बादल से सागर तक, नहीं होता जल का भी मरना ॥
इस सृष्टि चक्र के कारण ही, सब रूप अरूप का खेला है ।
घुमती चक्की को देख बता, है कहाँ आदि, बस मेला है ॥
यह दिवा रात्रि, जीवन-मरण, यह चक्र निरंतर चलता है ।
जिस मन में ज्ञान उपजता है, उसे तत्त्व ज्ञान हो जाता है ॥
जिस सुख के लिए ललकते हो, वह सुख तो क्षणिक व छोटा है ।
उस परमानन्द की बात करो, जिसके समक्ष सब खोटा है ॥

यह काम, वासना, धन-वैभव, वह क्षणिक भास सुख देता है ।

आओ आनंद के लोक जहाँ, सुख परम शान्ति का होता है ॥

जब ज्ञान रवि मन में उठता, अज्ञान तमस मिट जाता है ।

मन में विकार के मिटते ही, संशय-विभ्रम मिट जाता है ॥

हे केवट फूलों का सौरभ जीवन है, झरना का कलरव जीवन है ।

भंवरों का गुंजन जीवन है, कोयल का नर्तन जीवन है ॥

लहरों का घर्षण जीवन है, मेघों का गर्जन जीवन है ।

प्रेमी का मिलना जीवन है, संगीत ओठ पै जीवन है ॥

यह लोभ, मोह, जड़ता बंधन, अज्ञानी को ही होता है ।

माया के बंधन में पड़कर, नर पशु रूप बन जाता है ॥

मानव अपने सत् कर्मों से, वह दिव्य पुरुष बन सकता है ।

दृष्टि को महज बदलने से, सत्-असत् भेद कर सकता है ॥

प्रभु श्रीराम से जीवन और संसार के सर्वविध उपदेश को सुनकर केवट सपरिवार अति उपकृत हुआ। उसके हृदय में प्रभु के प्रति और अधिक आस्था एवं समर्पित विसर्जन का भाव उमड़ने लगा। उसका रोम-रोम उपकृत शब्दभाव बोलने लगा। उन मनोभावों को इस शब्दों में बाँधने का प्रयास किया गया है। आइए प्रभ की प्रभुता को इस रूप में धन्यवाद प्रदान करें-

कैसे अरदास करूँ प्रभु तेरा, इतना तुमने प्यार किया,

किन शब्दों में करूँ वन्दगी, इतना जो उपकार किया

इस तन मन में भरी जवानी, हर साँसों में प्यार दिया,

हर घड़कन को दिल से जोड़ा, होठों पे मुस्कान दिया।

कैसे अरदास ....

रस से भरी तन में तरूणाई, आँखों में उन्माद दिया,

रोम-रोम उपकृत है मेरा, इतना तुमने प्यार किया।

कैसे अरदास ....

काम, क्रोध अभिमान में पड़कर, इस जीवन का नाश किया,

तुमने तोड़ा राग अनुग्रह, सब पापों का नाश किया।

कैसे अरदास ....

नहीं कोई मन में रही लालसा, हर ममता को त्याग दिया,

अब कुछ चाह न रही दयानिधि, इस जीवन को धन्य किया।

कैसे अरदास ....

अब, श्रीराम वन यात्रा के लिए प्रयागराज की ओर प्रस्थान कर गए और केवट अपने घर पर लौट आया, इसके बाद केवट गाँव, मुहल्ले के लोगों को बुलाकर राम की महिमा का पूरा वृत्तान्त सुनाया और सब मिलकर एक भजन गाने लगे । आइए, हम भी उस मण्डली में बैठकर केवट के साथ यह गीत गायें-

<u>गीत</u>

श्रीराम को गले लगाये जा,
जीवन में सब कुछ पाये जा ।

जब तक तेरे तन में सांस रहे,
तब तक तेरे मन में आस रहे
प्रभु चरणों में शीश झुकाये ज़ा,
जीवन में सब कुछ पाये जा ।
श्रीराम को गले ....

यह जग कितना बेगाना है,
कहीं और न ठौर ठिकाना है ।
हर सांस में प्रभु गुण गाये जा,
जीवन में सबकुछ पाये जा ।
श्रीराम को गले ....

चौरासी के दुःख याद रहे,
संसार बेगाना याद रहे,
यह सोच प्रभु गुण गाये जा,
जीवन में सब कुछ पाये जा ।
श्रीराम को गले ....

उधर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने गंगाजी को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद मांगा ।

चौ०

सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥

हे माता, आशीर्वाद दो कि हम सभी लोग कुशलपूर्वक पुनः तुम्हारे दर्शन करने आ सकें। ऐसा कहा भी जाता है, मनुष्य जब कहीं जाता है, तो जाते समय अपने गुरुजन को कहता है कि मैं पुनः आता हूँ, जाता हूँ ऐसा नहीं कहा जाता । विद्यापति ने भी ऐसा ही कहा था-

पुन दर्शन होए पुनमति गंगे ।

यह नियम है कि किसी यात्रा पर जाते समय परमात्मा का स्मरण करके जाना चाहिए । क्योंकि तब यात्रा में परमात्मा उसकी रक्षा करता है । जो गंगा केवट के कठौते में बैठकर राम का चरण स्पर्श करती है, उसी गंगा की प्रार्थना राम और सीता कर रहे हैं । क्योंकि भारत में गीता, गाय, गायत्री और गंगा को बहुत पवित्र माना जाता है । गंगादर्शन के बाद राम, सीता और लखन पहली बार इतने दुरूह मार्ग पर खाली पैर चल रहे हैं । मार्ग में आगे राम, बीच में सीता और पीछे लखन ऐसे लग रहे हैं, **ब्रह्म जीव बीच माया जैसे** । राम ब्रह्म हैं, लखन जीव हैं और बीच में माया रूपी शक्ति खड़ी है । जीव जब तक माया से पार नहीं जाता, तब तक वह ब्रह्म से नहीं मिल पाता क्योंकि राम तो लीला कर रहे हैं और अपनी लीलाओं के माध्यम से अनीति का नाश और नैतिक नियमों की स्थापना कर रहे हैं । यहाँ परमात्मा स्वयं जीव बनकर लोगों को बता रहे हैं कि यही आदर्श जीवन है । पिता की आज्ञा पाकर समाज में इन्हीं मूल्यों की स्थापना कर रहे हैं कि माता-पिता की सेवा पुत्र का प्रधान धर्म है । राम प्रयागराज की ओर बढ़ रहे हैं । जब राम रास्ते में चलने लगे तो मार्ग के दोनों ओर बसे गाँवों की महिलाएं राम, सीता, और लखन को जाते देख उनके दर्शन के

लिए दौड़ीं । महिलाएं, सुकोमल सीता को देखकर आपस में बात करने लगी कि कौन ऐसा निष्ठुर माँ-बाप है, जिसने ऐसे सुन्दर राजकुमार और इस राजकुमारी को इस तरह भटकने के लिए छोड़ दिया । इस अवसर पर मेरे मन में एक बड़ा ही सुन्दर गीत आया है । आइए, सब मिलकर इस सुन्दर गीत को गायें-

गीत

सीता के मन के विहारी,
विपिन चले धनुधारी ।

ग्राम वधू पूछे के हई सांवरा,
चांद सूरज सन रूप जइसन भांवरा ।
कइसन हई बाप महतारी,
विपिन चले धनुधारी ।

गोर रूप हई देवर प्यारा,
श्याम रूप हमर आँख के तारा,
रिम-झिम बहत बयारी,
विपिन चले धनुधारी ।

दुष्ट दलन दशरथ के प्यारा,
मुनि सेवा अधिकार हमारा ।
खेलत शावक प्यारी,
विपिन चले धनुधारी ।

गाँव की महिलाओं ने जब राम और सीता के विषय में जिज्ञासा की तो सीताजी कहती हैं, कि जो गोरा है, वह मेरा देवर है और साँवला मेरी आंखों का तारा है । बिना नाम लिए सीता ने तीनों का परिचय दे दिया । भारत की महिलाएं पति का नाम नहीं

लेती हैं । ऐसा कहा जाता है कि उससे पति की आयु कम होती है । इस तरह सीता कांकड़-पत्थर के मार्ग पर खाली पाँव चल रही हैं । कुछ दूर और जाती हैं, तो दूसरे गाँव के नर-नारी, तीनों को घेर लेते हैं और उनका नाम पता पूछते हैं । स्वाभाविक है, जब कोई नया व्यक्ति गाँव में आता है तो लोग उसका नाम-पता पूछते हैं । यहाँ भी उत्सुकता से गाँव के लोग राम से पूछते हैं कि- **ये बबुआ, अपना बता द तू नाम-**

की०

ये बबुआ, अपना बता द तू नाम ।
कहमां से आवेला, कहमा बा गाम ॥
ये बबुआ, अपना................!
राजा जैसे लक्षण बा, सिंह जैसे चाल ।
पीठवा पर धनुष-बाण, हथवा में ढाल ॥
ये बबुआ, अपना................!
के हौ तोहर माई-बाप, किनकर तू लाल ।
सुरज सन मुँह तोहर, चाँद जइसन भाल ॥
ये बबुआ, अपना................!
सुन्दर सुकुमारी जैसे, कमलन के नाल ।
कइसे चलत होईहें, पइया पे छाल ॥
ये बबुआ, अपना................!
कौन निरमोही देलन, वनमा में डाल ।
कैसे गमबइत होइहें, दिन और काल ॥
ये बबुआ, अपना................!

सुनि सुकुमारी सिय, हंसे लखनलाल ।
रघुवर की ओर देखी, मुसके कमाल ॥
ये बबुआ, अपना................!

कौन गोरे सांवरे रूप में ललाम ।
जियवा में हूक मारे, मन बे लगाम ॥
ये बबुआ, अपना................!

राम, सीता और लक्ष्मण निरन्तर चले जा रहे हैं और गाँव की महिलाएं बार-बार पूछती थीं कि आखिर आपलोग घर छोड़कर बाहर क्यों जा रहे हैं? इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना आपलोगों ने किसलिए पसन्द किया? राम को भय हो रहा था कि कहीं लोगों को यह पता न चल जाए कि पिता की आज्ञा से हमलोग वन जा रहे हैं । तो सम्भव है कि मेरे माता-पिता के बारे में इन लोगों के मन कोई क्षोभ हो जाय । राम नहीं चाहते कि उनके माता-पिता को कोई अपशब्द कहे । यह राम की मर्यादा है कि वे नहीं चाहते कि उनके साथ जो हुआ है, वह दूसरों को पता चल जाए । राम यह भी सोचते हैं, कि अभी जो यह घटना घटी है, यह कोई आज की बात नहीं है । पिताजी ने तो बहुत पहले ही ऐसा वचन दे दिया था । अपने पूर्व वचन का पालन, यह तो रघुवंशी का धर्म है ।

(प्रश्न उठता है कि महाराज ने तीन शादियां क्यों की? बड़ी माता से कोई संतान नहीं थी, तो दूसरी माता कैकेयी से संतान के लिए पिताजी ने विवाह किया । फिर उनसे भी जब कोई संतान नहीं हुई तो तीसरी माँ सुमित्रा से जो मगधदेश की राजकुमारी थी, उनसे विवाह किया । इन तीनों से जब कोई संतान नहीं हुई तो पिताजी को चिन्तित होना स्वाभाविक था । इसका प्रधान कारण यह था कि रावण ने छल से सुबक्षा नामक राक्षसी को भेजकर पिताजी को निस्तेज कर दिया था । माता कैकेयी को पिताजी ने

पहले ही वर दे दिया था। माता कैकेयी ने वर के अनुरूप पिताजी से वरदान मांगकर अपने पुत्र भरत को राज्य दिलवाया है, तो इसमें पिताजी का क्या दोष हो सकता है और माता कैकेयी का भी कोई दोष नहीं, क्योंकि उन्होंने पूर्व में प्राप्त वरदान के अनुसार ही काम किया। राम मार्ग पर चल रहे हैं और मन में विचार कर रहे हैं कि मेरे धर्मात्मा पिता के पूर्व में दिए गए वचन का कोई गलत अर्थ न लगा ले। क्योंकि **किसी भी वर्तमान घटना का सम्बन्ध पूर्व की कई घटनाओं से होता है।** राम ऐसा सोचते जा रहे हैं। भय है, मार्ग में खड़ी इन महिलाओं को मेरे परिवार की इस घटना की जानकारी न हो जाय। राह चलते कितने लोगों को पूरी कहानी बताई जाए।)

राम स्वयं आगे चल रहे हैं, बीच में सीता, उनके पीछे लक्ष्मण और उनके पीछे निषादराज चल रहे हैं। निषादराज राम को अकेले छोड़ना नहीं चाहते। राम की एक आंख आगे के मार्ग पर है और दूसरी आंख सीता की ओर है। कंकड़ भरे मार्ग पर चलने में सीता के पाँव में कितना दर्द होता होगा, यह समझ वे पीड़ा अनुभव कर रहे हैं। उधर सीता को भी पता है, कि राम भी खाली पाँव चल रहे हैं, जिनका पाँव मक्खन के समान कोमल है, वे आंकड़-पाथर पर कैसे चल रहे हैं। राम की हालत पर चिन्ता करते हुए सीता कभी पानी पीने के बहाने किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाती हैं, तो कभी पाँव से कांटा निकालने के लिए मार्ग के बगल में इसलिए बैठ जाती हैं कि इतनी देर में राम थोड़ा सुस्ता लें।

क०

जल को गए लखन हैं लरिका परिखों रिय छाँह घरीक है ठाढे।
पोछ पसेउ बयारि करौं अरू पाय पखारिहों भूभुरि डाढ़े॥
'तुलसी' रघुवीर पिता श्रम जानि कै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह कौ नेह लख्यो पुलको तन वारि विलोचन बाढ़े।

विशेष प्रसंग-

(राम और सीता दोनों मानसिक रूप से एक दूसरे के बारे में सोचते जा रहे हैं । राम को पता है कि जिस कारण उनका जन्म हुआ है उस कार्य को पूरा करने में पत्नी सीता का सहयोग चाहिए । क्योंकि कोई भी बड़ा काम पति-पत्नी को साथ मिलकर करना पड़ता है । राम के संकल्प को पूरा करने के लिए आज सीता शारीरिक रूप से इतना कष्ट सह रही हैं । जिस सीता को मखमल पर चलने से फोड़ा निकल जाता हो, वही पाँव आज कंकड़ पर चल रहा है ।

यह सत्य है कि किसी बड़े काम को पूरा करने के लिए बड़ा संकल्प करना पड़ता है । कोई भी व्यक्ति अगर सफलता के शिखर पर चढ़ता है तो वह बिना परिश्रम के शिखर पर नहीं पहुँचता । उसके लिए काफी परिश्रम करना पड़ता है । राम तो त्याग-पुरुष हैं । धर्म की स्थापना और जीवन में नैतिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए उन्होंने स्वयं संघर्ष का मार्ग चुना है । अगर वे इतना संघर्ष नहीं करते तो वे अयोध्या के एक साधारण राजकुमार बनकर रह जाते । वे भगवान् नहीं बनते । आज उनकी पूजा नहीं होती । पूजा उसी की होती है जो पूजा के योग्य होते हैं । राम सोच रहे हैं कि अगर आज वे संकट नहीं सहेंगे तो बिना कारण रावण तक पहुँचा भी नहीं जा सकता । क्योंकि रावण के नाश के लिए प्रत्यक्ष परिस्थिति भी आवश्यक है । इसलिए वनवास के लिए वे माता कैकेयी को भी दोष नहीं देते । कैकेयी तो राम को राम बनने में सहायता कर रही है । कैकेयी, भरत के लिए नहीं, राम के लिए कलंकिनी बनी । उसे राम को राम बनाने के लिए इतना अपयश मिला । अगर वह ऐसा नहीं करती तो राम राजसिंहासन पर बैठकर अयोध्या का राज करते और एक साधारण राजा की तरह जीवन व्यतीत करते । राम का परमात्मा होना पता नहीं चलता और राम के जीवन का कोई अर्थ भी नहीं होता । राम को इस बात की पूरी जानकारी है इसलिए उनके मन में कोई दुःख नहीं होता । वे बड़े गर्व से कहते हैं कि- **पिता दीन्ह मोहिं**

कानन राजू । जंगल का राजा बनना राम को इसलिए अच्छा लगा कि सारे दुष्ट, राक्षस जंगल में रहकर ही संतों को परेशान करते हैं ।

जब पिता ने उन्हें जंगल का राजा बना दिया तो जंगल में जितने भी दुष्ट उपद्रव मचा रहे हैं, राजा होने के कारण उनका धर्म है कि इन उपद्रवों को वे शान्त करें। जंगल में रहकर श्रीराम वहाँ अशान्ति पैदा करने वाले राक्षसों का नाश करना चाहते हैं क्योंकि वे जंगल का राजा बन गये हैं । राजा का दायित्व है कि वह ऐसे उपद्रवी तत्त्वों का नाश करे, जो राज्य के अमन चैन को तोड़ते हैं । इसलिए वे मार्ग पर चलते हुए पूरी योजना से अवगत हो रहे हैं ।)

राम वन के मार्ग में सबसे पहले भारद्वाज मुनि से मिलते हैं । भारद्वाज से पूरी योजना पर बात करते हैं । फिर महर्षि वाल्मीकि के यहाँ जाते हैं । वाल्मीकि ने भी राम को जंगल के उपद्रवों के सम्बन्ध में समझाया । इन संतों से औपचारिक मिलन नहीं है, बल्कि राम इन संतों की आगामी योजनाओं से अवगत हो रहे हैं । महर्षि वाल्मीकि ने राम को केवल उपदेश ही नहीं दिया बल्कि उन्हें आगामी परिस्थिति के लिए तैयार भी किया । तभी राम ने पूछा कि महर्षि, अब मुझे बताएं कि मेरा पहला पड़ाव कहाँ हो । वाल्मीकि ने कहा–

चौ०

चित्रकूट गिरि करहु निबासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥

श्रीराम वहाँ से चित्रकूट पहुँचे । उन्होंने चित्रकूट को देखा, प्रभु राम की इच्छा पर लक्ष्मणजी ने सभी कोल-जाति के सहयोग से एक सुन्दर कुटिया का निर्माण किया और राम, सीता और लक्ष्मण वहीं विश्राम करने लगे । राम प्रतिदिन सीता और लक्ष्मण को उपदेश दिया करते थे और चित्रकूट के चारों ओर की परिस्थिति को देखते एवं समझते । यह सूचना जब वहाँ के लोगों को मिली, तो वे सभी उनके के दर्शन के लिए आने लगे ।

(ऐसा नियम भी है कि- अगर किसी बड़े काम को पूरा करना है, तो उस स्थान विशेष पर रहकर वहाँ की परिस्थिति से अवगत होना पड़ता है। चित्रकूट के चारों ओर राक्षसों के अनेक शिविर लगे हुए थे, इसलिए वाल्मीकि के परामर्श से श्रीराम ने चित्रकूट में अपना आश्रम बनाया। उनको पता था कि यह उपद्रवग्रस्त क्षेत्र है। वहीं से दुष्टों के संहार की योजना बननी चाहिए।)

सुमंत का अयोध्या लौटना और भरत का ननिहाल से वापस आना

प्रभु श्रीराम को चित्रकूट पहुँचाकर, निषादराज वापस लौट आए। सुमंतजी इस प्रतीक्षा में थे कि सम्भव है राम लौटें। श्रीराम को नहीं देखकर वे रोने-कलपने लगे। सोचने लगे कि खाली रथ लेकर अवध में किस मुँह से जाऊंगा। महाराज, माताएं, नगरवासी जब पूछेंगे तो मैं क्या जबाव दूँगा, इस वेदना के साथ सुमंत विचार कर रहे हैं कि अवध में कैसे प्रवेश करूं? फिर उन्होंने सोचा कि यदि अवध में रात के समय प्रवेश किया जाए तो कोई नहीं देख सकेगा।

चौ०

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥

सुमंत रात्रि पहर अवध सीमा में प्रवेश करते हैं और सबसे पहले राजा दशरथ के भवन में प्रवेश किया। यह देख सभी माताएँ सुमंत से मिलने दौड़ीं, लेकिन सुमंत ने किसी को कुछ जवाब नहीं दिया। वे सीधे राजा के पास गये, राजा मलिन वस्त्र पहने जमीन पर पड़े थे। सुमंत को आते देख उठ बैठे और तुरन्त पूछा- "सुमंत! राम कहाँ है?" राजा यह जानना चाहते थे कि राम, सीता और लक्ष्मण अभी कहाँ हैं, मैंने उन्हें राजा बनाने का गलत वचन सुनाकर वनवास दे दिया। सुमंत ने राजा को बहुत समझाया कि- आप धीर पुरूष हैं, शोक छोड़िए और राम का कुशल समाचार सुनिए। राम ने सबसे पहले तमसा तट पर विश्राम किया, फिर उन्होंने गंगा पार किया, उनके साथ हजारों निषादगण चल रहे थे। मुझे राम ने वहीं रोक दिया और आप सबों

को प्रणाम कहने के लिए संदेश भेजा है । उन्होंने सभी माताओं और भरत के लिए भी संदेश भेजा और वे आगे की यात्रा के लिए निकल पड़े । यह सुनते ही राजा निष्प्राण होने लगे और थोड़ी ही देर में दशरथ के प्राण कंठ तक आ गये । वे केवल राम-राम कहते रहे-

दो०

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राऊ गयउ सुरधाम ॥

थोड़ी देर में दशरथ की मृत्यु हो गई । उनकी मृत्यु की खबर सुनकर पूरी अयोध्या शोक में डूब गई । जब वशिष्टजी को दशरथ की मृत्यु की सूचना मिली तो वे शीघ्र राजमहल में आए। वशिष्टजी सोचने लगे, जिस सम्राट् के चार पुत्र हों और मृत्युकाल में वहाँ कोई भी उपस्थित नहीं रहे, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है । राम और लक्ष्मण वन में हैं, भरत और शत्रुघ्न ननिहाल में हैं । परमात्मा का यह कैसा न्याय है कि आज मृत्युकाल में उनके पास श्राद्धकर्म करने वाला भी कोई नहीं है । वशिष्टजी ने राजा के शरीर को औषधियुक्त तेल की कड़ाह में रखवा दिया और भरत को बुलाने के लिए दूत भेजा । दूत ने भरतजी को यह नहीं बताया कि राजा की मृत्यु हो गई है और राम वन चले गए हैं । दूत ने उन्हें गुरु वशिष्ठ के आदेश से सिर्फ आने का संवाद दिया ।

स्वाभाविक है कि दूर बैठे किसी अपने व्यक्ति को अप्रिय समाचार सुनाने से उसे भी अधिक नुकसान होने की संभावना रहती है । भरतजी अपने ननिहाल से अतिशीघ्र लौटे । पूरा नगर सुनसान, उदास पड़ा था । भरतजी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर बात क्या है? जिससे पूछते, वही सिर झुकाकर खड़ा हो जाता । आशंकाओं से घिरे भरत महल में प्रवेश करते हैं, पुत्र को आते देख कैकेयी आरती उतारने दौड़ती है । कैकेयी ने कहा-

चौ०

तात बात मैं सकल सँवारी । भै मंथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ । भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥

भरतजी को देख कैकई आरती लेकर दौड़ी और बोली– "बेटा भरत! मैंने सबकुछ संभाल लिया है । तुम्हें राजा बनने का मार्ग अब साफ हो गया है । लेकिन यही एक गड़बड़ हो गई है कि तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हो गया है ।"

भरत ने जब सुना कि पिता का स्वर्गवास हो गया है, तो वे स्तब्ध रह गये । कैकेयी ने भरत को बहुत समझाया कि राजा तो बूढ़े हो गये थे । उनके लिए शोक मत करो और तुम राज्य करो । यह सुन भरत ने कहा– "माँ! यह सब कैसे हुआ?" यह सुन कैकेयी ने कहा– "बेटा! महाराज राम का राज्याभिषेक करना चाहते थे । वे चाहते थे कि राम को राजा बना दिया जाए और तुम्हें उसका दास बना दिया जाए । यह बात मंथरा को समझ में आ गई । मंथरा ने मुझे बताया कि महाराज और कौशल्या षडयंत्र करके ऐसा कर रहे हैं । मंथरा ने मुझे स्मरण दिलाया कि देवासुर संग्राम के अवसर पर जब मैंने महाराज के रथ के पहिये की कील में अपनी अंगुली लगाकर रथ को गिरने से रोका था, तो मेरी सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने मुझे दो वरदान दिया था, जिसे मैं कभी भी मांग सकती थी । मैंने उन्हीं दोनों वरदानों को आज राजा से मांग लिया । मैंने पहला वरदान मांगा कि राम के बदले भरत का राज्याभिषेक किया जाय ।" यह सुनते ही भरत आत्मग्लानि में पड़ गये ।

भरत ने कहा– "तुम्हें ऐसा वरदान मांगते समय शर्म नहीं लगी । भैया राम क्या सोचते होंगे कि राज्य के लिए भरत ने भाई के प्रेम को छोड़ दिया । माँ! तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है, जिसके लिए तुम्हें कोई क्षमा नहीं कर सकता । मैं अभी तुम्हारे कुकृत के लिए पिता समान भैया से माफी मांगने जा रहा हूँ। मुझे तुम्हारा दिया हुआ राज्य नहीं चाहिए ।"

फिर भरत ने कहा- "बताओ, भैया कहाँ हैं?" यह सुनते ही कैकेयी ने कहा- "यही तो मैं कह रही हूँ, मैंने राजा से तुम्हारे लिए राज्य और राम के लिए चौदह वर्षों का वनवास मांगा है, क्योंकि मैं जानती थी कि अगर राम अयोध्या में रहेगा तो तुम्हें शान्ति से राज्य नहीं करने देगा। इसीलिए उन्हें वनवास भेज दिया गया। राम, लक्ष्मण और सीता वन चले गए हैं।"

यह सुनते ही भरत धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े और बार-बार क्रन्दन करने लगे। किसी तरह भरतजी उठे और कैकेयी को पापिनी, कलंकिनी कहकर काफी अपमानित किया। भरत ने कहा- इस तरह का वर मांगते हुए, तुम्हारी जीभ कटकर क्यों नहीं गिर गई? भरत और शत्रुघ्न दोनों ने कैकेयी को बहुत अपमानित किया। शत्रुघ्न ने तो मंथरा की पीठ पर एक लात मारी। लात लगते ही मंथरा बेहोश होकर गिर पड़ी। इसके बाद भरत दौड़ते हुए माता कौशल्या के पास पहुँचे। भरत बार-बार अपने को दोषी मान रहे हैं कि मैंने कैकेयी की कोख से क्यों जन्म लिया? भरत बार-बार माता कौशल्या से पूछ रहे हैं कि मेरे पिता और मेरे भाई राम, लक्ष्मण कहाँ हैं? कौशल्या ने भरत को प्यार करते हुए समझाया कि तुम्हारे पिताजी का स्वर्गवास हो गया है और तुम्हारे भाई, भाभी और लखन वन चले गये हैं। यह सुनते ही भरत के ऊपर तो मानो पहाड़ गिर गया। भरत अत्यन्त दुखी हो रो पड़े, कौशल्या ने बहुत समझाया।

उसी समय गुरु वशिष्टजी वहाँ पहुँचे, उन्होंने महाराज के शरीर का विधिपूर्वक संस्कार कराया। उस अवसर पर ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और भरतजी को वशिष्टजी ने जीवन और जगत् के सम्बन्ध में उपदेश दिया। वशिष्टजी ने कहा-

दो०

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

वशिष्टजी ने कहा- हे भरत, पिताजी ने तुम्हें अवध का राज्य दिया है, तुम उस आज्ञा का पालन करो । इस प्रस्ताव का माताओं ने समर्थन किया है, लेकिन यह सुनकर भरतजी ने कहा-

दो०

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु

हे गुरुदेव! पिताजी स्वर्ग चले गये, भाई वन में चले गये और आप मुझे राज्य करने को कहते हैं मेरा तो जन्म ही श्रीराम की सेवा के लिए हुआ है । आपलोग मुझे आज्ञा दें कि मैं प्रभु राम के पास जाऊँ । मैं किसी भी कीमत पर राज्य नहीं करूँगा । मेरी माँ ने जो कृत्य किया है, उसमें मैं भागीदार नहीं बनूँगा । भरत को सभी लोगों ने बहुत समझाया, लेकिन भरत यही कहते रहे कि मैं भैया राम को मनाने और अयोध्या वापस लाने जरूर जाऊँगा । भरत की यह बात सुनकर राम को मनाने जाने के लिए सभी लोग सहमत हो गये । देखते-देखते पूरी अयोध्या की प्रजा, माताएँ, राम को मनाने चलने के लिए तैयार हो गये । जनकपुर से जनकजी, माता सुनयना सभी लोग आ गये, भरतजी ने आदेश दिया कि श्रीराम के राजतिलक का सारा सामान ले लिया जाय और वन में ही उनका राजतिलक संपन्न किया जाएगा ।

भरत का चित्रकूट प्रस्थान

अयोध्या से सभी लोग वन के लिए प्रस्थान कर गये, जिनमें महाराज जनक, माता सुनयना, अयोध्या की राजमाताएं, गुरु वशिष्ठ, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, ऊर्मिला आदि प्रमुख हैं । इसके साथ ही अयोध्या की पूरी सेना ने भरत के साथ चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया । भरत के साथ-साथ रथ भी चल रहा था, लेकिन भरत रथ पर बैठने को तैयार नहीं थे । पुनः गुरु और माता के मनाने पर दोनों भाई रथ पर बैठ गए । रात्रि होने पर पहला पड़ाव श्रृङ्गवेरपुर में रखा गया । सेना सहित भरत को जाते देख निषादराज को मन में संदेह हुआ । निषादराज ने सोचा- "कहीं ऐसा तो नहीं कि राम

को अकेला समझकर भरतजी उनपर आक्रमण करने जा रहे हैं, अगर ऐसा हुआ तो हम गंगातट पर भरत का मुकाबला करेंगे।"

चौ०

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

निषादराज ने अपने आदमियों को कहा- "तुमलोग भरत से मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाओ।" उसी समय गुप्तचर ने सूचना दी कि "भरत राम से लड़ने नहीं, उन्हें मनाकर लौटाने जा रहे हैं।" एक वृद्ध व्यक्ति ने निषादराज को समझाया, पहले भरत के मन की बात समझ लो, तभी कोई कदम उठाना। यह बात सुनते ही निषादराज ने अपने साथियों से कहा- "भरत के लिए विभिन्न प्रकार की भेंट की वस्तु ले आओ और सब मिलकर भरत से मिलने चलो।"

चौ०

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि-भरि भार कहारन्ह आने॥

अगर भरतजी राम से मिलने जा रहे हैं, तब तो हम सभी उनका स्वागत करेंगे। और अगर उनके मन में खोट होगा तो, उनका मुकाबला किया जाएगा। हम जीते जी भरत को गंगा-पार नहीं होने देंगे। यही सोचकर सभी लोग आगे बढ़े। जब निषादराज भेंट लेकर भरत के पास पहुँचे तो, वशिष्टजी ने भरत से कहा- यह राम का मित्र है। यह सुनते ही भरतजी ने रथ से कूदकर निषादराज को गले लगा लिया। उसके बाद भरतजी ने माताओं के साथ गंगा में स्नान किया और जिस घाट पर राम पार उतरे थे उस घाट को **"रामघाट"** कहकर प्रणाम किया। जिस स्थान पर सीता और राम ने विश्राम किया था, उस स्थान को भी भरतजी ने प्रणाम किया। भरतजी सोच रहे हैं कि "जिस राम ने कभी दुःख का नाम नहीं सुना, वही आज दुःखों से भरा जीवन जी रहे हैं।" उसके बाद निषादराज ने सबों को गंगा पार कराया। तत्पश्चात् लोग **भारद्वाज** मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ने सबों को आशीर्वाद दिया और उनके रहने

की व्यवस्था की । मुनि ने भरतजी से माताओं का परिचय पूछा । भरतजी ने बताया, "यह हमारी बड़ी माँ हैं, जो परम प्रतापी श्रीराम की माता हैं, दूसरी हमारे प्राण के प्रिय लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता सुमित्रा हैं और तीसरी हमारी माँ है, जिनके कारण श्रीराम को वन जाना पड़ा और मुझे कुल-कलंक बनकर जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है ।" मुनि भारद्वाज ने भरत को समझाया कि "राम के वनवास के लिए कैकेयी को दोष मत दो । ऐसा होना परमात्मा की इच्छा है ।" भारद्वाज से आशीर्वाद लेकर और त्रिवेणी को प्रणाम कर भरत आगे की ओर बढ़े । भरत के द्वारा एक बड़ा सुन्दर गीत गाया गया है, जिसमें भरत के मन की पीड़ा का स्पष्ट दर्शन होता है-

<u>गीत</u>

तन रह गेल इहमां परान बैरनिया ।
कैसे बीते रे मेरी सारी उमरिया ॥

भरत विचार करे कैसे मुंह दिखाऊँ,
भैया-भैया किसको पुकारूं परिनियाँ,
कैसे बीते रे मेरी............................॥

भैया के आदेश को कैसे मैं भुलाऊँ,
कैसे नजरिया से नजर मैं मिलाऊँ,
पलकों से कैसे बुहारूँ डगरिया,
कैसे बीते रे मेरी............................॥

सुन भेल नगरवासी अपना बेगाना,
कोई कहे वंशघाती कोई मारे ताना,
कैसे उठाके चलूँ अपनी नजरिया,
कैसे बीते रे मेरी............................॥

वन में कांट-कुश पां पग में चुभत होई,
रतवा में अखियन से असुअन बहत होई,
लखन भईया करत होइहें उनकी अगोरिया,
कैसे बीते रे मेरी..........................॥

चाँद सूरज जिनका रूप के निहारे,
सुर नर मुनि सब आरती उतारे,
राजा से रंक कैसे कइली महतरिया,
कैसे बीते रे मेरी..........................॥

कहत सुदर्शन सब भगवा के खेल बा,
चाहला से ना होई, सब के सबसे मेल बा,
भगवा का नियम होई का करे करमिया,
कैसे बीते रे मेरी..........................॥

भरतजी निर्मल भाव से राम से मिलने भागे चले जा रहे हैं। मन में शंका उठती है कि कहीं राम ने उन्हें ठुकरा दिया, तब वे क्या करेंगे? अगर राम ने ठुकराया तो वे वहीं प्राण त्याग देंगे। भरत की निश्छल भक्ति देखकर सभी लोग भाव-विभोर हैं। यह वही भरत है, जब वे त्रिवेणी में स्नान कर रहे थे तो गंगा मैया से कहा था कि हे त्रिवेणी की धवल धारा, मुझे अर्थ, धर्म और काम की लालसा नहीं है, जीवन भर राम के चरणों में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे, ऐसा ही आशीर्वाद मुझे दो। भले ही राम मुझे ठुकरा दें, लेकिन मेरी भक्ति कम न हो। भरत की वाणी सुनकर सुरसरि ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

अर्थ न धर्म न काम रूचि गति न चहौं निर्बाण।
जनम जनम सियाराम पद यह वरदान न आन॥

भरतजी केवल राम का ध्यान करते जा रहे थे जहाँ-जहाँ राम ने विश्राम किया था, निषादराज के द्वारा बताये गये उन स्थलों को भरत स्पर्श करते और प्रणाम करते। भरत की भक्ति देखकर देवताओं ने सोचा- "कहीं भरत का प्रेम देखकर राम वन से लौट न जाएं। अगर ऐसा हुआ तो सब गड़बड़ हो जाएगा।"

चौ०

गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई॥

इस पर बृहस्पति ने कहा- "हे देवताओं! धर्मात्मा भरत श्रीराम की भक्ति में लीन हैं। उसमें विघ्न डालने का प्रयास न करें।" रामभक्त की भक्ति में अगर कोई विघ्न डालता है तो वह जलकर भस्म हो जाता है। भरत तो परमभक्त है-

चौ०

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जपु जेही॥

दुनिया के लोग राम को जपते हैं और राम भरत को जपते हैं। इसलिए हे देवताओं! ऐसा विचार मन में मत आने दो। अगर किसी का बुरा सोचोगे, तो तुम्हारा बुरा होगा।

चौ०

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

भरतजी प्रभु राम से मिलने जा रहे हैं, लेकिन उनकी एक-एक साँस से राम-राम निकल रहा है। रास्ते में यमुना नदी आई। भरत ने वहाँ विश्राम किया और सुबह होते ही चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। भरतजी सोच रहे हैं कि "इस कांट-कुश भरे जंगल में भैया, भाभी और लखन कैसे भटकते होंगे? कहाँ सोते होंगे? घास-फूस की मड़ई में कुश की चटाई पर मेरी सुकुमारी भाभी कैसे सोती होंगी? वहाँ न कोई दाई होगी, न कोई सेवा करने वाला होगा। जिस भाभी को मखमल पर चलने से भी पाँव में दर्द हो जाता है, वह इस बंजर भूमि पर कैसे चलती होगी?" इसी भाव पर

एक बड़ा सुन्दर गीत भरतजी की ओर से लिखा गया है । आइए, हम सब मिलकर प्रेम से उस गीत को गाएं-

गी०

कहमा के घुमत होइहें भाभी ओ भइया ।
बता दे कोई रे कहां होइहें लखन भइया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

फूस के मड़इया होई कुश के चटइया ।
मृगवा के छाला में घास के रजइया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

पगवा में घिस-घिस छाला होई पइयाँ ।
नेओन जैसे गोड़वा से टपके बेवइया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

देहवा पिरात होई न होई कोई दइया ।
मखमल पे चलला से फाटे बेवइया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

झींगुर चिल्होर बादुर घूमत होई रतिया ।
उठ-उठ डेरात होइहें कांपत होई गतिया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

केहन निरमोही बन के डसलन हमार मइया ।
राजा से रंक कइलन केहन कसइया ॥
बता दे कोई रे कहाँ..............!

भरत को जब पता चला कि चित्रकूट निकट आ रहा है तब और भाव-विह्वल हो गये । रास्ते में जो कोई मिलता उनसे भरतजी पूछते कि भैया, भाभी और लखन किस वन में हैं? भरत बड़ी व्यग्रता से चित्रकूट की ओर भागे जा रहे हैं । ज्यों-ज्यों चित्रकूट निकट आता जा रहा था, भरत के हृदय की धड़कन बढ़ती चली जा रही थी । भरत यही सोच रहे थे कि मैं भइया का सामना कैसे करूँगा? वे क्या कहेंगे? इस तरह के अनेक संदेहों के बीच भरत का मानसिक संतुलन खोता जा रहा था ।

दूसरी ओर चित्रकूट में एक रात सीता ने स्वप्न देखा कि अयोध्या में कोई अप्रिय बात हो गई है, माताएँ रो रही हैं, इस स्वप्न की चर्चा सीता ने राम से की । राम ने सीता को समझाया, "सभी स्वप्न सत्य नहीं होते । दिन में मनुष्य जैसा सोचता है, रात के स्वप्न में वैसा ही देखता है ।"

जब श्रीराम, सीता को समझा रहे थे उसी समय लक्ष्मणजी को कुछ स्थानीय लड़कों ने बताया कि एक बहुत बड़ी सेना इधर आ रही है । यह सुनते ही लक्ष्मणजी के कान खड़े हो गये । उन्हें लगा कि अवश्य ही यह सेना भरत की होगी, जो भैया को अकेला जानकर उनपर आक्रमण करना चाहती है । यह सोचते ही लक्ष्मण का रौद्ररूप प्रकट हो गया-

चौ०

जौं सहाय कर संकरु आई । तौं मारउँ रन राम दोहाई ॥

लक्ष्मणजी ने घोषणा की कि अगर भरत ने ऐसा दुस्साहस किया, तो मैं आज उन्हें रणभूमि में धूल चटा दूँगा । लक्ष्मण की गर्जना सुनकर दिक्पाल कांपने लगे और तभी आकाशवाणी हुई- "हे सौमित्र, कोई भी कदम सोच-समझकर उठाना ।" देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये । इसके बाद प्रभु श्रीराम ने कहा- भाई लक्ष्मण! भरत को कभी भी राज्य का मोह नहीं हो सकता-

दो०

भरतहि होई न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजि सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥

चौ०

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमदु भरतहि भाई ॥

राम ने लक्ष्मण को समझाया– "भरत के मन में ऐसा पाप नहीं आ सकता । क्योंकि जो व्यक्ति नैतिक है, सदाचारी है, वह किसी का बुरा नहीं चाह सकता है ।" इस अवसर पर देवताओं ने आकाशवाणी की– "हे राम, हे लक्ष्मण, भरत के सम्बन्ध में ऐसा सोचना पाप है । भरत तुम्हारा परमभक्त है ।" अभी यह चर्चा हो ही रही थी कि भरतजी पूरे समाज के साथ नदी के किनारे पर पहुँच गये । भरतजी ने सबों को वहीं रुकने को कहा और स्वयं राम से मिलने आगे बढ़े भरतजी को भय था कि कहीं इतने लोगों को आते देख भइया अन्यत्र न चले जाएं । सबों को नदी किनारे छोड़ भरत जी भाई शत्रुघ्न और निषादराज के साथ राम के निकट जाने लगे ।

भरत-मिलाप

भरत ने सोचा कि मैं भैया को अपना कलंकित मुँह कैसे दिखाऊँ? यह सोच भरतजी जमीन पर लेटकर केहुनी के बल सरकने लगे । उधर राम बड़ी व्यग्रता से नदी पर खड़े समाज को देख रहे थे, फिर राम ने निषादराज को देखा लेकिन भरत कहीं नहीं दिख रहे थे । राम बार-बार पूछ रहे थे । भरत कहाँ है? भरत कहाँ है? कोई कुछ उत्तर नहीं दे रहा था । जब राम अधिक व्यग्र हो गये, तब निषादराज ने कहा, "प्रभु! भरत को उधर कहाँ देख रहे हैं । भरत तो आपके चरणों पर पड़ा दंडवत् कर रहा है और उसकी आंखों से आँसू गिर रहे हैं । हे प्रभु, अपने पैरों पर पड़े भरत को देखें ।"

श्रीराम ने देखा कि भरत औंधे मुँह पड़ा आँसू बहा रहा है । राम ने भरत को उठाया, गले लगाया और दोनों रोने लगे । कहते हैं इस करूण-दृश्य को देखकर चित्रकूट का पत्थर भी पिघल गया । आज भी राम और भरत के मिलन का प्रतीक पत्थर इस भ्रातृ-मिलन का गवाही दे रहा है । सचमुच इतिहास में आजतक ऐसा मिलन कभी नहीं हुआ होगा-

दो०

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥

भरत और राम ऐसे गले मिल रहे हैं जैसे दो तन एक हो गया हो । दोनों की आँखों से अश्रु की धारा बह रही है । चित्रकूट में जो लोग जाते हैं, वहाँ यह लोकोक्ति प्रचलित है कि राम और भरत के मिलन को देखकर पशु, पक्षी, पेड़-पौधे, सभी रोने लगे । चिड़ियों का कलरव बन्द हो गया, नदी का बहना बन्द हो गया । हवा स्तब्ध रह गई, कुछ देर के लिए लगा कि वातावरण महाशून्य बन गया । लगता था जैसे सृष्टि की सांस रुक गई है और संपूर्ण जीव-जगत् आंसुओं के सैलाव में डूब गया है । आज तक ऐसा महामिलन कभी किसी ने नहीं देखा । थोड़ी देर के लिए ही सही जीव ब्रह्म में जैसे विलीन हो गए हों, कहीं कोई स्पन्दन नहीं था । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पानी का बूँद समुद्र में लय हो गया हो ।

राम ने अपने आँसुओं को रोककर भरत से पूछा- "मेरे प्रिय भाई, तुम कैसे हो? माता कैकेयी और पिताजी कैसे हैं, तुम तो अयोध्या के उत्तराधिकारी हो, पिताजी की आज्ञा से मैं यहाँ आ गया हूँ, मेरे आशीर्वाद से अयोध्या की प्रजा एवं माता-पिता की सेवा करना, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ ।" यह सुन भरत ने कहा- "भैया! आप किस प्रजा और अयोध्या की बात कर रहे हैं, अयोध्या की प्रजा तो आपसे मिलने आपके पास आ गई । आज तो सारा नगर चित्रकूट में आ गया है ।" यह सुनते ही राम लोगों

से मिलने दौड़े । जाते ही उन्होंने माता कैकेयी को प्रणाम किया फिर माता कौशल्या और सुमित्रा से मिले । गुरु वशिष्ठ को नमन किया एवम् नगरवासियों का अभिवादन स्वीकार किया । सीता और लक्ष्मण भी माताओं और प्रजाजनों से मिले ।

थोड़ी देर के बाद राम ने पूछा- "गुरुदेव, माताएँ श्वेतवस्त्र पहनकर क्यों आई हैं?" तब वशिष्टजी को बताना पड़ा कि महाराज का स्वर्गवास हो गया है । यह सुनकर राम अत्यन्त दुःखी हो गये । गुरु के आदेश से राम ने सरोवर में जाकर विधिपूर्वक अपने पिता को श्रद्धांजलि दी । उसके बाद ब्राह्मणों एवं अन्य वनवासियों को भोजन कराया गया । इस बीच सीता अपनी सासु माताओं की सेवा करती रहीं ।

दूसरे दिन गुरु वशिष्ठ ने अयोध्या से आए नर-नारियों को बुलाया और विचार के लिए प्रस्ताव रखा कि, अयोध्या का राज्यसंचालन कौन करेगा? राजा का स्वर्गवास हो गया है, राम वन में आ गये हैं, भरत राजतिलक नहीं चाहते, फिर अयोध्या पर किसका शासन चलेगा?

चौ०

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ॥

यह सुनकर भरतजी ने कहा- "मैं तो जीवनभर वन में रहने के लिए तैयार हूँ ।" भरत की बात सुनकर वशिष्टजी ने कहा- "मेरी बुद्धि भरत के प्रेम के अधीन हो गई है ।" इस पर राम ने कहा- "आज तक विश्व में भरत के समान भाई पैदा नहीं हुआ ।"

चौ०

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ॥

इस पर भरतजी ने कहा- "भैया! यह तो आपकी बड़ाई है, आप तो खेलते समय भी मुझे कभी हारने नहीं देते थे । आज मेरे कारण आप खाली पाँव सुकुमारी भाभी के साथ कंटक भरे वन में भटक रहे हैं । आपका दुःख देखकर तो विषधर भी विष

को भूल रहा है और इन सबों का कारण मैं हूँ ।" यह सुनकर राम ने कहा- "भरत! तुम तो इतने पवित्र आत्मा हो कि तुम्हारा नाम लेने से लोगों का दुःख, संकट मिट जाता है ।"

दो०

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥

राम ने कहा- "जो अपने कर्मों से दिव्य बन जाता है, उसका नाम भी पवित्र हो जाता है । तुम तो मेरे स्वरूप हो ।" यह सुनकर भरतजी ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा- "हे प्रभु, अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे द्वारा विचार किये गये कार्य की पूर्णता का आशीर्वाद दें । मैंने वहाँ से आपके राजतिलक का सारा सामान मंगवा लिया है, आप हमें आदेश दें कि मैं आपके राजतिलक की तैयारी करूँ और अपने ऊपर लगे कलंक को मिटाऊं ।"

चौ०

तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥

"मेरी माँ कैकेयी ने जो कुटिल कृत्य किया, उसके लिए मैं स्वयं वन में चला आऊँगा और आप अयोध्या की प्रजा की देखभाल करें । क्योंकि, यदि पिता के वचन का पालन आवश्यक है, तो उस वचन को मैं पूरा करूँगा । भैया अयोध्या लौट जाएं और मैं वन चला जाऊँगा ।" यह सुनकर वशिष्टजी ने कहा- "नहीं भरत, वन जाने की आज्ञा राम को मिली है, तुम्हें नहीं ।" यह सुनकर भरत ने कहा- "तो फिर लक्ष्मण लौट जाएं, मैं भइया के साथ वन जाऊँगा ।" इस तरह नोंक-झोंक चलता रहा ।

(भारत के इतिहास में यह बहुत ही दुर्लभ घटना है । आज जहाँ एक ओर थोड़े से पैसे के लिए एक भाई-दूसरे भाई का गला दबाने के लिए तैयार है, वहाँ राम और भरत अयोध्या के सिंहासन को ठुकरा रहे हैं । जैसे- राज

सत्ता का फुटबॉल खेल रहे हों । रामचरितमानस में राम और भरत का जो आदर्श चरित्र है, अगर वह भारत के लोगों में उतर जाए तो सही मायने में भारत में रामराज्य आ जाएगा । घर या समाज तभी बढ़ता है, जब एक दूसरे के लिए त्याग भाव रहता हो, इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ की लड़ाई शुरू होती है वहाँ बड़ा से बड़ा घर भी टूट जाता है । बहूओं में जो प्रेम है, उसकी मिशाल दी जा रही है । सीता अपनी बहनें, मांडवी, ऊर्मिला और श्रुतिकीर्ति के साथ बातचीत करती रहीं । उसी समय माता सुनयना आती है और अपनी बेटियों को समझाते हुए कहती हैं कि सीता! तुम ने हमारे दोनों कुलों को पवित्र कर दिया । तुम्हारी पति सेवा और त्यागभाव को देखकर मैं धन्य हो गई ।)

तीसरे दिन राजपरिवार के सभी सदस्य एक-साथ बैठे, काफी देर तक बातचीत होती रही । सभा में निर्णय हुआ कि राम अपने वचन पर अडिग हैं, वे वन से नहीं लौटेंगे, अब एक ही रास्ता है कि भरत को समझाया जाए । जब सभा की राय भरत को बताई गई तो भरत ने कहा- "मैं मानता हूँ कि भैया अपने सत्य व्रत का पालन कर रहे हैं, परन्तु उनके रहते हुए मैं कैसे अन्याय व्रत का पालन करूँ? अयोध्या के राजा राम हैं, मैं तो उनका सेवक हूँ और सेवक कभी राजा नहीं बनता । इसलिए मेरा राजा बनना तो असम्भव है लेकिन जिस प्रकार राजा की अनुपस्थिति में गुरु, मंत्री और सभासद् राज्यसंचालन करते हैं, उसी प्रकार गुरु वशिष्ठ के आदेश से मैं भैया राम का प्रतिनिधि बनकर राज्य की सेवा करूँगा । जब भी भैया लौटेंगे, तभी उनका राजतिलक होगा । लेकिन भैया राम, मेरी एक प्रार्थना है, आप अपनी चरण-पादुका मुझे दे दें, ताकि मैं उसे ही राजा मानकर राजकार्य में सहयोग करता रहूँगा । फिर भरत ने कहा- आपके राजतिलक के लिए पवित्र तीर्थों के जल एवं अन्य सामग्री लाई गई थी, उसे क्या किया जाए । यह सुन राम ने कहा- मेरे प्रिय भाई भरत! ब्रह्मा के मानसपुत्र, महान तपस्वी अत्रिमुनि का आश्रम निकट ही है, उनसे पूछकर इनका विसर्जन करो ।

दो०

अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप ।
राखिय तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥

फिर राम ने भरत को समझाया- तुम्हारे ऊपर अब अयोध्या की सुरक्षा का भार है । तुम राजधर्म के अनुकूल आचरण करना और हमेशा प्रजा की भलाई की बात करना । क्योंकि राजा, प्रजा का पिता होता है, वह राज्य परिवार का मुखिया होता है । जिस प्रकार, मनुष्य भोजन तो मुँह में करता है, लेकिन उससे पूरे शरीर का पोषण होता है, उसी प्रकार राजा का दायित्व है कि-

दो०

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥

श्रीराम ने कहा- "हे भाई! तुम राजनीति और धर्म के अनुसार राज्य करना । अपनी गुप्त बातों को किसी को मत बताना और चाटुकारों से दूर रहना । हमेशा गुरु के परामर्श से राज्य का संचालन करना ।"

काश्चित् स्त्रियः सान्त्वयस्ते काश्चित् तास्ते सुरक्षिताः ।
कश्चिन्न श्रद्धधास्यासां कच्चिद् गुह्यं न भाषसे ॥

अपने राज्य में स्त्रियों की रक्षा करना और उन्हें अपनी गुप्त बात मत बताना ।

1) श्रीराम ने कहा- हे मेरे प्रिय भाई! राजा का प्रत्येक कर्म बहुत ही पवित्र होता है । उसका अपना कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं होता । वह हमेशा नागरिकों की भलाई के लिए ही प्रयत्न करता रहता है । जो राजा अपने गुरुजनों से परामर्श करके राज्य करता है, वह यशस्वी होता है । ध्यान रखना, राजनीति पर हमेशा नैतिक नियमों का नियंत्रण होना चाहिए । जो

नीति सबों के कल्याण के लिए हो, उसी नीति को अपने राज्य में लागू करना ।

2) राज्य के लिए कोई भी नीति जंगल बैठे संत-महात्माओं से बनवाना, जिन्हें तुम्हारे राज्य से कोई लोभ न हो । जिन्हें राज्य के कोष से कोई लाभ नहीं मिलता हो, क्योंकि वेतन लेने वाले कर्मचारी अथवा किसी लाभ के पद पर बैठे राज्य कर्मचारी निष्पक्ष नियम नहीं बना सकते ।

3) राज्य संचालन के नैतिक नियम बनाने वाले एवं उसे पालन करने वालों को निष्पक्ष रूप से काम करने देना । ताकि वे किसी दबाव का अनुभव न करें ।

4) अपने राज्य में शिक्षा प्रसार के लिए स्वतंत्र निकाय का गठन करना । जो बिना किसी दबाव या हस्तक्षेप के प्रत्येक नागरिक को बिना भेद-भाव के शिक्षित करे ।

5) गरीब एवं उपेक्षित लोगों के विकास के लिए हर-संभव प्रयास करना ताकि वे समाज की मुख्य धारा में जुड़ सकें ।

6) जाति और लिंग के आधार पर समाज में भेद-भाव मत करना ।

7) परमात्मा किसी को ऊँची जाति और नीची जाति में भेद कर पैदा नहीं करता । मनुष्य अपने कर्मों से ही ऊँच और नीच बनता है । उत्तम कर्म करने वाले को हमेशा प्रश्रय देना ।

8) आर्यावर्त कृषि और ऋषि प्रधान देश है, इन्हें अपने-अपने कार्यों को पूरा करने में सहयोग देना ।

9) नागरिकों को स्वस्थ रखने के लिए व्यायामशाला, योग एवं उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना ।

10) जिस देश के नागरिक नैतिक आचरण करते हों और बुरे व्यसन, अनाचार और अत्याचार से दूर रहते हों, वहाँ राम राज्य माना जाता है ।

11) तुम्हारे देश में न्याय व्यवस्था उचित हो, ऐसा प्रबन्ध करना ।

12) तुम ऐसे मंत्रियों को ही रखना, जो तुम्हें निष्पक्ष राय दे सकें, कहा जाता है- सचिव, वैद्य और गुरु की निष्पक्ष राय से राजा यशस्वी बनता है ।

13) अपने राज्य के नागरिकों को नशा, व्यभिचार, नाच-गान एवं अनैतिक कार्यों से बचाना ।

14) जिस कार्य को करने से उसका सुखद परिणाम हो उसे अवश्य प्रारम्भ कर देना ।

15) वही राजा यशस्वी बनता है जो समय पर सोता हो और प्रातःकाल ही जग जाता हो ।

16) हजार मूर्खों की बजाय एक बुद्धिमान व्यक्ति को रखना उचित है । क्योंकि एक सूर्य से अंधेरा हट जाता है, लेकिन हजार तारों से भी अंधेरा नहीं हटता ।

17) जिन कर्मचारियों के पूर्वज राज्य कर्मचारी थे, उनके वंशजों को राज्य में प्रश्रय देना ।

18) अगर किसी कर्मचारी से भूल हो जाए, तो उसे सुधरने का मौका अवश्य देना । ऐसा कठोर दण्ड किसी को मत देना, जिससे वह टूट जाए ।

19) जिस कर्मचारी की नजर तुम्हारे सिंहासन पर लगी हो, उस पर कभी भरोसा मत करना । क्योंकि वह तुम पर कभी भी घात कर सकता है ।

20) अपनी सेवा में नियुक्त कर्मचारियों को उचित वेतन और सम्मान देते रहना ।

21) अपने कर्मचारियों को हर हालत में समय पर वेतन देते रहना ।

22) जो कर्मचारी अपने प्राण देकर भी तुम्हारे लिए निष्ठापूर्वक कार्य कर रहे हों, उन्हें अन्य कर्मचारियों से अधिक सुविधा देना ।

23) मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, शयनकक्ष का सेवक, कोषाध्यक्ष के पद पर ऐसे लोगों को नियुक्त करना जो केवल तुम्हारे प्रति निष्ठा रखते हों ।

24) राज्य में गुप्तचर सेवा का स्वयं निरीक्षण करते रहना ।

25) मूर्ख मित्र, चाटुकार एवं अकारण प्रशंसा करने वालों से बचकर रहना ।

26) राज्य में वन-संपदा एवं पशु-संपदा का संरक्षण करना ।

27) गो-वंश की वृद्धि करना, ताकि गाय के दूध से लोगों को अधिक लाभ हो । गो-वंश की रक्षा करने वाले, व्यापार करने वाले, कृषि करने वाले, शिक्षा और धर्म का प्रसार करने वाले लोगों की सदैव रक्षा करना ।

28) छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों के दुःख दर्द की बात अवश्य सुनना ।

29) अपने राज्य में धर्मशाला, यज्ञशाला, शिक्षालय, गरीबों की सहायता के लिए, काम करने वाली संस्थाओं को राज्यकोष से उचित सहायता देना ।

30) राजा को नास्तिकता, असत्य भाषा, क्रोध, प्रमाद, दीर्घ-सूत्रता, मूर्ख और व्यसनी का संग, आलस्य, इंन्द्रियों के वशीभूत होना, अकेले कोई निर्णय करना, मूर्खों से कोई सलाह लेना, निर्धारित कार्यों को शुरू न करना, गुप्त बातों को प्रगट कर देना, एक ही साथ कई शत्रुओं से युद्ध प्रारंभ कर देना और मांगलिक कार्य न करना, किसी शासक के लिए ये चौदह दोष बताए गए हैं । तुम इन दोषों से मुक्त रहना ।

31) राज्य के विषय में नीति शास्त्री से विचार विमर्श करते रहना। हे भाई भरत! राजा को स्वार्थी और अहंकारी नहीं होना चाहिए। राजा राज्य का सेवक है, इस भाव से काम करने वाले व्यक्ति को यश मिलता है। हे भाई भरत! भगवान् मनु ने काम को उत्पन्न करने वाले दस दोषों की चर्चा की है, इसे दसवर्ग दोष कहते हैं- किसी भी शासक को इन दोषों से बचना चाहिए। आखेट, जुआ, दिन में सोना, दूसरों की निंदा करना, स्त्री में आसक्त होना, मद्यपान, नाचना, गाना, ब्यर्थ बाजा बजाना और अकारण घूमते रहना।

32) साम, दाम, दंड और भेद के अनुसार शासन करना।

33) राज्य में आग लगना, बाढ़ आना, बीमारी फैलना, अकाल पड़ना और महामारी फैलना आदि सब दैवी विपदा हैं, इनमें सहायता करना शासक का दायित्व है।

34) हे भाई भरत! तुम्हारे राज्य के गुप्तचर तुमसे सीधे बात करें, तभी उनका मनोबल ऊँचा रहेगा, तुम्हारे राज्य में योग्य एवं मेधावी छात्र-छात्राएं पूर्ण विकसित हों, विभिन्न कलाओं में निपुण लोगों को प्रोत्साहन मिले और प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने गुणों को विकसित करने में स्वतंत्र हों, उनकी पूर्ण सुरक्षा हो, तभी शासक को यश मिलता है।

35) तुम्हारे राज्य में शिक्षा, स्वास्थ्य, नैतिकता और शुभ-आचरण करने वालों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

36) शासक को चाहिए कि वह अपने राज्य में होने वाले प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखे।

37) पत्नी, पुत्र, भाई एवं अन्य संबंधियों के परामर्श से राज्य पर शासन करना उचित नहीं है, क्योंकि इनका कहीं न कहीं स्वार्थ छिपा रहता है।

38) राज्य की किसी बड़ी समस्या में उन्हीं लोगों से परामर्श लेना चाहिए, जो नैतिक हों, जो जीवन का अनुभव रखते हों और विवेकपूर्ण निर्णय लेते हों। साथ ही तुम्हें बिना किसी भय या लोभ से परामर्श देने की क्षमता रखते हों।

39) परामर्श हमेशा अपने से बड़ों से लेना।

40) ध्यान रखना, राज्य सिंहासन कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। यह तुम्हारा नहीं है। तुम नागरिकों के प्रतिनिधि हो, तुम केवल व्यवस्था कर रहे हो, ऐसा करते रहोगे तो कभी तुम्हारा अपयश नहीं होगा।

41) स्मरण रखना, राज्य के नागरिकों ने तुम्हें व्यवस्थापक नियुक्त किया है, इसके मालिक होने का अहंकार मन में मत लाना।

42) हमेशा स्मरण रखना कि जो भी कार्य तुम कर रहे हो, उससे तुम्हें अपयश तो नहीं होने वाला?

मेरे भाई! जो शासक नागरिकों का प्रतिनिधि बनकर नागरिकों की सुख सुविधा के लिए काम करता है, उसे यश मिलता है।

इस तरह प्रभु श्रीराम ने भरत को राजनीति का ज्ञान देकर विदा किया।

इस प्रकार राम ने भरत को राजनीति की बहुत बातें बताई और अन्त में भरत बड़े दुःखी मन से माताओं और प्रजा-जनों के साथ अयोध्या लौटने को तैयार हुए।

दो०

मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥

राम ने सभी लोगों को विदा किया। भरत राम के दोनों खड़ाऊँ को सिर पर रखकर पैदल अयोध्या की ओर चलने लगे। अयोध्या पहुँचकर पंडितों को बुलाकर शुभ मुहूर्त में खड़ाऊँ को राज सिंहासन पर विराजमान कराया गया।

उसके बाद भरत ने सोचा- "भैया और भाभी जब जंगल में कष्ट सह रहे हैं और जमीन पर सो रहे हैं, तो मुझे राजमहल में रहना उचित नहीं है ।" भरत ने नन्दीग्राम में अपना निवास बनाने का निर्णय किया । भैया और भाभी जमीन पर घास-फूस बिछाकर सोते होंगे, इसलिए वे जमीन के नीचे गड्ढ़ा बनाकर सोएंगे, ताकि उनका आसन भैया के आसन से नीचे हो । सचमुच भरत की भक्ति को देखकर मन पिघल जाता है ।

चौ०

जटाजुट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥

भरत ने मुनि का भेष बनाया, जमीन खोदकर अपना आसन लगाया और वहीं निवास करने लगे । भरतजी ने राजसत्ता को ऐसे त्याग दिया, जैसे-चम्पा के फूल को भौंरा त्याग देता है । भरत जैसा व्यक्ति ही भोग-विलास को बमन के समान त्याग सकता है । इस तरह, भरत निरपेक्ष भाव से अयोध्या की सेवा करने लगे । कितना कठिन व्रत है, पत्नी मांडवी राजमहल से आकर पति की देखभाल कर रही है, लेकिन दोनों के मन में वैराग्य है, यही कठिन व्रत है ।

ईशावास्योपनिषद् में एक मंत्र के माध्यम से कहा गया है कि संसार में रहते हुए भी इस संसार को त्याग भाव से भोगो । भरत भी उसी त्याग भाव से राज्य का संचालन कर रहे हैं, क्योंकि भरत जानते हैं कि दुःख आसक्ति से उत्पन्न होता है । विरक्ति से कभी दुःख नहीं होता है । **त्याग में जो सुख है, वह प्राप्त करने में नहीं है । भरत ने वही त्याग दिखाया ।**

भरतजी श्रीराम के प्रतिनिधि रूपी खड़ाऊँ की पूजा करते और खड़ाऊँ को साक्षी मानकर किसी को आदेश देते । कहा गया है कि-

ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्थं पादुके ।
तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥

इस तरह भरतजी खड़ाऊँ की पूजा करके राज्य का संचालन करने लगे ।

गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा हैं, यही कारण है कि भरत का चरित्र हमारे सभी पापों का नाश करने वाला है । भरत को देखकर मन का मोह नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्य को देखकर अंधकार नष्ट हो जाता है । गोस्वामीजी ने इसीलिए लिखा-

सो०

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति ॥

कलियुग में भरत के चरित्र का पाठ करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर राम और सीता का आशीर्वाद प्राप्त करता है ।



अयोध्या, जहाँ जीवन पुकार रहा है

अयोध्या का अर्थ है जिसे युद्ध में न जीता जा सके और इसी का दूसरा नाम है अवध, जिसका का अर्थ है, जहाँ किसी का वध न हो । मतलब एक ऐसा प्रदेश, जहाँ सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो । रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड का महत्त्व इसलिए है कि श्रीराम के अगले जीवन की संभावनाओं की तैयारी यहीं से होती है । अभी तक अयोध्या केन्द्र बनकर रामकथा को आगे बढ़ने में प्रेरणा दे रही है । क्योंकि राम का जन्म प्रकरण, विवाह अथवा वनगमन प्रकरण, सभी घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी अयोध्या है । अयोध्या में महाराज दशरथ ने अनेक वर्षों तक राज्य किया और जीवन के अन्त में उन्होंने परमात्मा को पुकारा । परमात्मा को पाने के लिए महाराज दशरथ को काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी और जब परमात्मा प्रसन्न हुए तो दशरथ के जीवन में भगवान बनकर नहीं, पुत्र बनकर आये ।

महाराज दशरथ ने परमात्मा से केवल पुत्र मांगा था, लेकिन परमात्मा जब किसी भक्त पर प्रसन्न होते हैं तो एक ही बार में बहुत कुछ दे देते हैं । महाराज ने एक पुत्र मांगा और भगवान चार भाई सहित अवतरित हुए । स्वाभाविक है कि जहाँ परमात्मा जाता है, वहाँ सुख, शान्ति, यश सब कुछ पहुँच जाता है । श्रीराम मोक्ष के प्रतीक हैं, शेषनाग के अवतार काम के प्रतीक हैं, भरत धर्म के प्रतीक हैं और शत्रुघ्न अर्थ के प्रतीक हैं । इन चारों के सम्यक् संयोग से ही जीवन में समृद्धता आती है । क्योंकि परमात्मा किसी को खण्डित आशीर्वाद नहीं देता । भगवान श्रीकृष्ण भी बलराम के साथ प्रकट हुए । मनुष्य के जीवन में चार आश्रम होते हैं और चार पुरुषार्थ होता है– अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष । वेद भी चार होते हैं, इसलिए श्रीराम चार भाई बनकर अवतरित हुए । जीवन में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष का महत्त्व है । धर्म का जब काम पर नियंत्रण रहता है, तो मनुष्य व्यभिचारी नहीं बनता और अर्थ पर धर्म का नियंत्रण रहता है तो धन का व्यय सार्थक होता है । जीवन में जब काम और अर्थ पर धर्म का नियंत्रण हो जाता है तो उस मनुष्य को स्वत: मोक्ष की प्राप्ति हो जाती हैं ।

अयोध्या सुख-समृद्धि का केन्द्र है । महाराज दशरथ एक महाप्रतापी राजा हैं । प्रतापी का अर्थ है- धर्मयुक्त आचरण करने वाला । जो राजा धर्म के अनुरूप नैतिक नियमों का पालन करते हुए स्वयं को राज्य का प्रतीक मानकर शासन करता है, उसे धर्मात्मा माना जाता है । लेकिन राजा जब वैभव के विलास में दबकर भोग में लिप्त हो जाता है, तो उसे अनाचारी और दुराचारी माना जाता है ।

महाराज दशरथ जबतक नैतिक नियमों का पालन करते रहे, उन्हें धर्मात्मा माना जाता रहा । गोस्वामीजी ने उनकी वन्दना की- **"बन्दौ अवध भुआल ।"** वन्दना उसकी की जाती है, जो धर्म के अनुरूप आचरण करता हो । किसी दुराचारी की न तो वन्दना की जाती है और न धूप-आरती अथवा जयघोष किया जाता है । जयघोष का तो अर्थ है- आपकी यशवृद्धि के लिए प्रार्थना करना । इसीलिए लोग अपने परमात्मा अथवा गुरुजनों की जयकार बोलते हैं और उनकी मंगलकामना के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

अयोध्या प्रभु श्रीराम की कर्मभूमि है, वहीं उनका जन्म होता है, वहीं उनकी शिक्षा पूरी होती है, गुरु के संरक्षण में वहीं से उनकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती है । जनकपुर में उनका विवाह होना, फिर अयोध्या में निवास और वहीं से अगले जीवन की तैयारी राम के जीवन की आगे की घटनाएं तो इसी अयोध्या पर आधारित है । राम के जीवन में जो भी घटना घटती है, उसका सूत्र राजमहल में ही रहता है ।

राजा प्रजा का प्रतिनिधि होता है, उसका अपना कुछ नहीं होता । क्योंकि वह प्रजा का राजा है । जब कभी प्रजा के ऊपर राजमहल आसीन हो जाता है, अथवा प्रजा के हित का ख्याल छोड़कर राजमहल अपने हित की बात करने लगता है, तो राज्य में अनर्थ होने लगता है । राज्य की नींव धर्म और सत्य पर आधारित होती है । राजा का व्यक्ति जब प्रजा के हित की उपेक्षा कर राज्य के नीति निर्धारण में हस्तक्षेप करने लगता है, तो राज्य की नींव हिल जाती है । यहीं से किसी राज्य का पराभव शुरू होता है । इसलिए राम के जीवन के घटनाचक्रों के लिए अयोध्या पूरी तरह जिम्मेवार है ।

महाराज दशरथ एक धर्मप्राण राजा थे, लेकिन उन्हें कोई पुत्र नहीं था । पुत्र के लिए उन्होंने तीन-तीन विवाह किया । यज्ञ के द्वारा जब श्रीराम का अवतरण हुआ, तो राजा ने श्रीराम का राज्याभिषेक करना चाहा । यह तो स्वाभाविक प्रक्रिया थी, लेकिन व्यावहारिक रूप में कैकेयी को अपने पुत्र भरत को राजा बनाने के लिए कोपभवन में जाना पड़ा । यों तो कोपभवन सभी घरों में रहता है, भले ही अयोध्या में अलग प्रकोष्ठ रहा होगा । लेकिन आजकल तो प्रत्येक परिवार के बेडरूम में ही प्रेमभवन अथवा कोपभवन रहता है । कैकेयी ने अपने पुत्र के हित के लिए सभी मर्यादाओं को तोड़कर अपने पुत्र के हित में राजा पर दबाव बनाया । यहीं से परिवार की मर्यादा हिलने लगी ।

जब परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने हित की बात करने लगे, तो समझना चाहिए कि परिवार का भविष्य अन्धकारमय हो गया है । एक तरफ सम्पूर्ण अयोध्या की प्रजा राम का राज्याभिषेक चाहती है और दूसरी ओर कैकेयी अपने हित के लिए अपने पुत्र का राज्याभिषेक चाहती है । कहा जाता है- जन भावनाओं के प्रतिकूल अनैतिक आचरण करने से सर्वनाश हो जाता है । चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ कैकेयी के मोह बन्धन में बंधे हैं, इसी से वे असहाय दीख रहे हैं । अगर मोह का बंधन नहीं होता, तो वे स्वयं वही निर्णय करते जो न्याययुक्त होता । लेकिन प्रजा के प्रतिनिधि महाराज दशरथ सौन्दर्य के मोह और नारीहठ के सामने घुटने टेक देते हैं । यहीं से अयोध्या के पराभव की कहानी शुरू हो जाती है ।

राजा जब प्रजा का प्रतिनिधि है तो उसे प्रजा की भावनाओं का आदर करना चाहिए । महाराज दशरथ ने मोह के कारण कैकेयी को वह सब करने दिया, जो राज्यहित में नहीं था । क्योंकि पत्नी, पुत्र और परिवार के मोह बन्धन में बंधा व्यक्ति कभी भविष्योन्मुख साम्राज्य का कंगूरा खड़ा नहीं कर सकता । क्योंकि वह किसी स्वार्थ के नीचे दब जाता है । दशरथ के साथ यही हुआ । दशरथ ने कैकई का परामर्श मान लिया, तभी राम को वनवास जाना पड़ा । कहते हैं- स्वार्थ जब गहरा और नुकीला हो जाता है, तो पूरे परिवार को क्षतिग्रस्त कर देता है ।

कहते हैं- एक सुखद और स्वस्थ परिवार की स्थापना धर्म और नैतिकता की नींव पर की जाती है । जिस परिवार से धर्म का लोप हो जाए, नैतिकता खण्डित हो जाए, वहाँ परिवार की सीमा बिखर जाती है । परिवार में व्यक्ति प्रधान नहीं होता, समूह प्रधान होता है । जहाँ सबके हित की बात होती हो, उसे परिवार कहते हैं । अयोध्या के परिवार में यह भाव टूट गया । फलतः अकारण राजा की मृत्यु हुई, राम को वनवास जाना पड़ा और परिवार की बची-खुची मर्यादा चौपाल तक आ गई । लोग अपने राजा के बारे में अच्छी-बुरी बातें करने लगे । परिवार की मर्यादा से पर्दा उठ गया । ऐसे परिवार को नाश होने से बचाना मुश्किल होता है ।

हम सभी लोग भी परिवार में रहते हैं, जब तक सभी लोग नैतिकता और नैतिक बन्धनों में बंधे रहते हैं, तब तक परिवार का अर्थ समझ में आता है । लेकिन जब समूह का भाव नष्ट हो जाए और प्रत्येक व्यक्ति अपने-पराये की बात करे, तो परिवार धराशायी हो जाता है । अयोध्या की घटना आज भी अनेक परिवारों में दुहराई जा रही है । अगर श्रीराम के चरित्र को अपने जीवन में उतारना है, तो अयोध्या के राजभवन में जो घटनाएं घटीं और एक छोटी सी भूल के कारण सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया, उससे हमें बचना पड़ेगा । क्योंकि कभी-कभी छोटी सी भूल पूरे साम्राज्य को हिला देती है । आज भी हमारे समाज में ऐसा परिवार है, जहाँ के किसी एक सदस्य की हठ और अज्ञानता के कारण दूरदर्शिता के अभाव में परिवार की मर्यादा बिखर जाती है ।

श्रीराम के वनगमन के आंतरिक कारण जो भी रहे हों, लेकिन अयोध्या की घटना से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि किसी के बहकावे में आकर निर्णय लेना और स्त्री हठ के सामने अनैतिक कार्यों के लिए सहमत हो जाना परिवार के मर्यादा के विपरीत है । मनुष्य व्यक्तिगत रूप से अपने बारे में कोई भी निर्णय ले सकता है। लेकिन परिवार, समाज और राष्ट्र के हित की उपेक्षा कर उसे वैसा निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं होता, जिससे इनकी हानि हो । महाराज दशरथ ने कैकेयी की मांग के सामने असहाय प्राणी की तरह घुटने टेक दिए । यह किसी राष्ट्र के प्रतिनिधि के लिए उचित नहीं था ।

हम भले ही आध्यात्मिक बातों से इसे प्रमाणित कर दें, लेकिन सामान्य मनुष्य के लिए ऐसा करना उचित नहीं था। क्योंकि राज्य चलाने के लिए किसी व्यक्ति के मान-अपमान की बात नहीं की जाती। महाराज दशरथ ने व्यक्तिगत कारणों से कैकेयी को वचन दिया था। वह वचन दशरथ पर लागू हो सकता है, लेकिन महाराज दशरथ को उस वचन का पालन करना अनिवार्य नहीं था। दोनों जब एक साथ मिल गये, तो अयोध्या को काफी नुकसान हुआ। परिवार चलाने में भी इन्हीं बातों को ख्याल में लेना पड़ता है, जिस निर्णय से उसका व्यक्तिगत नुकसान होता हो, लेकिन उस निर्णय से परिवार का हित हो।

किसी भी परिवार की प्रतिष्ठा उस परिवार के मुखिया पर निर्भर है। हमारे जीवन में भी कई बार ऐसा मौका आता है, जब हम परिवार के हित में अपने व्यक्तिगत हित का त्याग कर देते हैं। आज हमारे देश में परिवार का भाव नष्ट होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अकेले में जीना चाहता है और अकेला में जीने वाला व्यक्ति समाज, सहयोग, प्रेम, करुणा की कल्पना भी नहीं कर सकता। क्योंकि अकेला में जीने वाला व्यक्ति समाज से कट जाता है। यही कारण है कि आज शहरों में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अकेला हो गया है।

श्रीराम महाराज दशरथ के पुत्र भले ही हों, लेकिन अयोध्या के भावी सम्राट थे। राम ने तो कह दिया कि **"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।"** क्योंकि उन्हें जनकल्याण करना था, समाज से अत्याचार को मिटाना था, लेकिन महाराज दशरथ को ईर्ष्या, द्वेष के आधार पर लिए गये निर्णय की समीक्षा करनी चाहिए थी।

हम सभी मानते हैं कि राम अगर वन नहीं जाते, तो एक साधारण राजकुमार की तरह अयोध्या की गद्दी पर बैठ जाते। वे एक साधारण राजकुमार बनकर रह जाते। लेकिन वे तो हमारे परमात्मा थे, भक्तों का दुःख हरण करना उनका कर्त्तव्य था। इसलिए वन जाना लोकहित में अनिवार्य था। लेकिन आज के समाज का तो परिवेश है, उसमें तो यही होता कि राम वन जाते और भरत राजा बन जाते। इस तरह राम की कहानी ही समाप्त हो जाती।

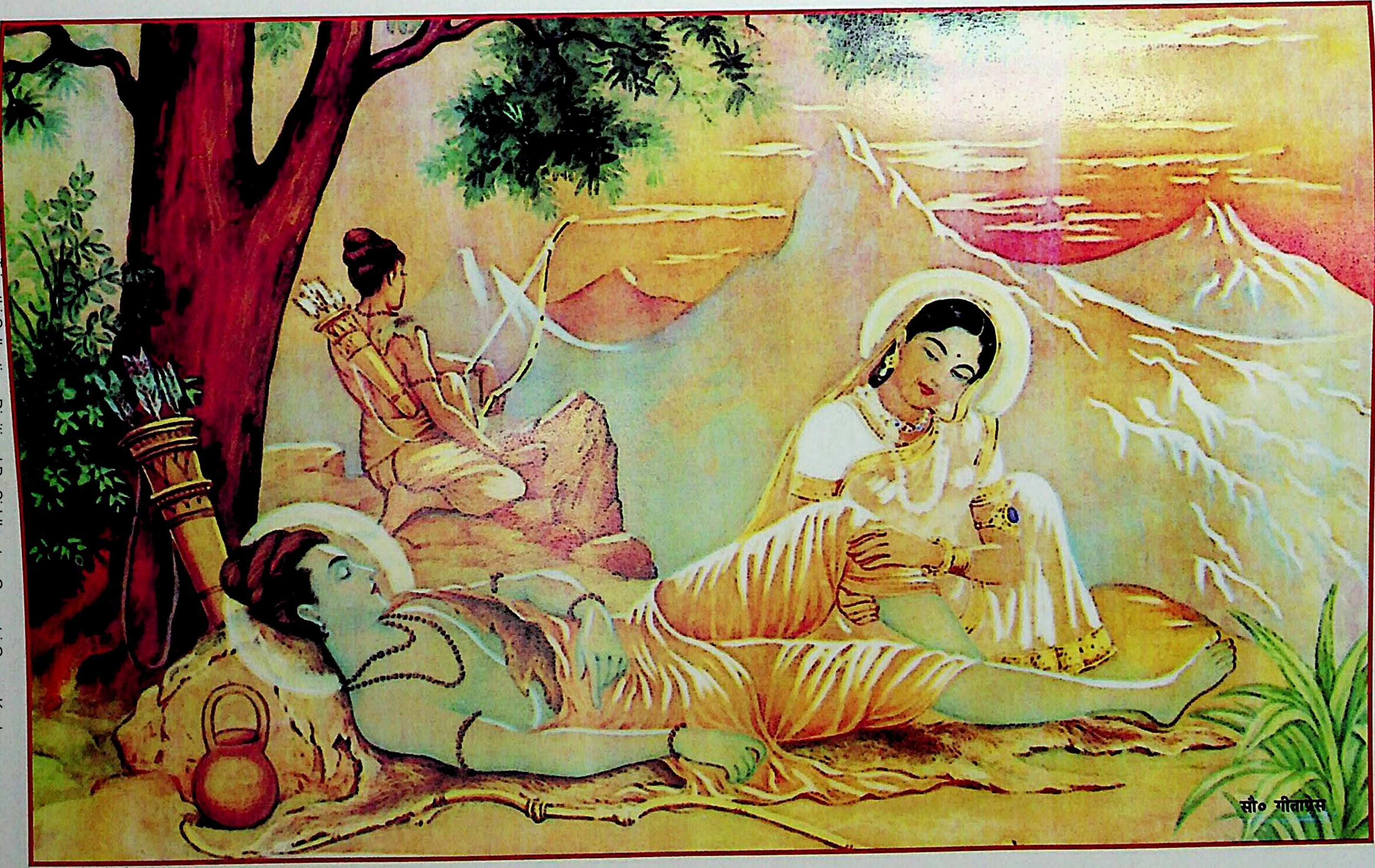
यह बात अलग है कि राम हमारे परमात्मा हैं और परमात्मा को धन-वैभव की आवश्यकता नहीं होती। रामायण में राम वन गये, भरत ने राज्य का त्याग किया, इससे हमारे राम की भी गरिमा बढ़ी और भरत का त्याग भी एक आदर्श बन गया। लेकिन जिस व्यक्तिगत कारण से राम को वन भेजा गया, उस कारण की आज लोग प्रशंसा नहीं कर सकते। कैकेयी ने श्रीराम को परमात्मा समझकर वन नहीं भेजा, कैकेयी का हठ उसके अपने स्वार्थ और द्वेष पर आधारित था।

आज हमारे समाज में राम और भरत दोनों के त्याग का स्मरण किया जाता है और उसे आदर्श बताया जाता है। हमारे समाज में अगर राम और भरत जैसा भाई हो तो उस समाज का कभी विघटन नहीं हो सकता। इन दोनों भाइयों ने जो आदर्श उपस्थित किया, वह प्रशंसनीय था।

आज हमारे देश में राम और भरत जैसा भाई चाहिए, जो राज-सुख को छोड़कर आपसी प्रेम और भाईचारा को अपना सके। छोटे स्वार्थ के लिए बड़े उद्देश्य को छोड़ना उचित नहीं है। आज हमारा समाज इसीलिए टूट रहा है कि हम सब अपने छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए किसी का भी त्याग कर सकते हैं। भाई-भाई का प्रेम, पिता-पुत्र का सम्बन्ध बहुत ही छोटे स्वार्थ के लिए टूट रहा है।

अयोध्याकाण्ड में राजपरिवार में जो घटना घटती है, जिस कारण चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ के राजमहल में दरारें पड़ जाती हैं और जिस राजदरबार की लोग पूजा करते थे, उसके प्रति लोगों के मन में आदर कम हो गया। क्योंकि जिस परिवार में मर्यादा का पालन न हो, प्रेम और बन्धुत्व का भाव न हो, एक-दूसरे का ख्याल न करते हों, आदर और सम्मान न करते हों, वह परिवार टूट जाता है। अयोध्या की घटना इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है, यही अयोध्याकाण्ड का उद्देश्य है।

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)



अरण्यकाण्ड



श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

अरण्यकाण्ड

ईशप्रार्थना

नमस्तुभ्यं पवनात्मजाय, नमस्तुभ्यं भक्तवत्सलाय ।
गायामि दिव्यरामकथां, पूर्णं कुरू मम कामनाम् ॥
ऋद्धि-सिद्धि सर्वग्रहाश्च, दिव्यं प्रदेहि मे चक्षुः ।
तेन पूर्णकर्तुं शक्ये, कथां रामस्य शाश्वतम् ॥

इस अरण्य के कण-कण में, रघुवर ने दिव्य संकल्प किया ।
अत्रि सुतीक्ष्ण व भारद्वाज को, अरिमर्दन का विकल्प दिया ॥
इस जीव-जगत के जड़-चेतन, सुर-असुर राम की माया है ।
सद्कर्म करे वह देव रूप, दुष्कर्म काल की छाया है ॥
वन में दुष्टों का ताण्डव है, शिष्टों को एक बनाना है ।
संकल्प राम का है ऐसा, धरती से पाप मिटाना है ॥

अरण्यकाण्ड रामचरितमानस का बहुत ही महत्त्वपूर्ण काण्ड है । यहीं से राम के जीवन में गति आती है । अब तक राम बचपन, युवावस्था, विवाह और गृहस्थकार्य को सम्पन्न करने में लगे हुए थे, अब यहाँ से नई दिशा की खोज में लग गये हैं । इस काण्ड के पश्चात् राम के जीवन में जो घटित होता है, उसकी तैयारी यहीं से हो रही है। इसलिए इसे संघर्ष और दुष्टों के नाश का पहला अध्याय माना जा सकता है ।

राम परमात्मा हैं, वे अपने भक्तों के कल्याण के लिए कहीं और कभी भी स्वरूप ग्रहण कर उनकी रक्षा करते हैं। मानस में गोस्वामीजी ने प्रभु राम के अवतरण के लिए कई कारण बताये हैं। लेकिन परमात्मा के प्रकट होने के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं होती। जब भी भक्तों का समूह कष्ट में पड़ता है तो भक्तों की पुकार पर वे एक क्षण में प्रकट हो जाते हैं। नरसिंहावतार, कूर्म, वाराह, मत्स्य जैसे अवतार अकस्मात् प्रकट हो जाते हैं। माता कौशल्या को विराट रूप दिखाना, दुर्योधन की सभा में कृष्ण का विराट रूप में प्रकट होना, ग्राह के प्रकोप से गज को बचाना आदि इस तरह की घटनाएँ हैं, जिससे पता चलता है कि परमात्मा को प्रकट होने के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं होती। जंगलों में बैठे हमारे संत-महात्माओं ने राक्षसों से त्रस्त होकर परमात्मा को पुकारा, परमात्मा हजार बहाना करके प्रकट हो गये। कश्यप-अदिति, मनु-शतरूपा ने भी परमात्मा को पुकारा, लेकिन छोटा-सा यज्ञ करके दशरथ और कौशल्या ने परमात्मा को अपनी गोद में बुला लिया। इसलिए श्रीराम के अवतरण के लिए भी किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा तो स्वयं सभी कुछ जानते हैं, किसी भक्त की पुकार पर उन्हें तुरंत आ जाना चाहिए, इसका ज्ञान उन्हें है। लेकिन परमात्मा चाहते हैं कि तुम्हारे किसी भी कर्म के लिए तुम्हें स्वयं जिम्मेवार बनाया जाए। भक्त जो भी अच्छा बुरा करता है, उसके लिए वह स्वयं जिम्मेवार है। जब मनुष्य गलत आचरण करता है, तो उसके सारे कर्म गलत हो जाते हैं और जब कर्म गलत हो जाते हैं, तो उसका परिणाम भी उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है। और जो अच्छा कर्म करता है, उसे अच्छा ही फल भोगना पड़ता है। इन दोनों फलों के लिए वह स्वयं जिम्मेवार है। गोस्वामी जी कहते हैं-

कालदंड लेई काहु न मारा। हरहिं बिबेक बल बुद्धि बिचारा॥

जब मनुष्य गलत आचरण करने लगता है तो परमात्मा उसके बल, बुद्धि और विवेक का हरण कर लेते हैं और तब स्वतः ही उसका नाश हो जाता है। इसीलिए उसके नाश के लिए परमात्मा जिम्मेवार नहीं होता।

यहाँ राम का अभियान जो प्रारम्भ हो रहा है, उसके लिए परमात्मा कहीं जिम्मेवार नहीं हैं। राक्षसों के आतंक से त्रस्त होकर संतों ने परमात्मा को पुकारा।

तभी परमात्मा को आना पड़ा । अगर लंका के राक्षस शान्ति से रहते और भारत की अस्मिता नष्ट करने का प्रयास नहीं करते तो संतों की रक्षा के लिए भगवान को कदापि नहीं आना पड़ता । इस काल में समाज और देश में अत्याचार तथा अनाचार बढ़ गया था, सभी क्षेत्रों में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, राक्षसों के अत्याचार से अच्छे लोगों को सांस लेने में भी दिक्कत हो रही थी, तभी उनके मन से आर्तनाद फूट पड़ा । प्रभु की प्रेरणा से ही मंथरा और कैकेई को माध्यम बनाकर भगवान राम ने अपने वन गमन की योजना बनाई ।

इस विराट ब्रह्माण्ड का जब एक-एक कण प्रभु की प्रेरणा से संचालित है, तो राम वन-गमन के लिए किसी और को कैसे दोषी बनाया जा सकता है । राम का जंगलों में प्रवेश, संत-महात्माओं से मिलन और भविष्य के लिए स्वयं अपने लिए योजना बनाना और उस पर दृढ़ता से चलते रहने का संकल्प करना, इसलिए अनिवार्य था कि उन्हें निहित कार्य को पूरा करना था । संतों की कुटिया में जाकर उन्हें सांत्वना देना, अत्रि, भारद्वाज, सुतीक्ष्ण और याज्ञवल्क्य से परामर्श करना इसलिए आवश्यक था कि सभी लोग अपने कर्तव्य का निर्वाह करते रहें और वे स्वयं राक्षसों के नाश के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करें । परमात्मा हमेशा भक्तों के लिए अनुकूल और दुष्टों के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा करा देता है । गोस्वामीजी कहते हैं-

चौ०

काहु न काउ सुख दुःख कर दाता । निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

राक्षसों ने स्वयं अपने बुरे कार्यों से संतों को आतंकित किया, जब आतंक बढ़ गया, तो उनके नाश के लिए प्रभु को आना पड़ा । महिषासुरमर्दनी को महिषासुर के अत्याचार से भक्तों को मुक्त कराने के लिए आना पड़ा । ब्रह्मा ने महिषासुर को अच्छे कार्य करने के लिए वरदान दिया था । लेकिन उसने बुरा कर्म करना शुरू कर दिया । त्रिपुरासुर के नाश के लिए भगवान शिव को त्रिशुल उठाना पड़ा । उसी प्रकार, रावण के अत्याचार से मुक्ति के लिए राम को अवतार लेकर धनुष-बाण उठाना पड़ा । जिस प्रकार संत, प्रभु को आशीर्वाद के लिए पुकारता है, उसी प्रकार, राक्षस वृत्ति वाले लोग दूसरे लोगों को सताने के लिए ईश्वर से वरदान मांगते हैं । रावण स्वयं कहता है-

चौ०

सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौं मैं जाइ बैरु हठि करउँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥

इसलिए राम के वन-गमन के लिए देवता और राक्षस दोनों कारण रूप में उपस्थित हैं ।

विशेष प्रसंग-

(राम का अवतरण और उनके वनगमन के लिए अनेक परिस्थितियां बनीं । लेकिन प्रकृति किसी परिस्थिति का इन्तजार नहीं करती, वह क्रमबद्ध चलती रहती है । लोग मानते हैं कि राम को वन में बुलाया गया । अगर राम को बुलाया नहीं जाता, तो वे किसी दूसरे रूप में आ जाते । क्योंकि ऐसा होता है कि जब मनुष्य किसी संकट में पड़ता है तो पहले उससे मुक्त होने का प्रयास करता है, लेकिन जब वह मुक्त नहीं हो पाता तो परमात्मा पर छोड़ देता है और तब समस्या का स्वयं निदान हो जाता है । प्रकृति को पता है कि क्या होना चाहिए? जो उचित होता है वही होता है । शरीर में जब घाव हो जाता है, तो प्रकृति स्वयं उस घाव को ठीक करती है, दवा तो एक बहाना है । मनुष्य अहंकारवश कहता है कि मैंने इस काम को पूरा कर लिया । काम को पूरा होना था इसलिए वह पूरा हो गया । किसी बीमार मनुष्य को बचना था, तो डॉक्टर ने उसे बचा लिया । अगर डॉक्टर इतना सामर्थ्यवान् है तो प्रत्येक मरने वाले को क्यों नहीं बचा लेता? प्रकृति के नियम कभी नहीं बदलते । इसलिए कहा जाता है कि जो होना है, वह तो हो चुका है, केवल थोड़ी सी प्रतीक्षा करनी है । कहते हैं-

ज्यों विचार मन में हुआ, कर्म हुआ प्रारम्भ ।
परिणति तो अन्त है, मूल भाव आरम्भ ॥

यह भी कहा जाता है कि बचपन में बुढ़ापा झांकता है । क्योंकि बचपन को बूढ़ा होना पड़ता है । यह प्रकृति का नियम है । हमारे जीवन में कभी-कभी दुःख संकट आ जाता है, इसके लिए हम किसी को दोषी बना देते हैं । लेकिन हमारे दुःख के लिए कोई दूसरा दोषी नहीं है । आज दुःख आया है, कल सुख आएगा, यह क्रम तो चलता रहता है । इसलिए परमात्मा पर भरोसा कर प्रतीक्षा करनी चाहिए और प्रकृति की खेल को देखते रहना चाहिए ।)

श्रीराम का चित्रकूट निवास, जयंत प्रसंग

भरतजी के अयोध्या लौटने के पश्चात् श्रीराम चित्रकूट में निवास करने लगे। एक दिन प्रभु जब माता सीता के साथ स्फटिक शीला पर बैठे थे, उसी समय इन्द्र का बेटा जयंत कौआ का भेष बनाकर सीता के पांव पर चोंच मारा। प्रभु ने सामने से एक सींक उठाया और कौवा के ऊपर फेंक दिया, वह सींक बाण बनकर जयन्त का पीछा करने लगा-

चौ०

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥

जयन्त बाण के प्रकोप से बचने के लिए त्रिलोक में भागता रहा, किसी ने उसकी सहायता नहीं की। कहा जाता है कि गलत आचरण करने वालों की समय पर कोई सहायता नहीं करता। जयन्त इन्द्र का बेटा है और इन्द्र स्वयं बहुत साफ-सुथरे आचरण के नहीं माने जाते। कहावत है-

बाढ़े पुत पिता के धरमे। खेती उपजे अपने करमे॥

और यह भी कहा जाता है-

माँ गुण बछड़ु, पिता गुण घोड़। न बहुत तो, थोड़म थोड़॥

माँ के आचरण से बेटी प्रभावित होती है और पिता के आचरण से पुत्र। शायद इसीलिए आज भी गाँवों में कहा जाता है- **"जैसा बाप वैसा बेटा।"** इन्द्र का बेटा जयन्त अपने पिता से प्रभावित था, इसलिए उसने दूसरे की पत्नी पर बुरी नजर रखी। राम के सींक के बाण से घबड़ाकर जयन्त भागने लगा, जब किसी ने उसकी सहायता नहीं की, तो नारद ने जयन्त को पुनः राम की शरण में जाने को कहा। नारद ने जयन्त को समझाया- "जिस व्यक्ति का आचरण गलत रहता है, उससे कोई भी दोस्ती नहीं करना चाहता।"

चौ०

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

जो राम का विरोधी हो, उसे दुनिया में कहीं भी शरण नहीं मिलता। वह भागा-भागा राम की शरण में आया और राम से क्षमा मांगने लगा।

चौ०

सुनि कृपाल अति आरत बानी । एकनयन करि तजा भवानी ॥

भगवान् शिव, पार्वती से कहते हैं कि प्रभु राम ने जयन्त को क्षमा कर दिया, लेकिन आंख से उसने सीता के रूप को बुरे भाव से देखा था, इसलिए राम ने उसी सींक से उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया । तब से कौवा एक आँख का बनकर रह गया । दरअसल, आँख के कारण ही मनुष्य के मन में पाप उभरता है । आँख से ही मनुष्य दूसरे का रूप, जवानी और धन देखकर लालायित हो जाता है और इस कारण वह पाप करने के लिए प्रेरित होता है । सुरदास ने इसीलिए अपनी आँखें फोड़ ली थी । योगी, जब आँख बन्द करते हैं, तभी उनका ध्यान लगता है । संसार में आँख के कारण ही इतने अनर्थ होते रहते हैं ।

आँख देखकर संत लोग मनुष्य के अन्दर की बात बता देते हैं । चेहरे का भाव भी आँखों से ही प्रभावित होता है । बिहारी जैसे कवि ने भी आँखों की रहस्यमय गतिविधियों का सुन्दर चित्रण किया है ।

क०

अमिय हलाहल मदभरे, श्वेत सार रत्नार ।
जियत मरत झुकी-झुकी रहत, जेहिं चितवत एक बार ॥

सच पूछा जाए तो आँख के कारण ही मनुष्य की गतिविधि प्रभावित होती रहती है । मनुष्य कैसा सोचता है, यह उसकी आँख को देखकर बताया जा सकता है । जैसा वह देखता है, वैसा ही विचार उसके मन में आता है । राम और सीता का पुष्प वाटिका में जब प्रथम मिलन हुआ, तो आँखों ने क्या किया?

चौ०

भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥

आँख के कारण ही दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम मिलन हुआ । हमारे जीवन का सारा खेल आँखों पर ही निर्भर है। जयन्त ने सीता के रूप को कुत्सित भाव से देखा, जिस कारण कौवा आज तक एक आँख वाला जीव ही बना रहा ।

अत्रि-अनसूया से श्रीराम का मिलन

जब राम को पता चला कि चित्रकूट में लोग मुझे जानने-पहचानने लगे हैं, तो वे वहाँ से अत्रिमुनि के आश्रम में पहुँचे । अत्रिमुनि, ब्रह्मा के मानस पुत्र थे और दिव्य संत माने जाते थे । अत्रि शब्द का अर्थ है- द्विज **(द्वाभ्याम् जन्मसंस्काराभ्यां इति)** 'अत्रि' शब्द का निर्माण 'अ' 'त्रि' (न त्रि अर्थात् जो तीन न हो, एक हो अथवा त्रिदेव का अंश जिस एक में हो) से हुआ है । उनकी पत्नी अनसूया महान सती, पतिव्रता थी और वह दक्ष प्रजापति की पुत्री थी । उसके सतीत्व की चर्चा विश्व भर में होती थी । **अनसूया अर्थात् न असूयति (जो दूसरों से डाह न करता हो) असूय+टाप् = असूया=अनसूया ।** कहा जाता है कि अनसूया के सतीत्व से ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती भी ईर्ष्या करती थीं । परन्तु अपने नाम के अनुकूल वह किसी से ईर्ष्या नहीं करती थी । कहते हैं- एक दिन तीनों देवपत्नियों ने अपने-अपने पति को अनसूया की परीक्षा लेने भेजा । ब्रह्मा, विष्णु और महेश भेष बदलकर अनसूया के आश्रम में साधु बनकर भिक्षा मांगने पहुँचे । अनसूया ने जब इन तीन साधुओं को भिक्षा देना चाहा तो इन साधुओं ने कहा कि पहले तुम अपने शरीर से वस्त्र उतार दो, तब भिक्षा देना । अनसूया समझ गई कि कोई उसकी परीक्षा ले रहा है । उसने तीनों संतों को अपनी कुटिया में बुलाया और कहा कि तुम तीनों अबोध बालक बन जाओ । तीनों देव छोटे बालक बनकर पालने में खेलने लगे । जब कुछ दिनों के बाद भी वे तीनों नहीं लौटे तो ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती को पता चला कि उनके पति कहीं गुम हो गये हैं, तो वे ढूंढते-ढूंढते अनसूया के आश्रम में पहुँची और वहाँ पहुँचकर देखा कि उनके पति तो अबोध बालक बने हुए हैं । यह देख अनसूया ने इन तीनों को बताया कि आप अपना-अपना पति पहचान लें । लेकिन बालरूप में रहने के कारण वे अपने-अपने पतियों को पहचानने में असफल रहीं । तब अनसूया ने अपने सतीत्व के बल से इन्हें मूलरूप में ला दिया । यह देख तीनों ने अनसूया के सतीत्व को प्रणाम किया ।

अनसूया अपने दिव्य सतीत्व के कारण और महान् तपस्वी महर्षि अत्रि अपने तप के कारण पूरे विश्व में प्रसिद्ध थे । ज्ञान-विज्ञान और वेदान्त के महाज्ञानी होने क कारण प्रभु श्रीराम उनसे परामर्श लेने उनके आश्रम पहुँचे । (मैं पहले बता चुका हूँ

कि अत्रि ब्रह्मा के मानस पुत्र थे और सती अनसूया दक्ष प्रजापति की पुत्री थी । भगवान् दत्तात्रेय उन्हीं के पुत्र थे । एक बार अत्रि और अनसूया पुत्र के लिए तप कर रहे थे । उसी समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रकट हुए । अत्रि ने कहा कि मुझे आप तीनों के समान ही पुत्र चाहिए । तीनों ने **"एवमस्तु"** कह दिया । तीनों के अंश से पुत्र उत्पन्न भी हुआ । यह बालक एक ही शरीर में तीन सिर वाला था । ये तीनों रूप चन्द्रमा, दत्त और दुर्वासा का था, इसी कारण इनका नाम दत्तात्रेय पड़ा ।)

चौ०

अनुसुइया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
दिब्य बसन भूषन पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ॥

अनसूया ने सीता को आशीर्वाद दिया और अपने पास बैठाया । उधर अत्रि राम और लक्ष्मण के साथ विचार-विमर्श करने लगे । सीता माता अनसूया के साथ बैठकर जीवन, जगत् और माया के विषय में जानने-समझने के लिए विनती करने लगीं । अनसूया के महत्त्व का पता इसी बात से चलता है कि जगत्-जननी सीता उनके पाँव पकड़कर आशीर्वाद मांग रही है । यह केवल उसके सतीत्व के कारण ही हो रहा है । स्त्री को उसका सतीत्व कितना ऊपर उठा देता है, कितना महान् बना देता है । यह अनसूया को देखकर ही पता लगाया जा सकता है । जिस अनसूया ने अपने सतीत्व के बल से ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालक बना दिया, वह कितनी महान होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है । उसी अनसूया का पाँव पकड़कर सीता नारी धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाह रही है ।

विशेष प्रसंग-

प्रश्न है- "पाँव छूकर प्रणाम करने और आशीर्वाद प्राप्त करने का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक महत्त्व क्या है?" इस पर पहले विचार कर लेना चाहिए । सीता ने अनसूया का पैर छूकर आशीष मांगा, परमात्मा राम ने गुरुजन के पैर छूकर आशीर्वाद मांगे, आज भी हम अपने गुरुजन का पैर छूकर आशीर्वाद मांगते हैं । आज इस वैज्ञानिक युग में यह प्रश्न उठ सकता है कि गुरुजन से हम आशीर्वाद क्यों मांगें और उनका चरण स्पर्श क्यों करें?

चरण छूने का विज्ञान

दरअसल, इसका एक गहरा विज्ञान है । होता यह है कि हमारे शरीर में ऊर्जा का भंडार है, यह भंडार हमें प्रकृति, सूर्यमंडल और नक्षत्रों से प्राप्त हुआ है । यह प्रत्येक जीव को मिलता है क्योंकि शरीर में प्राण के साथ ही ऊर्जा प्रवेश करती है । इसी को प्राण ऊर्जा कहते हैं । शरीर में ऊर्जा के प्रवेश करते ही वह धीरे-धीरे अपनी दिव्यता खोने लगती है । मनुष्य अपने ही विकारों से उस ऊर्जा की दिव्यता को ढंक लेता है । संत पुरुष पुनः विकारों के आवरण को अपनी साधना से नष्ट कर उस ऊर्जा को दिव्य बना लेते हैं । सामान्य लोग विकारों के आवरण को नहीं हटा पाते, जिस कारण उनके शरीर की ऊर्जा अव्यवस्थित बनी रहती है । संतों की ऊर्जा और सामान्य लोगों की ऊर्जा में यही अन्तर है । जैसे- लोहे के कण को जब चुम्बक स्पर्श करता है, तो उसमें चुम्बकत्व का गुण आ जाता है । उसी प्रकार, सामान्य लोगों के शरीर से जब संतों का स्पर्श होता है, तो संतों की व्यवस्थित ऊर्जा सामान्य लोगों की ऊर्जा को भी व्यवस्थित कर देती है । गोस्वामीजी कहते हैं-

चौ०

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ॥

जब हम गुरुजन के पाँव छूते हैं, तो उनके पाँव से निकलतीं हुई ऊर्जा हमारे शरीर में प्रवेश कर जाती है । क्योंकि हमारे शरीर के हाथ और पाँव से ऊर्जा हमेशा निकलती रहती है । इसके अतिरिक्त आँख और सिर से भी ऊर्जा निकलती रहती है । महाभारत में वेद-व्यास के **"दृष्टिबीज"** से पाण्डु और धृतराष्ट्र तथा विदुर का जन्म हुआ था । इसी को **"दृष्टिबीज"** कहते हैं ।

हमारे हाथ और पाँव से ऊर्जा निकलती रहती है । गुरु जब हाथ से आशीर्वाद देकर, माथा और आज्ञाचक्र को छूते हैं, तब शिष्य के शरीर में माता-पिता अथवा गुरु की ऊर्जा प्रवेश करती है । पाँव छूकर हम प्रणाम इसलिए करते हैं कि दिव्य पुरुषों के शरीर से जो दिव्य आभा निकल रही है, उसे हम ग्रहण करें । बहुत लोग गुरु के पाँव से स्पर्श किया हुआ जल भी **"चरणामृत"** रूप में पीते हैं । इसका अर्थ है गुरु की ऊर्जा पानी में चली गई है, जिसे पीकर हम स्वयं वैसा ही बनने का प्रयास करते हैं । आज भी मंदिरों में इसी विज्ञान के कारण चरणामृत दिया जाता है ।

विशेष प्रसंग-

आशीर्वाद

(हमारे देश में आशीर्वाद का बड़ा महत्त्व है । आज भी लोग अपने बच्चों को माथा छूकर आशीर्वाद देते हैं । यह आशीर्वाद भी उसी विज्ञान का अंश है । जब कोई व्यक्ति अपने गुरुजन को प्रणाम करता है, तो प्रणाम का अर्थ है प्रणत होना, झुक जाना । जब कोई व्यक्ति विनीत होकर अपने गुरुजन के समक्ष सिर झुकाता है, तो उसकी कामना रहती है कि गुरुजन उसे आशीर्वाद दें । अब आशीर्वाद में उसे क्या चाहिए, यह पता नहीं चलता । उसे धन चाहिए, शरीर सुख, पुत्र अथवा और क्या चाहिए, इसका पता नहीं चलता है । इसलिए गुरुजन उसे **आयुष्मान् भव, दीर्घायु भव, शुभम् भूयात्, खुश रहऽ,जीयऽ, विजयी भव** आदि का आशीर्वाद देते हैं। यह आशीर्वाद किसी प्रयोजन विशेष के लिए दिया गया है । तुम दीर्घायु बनो, विजयी बनो, जीवन में शुभ हो, यह सब प्रयोजन विशेष के लिए की गई शुभकामना है । लेकिन जब गुरु को पता नहीं चले कि शिष्य किस प्रयोजन के लिए प्रणाम कर रहा है, तो उसे सीधे **"आशीर्वाद"** कह दिया जाता है । आशीर्वाद शब्द का अर्थ है- आशी:+वाद । आशी=मंगलाचरण और वाद=कथन । इस प्रकार आशीर्वाद अर्थात् मंगल की कामना, मंगल भाषण । इस आशीर्वाद में चार श्रेष्ठ अक्षर है, जिन्हें इस रूप में समझना भी अनुचित नहीं होगा । आ=आयु, शी:=विद्या, वा=ख्याति और द=दुर्व्यसन के दमन की शक्ति । **'मनुस्मृति'** में भी मनु लिखते हैं- **'आयुर्विद्या यशो बलम् ।'** गुरुजन के मुँह से जब मानसिक संकल्प के साथ ऐसे शब्द निकलते हैं, तो उसका प्रभाव शिष्य पर पड़ता है । क्योंकि वाणी ऊर्जा है और एक बार जो ऊर्जा पैदा हो जाती है, वह कभी नष्ट नहीं होती । इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि अक्षर का नाश कभी नहीं होता । अक्षर वह है, जिसका क्षरण कभी नहीं हो । इसलिए गुरु का आशीर्वाद शिष्य के जीवन को रूपान्तरित कर देता है, उसका जीवन दिव्य आभा से भर जाता है ।)

सीता ने माता अनसूया को इसीलिए पैर छूकर प्रणाम किया । भारत की संस्कृति में प्रणाम और गुरु के द्वारा प्राप्त आशीर्वाद का बहुत महत्त्व बताया गया है ।

अनसूया ने सीता को नारी धर्म का उपदेश दिया । क्योंकि भारत में नारी को देवी कहा जाता है । देवी का अर्थ है, जिसका आचरण, विचार और वाणी दिव्य हो । नारी मर्यादा की प्रतीक मानी जाती है । इसलिए अनसूया ने सीता को पहले तो

"दिव्यवसन" पहनाया, इस वसन के कारण सीता को न कभी भूख-प्यास लगेगी और न कोई कष्ट होगा । उसके बाद नारी के प्रधान-धर्म है जैसे कि शिक्षा, सत्यपरायणता, मर्यादापालन और परिवार धर्म का निर्वाह आदि की शिक्षा दीं।

अनसूया ने सीता को कहा- नारी कुल की मर्यादा होती है, उसके लिए पति के सिवाय और कुछ नहीं है । आगे बताया कि स्त्री के लिए माता-पिता, भाई सभी हितकारी हैं, लेकिन पति मोक्ष देने वाला होता है । मनुष्य को किसी भी संकट के समय अपने धैर्य, धर्म, मित्र और नारी की सहायता लेनी चाहिए । पति बूढ़ा हो, रोगी या गरीब हो, अंधा-बहरा हो, वैसे पति को भी जो स्त्री अपमानित करती है, उसे नरक में वास करना पड़ता है । अनसूया ने कहा- उत्तम स्त्री वह है, जो स्वप्न में भी परपुरुष को नहीं देखती हो और मध्यम कोटि की स्त्री वह है, जो परपुरुष को भाई, पिता और पुत्र समान देखती है । इसके अतिरिक्त नारी का आचरण मर्यादित नहीं माना जाता । क्योंकि एक क्षण के सुख के लिए अगर नारी नैतिक धर्म और मर्यादा को तोड़ती है, तो वह महापापिनी मानी जाती है ।

इस भाव को मैंने थोड़े से शब्दों में व्यक्त किया है, जिसे आज सभी भक्त गण बड़े प्रेम से गाते हैं । तो आइये, हम भी अनसूया के उपदेश को जन-कल्याण के लिए गाएं-

भ0

अनसूया के चरणों में श्रीराम सिया नत होते हैं,
कैसे भगवान् भक्तों के घर, जाकर मान बढ़ाते हैं ॥
अनसूया ने सीता को, दिव्य ज्ञान प्रदान किया,
वन में संकट में डिगे नहीं, आभूषण वैसा दान किया ।
नारी करूणा की देवी है, वह मातृ रूप में पूजित है,
संपर्क परायों से करना, यह शास्त्र नीति में वर्जित है ।
नारी पौरूष से हीन नहीं, वात्सल्य प्रेम की ज्ञाता है,
घर की मर्यादा शील शक्ति, वह नई पीढ़ी की माता है ।

तुम धर्मशील बन सत्य कर्म से, कभी नहीं पीछे हटना,
संकट जीवन में आवे जब, सत्कर्म मार्ग से मत हटना ।
वन में असुरों का ताण्डव है, उनके प्रकोप से मत डरना,
गजगामिनी हो तो श्वानों के, लांछन प्रहार से मत डरना ।
अगले क्षण को कौन कहे, नियति का क्या ठिकाना है,
तुम्हें पतिव्रत का आदर्शरूप, सम्मान सहित दिखलाना है ।

उधर श्रीराम अत्रि मुनि के साथ देर तक आगे की योजनाओं पर बातचीत करते रहे । फिर श्रीराम ने माता अनसूया और अत्रिमुनि से आशीर्वाद लेकर सीता और लक्ष्मण के साथ दूसरे वन की ओर प्रस्थान किया । गोस्वामीजी कहते हैं–

चौ०

उभय बीच श्री सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥

श्रीराम जिस मार्ग पर चल रहे थे, वनवासी उस रास्ता को सुगम बना रहे थे, मेघ अपने स्वामी को छाया कर रहे थे, इसी बीच विराध नामक राक्षस से राम की भेंट हो गई । विराध बड़ा ही भयंकर राक्षस था, वह पूर्व जन्म में यक्ष था जो दुर्वासा के शाप के कारण राक्षस बन गया था । वह ताड़का का पुत्र और मारीच का भाई था । पूरे जंगल में उसका आतंक छाया हुआ था । विराध ने राम से कहा कि तुम अपनी पत्नी को छोड़कर यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें जीवित खा जाऊँगा । यह सुनते ही राम ने अपना एक बाण उस पर चलाया । बाण से विराध का हाथ कटकर गिर गया और तब श्रीराम ने दूसरे बाण से उसकी गर्दन काट दी । विराध के मरते ही पूरे वनप्रदेश में शान्ति की लहर फैल गई । विराध की मृत्यु के पश्चात् सभी राक्षस जंगल छोड़कर भाग गए ।

उसके बाद श्रीराम महान् तपस्वी शरभंग ऋषि के आश्रम में गये । राम का दर्शन करके शरभंग ऋषि स्वर्ग चले गये । उसके बाद श्रीराम महान् संत अगस्त के शिष्य सुतीक्ष्ण से मिले । सुतीक्ष्ण ने राम की अद्‌भुत वंदना की, उनकी भक्ति देखकर राम ने उनसे वर मांगने को कहा । इस पर मुनि ने कहा प्रभु! आपको जो अच्छा लगे, वही

वर दे दें । यह सुनकर राम ने उन्हें भक्ति, वैराग्य, विज्ञान तथा ज्ञान का वरदान दिया । पुनः श्रीराम ने वहाँ बैठे मुनि समूह को कहा-

चौ०

तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । ताते तात न कहि समुझायउँ ॥

श्रीराम ने कहा कि हे मुनिगण, मैं यहाँ किसलिए आया हूँ, यह आप सभी जानते हैं । यह सुन अगस्त ऋषि ने राम को एकान्त में बैठाकर राक्षसों के नाश की पूरी योजना बताई । राक्षसों के अत्याचार से जब सभी मुनि आतंकित हो गये थे, तो सभी मुनि भगवान् भोलेनाथ की शरण में गये और भोलेनाथ स्वयं कुम्भज ऋषि के पास आये और राक्षसों के अत्याचार से मुक्त होने के लिए योजना बनाई थी-

संभू गये कुम्भज ऋषि पाहीं ।

उसी योजना के अंतर्गत रावण ने जो दंडक वन घेरने की योजना बनाई थी, उस पर विचार किया गया और रावण की आज्ञा से दक्षिण भारत और उत्तर भारत के मध्य खड़ा मंदराचल जो बहुत ऊँचा हो गया था, जिससे उत्तर भारत के लोग उसे लाँघकर दक्षिण भारत की ओर न चले जाएँ, उस मंदराचल को छोटा करने के लिए महर्षि अगस्त्य को मनाया गया । क्योंकि मंदराचल महर्षि अगस्त्य का शिष्य था । अगस्त्य मंदराचल के निकट गये, महर्षि को देखकर मंदराचल ने पूछा- गुरुदेव, आप कहाँ जा रहे हैं?

यह सुन महर्षि ने मंदराचल से कहा- "तुम छोटा होकर मुझे जाने का मार्ग दो और जब मैं लौटूँगा, तो तुम फिर बड़ा हो जाना ।" मंदराचल ने वैसा ही किया । गुरु आज्ञा से मंदराचल आज भी अपने गुरु की प्रतीक्षा कर रहा है, आज तक अगस्त्य वापस नहीं लौटे और वह मंदराचल छोटा बना रहा जिस कारण राम को दक्षिण भारत जाने में आसानी हो गई ।

प्रभु श्रीराम विंध्याचल पर्वत की ओर भ्रमण करते हुए आ रहे हैं इस समाचार को सुनकर वहाँ रहने वाले सभी ऋषि-मुनि अति प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा लगा जैसे वर्षों के तप की सिद्धि मिलने वाली है, वे सभी इस भाव से भी अधिक प्रसन्न हुए कि वे वही श्रीराम है, जिनके पाँव की धूलि का स्पर्श पाकर पत्थर नारी बनी थी। अतः इस पर्वत पर बिखड़े हुएं तमाम पत्थर नारी रूप में परिवर्तित हो जायेंगे और हम सभी

ऋषिजनों का परिवार बस जायेगा। यहाँ उन संतजनों के मनोभाव को इस काव्यपंक्ति के माध्यम से प्रकट किया जायेगा।

विंध्य के वासी भये सुखिआरि, सुने जबसे प्रभु राम पधारे ।
होहिं सिला सब नारी सुकोमल, सब सन्त सदा मन मोद बिचारे॥
पग के पगधूरि से नारी बनी, तब गौतम ऋषि के भाग्य सुधारे ।
अब राम कृपा से संत सुधी, सुमुखी पत्नी के रूप विचारे ॥
विंध्य के वासी उदासी सबै, मन में बड़ मोद उमंग हुँकारे ।
हे राम पधारो शीघ्र यहाँ, हम सन्तजनों का कष्ट निवारो ॥
कश्यप, वशिष्ठ अरू याज्ञवल्क्य, अत्रि जब प्राण प्रिया पर हारे।
कौन से चूक भये हमसे, वन में हम घूमत मारे-मारे ॥
हे प्रभु राम दया करना, हम दीन मति अब जीवन हारे ।
गौतम ऋषि सन त्राण करो, सुमुखि पत्नी हो साथ हमारे ॥
मृग शावक संग विहार करे, यह देख के पीड़ित नयन हमारे ।
इस विंध्य प्रदेश के सारे यति, वह माँगत प्राण प्रिया हो हमारे ॥

अगस्त्य से मिलने के पश्चात् राम पंचवटी की ओर प्रस्थान किये । रास्ते में गिद्धराज जटायु से राम ने भेंट की, क्योंकि जटायु ने देवासुर संग्राम में महाराज दशरथ की काफी सहायता की थी, पिता का मित्र होने के कारण राम ने जटायु को प्रणाम किया और फिर पंचवटी पहुँचे । वहाँ लक्ष्मण ने स्थानीय कोल भीलों की सहायता लेकर एक कुटिया का निर्माण किया ।

पंचवटी प्रवेश

एक दिन प्रभु श्रीराम, सीता और लक्ष्मण बैठे थे, तो लक्ष्मण ने राम से पूछा- हे प्रभु, मुझे जीव-जगत् और माया के सम्बन्ध में समझाइये । यह सुन राम ने कहा-

"हे भाई, मैं और तुम का भेद ही माया है । जहाँ तक मन जाता है, वहाँ तक सब कुछ माया है । अविद्या के कारण ही जीव, माया से घिरा है और वह माया के वशीभूत होकर परमात्मा से दूर चला गया है । जो माया, ईश्वर और जीव को नहीं जानता, वही जीव बनकर माया के अधीन रहता है । जिस क्षण जीव माया के खेल को समझ लेता है, उसी दिन उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है, तभी वह मेरे प्रति आसक्त होता है । मेरा गुण गाते समय जब उसका शरीर पुलकित हो जाये, आँखों से अश्रु बहने लगे, तभी उसकी आत्मा मुझसे जुड़ पाती है ।"

चौ०

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥

दो०

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।

तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥

जो व्यक्ति बिना लोभ के मेरा ध्यान करता है, मुझको भजता है, उसके हृदय में मैं निवास करता हूँ ।

श्रीराम ने कहा कि "मेरे भाई, इस संसार में केवल आत्मा अमर है । क्योंकि वह मेरा अंश है, उसी आत्मा के कारण मैं जीव से जुड़ा हूँ ।"

शरीर रथ के समान है, आत्मा रथी है एक ।

बुद्धि सारथी कुशल हो, मन में रहे विवेक ॥

जिस तन में इन्द्रिय प्रधान हो, आत्मा बने निस्तेज ।

संत सुधी आत्मा में जीये, प्रकट होय तब पुंज ।

श्रीराम ने पुनः कहा- शरीर नश्वर है, जो लोग शरीर-सुख को प्रधान मानते हैं, उनके जीवन में हमेशा दुःख रहता है । इसलिए इस शरीर से संतों की सेवा और परमात्मा की आराधना करनी चाहिए ।

चौ०

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

हे भाई, मैं ही इस जगत् में सब कुछ हूँ । मेरे सिवाय इस जगत् में जो भी है, वह माया है। इसलिए तुम हमेशा मेरा स्मरण करो, मुझमें ध्यान लगाओ। मैं ही आत्मा हूँ, मेरा ही प्रतिबिम्ब यह समस्त ब्रह्माण्ड है । राम का वचन सुनकर लक्ष्मण ने कहा कि भैया, मैं तो जीवात्मा हूँ, मैं आपको पूरे रूप से कैसे पा सकता हूँ? इस पर राम ने कहा कि तुम मुझमें मन लगाओ, क्योंकि जो जीव अपनी सभी इन्द्रियों को मुझमें लगा देता है, मुझे ही देखता है, मुझे ही सुनता है, मेरा ही रसास्वाद लेता है और मुझे ही साक्षी मानकर कर्म करता है, उसका प्रत्येक कर्म, मेरा कर्म बन जाता है । इस पर लक्ष्मण ने फिर पूछा- "भैया! प्रतिक्षण आपको धारण किये रहना क्या सम्भव है?" यह सुनकर पुनः राम ने कहा कि "हाँ, यह कठिन अवश्य है, तो ऐसी स्थिति में यज्ञ करना चाहिए, मेरी भक्ति करनी चाहिए और प्रतिदिन मुझे नमस्कार करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रातःकाल मुझमें समर्पित होकर अपने कार्य-व्यापार में लगता है, उसकी हानि-लाभ का जिम्मेवार मैं होता हूँ । मनुष्य को दुःख तब होता है, जब वह स्वयं कर्त्ता बन जाता है और यह मानने लगता है कि यह सब मैंने किया है ।"

जिस खूँटे पर नाम खुदाया, बदले खूँटा अनेक ।
क्षण की तृप्ति कब सुख देगी, सुख देगा बस एक ॥

मनुष्य कुछ वर्षों के लिए परमात्मा से बिछुड़कर संसार में आता है और इसी संसार को वह अपना स्थायी घर मान लेता है, यही मोह-बन्धन है, यही उसके दुःख का कारण है । कोई भी बन्धन दुःख का कारण बनता है । पशु को कभी दुःख नहीं होता, क्योंकि उसको बन्धन का बोध नहीं है । मनुष्य विवेकशील है, इसीलिए उसे दुःख होता है । मेरे भाई, हमारी अयोध्या पर हमारे पूर्वजों ने राज्य किया, आज वे सभी चले गये, केवल उनका नाम शेष रह गया है । जिस जमीन पर अभी तुम बैठे हो और तुमने जो पर्णकुटी बनाई है, उसके पहले पता नहीं कितने लोगों ने इस पर और क्या-क्या बनाया होगा? आज यह जंगल है, संभव है कभी यहाँ मरूभूमि रही होगी, या फिर कल बन जायेगी । यह प्रकृति तो क्षण-क्षण बदल रही है । तो इस बदलते

हुए संसार में कौन ऐसी वस्तु है, जिसके बदल जाने पर शोक करना चाहिए । आज हम हैं, कल नहीं रहेंगे, इसी को तो संसार कहते हैं । संसार का अर्थ ही है, जो संचरण कर रहा हो । उसी तरह प्रकृति का अर्थ, पहले की की हुई कृति । इसको सृष्टि भी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि यह परम सत्ता की अभिव्यक्ति है । इसलिए अपने मन को मुझमें पूर्णरूप से लगा दो ।

भक्ति भेद में कभी न पड़ना, भक्ति न जाने तर्क ।
करो समर्पण निष्ठा भाव से, ईश न जाने फर्क ॥
शुभ अशुभ में भेद न करना, हित तुम्हारा प्रभु हाथ ।
जो होता सब में हित तेरा, छोड़ न उसका साथ ॥

मेरे प्रिय भाई, जिस संसार को तुम देख रहे हो वह जड़-प्रकृति है । इसके अतिरिक्त एक चेतन-प्रकृति है, जहाँ मैं निवास करता हूँ । उस चेतन प्रकृति का कभी नाश नहीं होता । जीव के पास पाँच कर्म-इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं । ये दस स्थूल शरीर की इन्द्रियाँ हैं और सूक्ष्म शरीर की मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार इन्द्रियाँ हैं । और कारण शरीर की वात्सल्य, करूणा और प्रेम ये तीन इन्द्रियाँ हैं । इन इन्द्रियों के परिष्कार से जीवन में दिव्यता आती है ।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा- "भैया! जीव को इस संसार से मुक्ति कैसे मिलती है?" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! जिस क्षण जीव अविद्या का नाश कर लेता है, तो उसके जीवन से स्वतः अंधकार नष्ट हो जाता है । अंधकार नष्ट होते ही जीव परमामा में लय हो जाता है । जो लोग भक्ति मार्ग को चुनते हैं, उन्हें भी परमात्मा प्राप्त होते हैं, लेकिन भक्ति में एकाग्रता चाहिए । भक्ति में भजन-कीर्तन, पूजन का बड़ा महत्त्व है । अतः जीव जब तक मेरा भजन-पूजन करता रहता है, तब तक वह निष्पाप बना रहता है । इसलिए मेरे भाई, तुम मुझे सम्पूर्ण रूप से स्वीकार कर लो। क्योंकि, आंशिक रूप से परमात्मा को स्वीकार नहीं किया जाता । आधे मन की भक्ति का कोई अर्थ नहीं होता है ।

सम्पूर्ण नहीं अपूर्ण होता, सूरज न कभी आधा होता ।
जो चक्षु दोष से पीड़ित हो, उसे सत्य दिखाई नहीं देता ॥

इसलिए परमात्मा के प्रति जो तुम्हारे मन में आस्था है, उसे टूटने मत देना। क्योंकि आस्था की नींव पर ही भक्ति का कंगूरा खड़ा होता है।

जब भाव समर्पण मन से हो, वहाँ तर्क विवेक नहीं होता।
आस्था का जहाँ विसर्जन हो, वहाँ खण्डित विश्वास नहीं होता॥

इसलिए भक्ति के सागर में ऐसा डूबो कि फिर कभी अलग होने का बोध ही न हो। क्योंकि भक्त परमात्मा में विश्वास नहीं करता, वह परमात्मा बन जाता है। ज्ञान से संसार नष्ट होता है और भक्ति से भक्त स्वयं नष्ट हो जाता है।

हे लक्ष्मण! मनुष्य अपने कर्मों के बन्धन में उलझ जाता है और फिर कभी निकल नहीं पाता। हमारे कर्म तीन प्रकार के होते हैं। संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। संचित वह कर्म है, जो पूर्व जन्म की घटना को स्मरण रखता है। प्रारब्ध पूर्व जन्म की घटना के आलोक में कर्म करने की प्रेरणा देता है और क्रियमाण वर्तमान के सभी कर्म। स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है, लेकिन सूक्ष्म और कारण शरीर नष्ट नहीं होता। उसी में वर्तमान काल के कार्यों का लेखा जोखा रहता है।"

लक्ष्मण और सीता बड़े ध्यान से राम की बातें सुनते रहे। लक्ष्मण ने राम से पूछा– "भैया! किस पाप के कारण आप जैसे परमात्मा को आज वनवास का यह दुःख भोगना पड़ रहा है।" यह सुनकर श्रीराम कहते हैं– "भाई लक्ष्मण, हम मनुष्य बनकर इस जगत् में आये हैं, शरीर को तो दुःख और सुख हो सकता है, लेकिन मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर तो मेरा कर्म–माध्यम है। मैं तो सुख–दुःख, शुभ–अशुभ सबसे ऊपर हूँ। इसलिए जो जीव सुख–दुःख से ऊपर उठ जाता है, मान–अपमान, अपना–पराया, मेरा-तेरा के भाव से ऊपर उठ जाता है, उसे दुःख नहीं होता। क्योंकि दुःख–सुख शरीर को होता है, आत्मा को नहीं। मेरा वनवास में आना शरीर धर्म का पालन है। शरीर है तो भूख लगेगी, क्रोध होगा ही, शरीर बूढ़ा होकर बीमार भी हो सकता है, लेकिन मैं न तो बूढ़ा होता हूँ, न बीमार होता हूँ।

चौ०

ब्रह्म अनामय अज भगबंता। ब्यापक अनघ अनादि अनंता॥

इसलिए तुम आत्मा को भजो । शरीर का कोई महत्त्व नहीं है । शरीर तो रथ के समान है, अगर रथ का एक पहिया टूट जाए, तो रथी का पाँव नहीं टूटता । उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता ।" इस प्रकार से श्रीराम का उपदेश सुनकर सीता और लक्ष्मण गदगद हो गये ।

चौ०

भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥

इस तरह राम, सीता और लक्ष्मण बहुत दिनों तक पंचवटी में निवास करते रहे और प्रतिदिन राम ज्ञान–उपदेश विभिन्न कथाओं के माध्यम से कहते रहे । इस तरह लगभग बारह वर्षों का समय निकल गया । शायद राम प्रतीक्षा कर रहे हों कि रावण के मरने में अभी दो वर्ष शेष हैं । इसी काल गणना के अनुसार राम प्रतीक्षा करते रहे। क्योंकि राम तो परमात्मा हैं, उन्हें सब पता है । लक्ष्मण के मन में जो शंका हो रही है, वह इसलिए कि लक्ष्मण जीव हैं और जीव के मन में शंका होना स्वाभाविक है।

एक दिन सीता ने राम से पूछा– "हे प्रभु! बहुत दिनों से माण्डवी, ऊर्मिला, शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति का कोई समाचार नहीं मिला है । भैया भरत कैसे रहते होंगे?" यह सुन राम ने कहा– "सीते, भरत तो मेरी आत्मा है, वह जैसे भी होगा मेरा गुणगान करता होगा । और उसके साथ माण्डवी भी तप कर रही होगी । मेरे वियोग में शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति दुःखी होंगे, लेकिन ऊर्मिला के दुःख का वर्णन मैं नहीं कर सकता । क्योंकि उसका पति मेरी सेवा में लगा है और वह बेचारी महासंकट में पड़ी होगी । मैं उसके दर्द को समझ सकता हूँ ।"

ऊर्मिला का विरह प्रसंग

ऊर्मिला लक्ष्मण की विरह विदग्धा पत्नी है । उसका पति बड़े भाई राम की सेवा में वन गया है । इधर ऊर्मिला सोचती है कि बड़े भैया राम दीदी सीता के साथ वन में है, भैया भरत और माण्डवी नंदीग्राम में हैं, शत्रुघ्न और श्रुतिकीर्ति राजमहल में हैं, लेकिन मैं अपने पति से बिछुड़कर किस दोष की सजा भुगत रही हूँ । पिता दशरथ का स्वर्गवास हो गया है, तीनों माताएँ वियोग के सागर में डूबी हुई हैं और अकेली मैं पति–परित्यक्ता बनकर मरणासन्न बनी पड़ी हूँ । ऊर्मिला यह सोच रही थी कि आधी रात के समय उसे कोयल की आवाज सुनाई पड़ी । कोयल की कूक सुनते

ही ऊर्मिला के मन में पति-वियोग की तड़प और वेगवती हो गई । उसी समय ऊर्मिला एक गीत गाती है, तो आइए, हम सबलोग ऊर्मिला की ओर से एक गीत गावें । आधी रात का समय है, रात अंधेरी है, कहीं किसी वृक्ष पर कोयल बोल रही है-

गीत

वन गेल पिया के बुला दे कोयलिया,
मनमा के पीर सुना दे कोयलिया । वन गेल ... ... !
सब दिन बोले कोइली भोर भिनसरवा,
आज काहे बोले आधी रतिया । वन गेल ... ... !
प्रीतम हमर गेल परदेशवा,
सुन भेल हमर महलिया, कोयलिया । वन गेल ... ... !
गेल बसन्त ऋतु आयेल ऋतु तपिया,
धू-धू जले मोरे गतिया । वन गेल ... ...!
मेघ ऋतु अइहें कोइली, कड़की बिजुरिया,
सुन भेल हमार सेजरिया, कोयलिया । वन गेल ... ... !
अइहें शरद् ऋतु कापे लगिहें गतिया,
बीते कैसे शरद् के रतिया, कोयलिया । वन गेल ... ... !

इस गीत में ऊर्मिला ने अपने मन की व्यथा का वर्णन किया है । जिस पत्नी का पति चौदह वर्षों के लिए वनवास चला गया हो, उसकी मानसिक दशा कैसी होगी, यह समझने जैसी बात है । सचमुच ऊर्मिला का जीवन एक त्याग का जीवन है । अगर सच पूछा जाए तो मानस में ऊर्मिला ने जो त्याग किया है, वैसा त्याग किसी दूसरे ने नहीं किया है । इस तरह ऊर्मिला अपने महल के कोने में बैठकर अपने पति के सम्बन्ध में सोच रही थी कि जंगल का दुःख मेरे पति कैसे सहते होंगे, उसी समय महल की छत पर एक हिरामन तोता आकर बैठ गया । ऊर्मिला ने सुन रखा था कि हिरामन तोता संवाद पहुँचाता है । अतः उसके मन में भी हुआ कि इस हिरामन के

द्वारा वह भी अपने पति को अपनी पीड़ा और वेदना का संवाद भेजे । ऊर्मिला की ओर से एक गीत लिखा गया है, आइए, सब मिलकर वह गीत गाएं, ताकि हिरामन इस गीत को लेकर लक्ष्मण के पास जाए-

गीत

प्रियतम को सुधि पहुँचाना, हिरामन फिर लौट के आना ।

जबसे परदेश गये चैन नहीं अँखियाँ,

देख मेरी हाल हंसे सब सखियाँ ।

उनका संदेश ले आना, हिरामन फिर लौट ... ...!

बड़ी दीदी धन्य हैं संग बड़े भईया,

नन्दीग्राम वास करे मँझली गोसईयाँ ।

मनमा की पीड़ा सुनाना, हिरामन फिर लौट ... ...!

कइसे के कटिहें भईया दिन और रतिया,

चौदह बरस तक बिछड़ल संगतिया ।

कैसे भूलूं मुझे बताना, हिरामन फिर लौट ... ...!

पिता गये स्वर्गलोक पति परदेसिया,

माई-बाप छोड़ के कइली पिरितिया ।

भगवा के फेर नहीं जाना, हिरामन फिर लौट ... ... !

राम, सीता, लखन गये भरत मर्यादा,

मांडवी की पति सेवा मैं कैसे बाधा ।

मुझको तू धरम समझाना, हिरामन फिर लौट ... ...!

ऊर्मिला का करूण-क्रन्दन सुनकर हिरामन बड़ा दुःखी हुआ । हिरामन ने ऊर्मिला को बताया- "हे ऊर्मिले! जब से तुम्हारे पति लक्ष्मण, वन गये हैं, तब से मैं तुम्हारे महल के इसी मुंडेर पर बैठा हूँ । तुम्हारी वेदना और छटपटाहट को देखकर कोई पत्थर दिल भी पिघल सकता है । मैं जब-जब तुम्हें तुम्हारे खुले बाल और मैले वस्त्रों में पागलों की तरह तड़पते देखता हूँ, तो मेरी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। मैंने तो इस राजमहल में तुम्हें दुल्हन के रूप में आते देखा है और भैया लखन के साथ मधुवन में तुम्हें किलकारी मारते भी देखा है एवं आज मैं तुम्हें आँसू बहाते भी देख रहा हूँ । हे देवी, तुम धन्य हो । इस देश का इतिहास गवाह है कि आज तक जिन लोगों ने भी त्याग किया है, उन लोगों में महान त्यागमयी नारी के रूप में तुम्हें हमेशा याद किया जाएगा ।"

प्रभु श्रीराम के साथ मैं भी चित्रकूट गया था, वहाँ भरत भैया का मिलन भी देखा, भरत भैया के त्याग की चर्चा आज सर्वत्र हो रही है क्योंकि उन्होंने राज्य त्याग किया है । लेकिन तुमने तो पति का त्याग करके एक आदर्श स्थापित किया है । पिछले बारह वर्षों से मैं राम के साथ वनों में घूम रहा हूँ । मेरे साथ अनेक देव-देवियाँ, पशु-पक्षी भेष बदलकर राम की नर-लीला देख रहे हैं । लेकिन हे देवी, तुम्हें तो वह भी सौभाग्य नहीं है । मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि भैया लक्ष्मण प्रतिदिन एकान्त में बैठकर तुम्हें याद करते रहते हैं और कई बार तो मैंने उन्हें तुम्हारे विरह में आँसू बहाते भी देखा है । यह बात प्रभु राम और सीता दोनों जानते हैं । मैं तुम्हारा संदेश लेकर तुम्हारे पति के पास अवश्य जाऊँगा और उनका संदेश तुम्हारे पास लाऊँगा । हे देवी! मैं तुम्हारे त्याग को नमस्कार करता हूँ ।

पुनः हिरामन ने कहा कि हे देवी, मैंने पिछले बारह वर्षों में तुम्हारे पति को कभी सोते नहीं देखा । मैंने एक दिन काक भुशुण्डिजी से लक्ष्मण के न सोने का कारण पूछा तो काक भुशुण्डिजी ने मुझे बताया था कि "प्रभु राम और लक्ष्मण दोनों को रावण और मेघनाद का वध करना है, रावण को वध करने वाले प्रभु राम को चौदह वर्षों तक साधना और संयम करना है, महापराक्रमी मेघनाद को वध करने वाले को बारह वर्षों तक नीति, धर्म और ब्रह्मचर्य का पालन करना है । क्योंकि मेघनाद की पत्नी सुलोचना महती सती है, उसका ध्यान हमेशा पति की ओर लगा रहता है, ऐसी हालत में उसे कोई मार नहीं सकता । और इधर तुम्हारे सतीत्व के कारण लक्ष्मणजी सुरक्षित हैं । जब सीता और तुम्हारा दोनों के ध्यान का बल लक्ष्मणजी को मिलेगा, तो दो सती

स्त्रियों के तेज के सामने अकेली सुलोचना टिक नहीं सकेगी और दूसरी बात यह है कि मेघनाद को वही मार सकता है, जो बारह वर्षों तक नहीं सोया हो । जिसने निद्रा रहित बारह वर्षों तक संयमपूर्वक जीवन जीया हो, वही मेघनाद को मार सकता है । हे देवी, तुम्हारे पति को इसीलिए संयम और वैराग्य का व्रत लेना है । ऐसा मुझे काक भुशुण्डिजी ने बताया था जिसका समर्थन गरुड़जी ने भी किया था । हे देवी! जो कुछ हो रहा है, वह सब परमात्मा की कृपा से हो रहा है । इसमें कहीं से किसी का दोष नहीं है । इतना अवश्य है कि व्यक्तिगत रूप से तुम्हारा त्याग आगे आने वाले इतिहास में हमेशा याद किया जाएगा ।" यह कहकर हिरामन लक्ष्मण को संदेश देने हेतु पंचवटी की ओर उड़ने को तैयार हो गया । हिरामन के उड़ने से पहले पति परित्यक्ता ऊर्मिला और व्यथित हो गई और फिर ऊर्मिला ने जाते-जाते एक बड़ा ही दारुण गीत हिरामन को सुनाया । ऊर्मिला ने कहा- हे हिरामन!-

गीत

सुधि प्रियतम की सुनाना!

दिन नहीं चैन रात नहीं निनिया, नैनन नीर बहाना

सुनि कुक बचन कसक उठे अंगिया, प्रीत की रीत बताना!

चमक बिजुरिया रात अंधेरिया, बादुर शोर सुनाना

शीतल मन्द मलय के झोंका, अबला जानि सताना!

पाय पैजनिया जब-जब बाजे, तड़पुं मीन समाना

आंचल सरकी बदन को चूमे, काजल कांट समाना!

चंदन अग्नि समान सतावे, तन-मन विरह बिताना

कहे सुदर्शन मन की पीड़ा, कैसे किसे सुनाना!

विशेष प्रसंग :

(यह कहा जाता है कि लक्ष्मणजी को दूर संभाषण(टेलीपैथी) का ज्ञान था, वे अपनी पत्नी ऊर्मिला से इसी विद्या के माध्यम से बातचीत करते थे । भारत में उस

समय इस विद्या का प्रचलन था, इसलिए दूर-दृष्टि और दूर-श्रवण का प्रयोग संत-महात्मा लोग हमेशा करते थे । वशिष्ठजी भी इस विद्या के ज्ञाता थे, वे किसी भी घटना का दर्शन कर सकते थे । भगवान् शिव ने भी सती के द्वारा राम की परीक्षा लेने वाले दृश्य को अपने ध्यान से ही देख लिया था । यह कोई नई बात नहीं है । सती का यह कहना कि-

कछु न परीछा लिन्हिं गोसाईं, कीन्हं प्रनामु तुम्हारिहिं नाईं ॥

सती ने कहा कि मैंने राम की कोई परीक्षा नहीं ली, केवल प्रणाम करके चली आई । इस दृश्य को शिव ने अपने ध्यान से देख लिया था । इससे यह प्रमाणित होता है कि इस विद्या का ज्ञान उस समय लोगों को था । जहाँ तक हिरामन पक्षी के बोलने की बात है तो काक भुशुण्डि भी कौवा थे और वेदान्त की बात करते थे । संभव है वे संस्कृत और हिन्दी नहीं बोलते होंगे, उनकी कोई दूसरी भाषा रही होगी । आज भी जब हम किसी दूसरे देश में जाते हैं तो वहाँ की भाषा को नहीं समझ पाते हैं क्योंकि वहाँ की भाषा वही समझ सकता है जो उस भाषा को जानता है ।

विष्णु शर्मा ने तो पञ्चतंत्र में कई पशु-पक्षियों के मुख से आपसी बातचीत करवाई है । जड़भरत पक्षी की भाषा समझते थे, हितोपदेश के सभी पात्रों को नीति वाक्य बोलते हुए सुना गया है । हिरामन जैसा तोता आज भी हमारे घरों में राम-राम और सीताराम जैसे शब्द पिंजड़े में बैठकर बोलता रहता है । इसलिए हिरामन और ऊर्मिला के त्याग को नमस्कार करते हुए आइये हम सब पंचवटी में श्रीराम के पास चलते हैं ।)

राक्षस-वध की प्रतिज्ञा

पंचवटी में एक दिन सीता ने प्रभु श्रीराम से पूछा- "हे प्रभु, आप तो साक्षात् परमात्मा हैं, फिर आपने राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा क्यों कर ली । राक्षसों ने आपका क्या बिगाड़ा है?" यह सुन प्रभु राम ने कहा- "मैं किसी को मारने नहीं आया हूँ । सम्पूर्ण आर्यावर्त में नैतिक नियम और धर्म की स्थापना करने आया हूँ । ये राक्षस संत महात्माओं की हत्या कर रहे हैं और धर्म को समूल नष्ट करना चाहते हैं । इन राक्षसों ने हमारी भूमि पर आकर शान्ति प्रिय लोगों को मारना शुरू कर दिया है । अगर इन्हें

नहीं रोका गया तो हमारी पवित्र मातृभूमि में राक्षसों का राज्य स्थापित हो जाएगा । ये सभी राक्षस लंका के निवासी हैं और हमारे देश में रावण के दूत बनकर संत महात्माओं को सता रहे हैं, मार रहे हैं । इसीलिए मैंने प्रतिज्ञा की है ।"

दो०

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

एक दिन सीता और श्रीराम स्फटिक शिला पर बैठे बातचीत कर रहे थे, तभी राम की नजर सीता के पाँव पर पड़ी । राम ने देखा कि सीता के दोनों पाँव में छाले पड़े हुए हैं ।

यह देख राम ने सीता से कहा- "हे सीते, तुम्हारे पाँव में तो छाले पड़ गए हैं, कई वर्षों से तुम्हें मन-पसन्द भोजन भी नहीं मिला है । तुम्हारा दुःख देखकर अब मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है । मैंने तो पिता की आज्ञा से वनवास लिया है, तुम इतना कष्ट क्यों सह रही हो? थोड़े से फल खाकर जीवन बिताना कितना कठिन है ।" यह सुनकर सीता ने कहा- "हे प्रभु, लगता है, मेरी खुशी से आपको ईर्ष्या हो रही है । मैं कितनी खुशी से फल खाती हूँ, नदी का पानी पीती हूँ, पशु-पक्षियों के साथ खेलती हूँ, यहाँ के स्थानीय लोग मुझे कितना प्यार करते हैं, वन में रहने वाली महिलायें मुझसे इतनी हिलमिल गई हैं, ये महिलायें मेरी सेवा करती हैं, मेरी जुड़ा बांधती हैं, जंगल के फूलों से मुझे सजाती-सँवारती हैं, ऐसे में मैं दुःखी कैसे हो सकती हूँ । अयोध्या के राजभवन में पशु-पक्षियों के साथ खेलना कहाँ सम्भव था और सबसे बड़ी बात यह है कि आप प्रतिक्षण मेरे साथ रहते हैं, पत्नी के लिए इससे बड़ा सुख और क्या होगा?" सीता की तर्कपूर्ण बात सुनकर राम की आँखों से आँसू बहने लगे । दोनों इसी तरह बातचीत कर रहे थे, तभी स्थानीय लोगों की एक मण्डली ढोल-मंजिरा लेकर वहाँ पहुँची और राम के सामने बैठकर कीर्तन गाने लगी । यह कीर्तन स्थानीय लोगों के द्वारा गाया गया है ।

आइए, हम सब भी मिलकर जंगल के वनवासी भाइयों के साथ बैठकर यह कीर्तन गाएं ।

की०

आओ सब मिलकर के गायें, सियाराम के नाम,

सीताराम सीताराम सीताराम ... ...

जब से तेरा सहारा पाया, मन में तेरा रूप बसाया।

जल गई ज्योति तब से मन में, अब कैसा विश्राम,

सीताराम ... ...

क्षण-क्षण जीवन बीत रहा है, तन में रोग पनप रहा है,

किसे सुनाऊँ लोरी अपनी, किस पर करूँ अभिमान।

सीताराम ... ...

जब से तेरे दर पे आया, काम वासना सभी भुलाया,

तोड़ चुका हूँ सारा बन्धन, आया तेरे धाम।

सीताराम ... ...

चुन-चुन दाना महल बनाया, छीन झपटकर खूब कमाया,

पाप काल जब बन सर आया, कंठ न आवे राम।

सीताराम ... ...

मूषक विवर जमीं खोद बनावे, तक्षक घूस के राज्य चलावे,

सखा कुटुम्ब नोच धन खाये, कोई न आवे काम।

सीताराम ... ...

कहे "सुदर्शन" मन की पीड़ा, कैसे किसे सुनाऊँ,

जो सुनता है हंसता मुझ पर, माया मिली न राम।

सीताराम ... ...

सभी वनवासी झूम-झूमकर कीर्तन गाते रहे और राम-सीता और लक्ष्मण उनके द्वारा गाये गये भजनों का आनन्द उठाते रहे । थोड़ी देर बाद सभी वनवासी अपने-अपने गाँव घरों में चले गये और राम-सीता पर्णकुटी में विश्राम करने चले गये । लक्ष्मणजी हाथ में धनुष लिए पर्णकुटी के चारों ओर टहलने लगे ।

पर्णकुटी में श्रीराम और सीता का हास-परिहास चलता रहा । क्योंकि श्रीराम समझते थे कि सीता अकारण वन में रहकर इतना कष्ट सह रही है । लेकिन श्रीराम को यह भी पता है कि अगर स्त्री को पति का स्नेह मिलता रहें, तो बड़ा से बड़ा संकट भी हंसते हुए झेल लेती है । क्योंकि स्त्री तो संसार को धारण करने वाली शक्ति है । जिस प्रकार पृथ्वी सम्पूर्ण संसार को धारण करती है, उसी प्रकार स्त्री भी धारण करने वाली है । पृथ्वी जिस प्रकार उसी को अन्न देती है अथवा उसी जीव का पोषण करती है, जो पृथ्वी की सेवा करता है । इसी को गृहस्थ धर्म कहते हैं । स्त्री के जीवन में पति का इसलिए ही महत्त्व है कि पति उसकी सुरक्षा और पोषण करे । जब स्त्री को यह पता हो जाता है कि उसका पति अथवा पुत्र उसकी सुरक्षा और पोषण का ध्यान रखते हैं, तो स्त्री भी अमृत धारा बनकर उस परिवार का पोषण करने लगती है । श्रीराम ने इसीलिए सीता को अपना स्नेह प्रदान किया । श्रीराम को पता है कि उन्हें चौदह वर्षों तक वैराग्यपूर्ण जीवन जीना है । लेकिन सीता को तो पति का संरक्षण और स्नेह चाहिए, श्रीराम ने अपने दायित्व का पूरा निर्वाह किया । इसीलिए श्रीराम ने करूणापूर्वक सीता के दु:ख के विषय में पूछा था । श्रीराम ने अपने हाथ से चंदन का लेप तैयार किया और सीता के पांव में लगाया । उसके बाद श्रीराम ने अपने हाथ से फूलों की माला बनाई और सीता के बालों में बड़े प्रेम से लगाया । कई संत तो यह भी लिखते हैं कि श्रीराम ने कुमकुम से सीता का शृंगार किया । श्रीराम का प्रेम देखकर सीताजी उनके प्रेम का प्रतिदान करते हुए कहने लगीं-

<u>गीत</u>

श्रीराम प्रिये हे प्राणनाथ, मुझको न तु भुला देना ।
मन प्राण तुम्हीं जीवन रक्षक, आँखों में मुझे बसा लेना ॥

यह पुष्प बेल चंदन कुंकुम, स्पन्दित करते तन मेरा ।
पारिजात समझ भंवरा बनकर, परिरंभण करते मुख मेरा ॥

मम मुक्त केश, तव जटा भेष, आलम्बन करते हैं कैसे ।
मानों विद्युत् को घटामेघ, आलिंगन करते हो जैसे ॥
हे आर्यपुत्र तुम दिव्य प्रभा, कण-कण में प्राण तुम्हारा है ।
सब खिले फूल व बन्द कली, सब में आलोक तुम्हारा है ॥
इन फूलों में जो सुरभि है, उनमें सब रंग तुम्हारा है ।
मेरे माथे की बिंदिया में, प्रतिबिम्बित रूप तुम्हारा है ॥
हे प्राणनाथ इस जगती में, सुन्दरतम रूप तुम्हारा है ।
मेरी आँखों की काजल में, यह श्याम रूप तुम्हारा है ॥
यह हरित भूमि सौरभ सुगन्ध, चंचल हिरणी का नर्तन है ।
ऋतुराज बसंती ले समीर, भंवरों के स्वर में कीर्त्तन है ॥

सूर्पणखा-प्रसंग

दूसरे दिन प्रभु श्रीराम सीता और लक्ष्मण गोदावरी तट पर स्नानादि से निवृत्त होकर कुटिया में आकर फलाहार किये । फलाहार के उपरान्त जब सीता और राम स्फटिक शिला पर बैठकर बातचीत कर रहे थे, तभी सूर्पणखा नाम की राक्षसी गोदावरी तट से उनके पदचिह्नों को देखते-देखते कुटिया के निकट पहुँची । सूर्पणखा रावण की प्यारी बहन थी, जिसका चन्द्रलेखा नाम भी मिलता है । उसका विवाह लंका के एक राक्षस विद्युत्जिह्व से हुआ था । विद्युत्जिह्व बड़ा पराक्रमी और आततायी था, वह रावण की आज्ञा नहीं मानता था, इसलिए रावण ने उसकी हत्या कर दी थी । तब से सूर्पणखा दक्षिण भारत से उत्तर भारत के जंगलों में भ्रमण किया करती थी । सूर्पणखा जब पहली नजर में राम और सीता को देखी, तो वह राम को देखकर मोहित हो गयी । उसने सोचा कि मेरा पति अब इस दुनिया में नहीं है, अतः क्यों न मैं इस सुन्दर राजकुमार से विवाह कर लूँ ।

चौ०

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥

सूर्पणखा जब राम को देखी तो वह एक अत्यन्त सुन्दर लड़की का भेष बनाकर राम के पास पहुँची ।

चौ०

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥

सूर्पणखा ने कहा– "मेरे समान स्त्री और तुम्हारे समान पुरुष दूसरा नहीं है । भगवान् ने सोच-विचार कर हमारी जोड़ी बनाई है । आप मुझ से विवाह कर लें ।" यह सुनकर बगल में खड़े लक्ष्मण मुस्कुराने लगे । लक्ष्मण ने मन में सोचा कि आज तो भैया बुरे फँसे । अब देखते हैं इस मायावी दुष्टा से कैसे बचते हैं? सीता ने जब सूर्पणखा की बात सुनी, तो मुस्कुराती हुई बोली– "चलो! आज से हम दोनों ही मिलकर प्रभु की सेवा करेंगे ।" राम, सीता और लक्ष्मण की बात समझकर मुस्कुराते हुए बोले– "हे सुन्दरी! मैं तो विवाहित हूँ, वह जो सामने खड़े हैं, वे मेरे छोटे भाई हैं, वे अभी तक कुँआरे हैं, उनके पास जाओ ।" सूर्पणखा ने सोचा कि चलो वह भी ठीक-ठाक है, सुन्दर है, शक्तिशाली दिखते हैं । अतः यह जोड़ी भी ठीक रहेगी । यह सोचकर वह लक्ष्मण के पास गई । लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा का प्रस्ताव सुनकर कहा–

चौ०

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ॥

लक्ष्मणजी ने कहा– "हे सुन्दरी, मैं तो सेवक हूँ, सेवक से विवाह करोगी तो दासी बनी रहोगी । वे राजा हैं और राजा कुछ भी कर सकता है । सेवक को तो सिर्फ सेवकाई ही करनी होती है, तुम दासी क्यों बनना चाहती हो? उनसे विवाह करोगी, तो रानी बनोगी ।" यह सुन सूर्पणखा ने कहा कि तुम ठीक कहते हो, मुझे दासी नहीं, रानी बनना है ।

चौ०

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥

सूर्पणखा राम के पास आई । राम ने फिर लक्ष्मण के पास भेज दिया, जब दो-तीन बार वह इधर से उधर दौड़ती रही तो लक्ष्मणजी ने कहा- "रे निर्लज्ज! तुमसे कौन विवाह करेगा, तुम तो महानिर्लज्ज हो ।" लक्ष्मण की बात सुनकर वह क्रोध से लाल-पीला होकर राम के पास आकर उसने अपना भयंकर रूप दिखाया ।

चौ०

तब खिसिआनी राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥

सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

यह देख प्रभु श्रीराम ने सूर्पणखा से पूछा- "आखिर तुम मुझसे क्यों विवाह करना चाहती हो? मैं तो विवाहित हूँ, तुम देख रही हो मेरी पत्नी बगल में बैठी है ।" यह सुन सूर्पणखा ने कहा कि मैं इसे खा जाऊँगी । सूर्पणखा की बात सुनकर सीता डर गई, सीता को डरते देख प्रभु राम ने लक्ष्मण को संकेत दिया कि इसका उचित उपाय करो । प्रभु राम की बात सुनकर लक्ष्मण ने बगल से कटार निकालकर सूर्पणखा के कान और नाक काट लिए ।

दो०

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि ।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि ॥

राम ने संकेत दिया और लक्ष्मण ने नाक और कान काट लिए । अब प्रश्न उठता है कि सूर्पणखा नारी है, फिर लक्ष्मणजी ने किसी नारी के नाक-कान काटकर उसे कुरूप क्यों कर दिया? दरअसल, स्त्री का रूप उसका सबसे बड़ा हथियार है । इसलिए प्रत्येक स्त्री और पुरुष रूपवान् बनना चाहता है । रूपवान् या रूपवती होना अच्छी बात है, लेकिन इसी रूप के कारण अगर स्त्री अथवा पुरुष समाज में व्यभिचार फैलाए, तो इसे अनैतिक आचरण माना जाता है । सूर्पणखा विवाहिता थी फिर भी वह अपने को कुँआरी ही मानती थी और अपने मायावी रूप के सहारे दूसरों से छल करती थी।

लक्ष्मणजी ने सोचा कि ऐसी छली स्त्री का रूप बिगाड़ देना चाहिए, ताकि वो किसी दूसरे के साथ छल न कर सके।

ध्यातव्य है कि राम, क्रमशः अब रावण की ओर बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। अब तो बारह वर्ष का समय बीत चुका है। केवल दो वर्ष बाकी है, इसी बीच रावण तक पहुँचना है तो राम ने परिस्थिति बनाना शुरू किया। लक्ष्मण ने ज्योंही सूर्पणखा का नाक-कान काटा, वह उछलती-कूदती अपने भाई खर-दूषण के पास पहुँची और नारी धर्म के अनुसार उसने खर-दूषण को धिक्कारते हुए कहा- जंगल में दो राजकुमार अपनी अतिसुन्दर पत्नी के साथ आए हुए हैं और उसने मेरी नाक और कान काट ली है।"

यह सुन खर और दूषण को बड़ा क्रोध आया। खरं और दूषण, रावण के दूर का भाई था। वह रावण की ओर से उत्तर भारत में उपद्रव मचाने के लिए नियुक्त किया गया था। उसके पास अपार सेना थी, खर और दूषण ने सैनिकों को आदेश दिया कि जाओ दोनों भाई को पकड़कर ले आओ। राक्षसों की सेना जब राम की ओर बढ़ने लगी तो रामं ने लक्ष्मण को कहा कि तुम सीता को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाओ और मैं इनसे निपट लेता हूँ। आगे-आगे सेना चल रही थी और पीछे से खर-दूषण अपने रथ पर सवार होकर वहाँ पहुँचे। खर-दूषण ने ज्योंही राम को देखा, उसकी मोहनिद्रा भंग होने लगी। खर-दूषण ने अपने मंत्री से कहा-

चौ०

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

खर-दूषण ने ज्योंही राम को देखा तो उसने सोचा कि इन लोगों ने मेरी बहन को कुरुप बनाया है, फिर भी इन्हें मारना उचित नहीं है। यह सोचकर खर-दूषण ने राम से कहा कि तुम अपनी सुन्दर स्त्री मुझे दे दो और जीवित अपने घर लौट जाओ। यह सुन राम ने कहा कि क्या कायरों जैसी बात करते हो, अगर हिम्मत है, तो आओ युद्ध करो। राम की बात सुनकर खर और दूषण उस पर टूट पड़े। देखते-देखते राम ने उसकी सारी सेना को नष्ट कर दिया और खर तथा दूषण को मार गिराया। सारी सेना नष्ट हो गई, खर और दूषण मारा गया, लेकिन एक अकम्पन नामक राक्षस बच गया, जो लंका भाग गया। जब युद्ध समाप्त हो गया, तो लक्ष्मणजी सीता को लेकर वहाँ आये, फिर तीनों पंचवटी में विश्राम करने लगे।

जब सूर्पणखा ने देखा कि उसका भाई खर और दूषण मारा गया तो वह भागती हुई अपने भाई रावण के पास लंका पहुँची । अकम्पन ने जब रावण को सूचना दी तो खबर सुनते ही वह लाल-पीला होने लगा । इसी बीच सूर्पणखा रोती-चिल्लाती दरबार में पहुँची ।

सूर्पणखा ने नारी स्वभाव के कारण अपने भाई रावण को खूब धिक्कारा और कहा- "तुम यहाँ राज सिंहासन पर बैठे हो और दो तपसी राजकुमारों ने तुम्हारी बहन की नाक-कान काटकर तुम्हारे बल को चुनौती दी है । तुम उसकी पत्नी का हरण कर लो और दोनों राजकुमारों को मार डालो । उन दोनों ने मेरा बड़ा अपमान किया है । मेरे प्रिय भाई खर और दूषण को उन दोनों ने मार डाला है । तुम शीघ्र उठो और बदला लो ।"

(कहा जाता है- स्त्री के हृदय में ईर्ष्या का घर होता है । सूर्पणखा को सीता से ईर्ष्या होने लगी थी । राम को पाने के लिए उसने सीता को मारने तक का संकल्प कर लिया था । लेकिन जब लक्ष्मण ने उसकी नाक-कान काट ली, तो वह भागती हुई खर और दूषण के पास गई । खर-दूषण को उसने काफी उकसाया, जिस कारण खर-दूषण श्रीराम से लड़ने चला आया और इस युद्ध में मारा गया । उसके बाद वह रावण के पास पहुँची । नारी चरित्र के कारण सूर्पणखा ने अपने स्वार्थ के कारण रावण को काफी उकसाया और तब रावण सीता हरण के लिए तैयार हुआ । इसी सूर्पणखा के कारण राम-रावण युद्ध को निमंत्रण मिला । अगर सूर्पणखा अपने स्वार्थ में नहीं पड़ती, तो यह युद्ध नहीं होता । उसके हठ और ईर्ष्या के कारण ही इतनी बड़ी तबाही हुई । इसीलिए नियम है कि किसी के उकसाने पर काम करने वाले व्यक्ति का नाश हो जाता है ।)

रावण को जब पता चला कि अयोध्या के राजा दशरथ के दो कुँआरों ने सूर्पणखा की ऐसी दशा की है तो रावण समझ गया कि जो व्यक्ति मेरे समान बलवान खर और दूषण को मार सकता है, वह निश्चय ही कोई अलौकिक व्यक्ति है । रावण सोचते हुए थोड़ी देर मौन रहा और फिर वहीं से राम को प्रणाम करते हुए कहा- **"प्रभु इतनी जल्दी आ गये!"** रावण सभा से उठकर अपने महल में चला गया और सोचने लगा कि राम से कैसे भेंट हो । इस तामस शरीर के साथ तो राम से मिलना सम्भव नहीं है ।

चौ०

सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥

रावण ने सोचा कि इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अगर सचमुच राम हैं, तो मैं उनसे पहले बैर करूँगा, अगर वे कोई राजकुमार होंगे तो उनकी पत्नी का हरण कर लूँगा । और अगर वे प्रभु राम हैं, तो उनके हाथ से स्वर्ग प्राप्त करूँगा । रावण ने सोचा कि उसके लिए मारीच को तैयार कर राम के पास भेजना उचित होगा । मारीच मायावी है, उसी से सहायता मिलेगी । रावण मारीच के पास आया ।

इस बीच राम ने जब देखा कि सूर्पणखा के कारण बात बढ़ेगी, तो राम ने सीता को बुलाकर कहा–

चौ०

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥

लक्ष्मण उस समय जंगल में फल लाने गये थे, इसी बीच श्रीराम ने अग्नि को बुलाकर सीता को धरोहर रूप में रखने के लिए सौंप दिया । वहाँ सीता की छाया प्रकट हो गई, इस रहस्य को लक्ष्मणजी नहीं जान सके । पुनः सीता, राम और लक्ष्मण पर्णकुटी में निवास करते हए समय बिताने लगे ।

राम और सीता प्रेमपूर्वक यहाँ निवास कर रहे हैं और उधर रावण सूर्पणखा की बात सुनकर व्यग्र हो रहा है । उसके मन में विभिन्न प्रकार के विचार आ रहे हैं । कभी सोचता है, जंगल के ये दोनों राजकुमार यदि परमात्मा हैं तो वे जंगलों में क्यों भटक रहे हैं? अगर ये दोनों राजकुमार कोई दिव्य पुरुष नहीं हैं, तो इन लोगों ने खर और दूषण को कैसे मारा, कोई भी सामान्य व्यक्ति खर और दूषण को नहीं मार सकता । इसलिए रावण ने सोचा कि चलो इसकी जाँच कर ली जाए । रावण महाज्ञानी था लेकिन उसका आचरण, खान–पान और रहन–सहन बहुत ही अनैतिक था । ज्ञानी

हो जाना अलग बात है और नैतिक आचरण करना अलग बात है । नैतिक आचरण के अभाव में मनुष्य पशु बन जाता है । रावण के महापांडित्य को उसके अनैतिक आचरण ने ढँक लिया था । क्योंकि आचरण से ही मनुष्य का विचार बनता है । इसलिए ज्ञानी होते हुए भी वह मूढ़ के समान व्यवहार करता था । अहंकार के कारण वह संसार के प्रत्येक व्यक्ति को नीचा दिखाना चाहता था । इसी अहंकार के कारण रावण ने भगवान् शिव को भी मल्लयुद्ध के लिए ललकारा था । जब वह भगवान् शिव से पराजित हो गया, तो शिव की शरणागति में गिर गया और भगवान् शिव का भक्त बन गया । कहते हैं, रावण भगवान् शिव को लंका ले जाना चाहता था, भगवान् शिव तो नहीं माने लेकिन उन्होंने अपना एक शिवलिंग रावण को दिया और कहा कि इसे तुम लंका ले जाओ । मैं इसी के माध्यम से तुम्हारे पास रहूँगा । रावण जब शिवलिंग लेकर आकाशमार्ग से चला तो देवताओं को बड़ी चिंता हुई, देवताओं ने सोचा कि अगर यह शिवलिंग लेकर लंका पहुँच गया, तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा । इस शिवलिंग के प्रभाव से वह अमर हो जाएगा । देवताओं ने योजना बनाई कि आकाशमार्ग से जाते हुए रावण को जोरों से पेशाब लगे । जब वह शिवलिंग को जमीन पर रखकर पेशाब करने लगेगा, तब शिव का वचन भंग हो जाएगा । देवताओं की योजना सफल हुई, रावण को पेशाब लगा, वह नीचे उतरकर शिवलिंग को एक स्थान पर रखकर पेशाब करने लगा । पेशाब के बाद जब वह उठा तो शिवलिंग उससे नहीं उठा और वह शिवलिंग जमीन में धंसता गया । रावण हारकर शिवलिंग छोड़कर चला गया । यह वही शिवलिंग है, जिसे बैद्यनाथ नामक चरवाहे ने देखा, तब से उसका नाम बैद्यनाथ हो गया, जो आज भी **"कामदालिंग"** के नाम से प्रसिद्ध है । यह स्थान आज भी **"बैद्यनाथधाम"** के नाम से जाना जाता है और असंख्य भक्तों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है । इस स्थान को देवघर भी कहते हैं, जो झारखंड राज्य में स्थित है । भगवान् शिव के बारह **"ज्योतिर्लिंग"** हैं, जो विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं । काशी विश्वनाथ में जो शिवलिंग है, उसे **"मोक्षदा"** शिवलिंग कहते हैं । उन बारह स्थानों के नाम हैं- केदारनाथ, वेंकटेश्वर, ओंकारेश्वर, मल्लिकार्जुनेश्वर, नागेश्वर, सोमेश्वर, विश्वनाथ, रामेश्वर, त्रयम्बकेश्वर, घृष्मेश्वर, भीमाशंकर और बैद्यनाथेश्वर । इनकी पूजा अर्चना करने से अद्‌भुत फल की प्राप्ति होती है ।

रावण महापराक्रमी था, उसने राम की परीक्षा लेने का निर्णय किया । इसके लिए उसने योजना बनाई कि ताड़का पुत्र मारीच से सहायता ली जाए । मारीच बहुत बड़ा

मायावी था, इसलिए रावण मारीच के पास गया । रावण ने कहा- "मारीच! तुम सोने का मृग बनकर राम की कुटिया के निकट उछल-कूद मचाओ, राम की पत्नी सीता तुम्हें देखकर आकर्षित होगी, सीता मृग को पकड़ने के लिए अपने पति से कहेगी, राम जब मृग को पकड़ने जाएंगे, इसी बीच मैं सीता का हरण कर लूँगा, क्योंकि सोना स्त्रियों को तुरंत आकर्षित करता है ।" यह सुनकर मारीच ने कहा- रावण, मैं राम की शक्ति को पहचान चुका हूँ, जब राम विश्वामित्र के साथ जा रहे थे, तो मेरी माँ ताड़का ने उन पर आक्रमण किया था । राम ने एक ही बाण में मेरी माँ को मार दिया था । जब मैंने बदला लेने के लिए राम पर आक्रमण किया, तो उन्होंने बिना फर के बाण से मुझे मारा था, जिस कारण मैं सैकड़ों कोस दूर जा गिरा था । वे महापराक्रमी हैं, उनके पास मुझे मत भेजो ।

चौ०

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किएँ फल नाहीं ॥

मारीच ने बहुत समझाया कि तुम ऐसी भूल मत करो । मारीच की बात सुनकर रावण ने कहा- "अगर तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगे, तो मैं इसी समय तुम्हें मार दूँगा ।" यह सुनकर मारीच ने सोचा कि अगर मैंने रावण की बात नहीं मानी तो यह मुझे मार देगा और अगर राम से छल करूँगा, तो राम मुझे मार देंगे । तो रावण के हाथों मरने से तो अच्छा है कि मैं श्रीराम के हाथों मरूँ । मारीच तैयार हो गया । उसे खुशी हो रही थी कि आज वह फिर श्रीराम का दर्शन करेगा । जब मैं मृग बनकर भागूँगा, तो राम मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे और मैं पीछे मुड़-मुड़कर राम को बार-बार देखता रहूँगा ।

ऐसा ही निश्चय कर रावण और मारीच राम की कुटिया के निकट पहुँचे । रावण झाड़ी में छिप गया और मारीच सोने का मृग बनकर कुटिया के आगे उछल-कूद करने लगा । उस समय सीता फूल तोड़ रही थी । सीता ने जब स्वर्णमृग को देखा, तो उसने राम को संकेत से अपने पास बुलाकर कहा- इस स्वर्णमृग ने मेरा मन मोह लिया है, इसे आप पकड़कर ले आवें । यह अद्‌भुत मृग है, इसके साथ खेलने से मेरा मन भी बहलता रहेगा और यदि यह पकड़ में ना आवे तो इसका मृगछाल भी बड़ा सुन्दर लगेगा। राम ने समझ लिया कि छाया रूपी सीता को माया ने पकड़ लिया है । सीता

यह भी नहीं समझती कि सोने का मृग नहीं होता । राम तो सब जानते थे, लेकिन उन्हें नर-लीला करनी थी, राम ने लक्ष्मण को सीता की सुरक्षा करने के लिए कहा और स्वयं मृग पकड़ने उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे ।

सीता-हरण

चौ०

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन ॥

प्रभु श्रीराम मृग के पीछे-पीछे दौड़ने लगे ।

चौ०

निगम नेति सिव ध्यान न पावा । मायामृग पाछें सो धावा ॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि "जिस राम को वेद और शिव भी ध्यान करके नहीं पाते, वह मृग के पीछे-पीछे दौड़ रहा है, यह अद्‌भुत घटना है ।" परमात्मा भागता है और जीव उसे पाना चाहता है । लेकिन यहाँ जीव भाग रहा है और परमात्मा उसका पीछा कर रहा है । लेकिन यह तो नर-लीला है । यहाँ श्रीराम बताना चाहते हैं कि सोने के लोभ में जो व्यक्ति अपनी पत्नी को छोड़कर भागता रहता है, उसे शुभ फल की प्राप्ति नहीं होती । सोना के कारण माता-पिता और घर को छोड़ना उचित नहीं है । आइए, इस पर दो पंक्ति हम गुनगुनाएं और इससे शिक्षा लें-

सोनमा के खातिर पिया गइले परदेशिया
भुलइल पिअउ संग-संग के पिरितिया
सोनमा सन गलल तोहर चढ़ल जवनियाँ
अँखियाँ से सूख गइल प्रेम के अगनियाँ
कइसे बिताएब पिया जीवन के डगरिया
भुलइल पिअउ ....

भाई छुटल, बाप छुटल, छुटल महतरिया
संगवा के साथी छुटल, छुटल पिरितिया
अमवा के डाली पर बोले जब कोयलिया
भुलइल पिअउ ....

केहन निर्मोही बनके छोड़ल मेहरिया
कइसे के कटिहें पिया दिन और रतिया
ठोप-ठोप चुए जब हमर महलिया
भुलइल पिअउ ....

रतिया में अमवा पै बोले जब कोयलिया
अगिया लगावे तन में चमके बिजुरिया
सन-सन बहे जब जुलुमी पुरबिया
भुलइल ....

राम स्वर्णमृग के पीछे दौड़ रहे हैं, मारीच बार-बार पीछे मुड़कर भाग रहा है। राम माया का खेल खेल रहे हैं । मारीच जीव है और श्रीराम ब्रह्म है। जीव भाग रहा है, ब्रह्म पीछा कर रहा है। यह अद्‌भुत घटना है—

गीत

यह दृश्य मनोहर देख सबै, प्रभु भागत मारीच भाग्य सराहे।
सत् कोटि जन्म ले जीव सदा, प्रभु खोज पावत राह न माहे॥
सो प्रभु धावत जीव के पाछे, खग वृन्द मुनि मन बात विचारे।
कौन से पुण्य किये रज निश्चर, वह भागत धावत राम हमारे॥

योगी यति सब मांगे सदा, प्रभु मुक्त करो सब पाप हमारो।
सो प्रभु मारीच के ढ़िग जाई, भेज दियो नीज धाम बेचारो॥
जो जन भक्ष करे मद-मांस, हरे बल बुद्धि व कर्म नसावे।
मारीच सम अघ खानि को राम ने, मुक्त किये हर दोष निवारे॥
काम के पाश है नाग के पाश, तजे मदमोह जो रूप बिगाड़े।
देव दनुज में भेद यही, जो काम व राम में भेद विसारे॥
नीज कर्म से दिव्य करे तन को, तब ही जीव शिवधाम सिधारो।
कर जोरि सुदर्शन संत कहे, तन में प्रभु को हर रोज उतारो॥

इस प्रकार से कुछ समय तक पीछा करते हुए जब मृग पकड़ में नहीं आया, तो राम ने एक बाण मृग को मारा, बाण लगते ही मृग गिरा और उसने वहीं से पुकारा- "हा-सीता, हा-लक्ष्मण" और अन्त में राम का नाम लेते हुए अपने शरीर का त्याग कर दिया। मारीच की करूण-पुकार जब सीता को सुनाई पड़ी, तो वह घबड़ा गई, उसने लक्ष्मण से कहा-

चौ०

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

सीता की बात सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा- "भाभी माँ, यह सब छल है। आप चिन्ता न करें, भैया को कुछ नहीं होगा।" यह सुनकर सीता आक्रोश में आ गई और कुछ कटु वचन लक्ष्मण से बोली। कटुवचन सुनकर लक्ष्मण दहल उठे-

चौ०

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥

लक्ष्मण समझ गये कि भाभी माँ आक्रोश में जिन शब्दों का प्रयोग कर रही हैं, वह आपत्तिजनक है। लेकिन सीता बार-बार लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए

भेजना चाहती है । जब लक्ष्मणजी नहीं गये, तो सीता ने कहा- "लक्ष्मण क्या तुम चाहते हो कि किसी संकट में मेरे पति का नाश हो जाए और तुम मुझ पर अधिकार कर लो । मुझे लगता है, तुम्हारे मन में लोभ हो गया है ।"

यह सुन लक्ष्मण ने कहा- "भाभी माँ! मैं इस वन प्रदेश में आपको अकेले नहीं छोड़ सकता ।" लेकिन सीता लक्ष्मण की एक बात नहीं मानी और बार-बार लक्ष्मण को कायर, पापी, लोभी कहने लगी । तब लक्ष्मण ने कहा- "अगर आपके मन में मेरे प्रति ऐसा विचार है, तो मैं भैया राम के पास जाता हूँ । लेकिन आप ध्यान रखें कि मैं अपने बाण की नोक से कुटिया के चारों ओर एक लकीर खींच दे रहा हूँ, इस लकीर में इतनी शक्ति है कि जब आप इसे लाँघकर बाहर जायेंगी तो आपको कुछ नहीं होगा, परन्तु अगर कोई दूसरा इस लकीर को लाँघकर भीतर आना चाहेगा, तो वह जलकर भस्म हो जाएगा । जब तक मैं भैया को लेकर आता हूँ, तब तक आप कुटिया के अन्दर ही रहें ।" यह कहकर लक्ष्मण ने कुटिया के चारों ओर लक्ष्मण रेखा खींच दी और वन के देवी-देवताओं को सीता की रक्षा का भार दे दिया । इसके बाद वे राम की सहायता के लिए दौड़े ।

इधर रावण झाड़ी में छिपा था, उसने जब देखा कि कुटिया में सीता अकेली है तो वह संन्यासी का भेष बनाकर कुटिया के सामने गया-

चौ०

सो दससीस स्वान की नाईं । इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥

जो रावण अपने आतंक से पूरे ब्रह्माण्ड को आतंकित कर रहा था, वह जब पाप कर्म करने चला तो उसका सारा शरीर काँप रहा था और वह डरते हुए सीता की कुटिया के पास पहुँचा । उसने बाहर से पुकार लगाया **"भिक्षां देहि"** । यह सुनकर सीता ने कुछ फल लेकर संन्यासी को देना चाहा । रावण ज्योंही सीता के निकट जाने लगा, उसे बोध हुआ कि सीता के निकट जाने में किसी अत्यन्त वेगवान अग्नि की रेखा है । वह पीछे हट गया । लेकिन सीता लक्ष्मण रेखा के भीतर ही खड़ी रही । रावण ने कहा- "हे देवी! आप इस रेखा के बाहर आकर भिक्षा दें, मैं बंधी हुई भिक्षा नहीं लेता ।"

लक्ष्मण-रेखा का विज्ञान

विशेष प्रसंग-

(मानस में लक्ष्मण-रेखा की चर्चा है । लक्ष्मणजी ने पर्णकुटी के चारों ओर एक ऐसी रेखा खींच दी, जिस रेखा को अपने लोग तो लांघ सकते थे, लेकिन कोई भी शत्रु इसे नहीं लांघ सकता था । यह रेखा मंत्रों की शक्ति से निर्मित थी । प्रश्न है- इस रेखा को अपने-परायों की पहचान कैसे हो जाती थी? सीता को उस रेखा से कुछ नहीं हुआ, लेकिन रावण जब उसके निकट पहुँचा, तो वह झुलसने लगा । इसका कारण था- वह रेखा मनुष्य के विचारों से प्रभावित होती थी । रावण का विचार गलत था तो रेखा ने उसका प्रतिकार किया । सीता का विचार अच्छा था तो उस रेखा ने सीता को कुछ नहीं किया । स्पष्ट है कि मनुष्य के विचारों से पदार्थ प्रभावित होता है, ऐसा भौतिक विज्ञान के वैज्ञानिक भी मानते हैं । वही नियम यहाँ भी लागू है, जिस नियम की खोज आज वैज्ञानिकों ने की है । नोबेल पुरस्कार विजेता **युझोन विग्नर** ने कहा है- "विचार और चेतना से पदार्थ प्रभावित होता है ।" आजकल तो माईक्रोवेभ से चिन्तन किया जा रहा है, जिसके द्वारा शरीर और मन दोनों को प्रभावित कर दिया जाता है । इसकी पुष्टि वैज्ञानिक डॉ॰ हेनरी लिडल्हर ने की है । विचार इतना प्रभावशाली और वेगवान होता है कि उसको रोका नहीं जा सकता । पूरा ब्रह्माण्ड ऊर्जाशक्ति, विद्युत्, चुम्बक और विचार से प्रभावित है। इसीलिए अंतरिक्ष के खाली स्थान को (आइथेस्फेयर) कहते हैं । इसी से प्रभावित होकर एलेक्जेंडर राल्फ ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है- **द पावर ऑफ माइन्ड।** उनका मानना है कि विचार की शक्ति से बाहर की वस्तु को प्रभावित किया जा सकता है । इसीलिए विचार से शरीर की क्रियाएँ प्रभावित होती हैं । आज भी वैज्ञानिक मानते हैं कि जो व्यक्ति अपने विचार को बहने नहीं देता, प्रकट नहीं होने देता, उसे हाइपर टेंशन हो जाता है । विज्ञान मानता है कि विचार एक सेकेण्ड में पृथ्वी की तीन परिक्रमा कर लेता है ।

रावण को इसी विचार के कारण लक्ष्मण-रेखा से भय लगा । आज तक कोई इस लक्ष्मण-रेखा के रहस्य को समझ नहीं सका है । वह कौन सी ऐसी विद्या थी, वह कौन सा ऐसा एटम बम था जो सिर्फ शत्रु का नुकसान करता था । अगर आज लोगों को इस विद्या का ज्ञान हो जाए तो मानवता का सबसे बड़ा कल्याण हो जाएगा । मैंने सुना है, जर्मनी में लक्ष्मण-रेखा के रहस्यों को खोजा जा रहा है ।)

सीता शालीनता से उस लक्ष्मण रेखा के बाहर आई, बाहर आते ही रावण ने सीता को जब पहली बार देखा तो सीता की दिव्यता देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया। सीता को देखकर रावण ने कहा– "हे सुमुखि! तुम यहाँ वन में क्या कर रही हो, तुम्हें तो हमारे राजमहल में होना चाहिए। इस घोर जंगल में वनवासी के साथ रहना तुम्हें शोभा नहीं देता। इस पूरे ब्रह्माण्ड में कौन ऐसा है, जो तुम्हें देखकर मोहित न हो जाए। मैं तुमसे प्रेम की भिक्षा मांगता हूँ।" यह सुनते ही सीता क्रोध में आ गई और बोलने लगी– "रे दुष्ट पापी संन्यासी, तू थोड़ी देर यहाँ रुक, अभी रघुकुलभूषण आनेवाले हैं, वही तुम्हारी दुर्गति करेंगे।"

यह सुन रावण चारों ओर देखने लगा, जब देखा कि कोई नहीं आ रहा है तो वह संन्यासी का भेष छोड़कर अपने असली स्वरूप में आ गया। रावण ने गर्जना करते हुए कहा– "हे सीते! मैं लंकापति रावण हूँ। मैं तुम्हें बलपूर्वक यहाँ से घसीटकर ले जाऊँगा। पूरे विश्व में कोई भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।" रावण ने बलपूर्वक सीता को उठा लिया, सीता करूण-चीत्कार करती रही और रावण सीता को रथ पर बैठाकर उड़ चला। सीता बार-बार राम, लक्ष्मण को पुकारती रही और उसकी करूण-पुकार गिरि-कन्दराओं से टकराकर जंगल में विलीन होती रही। जो राम पल भर में सृष्टि का लय कर सकते हैं, उसी राम की पत्नी सीता क्रन्दन कर रही है, लेकिन उसकी आवाज बड़े-बड़े वृक्षों के सिवाय और कोई नहीं सुन रहा है। सीता तड़पती रही और बार-बार राम, लक्ष्मण को पुकारती रही।

जब सीता ने देखा कि उसकी पुकार कोई नहीं सुन रहा है, तो उसने अपनी साड़ी का आँचल फाड़कर नीचे गिराना शुरू किया, ताकि राम को सीता के जाने के मार्ग का पता हो सके। सीता की करूण पुकार जब आकाश में गूँज रही थी तो उसी समय जटायु ने उनके रोने की आवाज सुनी।

(कहते हैं, जटायु कश्यप की पत्नी विनता का छोटा पुत्र था। उसके बड़े पुत्र का नाम संपाती था। दोनों बड़े बलवान थे, बल के अहंकार के कारण संपाती और जटायु ने एक दिन सूर्यलोक में जाने का निर्णय किया। जटायु तो सूर्य के तेज को सह नहीं सका वह लौट आया, लेकिन संपाती सूर्य के निकट पहुँच गया, सूर्य के तेज से संपाती बुरी तरह झुलसकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब से वह समुद्र के किनारे गिरि-कन्दरा में अपनी मृत्यु का इन्तजार कर रहा है।)

जटायु जब सीता की पुकार सुना, तो वह सोचने लगा कि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ और यह दुष्ट रावण उस अबला स्त्री को बलपूर्वक ले जा रहा है । जटायु यही सोच रहा था कि सीता ने पुनः **"हा-रघुनन्दन"** कहा । अब जटायु को लगा कि निश्चय ही यह हमारे मित्र दशरथ के पुत्र राम की भार्या है । वह क्रोध में उठा और रावण को ललकारते हुए उस पर टूट पड़ा-

चौ०

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥

जटायु की ललकार सुनकर रावण ने सीता को रथ पर छोड़ जटायु पर आक्रमण किया। जटायु ने अपनी चोंच से रावण को घायल कर जमीन पर पटक दिया और सीता को रथ से उतारकर अलग बैठा दिया । जटायु और रावण में घोर युद्ध होने लगा। जब रावण ने देखा कि जटायु को आसानी से परास्त नहीं किया जा सकता तो उसने अपनी कटार निकाली और जटायु के पंख पर प्रहार किया-

चौ०

काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अदभुत करनी ॥

रावण के प्रहार से जटायु पंख-हीन होकर जमीन पर गिर पड़ा । जटायु को वहीं छोड़ रावण ने फिर से सीता को रथ पर बैठाया और लंका की ओर प्रस्थान किया ।

सीता को आकाशमार्ग से रोती-कलपती जाते देख ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे कपिराज सुग्रीव और अन्य लोगों ने देखा । कपि को देखकर सीता अपने कुछ अलंकारों की पोटली बनाकर उस पर्वत पर गिरा दी । बन्दरों ने जब उस पोटली को देखा तो बिना किसी जिज्ञासा के उस पोटली को सुरक्षित स्थान पर रख दिया । उधर रावण सीता को लेकर लंका चला गया ।

चौ०

यही बिधि सीतहि सो लै गयऊ । बन असोक महँ राखत भयऊ ॥

रावण सीता को लेकर लंका में गया और उसने अपने महल से दूर अशोकवाटिका में रख दिया । रावण चाहता तो सीता को अपने रंगमहल में भी रख सकता था, लेकिन उसने उसे अशोकवाटिका में ही रखना उचित समझा । क्योंकि रावण जानता था कि उसे सीता पर बल प्रयोग नहीं करना हैं । इसका कारण यह था

कि रावण एक दिन स्वर्ग लोक गया, वहाँ उसने अपने बड़े भाई कुबेर के बेटे नल कुबेर की पत्नी रंभा को देखा। रावण उस पर इस कदर मोहित हो गया कि वह रंभा से अपने प्रेम का प्रस्ताव किए बिना न रह सका। यह सुनकर रंभा ने रावण से कहा "आप मेरे ससुर लगते हैं, आपको मुझसे ऐसी बात नहीं करनी चाहिए।" रंभा से यह प्रत्युत्तर सुन रावण को क्रोध आ गया और रावण ने बलपूर्वक रंभा का शील-हरण कर लिया। इस घटना से दुःखी होकर रंभा ने रावण को शाप दे दिया कि अगर तुमने अब किसी स्त्री पर अपना बल प्रयोग किया और उसका शील हरने का प्रयास किया, तो तुम्हारा सिर खण्डित हो जाएगा। उसी शाप के डर के कारण रावण किसी स्त्री पर बल प्रयोग नहीं करता था। शायद इसी कारण रावण ने सीता को भी अपने महल से दूर अशोकवाटिका में रखा था। इस तरह सीता भारत की पहली महिला है जो अपने देश से दूर विदेश तक पहुँच चुकी थी।

श्रीराम-विलाप

मारीच को मारने के पश्चात् श्रीराम लौट ही रहे थे तो इधर से लक्ष्मण दौड़ते हुए राम के पास पहुँचे। लक्ष्मण ने आते ही पूछा- "भैया! क्या हुआ?" लक्ष्मण को देखकर राम ने चिन्ता भरे स्वर में कहा- यहाँ तो मायावी राक्षस मारा गया, लेकिन तुम यहाँ कैसे आए? सीता को वन में अकेली छोड़कर तुम कैसे यहाँ आ गये? मैंने तो तुम्हें आदेश दिया था कि तुम कुटिया की सुरक्षा करना-

चौ०

जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयेहु तात बचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥

राम ने कहा कि इस वन में सीता को अकेली छोड़ना उचित नहीं था। अब मेरे मन में संदेह उठ रहा है कि आश्रम में शायद सीता सुरक्षित नहीं होगी। यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा "भैया, भाभी माँ ने मारीच के छलपूर्ण वचन सुनकर मुझे यहाँ बलपूर्वक भेजा है, लेकिन आप चिन्ता न करें, भाभी माँ अगर मेरी खींची रेखा के अन्दर रहेगी तो ब्रह्माण्ड की कोई भी शक्ति उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती।" वैज्ञानिकों का मानना है कि पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही विद्युत् वेग गतिमान् है। इसीलिए तात्त्विक दृष्टि से पूरा ब्रह्माण्ड एक यूनिट है।

लक्ष्मणजी ने जो रेखा बनाई, वह विज्ञान की दृष्टि से ऊर्जा का घनीभूत रुप था । जैसे-भगवान् शिव अपने त्रिनेत्र से ऊर्जा का विस्फोट करते हैं । इसलिए विज्ञान को चाहिए कि लक्ष्मण रेखा के रहस्य को जानने का प्रयास करे ।

हम पुनः राम की ओर लौटते हैं । राम ने समझ लिया कि लक्ष्मण का सीता को इस तरह अकेले छोड़कर आना जरूर कोई अनहोनी बात का संकेत है । राम और लक्ष्मण भागते हुए आश्रम में आये, तो सीता को वहाँ न देखकर राम विलाप करने लगे । वे स्वयं अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए कहने लगे कि मेरी बुद्धि को क्या हो गया था कि मैं स्वर्ण मृग के पीछे दौड़ा । मुझे यह ज्ञान क्यों नहीं हुआ कि सोना का मृग नहीं होता । संसार के लोग मेरी मूर्खता पर कितना हंसेंगे और यही कहेंगे कि सोना पाने के लिए पत्नी को वन में छोड़कर मैं चला गया था, जिस कारण मेरी प्राणप्रिय पत्नी मुझसे बिछुड़ गई । संसार के लोग यही कहेंगे कि राम ने सोना की खातिर अपनी पत्नी गँवा दिया । मैं अब किस मुँह से सीता के बिना अयोध्या लौटूँगा । अब तो मुझे जीवन भर लांछित होकर जीना पड़ेगा । माता कैकेई ने ठीक ही किया कि मेरे समान बुद्धिहीन व्यक्ति को राजा नहीं बनाया ।

पुनः वे लक्ष्मण के आँसू पोंछते हुए बोले "मेरे भाई, तुम अयोध्या लौट जाओ, मैं अब यहीं वन में रहूँगा ।" यह सुनकर लक्ष्मण ने अपने भैया को हिम्मत बंधाते हुए कहा "भैया, हम पिछले बारह वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं । आज फिर परमात्मा ने एक नई चुनौती दी है । हमें इस चुनौती का मुकाबला करना है । मैं आपके चरणों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि जिस दुष्ट ने मेरी भाभी माँ के साथ ऐसा खेल खेला है, उसे समूल नष्ट कर दूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है । भैया, संकट के समय आँसू बहाने से संकट नहीं हटता । आप तो महाज्ञानी हैं, हमें पता तो लगाना चाहिए कि भाभी माँ गईं कहाँ?" भैया, कहीं भाभी माँ हमलोगों से ठिठोली तो नहीं कर रही हैं ।

लक्ष्मण की बात सुनकर राम ने साहस जुटाया और कहा "लक्ष्मण मेरे भाई, सीता अगर ठिठोली करती, तो आश्रम में कुछ फल इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, इसका अर्थ है कि वो किसी को भिक्षा देना चाही होगी और उस पाखण्डी ने सीता को बलपूर्वक पकड़ा होगा, तभी भिक्षापात्र और फल इधर-उधर बिखरे हुए हैं । मेरे भाई, मैं किसी भी संकट से घबड़ाता नहीं, लेकिन अपनी मूर्खता पर तो पश्चाताप करना ही पड़ेगा । तुमने देखा नहीं कि गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र का शिष्य कैसे मायामृग

के पीछे दौड़ रहा था । मेरे गुरु द्वारा पढ़ाया गया सारा ज्ञान कहाँ चला गया था? मैं तो अब यही मानता हूँ कि विधाता ने किसी विशेष कार्य के लिए मुझे इस परिस्थिति में खड़ा किया है । आज इस संकट की घड़ी में तुम अगर मेरे साथ नहीं होते, तो मैं बुरी तरह टूट गया होता । मेरे भाई, तीनों लोक में जहाँ कहीं भी मेरी सीता होगी, मैं उसे खोज लूँगा । तुमने ठीक ही कहा है, संकट के बादल आँसू बहाने से नहीं हटते ।" मैं मानता हूँ कि मेरी भूल के कारण मेरी सीता मुझसे बिछुड़ी है, मैं ही उसे खोजूँगा और ऐसा कृत्य करने वाले को मैं स्वयं मृत्यु दण्ड दूँगा । मुझसे यह भयंकर भूल हुई है, इसका परिष्कार भी मैं ही करूँगा-

स्वयं आँख में आँसू भर कर, स्वयं ही उसे धोना पड़ता है ।
मकड़ी जाल में स्वयं फँसती है, जीवन भर पछताना पड़ता है ॥

अब, राम और लक्ष्मण, सीता की खोज में आगे जंगलों की ओर बढ़े । सीता के विरह की व्यग्रता राम को ऐसे सता रही है कि वे यह भी नहीं समझ रहे हैं कि सीता का पता किससे पूछें । क्योंकि संकट और विषाद से ग्रसित व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है । विवेक के नष्ट होते ही मनुष्य उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता । राम इतने विषादग्रस्त हैं कि वे वृक्षों और पत्तों से, पशु-पक्षियों से सीता का पता पूछ रहे हैं-

चौ०

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥

श्रीराम वृक्ष के फलों से कहते हैं- "हे फल आज तुम्हें देखकर मेरे मन में तुम्हें पाने की कोई चाह नहीं है । क्योंकि मनुष्य जब दुःख में होता है तो छोटे दुःख की ओर ध्यान नहीं देता है ।" राम को न पक्षियों का कलरव अच्छा लग रहा है और न नदी झरनों का संगीत ही अच्छा लग रहा है । वे पत्नी वियोग की आग में जल रहे हैं । जंगल का संगीत, मोर-मोरनी का नृत्य, कोयल की कूक सब राम को शूल दे रहे हैं । ऐसा शास्त्रों में भी आया है कि अपने प्रियजनों के बिछोह होते ही संसार का सब सुख फीका पड़ जाता है । आँसू बहाते हुए राम जंगल-जंगल बिना फल-फूल

खाये भटकते रहे । इसी भटकाव के क्रम में राम और लक्ष्मण जब आगे बढ़े जा रहे थे कि तभी किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी । राम ने जब कराहने की आवाज सुनी, तो अपना गम भूल गये और जाकर देखा तो गिद्धराज जटायु घायल होकर कराह रहे थे। राम ने दौड़कर जटायु को गोद में उठाया और पूछा- "हे तात! आपकी यह हालत किसने बनाई ।"

जटायु ने हाथ जोड़कर कहा- "हे प्रभु राम, मैं आपके पिता महाराज दशरथ के साथ देवासुर संग्राम में साथ-साथ लड़ा था। अब तो शरीर बूढ़ा हो गया है, मैं जब परमात्मा का ध्यान कर रहा था, तभी किसी नारी का करूण-क्रन्दन सुनाई पड़ा। उसने जब **"हा रघुनन्दन और हा लक्ष्मण"** पुकारा, तो मैं समझ गया कि वह अवश्य ही रघुकुल की बहू सीता होगी । मैं आपके आश्रम में जाकर कई बार आपका सत्संग भी सुन चुका हूँ । आपके सत्संग से ही मुझे दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है । तब से मैं निरन्तर आपका नाम स्मरण करता रहता हूँ । मैंने जब सीता का क्रन्दन सुना, तो दौड़कर उस रथ को रोका । मैंने देखा कि विश्रवा का बेटा रावण सीता को लिए जा रहा था। मैंने रावण को ललकारा और अपने बूढ़े हाथ से उस पर आक्रमण किया, मैंने तो सीता को छुड़ा लिया था, लेकिन उस दुष्ट ने अपनी तलवार से मेरा पंख काट दिया, जिससे मैं असहाय बनकर पृथ्वी पर गिर गया और वह सीता को लेकर चला गया ।"

जटायु ने पुनः कहा- "हे राम, अपने पिता का मित्र जानकर मरने के पश्चात् तुम अपने हाथों मेरा अंतिम संस्कार कर देना, क्योंकि मेरा कोई पुत्र नहीं है ।" राम ने गिद्ध जटायु को गोद में बैठाकर उसके घाव को अपनी आँखों के आँसू से धोया। क्योंकि आँसू में घाव के बढ़ने की शक्ति को रोकने का गुण होता है । इसीलिए राम ने आँसू से जटायु के घाव धोये । प्रभु को स्पर्श करते ही जटायु का सारा दर्द नष्ट हो गया, वह उठ बैठा ।

फिर जटायु ने कहा- "हे प्रभु, मृत्यु काल में आपको सामने पाकर मैं धन्य हो गया । अब मेरे जीवन में कोई चाह नहीं बची । तुम इतनी दया करो कि प्राण निकलते समय मेरी आँखों के सामने रहना । क्योंकि मैं चाहता हूँ कि अंतिम समय में कोई बुरा विचार मन में न आवे । मरते समय मनुष्य के मन में जैसा विचार आता है, अगले

जन्म में मनुष्य को उसी रूप में पैदा होना होता है। राजा भरत जैसे महाज्ञानी को अपने द्वारा पालित किये गए हिरण से मोह हो गया था, जिस कारण मरने के बाद भरत को हिरण की योनि में जन्म लेना पड़ा। इसलिए मरते समय तुम मेरे सामने रहना।"

जटायु ने इस अवसर पर श्रीराम से प्रार्थना की है, वह प्रार्थना बहुत ही मोहक है, तो आइए, सब मिलकर जटायु की ओर से श्रीराम की प्रार्थना करें।

भ०

श्रीराम दया करना, रघुनाथ दया करना।
गणिका को तारा है, पत्थर से उबारा है।
मेरी भूल क्षमा करना, श्रीराम दया करना॥
श्रीराम दया करना ... ...!

यह जग बेगाना है, परलोक बचाना है।
मेरे पाप क्षमा करना, श्रीराम दया करना॥
श्रीराम दया करना ... ...!

जन्मों से भटका हूँ, नहीं ठौर ठिकाना है।
उपकार मेरा करना, श्रीराम दया करना॥
श्रीराम दया करना ... ...!

पापी तन-मन मेरा, भोगों से लिपटा है।
मन रोग मुक्त करना, भक्ति मय तन करना॥
श्रीराम दया करना ... ...!

जटायु की प्रार्थना सुनकर श्रीराम ने कहा हे तात! अब आप मेरे धाम को जायें, लेकिन स्वर्ग में मेरे पिता से मेरे दुःख का कारण मत बताइएगा ।

चौ०

तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥

श्रीराम को देखते हुए जटायु ने शरीर का त्याग कर दिया । उसके बाद श्रीराम ने विधिपूर्वक नदी के तट पर जाकर श्राद्ध कर्म किया और जलाँजलि दी । जटायु के मरने की खबर जब गिद्ध समूह को मिली, तो पूरे विश्व के गिद्ध वहाँ एकत्र हो गये । गिद्धों ने श्रीराम से कहा- "हे प्रभु, श्राद्ध के नियम के अनुसार श्राद्ध के पश्चात् भोज दिया जाता है, तभी मृतक को शान्ति मिलती है ।"

यह सुन श्रीराम ने गिद्धों को कहा- "तुम्हारा भोज तो माँस होता है और मैं यहाँ तुम्हारे भोज का प्रबन्ध नहीं कर सकता । तुम सभी लोग लंका जाओ, वहाँ भीषण युद्ध होने वाला है, युद्ध भूमि में तुम अपने राजा जटायु का बदला राक्षसों से ले लेना ।" यह सुन सभी गिद्ध लंका की ओर प्रस्थान कर गये । जटायु पर राम की कृपा देखकर भगवान् शिव ने पार्वती से कहा- "हे पार्वती, जटायु जैसा माँस-भक्षी को अपनी शरण में आने के कारण प्रभु श्रीराम ने स्वधाम भेज दिया । सचमुच वे लोग मूढ़ हैं, जो राम को छोड़कर विषयों में लिप्त रहते हैं ।"

कामी को सुख काम से, धर्मी को सुख धर्म ।
भँवरा को सुख फूल से, मूढ़ न जाने मर्म ॥

जो लोग हमेशा राम का चिन्तन करते हैं, उनके मन में कभी पाप का उदय नहीं होता ।

जिस तन में राम निवास करे, वहाँ काम कहाँ से आएगा ।
गंगा की धारा में कैसे, पाप कीट बच पाएगा ॥

जटायु का संस्कार करने के पश्चात् राम सीता की खोज में आगे बढ़े । उसी समय कबन्ध नाम का राक्षस राम पर झपटा । राम ने तुरंत कबन्ध की हत्या कर दी और उसकी विनती सुनकर उसे अपने धाम भेज दिया । वह अपने मूलगंधर्व रूप में स्वर्ग चला गया । उसके बाद राम आगे बढ़े ।

शबरी-प्रसंग

राम ने लक्ष्मण से कहा- "लक्ष्मण! रास्ते में शबरी का आश्रम पड़ता है ।" लक्ष्मण ने पूछा- "भैया, यह शबरी कौन है?" यह सुन राम ने कहा- "शबरी एक भील जाति की महिला है । वह कभी स्वर्ग में अप्सरा थी, शाप के कारण उसका जन्म भील जाति में हुआ है । वह मेरी परम भक्तिनी है । वह अनेक वर्षों से मेरी प्रतीक्षा कर रही है । संत-महात्माओं ने भील समझकर उसका बहिष्कार कर दिया है । पंपा-सरोवर में उसे स्नान नहीं करने दिया जाता था । इसके कारण पंपा सरोवर के जल में कीड़ा लग गया । संत-महात्मा उसे अछूत समझते हैं, फिर भी वह अपने हाथ से महात्माओं के जाने-आने के मार्ग को बुहारती रहती है, उसकी अनन्य भक्ति के कारण मुझे वहाँ जाना पड़ेगा ।" यह सुन लक्ष्मण ने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा ।

उधर वर्षों से शबरी राम के आने की प्रतीक्षा कर रही है । प्रतिदिन वह राम के आने के मार्ग को बुहारती, उस पर जल छिड़कती और राम के लिए जंगल से मीठे-मीठे फल तोड़कर लाती और जब राम नहीं आते, तो फिर दूसरे दिन की प्रतीक्षा में वही सब काम करती । यह क्रम वर्षों से चल रहा था । शबरी की भक्ति देखकर किसी को भी शबरी जैसी भक्ति की लालसा हो सकती है । शबरी की भक्ति पर एक बड़ा सुन्दर गीत है, आइए, हमलोग उस गीत को गाएं-

गीत

शबरी बहारे डगरिया, आज रामजी अइहें दुअरिया ।

फूल बिछावे मग से जल छिड़कावे,
तरु पल्लव से आसनी बनावे,
भर-भर के लावे गगरिया । आज रामजी ... ...!

चख-चख के मधुर फल दोना बनावे,
पाकल-पाकल बेर से पत्तल सजावे,
कैसी बनी है बावरिया । आज रामजी ... ...!

पंपा सरोवर जाके कैसे नहाये,
तन में है छूत लागल मन कैसे धोए,
ऋषि-मुनि रोके डगरिया । आज रामजी ... ...!

कैसे अज्ञानी सब मन भरमाये,
जटाधारी संत बन खुद को नसावे,
भक्ति भेष जैसे मदरिया । आज रामजी ... ...!

मन में दुर्गंध हो तन को सजाये,
रूप जवानी से जग को रिझाये,
तब कैसे मिलिहें सांवरिया । आज रामजी ... ...!

शबरी प्रतिदिन राम की प्रतीक्षा करती है और एक दिन प्रभु श्रीराम उसकी कुटिया के निकट पहुँच जाते हैं । शबरी ने जब राम को देखा, तो वह धन्य हो गई-

चौ०

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ॥
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

(भीलनी शबरी को परमात्मा मिल गया । जब कोई भक्त प्रभु को पाने का प्रयास करता है, तो प्रभु पहले उसे धन और वैभव देता है । जब भक्त धन और संसार की वस्तुओं को छोड़ने में समर्थ हो जाता है, तब उसे परमात्मा प्राप्त हो जाता है ।)

शबरी ने श्रीराम को आसन पर बैठाकर उनके चरण-कमल की वन्दना की और कुटिया में जाकर पत्ता के दोना में बेर लाकर राम को खाने के लिए दी । पुनः शबरी ने निष्कपट भाव से कहा- हे प्रभु! सारे बेर मीठे हैं, मैंने एक-एक बेर को चखकर देखा है । आप इन मीठे बेरों को ग्रहण करें । राम ने दोना हाथ में लेकर खाना शुरू किया । दो-चार बेर राम ने लक्ष्मण को खाने के लिए दिया ।

लक्ष्मण ने सोचा कि यह भिलनी स्वयं कह रही है कि इन बेरों को उसने चख-चखकर इकट्ठा किया है, तो इसका जूठा बेर मैं कैसे खाऊँगा । लक्ष्मण ने उन बेरों को पीछे की ओर फेंक दिया । वे बेर उत्तर में हिमालय पर जा गिरे ।

कहते हैं, वही बेर संजीवनी बूटी बन गया था, जिससे शक्तिबाण लगने पर लक्ष्मण को बचाया जा सका था । कहते हैं राम किसी को क्षमा नहीं करते । किसी के पाप के लिए उसे दण्ड अवश्य देते हैं । लक्ष्मण ने शबरी की भक्ति को अपमानित किया था, इसीलिए शबरी के बेर से लक्ष्मण के प्राण को बचाया जा सका । बेर खाने के पश्चात् राम जब बैठे, तो शबरी हाथ जोड़कर सामने बैठ गई और शबरी ने राम से पूछा- "हे प्रभु! मैं तो अधम नारी हूँ, मेरा उद्धार कैसे होगा? मुझे समझाएं ।"

चौ०

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥

भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

श्रीराम ने कहा- "हे भामिनि! कोई भी व्यक्ति जाति से बड़ा नहीं होता । जिसके पास प्रभु की भक्ति है, उसी से मेरा सम्बन्ध है । भक्ति के बिना मनुष्य पशु के समान है । श्रीराम ने कहा- आज मैं तुम्हें नवधा भक्ति का रहस्य बताता हूँ । शास्त्रों में नौ प्रकार की भक्ति बताई गई है ।"

श्रवणं कीर्तनं चैव साख्यं पदसेवनम् ।

अर्चनम् वन्दनम् नित्यं दास्यं आत्मनिवेदनम् ॥

ध्यातव्य है कि प्रभु श्रीराम ने शबरी को भामिनी कहा । भामिनी किसी सौभाग्यवती महिला को कहा जाता है । राम को पता है कि शबरी पूर्व जन्म की अप्सरा है । वह शाप के कारण भिलनी बनी है । मुक्ति के बाद वह पुनः अप्सरा बन जायेगी । इसलिए श्रीराम ने शबरी को भामिनी कहा ।

श्रीराम ने कहा- शास्त्रों में पहली भक्ति संतों के साथ सत्संग करना बताया गया है । सत्संग श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है । दूसरी भक्ति मेरी कथा का श्रवण है । तीसरी

भक्ति है- गुरु के चरणों की सेवा करते हुए भक्त अपने अभिमान को नष्ट करके मान-अपमान से ऊपर उठ जाए। चौथी भक्ति मेरा गुणगान करना। वेदों के अनुसार मंत्र जाप और भजन पाँचवी भक्ति है। छठी भक्ति इन्द्रियों का निग्रह, शील मर्यादा का पालन और वैराग्य है। सातवीं भक्ति संसार को समभाव से देखना है। जो मिल जाए उससे संतोष करना यह आठवीं भक्ति है और नवीं भक्ति है सबके साथ प्रेम रखना और हमेशा मेरे स्वरूप को याद रखना। शबरी आँख बन्द करके राम के उपदेश को सुनती रही, फिर शबरी ने राम से पूछा- "हे प्रभु, मुझे ऐसा उपदेश और भी दें, जिससे मुझे मुक्ति मिल जाए और यह भी बताएं कि आपके चरणों में मेरी भक्ति कैसे बनी रहेगी?"

इस अवसर पर शबरी ने एक बड़ा सुन्दर गीत गाया है, यह गीत आज बहुत लोकप्रिय हो रहा है। तो आइए, हमलोग ढोल-मजिरा लेकर इस गीत को कव्वाली के धुन पर गायें-

गीत

शबरी ने कहा राम से, भक्ति का रस पिलाओ।
हम दीन हैं भिखारी, अपनी शरण में लाओ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!
प्रभु ने कहा तुम भक्त हो, संतों में जी लगाओ।
सत्संग में तुम आकर, जीवन सफल बनाओ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!
तेरा कर्म ही है पूजा, अभिमान को हटाओ।
कर्त्ता का बोध छोड़ो, यह भाव मन में लाओ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!

हर सांस की डगर में, बंसी का स्वर सुनाओ ।
जीवन-मरण से मुक्त बन, जीवन सफल बनाओ ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!
कैसी तुम्हारी भक्ति, अब तुम मुझे बताओ ।
कैसे बुलाया तुम मुझे, यह अर्थ तुम बताओ ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!
आँखों में आँसू ढल गए, हे नाथ मत सताओ ।
शबरी तो कब की मिट गई, चरणों में तुम बिठाओ ॥
शबरी ने कहा राम से... ... .!

शबरी का यह गीत सुनकर प्रभु राम ने शबरी से कहा कि तुम भक्ति का रस पीना चाहती हो, तुम भक्ति की विधि पूछ रही हो, इससे बड़ी भक्ति और क्या होगी कि तुमने मुझे अपने आश्रम में बुला लिया ।

(भक्त हमेशा भगवान् को पाना चाहता है, उसके लिए वह हजार मंदिरों की परिक्रमा करता है, फिर भी उसे भगवान् नहीं मिलता । लेकिन यहाँ परमात्मा स्वयं शबरी के घर जाता है । इसका अर्थ है- परमात्मा खोजने पर नहीं मिलता । भक्त जहाँ हो, अगर वह पात्र बन जाए, उसकी समस्त इन्द्रियाँ जब परमात्मा को पुकारने लगे, तो परमात्मा वहाँ प्रकट हो जाते हैं । परमात्मा तो सर्वत्र हैं, केवल पुकारने वाला चाहिए। भक्त की पुकार कितनी गहरी है, इसी पर परमात्मा का आना निश्चित होता है ।)

श्रीराम के मुख से ऐसे वचन सुनकर शबरी की आँखों से आँसू गिरने लगे और शबरी राम के चरणों पर लेट गई । प्रभु श्रीराम ने शबरी के उद्धार का वचन देते हुए पूछा- "हे शबरी, अब बताओ मेरी जानकी कहाँ है?" यह सुनकर शबरी ने श्रीराम से कहा- "यहाँ से थोड़ी दूर आगे ऋष्यमूक पर्वत है, वहाँ बहुत सारे भालू और कपि रहते हैं । सुग्रीव भी वहीं रहता है । आप उनके पास जायें, वे आपकी सहायता अवश्य करेंगे ।"

इस समय शबरी के आश्रम में अगल-बगल के बहुत संत-महात्मा भी पहुँच गये थे, इन संतों को श्रीराम ने समझाया- "शबरी को अपमानित कर आप सभी पाप के भागी बन रहे हैं, इसी पाप के कारण पंपा सरोवर का जल गंदा हो गया है, आपलोग शबरी को पंपा सरोवर तक ले जाएं, ज्योंही शबरी का पाँव उस सरोवर के जल को स्पर्श करेगा तभी पंपा सरोवर का जल निर्मल हो जाएगा।" संतों को अपनी भूल पर गहरा पश्चाताप हुआ। वे लोग शबरी को पंपा सरोवर में ले गये, उसके पाँव का स्पर्श होते ही पंपा सरोवर का जल निर्मल हो गया।

(शबरी के पाँव का स्पर्श होते ही सरोवर का जल निर्मल हो गया। इसका अर्थ है- शबरी का शरीर दिव्य बन गया था। इसी दिव्यता के कारण सरोवर का जल निर्मल हो गया। शबरी की ऊर्जा से सागर का जल ऊर्जावान् बन गया।)

उसके बाद प्रभु श्रीराम ने शबरी से विदा मांगा। शबरी ने श्रीराम से कहा- "मैं तो अभागिन अबला नारी हूँ, आप मुझे छोड़कर जा रहे हैं, किसी भक्त के लिए यह कितना दुर्भाग्य है कि उसका प्रभु उसे छोड़कर जाए, मैं कैसे आपको जाने के लिए कहूँ, लेकिन प्रभु उधर से जब लौटेंगे तो एक बार फिर मुझे दर्शन देने की कृपा करें।" इस अवसर पर शबरी ने राम को जाते देख एक गीत गाया है। आइए हम भी उस गीत को गाएं, ताकि हमारे घर भी राम पधारें-

<u>गीत</u>

रघुवर तुम्हें यहाँ आना पड़ेगा,
शबरी के जूठे बेर खाना पड़ेगा।

तुने मुझे अपना बनाया है जब से,
आँखों में सूरत बसी है तेरी तब से।
मेरी कुटिया में तुझे आना पड़ेगा,
शबरी के जूठे बेर खाना पड़ेगा॥
रघुवर तुम्हें... ... ...!

तुमने अहिल्या को शिला से उबारा,
गीध, अजामिल का जीवन सुधारा ।
मेरे पाप क्षमा तुम्हें करना पड़ेगा,
शबरी के जूठे बेर खाना पड़ेगा ॥
रघुवर तुम्हें... ... ...!

जीवन भर पापों की गठरी कमाया,
रूप जवानी पर सर्वस्व लुटाया ।
पापों की अग्नि में मुझे जलना पड़ेगा,
भक्त "सुदर्शन" को बचाना पड़ेगा ।
रघुवर तुम्हें... ... ...!

श्रीराम तुम्हें यहाँ आना पड़ेगा ।
शबरी के जूठे बेर खाना पड़ेगा ॥
रघुवर तुम्हें... ... ... !

विशेष प्रसंग–

(शबरी नीच जाति की भिलनी थी । उसे न किसी शास्त्र का ज्ञान था और न पूजा–विधिका ज्ञान था । उसके पास केवल अहंकार रहित निर्मल हृदय था । प्रभु को स्वर्णफूल की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं है और न ही उन्हें सोने अथवा चांदी का पूजा पात्र चाहिए । उसे तो बेल–पत्र और भाव–पुष्प चाहिए । क्योंकि परमात्मा केवल अमीरों का नहीं होता, गरीबों का भी होता है । पूजा प्रदर्शन नहीं है, पूजा तो हृदय का समर्पण है । परमात्मा का निवास हृदय में होता है और हृदय को कोई अलंकार नहीं चाहिए । जिसका हृदय पवित्र होता है, उसके लिए सर्वत्र परमात्मा ही बसता है । शबरी के पास न कोई मंदिर था और न कोई शास्त्र ज्ञान । उसने भगवान्

के लिए पेड़ के पत्तों का दोना बनाया और अपने जूठे बेर उन्हें भाव सहित समर्पित किया। इसी को निर्मल और निश्छल भक्ति कहते हैं।

जो परमात्मा तुम्हें स्वर्णपात्र देता है, उसे तुम क्या दोगे? स्वर्णपात्रों के माध्यम से लोग अपने अहंकारों का प्रदर्शन करते हैं। अहंकार प्रदर्शन करने से प्रभु नहीं मिलते हैं अपितु प्रभु के चरणों में समर्पित करने वाले को ही परमात्मा मिलते हैं। इसीलिए मैं व्यक्तिगत रूप से इस विचार से सहमत हूँ कि परमात्मा को तुम फूल क्यों चढ़ाते हो? फूल तो प्रकृति की मुस्कान है, उसे मत तोड़ो। तोड़ना हो तो अपने अहंकारों को तोड़ो।

मैंने एक पुस्तक लिखी है- **"मंदिर में फूल नहीं, अहंकार चढ़ाओ।"** फूल तो असहाय है। प्रभु के फूल को तुम प्रभु को ही चढ़ा रहे हो, अपना कुछ क्यों नहीं चढ़ाते? तुम्हारे पास काम, क्रोध, अहंकार आदि है, उसे अपने पास सुरक्षित क्यों रख लेते हो और परमात्मा का फूल और मिठाई, उन्हीं को चढ़ा देते हो। अगर देना ही है तो तुम अपनी कोई वस्तु दो। क्या यह उचित है कि यदि हम किसी के घर बर्थडे में जाएं और उसी के घर की कोई वस्तु टी.वी., फ्रीज उसी को दे दें। यह कितना गलत है, ठीक उसी प्रकार तुम मंदिर में जाते हो और मंदिर की ही वस्तु मंदिर के मालिक को दे देते हो। तुम कितनी बड़ी चालाकी कर रहे हो, यह स्वयं से पूछो।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि जब हम मंदिर में प्रसाद चढ़ाने जाते हैं, तो वही मिठाई खरीदते हैं, जो हमें अच्छी लगती है। भगवान् को अच्छा लगे, इसका विचार हम नहीं करते। जो जितना अमीर होता है, वह अपनी अमीरी के अनुसार मिठाई खरीदता है। अगर सोने की मिठाई हो सकती, तो अमीर लोग उसे ही खरीदकर प्रभु को चढ़ाते। इसलिए ऐसी पूजा, पूजा नहीं होती, यह तो अपने वैभव का प्रदर्शन है।

शबरी के पास कुछ नहीं था, इसलिए परमात्मा उसे स्वयं मिल गये। शबरी ने राम को सोने-चाँदी के आसन पर नहीं बैठाया, पत्तों की आसनी पर बैठाया। आखिर भगवान् को हम क्या देंगे, जिनसे माँगकर हम धनी बने हैं, उन्हें कोई क्या दे सकता है? परमात्मा को तो निश्छल प्रेम चाहिए, जैसे शबरी ने किया। जिसका मन पवित्र होता है, उसके हाथ का एक चम्मच जल भी काफी होता है। भगवान् तो साग की पत्ती खाकर संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि प्रभु को तुम क्या-क्या देते हो? प्रभु को तुम अपने हृदय का कितना प्रेम देते हो, यह महत्त्वपूर्ण है-

सुमन चढ़ाये देव पद, सुमन करे नहीं कोय ।
जो सुमन मन कर सको, तो दुःख काहे को होय ॥

प्रभु को सु+मन चाहिए, सुमन(फूल) नहीं ।

शबरी की कुटिया में न कोई मंदिर था और न भगवान् की कोई मूर्ति । शबरी का मानना था कि यह पूरा संसार तो प्रभु का मंदिर ही है, फिर एक घर बनाकर उसे मंदिर क्यों कहूँ? जिस परमात्मा ने हम सबको बनाया, उसकी मूर्ति मैं कैसे बनाऊँ । वह तो संतों से पूछती है कि-

मंदिर में गर तू बसते हो, और कहाँ नहीं बसते हो ।
पता बता दो झाँककर देखूँ, जहाँ नहीं तुम रहते हो ॥

शबरी का मानना है कि अगर हमारा मन पवित्र हो जाए, तो हमें सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई पड़ने लगेंगे ।)

सुमन उगाये खेत में, तन में नहीं उपजाये ।
काँट-कुश जब मन में उपजे, तन-मन रुधिर बहाये ॥

इस अवसर पर राम को विदा करने के पश्चात् संत-मंडली के साथ बैठकर शबरी एक बड़ा सुन्दर गीत गाती है, इस गीत में संत-जनों पर व्यंग्य करते हुए शबरी कहती है- "तुम सब मुझसे प्रश्न पूछ रहे हो कि प्रभु राम मेरी कुटिया में कैसे आ गये । जबकि बड़े-बड़े संतों के पास प्रभु नहीं गये । बड़े-बड़े मठाधीश प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन प्रभु केवल शबरी की कुटिया में आये । वहाँ अनेक संत खड़े देखते ही रह गये, उन संतों के प्रश्नों का जवाब देते हुए शबरी कहती है कि मेरे लिए कहीं कोई मंदिर नहीं है, पूरा संसार ही मंदिर है । मैं मंदिर बनाकर परमात्मा की सृष्टि में विभेद करना नहीं चाहती । क्योंकि मंदिर में अगर परमात्मा बसता है तो अन्य जगह पर क्या बसता है? फिर क्यों कहते हो कि कण-कण में प्रभु का वास है?" यही शबरी का दर्शन है । मंदिरों में बैठे लोगों को इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहिए-

मंदिर में गर प्रभु मिले, रहूँ तहाँ दिन रात ।
सेवत पंडित अहर्निश, क्यों न परम पद पात ॥

इसी अवसर पर संतों को सुनाकर शबरी एक भजन गाती है–

भ०

किस मंदिर में जाऊँ, सिर किसको झुकाऊँ ।

जब सब कुछ तेरा है, कैसे ये भेद बढ़ाऊँ ॥ किस मंदिर... ... ...!

तन मन जब तेरा है, यह भाव विसर्जन है ।

संसार तुम्हारा है, क्या तुझको दिखाऊँ ॥ किस मंदिर... ... ...!

यह जीव जगत् माया, दृश्यमान जगत् काया ।

घट-घट के प्राणों को, मैं कैसे दिखाऊँ ॥ किस मंदिर... ... ... !

बन प्राण तुम्हीं तन में, निस्सार जगत कण में ।

सर्वत्र तू ही हो, यह दृष्टि कहाँ पाऊँ ॥ किस मंदिर... ... ...!

इस पंच तत्व में तू, सांसों में बहते तू ।

इस सांस में जब तू हो, तुझे ले कहाँ जाऊँ ॥ किस मंदिर... ... ... !

तन मंदिर है मेरा, जब वास हुआ तेरा ।

किस मंदिर में तुझको, जाकर के बिठाऊँ । किस मंदिर... ... ...!

जब वास न तेरा था, तब नाम 'सुदर्शन' था ।

कैसे बिलगुं तुझसे, मैं कैसे बताऊँ । किस मंदिर... ... ... !

शबरी को देखकर मन में निश्चय होता है कि भक्ति केवल समर्पण है । इसलिए भक्तिनी शबरी कहती है कि जैसी हूँ मैं नाथ मुझे वैसी ही पाओ । मुझे तुम्हारे पास

आने के लिए सज-सँवरकर आने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब मैं, 'तुम' बन गई हूँ । मैं 'तुम' हूँ और तुम 'मैं' हो । एकाकार हो जाना, एक तान, एक लय हो जाना ही तो भक्ति है । जब तक द्वैत रहेगा, तब तक प्रभु से दूरी बनी रहेगी । भक्त जब एकाकार हो जाय है, तो वह किसकी पूजा करे । जब वह स्वयं परमात्मा में लय हो गया, तो फिर किसकी और कैसी पूजा? अपढ़ और अज्ञानी शबरी का महापंडितों और महाज्ञानी संतों के लिए यही कथन दर्शन के समान है । इसलिए-

सबसे ऊँचा प्रेम रस, जो पीए सो मस्त ।
बाकी रस निस्सार है, कहे 'सुदर्शन' संत ॥

एक दिन शबरी प्रभु राम के जाने के बाद उदास भाव से अपने आश्रम में राम के गुणों का स्मरण करते हुए टहल रही थी और सोच रही थी- "प्रभु ने मुझे मुक्ति का आशीर्वाद तो दे दिया, लेकिन मुक्त होकर मैं फिर इसे सलोने रूप को देख नहीं सकूँगी ।" वह बिलख-बिलख कर रोने लगी, क्योंकि उसे लग गया कि अब इन आँखों से प्रभु श्रीराम को देख नहीं सकूँगी । अकस्मात् उसके कण्ठ से एक गीत निकल पड़ता है जो बड़ा मधुर है-

<u>गीत</u>

शायद इस जनम में, मुलाकात हो न हो ।
जिन्दगी में कभी कोई, बात हो न हो ॥

तेरे दर पे उम्मीदों की किरण देखी है,
इन आँखों में मिलने की कसक देखी है ।
कौन जाने कभी ये रात हो न हो,
जिन्दगी में कभी कोई, बात हो न हो ।
शायद इस... ... ...!

सुना है मांगने वालों की झोली भरते हो,
मन की चाहत को दुआओं से पूरा करते हो ।
मेरी मन्नत कभी पूरी हो न हो,
जिन्दगी में कभी कोई बात हो न हो ॥
शायद इस... ... ...!

मन की आरजू को वर्षों से लिए बैठी हूँ,
पाने को तुझको आश लिए बैठी हूँ ।
वन्दगी में कभी कोई मुलाकात हो न हो,
जिन्दगी में कभी कोई बात हो न हो ॥
शायद इस... ... ...!

विशेष प्रसंग-

(शबरी को परमात्मा मिल गया । क्योंकि वह परमात्मा को स्वीकार करने के योग्य बन गई थी । भक्त तब तक प्रभु को नहीं पा सकता, जब तक वह परमात्मा को धारण करने योग्य न बन जाए । कहा जाता है- "अगर तुम परमात्मा के योग्य नहीं बन जाते हो, तब तक तुम परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते ।

परमात्मा से जब तक जीव का पूरी तरह जुड़ाव नहीं होता, तब तक वह परमात्मा को पा नहीं सकता । विद्वान लोग इसे यूनियोमिस्टिका कहते हैं । यह तभी हो सकता है जब जीव भूत और भविष्य से मुक्त हो जाए । मनुष्य हमेशा अपने भूतकाल की पीड़ा और भविष्य की आशंका में जीने लगता है । जब वह वर्तमान में जीने लगे, तभी उसे दिव्यता का बोध होता है । भूत के कब्र में जीने वाला व्यक्ति कभी परमात्मा को नहीं पा सकता । प्रतिक्षण किसी बन्धन के कारागृह में जीने वाला व्यक्ति कभी शबरी नहीं बन पाता । मनुष्य कभी धर्म, सम्प्रदाय या सामाजिक बन्धनों के कारागृह में जीता है, तो

कभी अपने द्वारा की गई भूलों की पीड़ा में जीने लगता है। वह वर्तमान की स्वतंत्रता से वंचित रह जाता है। शबरी ने तमाम बन्धनों को तोड़कर एक आदर्श स्थापित किया। परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, यही शबरी का दर्शन है। शबरी अशरीरी बन गई थी। फलतः वह सीधे परमात्मा से जुड़ गई। आईन्स्टीन कहते हैं- "जब तक व्यक्ति स्थूलता में बंधा रहेगा, तब तक वह मुक्त नहीं हो सकता।" इसके लिए उन्होंने टाइम और स्पेश का सिद्धान्त बनाया। भक्ति में स्थूलता का त्याग आवश्यक है। इसीलिए शरीर के साथ कभी मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति सूक्ष्म शरीर को मिलती है।)

शबरी के आश्रम से भगवान् श्रीराम पुनः जंगल-मैदान होते हुए ऋष्यमूक-पर्वत की ओर बढ़े। रास्ते में घने जंगलों में विभिन्न प्रकार के जंगली-जीव इधर से उधर दौड़ रहे थे। श्रीराम और लक्ष्मण जब एक मैदान के निकट पहुँचे, तो झुंड के झुंड हिरण मैदान में घास चर रहे थे। इन हिरणों ने जब श्रीराम, लक्ष्मण को धनुष-बाण लिए आते देखा, तो सभी हिरणें भागने लगे। हिरणों को भागते देख एक समझदार हिरण(शायद वह बुजुर्ग रहा होगा) ने हिरणों को कहा- "अरे मूर्ख! तुमलोग भागते क्यों हो? ये दोनों राजकुमार तुम्हें कुछ नहीं करेंगे, ये तो सोने के हिरण खोज रहे हैं।"

चौ०

तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए ॥

तुमलोग भागो मत। तुमने सुना नहीं कि श्रीराम ने सोने के मृग का शिकार किया था।

ज्ञातव्य तथ्य

(श्रीराम सीता के वियोग में वन-वन भटक रहे हैं, उन्हें देखकर मृग समूह इधर-उधर भाग रहा है। क्योंकि उन्हें भय है कि श्रीराम उन्हें मार देंगें। इससे पहले सोना का मृग समझकर उन्होंने मारीच को मारा था। इसलिए सभी मृग इधर-उधर भाग रहे हैं। इन मृगों को भागते देख एक बुजुर्ग मृग कहता है कि मित्रों! तुमलोग भागो मत। श्रीराम तो सोने का मृग खोज रहे हैं। यह एक बड़ा सुन्दर व्यंगात्मक प्रसंग है।)

इस विषय पर एक मृग समूह अपना भाव इस पद्यात्मक रूप में व्यक्त कर रहा है–

काव्य

मत डरो मनुज की वृत्ति, स्वर्ण के लिए सदा वह लड़ता है ।
इस लोभ के कारण बल विवेक, अरु शील शक्ति घट जाता है ॥
नारी मानव का धर्म रूप, वह धर्मपत्नी कहलाती है ।
जब लोभ वृत्ति मन में आती, वह कामरूप बन जाती है ॥
सोना का मृग नहीं होता, क्यों यह मनुज समझ नहीं पाता है ।
धन में सुख शान्ति नहीं होती, लोभी मन समझ न पाता है ॥
ब्रह्म देव ने मनुजों को, सर्वोत्तम जीव का नाम दिया ।
कामी, लोभी बनकर मानव, पशुता को भी शर्मसार किया ॥
यह मनुज जाति है बड़ा छली, अपनों में घात लगाता है ।
पशु सिंह काटता शत्रु को, मानव अपनों को खाता है ॥
मानव से हम पशु अच्छे हैं, अपने धर्मों पर सच्चे हैं ।
मानव पशुता में जीता है, पशु मानव से भी अच्छे हैं ॥
मानव सब नाता तोड़ चुका, पितु मातु धर्म को छोड़ चुका ।
पशु की पहचान तो संभव है, मनु की पहचान असंभव है ॥
मानव अरु पशु में भेद नहीं, जीवात्म एक सा होता है ।
हम खुद पशुता में जीते हैं, मानव हर क्षण विष पीता है ॥
मानव विवेक का ले संबल, पशु से खुद को श्रेष्ठ समझता है ।
लेकिन विवेक के कारण ही, पशु से नीचे गिर जाता है ॥
जिस जीवन में नैतिकता का, घनघोर अमावस होता है ।
वह जीवन क्या है घोर नर्क, पशु से बदतर बन जीता है ॥
जब काम केन्द्र प्रबल बनता, तब ज्ञान केन्द्र दब जाता है ।
धन वैभव नारी के मद से, नर पशु को भी शर्माता है ॥

हे मृग शावक प्रेमी सुन लो, मत कहो मनुज बड़े ज्ञानी हैं ।
जो खुद का नाश सतत् करता, वह मूढ़ बड़ा अभिमानी है ॥
हम पूर्व जन्म में कामी थे, लोभी, क्रोधी, अज्ञानी थे ।
जिस कारण पशु बन भटक रहे, तेहि हेतु धर्म अभिमानी थे ॥
मानव ईर्ष्या का विष पी पी, विषधर सा अकड़ा बैठा है ।
काटे विषधर निज शत्रु को, मनु काट स्वजन को ऐठा है ॥
निज भाई बन्धु को लात मार, शत्रु को गले लगाता है ।
निज मातु-पिता को त्याग सखा, औरों की गोद में सोता है ॥

विशेष प्रसंग-

(हिरण का यह कहना कि श्रीराम सोने के मृग की खोज कर रहे हैं, जो नहीं मिलता । मनुष्य की वृत्ति है कि वह सत्य को छोड़कर असत्य की खोज करता है । आज पूरी मनुष्य जाति सोना के लिए पागल बनी हुई है । इस पागलपन ने उसके मन की शान्ति छीन ली । अपने-पराये का सम्बन्ध टूट गया । सोना के कारण आज पूरी दुनिया एक दूसरे से लड़ रही है । बड़े-बड़े परिवार इस सोना के कारण टूटकर बिखर रहा है । एक भाई दूसरे का गला दबा रहा है । इस सोना ने मनुष्य को कहीं का नहीं रखा । सोना की अभिलाषा ने मनुष्यता को निगल लिया है । ठीक ही कहा जाता है, सोना, जमीन और स्त्री के कारण दुनिया का अब तक कई बार नाश हो चुका है । मनुष्य सोना खोजते-खोजते स्वयं किसी बालू की रेत में दबकर मर जाता है ।

कंचन, कामिनी, मद जे सेवे, शील शक्ति धन जाय ।
काल-चक्र के काल-दण्ड से, समय पूर्व मर जाय ॥
चुन-चुन दाना महल बनाया, छीन झपटकर खूब कमाया ।
पाप काल बन सिर पर आया, कण्ठ न आवे राम ॥

यह संसार प्रभु का प्रसाद है । जो कुछ भी तुम्हें मिला है, वह क्या कम है! तुम लाख हाथ-पैर मारोगे, तुम्हें उतना ही मिलेगा, जितना तुम्हें मिलना है । शरीर को गलाकर मुस्कुराती हुई जवानी की अनन्त इच्छा और वासना की ज्वाला में जलने से कभी किसी को बहुत कुछ नहीं मिला है । तुम्हारे कर्म और भाग्य के अनुसार ही तुम्हें फल मिलेगा । खेत में मजदूर जी-तोड़ परिश्रम करता है, उतना परिश्रम तुम नहीं कर सकते । फिर भी उस मजदूर को उतना ही मिलता है, जितना उसे मिलना चाहिए । परिश्रम वीर-पुरुषों का ही काम है । लेकिन अकारण दिशाहीन परिश्रम करने वाले को कुछ नहीं मिलता । जितना सुख तुम्हारे प्रारब्ध में है, तुम्हें उतना ही मिलेगा । एक ही परिवार के सदस्यों को अलग-अलग सुख मिलता है ।

मनुष्य की कामनाएं अनन्त होती हैं । धन की कामना और वासना-पूर्ति से कभी किसी को संतोष नहीं होता । यह निरन्तर बढ़ती रहती है । मनुष्य का शरीर जब आसक्त हो जाता है, तब भी उसके मन में और अधिक धन पाने की कामना और मन की वासना बलवती बनी रहती है । भले ही वह आसक्त हो गया है, लेकिन उसका मन आसक्त होना स्वीकार नहीं करता ।

ममता तु न गई मेरे मन ते । पाके केश जनम के साथी, दशन गये मुखन ते ॥

ममता तुन गई मेरे मन ते ......

सारा शरीर ढीला हो चुका है, एक भी अंग में शक्ति नहीं है कि वह खड़ा हो सके, फिर भी इन निर्बल हाथों से पकड़ने के लिए सोना चाहिए ।

मृग ने राम को देखकर इसीलिए ऐसा कहा कि राम मनुष्य बनकर कर्म कर रहे हैं । सोना की भूख मनुष्य जाति की आम कमजोरी है । अगर कमजोरी नहीं होती, तो पत्नी को घने जंगल में छोड़कर राम जैसा व्यक्ति कैसे स्वर्णमृग को पकड़ने दौड़ते? मानस में प्रतीक रूप में यह कहानी कही गई है । आज हम सभी इसी तरह घर-द्वार छोड़कर सोना पाने के लिए क्या नहीं कर रहे हैं । शायद इसीलिए कवि बिहारी लाल ने कहा है-

कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय ।

एहि पाए बौराये नर, उहि खाये बौराय ॥

मनुष्य धतुरा से अधिक सोना से बौराता है । गोस्वामीजी ने इसलिए लिखा-

दो०

श्रीमद् बक्र न किन्ही केहि प्रभुता बधिर न काहि ।

मृग लोचनि के नयन सर केहिं जग बेधि न जाहि ॥

धन मिलने पर कौन पागल नहीं बनता? शक्ति और पावर प्राप्त कर कौन बहरा नहीं बन जाता और स्त्री की आँखों से कौन घायल नही होता? इसलिए मृग का कथन बहुत ही सार्थक और सटीक है ।)

श्रीराम शबरी से विदा लेकर आगे वन की ओर बढ़ने लगे । चारों तरफ घने वनों में फल-फूल लगे थे, वृक्षों पर कोयल, पपीहरा और अन्य पक्षी अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वनों में विहार कर रहे थे । इन्हें देखकर श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं- हे भाई!

चौ०

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥

नारि सहित सब खग मृग बृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥

श्रीराम कहते हैं- "सभी पशु-पक्षी अपनी पत्नी के साथ विहार कर रहे हैं और मुझे शिक्षा दे रहे हैं कि अपनी पत्नी को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए ।

चौ०

राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबति सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

देखहुं तात बसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥

हे भाई! देखो कैसे दो वृक्ष आपस में मिलकर प्रेम कर रहे हैं । वन के मोर-चकोर, तोता आनन्द मना रहे हैं । झरनों का संगीत और भौरों की गुनगुनाहट मेरे

मन को विचलित कर रही है । हे भाई! काम, क्रोध और मोह मनुष्य का प्रबल शत्रु है । ये बड़े-बड़े सन्तों को भी क्षुब्ध कर देते है ।" श्रीराम को इस तरह विरह में व्यग्र देख भगवान् शिव कहते हैं- "हे पार्वती! श्रीराम तो गुणातीत हैं । वे मनुष्य के मन की वृत्ति को बता रहे हैं ।" श्रीराम आगे बढ़ते हैं । सरोवर में चक्रवाक, बगुला आदि विहार कर रहे हैं और उस सरोवर के किनारे सिद्ध संत अपने आश्रमों में निवास कर रहे हैं ।

चौ०

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

ऐसे दृश्य को देखकर श्रीराम आनन्द-विभोर हो रहे हैं । प्रभु लक्ष्मण के साथ एक सरोवर के किनारे बैठते हैं, उसी समय अनेक देवताओं के साथ नारदजी वहाँ पहुँचे । नारदजी के मन में ग्लानि होने लगी कि मेरे ही शाप के कारण आज प्रभु को इतना दुःख सहना पड़ रहा है । नारदजी श्रीराम के पास पहुँचे । श्रीराम ने देखते ही उनका स्वागत किया । हाल-समाचार जानने के पश्चात् नारदजी ने प्रभु से कहा- हे प्रभु! मुझे आप एक वरदान दें-

चौ०

देहु एक बर मागउँ स्वामी । जद्यपि जानत अंतरजामी ॥

श्रीराम ने कहा- "नारदजी! संसार में कौन ऐसी चीज है, जिसे मैं आपको नहीं दे सकता?"

चौ०

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें । अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥

यह सुन नारदजी ने पूछा- "शास्त्रों में आपके अनेक नामों की चर्चा है। इन सभी नामों में आपका प्रमुख नाम कौन है? कृपा कर यह रहस्य हमें बतायें ।" इस पर श्रीराम ने कहा- "हे नारदजी! राम-नाम सभी नामों से उत्तम है ।"

चौ०

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

यह सुन नारदजी ने प्रभु को प्रणाम किया और फिर पूछा– "हे प्रभु! मेरे कारण आपको इस वन में कष्ट सहना पड़ रहा है । लेकिन एक बात समझ में नहीं आ रही है कि उस समय आपने मुझे विवाह करने से क्यों रोका था?" यह सुन श्रीराम ने कहा– "हे नारदजी! मैं अपने भक्तों की सदा रखवाली करता रहता हूँ । मैं हमेशा उसे गलत काम करने से रोकता हूँ । जिस प्रकार माँ अपने बच्चे की रक्षा करती है, उसी प्रकार मैं अपने भक्तों की रक्षा करता हूँ ।"

चौ०

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥

हे नारदजी! तुम उस समय काम के मोह में फंस गये थे, इसलिए मैंने तुम्हें बचाया ।

दो०

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥

काम, क्रोध, लोभ और मद मनुष्य का प्रबल शत्रु है । इनमें मायारूपी स्त्री दारूण दुःख देने वाली होती है । क्योंकि वह मनुष्य के जीवन में ग्रीष्म ऋतु के तरह सारा रस सोख लेती है । हे नारदजी! स्त्री के कारण ही मनुष्य के मन में काम-वासना का भाव आता है । और इसी के कारण मनुष्य का नाश हो जाता है ।" श्रीराम न कहा– "हे नारदजी! मनुष्य इन्हीं विकारों से बचने के लिए मैंने तुम्हें विवाह करने से रोका था ।" तब नारदजी ने प्रभु से पूछा– "हे प्रभु! काम-विकारों से मुक्त व्यक्ति का आचरण कैसा होता है ।" यह सुन श्रीराम ने कहा–

चौ०

षट् बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥

"हे नारदजी! काम-क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर । इन विकारों से जो बच जाता है, मैं उसके वश में हो जाता हूँ । सन्त-पुरुष अपनी बड़ाई सुनना पसन्द नहीं करते, परन्तु वे दूसरे की बड़ाई बड़े हर्षित भाव से सुनते हैं ।

चौ०

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥

ऐसे लोग ही सन्त होते हैं, वे जप-तप, व्रत, दम, संयम और नियम का पालन करते हैं । गुरु और भगवान् पर प्रेम रखते हैं, वैसे लोग ही मुझे प्राप्त करते हैं । हे नारदजी! हमारे भक्त-

चौ०

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥

मेरा भक्त कभी भी गलत आचरण नहीं करता । ऐसे भक्तों को मैं हमेशा प्राप्त होता हूँ ।" यह सुनकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और प्रभु को बार-बार प्रणाम कर स्वधाम चले गए । गोस्वामीजी कहते हैं-

दो०

दीप सिखा सम जुबति तन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसंग ॥

जो भक्त प्रभु को पाना चाहता है, उसे काम से बचना चाहिए ।



श्रीराम की संगठनात्मक क्षमता

श्रीराम का वनगमन एक ऐतिहासिक घटना है । वनवास के पश्चात् श्रीराम जब चित्रकूट में आ जाते हैं तो भरत पुनः उन्हें राज्य सिंहासन देने के लिए आते हैं, जिसे श्रीराम स्वीकार नहीं करते । इतिहास की यह एक बहुत बड़ी घटना है कि कोई व्यक्ति इतना बड़ा साम्राज्य स्वेच्छा से अस्वीकार कर देता है । श्रीराम के अस्वीकार से भरत भी प्रभावित होते हैं और वे स्वयं अयोध्या के राज्य सिंहासान को अस्वीकार कर देते हैं । लेकिन भरत ने राजा बनना अस्वीकार किया, राज्य की सेवा अस्वीकार नहीं किया । सचमुच राम और भरत का उदात्त चरित्र वन्दनीय है । मुझे लगता है, राम का वनगमन हमें संकेत देता है कि जो व्यक्ति किसी महान कार्य को पूरा करना चाहता हो, उसे छोटे-मोटे सुख और यहाँ तक कि राज्यसिंहासन के प्रलोभन में भी नहीं पड़ना चाहिए । क्योंकि कोई भी प्रलोभन भोग-विलास को आमंत्रित करता है । कर्मशील व्यक्ति इन प्रलोभनों में नहीं फंसता । श्रीराम आज पूरे संसार में इसलिए वंदनीय नहीं हैं कि वे सम्राट् दशरथ के पुत्र हैं और इसलिए भी नहीं कि वे वशिष्ट और विश्वामित्र के महाप्रतापी शिष्य हैं । बल्कि इसलिए वन्दनीय हैं कि श्रीराम ने अपने ऊपर आये विपत्तियों को बड़ी सहजता से झेला । यही मनुष्य की विशेषता है कि वह आगत विपत्तियों का सहजता से मुकाबला करे । हार मानकर बैठ जाने से संकट कम नहीं होता । इसलिए विवेकशील व्यक्ति उसका मुकाबला करते हैं । श्रीराम ने वही किया। इसलिए वे सामान्य राजकुमार न बनकर परमात्मा श्रीराम बन गये ।

अरण्यकाण्ड में श्रीराम सबसे पहले अत्रि मुनि से मिलने जाते हैं । वहाँ अनसूया ने सीता को नारी धर्म का उपदेश दिया । इस उपदेश का अर्थ है कि स्त्री जब घर से बाहर निकलती है तो उसे विभिन्न प्रकार का आक्षेप झेलना पड़ता है । इसलिए विवाह के पूर्व माता-पिता का दायित्व है कि वह अपनी बेटी को गृहस्थ धर्म के पालन में पूर्ण दक्ष बनायें । विवाह के उपरान्त सास अथवा बड़े बुजुर्गों का दायित्व है कि वह अपनी बहू को परिवार धर्म के पालन की शिक्षा दें । इसी शिक्षा के अभाव में स्त्री, परिवार में सुगमता से स्वयं को समायोजित नहीं कर पाती है । और अहंकार के कारण परिवार टूटने लगता है । अनसूया ने सीता को पूरी शिक्षा दी और बताया कि

जंगलों में कभी भी कोई परिस्थिति आ सकती है, उसका बहादुरी से मुकाबला करना। किसी भी परिस्थिति के सामने घुटने टेक देना कायरता है । दूसरी ओर महर्षि अत्रि ने श्रीराम को आगामी संघर्षों के लिए तैयार किया । क्योंकि सिद्ध पुरुष को भविष्य का आभास होने लगता है ।

पंचवटी-निवास

पंचवटी रामचरितमानस की घटनाओं का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है । चित्रकूट से आने पर श्रीराम ने पंचवटी में अपना पर्णकुटी तैयार करवाया । यहीं रावण ने सीता का हरण कर लिया । अब श्रीराम के सामने एक बड़ी चुनौती आई कि सीता का पता कैसे लगाया जाए और इस संकट में किनसे सहायता ली जाए । तभी राम ने सोचा कि दूसरों से सहायता लेकर संकटों पर विजय प्राप्त करने वाले वीर पुरुष नहीं होते। तभी उन्होंने सोचा कि इस वन प्रदेश में काफी वनवासी निवास करते हैं, जो छोटे-छोटे कबीलों में बसे हुए हैं । आपस में इनका कोई मेल-जोल नहीं है, फलतः शत्रु देश के लोग यहाँ आकर इनका शोषण करते हैं और अकारण इन्हें सताते रहते हैं । इन वनवासियों में एकता का अभाव है । जिस कारण वे शत्रुओं का मुकाबला भी नहीं कर पाते हैं । इसी विचार से प्रभावित होकर श्रीराम ने उन वनवासियों को एक साथ जोड़ने का प्रयास प्रारंभ किया । इस प्रयास के क्रम में उन्होंने गुटों में बंटे वनवासियों के पास जाकर उनमें आत्मविश्वास पैदा किया और सबों को राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ा । यह श्रीराम की संगठनात्मक क्षमता थी, क्योंकि श्रीराम मानते थे कि बाहर के लोग आकर उनकी सहायता कर सकते हैं, लेकिन उन्हें अपने पाँव पर खड़ा नहीं कर सकते । इसी विचार से प्रभावित होकर श्रीराम ने सभी वनवासियों को एक सूत्र में जोड़कर उन्हें तैयार किया । इसके पहले संतों का एक अलग समाज था जो केवल पूजा-पाठ किया करता था । श्रीराम ने उन संतों को भी प्रेरित किया कि आपलोग समाज में नैतिक मूल्यों का पालन करायें । अनाचार, अत्याचार और दुराचार से लोगों को अलग रहने की प्रेरणा दें । यही संतों का मुख्य काम है ।

संत अगर समाज में रहते हैं तो समाज के प्रति उनका भी दायित्व बनता है । समाज एवं राष्ट्र निर्माण में इनकी अहम् भूमिका होनी चाहिए । प्राचीन काल से भारत

के प्रबुद्ध संत गुरुकुल, व्यायामशाला, आरोग्यशाला चलाते थे और सामान्य नागरिकों को प्रशिक्षित करते थे । यह उनका नैतिक दायित्व था । लेकिन रावण के अत्याचार से सभी संत सिकुड़ कर अपनी कुटिया में पूजा-पाठ करने लगे थे । श्रीराम ने उन्हें भी राष्ट्र निर्माण में सहयोग करने के लिए आमंत्रित किया । क्योंकि संत ही निःस्वार्थ भाव से समाज का मार्गदर्शन कर सकते हैं । संत अगर राष्ट्रकार्य से दूर रहता है तो स्वार्थी लोग राष्ट्र पर हावी हो सकते हैं । इसलिए भारत में यह परम्परा रही है कि राज्य से बाहर रहकर आश्रमों में बैठकर संत और गुरुजन राज्य संचालन के लिए सूत्र निर्धारण करते थे । क्योंकि शासन करने वाला अगर अपना शासन सूत्र स्वयं बनाता हो, तो उसमें कहीं-न-कहीं स्वार्थ आ जाता है जो राष्ट्र के हित में नहीं होता ।

श्रीराम ने इन्हीं दृष्टियों से संतों को राष्ट्र निर्माण में योगदान करने के लिए उन्हें अपने साथ जोड़ा । साथ ही वनवासी लोगों की बिखरी शक्तियों को भी जोड़ने का प्रयास किया । श्रीराम के समय में भी वनों में वानर, भालू, रीछ, कोल-भील आदि विभिन्न प्रकार के वंश और जातियों के लोग रहा क़रते थे । वानर और भालू जाति के लोग जानवर नहीं थे । वे मनुष्य थे लेकिन उनकी जातियाँ अलग थी । आज भी हमारे अनेक वनवासी भाई अपने नाम के साथ वानरा लिखते हैं । इसलिए वानर पशु नहीं मनुष्य थे । हनुमान्जी, बाली, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त पशु नहीं थे । लेकिन एकता के अभाव में सभी लोग बिखरे थे । जिस कारण बाहर का शत्रु इन पर अत्याचार करता था ।

तत्कालीन समय में आर्यावर्त टुकड़ों में बंटता जा रहा था और धीरे-धीरे रावण इन टुकड़ों पर अपना आधिपत्य करता जा रहा था । श्रीराम ने सोचा अगर ऐसा होता रहा तो पूरा आर्यावर्त कुछ दिनों में रावण के अधीन चला जाएगा और यहाँ की संस्कृति नष्ट हो जाएगी । और पूरे देश में रक्ष संस्कृति का प्रचलन हो जाएगा । इसलिए श्रीराम ने पूरे देश के छोटे-बड़े, गरीब, धनी सबों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया । क्योंकि खण्डों में बँटी जातियों में कोई बल नहीं होता । एकता में ही बल है । रावण अपनी योजनानुसार भारत को अपना साम्राज्य बनाना चाहता था । किसी एक राजा में इतना बल नहीं था कि वह रावण का विरोध कर सके । इसलिए आवश्यकता थी कि

सबों को एक सूत्र में जोड़ा जाए। इसी दृष्टि से श्रीराम ने सबों को एक सूत्र में जोड़ा। राजा अथवा नेता वह नहीं होता जो राज्य पर आरोपित हो जाता हो। जो प्रजा के साथ जी सके, जो प्रजा के सुख-दुःख में साथ रह सके, जो प्रजा की आस्था और विश्वास का प्रतीक बन सके, वही व्यक्ति राजा अथवा नेता बनता है।

अरण्यकाण्ड में श्रीराम की इसी कुशलता का परिचय मिलता है कि उन्होंने पूरे राष्ट्र को जोड़ने का काम किया। रावण ने सीता का हरण किया। तब श्रीराम ने रावण की चुनौती को स्वीकार किया और जगह-जगह स्वयं जाकर राष्ट्र पर आयी विपदा से लड़ने के लिए लोगों को तैयार किया। महर्षि भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि जैसे महान सन्तों से परामर्श किया और रावण के अत्याचार से त्रस्त लोगों के परित्राण के उपायों पर विचार किया। इन सन्तों और उपेक्षिता शबरी के घर जाकर श्रीराम ने यह साबित किया कि हमारे देश के गरीब लोग भी हमारे समाज के अंग है। राजा का यही धर्म है कि वह सबों को एक साथ लेकर चले। देश में अगर विभेद की दीवार खड़ी हो गई तो देश समृद्ध नहीं हो सकता। श्रीराम की यह दूरदर्शिता थी कि उन्होंने समाज के सभी वर्गों के लोगों से मेल बढ़ाया। जाति धर्म में बंटे लोगों को एक साथ जोड़ा। क्योंकि श्रीराम के सहयोग में जितने भी हाथ उठे उसमें मुख्यतः वनों में रह रही पिछड़ी जातियों के लोग ही अधिक थे और उनके सहयोग से ही श्रीराम ने अपार सेना का संगठन किया। सीता हरण से व्यथित श्रीराम ने कभी धैर्य नहीं खोया और ऐसी परिस्थिति में भी मित्रों की संख्या बढ़ाने के कार्य ने उन्हें राष्ट्रपुरुष बना दिया। श्रीराम में आध्यात्मिक शक्ति तो थी ही, लेकिन राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ने की अद्भुत क्षमता भी उनमें थी। इसलिए श्रीराम को ऐतिहासिक महापुरुष माना जाता है। धार्मिक दृष्टि से, सामाजिक अथवा भौगोलिक दृष्टि से श्रीराम भारत के राष्ट्रपुरुष बन गये। शबरी के परामर्श से श्रीराम सुग्रीव से मैत्री करते हैं। सुग्रीव भी अपने अत्याचारी भाई बाली के द्वारा प्रताड़ित और निष्कासित था।

श्रीराम चाहते तो बाली से मैत्री कर अपने शत्रु पर आक्रमण करते। लेकिन श्रीराम ने वैसा नहीं किया। उन्होंने अत्याचारी बाली का विरोध किया। बाली को मारकर निष्कासित सुग्रीव को पुनः राजा बनाया। राम तो परमात्मा हैं, वे तो दीन-हीन

और प्रताड़ितों की मदद करते हैं । बाली तो महा अभिमानी था । इसलिए बाली को मारना और निष्कासित सुग्रीव को राजा बनाना श्रीराम को उचित लगा । जो सुग्रीव, आत्मविश्वास की कमी के कारण बाली से प्रताड़ित होकर जंगलों में छिपा था, यहाँ तक कि हनुमान् और जाम्बवान् जैसे महावीर भी सुग्रीव की कोई सहायता नहीं कर सकते थे । क्योंकि सुग्रीव मन से हार चुका था । जो व्यक्ति पहले स्वयं से हार जाता है, वही दूसरों से भी हारता है । श्रीराम ने उसी हारे हुए सुग्रीव से मैत्री की, उसमें आत्मविश्वास जगाया और फिर उसकी सहायता से ही लंका पर आक्रमण किया ।

आज भी हमारे समाज में ऐसे अनेक लोग हैं, जिनमें शक्ति है । लेकिन उनमें आत्मविश्वास नहीं है । जिससे कि छोटी-छोटी घटनाओं से प्रभावित होकर वे जीवन भर अशान्त और असफल बने रहते हैं । अगर मनुष्य अपनी शक्ति को पहचान ले और अपने आत्मविश्वास को जागृत कर ले तो वह बड़े से बड़ा काम भी पूरा कर सकता है । जिस प्रकार श्रीराम ने अपनी संगठनात्मक शक्ति के बदौलत अकेले रहते हुए भी विशाल सेना का संगठन कर शत्रु पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इसलिए श्रीराम हमारे आदर्श हैं । वे हमें प्रेरणा देते हैं कि नैतिक मार्गों का अनुसरण करते हुए हमेशा अपनी सफलता के लिए प्रयास करते रहना चाहिए । श्रीराम का संघर्ष उनके अकेले का संघर्ष नहीं है, श्रीराम का संघर्ष तो हम सबों का संघर्ष है । हमारे जीवन में भी इस तरह से संकट आते हैं और हम टूट जाते हैं ।

श्रीराम कहते हैं संकटों से टूटो मत, मुकाबला करो । मुकाबला करोगे तो संकट स्वतः भाग जाएगा । अगर कोई साधारण व्यक्ति राम की तरह संघर्ष करता है तो वह कोई बड़ी बात नहीं होती । लेकिन परमात्मा राम स्वयं संघर्ष करते हैं । वे स्वयं सामान्य मनुष्य की तरह दुःख भोगते हैं और इस दुःख की घड़ी में संघर्ष करते हुए सफल होते हैं । राम के इसी आदर्श को हमें अपने जीवन में उतारना चाहिए । तभी हमें श्रीराम का आशीर्वाद मिल सकता है । अरण्यकाण्ड की घटना हमारे जीवन की घटना है । श्रीराम के जीवन में जो घटना घटी, वैसा हम सबों के जीवन में भी होता है और हम उन घटनाओं से टूट जाते हैं । लेकिन राम ने उन घटनाओं पर विजय प्राप्त करके यह साबित कर दिया कि अगर निष्ठापूर्वक प्रयास किया जाए तो बड़े-से-बड़े काम को

भी पूरा किया जा सकता है । मनुष्य को विवेक सहित धैर्य के साथ निष्ठापूर्वक प्रयास करना चाहिए । क्योंकि श्रीराम जैसा व्यक्ति, जो स्वयं राज्य से निष्कासित हो, जिसकी पत्नी का हरण हो गया हो और जिसकी सहायता करने वाला कोई न हो । अगर वह व्यक्ति अपनी समझ से इतनी बड़ी सेना तैयार करता हो, असम्भव सा दिखने वाला सागर बांधने का काम पूरा करता हो । त्रिलोक विजेता रावण को परास्त करता हो तो निश्चय ही वह राष्ट्रपुरुष और परमात्म पुरुष का दायित्व निर्वाह करता है । हमें उसी राम की आवश्यकता है जो हमारे खण्डित विश्वास को जोड़ सके । हमारे आत्मबल को जगा सके और हमें प्रेरणा दे कि जिस प्रकार श्रीराम ने अपने संकटों को स्वयं नाश किया, वैसा ही हम भी अपने संकटों का नाश कर सकें, तभी हम श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं ।

रामायण के अरण्यकाण्ड में राम के वनगमन की केवल कहानी नहीं है, कहानी के पीछे जो उपदेश है, वह हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है । यों तो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई कहानी होती है । लेकिन उस कहानी के पीछे जो उद्देश्य होता है, वही महत्त्वपूर्ण है । वन में श्रीराम राक्षसों अथवा दुष्टवृत्तियों के लोगों का नाश करने के लिए संकल्प लेते हैं । इस संकल्प में वे संत-महात्माओं का परामर्श प्राप्त करते हैं । जब कभी मनुष्य बड़ा काम करने लगता है, तो उसके सामने अनेक संकट आते हैं । आपके द्वारा जो बड़ा काम किया जा रहा है, उससे समाज को भले ही लाभ हो, कुछ दुष्टप्रवृत्ति के लोग होते हैं, जिन्हें किसी के द्वारा किया गया अच्छा काम अच्छा नहीं लगता । क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो न स्वयं अच्छा काम करते हैं और न किसी के द्वारा किए गए काम को ही वे पसन्द करते हैं । ऐसे लोगों की भी समाज में कमी नहीं है । श्रीराम वनों में राक्षसों से परेशान संतों की रक्षा करने के लिए स्वयं उनकी कुटिया में जाते हैं । क्योंकि जिस समाज में संत-महात्माओं का आदर न हो, वह समाज नष्ट हो जाता है । क्योंकि संत अपने लिए कुछ नहीं करते, हमेशा दूसरों की भलाई में ही लगे रहते हैं । जो व्यक्ति अपने लिए कुछ न मांगे, वह तो परोपकारी बन जाता है । एक ओर जहाँ अपने स्वार्थ की पूर्ति में लोग लगे हों, वहाँ अगर कोई एक व्यक्ति दूसरे की भलाई करता हो, दूसरों के लिए जीता हो तो उसकी पूजा होनी

चाहिए । प्राचीनकाल में बड़े-बड़े संत वैज्ञानिक वनों में आश्रम बनाकर रहते थे और दिन-रात जनकल्याण कार्यों के लिए प्रयास करते रहते थे । वशिष्ट, विश्वामित्र, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, सुतीक्ष्ण ऐसे संत थे, जो अत्यन्त विद्वान थे, वैज्ञानिक चिन्तक थे । आज जिस प्रकार वैज्ञानिक बड़े-बड़े एटम बम बनाते हैं, उसी प्रकार वे भी जंगलों में बैठकर वृक्ष के पत्तों पर प्रयोग करते थे । पतंजलि जैसे वैज्ञानिक ने सम्पूर्ण मानव जाति को दीर्घायु बनने का सरल और सुगम मार्ग बता दिया । वे स्वयं तीन सौ वर्षों तक जीये । वे सूर्य के पुत्र थे और अत्यन्त प्रतिभाशाली थे । आज उनके योगसूत्र की व्याख्या बड़े-बड़े वैज्ञानिक नहीं कर पा रहे हैं । हजारों वर्ष पूर्व पतंजलि ने जीवन के रहस्य का उद्घाटन कर दिया था, जिसे आज भी विज्ञान समझ नहीं पा रहा है । उसी तरह धन्वन्तरि ने जीवन के लिए उपयोगी औषधियों की खोज की । वात्स्यायन ने काम के विज्ञान को समझाया । विश्वामित्र ने अपनी मंत्र-शक्ति से बला और अतिबला विद्या की खोज की । गायत्री मंत्र की खोज कर जीवन के लिए उपयोगी बनाया । इस तरह जो संत आश्रमों में रहते थे, वे कोई फालतू व्यक्ति नहीं थे, वे निरपेक्ष भाव से जीवन को सुन्दर बनाने के लिए प्रयास करते रहते थे ।

श्रीराम ने वनों में जाकर उन संतों की सुधि ली, जनकल्याण के लिए जो शोध कर रहे थे, मंगलकारी काम कर रहे थे, उन्हें निर्विघ्न काम करने के लिए प्रोत्साहित किया । सभी संतों के पास कोई न कोई उद्देश्य था, जिसे वे पूरा करना चाहते थे । लेकिन दुष्टवृत्ति वाले राक्षस यह शोध कार्य नहीं करने देते थे । इसीलिए श्रीराम को उनके आश्रमों तक जाना पड़ा । क्योंकि श्रीराम को समझ में आ गया कि अगर इन दुष्टों को नहीं रोका गया, तो देश का सारा ज्ञान नष्ट हो जाएगा । इसीलिए श्रीराम वनों में इन संतों के आश्रमों में जाकर लोगों को प्रोत्साहित किया । सीता हरण का एक अलग अर्थ है, लेकिन हमारे जीवन में जो अर्थ निकलता है, उसका अर्थ यह है कि जब कभी समाज में अव्यवस्था फैल जाती है, तो अनाचार और दुराचार बढ़ जाता है। समाज में जब कोई एक-दूसरे का गला दबाकर धन छिनने लगे, लूटपाट बढ़ जाए, स्त्री जाति का अपमान होने लगे, मनोविकार से ग्रसित लोग मर्यादा तोड़ने लगे, तो उस समाज का नाश हो जाता है । इसीलिए श्रीराम ने कहा-

“जब-जब होहिं धरम की हानि ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।”

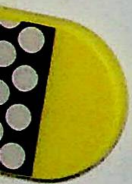
देश में जब-जब धर्म, संस्कार, नैतिकता को नंगाकर चौराहों पर खड़ा कर दिया जाता है, तब श्रीराम, कृष्ण जैसे परमात्मा को समाज के कल्याण के लिए आना पड़ता है । राम का वनगमन एक सामाजिक आवश्यकता थी । किसी तरह राम को राजमहल छोड़कर समाज के पीड़ित लोगों के पास जाना था । इसलिए राम वनों में गये और देश को इन आतताइयों से बचाया । इसलिए राम हमारे लिए सिर्फ आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं थे । वे तो समाज सुधारक, राष्ट्रपुरुष थे । इसलिए उनकी पूजा-वन्दना करना सम्पूर्ण राष्ट्र का दायित्व है । समीक्षात्मक दृष्टि से देखने पर लगता है, श्रीराम ने देश और समाज के लिए जो त्याग किया, उसकी तुलना नहीं की जा सकती । सचमुच ऐसा होता भी है कि हमारे देश में आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन लोगों ने केवल त्याग किया है । यहाँ तक कि अपने प्राणों का भी त्याग किया है ।

कहा जाता है- भगवान् बुद्ध, क्राइस्ट, मुहम्मद साहब, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी, शहीद भगत सिंह, वीर सावरकर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस, इन महान विभूतियों ने देश और समाज के लिए महान त्याग किया । जिस कारण आज हम सभी उन्हें शीश झुकाते हैं और उनकी पूजा करते हैं । इन महान विभूतियों को आज भले ही हम सभी पूजा करते हैं लेकिन उनके जीवनकाल में समाज नें उन्हें कम कष्ट नहीं दिया । पैगम्बर मुहम्मद साहब ने सम्पूर्ण मनुष्य जाति के कल्याण के लिए हमारे समाज में आदर्श स्थापित किया, क्राइस्ट ने मनुष्य जाति की भलाई के लिए जीवन भर प्रयास किया फिर भी उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया । महान् संत सुकरात और मंसुर को सताया गया । महर्षि दयानन्द सरस्वती को दूध में शीशा का चूर्ण पिलाया गया, लेकिन अन्त-अन्त तक वे समाज के कल्याण में लगे रहे । मानवता के महान रक्षक इन संतों के प्रति आज हम श्रद्धा से शीश झुकाये खड़े हैं । उनके त्याग के कारण ही आज पूरा संसार उनकी पूजा-वन्दना करता है । श्रीराम के इन्हीं आदर्शपूर्ण त्याग के कारण हम उन्हें अपना परमात्मा मानते हैं ।

(अरण्यकाण्ड समाप्त)



किष्किन्धाकाण्ड



श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

किष्किन्धाकाण्ड

ईशप्रार्थना

नमस्तुभ्यं पवनात्मजाय नमस्तुभ्यं भक्तवत्सलाय ।
गातुमिच्छामि रामकथां पूर्णं कुरु मम कामनाम् ॥

हे हनुमान्‌जी! तुम भक्त वत्सल हो, तुम्हें मेरा नमस्कार है । मैं रामकथा गाना चाहता हूँ । मेरी मनोकामना पूर्ण करो ।

ऋद्धि-सिद्धि-सर्वग्रहाश्च दिव्यं प्रदेहि मे चक्षुः ।
गातुं समर्थो भवेयं कथां हरेः शाश्वताम् ॥

हे ऋद्धि-सिद्धि, ग्रह-नक्षत्र! मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान करो, ताकि मैं श्रीराम के शाश्वत गुण को गा सकूँ ।

हे राम तुम्हारा चरित्र स्वयं में ही परिपूर्ण है ।
कैसे पूर्णत्व प्राप्त करूं अभिलाषा अभी अपूर्ण है ॥
इस आश में गीत सुनाता हूँ तेरी पूर्णता में मिल जाऊँ ।
नदी-झरनों सा बहकर पल-पल तेरे सागर में खो जाऊँ ॥

किष्किन्धानगर ऋष्यमूक पर्वत के निकट बसा हुआ था, जहाँ कपिसम्राट् बाली राज्य करता था । बाली और सुग्रीव दोनों भाई थे । बाली की पत्नी का नाम तारा और सुग्रीव की पत्नी का नाम रुमा था । अंगद बाली का बेटा था, बाली इन्द्र का बेटा था और सुग्रीव सूर्य का । कहा जाता है कि बाली की माँ अति सुन्दरी स्त्री थी, एक दिन वह आंगन में बैठकर अपने गीले बाल सुखा रही थी कि तभी उस पर इन्द्रदेव

की नजर पड़ी । इन्द्र उसके रूप पर अत्यन्त मोहित हो गए और उनका शुक्र स्खलित हो गया । स्खलन के पश्चात् वह शुक्र उसके बालों पर गिरा और वह गर्भवती हो गई, उसी गर्भ से बाली का जन्म हुआ । फिर सूर्य का शुक्र उसके गर्दन पर गिरा और उससे जो पुत्र पैदा हुआ, उसका नाम सुग्रीव पड़ा । रामायण में जिक्र है कि इन दोनों में से इन्द्र का बेटा बाली बड़ा है और सूर्य पुत्र सुग्रीव छोटा ।

बाली किष्किन्धा का महाप्रतापी राजा था । किष्किन्धा राज्य भारत के मध्य में पड़ता है । रावण जब अपनी रक्षसंस्कृति का विस्तार उत्तर भारत की ओर करने लगा तो उसे बाली का साम्राज्य(किष्किन्धा) बीच में खड़ा मिला । बाली को पारकर रावण के लिए आगे बढ़ना असम्भव था । इसलिए उसने सोचा कि बीच में खड़े बाली को मैं नष्ट कर दूँ । इसी क्रम में वह बाली से लड़ने पहुँचा । बाली प्रातःकाल समुद्रतट पर पूजा कर रहा था । उसका नियम था कि वह पृथ्वी की सात बार परिक्रमा करने के उपरान्त पूजा पर बैठता था । परिक्रमा पूरी कर जैसे ही बाली पूजा पर बैठा, उसी क्षण रावण वहाँ पहुँचकर बाली को युद्ध के लिए ललकारने लगा । चूंकि बाली उस समय पूजा पर था इसलिए उसने रावण की बात पर ध्यान नहीं दिया । यह देख रावण को बड़ा क्रोध आया, उसने बाली पर आक्रमण कर दिया । बाली ध्यान में था, इसलिए उसने एक हाथ से रावण की गर्दन पकड़कर अपनी काँख में दबा लिया और फिर पूजा करता रहा । पूजा समाप्त कर जब वह घर आया तो उसने रावण को अपनी काँख से निकालकर अपने अस्तबल में रस्सी से बाँध दिया । कई दिनों तक रावण के गिड़गिड़ाते रहने से द्रवित होकर बाली ने उसे छोड़ दिया । जब रावण को महसूस हुआ कि बाली को युद्ध में हराना सम्भव नहीं है तो रावण ने उससे एक दूसरे पर कभी आक्रमण न करने की मैत्री कर ली और वह बाली का मित्र बन बैठा । मैत्री संधि होने के कारण बाली से उसे अब कोई डर नहीं रहा । इस संधि से हमें रावण की राजनीतिक कुशलता का परिचय मिलता है । आज भी दो राष्ट्रों के बीच ऐसी संधि होती है, जिसमें यह तय होता है कि वे दोनों देश कभी एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर दोनों देश एक दूसरे की परस्पर सहायता करेंगे ।

पुनः बाली किष्किन्धा में अपने भाई सुग्रीव और महाबली पुत्र अंगद के साथ राज्य करने लगा । कई स्थानों पर ऐसी चर्चा मिलती है और संत लोग भी बताते हैं कि बालीपुत्र अंगद और रावणपुत्र अक्षय कुमार एक ही गुरुकुल में पढ़ते थे । अंगद

अक्षय कुमार को बहुत तंग करते थे, इन दोनों के बीच हमेशा मार-पीट भी हो जाया करती थी। अंगद की इन्हीं हरकतों से तंग आकर एक दिन गुरु ने उसे शाप दे दिया कि यदि तुमसे तंग होकर अक्षय कुमार ने तुम्हें एक भी घूंसा लगा दिया, तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। इसी शाप के कारण आगे की घटना में अंगद सीता का पता लगाने लंका नहीं जाना चाहते थे, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं अक्षय कुमार उससे बदला न ले लें।

बाली अपार बलशाली था। अपने बल के मद में वह अहंकारी और विलासी बन गया था। भोग-विलास में वह इतना मग्न हो गया कि उसे नीति और अनीति का भी बोध नहीं रहा। फलस्वरुप प्रजा में उसके प्रति असंतोष बढ़ने लगा। लेकिन वह इतना बलशाली था कि पूरे विश्व में कोई भी उससे लड़ने का साहस नहीं कर सकता था। इसीलिए तो रावण ने उससे मैत्री संधि कर रखी थी। मैत्री में यह भी विचार हुआ कि भविष्य में अगर युद्ध हुआ तो बाली आर्यावर्त अर्थात् राम की ओर से लंका पर आक्रमण न करें। यह विचार रावण की बहुत बड़ी राजनीतिक कुशलता का बोध कराता है। बाली और सुग्रीव दोनों बड़े प्रेम से किष्किन्धा में शान्ति से रहने लगे। लेकिन किष्किन्धा सहित पूरे जंगल क्षेत्र में रावण का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, जिसकी खबर बाली को नहीं थी। किसी देश के राजा के लिए यह हितकारी लक्षण नहीं है कि वह अपने देश हित में शत्रु की गतिविधियों की जानकारी न रखे। इसलिए ही तो राज्य अथवा देशों में गुप्तचर रखे जाते हैं। रावण की योजना थी कि पहले किष्किन्धा को छोड़कर पूरे आर्यावर्त में अपना आधिपत्य जमा लिया जाए और फिर किष्किन्धा को उसमें मिला लिया जाए। ताकि देश से वैदिक संस्कृति समाप्त हो जाए और राक्षसों की रक्ष-संस्कृति का सर्वांगीण विकास हो जाए।

विशेष प्रसंग-

(रावण बहुत ही महत्त्वाकांक्षी राजा था। वह महर्षि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा का बेटा था। विश्रवा के बड़े बेटे का नाम कुबेर था, जो लंका का राजा था। देवताओं ने माली, सुमाली और माल्यवान् को हराकर लंका का राज्य कुबेर को दिया था। लंका से भागने के बाद तीनों भाई किसी दूर देश में रहने लगे। माली और माल्यवान् ने समुद्र द्वीप में अपना अलग-अलग राज्य स्थापित कर लिया और वे राज्य आज भी विद्यमान हैं। लेकिन सुमाली पाताल लोक में छिपा रहा। माली और माल्यवान् की कोई संतान

नहीं हुई । लेकिन सुमाली की एक बेटी थी, जिसका नाम था- कैकसी । सुमाली ने छलपूर्वक अपनी बेटी कैकसी का विवाह वैदिक ऋषि विश्रवा से करा दिया । कैकसी और विश्रवा के मेल से रावण, कुम्भकर्ण और चन्द्रलेखा(सूर्पणखा)का जन्म हुआ । सुमाली अपने नाती रावण को देवता और वैदिक संस्कृति के विरूद्ध तैयार करने लगा । वह रावण को बचपन से यही शिक्षा देने लगा कि लंका तुम्हारी है, इसे तुम्हारे बड़े भाई कुबेर ने हड़प लिया है । तुम्हें उस लंका को वापस हासिल करना है । रावण जब बड़ा हुआ तो सबसे पहले उसने कुबेर पर आक्रमण किया और कुबेर को हराकर लंका पर अपना आधिपत्य कर लिया ।)

लंका की उत्पत्ति

लंका त्रिकूट पर्वत पर बसा एक बहुत ही भव्य नगर था । इस नगर का निर्माण भगवान् शिव के आदेश से विश्वकर्मा ने किया था । यह सोने की बनी हुई थी ।

लोककथा है कि एक दिन भगवान् शिव और माता पार्वती भगवान् विष्णु से मिलने हेतु विष्णुलोक गये । वहाँ पहुँचकर भगवान् शिव और विष्णु संसार की समस्याओं पर विचार करने लगे और माता पार्वती को लक्ष्मीजी स्वर्ग का ऐश्वर्य दिखाने लगी । स्वर्ग का ऐश्वर्य देखकर पार्वतीजी चकित हो गईं । जब भगवान् शिव और विष्णु की बातचीत खत्म हो गई, तो भगवान् शिव ने कैलाश लौटने की इच्छा प्रकट की । विष्णु ने काफी मान-सम्मान के साथ शिव और पार्वती को विष्णुलोक से विदा किया । रास्ते में माता पार्वती को गुमसुम बैठे देख भगवान् शिव ने पूछा- देवी! आप चुपचाप क्यों बैठी हैं? माता पार्वती ने नारी सुलभ दुर्बलता के कारण व्यंग्य करते हुए कहा कि मेरे चुपचाप बैठने से आपको क्या अन्तर पड़ता है? आप तो जंगलों और पहाड़ों में रहते हैं, आपको क्या पता कि संसार के और लोग कैसे रहते हैं? यह सुन भगवान् शिव मुस्कुराने लगे और बोले कि पार्वती! लगता है तुम्हें माया ने वशीभूत कर लिया है । तत्पश्चात् माता पार्वती रूष्ट हो गईं और चुपचाप रहने लगी ।

पार्वती की इच्छा जानकर भगवान् शिव ने पार्वती को समझाया- पार्वती! इस धन-वैभव और ऐश्वर्य के पीछे मत भागो । इस वैभव के प्रदर्शन से केवल दुःख मिलता है, सुख नहीं । पार्वती के नहीं मानने पर भगवान् शिव ने विश्वकर्मा को बुलवाया और कहा- "एक स्थान ढूंढो और उस पर ऐसा महल बनाओ जैसा किसी ने नहीं बनवाया हो ।" विश्वकर्मा ने आर्यावर्त के दक्षिण समुद्र के बीच त्रिकूट पर्वत

को चुना। उस स्थान पर उसने बड़ी कुशलता से सम्पूर्ण रूप से सोने का बना एक नगर बसाया। भगवान् शिव और पार्वती त्रिकूट पर्वत पर आये और गृह प्रवेश की पूजा के लिए विश्रवा को बुलवाया। विश्रवा ने विधि-पूर्वक पूजा करवाया और अन्त में दक्षिणा की माँग की। भगवान् शिव ने कहा कि आप जो भी चाहें मांग लें, मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा, आपको वचन देता हूँ। यह सुन विश्रवा ने कहा कि अगर आप दक्षिणा ही देना चाहते हैं तो फिर मुझे दक्षिणास्वरूप यह सोने की बनी लंका नगरी ही दे दीजिए। भगवान् शिव ने पार्वती की ओर देखा और "एवमस्तु" कह दिया और दोनों कैलाश लौट आये। लौटते समय पार्वतीजी ने शाप दे दिया कि एक दिन यह लंका जलकर भस्म हो जाएगी। कहते हैं तबसे लेकर लंका जलने तक पार्वती प्रतिदिन वहाँ जाकर उसके जलने की प्रतीक्षा किया करती थी। आगे की कथा मैंने इसी पुस्तक की भूमिका में लिखी है।

शिव और पार्वती लंका छोड़कर कैलाश लौट गये और इस नगर को विश्रवा ने अपने पुत्र कुबेर को दे दिया, कुबेर से इसे रावण ने छीन लिया। तब से रावण लंका में रहकर अपने साम्राज्य को पूरे आर्यावर्त में फैलाने का प्रयास करने लगा।

(पूरे आर्यावर्त में जगह-जगह पर राक्षसवीर नियुक्त थे, उनका एक ही उद्देश्य था कि आर्यावर्त में अशान्ति फैलाओ, संत-महात्माओं को यज्ञ करने से रोको और पूरे वन-प्रदेश में आतंक का वातावरण बनाओ ताकि लोग डरकर रक्षसंस्कृति को स्वीकार कर लें। यह देश के लिए बहुत ही बड़ी चुनौती थी, अगर श्रीराम रावण के इस प्रभाव को नहीं रोकते, तो हमारी देवभूमि भारत राक्षसभूमि बन गई होती। इसलिए राम का महत्त्व राष्ट्र-पुरुष के रूप में भी है। राम ने भयंकर संघर्ष करके भारत की एकता और अखण्डता की रक्षा की। राम अगर चाहते तो अयोध्या में रावण के आक्रमण की प्रतीक्षा करते, लेकिन उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा। क्योंकि यह युद्धनीति है कि अपने देश में युद्ध लड़ने के बजाय दूसरे के देश में उसी की भूमि पर युद्ध लड़ा जाए। राम ने इसीलिए वन-गमन का सहारा लिया।)

ऋष्यमूक पर्वत की ओर राम का प्रस्थान

ऋष्यमूक पर्वत की ओर श्रीराम और लक्ष्मण बढ़ने लगे। क्योंकि शबरी और कबन्ध ने राम को बता दिया था कि ऋष्यमूक पर्वत पर वानर सुग्रीव और रीछपति

जामवंत रहते हैं, वे आपकी सहायता कर सकते हैं। इसलिए राम ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ने लगे। उस पूरे पर्वत समूह को मलयगिरि कहते हैं। उसी के एक खण्ड को ऋष्यमूक कहा जाता है। सुग्रीव वहीं पर रहते थे।

जब राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे, तो लक्ष्मण ने प्रभु राम से पूछा- "भैया! यह सुग्रीव कौन है?" लक्ष्मण की वाणी सुनकर राम ने कहा कि "सुग्रीव किष्किन्धा नरेश बाली का छोटा भाई है।" तदन्तर राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ते चले गये। इन दोनों को पर्वत की ओर आते देख बाली के भय से छिपा हुआ सुग्रीव अपने सचिव हनुमान्‌जी को बुलाकर पूछा- "हनुमान्! वहाँ दूर पहाड़ी से दो व्यक्ति हमारी ओर आ रहे हैं। मुझे भय है कि कहीं किसी राजकुमार को बाली ने मुझ पर आक्रमण करने के लिए तो नहीं भेजा है। तुम जाकर इसका पता लगाओ और जब तुम्हें ज्ञात हो जाए कि वह बाली का ही आदमी है तो तुम मेरी ओर मुँह करके इशारा कर देना, मैं यहाँ से भाग जाऊँगा।" यह कहकर सुग्रीव ने हनुमान्‌जी को राम और लक्ष्मण की ओर भेजा। हनुमान्‌जी ने सोचा कि वानर-रूप में अगर मैं इन दोनों राजकुमारों के पास जाता हूँ तो मुझे जानकारी लेने में कठिनाई होगी। इसलिए भेष बदलकर जाना ही उचित होगा।

श्रीराम-हनुमान मिलन

चौ०

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥

यह सोच हनुमान्‌जी राम और लक्ष्मण के पास ब्राह्मण का भेष बनाकर पहुँचे। जाते ही हनुमान्‌जी ने प्रभु राम को प्रणाम किया और फिर उनसे पूछा- "इस घोर जंगल में दिव्य विभूतियों से विभूषित अत्यन्त कान्तियुक्त रूपवान्, इस ऋष्यमूक पर्वत को अपने आलोक से आलोकित करने वाले आप दोनों कौन हैं? आपको देखकर नहीं लगता कि आप कोई सामान्य मनुष्य हैं, आपके शौर्य और शक्ति की आभा इस वन प्रदेश को चकाचौंध कर रही है। आप निश्चय ही दिव्यलोक से पधारे हैं। आपका मुखमंडल इतना आभायुक्त है कि आपके सामने आते ही महान् पराक्रमी भी नतमस्तक

हो जाए । हे आगन्तुक! आप दोनों कौन हैं?" हनुमान्‌जी ने मधुर वाणी में श्रीराम और लक्ष्मण के सामने अपनी जिज्ञासा प्रकट की । प्रभु राम ने सोचा- "इतने शुद्ध संस्कृत में बातचीत वही कर सकता है जो महान् ज्ञानी हो और जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अध्ययन किया हो और आश्चर्य की बात है कि इतनी बातचीत करने के बाद भी इसने एक भी अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया । जो व्यक्ति अपनी बात थोड़े शब्दों में कह सके और रूक-रूककर कठोर शब्दों के प्रयोग से बचे, बोलते समय अपनी वाणी में मधुरता रखे, जोर-जोर से न बोले और जिसकी वाणी हृदय और कंठ से बैखरी रूप में निकले, ध्यान रहे कि जिसकी वाणी हृदय, कंठ और मूर्धा से संतुलित होकर निकले उसे अद्‌भुत वक्ता माना जाता है ।" श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- "लक्ष्मण! ऐसा व्यक्ति जिस राजा के पास रहता है, वह राजा बहुत ही भाग्यशाली माना जाता है । यह तो महापंडित है, इसे समस्त विद्याओं का ज्ञान है ।" हनुमान्‌जी की बात सुनकर श्रीराम ने उन्हें अपना परिचय देते हुए कहा कि-

चौ०

कोसलेस दशरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥

अर्थात् हम दोनों भाई अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र हैं, हम पिता की आज्ञा से वन में आये हैं । लेकिन यहाँ किसी राक्षस ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया है । हम दोनों भाई उसे ही खोज रहे हैं । यह सुन हनुमान्‌जी राम के चरणों पर गिर गये और बोले-"आप तो हमारे प्रभु हैं । मैं तो मूर्ख वानर हूँ, जो अपने प्रभु को पहचान नहीं सका, लेकिन आप तो सर्वज्ञानी हैं । मैं हनुमान् हूँ और बाली के छोटे भाई सुग्रीव का सचिव हूँ ।" तब हनुमान्‌जी अपने मूल वानर रूप में आ गये और प्रभु श्रीराम की ओर देखते हुए बोले- "हे प्रभु! आपने अपने भक्त को क्यों नहीं पहचाना ।" हनुमान् की बात सुनकर श्रीराम ने मुस्कुराते हुए कहा- "हनुमान्! तुम्हें भला मैं कैसे नहीं पहचानूँगा, तुम तो मेरा ही रूप हो, लेकिन जब तुमने स्वयं विप्र रूप धारण कर लिया तो मैं तुम्हें कैसे पहचानूँगा? छल तो तुमने किया था कि अपना मूल रूप छोड़कर तुम विप्र वन गये थे । इसलिए इसमें मेरी कोई भूल नहीं है । अगर तुम मूल रूप में आते, तो मैं तुम्हें पहचान लेता ।" यह सुन हनुमान् श्रीराम के चरणों में गिर

पड़े। श्रीराम ने उन्हें बड़े प्रेम से उठाया और तीनों बगल के शिला पर बैठ गये। हनुमान् और राम की बातचीत सुन लक्ष्मणजी ने जिज्ञासापूर्वक पूछा- "भैया! क्या आप इन्हें पहले से पहचानते हैं? अगर इनसे आपका पूर्व का कोई परिचय है तो भाभी माँ को खोजने में इनसे काफी सहायता मिलेगी। क्योंकि हनुमान्जी इसी वन-प्रदेश में रहते हैं।" यह सुन प्रभु राम मुस्कुराये। श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! हनुमान् दिव्य शक्ति से विभूषित हमारे परम भक्त हैं, ये तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे क्योंकि इनसे मेरा पुराना नाता है।" यह सुन कर लक्ष्मणजी ने पूछा- "प्रभु! मुझे बतायें किहनुमान्जी से आपका कैसा नाता है?

लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- "हनुमान्जी भगवान् शिव के अंश से उत्पन्न हुए हैं। देवता और राक्षसों ने जब सागर मंथन किया था, तो उसमें से चौदह रत्नों के साथ अमृत भी निकला था। जब अमृत को लेकर देवता और राक्षसों में विवाद हो गया, तो उस समय मुझे रूपवती स्त्री का भेष बनाकर अमृत को बांटने आना पड़ा था। मेरा मोहक रूप देखकर भगवान् शिव का शुक्र स्खलित हो गया था। उस शुक्र को माता अंजनी के कान में पवन की सहायता से प्रवेश कराया गया था। इसलिए हनुमान्जी को शंकरसुवन और पवन पुत्र भी कहा जाता है। माता अंजनी के पति केसरीजी थे, इसलिए इन्हें केसरीनन्दन भी कहा जाता है। माता अंजनी महर्षि गौतम की पुत्री थी। हनुमान्जी उसी माता अंजनी के पुत्र हैं। हनुमान्जी को वेदों और शास्त्रों की शिक्षा सूर्यदेव से मिली है। सूर्यदेव ही इनके गुरु हैं। इसीलिए हनुमान्जी को इतना ज्ञान प्राप्त है।" राम और लक्ष्मण हनुमान्जी के विषय में बात करते रहे और हनुमान्जी सिर झुकाये राम के चरणों में बैठे रहे।

थोड़ी देर बाद हनुमान्जी ने कहा- "हे प्रभु, आप यहाँ से सुग्रीव के पास चलें। सुग्रीव अपने बड़े भाई बाली द्वारा निष्कासित होकर बहुत संकट में हैं। वे अवश्य ही माता जानकी की खोज में आपकी सहायता करेंगे।" तीनों पर्वत शिखर पर चलने को तैयार हुए।

हनुमान्जी ने कहा- "प्रभु! पर्वतीय पत्थरों पर चढ़ने में आपको काफी कष्ट होगा, आप दोनों मेरे कन्धे पर बैठ जाएँ, मैं आपको शिखर तक ले चलता हूँ। फिर हनुमान् ने सोचा कि लक्ष्मणजी को मैं कन्धे पर बैठा लेता हूँ और प्रभु श्रीराम मेरी पीठ पर बैठ जाएं। प्रभु श्रीराम हनुमान्जी की पीठ पर बैठे और लक्ष्मणजी कन्धे पर बैठ गये। हनुमान्जी ने श्रीराम से कहा- "प्रभु, आप अपने दोनों हाथों से मुझे पकड़े

रहिएगा, क्योंकि मैं जीव हूँ आपको छोड़कर मैं भाग भी सकता हूँ, लेकिन जब आप दोनों हाथों से मुझे पकड़े रहेंगे, तो मैं भाग नहीं सकूंगा ।" सचमुच भगवान् दोनों हाथों से भक्त को पकड़े रहे, ऐसा दृश्य और कहाँ मिलेगा? भक्त जब भगवान् को अपने शरीर पर धारण कर लेता है तो वह स्वयं भगवान् बन जाता है । हनुमान्‌जी मग्न होकर अपने प्रभु को पीठ पर बैठाये चले जा रहे हैं । यह दृश्य देखकर देवता, यक्ष, गंधर्व सभी हनुमान्‌जी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं । सभी कह रहे हैं कि धन्य हैं हनुमान्, जो परमात्मा को अपनी पीठ पर बैठाये हुए हैं । थोड़ी देर चलने के बाद हनुमान्‌जी शिखर पर पहुँचे । जाते ही सुग्रीव दौड़कर बाहर आये, हनुमान्‌जी ने राम का परिचय देते हुए बताया- "दोनों राजकुमार महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा से वन में आये हैं । वन में इनकी पत्नी मैया सीता का किसी ने हरण कर लिया है, उन्हीं की खोज में ये जंगलों में भटक रहे हैं, ये दोनों हमारे लिए पूजनीय हैं । आप इनका उचित सत्कार करें ।" सुग्रीव ने राम और लक्ष्मण का उचित सत्कार किया और फिर उसने हाथ जोड़कर श्रीराम और लक्ष्मण से कहा- "मैं बाली का छोटा भाई सुग्रीव हूँ। मैं आपसे मैत्री चाहता हूँ, अगर आपको मेरी मित्रता स्वीकार है तो हम अपने को धन्यभागी समझेंगे ।"

यह सुन प्रभु राम ने कहा- "आपने मित्रता की कामना की है, मैं उसे स्वीकार करता हूँ । आज हम दोनों मित्रता की गाँठ को निभाने का संकल्प करें ।" प्रभु श्रीराम की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने अग्नि को प्रदीप्त किया और उस अग्नि को साक्षी मानकर श्रीराम और सुग्रीव ने अपनी मित्रता का संकल्प लिया । इस संकल्प को सुनते ही ऋष्यमूक पर्वत पर रह रहे वानर, रीछ एवं अन्य वीर श्रीराम और सुग्रीव की जय-जयकार करने लगे, साथ ही जामवंत, नल, नील आदि हजारों वानर वीरों एवं रीछ वीरों ने राम और सुग्रीव को बधाई दी ।

सुग्रीव से मित्रता

हनुमान्‌जी ने सुग्रीव और राम की मित्रता करा दी । कहते हैं, हनुमान्‌जी की कृपा के बिना सुग्रीव श्रीराम से मित्रता नहीं कर सकते थे । भक्त के जीवन में भी जब तक हनुमान् की कृपा प्राप्त नहीं हो, तब तक उसे राम नहीं मिलते । प्रभु श्रीराम तक पहुँचने के लिए हनुमान् की सहायता अवश्य चाहिए । सुग्रीव बार-बार राम के चरणों पर अपना सिर रखकर प्रणाम करते हुए बोल रहे हैं- "हे मित्र राम! अब आप मेरा उद्धार कीजिए ।" हनुमान्‌जी ने सुग्रीव को बता दिया था कि राम परमात्मा हैं, इनके

आशीर्वाद से ही आप संकट मुक्त हो सकते हैं। क्योंकि भक्तों को केवल परमात्मा ही संकट से उबार सकता है। इस अवसर पर सुग्रीव हाथ जोड़कर राम के चरणों में बैठ गए और प्रभु को मनाने का प्रयास करने लगे। सुग्रीव ने प्रभु श्रीराम से जो प्रार्थना की है, आइए उस प्रार्थना को हम सब भी गायें, ताकि प्रभु श्रीराम का आशीर्वाद हमें भी प्राप्त हो सके-

भजन

मारा-मारा फिरता था मैं, अब तो सहारा मिल ही गया।
घाट-घाट पै भटक-भटक के, अन्त किनारा मिल ही गया॥
मारा-मारा फिरता था मैं... ... ...!

धन-यौवन और रूप जवानी, दिवा स्वप्न सा बिखर गया।
जिसको पाला-पोसा वो ही, वादा करके मुकर गया॥
मारा-मारा फिरता था मैं... ... ...!

प्रभु से नेह किया नहीं इक पल, जोश-होश सब खिसक गया।
द्वार पधारे काल देवता, देख-देख सब भटक गया॥
मारा-मारा फिरता था मैं... ... ...!

वेद पुराण सुना उपनिषद्, बीच डगर में अटक गया।
आत्म तत्त्व की कड़ी उपेक्षा, बीच भँवर में लटक गया॥
मारा-मारा फिरता था मैं... ... ...!

कोई नहीं, किसको कहूँ अपना? सारा बन्धन टूट गया।
खाट पड़ा जब अन्त काल में, मुँह फेर सब पलट गया॥
मारा-मारा फिरता था मैं... ... ...!

प्रभु राम सुग्रीव की प्रार्थना सुनते रहे, सुग्रीव की आर्तवाणी सुनकर प्रभु राम ने बड़े प्रेम से सुग्रीव को बताया- "मित्र! अब हम दोनों मित्र बन गये हैं। आप निश्छल भाव से अपना दुःख हमें बतायें। हम दोनों मिलकर उस दुःख का निराकरण करेंगे।" इसी बीच हनुमान्जी ने कहना शुरू किया- "युवराज सुग्रीव! प्रभु श्रीराम महाशक्तिशाली हैं, इनकी सहायता से आपका सारा संकट टल जाएगा, आप चिन्ता न करें।" हनुमान्जी की बात सुनकर सुग्रीव सोचने लगे- "राम महाबलशाली बाली से हमारी रक्षा कैसे कर सकते हैं। उसके सामने जाते ही बड़े-बड़े बलशाली अपनी शक्ति खोकर बौना बन जाता है, तो राम हमारी रक्षा कैसे कर सकेंगे?" सुग्रीव के मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे। सभी लोग शिखर पर टहलने लगे।

इसी बीच श्रीराम ने पर्वत शिखर पर हड्डियों का एक महाकंकाल पड़ा देखा। प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा- "मित्र सुग्रीव! यह विशाल कंकाल यहाँ कैसे पड़ा हुआ है, किसका है यह नर कंकाल?" यह सुनते ही सुग्रीव भय से कांपते हुए बोला- "मित्र राम! यह कंकाल लंकापति रावण के साला दुंदुभि का है। इस विशाल राक्षस का वध बाली ने किया था।"

यह सुनते ही प्रभु राम ने अपने पाँव के अंगूठे से उस कंकाल को धक्का दे दिया। धक्का लगते ही वह कंकाल सैकड़ों मील दूर जा गिरा। सुग्रीव को बड़ा आश्चर्य हुआ कि पहाड़ के समान इस विशाल कंकाल को राम ने अंगूठे के धक्के से इतना दूर फेंक दिया। अब राम की शक्ति के विषय में कुछ और जानने की जिज्ञासा सुग्रीव के मन में होने लगी। प्रभु राम सुग्रीव के मनोभाव को समझ रहे थे। वे जानते थे कि सुग्रीव उनकी शक्ति को देखकर आश्वस्त होना चाहता है। इसी बीच सुग्रीव ने कहा- "मित्र राम! मेरा भाई बाली बहुत बलशाली है। वह एक ही बाण में साल के बड़े पेड़ को आर-पार छेद देता है।" राम को लगा कि सुग्रीव चाहता है कि मैं भी उसे कुछ ऐसा ही करके दिखाऊँ। राम ने सुग्रीव से कहा- "सखा सुग्रीव! अब तुम देखो कि सिर्फ एक साल के पेड़ को ही नहीं, बल्कि विभिन्न दिशाओं में खड़े साल के वृक्षों को मैं कैसे बेधता हूँ।" राम ने एक बाण छोड़ा और अलग-अलग दिशाओं में खड़े सात साल वृक्षों को वह बाण एक साथ ही बेध दिया। सुग्रीव को बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन राम की शक्ति देखकर वह अभिभूत होकर उनके चरणों में बैठ गया। सुग्रीव समझ गया कि उसका सखा राम कोई साधारण पुरुष नहीं है। उसने बार-बार राम की वन्दना और प्रदक्षिणा की। फिर थोड़ी देर साथ बैठे।

इसी बीच राम ने सुग्रीव से पूछा– "हे सखा! आप किष्किन्धा छोड़कर इस पर्वत शिखर पर क्यों रहते हैं?" यह सुनकर सुग्रीव ने कहा– "हे मित्र! हनुमान्‌जी ने मुझे आपके विषय में पूरी बात बता दी है । हम सभी लोग मिलकर सीता माता का पता लगावेंगे । पहली बात तो यह कि आप सीता माता की चिन्ता न करें । हम सभी लोग आपके साथ हैं ।"

चौ०

कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी ॥

"हे सखा, मैं अपना दुःख आपको बाद में बताऊँगा, लेकिन पहले मैं जो जानता हूँ उसे सुनें । हनुमान्‌जी ने बताया कि किसी दुष्ट राक्षस ने सीता मैया का हरण कर लिया है, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । इस दुःख से निकलने के लिए मैं अपनी शक्ति के अनुसार आपकी हर सहायता करूँगा ।

एक दिन मैं अपने मित्रों के साथ इसी पर्वत शिखर पर बैठा था कि तभी आकाशमार्ग से किसी नारी को विलाप करते हुए रथ पर जाते देखा । हमलोगों को देखकर उस अबला नारी ने एक पोटली गिराई, जिसे मैंने गुफा में रख दिया था । सर्वप्रथम आप उस पोटली को देखें । कहीं वह पोटली सीता माता का ही तो नहीं है ।" श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ने जिज्ञासापूर्वक एक साथ पूछा– "कहाँ है वह पोटली?" सुग्रीव ने हनुमान्‌जी से कहा– "हनुमान्! देखो मैंने उस पोटली को गुफा में सुरक्षित जगह पर रखी है ।" हनुमान्‌जी गुफा में गये और अन्दर से वह पोटली लाकर श्रीराम के सामने रख दिये । प्रभु राम ने स्वयं पोटली खोली और लक्ष्मण की ओर देखते हुए कहा– "लक्ष्मण! इन अलंकारों को पहचानो तो, क्या ये तुम्हारी भाभी के हैं?" यह सुन लक्ष्मण ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा– "भैया! मैं भला इन अलंकारों को कैसे पहचान सकता हूँ? आज तक मैंने भाभी माँ को अलंकार पहने हुए कभी देखा ही नहीं । सच पूछिए तो आज तक मैंने कभी उनके चेहरे को भी नहीं देखा है । मैंने तो हमेशा उनके पावों पर नजर रखकर ही उनसे बात की है । हाँ! जब कभी मैंने उनके पाँव छूकर उन्हें प्रणाम किया है, तो मेरी नजर उनके नूपुर पर अवश्य पड़ी है, मैं सिर्फ उनके नूपुर को ही पहचान सकता हूँ ।"

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

(वाल्मीकिजी ने इस दृश्य का बड़ा अद्भुत वर्णन किया है । सचमुच यही कारण है कि भारत को लोग मर्यादा, संस्कृति, संस्कार और नैतिकता का देश मानते हैं । आजकल तो पति के छोटे भाई को लोग द्विवर = देवर = दूसरा वर मानने लगे हैं । जबकि देवर लक्ष्मण तो अपनी भाभी सीता को माँ समान मानता था । जिस देश में ऐसे विचारों को माना जाता हो, उसी को भारत कहा जाता है । शायद इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में कहा था कि भारत में व्यक्ति का मूल्यांकन उसके चरित्र के आधार पर होता है । उन्होंने कहा कि-"In your Country barber and tailors make the personality, but in my Country character makes the personality."

यह भारत में ही सम्भव है कि एक पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म का पालन किया जाए । जिन देशों में इस मर्यादा का पालन नहीं किया जाता, उस देश से नैतिकता और चरित्र का नाम मिट जाता है ।)

प्रभु श्रीराम ने जब सीता के अलंकारों को देखा तो उन अलंकारों को देखकर सीता के करुण-क्रन्दन की कल्पना मात्र से ही विचलित होकर विलाप करने लगे । तभी सुग्रीव ने राम को ढाढ़स बंधाते हुए कहा- "हे सखा! आप विलाप न करें, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सीता माता संपूर्ण संसार में जहाँ कहीं भी होगी, हम अपने वानर सैनिकों की सहायता से उन्हें ढूंढ निकालेंगे ।"

राम ने अपने को संभालते हुए सुग्रीव से कहा- "हे सखा सुग्रीव! मुझे विश्वास है कि सीता की खोज में आप मेरी पूरी सहायता करेंगे, लेकिन मैंने तो सुना है कि आप स्वयं अपने राज्य से निष्कासित होकर निर्वासित जीवन जीं रहे हैं । मैंने यह भी सुना है कि बाली ने आपकी पत्नी को छीन लिया है । आप तो स्वयं पत्नी दुःख से दुःखी हैं और जो स्वयं दुःखी हो, वह दूसरे की सहायता कैसे कर सकता है? हम दोनों का दुःख एक समान है । इस परिस्थिति में आप मेरी क्या सहायता करेंगे । हाँ! एक रास्ता है कि हम एक दूसरे की परस्पर सहायता करके अपने-अपने दुःखों से मुक्त हो जाएं । क्योंकि एक साथ अनेक लोगों से तो नहीं लड़ा जा सकता । इसलिए हे मित्र! मेरे दुःख से तो आप परिचित हो गये, अब आप मुझे अपने दुःख से अवगत कराएं ।"

यह सुन सुग्रीव ने कहा– "हे सखा, मैं और बाली किष्किन्धा में बड़े प्यार से रहा करते थे। एक रात दुंदुभि का छोटा भाई मायावी अपने भाई की मौत का बदला लेने के लिए किष्किन्धा आया और बाली के घर जाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा–

चौ०

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बाली देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥

जब आधी रात के समय मायावी ने बाली को युद्ध के लिए ललकारा तो बाली और मैं बाहर निकला। हम दोनों को देखकर मयदानव पुत्र मायावी वहाँ से भागा। हम दोनों ने उसका पीछा किया। वह भागते–भागते एक गिरि–कन्दरा में जा छिपा और उसके द्वार पर भीतर से एक विशाल शिला रखकर वहीं छिप गया। बाली ने मुझसे कहा कि तुम बाहर रहकर मेरी प्रतीक्षा करो, मैं भीतर जाकर मायावी से निपटता हूँ। अगर पन्द्रह दिनों तक मैं न लौटा, तो तुम समझ लेना कि बाली मारा गया–

चौ०

परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

यह कहकर बाली भीतर चला गया। मैं बाहर बैठा बाली की प्रतीक्षा करता रहा। एक महीना बाद मैंने गुफा से खून की धारा बहते देखा। मैं घबड़ा गया, मैंने समझा कि बाली मारा गया। अब मायावी आकर मुझे भी मारेगा। यह समझकर मैं किष्किन्धा भाग आया। लोगों को जब पता चला तो पूरी किष्किन्धा शोकमग्न हो गई। मंत्रियों ने विचार–विमर्श कर मुझे किष्किन्धा का राजा बना दिया। इसी बीच बाली मायावी को मारकर जब किष्किन्धा लौटा तो उसने मुझे राज्य सिंहासन पर बैठे देखा। वह क्रोध से पागल हो गया और उसने मेरा बाल पकड़कर सिंहासन से घसीटकर पटक दिया और अपनी गदा से मुझे बुरी तरह पीटा। मैं उसके डर से वहाँ से भागा, उसने मेरी पत्नी रुमा को अपनी पत्नी बनाकर रख लिया और मैं किष्किन्धा से भागकर तभी से इस ऋष्यमूक पर्वत पर छिपकर रहने लगा।"

सुग्रीव की करुण कथा सुनकर श्रीराम बड़े दुःखी हुए। श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा– "क्या इस पर्वत पर आकर बाली तुम्हें पकड़ नहीं सकता?" यह सुन सुग्रीव ने कहा– "संत–महात्माओं के शाप के कारण बाली इस पर्वत पर नहीं आ सकता।"

यह सुन श्रीराम ने पूछा- "कैसा शाप?" सुग्रीव ने कहा- "जिस दिन बाली ने अत्याचारी दुंदुभि को मारा उस दिन ऋष्यमूक पर्वत पर बड़े-बड़े संत-महात्मा यज्ञ कर रहे थे। बाली ने जब दुंदुभि के शरीर को वहाँ से फेंका, तो दुंदुभि के शरीर का खून यज्ञभूमि में जा गिरा। यह देख संत-महात्माओं को बड़ा क्रोध आया। संत महात्माओं ने समझा कि कोई शिकारी इस पर्वत के निर्दोष जीव-जन्तुओं को मार रहा है। उन लोगों ने शाप दे दिया कि जिस व्यक्ति ने ऐसा किया है, अगर वह इस पर्वत पर आता है, तो जलकर भस्म हो जाएगा। उसी शाप के कारण बाली इस पर्वत पर नहीं आ सकता।"

यह सुनकर राम बड़े मर्माहत हुए। सुग्रीव का दुःख सुनकर राम ने कहा- "मैं जानता हूँ कि सीता की खोज और राक्षसों के वध की जो मैंने प्रतिज्ञा की है, उसको पूरा करने में बाली जैसा महाबली मेरी मदद कर सकता है, लेकिन बाली अत्याचारी है, उसका वध होना चाहिए-

दो०

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

सखा सुग्रीव, मैं बाली को अवश्य मारूँगा। संसार की कोई दिव्यशक्ति उसे बचा नहीं सकेगी। मैंने राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की है, क्योंकि सारे राक्षस दुराचारी, अत्याचारी और अनाचारी है। बाली भी भोग-विलास में लिप्त होकर राजधर्म का पालन नहीं कर रहा है। इसलिए उसे अवश्य ही मारूँगा। हे सखा! बाली तुम्हारा शत्रु बन गया है। आज मैंने अग्नि को साक्षी मानकर तुमसे मित्रता की है, इसकी सूचना बाली को अवश्य मिल जाएगी। आज से तुम मेरे मित्र बन गये हो, तो तुम्हारा दुःख मेरा दुःख है।

श्रीराम का सुग्रीव को उपदेश

चौ०

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

श्रीराम ने कहा- "जो व्यक्ति अपने मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होता, वह महापापी है। धर्म का आदेश है कि जो लोग धर्मविरुद्ध आचरण करते हैं, उनका नाश कर दिया जाए तभी समाज में धर्म बच सकता है।" राम की प्रतिज्ञा सुनकर सुग्रीव गद्‌गद हो गए।

सुग्रीव ने कहा- "हे सखा राम! आपने मुझ जैसे नीच योनि में पैदा व्यक्ति को अपने चरणों में स्वीकार कर अपना सखा बना लिया है। मैं तो वानर जाति का हूँ, आप अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं, फिर भी आपने मुझे स्वीकार लिया, यह आपकी महानता है। लेकिन हम दोनों के बीच इतना बड़ा फासला है कि मुझे आपके निकट बैठने में और आपको मित्र कहने में भय लगता है।"

सुग्रीव की बात सुनकर प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव का कंधा थपथपाते हुए कहा- "सुग्रीव! तुम्हें मैंने अपना मित्र बनाया है। जिस समय अग्नि की साक्षी मानकर हमने तुम्हें मित्र बनाया है, उसी समय क्षत्रिय कुल और वानर कुल की सभी दीवारें गिर गईं। अब हमारे और तुम्हारे बीच कोई भेद नहीं है। सुग्रीव मेरे सखा! इस भेद के दीवारों को हमने कर्म के अनुसार सामाजिक स्तर पर बांटा है। जातियों का वर्ग विभाजन प्रारम्भ काल में कर्म के अनुसार हमारे समाज के ही श्रेष्ठ लोगों ने किया था। कोई भी व्यक्ति कोई भी कर्म कर सकता है। यह कर्म विभाजन है, जाति विभाजन नहीं। जो लोग नगर में रहते हैं, उन्हें नागरिक कहा जाता है और जो लोग वन-प्रदेश में रहते हैं, उन्हें वनवासी। जो लोग राष्ट्र की रक्षा करते हैं, वे राष्ट्र का क्षत्र बनकर उसकी सुरक्षा करते हैं, इसलिए उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है। समाज में नैतिक नियमों का पालन करने का निर्देश देने वाले, ब्रह्म-चिन्तन करने वाले, गुरुकुल चलाने वाले, पूजा-पाठ करने वाले लोगों को ब्राह्मण श्रेणी का कहा जाता है। जो लोग समाज का पोषण करते हैं, उन्हें वैश्य कहा जाता है और जो लोग समाज के सभी वर्ग की सेवा करते हैं वैसे सेवा करने वाले समस्त लोगों को शूद्र कहा गया है। यह श्रम विभाजन का विधान है, यह जाति विभाजन नहीं है। संमाज में तो एक ही जाति होती है, वह है मनुष्य जाति। आज भी जो लोग चिकित्सा करते हैं उन्हें वैद्य कहा जाता है। इससे वो वैद्य जाति का नहीं हो गया। मैं स्वयं क्षत्रिय हूँ, मेरा काम है छाते की तरह क्षत्र बनकर समाज की रक्षा करना। इसलिए मुझे लोग राजा या राजकुमार कहते हैं। इस कर्म के कारण मुझे क्षत्रिय जाति मान लेना कोई नैतिक कारण नहीं है।"

श्रीराम की बात सुनकर सुग्रीव ने कहा- "हे सखा! मैं तो समझता था कि परमात्मा ने मुझे वानर जाति में पैदा करके मुझे समाज से उपेक्षित कर दिया है । अब आप कृपा कर बताएँ कि जीव का धर्म क्या है?"

सुग्रीव का प्रश्न सुनकर प्रभु राम ने कहा- "सखा सुग्रीव! प्रकृति द्वारा प्रदत्त नैतिक नियमों का पालन ही धर्म है । धर्म का अर्थ है- कर्त्तव्य । जब मनुष्य या जीव नैतिक नियमों का पालन करता है, अपनी आत्मा, शरीर और परमात्मा को आधार मानकर उसके कल्याण के लिए, अपने प्रत्येक कर्म को परमात्मा का कर्म मानकर करता है, वही तो धर्म है । मनुष्य माया के कारण परमात्मा से बिछुड़ गया है । जब जीवात्मा पुनः अपनी साधना से माया के विकारों को नष्ट कर देता है, तो वह फिर परमात्मा में मिल जाता है । यही तो परमात्मा और जीव का रहस्य है ।"

यह सुन सुग्रीव ने कहा- "जब सभी जीव पमात्मा के अंश हैं तो कोई मनुष्य, कोई जानवर, कोई कीट-पतंग किस कारण से बनता है ।" यह सुन श्रीराम ने कहा- हे सखा, तात्त्विक दृष्टि से इन जीवों में कोई अन्तर नहीं है, यह केवल रूप भेद है । इन जीवों की रचना भी परमात्मा ने कर्मों के अनुसार ही किया है । मनुष्य भ्रम-वश यह समझता है कि वह श्रेष्ठ जीव है । लेकिन ऐसा है नहीं । भारत में तो वाराह, कूर्म, मत्स्य, नरसिंह को भगवान् माना जाता है । अगर केवल मनुष्य श्रेष्ठ होता, तो वाराह और कूर्म को अवतार कैसे माना जाता । मनुष्य तो आज भी गाय को माता मानता है । हाँ, एक बात अवश्य है कि मनुष्य और पशु में इन्द्रियों का अन्तर है । जिसका मन प्रधान हो, उसे मनुष्य कहते हैं और जो पाश में बंधा हो उसे पशु कहते हैं । मनुष्य के पास दस इन्द्रिय हैं और एक मन है । इन इन्द्रियों पर मनुष्य अपना नियंत्रण रखता है । पशुओं में किसी की पाँच, किसी की सात और उसी तरह वृक्ष, पर्वत, क्रीट-पतंग का भेद किया जाता है । इन्द्रिय तो सभी जीवों में है, केवल संख्या का अन्तर है । मनुष्य को विवेकशील प्राणी माना जाता है, लेकिन मनुष्यों में भी जो विवेक को छोड़कर पशुवत् आचरण करता है, उसे भी पशु ही मानना चाहिए ।"

यह सुन सुग्रीव ने कहा- "हे सखा! ऐसी बातें तो हमनें कभी नहीं सुनी थी। कृपया और बतायें कि मनुष्य जाति और वानर जाति में क्या अन्तर है?" यह सुन प्रभु श्रीराम ने कहा- "हे सखा! मनुष्य और वानर जाति का नाम समाज ने दिया है । तुम स्वयं देखो कि किसी मनुष्य को और तुमको देंखकर क्या ऐसा लगता है कि तुम कोई दूसरे जीव हो । रीछपति जाम्बवन्त जाति से रीछ हैं, इससे वे रीछ और भालू तो नहीं

बन गए । हनुमान् जैसे परमज्ञानी को बन्दर कैसे कहा जा सकता है । वानर जाति में जन्म लेने के कारण तुम लोगों को वानर कहा जाता है । लेकिन तुम तो वैसे ही हो, जैसे दूसरे मनुष्य हैं । दोनों की आकृति-प्रकृति में क्या अन्तर है? हाँ! अगर चेहरे के बनावट से तुम्हें वानर कहा जाता है, तो संसार में प्राचीनकाल से देश और स्थान के अनुसार मनुष्य का चेहरा भी बदलता रहता है । कोई गोरा होता है, कोई काला होता है, कोई सुन्दर होता है, कोई कुरुप होता है । उत्तर भारत के लोग गोरे होते हैं, आर्यावर्त से बाहर के लोग और गोरे होते हैं, यह सब स्थान के वातावरण के प्रभाव के कारण होता है । परमात्मा किसी को काला-गोरा, सुन्दर और कुरुप नहीं बनाते । हे सखा सुग्रीव! मनुष्य चालाकी से अपने को श्रेष्ठ प्राणी मानता है । क्योंकि उसके पास बुद्धि और विवेक है । लेकिन मनुष्य की बुद्धि तभी तक लोकोपयोगी है, जब तक वह नैतिक कार्य करती रहती है । जब बुद्धि विध्वंस करने की ओर बढ़ने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि उस पर पशुता चढ़ गई है ।

हे सखा! तुम्हारा बड़ा भाई बाली अनाचार और अत्याचार कर रहा है । उसने सारी मर्यादाओं को तोड़ दिया है । वानर जाति में होने के कारण उसे नैतिक नियम तोड़ने का कोई अधिकार नहीं है । दूसरी ओर तुम, जाम्बवन्त, हनुमान् और नल-नील आदि नैतिक नियम का पालन कर रहे हो । प्रकृति के नियम बड़े कठोर होते हैं प्रकृति किसी को नहीं छोड़ती । रावण रक्ष-संस्कृति को मानता है, वह वैदिक ऋषि, महान् तपस्वी विश्रवा का पुत्र है । वह अपने पिता के धर्म के विपरीत आचरण कर रहा है। वह शास्त्र जानता है, वह ज्ञानी भी है, लेकिन उसका आचरण गलत है । वह समाज के प्रत्येक मर्यादाओं को तोड़ देना चाहता है। रक्षसंस्कृति को मानने के कारण उसे राक्षस कहा जाता है । हमलोगों में और उसमें क्या अन्तर है? आज भी हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अनपढ़ हैं । नगर के लोगों की तरह वे सज-धज कर नहीं रहते, खुले वदन रहते हैं, वे गरीब होते हैं और झोपड़ियों में रहते हैं । हमारे समाज के बहुत लोग जंगल और वन-प्रदेशों में रहते हैं, तो क्या वे हमारे अंग नहीं हैं? इसलिए हे सखा! तुमलोग वानर जाति के हो, बन्दर तो नहीं हो । बन्दर एक पशु है, इसलिए तुम अपने को हीन मत समझो । तुम तो हमारे समाज के अंग हो ।"

यह सुनकर सुग्रीव की आँखों में आँसू आ गए । सुग्रीव ने कहा- "हे सखा! इतना ज्ञान तो मुझे आज तक किसी ने नहीं दिया । फिर कभी आपके चरणों में बैठकर

और ज्ञान प्राप्त करूँगा । अभी हम दोनों के ऊपर संकट आया हुआ है, मैं अपने राज्य से निष्कासित होकर अपनी पत्नी से दूर पर्वत पर छिपा हुआ हूँ और आप सीता माता के विरह में व्यथित हो रहे हैं । मेरा परामर्श है कि सीता माता का पता लगाने के लिए अयोध्या से और सैनिकों को बुलाया जाए, जिनकी सहायता हमारी वानर सेना भी करेगी, क्योंकि कौन जानता है कि सीता माता को चुराने वाला हमारा शत्रु कितना प्रबल है? इसके लिए हमें काफी सैनिकों की आवश्यकता होगी ।"

यह सुनकर प्रभु श्रीराम ने मुस्कुराते हुए कहा- "हे सखा सुग्रीव! मैं आपकी भावना की कद्र करता हूँ, लेकिन दुनिया में ऐसा कोई संकट नहीं है, जो परमात्मा से भी बड़ा हो । जिसे परमात्मा पर भरोसा हो.और जिसका मनोबल ऊँचा हो, जो अपने कार्यों और विचारों को नैतिकता की धरातल पर स्थिर कर पक्का संकल्प करता है, उसके सामने बड़े से बड़ा शत्रु भी घुटने टेक देता है । इसलिए आवश्यक है कि संकल्पकर्त्ता के मन में लक्ष्य प्राप्ति का पूरा भरोसा हो । जिस व्यक्ति के मन में लक्ष्य प्राप्ति का संदेह बना रहता है, उसी को असफलता मिलती है । सफलता एक विचार है, कोई घटना नहीं । जहाँ तक अयोध्या से सेना मंगवाने का प्रश्न है, उससे मैं सहमत नहीं हूँ । क्या इस वन-प्रदेश में हमारी सहायता के लिए लोग कम हैं? मैं चाहता हूँ कि इस वन-प्रदेश में समाज से जो कटे हुए लोग हैं, जो उपेक्षित होकर जंगलों में रहते हुए अपना जीवन यापन कर रहे हैं, उन्हें एकत्र कर उनके मन में श्रेष्ठ भाव पैदा करो और उन्हें समाज की मुख्यधारा में जोड़ो । इस वन-प्रदेश के लोग भी तो हमारे अपने ही हैं, इन स्थानीय लोगों की सहायता न लेकर अयोध्या से सहायता मांगना उचित नहीं है ।"

पुनः श्रीराम ने कहा- हे सखा सुग्रीव!

भय से कंपित जो रहे, बल विवेक मिट जाय ।
निर्भय मन में सर्वदा, शौर्य शक्ति बढ़ जाय ॥
पाप अनीति अहंकार से, शील शक्ति घट जाये ।
पाप करे निर्बल बने, आत्मग्लानि मर जाये ॥

निर्भय को भक्ति मिले, ते नर प्रभु पद पाये ।
पाप करे निर्बल बने, जग में नाम हंसाये ॥
जो सदा निर्भय रहे, काल सके न खाये ।
बल विवेक से जगत में, कालजयी कहलाये ॥
भय पाप के मूल है, निर्भय पुण्य-प्रताप ।
पापी संशय में जीये, क्षण-क्षण दे संताप ॥

"इसलिए हे मित्र! पहले बाली पर आक्रमण होना चाहिए, तभी बाहर के शत्रु पर आक्रमण करने में सुविधा होगी । घर ठीक हो जाए, तो बाहर वालों से आसानी से निपटा जा सकता है ।" यह कह श्रीराम ने सुग्रीव को पहले बाली पर आक्रमण करने का परामर्श दिया । यह सुन सुग्रीव ने कहा– "हे सखा! मैं कितना भाग्यशाली हूँ, बाली ने तो मुझ पर बड़ा उपकार किया जो उसने मुझे राज्य से निष्कासित कर दिया । क्योंकि अगर उसने मुझे राज्य से निकाला नहीं होता तो मुझे आपके दर्शन नहीं हो पाते ।"

चौ०

बाली परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन विषादा ॥

"हे सखा! बाली के कारण ही मुझे आप मिले, आपने मेरे मन के सारे विकारों को धो दिया । अब मेरे मन में और कोई कामना शेष नहीं रही ।"

बाली-वध

चौ०

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनुपानी ॥

सुग्रीव प्रभु श्रीराम के चरणों में शीश झुकाते हुए बोले– "हे सखा! मुझे आदेश दें कि अब मैं क्या करूँ?" श्रीराम ने कहा– "अब तुम्हें सबसे पहले किष्किन्धा राज्य से अपने निष्कासन का बदला लेना है ।"

चौ०

लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥

सुग्रीव बाली के महल के निकट गया और उसने बाली को युद्ध के लिए ललकारा । बाली ने ज्योंही सुग्रीव की ललकार सुनी, वह क्रोध से भर गया और अपनी गदा लेकर बाहर जाने लगा । तभी उसकी पत्नी तारा ने बाली के पाँव पकड़कर कहा- "हे नाथ! ऐसी भूल न करें । मैंने सुना है कि सुग्रीव ने किन्हीं दो तपस्वी से मैत्री कर ली है, वे दोनों तपस्वी बड़े ही तेज-पुंज युक्त हैं ।"

चौ०

सुनत बाली क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥

बाली ने तारा से कहा- "तारा! तुम चिन्ता मत करो । अगर वे दोनों तेज-पुंज बालक परमात्मा हैं, तो मैं तो सनाथ हो जाऊँगा, मेरा तो कल्याण हो जाएगा ।"

चौ०

असि कहि चला महा अभिमानी । तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा । मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥

बाली घर से निकला और आते ही अपनी मुठिका से सुग्रीव पर प्रहार कर दिया । बाली की मुठिका की मार सुग्रीव नहीं सह सका, और वह वहाँ से भागा । सुग्रीव जब भागकर प्रभु राम के पास आया तो उसने राम से कहा- "हे सखा! आप मुझे बाली से क्यों मरवाना चाहते हैं, मैंने आपको पहले ही कहा था कि मैं बाली से नहीं लड़ सकता । आप मेरी सहायता करने आए हैं तो वृक्ष की ओट में क्यों छिपे हैं? मैं अकेला बाली से नहीं लड़ सकता ।"

सुग्रीव भागकर ऋष्यमूक पर्वत पर आ गया । राम भी पीछे से लौट आये । राम ने सुग्रीव को समझाया- "जिस समय बाली तुम पर प्रहार कर रहा था, उस समय मैं बाली को मारना चाहता था, लेकिन तुम दोनों भाई एक ही समान लग रहे थे, इसलिए मैं तुम दोनों में अन्तर नहीं कर सका ।"

चौ०

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ ॥

प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव के शरीर का स्पर्श किया । उनका स्पर्श होते ही सुग्रीव के शरीर का दर्द नष्ट हो गया ।

चौ०

कर परसा सुग्रीव सरीरा । तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥

तब श्रीराम ने सुग्रीव को एक माला पहना दी और कहा– "इस माला के कारण मैं तुम्हें दूर से ही पहचान लूंगा ।" यह सुन सुग्रीव ने कहा– "आप अगर मेरी सहायता करना चाहते हैं तो मेरे पीछे रहकर सहायता क्यों नहीं करते? यह सुन श्रीराम ने कहा कि मैं ऐसा नहीं कर सकता । क्योंकि बाली के सम्मुख खड़ा होकर कोई भी उसे परास्त नहीं कर सकता । बाली को देवताओं का वरदान प्राप्त है कि जो कोई भी व्यक्ति सामने से उससे लड़ने जाएगा, उसका आधा बल बाली के शरीर में प्रवेश कर जाएगा । और फिर तब बाली को कोई हरा नहीं सकेगा । इसलिए सामने जाकर उस पर आक्रमण नहीं किया जा सकता है ।"

श्रीराम की बात सुनकर सुग्रीव पुनः तैयार हुआ और बाली को ललकारने पहुँचा। सुग्रीव की ललकार सुनकर बाली फिर बाहर निकला, तारा ने उसे बहुत समझाया, लकिन वह अपनी पत्नी की बात नहीं माना । आते ही उसने सुग्रीव पर प्रहार करना शुरू किया । बाली, सुग्रीव देर तक एक दूसरे पर प्रहार करते रहे । बाली के प्रहार से सुग्रीव बुरी तरह घायल होता जा रहा था और बार-बार वृक्ष की ओट में खड़े श्रीराम की ओर देखे जा रहा था । जब प्रभु राम ने देखा कि बाली के प्रहारों को सुग्रीव और नहीं सह सकता, तो राम ने वृक्ष की ओट लेकर एक तीक्ष्ण बाण बाली पर छोड़ा । बाण लगते ही बाली मूर्छित होकर गिर पड़ा । बाली के गिरते ही पूरे वन प्रदेश में जैसे सन्नाटा छा गया ।

माला का रहस्य

विशेष प्रसंग–

(कहा जाता है कि जब भी कोई बाली से लड़ने जाता था तो उसका आधा बल कम हो कर बाली के शरीर में प्रवेश कर जाता था । इसका कारण

था कि महान तपस्वी कश्यप ने तप करके भगवान् शिव से एक माला प्राप्त की थी । उस माला को कश्यपजी ने अपने पुत्र इन्द्र को दिया और वही माला इन्द्र ने अपने पुत्र बाली को दे दिया । उस माला को पहनकर जब भी बाली किसी से लड़ने जाता था तो माला के प्रभाव के कारण ही दूसरे व्यक्ति का आधा बल नष्ट हो जाता था या बाली के शरीर में आ जाता था । इसीलिए श्रीराम ने सुग्रीव को बाली से लड़ने के लिए रात के समय भेजा । क्योंकि बाली रात में उस पवित्र माला को उतार कर सोता था । अतः जिस समय सुग्रीव ने बाली को युद्ध के लिए ललकारा, उस समय उसके गले में माला नहीं थी । फिर भी श्रीराम ने वृक्ष की ओट से बाली पर बाण चलाया, क्योंकि श्रीराम भगवान् शिव के आशीर्वाद का सम्मान करते थे और उनके मन में संदेह था कि कहीं बाली वह माला पहने हुए तो नहीं है ।)

श्रीराम का बाली को उपदेश

राम और लक्ष्मण भूमि पर पड़े हुए बाली के पास गये । बाली की नजर ज्योंही श्रीराम पर पड़ी, उसने कहा- "मैंने तो सुन रखा था कि अयोध्या के दो राजकुमार हमारे वन प्रदेश में आए हुए हैं, लेकिन मैंने आपमें कोई रूचि नहीं दिखाई, क्योंकि अकारण किसी भी आगन्तुक के प्रति जिज्ञासा प्रकट करना उचित नहीं है । युद्ध में आते समय तारा ने मुझे समझाया था कि सुग्रीव के साथ अयोध्या के राजकुमारों ने मित्रता कर ली है । इस पर मैंने तारा से कहा कि सुग्रीव ने मित्रता की हैं, इसमें क्या बुराई है? मैं तो अपने भाई से युद्ध कर रहा था, मैंने आप दोनों का क्या बिगाड़ा था । आपके राज्य की ओर मैंने कभी देखा भी नहीं । फिर आपने छिपकर मेरे ऊपर आघात क्यों किया? आपके बाण की शक्ति देखकर मुझे पूरा भरोसा हो गया कि आप कोई साधारण राजकुमार नहीं हैं, क्योंकि बाली पर इतना भीषण प्रहार करने वाला निश्चय ही कोई परमात्मा ही हो सकता है, मेरे ऊपर प्रहार करने वाला व्यक्ति सामान्य हो ही नहीं सकता । और अगर आप दिव्य पुरुष हैं, तो आप ही बतायें कि क्या कोई दिव्य पुरुष कभी अधर्म से युद्ध करता है? आपने ऐसा क्यों किया? मुझे बताया गया था कि आपके पिता महाराज दशरथ बड़े धर्मप्राण थे और आप अभी संन्यासी भेष में हैं, इसके बावजूद आपने छिपकर मेरे ऊपर प्रहार किया ।

बाली ने कराहते हुए श्रीराम से पुनः कहा- "पृथ्वी, सोना और स्त्री- इन तीनों के लिए ही राजाओं में लड़ाई होती है । हमारे आपके बीच इस विषय का कोई बैर-भाव नहीं है, फिर आपने अधर्मतापूर्वक मुझ पर प्रहार क्यों किया? मैंने सुना था कि आपकी पत्नी का रावण ने अपहरण कर लिया है । आप मेरे पास आते, मैं रावण की गर्दन पकड़कर, घसीटते हुए आपके पास ले आता । मैं राजा हूँ, आपको मेरे साथ राजा के समान व्यवहार करना चाहिए था । लेकिन आपने तो मेरे कुलद्रोही सुग्रीव का साथ दिया । आपको देखकर लगता है कि आप शास्त्रों के जानने वाले हैं, लेकिन आपने तो शास्त्र विरूद्ध आचरण किया है । शास्त्र में लिखा है कि निरपराध राजा की हत्या करने वाला हत्यारा, गो-हत्यारा, चोर, नास्तिक और परिवेता ये सब नरकगामी होते हैं । हे नरश्रेष्ठ राम! आपने जो अपराध किया है, उसके लिए आपको क्षमा नहीं किया जाएगा ।" बाली की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे बाली! मैंने तुम्हारी सारी बातें सुन ली । तुमने जो कुछ भी कहा उसके उत्तर में मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि धर्म का अर्थ है- नैतिक नियमों की स्थापना करना । तुमने अपने जीवन में नैतिक नियम को छोड़कर अनैतिक नियमों को प्रश्रय देना शुरू कर दिया था । तुमने आर्यावर्त की संप्रभुता और मर्यादा के विरूद्ध रावण से संधि कर ली, जिससे इस राष्ट्र को खतरा हो गया था । तुम्हारी विलास-प्रियता से इस आर्यावर्त की अखण्डता असुरक्षित हो गई थी । तुम्हारे उससे युद्ध न करने की संधि कर लेने के कारण रावण कभी भी आर्यावर्त में अपना राज्य स्थापित कर सकता था । पुनः तुमने सुग्रीव से मित्रता करने की बात कही है, सुग्रीव तुम्हारे अत्याचार से पीड़ित होकर जंगलों में निवास कर रहा है । तुमने उसकी पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया है-

चौ0

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ॥

अरे बाली, छोटे भाई की स्त्री, बहन और पतोहू कन्या के समान है, तुमने इस मर्यादा को तोड़ दिया है ।" श्रीराम की बात सुनकर बाली ने कहा- "हे रघुनन्दन! वानर जाति में छोटे भाई की स्त्री को पत्नी बनाने में रोक नहीं है, वानर जाति में यह नहीं देखा जाता है । आपकी जाति की मर्यादा हमारी जाति में नहीं चलती ।" इस पर श्रीराम ने कहा- "बाली! मैं इस अर्यावर्त में अधर्म का नाश करने आया हूँ । सम्पूर्ण

आर्यावर्त मेरे पूर्वजों की धरोहर है । यहाँ मनमानी करने का तुम्हें अधिकार नहीं है । तुमने कहा कि रावण को तुम घसीटकर ले आते, रावण को सजा देने का अधिकार तुम्हें नहीं है, तुम तो स्वयं अत्याचारी हो । एक अत्याचारी, दूसरे अत्याचारी को कैसे सजा देगा ।" श्रीराम पुनः कहते हैं- "हे बाली! तुम कैसे राजा हो, क्या तुम्हारे गुप्तचरों ने तुम्हें यह नहीं बताया कि तुम्हारे छोटे भाई ने किसी आगन्तुक से मित्रता की है । लेकिन तुम तो विलास में मगन थे, तुम्हें कैसे पता चलेगा कि तुम्हारे राज्य में क्या हो रहा है । राजा प्रजा का सेवक होता है । राज्य प्रजा का होता है, राजा का नहीं ।" इतना सुतने ही बाली की आँखों में आँसू आ गये । बाली ने हाथ जोड़कर राम से प्रार्थना की, "हे रघुनन्दन! आप मेरी भूलों के लिए क्षमा करें । मैं मानता हूँ कि मैंने अपराध किया है । मेरे बाद सुग्रीव राजा बने, लेकिन मेरी पत्नी तारा और पुत्र अंगद को आप अपनी शरण में ले लें । हे प्रभु! अब मुझे पूरा भरोसा हो गया कि आप पूर्ण परमेश्वर हैं, आपने जो भी किया वही धर्म है । मैंने अपने जीवन में कभी कोई धर्म का कार्य नहीं किया और अब अन्तकाल में आपकी शरणागति मिली है, मैं अपने कर्मों पर पश्चाताप कर रहा हूँ ।" बाली की वाणी सुनकर प्रभु श्रीराम द्रवित हो गये। वे बोल पड़े, "हे बाली, तुम्हारी वाणी सुनकर मैं द्रवित हो रहा हूँ । तुम अगर चाहो तो मैं तुम्हें अमर बना देता हूँ?"

चौ०

सुनत राम अति कोमल बानी । बाली सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना । बाली कहा सुनु कृपानिधाना ॥
जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

बाली ने कहा- "जिस परमात्मा को देखने के लिए ऋषि-मुनि जन्म जन्म तपस्या करते हैं, फिर भी उन्हें परमात्मा नहीं मिला । आज भाग्य से प्रभु स्वयं मेरे सामने खड़े हैं, अब अमर बनकर मैं क्या करूँगा? मैंने जीवन भर पाप कर्म किया, आज मेरी मुक्ति का द्वार खुला है, तो मैं मुंह क्यों मोड़ लूँ । प्रभु! आप दयानिधान हैं, आप कृपाकर जन्म-जन्म तक अपने चरणों की सेवा करने का वरदान मुझे दें । आपकी अहैतुकी कृपा मुझे प्राप्त हो, ऐसा वरदान मुझे दें ।" प्रभु ने कहा कि बाली! आज तुम दण्ड पाकर सारे पापों से मुक्त हो गये हो । यह सुनते ही बाली ने बार-बार प्रभु श्रीराम को प्रणाम किया और वह उनसे प्रार्थना करने लगा ।

-: प्रार्थना :-

प्रभु मेरो, मुझको दो वरदान,
ऐसी दृष्टि देना प्रभुजी, देख सकूँ जहान ।
नीर-क्षीर-विवेक से जानूँ, जग की करूँ पहचान ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

शबरी जैसी भक्ति देना, काक भुशुंडि का ज्ञान ।
त्याग-भावना भरत के जैसा, लक्ष्मण जैसा ध्यान ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

सकल कामना हीन बने मन, भोग का हो अवसान ।
चंचल मन पर अंकुश देना, करना मेरा कल्याण ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

रूप-जवानी धन दौलत सब, क्षण के हैं मेहमान ।
जो शाश्वत है भूल चुका मन, कैसे करूँ पहचान ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

भक्त "सुदर्शन" बन अब तक भटका, रहा न कोई ज्ञान ।
अमृत छोड़ विष सेवन करना, यह कैसा अज्ञान ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

दिव्य दृष्टि अर्जुन ने पाया, मीरा बनी महान ।
दे दो वैसी दृष्टि मुझे भी, दिव्य बने ये प्राण ॥
प्रभु मेरो, मुझको... ... .!

बाली की प्रार्थना सुनकर प्रभु श्रीराम द्रवित हो गए । श्रीराम ने कहा- "बाली! अब तुम मन में पश्चाताप मत करो ।" उसी समय बाली की पत्नी तारा बाली के निकट आई और विलाप करने लगी । तारा पश्चाताप कर रही थी और श्रीराम प्रभु तारा के विलाप को सुनते रहे । उस समय हनुमान्‌जी ने तारा को बहुत समझाया, लेकिन तारा यही कहती रही कि मैं अपने पति के साथ भस्म हो जाना चाहती हूँ ।

तारा का विलाप सुनकर बाली ने भाई सुग्रीव और हनुमान् से कहा कि तुम दोनों सुषेन की पुत्री तारा और मेरे पुत्र अंगद की रक्षा करना । उसके बाद बाली ने शरीर त्याग दिया ।

दो०

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बाली कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥

जिस प्रकार हाथी के गले से माला गिर जाती है और हाथी को पता भी नहीं चलता, उसी प्रकार बाली के प्राण निकल गए और उसे कोई कष्ट भी नहीं हुआ । क्योंकि जन्म और मृत्यु के समय जीव को असह्य पीड़ा होती है । बाली को परमात्मा मिल गया, इसलिए उसे कोई पीड़ा नहीं हुई । जिन लोगों को परमात्मा नहीं मिलता, मृत्यु के समय उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, उनकी वाणी बन्द हो जाने से वह छटपटाने लगता है ।

(संत लोग इसी संसृति (जन्म-मरण के बन्धन) से मुक्ति के लिए तप करते हैं । शरीर से प्राण का निकलना असह्य पीड़ा का बोध कराता है । इसीलिए जगद्‌गुरु शंकराचार्य कहते हैं- **"जन्मदुखं मरणदुखं ।"** जन्म के समय जब जीव माँ के गर्भ से बाहर निकलता है तो, उसे असह्य पीड़ा होती है । बार-बार गर्भ में प्रवेश करना, बार-बार जन्म लेना और फिर मरना यही जीव की अधोगति है । इस पीड़ा से मुक्ति के लिए जीव प्रभु की भक्ति करता है । जगद्‌गुरु कहते हैं- **"पुनरपि जननं पुनरपि**

मरणं, पुनरपि जननिजठरे शयनम् ।" इसी संसृति से मुक्ति के प्रयास का नाम मोक्ष है । मृत्युकाल में जीव को असह्य पीड़ा होती है, उसे धन, पुत्र, परिवार को छोड़ते हुए बहुत मोह होता है । लेकिन जब जीव का ध्यान पुत्र और परिवार से हटकर परमात्मा में लग जाता है, तो मृत्युकाल में उसे पीड़ा नहीं होती है । बाली के सामन प्रभु स्वयं खड़े हैं, इसीलिए बाली के प्राण जब निकले तो बाली को पता भी नहीं चला । जिस प्रकार हाथी के गले से माला गिर जाए और हाथी को पता न चले, उसी प्रकार बाली को भी पता नहीं चला । प्रभु ने बाली को निजधाम भेज दिया ।) बाली को निष्प्राण पड़े हुए देख तारा पश्चाताप करती हुई एक भजन गाती है–

- भजन -

सजन रे प्रभु का नेह न पाया,
शैशव बीता भरी जवानी, जग का सुख भरमाया ।
जो जीवन था प्रभु का मंदिर, भोग में उसे गँवाया ॥
सजन रे प्रभु का ... ...!
जगे कुमुदिनी पाई निशा सुख, रवि कर प्रेम न पाया ।
दाख मुनक्का छोड़ मूढ़जन, कीच में मुँह डुबाया ॥
सजन रे प्रभु का ... ...!
शौर्य शक्ति बन पथ पर चलना, धर्म था हमें बताया ।
मृग तृष्णा में भटके हिरणी, वैसे तू भटकाया ।
सजन रे प्रभु का ... ...!
सेमल फल काक जब सेवे, पके तो मन पछताया ।
तुमने बांधा मोह पाश में, राम रहा न माया ।
सजन रे प्रभु का ... ...!

तारा की भक्ति देखकर प्रभु श्रीराम ने उसे भी कल्याण का आशीर्वाद दिया। इसके बाद प्रभु श्रीराम ने लक्ष्मण को बुलाकर आदेश दिया कि शीघ्र ही सुग्रीव का राज्याभिषेक किया जाए और अंगद को युवराज बनाया जाए।

दो०

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥

सब लोगों ने मिलकर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया और अंगद को युवराज पद पर बैठाया गया। प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव से कहा– "मैं तो नगर में नहीं जा सकता। तुम नगर में रहो, अब वर्षाऋतु आने की सम्भावना है। इस समय सीता की खोज करना सम्भव नहीं है। वर्षा के बाद हम सभी लोग सीता की खोज में लगेंगे।" राम की आज्ञा पाकर सुग्रीव अपने महल में चला गया और श्रीराम पर्वत शिखर पर विश्राम करने लगे। प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण ने वर्षाऋतु में प्रस्रवण गिरि पर विश्राम करने का निश्चय किया। यह पर्वत बड़ा ही मनोरम और प्रकृति की गोद में बसा हुआ है। सभी दृष्टियों से यह पर्वत निवास के योग्य है। उपयुक्त स्थान का चुनाव कर दोनों भाई वहाँ निवास करने लगे।

श्रीराम का लक्ष्मण को उपदेश

एक दिन श्रीराम और लक्ष्मण शिलाखण्ड पर बैठे थे, उसी समय लक्ष्मण ने प्रभु श्रीराम से पूछा– "भैया! बाली महाबलशाली था और उसका छोटा भाई सुग्रीव भी कम बलशाली नहीं है। इन दोनों के बीच में जो मतभेद हुआ, उसका भी कोई प्रबल कारण नहीं दिखता, लेकिन इसी मतभेद के कारण बाली मारा गया। आखिर बाली की मृत्यु के लिए कौन दोषी है?" लक्ष्मण की बात सुनकर प्रभु श्रीराम ने कहा– "भैया लक्ष्मण! बाली की मृत्यु के लिए न सुग्रीव दोषी है और न ही मैं दोषी हूँ। यहाँ तक कि स्वयं बाली भी दोषी नहीं है। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा जब मनुष्य को पैदा करता है, तो उसे वह पूरा संसार दे देता है, लेकिन छह चीजें अपने हाथ में ही रख लेता है। इन छह चीजों पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है। हानि, लाभ,जीवन, मरण, यश और अपयश।

हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ।

इसलिए किसी को दोषी बनाना उचित नहीं है । कोई किसी को न तो मार सकता है और न ही जीवन दे सकता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन और मृत्यु के लिए स्वयं जवाबदेह नहीं होता । लेकिन परमात्मा भी अपने हाथ से किसी को सजा नहीं देता । पहले उसके लिए वैसी परिस्थिति पैदा होती है, पहले उस मनुष्य को चेतावनी दी जाती है । पर जब उसका आचरण नहीं सुधरता, तो उसके आचरण को सुधारने के लिए ही परमात्मा को सजा देनी पड़ती है । बाली एक राजा था, उसे नीतिपूर्वक राज्य चलाना चाहिए था । उसने अपने भाई सुग्रीव को सताना शुरू किया। उसकी पत्नी का हरण कर लिया । दूसरा उसने आर्यावर्त की मर्यादा के प्रतिकूल रावण से सन्धि कर ली । इससे इस देश को खतरा उत्पन्न हो गया । इन्हीं कारणों से बाली को मारना पड़ा ।"

श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने पूछा– "भैया! मनुष्य का जन्म सत्कर्म करने लिए होता है । फिर वह दुष्कर्म कैसे करने लग जाता है?" लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा– "कोई भी व्यक्ति दुष्कर्म तभी करता है, जब वह अहंकारी हो जाता है । मनुष्य दुष्कर्म से काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और ईर्ष्या से ग्रसित होकर गलत मार्ग पकड़ लेता है । और वही उसके नाश का कारण होता है ।"

काहु न काउ सुख दुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब त्राता ॥

मनुष्य जब विकृति का दास हो जाता है, तो उसका विवेक नष्ट हो जाता है । वह अच्छे बुरे कर्म की पहचान नहीं कर पाता –

जिमि कुपथ पग धरेऊ खगेसा । रहे न तेजि बल बुद्धि बिसेषा ॥

विवेक के नष्ट होते ही मनुष्य अंधा हो जाता है और वह एक के बाद दूसरी गलती करने लगता है, तभी उसका नाश होता है । श्रीराम ने कहा कि मनुष्य अथवा कोई भी जीव बहुत ही सरल प्राणी होता है । लेकिन वह अपने बुरे कार्यों और विचारों से अपनी सरलता नष्ट कर लेता है और बुरा आदमी बन जाता है । अच्छा और बुरा बनने के लिए वह स्वयं जिम्मेवार बन जाता है । श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने पूछा– "भैया! परमात्मा और जीव में क्या अन्तर है?" श्रीराम ने समझाते हुए कहा–

"परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्राण तत्त्व है । इस पूरे संसार में प्राण-रूप में परमात्मा ही संचरण कर रहा है । वह कण-कण में व्याप्त है । प्रत्येक परमाणु में जो ऊर्जा है, वह परमात्मतत्त्व है । परमात्मतत्त्व के बिना कोई भी कण प्रगतिशील नहीं होता । अनन्त अंतरिक्ष से दिव्य प्राण का संचरण होता रहता है । जो समस्त लोकों के स्थावर, जंगम, चर-अचर एवं विभिन्न जीव कोटियों के जीव कोष में प्राणरूप में विद्यमान रहता है । जब तक इन जीवकोषों में प्राणतत्त्व रहता है और जब इन जीव कोषों से प्राणतत्त्व का सम्बन्ध टूट जाता है तो जीव मर जाता है । उस दिव्य प्राण ऊर्जा से जीव का सम्बन्ध साँस के माध्यम से बना रहता है । इन साँसों से ही जीव ब्रह्म तत्त्व से जुड़ा रहता है ।"

श्रीराम का उत्तर सुनकर लक्ष्मण ने पुनः पूछा- "भैया! प्राण तत्त्व स्थूल कैसे बन जाता है?" श्रीराम ने कहा- "प्राणतत्त्व स्थूल नहीं बनता, सिर्फ हमारा शरीर ही स्थूल बनता है । शरीर पंचमहाभूतों से बना है । ये पाँच तत्त्व- क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और वायु जब समान मात्रा में मिल जाते हैं तो, शरीर बन जाता है । जिस प्रकार पूरे वातावरण में पानी है, लेकिन हमेशा पानी नहीं बनता है । समान अनुपात में गैसों के मिश्रण से ही पानी बनता है । जल तो पूरे वातावरण में है, लेकिन दिखता नहीं । प्राणतत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में है, लेकिन जब शरीर बनता है, तभी प्राणतत्त्व दिखता है । शरीर बिना प्राणतत्त्व के नहीं चल सकता और प्राणतत्त्व को संचरण करने के लिए शरीर चाहिए । जब तक हमारा प्राणतत्त्व अनन्त ब्रह्माण्ड से जुड़ा रहता है, तभी तक हम जीवित रहते हैं । प्राणतत्त्व ही तो हमारे शरीर का तेज है, वही शक्ति है । इसीलिए मनुष्य जब तक जीवित रहता है, उसके शरीर में तेज और शक्ति रहती है । अनन्त अंतरिक्ष से हमारे शरीर के प्राणतत्त्व का सम्बन्ध विच्छेद होते ही हमारा शरीर मृत हो जाता है ।"

इसके बाद लक्ष्मण ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए पुनः पूछा- "भैया! क्या मनुष्य अपने प्राणतत्त्व को बढ़ा या घटा सकता है? श्रीराम ने कहा- हाँ मेरे भाई! मनुष्य जब तक चाहे प्राणवान् और स्वस्थ रह सकता है । उसके लिए आवश्यक है कि शरीर में जहाँ प्राणतत्त्व आत्मा रूप में रहता है, वहाँ किसी प्रकार का कोई विकार न हो, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ प्राण रह सकता है । हमारे संत महात्मा स्वस्थ वातावरण में रहकर अपने स्वस्थ विचारों से ही प्रकृति से प्राणतत्त्व ग्रहण करते हैं ।

और उसका अभिवर्द्धन करते हैं । इससे प्राणशक्ति बढ़ती है । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ प्राण निवास करता है ।"

श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने पूछा– "भैया! परमात्मा और जीव में मूल अन्तर क्या है?" यह सुन श्रीराम ने कहा– "लक्ष्मण! परमात्मा सम्पूर्ण प्रकृति का मूल तत्त्व है । यह सम्पूर्ण जीव-जगत् परमात्म तत्त्व का विकास है । इस ब्रह्माण्ड में केवल ब्रह्मतत्त्व ही है, जो प्राण बनकर संचरण कर रहा है । परमात्मा दिव्य प्रकाश है–

ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अनघ अनादि अनंता ॥

परमात्मा दिव्य स्वरुप हैं और यह सम्पूर्ण संसार उस दिव्य स्वरुप का स्थूल रूप है । इसी स्थूल रूप में दिव्य प्राण आत्मा बनकर निवास करता है और स्थूल रूप के नष्ट होते ही पुनः आत्मा परमात्मतत्त्व में लीन हो जाता है । इस संसार में जो कुछ भी दिखता है, वह वस्तु नहीं है, ऊर्जा है । और वही प्राणतत्त्व है ।" इस प्रकार से श्रीराम और भैया लक्ष्मण की बातचीत चल रही होती है कि सूरज शाम का संकेत देने लगता है । अतः श्रीराम कहते हैं– "भैया लक्ष्मण, अब रात्रि हो रही है, चलो संध्यावन्दन कर लें, फिर तुम प्रश्न पूछना । यह कहकर श्रीराम शिला पर से उठ गए ।"

संध्यावंदन के पश्चात् दोनों भाइयों ने फलाहार किया, फिर जंगल के पत्तों को बिछाकर श्रीराम विश्राम करने लगे और लक्ष्मणजी गुफा के बाहर टहलने लगे ।

प्रातःकाल श्रीराम और लक्ष्मण वृक्ष के नीचे शिलाखण्ड पर बैठे थे । उसी समय लक्ष्मण ने श्रीराम से पूछा– "भैया! अयोध्या में भरत भैया कैसे होंगे? पिताजी तो अब रहे नहीं, वे अकेले राज काज कैसे करते होंगे? और भैया मेरे मन में जिज्ञासा है कि मृत्यु के पश्चात् पिताजी कहाँ चले गये?"

लक्ष्मण के इस प्रश्न को सुनकर श्रीराम ने कहा– "लक्ष्मण! अयोध्या में भरत संन्यास का जीवन व्यतीत कर रहा होगा । उसे राज काज का कोई मोह नहीं है । राजा को चाहिए कि वह बिना मोह के ऐसे राज्य करे जैसे वह इस राज्य का व्यवस्थापक है, मालिक नहीं । मालिक होने का भाव ही दुःख का कारण है । यह सभी जानते हैं कि आज तक अयोध्या पर अनेक लोगों ने राज्य किया, और वे सब चले गये । फिर उस राज्य से मोह कैसा । भरत के जीवन में कोई मोह नहीं है ।

इसलिए उसे दुःख नहीं होगा। क्योंकि दुःख तो आशा और मोह-बन्धन के कारण होता है। इसलिए तुम भरत की चिन्ता मत करो। वह स्वस्थ है और पूरे बारह वर्षों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। लक्ष्मण! तुमने पूछा है कि पिताजी कहाँ चले गये होंगे? हमारे पिताजी दिव्यलोक से आए थे और मृत्यु के बाद पुनः दिव्यलोक ही चले गये। जिस प्रकार दीपक जलता है तो, प्रकाश हो जाता है और दीपक के बुझते ही प्रकाश भी अन्धकार में विलीन हो जाता है। सच पूछो तो प्रकाश दिव्यलोक की आभा है। जहाँ से प्रकाश आता है, वह वहीं वापस चला जाता है। उसी प्रकार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, ब्रह्म से आता है और ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। लेकिन अपने कर्मों के अनुसार उसे फल भोगना ही पड़ता है। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे कर्मानुसार पृथ्वीलोक से अन्य लोकों में जाना पड़ता है। इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी की तरह अनेक लोक हैं। जहाँ मनुष्य से उन्नत और निम्न योनि के जीव रहते हैं। इन लोकों में जीव का आना-जाना लगा रहता है। यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है। अपने कर्मों का फल भोगने के पश्चात् जीव पुनः ब्रह्म में विलीन हो जाता है। यह संसार कर्म भोग के लिए ही बना है।"

श्रीराम का उत्तर सुनकर लक्ष्मण ने कहा- "जीव के कर्मों का निर्णय कौन करता है?" श्रीराम ने उत्तर दिया- "लक्ष्मण! यहाँ कोई कुछ नहीं करता, सब कुछ प्रकृति ही करती है। हम सब भी प्रकृति के नियमों से बंधे हैं। प्रकृति में ऐसी व्यवस्था है कि वह जीव के कर्मों के अनुसार निर्णय करती रहती है। प्रकृति के नियम में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। प्रकृति चाहती है कि प्रत्येक जीव नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करें। देवता, गंधर्व, यक्ष, राक्षस सभी को प्रकृति एक ही तरह फल देती है। क्योंकि प्रकृति ब्रह्म का प्रकाश है। यहाँ प्रकृति कभी कोई अन्याय नहीं करती। यहाँ तक कि देवताओं को भी उनके कर्मों के अनुसार ही वरदान अथवा अभिशाप मिलता है। जैसे रावण ने तप किया तो उसे भी वरदान मिला। प्रकृति यह नहीं सोचती कि यह देवता है या राक्षस। लेकिन जब कोई जीव अत्याचार और अनाचार करने लगता है तो उसके नाश के लिए दिव्यलोक से किसी अवतार को अवतरित होकर आना पड़ता है। पहले भी अत्याचार के नाश के लिए परमात्मा को स्वरुप ग्रहण करना पड़ा था। परमात्मा का अपना कोई स्थायी रूप नहीं होता। वह समय-समय पर अपनी इच्छानुसार स्वरुप ग्रहण करता है और यह स्वरुप पंचभूतों का घनीभूत रूप होता है। दिव्य शक्तियाँ जब चाहे, घनीभूत होकर कोई भी स्वरुप धारण कर लेती हैं। इसलिए

हे लक्ष्मण! हमारे पिताजी दिव्यलोक में विलीन हो गये हैं। उन्होंने पंचभूतों का आवरण त्याग दिया है। अब वे केवल दिव्य आत्मा हैं। जब तक शरीर था, वे हमारे पिता थे। शरीर के नष्ट होते ही उनका सब कुछ विस्मृत हो गया होगा। उनके सूक्ष्म शरीर में अब केवल उनके कर्मों का संक्षिप्त संग्रह होगा।

अब मैं तुम्हें कारण शरीर के सम्बन्ध में बताता हूँ। प्रत्येक जीव के पास स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर होता है। स्थूल शरीर के नष्ट होते ही कुछ वर्तमान स्मृतियाँ सूक्ष्म शरीर में रह जाती हैं और अतीत की समस्त स्मृतियाँ कारण शरीर में संग्रहित हो जाती है। इसी से जीव को अगले जन्म की प्रेरणा मिलती है। अगले जन्म में इन्हीं स्मृतियों से प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण कर्मों की प्रेरणा मिलती है। संचित में पूर्व जन्म की घटनाओं का विवरण रहता है और प्रारब्ध में पूर्व की घटनाओं के अनुसार जो कर्म करना है और क्रियमाण में वर्तमान समय के कर्मों का विवरण रहता है। उसी के अनुसार जीव के अगले-पिछले जन्मों का हिसाब स्वतः होता रहता है। जिस प्रकार अनादिकाल से सूर्यमण्डल काम कर रहा है। इसे कोई चलाता नहीं, सभी ग्रह-नक्षत्र प्रकृति के नियमों में बंधे हुए हैं। इसलिए इन ग्रहों की गति में कोई भूल नहीं होती। उसी प्रकार जीव ब्रह्म का अंश है, वह संसार में कर्म करने के लिए आता है। जब तक वह अपने कर्मों से पुनः दिव्यता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह विभिन्न योनियों में भटकता रहता है। जब वह पुनः दिव्यता प्राप्त कर लेता है, तो वह पुनः ब्रह्म में मिल जाता है। यही प्रकृति का नियम है और इसी प्रकार प्रकृति अनादिकाल से चल रही है।"

विशेष प्रसंग

(हमारा सूर्यमंडल नौ ग्रहों के मेल से बना है। इसमें सैकड़ों उपग्रह भी हैं। एक ग्रह से दूसरे ग्रह की दूरी करोड़ों मील है। जिस प्रकार सूर्य से पृथ्वी की दूरी आठ करोड़ पचास लाख मील है, उसी तरह सूर्य से अन्य ग्रहों की दूरी भी है। इस दूरी का कारण है कि एक ग्रह दूसरे ग्रह को आकर्षित करता है। यह विज्ञान का नियम है कि दो चुम्बकीय शक्ति एक दूसरे को आकर्षित करती है। इन ग्रहों में भी चुम्बकीय शक्ति है, जिस शक्ति के कारण बिना किसी आधार के ग्रह आकाश में घूमता रहता है। अगर इनमें चुम्बकीय शक्ति नहीं होती तो समान दूरी पर चलने वाला ग्रह अनादिकाल से एक ही गति से एक

ही मार्ग पर नहीं चलता होता । हमारे सूर्यमण्डल का ग्रह एक-दूसरे को खींचे हुए है । जिस कारण बिना किसी सहारे के ये ग्रह भ्रमण कर रहे हैं, जिसका केन्द्र हमारा सूर्य है।

वैज्ञानिक मानते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी से तीन लाख अस्सी हजार किलोमीटर पर है और यह उतनी ही दूरी बनाए हुए चक्कर काट रहा है । चन्द्रमा एक दिन में जो दूरी तय करता है, उसे नक्षत्र कहते हैं । नक्षत्रों की संख्या सताइस है और पृथ्वी एक मास में जो दूरी तय करती है, उसे राशी कहते हैं । राशियाँ बारह होती हैं । उसी प्रकार एक सेकेण्ड में प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील की दूरी तय करता है और इसी गति से एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तय करता है, उस दूरी को प्रकाश वर्ष कहते हैं ।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जहाँ तक सैकड़ों सूर्यमण्डल, निहारिकायें और आकाशगंगाओं का विस्तार है, वह विस्तार लगभग पचास करोड़ प्रकाश वर्ष का है। यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि हमारे सूर्यमण्डल से आकाशगंगा की दूरी तीस हजार प्रकाश वर्ष की है । इसी रहस्यमय विज्ञान के आधार पर इतनी विशाल पृथ्वी हवा में तैर रही है । कुछ लोगों ने तो अनुमान लगाया है कि हमारी पृथ्वी का वजन 6600000000000 खरब टन है, जो 66.600 मील प्रति घंटा की गति से सूर्य की परिक्रमा कर रही है । केवल यह पृथ्वी ही हमारी कल्पना से बाहर लगती है तो नवग्रहों के संबंध में अनुमान लगाना कितना कठिन है और यह भी कहा जाता है कि हमारे सूर्यमण्डल के समान सैकड़ों सूर्यमण्डल अंतरिक्ष में हैं ।)

"मेरे भाई! इस प्रकृति में किसी के करने से कुछ नहीं होता । सब कुछ पूर्व निर्धारित क्रम में ही चल रहा है । इसलिए वही व्यक्ति सुखी रहता है जो यह माने कि जो हो रहा है, वह ठीक हो रहा है । जब इस संसार में सभी जगह सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है, तो प्रकृति किसी एक व्यक्ति के लिए गलत कैसे हो सकती है । पिताजी का जाना हमारे लिए दुःख का कारण हो सकता है, लेकिन प्रकृति के लिए यह कोई विशेष घटना नहीं है । इसलिए जो संतोष करना जानता है, प्रकृति से सहमत होना जानता है, उसे कभी दुःख नहीं हो सकता । जीव जब तक ब्रह्म से अलग रहता है, तभी तक स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तथा संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों की कहानी चलती रहती है । ज्योंही जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है, ये सारी

क्रियाएँ स्वतः नष्ट हो जाती है । जब तक जीव ब्रह्म से अलग रहता है, तभी तक कर्म क्रिया चलती है ।" श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने उन्हें पुनः प्रणाम किया और कहा– "भैया! इस वर्षाऋतु में जब तक हमलोग भाभी माँ का पता लगाने नहीं चलते, तब तक इसी तरह आप हमारे मन के अन्धकार को दूर करते रहें ।"

तत्पश्चात् प्रस्रवण पर्वत पर श्रीराम और लक्ष्मण वर्षाऋतु के आगमन पर गिरि कंदरा में बैठे हैं, घोर रात्रि में विद्युत् की चमक और जंगल में नाचते मोर, पपिहरा एवं अन्य पक्षी आपस में युग्म प्रेमालाप कर रहे हैं। श्रीराम लक्ष्मण को कहते हैं, भाई! देखो ये पक्षिगण मुझे अकेले देख मेरा परिहास कर रहे हैं। मैं पत्नी वियोग से व्यथित हूँ और यह मेरा परिहास कर रहे हैं। भइया लक्ष्मण प्रभु को ढ़ाढ़स देते है। परन्तु प्रभु वियोगभाव से आतुर होकर अपने मनोभाव को इस रूप में प्रकट करते है–

हे प्राणप्रिये वर्षा ऋतु में, घनघोर मेघ का गर्जन है ।
तेरे वियोग में प्राणप्रिया, यह काल रात्रि का नर्तन है ॥
पर्वत के वृक्ष पे मेघों का, आलिंगन चुंबक नर जैसा ।
सब प्रेम मिलन में विस्मृत हो, मदमस्त बने चातक जैसा ॥
गजेन्द्र कुलों का मर्दन कर, आपस में प्रणय विलीन हुए ॥
ये तरु पल्लव व लता-विटप, लिपटे हैं बाहों में कैसे ।
सब युग्म विहंगम, पुलक गात, आनंदित होते हैं जैसे ॥
वर्षा ऋतु में चंचल हिरणी, निज प्रीतम आश में भाग रही ।
जैसे चकवा चकवी खोजे, दिन रात निरन्तर जाग रही ॥
पत्नी वियोग में हे भ्राता, मैं शील शक्ति से क्षीण हुआ ।
शत्रु का मर्दन कैसे हो, जब विरह अग्नि में लीन हुआ ॥
परिहास कर रहे सब कैसे, मैं दीन हीन बन बैठा हूँ ।
धिक्कार हमारे पौरुष पर, संकट में नीर बहाता हूँ ॥

तन का वियोग, मन का वियोग, प्रतिक्षण जीवन खाता है ।
सब कर्म भस्म हो जाते हैं, जो रोग शोक में जीता है ॥
यह कर्मशील धरती माता, वीरों को आशीष देती है ।
जो कर्म त्याग निष्कर्मी हो, उसको कुपित कर देती है ॥
हे तात प्रिय लक्ष्मण सुन लो, संकल्प तुम्हें दुहराता हूँ ।
अरि मर्दन करूँ इस जगती में, दशरथ की शपथ मैं खाता हूँ ॥

इस तरह से अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए प्रभु दुःख से भर जाते हैं। भइया लक्ष्मण उन्हें धैर्य बँधाते हैं। वे प्रभु के मन को दूसरी ओर खींचने के लिए बर्षा ऋतु के सम्बंध में कुछ और प्रश्न करते हैं और प्रभु इस रूप में लक्ष्मणजी को समझाते हैं–

वर्षाऋतु का वर्णन

चौ०

कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ॥

प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण शिला पर बैठे हैं, आकाश के चारों ओर मेघों का गुच्छा तैर रहा है, काले-काले बादल जल से बोझिल होकर बरसने को आतुर हो रहे हैं, मेघों के टकराने से भयंकर गर्जना हो रही है । लगता है मेघ आपस में गलबांही कर रहे हों । मेघों के नर्तन को देखकर पृथ्वी पर नदियाँ मचल रही हैं, वनों में मोर, पपीहरा का नर्तन हो रहा है, यह देख प्रभु श्रीराम पत्नी वियोग में तड़प रहे हैं ।

चौ०

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥

"हे भाई! बादलों का नर्तन देखकर मेरा मन विह्वल हो रहा है । लगता है आपस में मिलते हुए मेघ और वनों में अपनी प्रियतमा के साथ नाचते हुए मोर मुझे

प्रियाहीन समझकर चिढ़ा रहे हैं । मेघों को देखकर लगता है कि वह पर्वतों से एकाकार हो रहा है ।"

चौ०

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥

"हे भाई! वर्षा की बूंदे पर्वतों के सीने पर चोट कर रहे हैं लेकिन पर्वत निरपेक्ष भाव से खड़ा है, उसी प्रकार इस मोहक वातावरण में मैं प्रियाहीन होकर असहाय खड़ा हूँ । वर्षा की बूंदों से वृक्षों की पत्तियाँ हरी-भरी हो गई हैं ।"

मुक्तासमाभं सलिलं पतद् वै
सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।

"हे भाई! वर्षा की बूंदों से आह्लादित होकर मेढक, झिंगुर ऐसे बोल रहे हैं कि लगता है पूरे वन में संगीतोत्सव मनाया जा रहा है । ऊपर मेघों की गर्जना और नीचे मेढकों की आवाज मन को गुदगुदा रही हैं । मेरा मन इस दृश्य को देखकर विह्वल हो रहा है ।"

आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादै -
र्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥

"वर्षा का पानी जब पर्वत शिखर से नीचे गिरता है, तो झरनों की मधुर तान से मन अत्यन्त व्यग्र हो उठता है । झरनों का पानी अपने प्रियतम समुद्र से मिलने बड़े वेग से जा रहा है । शीतल मंद समीर से मिश्रित हवा के झोंके, मुझे बार-बार स्पर्श कर मेरे मन को व्यथित कर रहे हैं ।"

नद्यः समुद्वाहितचक्रवाका-
स्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगा-
द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति ॥

"वेगवती नदियाँ कूल कगारों की मर्यादा को तोड़ती हुई समुद्र की ओर भागी जा रही है । वर्षा के कारण वृक्षों के घोसलों में पक्षिगण अपनी प्रेमिका के साथ एक-दूसरे के पंखों में लपेटे सिकुड़े पड़े हैं और उधर लगातार जल की बूंदें पर्वतों और वृक्षों पर बिखर रही हैं । जैसे- विहार के पश्चात् देवांगनाओं के मौक्तिकहार टूटकर बिखर रहे हैं ।"

सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥

"हे भाई! इसलिए वर्षाकाल में संतजन अपने आश्रमों में रहते हैं और गृहस्थ अपने परिवारों के साथ रहते हैं । लेकिन मैं गृहस्थ होते हुए भी वन में अकेला हूँ ।"

दो०

बिरह बिकल बलहिन मोहि जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह पगमेल ॥

"मुझे अकेला जानकर कामदेव मुझ पर बार-बार आक्रमण कर रहा है । हे भाई लक्ष्मण! प्रकृति का यह दृश्य मुझे बार-बार प्रिया वियोग का स्मरण करा रहा है ।"

चौ०

बिटप बिसाल लता अरूझानि । बिबिध बिटान दिये जनु जानि।
कदलिताल वर धुजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥
कुजत पिकमानहुँ गज माते । धेक महोख उट बिसराते ॥

"हे भाई लक्ष्मण! धीर पुरुष काम के वेग को विवेकपूर्ण ढंग से मोड़ लेते हैं । क्योंकि मन में जब विकार उठता है, तो मूढ़ लोग स्त्री में वशीभूत होकर नीच गिर जाते हैं और विवेकशील लोग उसी वेग को उर्ध्वगामी बनाकर परमपद प्राप्त करते हैं ।"

चौ०

लछिमन देखत काम अनेका । रहहिं धिर तिन्ह कै जगलिका ॥
यहि के एक परम बल नारि । देहिते उबर सुभट सोई हारि ॥

"जो व्यक्ति स्त्री के मोह पाश में बंधकर हमेशा काम के वशीभूत रहता है, वह श्रेष्ठ पुरुष नहीं होता, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष काम, क्रोध और लोभ से हमेशा दूर रहते हैं ।

हे लक्ष्मण! आज मैं पूरी तरह असहाय बन गया हूँ । अब तो वर्षा ऋतु के बीतने तक प्रतीक्षा करनी होगी ।" यही विचार करते हुए श्रीराम और लक्ष्मण पम्पा नदी के किनारे पहुँचे । नदी की सुन्दरता देखकर श्रीराम मोहित हो गये ।

चौ०

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर काना ॥
सीतल मन्द सुगंध सुभाउँ । संतत पहई मनोहर वाउँ ॥

इस तरह प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण देर तक पम्पा नदी के किनारे टहलते हुए समय बीताने लगे ।

श्रीराम का वनवासियों को उपदेश

एक दिन प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण शिला पर बैठे थे । तभी श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! चलो आज इस पर्वत के चारों ओर जो हमारे वनवासी लोग कबीलों में रह रहे हैं, साथ ही सुना है कि किष्किन्धा के निकट भी अनेक संत-महात्मा रह रहे हैं, उनसे मिला जाए । क्योंकि वे भी हमारे समाज के ही अंग हैं । हमें उनके दु:ख-सुख का भी ज्ञान होना चाहिए । हे लक्ष्मण! समाज में सभी तरह के लोग रहते हैं, सबों के मेल से ही देश बना है । सुतीक्ष्ण और भारद्वाज ने मुझे बताया था कि इस वन प्रदेश में जितनी भी जातियों के लोग यथा वानर, रीछ, भील, संत-महात्मा आदि रहते हैं, वे सब टुकड़ों में बंटे हुए हैं । एक दूसरे से अथवा देश की समस्याओं से इस वन प्रान्त के लोगों को कोई मतलब नहीं है । इनकी एकता के अभाव में राक्षस इस क्षेत्र में प्रवेश कर अत्याचार कर रहे हैं । इसलिए सबसे पहले इन्हें एक सूत्र में बांधने की आवश्यकता है । क्योंकि ये वनवासी हमारी मातृभूमि आर्यावर्त की ही सन्तान हैं । देश की एकता और अखण्डता के लिए देशवासियों की एकता आवश्यक है ।"

यह कहकर राम और लक्ष्मण निकटवर्ती क्षेत्रों का दौरा करने निकले । दिन भर दोनों भाई वनवासी क्षेत्रों का दौरा करते रहे, लोगों से मिलकर उनकी समस्या सुनते

रहे । इस क्रम में उस क्षेत्र के वनवासियों में से कुछ लोगों ने श्रीराम को बताया- "हमलोग नीच जाति के गरीब लोग हैं, मैंने सुना है कि आप अयोध्या के राजकुमार हैं, फिर भी आप स्वयं चलकर हमारी कुटिया तक आए हैं । हम आज अपने को बड़भागी समझ रहे हैं । हे राजकुमार! हम सभी वनवासी चाहते हैं कि आप हमें मार्ग दिखाएं, हम सभी लोग आपके साथ हैं ।" वनवासियों की बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण एक वृक्ष के नीचे बैठ गए और सबों को बगल में बैठने को कहा । मुखिया का आदेश पाकर पूरे क्षेत्र में डुग्गी बजाई गई, डुग्गी सुनते ही हजारों नर-नारी वृक्ष के चारों ओर श्रीराम और लक्ष्मण को देखने एकत्र हो गए ।

श्रीराम ने इन वनवासियों को कहा- "आपलोग नीच जाति के नहीं है । आप सभी इस आर्यावर्त की ही सन्तान हैं । आज से हम सभी भाई हैं और भाई ऊँच-नीच नहीं होता । आपके मन में जो हीन भावना है, उसे छोड़ें और इस आर्यावर्त की सुरक्षा करें । देश रहेगा तभी आपकी संस्कृति और संस्कार बच सकेंगे । आज आपके देश पर राक्षसों की नजर लगी हुई है । वे लोग अकारण यहाँ लोगों की हत्या कर रहे हैं । जब तक आपलोग एक बनकर इन राक्षसों का मुकाबला नहीं करेंगे, तब तक आपके भाइयों की सुरक्षा नहीं हो सकेगी ।"

श्रीराम की बात सुनकर एक वनवासी ने खड़े होकर कहा- "हमलोग अनपढ़ और अज्ञानी हैं, हमलोगों को धर्म-कर्म का तनिक भी ज्ञान नहीं है । सबसे पहले हमलोग यह जानना चाहते हैं कि आप दोनों राजकुमार कौन हैं?" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "हम दोनों भाई अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं । मेरा नाम राम है और यह मेरा अनुज लक्ष्मण है । हमलोग पिता की आज्ञा मानकर वन में आये हैं । यहाँ राक्षसों ने मेरी पत्नी का अपहरण कर लिया है । इन दिनों हम बगल के पर्वत शिखर पर निवास कर रहे हैं ।"

यह सुनकर उस वनवासी ने कहा- "हमलोगों ने सुना है कि किन्हीं दो राजकुमारों ने मिलकर बाली को मारा है । लेकिन इस वन-प्रदेश के लोग अभी तक अनजान हैं कि आखिर वे दोनों राजकुमार कौन हैं? परन्तु आपके सामने आकर अब हम समझ चुके हैं आप दोनों ही वे पराक्रमी वीर हैं, जिन्होंने बाली को मारा है । क्योंकि बाली को मारने वाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता । अब हम लोगों को लगता है कि राक्षसों के अत्याचार से आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं ।" बहुत देर तक इनलोगों की बातचीत होती रही, प्रत्युत्तर में प्रभु श्रीराम सबों के आत्मबल को जगाते

रहे और फिर शाम होते ही अपनी गुफा में लौट आये। प्रभु राम के सम्बोधन से पूरे क्षेत्र के लोगों में नया उत्साह भर गया। पूरे वन-प्रदेश के लोग श्रीराम की जयकार बोलने लगे।

दूसरे दिन श्रीराम और लक्ष्मण शिला पर बैठे थे, तभी हजारों नर-नारी तुमुल ध्वनि करते गाजे-बाजे के साथ श्रीराम के दर्शन के लिए शिखर पर पहुँचे। वनवासियों ने श्रीराम को प्रणाम किया और परम्परा के अनुसार वे सब श्रीराम के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे –

– भजन –

तन में पाप भरा हो, कैसे गीत तुम्हारा गाऊँ।
कामी क्रोधी बनकर, कैसे तुझको शीश झुकाऊँ॥

तेरा है संसार तुझी ने, मुझको यहाँ भरमाया।
मेरा है स्वरूप तुम्हारा, तुमने मुझे बनाया॥

अब तो मुझको तारो प्रभुजी, क्षमारूप है तेरा।
कण-कण में है वास तुम्हारा, क्या लागे यहाँ मेरा॥

पाप तुम्हीं हो पुण्य तुम्हीं हो, सुख सम्पत्ति दाता।
कोई नहीं किसी का अपना, एक तुम्हीं से नाता॥

द्वार तुम्हारे खड़ा हूँ कब से, पद सरोज दिखलाओ।
भूल-चूक सब माफी दे दो, अपना मुझे बनाओ॥

भक्त शिरोमणि प्रिय है तुझको, कैसे इसे झुठलाऊँ।
पतित शिरोमणि भक्त "सुदर्शन", तुझ पर बलि बलि जाऊँ॥

वनवासियों के इस भक्ति भरे संगीत सुनकर राम अति आनन्दित हुए । श्रीराम ने वनवासियों के मुखिया को अपने बगल में बैठाया और कहा- "आपलोग, आज जो अलग-अलग गुटों में बंटे हुए हैं, उस कारण आपकी एकता नहीं बन रही है और राक्षस निर्दोष प्राणियों की हत्या कर रहे हैं । आप सभी लोग एकजुट होकर अपनी मातृभूमि आर्यावर्त को राक्षसों से मुक्त करायें, तभी आपका धर्म और देश बचेगा ।"

यह सुनकर मुखिया ने कहा- "हे श्रीराम! हमलोग गरीब हैं, इन राक्षसों का मुकाबला हम कैसे कर सकते हैं? आप अपने राज्य अयोध्या से सेना मंगवायें और इन राक्षसों का नाश करें ।" उनकी बात सुनकर श्रीराम ने कहा- "यह आर्यावर्त आपका देश है । आप सभी परमात्मा की संतान हैं । इस देश का कोई भी व्यक्ति न छोटा है न बड़ा । सभी समान हैं, इस देश को बचाने का काम पहले आपका है । आप अपने मन से गरीब और धनी की बात निकाल दें । गरीब घर में पैदा होने से आप छोटा नहीं हो गये । गरीब और धनी होना तो सिर्फ अपने कर्मों का ही फल है । सच पूछिए तो परमात्मा गरीब को अधिक प्यार करता है, क्योंकि गरीब निर्दोष होते हैं । आपने मुझे अयोध्या से सेना मंगवाने के लिए कहा है, अयोध्या की सेना हमेशा आपकी रक्षा नहीं कर सकती । आपको अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी । हमेशा अपनी शक्ति और सत्य मार्ग पर चलने वाला विजयी होता है । आप अपने घर में बाहर से आए राक्षसों का मुकाबला करेंगे, तो यह सत्य का मार्ग होगा । हमारे देश के लोग किसी का नुकसान नहीं करते । अगर हमारे ऊपर कोई आक्रमण करता है तो हमलोगों को उसका मुकाबला करना है ।"

श्रीराम ने आगे कहा- "मैं आपलोगों की शक्ति को एक बिन्दू पर स्थिर करना चाहता हूँ । आप सभी बहादुर हैं, लेकिन हिम्मत की कमी है । इसलिए अपने मन में हिम्मत पैदा करें । मैंने भी प्रतिज्ञा की है कि इन राक्षसों को नष्ट कर इस देश के निर्दोष लोगों की रक्षा करूँगा । मुझे किसी सेना की आवश्यकता नहीं है, आप सब मिलकर पहले मेरी सीता का पता लगायें और जिस व्यक्ति ने ऐसा दुस्साहस किया है, उसको दण्ड दें । क्योंकि उस दुष्ट व्यक्ति ने भारत की मर्यादा की प्रतीक नारी जाति का अपमान किया है । आर्यावर्त में नारी को पूजा जाता है, उसे अपमानित नहीं किया जाता ।"

श्रीराम की बात सुनकर सारे वनवासी श्रीराम का जयघोष करने लगे । श्रीराम सबों से देर तक मिलते रहें, बातचीत करते रहे । थोड़ी देर में सभी लोग श्रीराम की

जय-जयकार करते हुए अपने-अपने घरों की ओर लौट गये । उनके जाने के बाद थोड़ी देर में हनुमान्‌जी वहाँ पहुँचे । हनुमान्‌जी को देखते ही श्रीराम ने कहा- "हनुमान्, तुम कहाँ चले गए थे?"

यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा- "प्रभु! मैं माता से आज्ञा लेने चला गया था । उस दिन सुग्रीवजी के किष्किन्धा लौटने पर मैं उनसे आज्ञा लेकर अपनी माता अंजनी और पिता केसरीजी से मिलने चला गया । मेरी माँ महर्षि गौतम की पुत्री हैं, उन्होंने अपने तप से दिव्य शक्ति प्राप्त कर ली है । मैंने जब सीता माता के हरण की बात उनसे कही तो, मेरी माता ने कहा- "बेटा, राम परमात्मा हैं, सीता तुम्हारी माता हैं, तुम्हारी माँ पर संकट आया हुआ है, इसलिए मेरी आज्ञा है कि तुम जाकर प्रभु श्रीराम की सहायता करो और जिस दिन के लिए मैंने अपना दूध पिलाकर तुम्हें बड़ा किया है, उस दूध का फर्ज अदा करो । प्रभु! मेरी माँ ने आज प्रतिज्ञा की है कि जिस दिन सीता मैया कुशलपूर्वक लौट आएंगी, उसी दिन वे अपनी आँख पर बंधी पट्टी खोलेंगी। इसके बाद मेरी माँ ध्यान में बैठ गई । मैं अब आपके चरणों में आ गया हूँ, मैं आपका सेवक हूँ । मुझे आप अपना आशीर्वाद दें ।"

यह सुनते ही राम ने हनुमान्‌जी को गले लगा लिया । उसके बाद दोनों बैठकर आपस में बात-चीत करते रहे ।

विशेष प्रसंग-

(कहा जाता है कि सीता के हरण की बात सुनकर माता अंजनी ने प्रतिज्ञा की कि जब हनुमान् सीता की खोज कर श्रीराम को सौंप देंगे, तभी वह अपनी आँख पर बंधी पट्टी खोलेंगी । यह कहते हुए उन्होंने हनुमान्‌जी को श्रीराम की शरण में भेजा । कहा जाता है कि लंका विजय के पश्चात् हनुमान्‌जी ने माता अंजनी का दर्शन किया और बताया कि "माता सीता प्रभु श्रीराम को मिल गई है ।" यह सुन माता अंजनी प्रसन्न हुई फिर उन्होंने पूछा- "तुमने दुष्ट रावण को मार दिया!"

यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा- "माता! रावण को मैंने नहीं, प्रभु श्रीराम ने मारा है ।" यह सुन अंजनी क्रोधित हो गई । अंजनी ने पूछा- "क्या तुमने रावण को मारने के लिए प्रभु श्रीराम को कष्ट दिया? क्या इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें अपना दूध पिलाकर बड़ा किया था? हनुमान् तुमने आज मुझे दुःखी कर दिया ।" कहते हैं, माता अंजनी ने आँख पर से पट्टी खोली, उनकी पहली नजर पड़ते ही सामने खड़ा विशाल

पर्वत चूर-चूर हो गया। और उन्होंने अपना दूध जिस पर्वत पर गिराया, वह पर्वत खण्डहर बन गया। अंजनी ने हनुमान्‌जी को बताया कि मैंने उसी प्रभु की आराधना करके अपनी आँखों में उतनी शक्ति पैदा की है और उसी दूध को पिलाकर तुम्हें बड़ा किया है। हनुमान्‌जी सिर झुकाये खड़े रहे।)

श्रीराम का हनुमान् को उपदेश

श्रीराम और लक्ष्मण को पर्वत शिखर पर रहते हुए लगभग तीन माह बीत गए। हनुमान्‌जी किष्किन्धा से आते-जाते रहे। एक दिन हनुमान्‌जी ने श्रीराम से पूछा- "हे प्रभु! आप तो परमात्मा हैं, मैं वानर जाति का अज्ञानी जीव, मेरे मन में आपके प्रति भक्ति कैसे बनी रहे, इसका मार्ग बताइए।" हनुमान्‌जी की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- "हनुमान्! जाति से कोई भी व्यक्ति ऊँचा-नीचा नहीं होता। जाति तो समाज की व्यवस्था के लिए बनाई गई है। मनुष्य ज्ञान और अज्ञान के कारण ऊँच और नीच बनता है। सत्य को जानने की जिज्ञासा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास होता है। सत्य को अस्वीकार करना ही तो अज्ञान है। जो जीव अच्छे कर्म करता है, सत्य मार्ग का अनुसरण करता है, वही सत्पुरुष है। नैतिक जीवन जीना ही सत्य का अनुसरण करना है। मनुष्य जब विकारों के कारण गलत आचरण करने लग जाता है, तो वही पाप कहलाता है। पाप और पुण्य में यही अन्तर है कि पाप दूसरों से छिपा कर किया जाता है और पुण्य कार्य सबके सामने किया जाता है। जो काम तुम दूसरों से छिप-छिपाकर करते हो वह पाप है। क्योंकि जिस कार्य से लोक मर्यादा का हनन हो, दूसरों का नुकसान हो, वही पाप है। इसलिए जीवन में हमेशा सत्यमार्ग का अनुसरण करो।

हनुमान्! तुम तो अनादिकाल से मेरे हो। मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं रहा, क्योंकि तुम सम्पूर्ण रूप से मुझे स्वीकार कर चुके हो-

सम्पूर्ण नहीं अपूर्ण होता, सूरज न कभी आधा होता।
जो चक्षु दोष से पीड़ित हो, उसे सत्य नहीं दिखाई देता॥

इसलिए सत्य को कभी आधा स्वीकार मत करना। जिस प्रकार आधे मन से किया गया काम कभी पूरा नहीं होता, उसी प्रकार अगर कोई भक्त परमात्मा को आधे मन से स्वीकारता है, तो उसे परमात्मा कभी नहीं मिलते। परमात्मा तो पूर्ण है,

उसे खण्डित रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । अपनी आँखों में सम्पूर्ण ब्रह्म को स्वीकार करने की शक्ति पैदा करो, जिस दिन तुम्हारी दृष्टि सत्य को देखने में समर्थ हो जाएगी, उस दिन तुम्हारी दृष्टि बदल जाएगी ।

हनुमान्! सारा विकार आँख से पैदा होता है । मनुष्य की आधी प्राण ऊर्जा आँखों से ही पैदा होती है और आँखों के माध्यम से ही निकल भी जाती है । आँख अकारण अपनी शक्ति को व्यय करती रहती है । इसलिए संत लोग अपनी आँखें बन्द कर ध्यान करते हैं ।"

श्रीराम की बात सुनकर हनुमान्जी भाव-विभोर हो गये । हनुमान्जी ने फिर पूछा- "हे प्रभु! यह प्राण ऊर्जा क्या है? और जीव तथा ब्रह्म में क्या अन्तर है?" श्रीराम ने कहा- "हनुमान्! जीव ब्रह्म का ही अंश है । इस संसार में माता-पिता के संयोग से जीव उत्पन्न होता है । जीव की उत्पत्ति भी कई प्रकार से होती है । जिनमें प्रमुख है- अण्डज- जो अण्डा से उत्पन्न होता है । जैसे- पक्षी का बच्चा । पिण्डज- जैसे मनुष्य का जन्म । जलज- जो जल से उत्पन्न होता है और उद्भिज- पौधे । ये सभी चौरासी लाख योनियों में बंटे हुए हैं । ये चौरासी लाख योनियाँ ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं और ब्रह्म में ही मिल भी जाती हैं । इन चौरासी लाख योनियों का विवरण कुछ इस प्रकार है- **नौ लाख जलचर, सताइस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कृमि, दस लाख पक्षी, तेईस लाख चौपाया, चार लाख मनुष्य ।**

जीवन और जगत् सब कुछ एक ही परमात्मा का प्रकाश है । तुम जो इतने सारे पेड़-पौधे, पहाड़,जीव-जन्तु आदि देख रहे हो, उसे ही पदार्थ कहा जाता है । लेकिन वह पूर्ण पदार्थ नहीं है, वह तो ऊर्जा है । पदार्थ मूलरूप में ऊर्जा है और ऊर्जा घनीभूत होकर फिर पदार्थ बन जाती है ।

सत्य बात तो यह है कि इस संसार में केवल ऊर्जा है, दिव्य आलोक है, ब्रह्म का दिव्य प्रकाश है, उसके सिवा और कुछ नहीं है । ब्रह्म भी ऊर्जा है, अरूप है, निर्गुण है । हम सभी लोग उसी ऊर्जा के घनीभूत रूप हैं । क्योंकि इस ब्रह्माण्ड में दिव्य आलोक के सिवा और कुछ नहीं है । यह संसार पदार्थ है और पदार्थ की अन्तिम इकाई ऊर्जा है । यह परिवर्तन चक्र चलता रहता है । इसलिए हनुमान्! इस जगत् में केवल ब्रह्म सत्य है, शेष सब मिथ्या है। जीव जन्म-जन्मान्तर तक उसी ब्रह्म को पाने का प्रयास करता रहता है । इसीलिए जीव को ब्रह्म का अंश कहा जाता है । जीव

के ब्रह्म में मिलते ही सभी बंधन टूट जाता है और वह ब्रह्म बन जाता है । इसलिए तुम्हें अनन्य भाव से उस ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिए और मन में हमेशा ब्रह्म को धारण करके संसार के प्रत्येक कार्य करना चाहिए । कभी भी तुम्हारे मन में यह अहंकार पैदा न हो कि ये सारे काम तुम कर रहे हो । नदी कभी नहीं कहती कि मैं बह रही हूँ । हवा कभी नहीं कहती कि मैं बह रही हूँ । सब कुछ प्रकृति के नियमों के अनुसार ही हो रहा है । यहाँ तुम्हारे करने से कुछ नहीं होता । जो होना होता है, वही होता है । मनुष्य तो एक माध्यम मात्र है । जिस प्रकार; माता-पिता मिलकर पुत्र को पैदा करते हैं, तो यहाँ माता-पिता माध्यम मात्र हैं, पुत्र का होना या न होना माता-पिता के हाथ में नहीं है । उसी प्रकार प्रकृति निरन्तर अपना काम करती रहती है । उसमें कोई व्यवधान नहीं दे सकता । जो मनुष्य निमित्त बनकर काम करता है, वही दुःख-सुख से ऊपर उठ पाता है । सुख और दुःख मन का भाव है । जो सुखी रहना चाहता है, वह सुखी रहता है और जो दुःखी रहना चाहता है, वही दुःखी रहता है । क्योंकि इस संसार में केवल परमात्मा की मर्जी चलती है । किसी के चाहने अथवा न चाहने से यहाँ कुछ नहीं होता । इसलिए तुम प्रकृति और परमात्मा से सहमत होना सीखो ।" श्रीराम की बात सुनकर हनुमान् और लक्ष्मण भाव-विभोर हो गये । शाम हो गई थी, सभी लोग संध्यावंदन के लिए चले गये ।

वर्षा ऋतु का समय लगभग तीन माह बीत चुका था । प्रतीक्षा करने के सिवाय श्रीराम के पास और कोई रास्ता भी नहीं था । प्रतिदिन दूर-दूर के जंगलों से वनवासी वहाँ आते, श्रीराम से बात-चीत करते और फिर अपने घरों को चले जाते । पूरा क्षेत्र राममय हो गया था । लगता था जैसे एक महापरिवार का जन्म हो गया हो । प्रभु श्रीराम ने इन सोये हुए वनवासियों के मन में इतना विश्वास भर दिया था कि सबों के जीवन में एक नया प्रकाश फैल गया । प्रभु राम तो यही चाहते थे कि जो वनवासी अज्ञान के अंधकार में भटक रहे हैं, उन्हें जीवन जीना आ जाए । क्योंकि मनुष्य अपने अज्ञान के कारण ही अनाचार और पाप करता है ।

महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति होशपूर्वक जीवन जीये । बेहोशी में किया गया प्रत्येक काम गलत हो जाता है । विवेकशील मनुष्य बेहोशी में कुछ नहीं करता। पशु अज्ञान के पाश में बंधा है, इसलिए पशु बेहोशी में कर्म करता है, क्योंकि वह विवेकी नहीं है । मनुष्य भी जब बेहोशी में बिना सोचे समझे काम करने लगता है, तो वह पशु बन जाता है ।

विशेष प्रसंग-

(प्राय: देखा जाता है कि मनुष्य तभी अनाचार और अत्याचार करता है, जब वह बेहोशी में होता है । होशपूर्वक जो भी किया जाता है, उसमें गलती होने की संभावना नहीं रहती । मनुष्य सारे पापकर्म अपने अज्ञान के कारण ही करता है और फिर जब उसे होश आता है, तो वह पश्चाताप करने लगता है । मूल रूप से मनुष्य हिंसक नहीं है, वह अगर हिंसा करता है तो अज्ञान अथवा अहंकार के कारण ही उससे ऐसे कर्म हो जाते हैं । श्रीराम ने जब महसूस किया कि ये वनवासी उचित वातावरण के अभाव में गलत आचरण कर रहे हैं और इन्हें सही दिशा दिखाकर इनसे क्रियात्मक कार्य कराये जा सकते हैं, तो प्रभु श्रीराम ने इनकी बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करते हुए उन्हें अपना मार्गदर्शन दिया । एक दिन श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान् बैठे थे, तभी हनुमान्जी ने श्रीराम को प्रणाम किया और पूछा- "हे प्रभु! मैं तो अज्ञानी जीव हूँ, आज तक भटक रहा हूँ, मुझे बताइए कि मैं आपकी भक्ति कैसे करूँ?"

श्रीराम ने मुस्कुराते हुए कहा- "हनुमान्! भक्ति श्रद्धा और विश्वास का पूर्ण समर्पण है । भक्ति की नहीं जाती, भक्ति स्वत: घटित हो जाती है । उसके लिए पहले भक्त को निष्काम बनना पड़ता है । आशा या कामना से भक्ति नहीं की जाती । भक्त जब केवल भक्त रह जाता है, भक्ति के बदले में कुछ मांगता नहीं, तो वह पात्र बन जाता है, मांगने वाला तो भिखारी होता है, वह परमात्मा के साथ व्यापार करता है । परमात्मा भी इस बात को समझता है कि कोई भक्त अपनी भक्ति के बदले मुझसे क्या चाहता है? जहाँ भक्त भगवान् से कुछ नहीं चाहता, तभी भगवान् उसे सब कुछ दे देते हैं ।

शास्त्रों में "योग" और "क्षेम" के विषय में कहा गया है कि परमात्मा अपने भक्त को "योग" यानि वर्तमान का सुख और "क्षेम" यानि भविष्य के सुख की सुरक्षा की जिम्मेवारी अपने हाथ में रखते हैं । इसलिए भक्त को वर्तमान और भविष्य की चिन्ता परमात्मा पर छोड़ देनी चाहिए ।)

हमारे शास्त्रों में भक्ति के भी कई भेद बताए गए हैं जिसे नवधा भक्ति कहते हैं । इनमें से किसी एक भक्ति से परमात्मा को पाया जा सकता है । कहते हैं पहली भक्ति तो वह है जो व्यक्ति परमात्मा की कथा का श्रवण करे । दूसरी- कुछ भक्त अनन्य भाव से भाव-विभोर होकर परमात्मा का गुणगान करें । तीसरी भक्ति- कई लोग

परमात्मा को सखा मानकर और कई लोग पति मानकर भी परमात्मा को पाते हैं । कुछ लोग परमात्मा को पूजकर, कुछ लोग उनकी वन्दना कर, कुछ लोग दास बनकर और कुछ लोग परमात्मा के चरणों में बैठकर उन्हें प्राप्त करते हैं । जब भक्त परमात्मा में पूर्णरूप से समर्पित हो जाता है, तो वह मान-अपमान से ऊपर उठ जाता है । जो व्यक्ति मान-अपमान, आशा-निराशा, सुख-दुःख से ऊपर उठ जाता है, वह सीधे परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, क्योंकि अब वह व्यक्ति पूर्ण निष्काम हो चुका है । जब उसे संसार नहीं चाहिए, तो और बचा ही क्या है? अब तो केवल परमात्मा बचा है, और अब उसे वही मिलेगा जो बचा हुआ है । इसलिए जिसे कुछ नहीं चाहिए उसी को परमात्मा मिलता है । जब तक संसार मानते रहोगे, तब तक परमात्मा को छोड़कर तुम्हें सब कुछ मिलता रहेगा । इसलिए याचना छोड़कर परमात्मा के चरणों में मन लगाओ । इसी को "अकाम" भक्ति कहते हैं ।

हनुमान्! जब कभी प्रयास किया जाता है तो, उस प्रयास से संसार की प्राप्ति मनुष्य को हो जाती है । लेकिन जब सारे प्रयास छोड़ दिए जाते हैं तो परम सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है । अपने को शून्य में स्थिर कर लो, शून्य में जाने के लिए कभी प्रयास नहीं किया जाता । मनुष्य स्वयं शून्य बन जाता है । क्योंकि जहाँ महाशून्य है, वहीं परमात्मा है । तुम भी शून्य बनकर महाशून्य में विलीन हो जाओ ।

अ-प्रयास से सिद्धि मिलती है

सद् प्रयास से वैभव मिलता, अ-प्रयास से सिद्धि ।
चेतन मन अचेतन बनता, तब होती श्री-वृद्धि ॥

क्योंकि

करे अगर प्रयास हृदय में, प्रेम नहीं उग पाता है ।
उसी हृदय में पुत्र स्नेह से दूध उतर जाता है ॥
करे अगर प्रयास बीज से, अंकुर नहीं निकलता है ।
अ-प्रयास का सघन मौन, शत-शत अंकुर बन जाता है ॥

जब विचार मन में आता है, कर्म को प्रेम बनाता है ।
निर्विचार, निर्बीज आचरण, जीवन में सिद्धि लाता है ॥
शिथिल विचारों के होते ही, मन का वेग शिथिल बनता है ।
महाशून्य का मौन निमंत्रण, जीवन में तब ही मिलता है ॥
शिथिल करो विचारों को, वेगों के संचित बन्धन तोड़ो ।
शून्य बनो अस्तित्व हीन, अहंकार का नर्तन छोड़ो ॥
ग्रह तारे नक्षत्र को देखो, अ-प्रयास का कैसा नर्तन ।
स्वतः घटित होता है जग में, महामिलन का आत्म समर्पण ॥
अहंकार जब आरोपित होता, तब विरोध का स्वर फूटता है ।
शीतल चाँद के घर्षण से ही, सागर का पौरुष जगता है ॥
गीता का उपदेश वचन पाकर, सुख-दुःख से ऊपर उठना है ।
भूत भविष्य के मध्य बिन्दू पर, स्वयं साक्षी बन टिक रहना है ॥
हानि-लाभ जीवन-मरण, कुछ भी तेरे हाथ नहीं है ।
जो तुम पाते बन्धन है सब, मन तेरा निर्बीज नहीं है ॥
जो करते हों सब प्रयास, संसार उन्हें मिल जाता है ।
अ-प्रयास के शून्य बोध से, स्वयं प्रकाश बन जाता है ॥
स्थितप्रज्ञ के मंत्र भाव से, अपने मन को भरना है ।
नदी-झरनों सा बहकर नित दिन, बोध विसर्जन करना है ॥

श्रीराम बोलते-बोलते चुप हो गये और पूर्ण समाधिस्थ होकर बैठ गये। हनुमान् हाथ जोड़कर सामने बैठे थे, श्रीराम गहरी समाधि में चले गये, थोड़ी देर बाद श्रीराम ने आँखे खोली, हनुमान् को निकट बुलाया और उनके माथे पर हाथ रखा। श्रीराम ने हनुमान् के ललाट पर आज्ञा चक्र के ऊपर अपना अंगूठा रखा, हनुमान् पूर्ण समाधि में चले गये। इसके बाद श्रीराम ने हनुमान् के सिर से हाथ हटाते हुए कहा- "हनुमान्! आज से तुम दिव्य बन गये हो। मैंने तुम्हें पूर्ण दिव्यता प्रदान कर दी है। तुम अब अजर-अमर और महा शक्तिशाली बन गये हो। प्रकृति और परमात्मा के नियमों का पालन करते हुए अपने निर्धारित कर्त्तव्यों को पूरा करो।" यह सुन हनुमान् ने प्रभु श्रीराम को प्रणाम किया और कहा- "प्रभु! आपने मुझे जो दृष्टि प्रदान की है, मैं उसके लिए आपके जीवन भर का दासत्व स्वीकार करता हूँ।" उसके बाद सभी संध्यावंदन करने चले गए।

दूसरे दिन पुनः लक्ष्मण और हनुमान्जी, श्रीराम के पास गए, तब लक्ष्मणजी ने श्रीराम से पूछा- "भैया! जीवन में दिव्यता कैसे आती है? आपने उस दिन अपने उपदेश में कहा था कि दिव्य शक्तियाँ जीवन में उतरती हैं। कृपया हमें इस रहस्य को समझाएं।"

लक्ष्मण के प्रश्न सुनकर श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! तुम और हनुमान् मुझे भरत के समान प्रिय हो। इसलिए मैं तुम्हें बताता हूँ कि "दिव्यता ब्रह्माण्डीय और दैवी आभा है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो जीव एकाग्र होकर संसार को विस्मृत कर उस आभा से अपने को जोड़ लेता है, उसमें आभा उतर जाती है। इसी को शक्तिपात भी कहते हैं। लेकिन यह शक्ति किसी मनुष्य या जीव पर तभी उतरती है, जब उसका सम्पूर्ण ध्यान उस दिव्य आभा में लग जाता है। ब्रह्माण्ड की दिव्य आभा स्वतः नहीं उतरती, उतरने के लिए वह पात्र खोजती है। ज्योंही उसे पात्र मिल जाता है, उसमें वह उतर जाती है। किसी भी जीव में जब यह दिव्यता अथवा ब्रह्म का प्रकाश उतर जाता है, तो वह मनुष्य दिव्य बन जाता है।"

विशेष प्रसंग-

(प्रभु श्रीराम ने सूत्र रूप में लक्ष्मण और हनुमान्जी को समझाया। इस सूत्र की विस्तार से व्याख्या करते हुए मैं अपने अनुभव से भक्तों को बताना चाहता हूँ कि दिव्य शक्तियों का शक्तिपात होता है। इस पूरे ब्रह्माण्ड में अपार प्राण-शक्तियाँ भरी पड़ी है।

मनुष्य अथवा कोई जीव शरीर पाकर उन शक्तियों को शरीर में प्रवेश करने वाले सारे द्वार को बन्द कर देता है। क्योंकि हमारे शरीर की बनावट ही ऐसी है कि बाहर की शक्तियाँ अन्दर शरीर में प्रवेश नहीं कर पाती। केवल साँस का मार्ग खुला रहता है। उन्हीं शक्तियों को बटोरने के लिए मनुष्य **"प्राणायाम"** करता है।

प्राणायाम का अर्थ है, अधिक से अधिक प्राण ऊर्जा का संग्रह। प्राण ऊर्जा से ही शरीर में रौनकता एवं लाली आती है और उसी प्राण ऊर्जा से शरीर में विद्युत् ऊर्जा और चुम्बकत्व पैदा होता है। इसी चुम्बकत्व को जैव चुम्बक (इनिमल मैग्नेट) कहते हैं। यही जैव चुम्बक शरीर में आकर्षण पैदा करता है। जिसके शरीर में जितनी अधिक प्राण-ऊर्जा और जैव चुम्बक रहता है, उसका शरीर उतना ही अधिक आकर्षक और दीप्तिमान् रहता है। ऐसे ही लोग किसी को सुन्दर लगते हैं और ऐसे ही लोग मुस्कुराते हैं एवं हमेशा उत्साह से भरे रहते हैं। यह उत्साह ही प्राण ऊर्जा है। जिस व्यक्ति में इस चुम्बकत्व का अभाव रहता है, वह बुझा-बुझा, कान्तिहीन, उदास और चिड़चिड़ा बना रहता है। इसीलिए प्राणायाम में अधिक से अधिक प्राण ऊर्जा का संग्रह कर मनुष्य अपने शरीर को दिव्य आभा से भर लेता है। शरीर में दिव्यता केवल प्रकृति ऊर्जा के संग्रह से ही भरती है। जंगलों में बैठे हमारे संत बिना संतुलित भोजन के ही केवल प्रकृति ऊर्जा को ग्रहण कर वर्षों जीवित रहते हैं। आहार जीवन के लिए आवश्यक है, लेकिन यह आहार केवल घरों में प्रचलित भोजन ही नहीं है, यह आहार प्रकृति से भी लिया जा सकता है। जैसे- कहा जाता है कि साँप हवा पीकर रहता है। इसलिए पदार्थ ही भोजन नहीं है, प्राण ऊर्जा भी भोजन समान ही है। इधर सुना है, कई लोग फलाहार पर रहकर वर्षों जी लेते हैं और कई लोग तो सूर्य की रोशनी पीकर या सिर्फ पानी पीकर वर्षों जी लेते हैं। सूर्य में प्राण ऊर्जा भरी पड़ी है, वहीं से ऑक्सीजन आता है।

यह भी कहा जाता है कि ऑक्सीजन केवल प्राण का पोषण ही नहीं करता, ऑक्सीजन में जब प्राण तत्त्व मिलता है, तभी वह पोषक बनता है। हमारे शरीर में हिमोग्लोबीन लौह तत्त्व इसलिए रहता है कि हिमोग्लोबीन का लौह तत्त्व सूर्य की ऊर्जा को खींचता है। इसीलिए जब शरीर में हिमोग्लोबीन कम पड़ जाता है, तो शरीर पीला हो जाता है, उसकी लाली कम हो जाती है। हमारे शरीर में विद्युत् ऊर्जा और जैव चुम्बक प्रकृति से ही प्राप्त होता है। शरीर की माँसपेशियाँ इसीलिए शरीर में वर्षों सुरक्षित रहती है कि उसमें विद्युत् और चुम्बक भरा रहता है। माँसपेशियों में असंख्य

कोशिकायें और धमनियाँ इसी विद्युत् और चुम्बक से संचालित होती रहती हैं । आज का विज्ञान इसी को एजिट्रॉन और पोजिस्ट्रॉन कहता है ।

हमारे शरीर पर अंतरिक्ष के ग्रह-तारों का भी सीधा प्रभाव पड़ता है । जिस प्रकार जीव ग्रह-तारों से प्रभावित होता है, उसी प्रकार ग्रह-तारे भी पृथ्वी के छोटे से मनुष्य से प्रभावित होते हैं । आज हमारा विज्ञान तो यह मानने लगा है कि पृथ्वी पर अगर हम एक फूल तोड़ते हैं तो, उसके कम्पन्न से अंतरिक्ष भी प्रभावित हो जाता है । इसके लिए विचार-सम्प्रेषण का उदाहरण दिया जाता है । हमारे विचार एक सेकेण्ड में पृथ्वी की तीन परिक्रमा कर लेते हैं, उसी वेग से वे अंतरिक्ष तक भी पहुँच जाते हैं । विचार तो विज्ञान के क्वांटम किरण की फ्रिक्वेंसी को भी पार कर जाता है । उस गति को एक अरब हट्र्ज माना जाता है और इसी गति के कारण जीव अंतरिक्ष से जुड़ पाता है । जीवन और मृत्यु में जीव का आना-जाना इसी गति से होता है । इसी गति को वैज्ञानिक 'न्यूट्रीनों' कहते हैं और यह भी कहा जाता है कि न्यूरॉन जब मानसिक ऊर्जा पर प्रभाव डालता है, तो उसी से मैनजीन बनता है ।

इस सूक्ष्मता का वर्णन यहाँ इसलिए किया जा रहा है कि जब श्रीराम ने लक्ष्मण को शक्तिपात, ऊर्जा सम्प्रेषण की बात कही, तो उस समय श्रीराम ने आज के विज्ञान की बात बता दी थी । हमारे शास्त्रों में जिस प्राण ऊर्जा की बात कही गई है, उसे आज विज्ञान पूरी तरह प्रमाणित कर रहा है । श्रीराम ने शक्तिपात की चर्चा इसलिए की, क्योंकि जीव का दिव्य आलोक अथवा ब्रह्म से सीधा सम्बन्ध रहता है । अनन्त आकाश और पृथ्वी के जीव के बीच कई तल बताये गये हैं । विज्ञान में कहा गया है कि पृथ्वी से एक हजार मील ऊपर तक हवा का हल्का-भारी अस्तित्व है । इन्हें कई तलों में बांटा गया है ।

पहला है- ट्रापोस्फीयर (क्षोभमंडल), दूसरा- एस्ट्रैटोस्फीयर (समतापमंडल), तीसरा- ओजोमोस्फीयर (ओजोनमंडल) और चौथा- हेक्सापफीयर अवस्थित है । अध्यात्म में सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे बताये गये हैं । इन सात लोकों में अनेक लोक अवस्थित हैं जहाँ मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जाता है । पृथ्वी की तरह असंख्य लोक इस ब्रह्माण्ड में हैं । जिन लोगों का तार ब्रह्म से जुड़ा है । मूल रूप से एक ही तत्त्व है, जो हमें विभिन्न रूपों में दिखाई देता है । इस ब्रह्माण्ड का न कोई केन्द्र है न परिधि है । सर्वत्र केन्द्र है और सर्वत्र परिधि है । हमारी

पृथ्वी की तरह जितने भी ग्रह हैं, सबों का एक दूसरे से अदृश्य सम्बन्ध है। सभी ग्रह-उपग्रह विद्युत् और चुम्बक से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे सभी प्राणतत्त्व से प्राणवान् बनकर कर्मशील हैं, इन्हीं लोकों से शक्तिपात होता है ।

श्रीराम ने लक्ष्मण को यही बताया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड केवल शक्ति है, और उस शक्ति का जब किसी केन्द्र पर अवतरण होता है तो वह केन्द्र शक्तिमान् हो जाता है । हमारे देश में जितने भी तीर्थस्थान हैं, उन स्थानों पर इन्हीं शक्तियों का घनीभूत प्रभाव है । जितने भी अवतार हुए हैं, सभी अवतारों पर उन्हीं शक्तियों का शक्तिपात हुआ है । दिव्य शक्तियाँ जब घनीभूत होकर किसी मनुष्य पर पड़ती है तो उसे शक्तिपात कहते हैं । पैगम्बर मुहम्मद साहब पर खुदा की उसी शक्ति का पात हुआ था । भगवान् बुद्ध, महावीर और स्वामी विवेकानन्द पर उसी शक्ति का पात हुआ था । शक्ति के पात होते ही साधारण मनुष्य दिव्य बन जाता है ।

अब प्रश्न उठता है कि सभी लोगों पर शक्तिपात क्यों नहीं होता? दरअसल, शक्तिपात उसी पर होता है, जो मनुष्य सीधा, सरल और निर्विकार होता है । जो लोग विकार ग्रस्त होते हैं, शंकालु और चतुर होते हैं, जो छल-कपट और चालाकी करते हैं, वे सरल नहीं होते । विज्ञान में सुचालक और कुचालक पदार्थ होता है । सुचालक में बिजली की धारा आसानी से पार कर जाती है । लेकिन कुचालक में ऐसा नहीं होता । इसलिए जो व्यक्ति जितना अधिक सरल होता है, उसपर परमात्मा की दुआ आसानी से उतर जाती है ।

दूसरी बात यह है कि सीधा और सरल आदमी का अन्तःकरण सीधा रहता है। उसके मन में कहीं खोट नहीं रहता । इसलिए भक्ति का यह पहला मार्ग है कि मनुष्य पहले सरल बन जाए । भगवान् कहते हैं-

चौ०

निश्छल मन जेहिं सो मोहिं पावा । मोहिं कपट छल छिद्र न भावा ॥

अंतरिक्ष के ग्रह-नक्षत्रों से निरन्तर प्राण-ऊर्जा बहती रहती है ।

बहे निरन्तर अन्तरिक्ष से, प्राण तत्त्व का सतत प्रवाह ।
जड़ चेतन व अणु विभु को, देता जीवन भर की चाह ॥

इस ब्रह्माण्ड में जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, उससे हमारा सूर्य तीन लाख तीस हजार गुणा अधिक भारी है । और वह बीस लाख किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से बासुकी तारामंडल की ओर भाग रहा है । केवल हमारे सूर्य का ब्यास आठ लाख छियासी हजार मील है । इस सूर्य पर लगभग 2 करोड़ डिग्री सेल्सियस ताप रहता है । जिसका दो सौ बीस करोड़वाँ अंश ताप ही पृथ्वी को मिलता है । इस सूर्य की परिक्रमा हमारी पृथ्वी 58 करोड़ 46 लाख मील की यात्रा एक वर्ष में पूरी करती है । जबकि पृथ्वी की गति 66,600 मील प्रति घन्टा है । इसी सूर्य से अनादिकाल से प्राण ऊर्जा की वर्षा होती रही है । वैज्ञानिकों का मानना है कि अनादिकाल से निहारिका अथवा आकाशगंगा से इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन सूर्य पर आता है, जो प्रोटॉन में बदल जाता है । उसी द्रव्य का जब रूपान्तरण होता है, तो हाइड्रोजन और फिर हिलियम बन जाता है । वहाँ से सूर्य की अपनी ऊर्जा अन्य ग्रहों को मिलती है और ग्रहों से मनुष्य प्राणवान् होता है । वैज्ञानिकों ने अब अध्यात्म के समर्थन में हाथ उठा दिया है । प्राण ऊर्जा पर वैज्ञानिकों ने अनेक खोज की है । ताप, प्रकाश और विद्युत् के मिश्रित रूप को ऊर्जा माना गया है । ब्रह्माण्ड की यही अनन्त ऊर्जा जब मनुष्य पर गिरती है, तो वह प्राणवान् प्राणी बन जाता है । इसी ऊर्जा के पात को शक्तिपात कहते हैं ।

हमारे देश में अनेक संत महात्मा ऐसे हुए हैं, जिनके आशीर्वाद से अनेक लोगों को स्वस्थ होते देखा गया है । यह सब उसी ऊर्जा का प्रभाव है । परमात्मा के हाथ से जो प्रकाश किरण निकलती है वह ऊर्जा ही है और भगवान् शिव के त्रिनेत्र से जो ज्वाला निकलती है, वह अत्यन्त घनीभूत ऊर्जा का ही प्रक्षेपण है ।

इस दृष्टि से इस पूरे ब्रह्माण्ड में केवल ऊर्जा है, ऊर्जा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । प्रभु श्रीराम ने अपनी उसी दिव्य ऊर्जा का प्रक्षेपण करके हनुमान् को महाशक्तिमान् बनाया । क्योंकि कहा भी जाता है कि परमात्मा कण-कण में निवास करता है तो, इसका अर्थ हुआ कि प्राण-रूप ऊर्जा अति-सूक्ष्म रूप में सर्वत्र कण-कण में व्याप्त है । प्रभु श्रीराम उसी प्राणरूप में सर्वत्र कण-कण में व्याप्त हैं । प्रभु श्रीराम उसी प्राणरूप ऊर्जा के घनीभूत रूप हैं, जो अपने कर्मों से मनुष्य को मार्ग दिखा रहे हैं । परमात्मा की अनुपस्थिति में यह काम हमारे गुरु करते हैं । इसीलिए शास्त्रों में गुरु को ब्रह्म रूप माना गया है । शास्त्रों में तो यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति किसी गुरु से दीक्षा नहीं लेता, उसे अपवित्र माना जाता है ।)

श्रीराम-लक्ष्मण संवाद

हनुमान्जी किष्किन्धा चले गये । राम और लक्ष्मण पर्वत शिखर की गुफा में विश्राम करने लगे । एकाएक रात्रि में प्रभु श्रीराम उठ बैठे और लक्ष्मण को बुलाकर बोले- "हे लक्ष्मण! इस घनघोर रात्रि में मैं सीता के लिए बहुत चिन्तित हो गया हूँ । मेरे जीवित रहते ही मेरी सीता घोर संकट में पड़ी हुई है, इसे मैं बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ । उस पुरुष को जीने का कोई अधिकार नहीं है, जिसके जीते जी उसकी धर्म पत्नी संकटों से अकेले लड़ रही हो ।

लक्ष्मण! अब मैं जीना नहीं चाहता । भैया लक्ष्मण! ध्यान से सुनो । आधी रात में कोयल की कूक कैसी प्यारी लग रही है । लेकिन यही कूक सीता के वियोग में मुझे व्यग्र कर रही है । झिंगुर की झंकार सुनकर मेरा मन अत्यन्त ही व्यथित हो रहा है । आकाश में बादलों की गर्जना से उत्पन्न विद्युत् मेरी असमर्थता देखकर मुझे चिढ़ा रहे हैं । वृक्षों पर बैठे हुए इन पक्षियों को देखो, कैसे दोनों प्यार से एक-दूसरे को गले लगा रहे हैं । वर्षा की फुहार से वृक्षों के पत्ते आपस में मिल रहे हैं । पानी के भार से ऊपर का पत्ता नीचे के पत्ते पर बार-बार स्पर्श कर रहा है । लक्ष्मण! कितने भाग्यशाली हैं ये पत्ते ।

मेरे भाई! नील कमल दल के समान श्याम वर्ण वाले मेघ अब धीरे-धीरे पृथ्वी पर अमृत वर्षा कर विश्राम करने लगे हैं । काश! इन मेघों को मेरी सीता का पता होता, तो वे अवश्य ही मुझे बताते । लेकिन मैं अकेला पत्नी वियोग में दुःखी हो रहा हूँ । मेरी सुध लेने वाला कोई नहीं है । जंगल में भटकते गजराजों को देखो, उनका उमंग अब शान्त हो रहा है । चाँदनी की चादर ओढ़े हुए शरत्काल की यह रात्रि सफेद साड़ी पहनी हुई सुन्दर नायिका की तरह दिख रही है । सारस का झुंड अपने स्थान की ओर रवाना हो चुका है । लगता है, नदियों में बहने वाले पानी का वेग अब कम हो रहा है । नदियों का तट अब नग्न दिखाई दे रहा है । गदराये हुए मेघों को देखकर मेरे मन में सीता के लिए और व्यग्रता बढ़ रही है । पुनः श्रीराम कहते हैं-

मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान् स्थितान् ।।

चौ०

बरषा गत निर्मल रितु आई । सुधि न तात सीता कै पाई ।।

हे तात! मैं आज अकिंचन इस पर्वत पर पड़ा हूँ । मेरे माता-पिता, राज्य सब कुछ छिन गया, चौदह वर्षों के लिए मुझे वन में भेजा गया, इस विषम परिस्थिति में मेरी सीता और तुमने मेरा साथ दिया । वन में आकर मेरी प्रिया सीता का हरण हो गया, सुग्रीव से मित्रता हुई, लेकिन वह भी अपने राज काज और आनन्द-विहार में मग्न होकर मुझे भुला दिया । मैं आज तुम्हारे साथ इस बीहड़ जंगल में इन घने वृक्षों और लताओं के बीच बैठकर सीता के विरह में आँसू बहा रहा हूँ । हे भाई! सीता के बिना मैं कैसे जीवित रहूँगा ।

चौ0

बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फुलें कास सकल महि छाई । जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई ॥

हे भाई! अब तो वर्षा ऋतु भी बीत गई । देखो चारो तरफ प्रकृति की गोद में नए-नए फूल खिल रहे हैं ।

चौ0

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा । जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ।
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥

अगस्त के तारे जल को सोख रहे हैं, जिस प्रकार संतोष लोभ को सोख लेता है । सरिता का पानी अब निर्मल हो गया है, जैसे संतों का हृदय निर्मल होता है । जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करता है, उसी प्रकार नदी पानी का त्याग कर रहा है । देखों, खंजन भी आ गये हैं ।

(कहा जाता है कि हथिया नक्षत्र में खंजन पक्षी का दर्शन बड़ा शुभ होता है, संत लोग खंजन दर्शन का भी निर्णय करते हैं कि किस दिशा में खंजन का दर्शन शुभ होता है । प्रायः पूरब और उत्तर की दिशा में मनुष्य स्वयं खड़ा हो और उसी दिशा में खंजन भी हो तो वर्ष भर शुभ फल प्राप्त होता है । जिस प्रकार दुर्गापूजा में नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ होता है ।)

चौ0

पंक न रेनु सोह असि धरनी । नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
बिनु धन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा॥

हे भाई! आकाश से सारे मेघ विलीन हो गए, जैसे- भक्त कामनाओं को छोड़ देता है ।

चौ०

सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूलें कमल सोह सर कैसा । निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥

नदी और तालाबों में जल सूख गया है । तालाब में कमल खिल गए हैं, लगता है जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण बनकर मुस्कुरा रहा है । भंवरे गुन-गुना रहे हैं, चकवा अब दुःखी हो रहा है, जैसे उसी प्रकार से दूसरे की संपत्ति देखकर दुष्ट दुःखी होते हैं ।

चौ०

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर संपति देखी ॥

पपीहा रट लगा रहा है जैसे- शिवद्रोही को सुख नहीं मिलता । शरद्-ऋतु में जिस प्रकार चन्द्रमा पाप को हर लेता है, वैसे ही जैसे संत के दर्शन से पाप नष्ट हो जाता है । हे भाई! इस शरद ऋतु में मैं मुस्कुराते हुए चाँद को देखकर विरह में संतप्त हो रहा हूँ और वह चाँद मेरे विरह को देखकर प्रसन्न हो रहा है ।

"तस्मात् कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण"

चौ०

देखि इंदु चकोर समुदाई । चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥

लक्ष्मण! सामने में दौड़ते हुए मृगों की जोड़ियों को देखो, घोंसले में पक्षी आनन्द मना रहे हैं, वृक्षों के पत्ते एक दूसरे में सट कर प्रेम प्रकट कर रहे हैं । हवा के झोंको से वृक्षों की डालियाँ एक दूसरे का मोहक स्पर्श कर रही हैं ।

लक्ष्मण! मेरी सीता मेरे विरह में कैसे तड़पती होगी । जब रात होती होगी, तो चाँद अपनी शीतलता से उसे तप्त कर देता होगा, पूर्णिमा की रात में भी चाँद ओस कण के कारण जिस प्रकार मलिन दिखता है, उसी तरह हमारी सीता भी अधिक धूप के कारण मलिन दिखती होगी-

ज्योत्स्नातुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥

हे भाई! सारी प्रकृति अब वर्षा की बूंदों के आघात से मुक्त हो गई है । नई-नई घासें निकल आई हैं । आकाश में पक्षियों का झुंड निकल पड़ा है और मैं इस पर्वत पर असहाय बनकर बैठा हूँ । लक्ष्मण! इस शरत्काल में रात भी बड़ी होने लगी है । शीत भी अधिक पड़ता है । इस शीतकाल में मेरी सीता कैसे रहेगी । जाड़े के कारण इतनी बड़ी रातों में सीता को बड़ा कष्ट होता होगा ।

विशेष द्रष्टव्य

शरद् ऋतु के आने पर श्रीराम अपना-धैर्य खो देते हैं। प्रकृति में चारों तरफ वृक्षों में नव अंकुर निकलने लगे। पक्षी घोंसले से बाहर आ गए। नदी के किनारे खाली होने लगे। फूलों की डालियों में शरद्कालीन नए कोंपल निकलने लगे। इस प्रकृति भाव को देखकर प्रभु श्रीराम सीता के वियोग में और अधिक व्यग्र होने लगे-

यह शरद् ऋतु आई जब से, चहुं ओर जगत में फूल खिला ।
आमोद कण्ठ भंवरा नर्तन, इस जीव सृष्टि को प्राण मिला ॥
जड़ चेतन में नव यौवन है, यह देख राम विचलित होते ।
सीता की याद सताती हे, मन के आंसू भीतर पीते ॥
चकवा चकवी का प्रेम मिलन, जब शुक्ल पक्ष में होता है ।
श्रीराम विरह की अग्नि में, रो रो कर आंसू पीता है ॥
यह विरह देखकर वृक्ष लता, श्रीराम को शीश झुकाता है ।
इस जगत् का स्रष्टा राम आज, उपहास जगत का पाता है ॥
मन में संशय श्रीराम करे, शत्रु घर सीता कैसी है ।
हे मेघ, पवन, सूरज, चंदा, तू देख बता वह कैसी है ॥
हे सूर्य देव साक्षी रहना, स्वाभिमान नहीं गिरने देना ।
इस प्रतिव्रता की आन-बान, सपने में नहीं मरने देना ॥

जब अगर फूल अरु चंदन से, श्रृंगार सिया का करता था ।
तब दर्पण बन कर मेघ-गुच्छ, सौरभ सुगंध बरसाता था ॥
सौरभ सुगंध मकरंद पुष्प, सीता को अर्पण करता था ।
तब अलि कलि पुष्पित मयंक, झर झर बालों से झरता था ॥
किसका श्रृंगार करूँ कैसे, सब लता विटप उपहास करे ।
हे भाई कहूँ पीड़ा किसको, सब युग्म विहंगम हास करे ॥
अब रिक्त हो रहा कुल कगार, कृश काय बनी नदिया सारी ।
जैसे प्रियतम के विरह रोग, पीड़ित करती अबला नारी ॥
मैं देख देख पछताता हूँ, विरही बन शोक बढ़ाता हूँ ।
हे प्राण प्रिय सीते सुन लो, तेरी याद में रोता रहता हूँ ॥
तेरे बालों में पुष्प गुच्छ, चुन-चुन कर तुझे सजाता था ।
तेरे माथे की बिंदिया में, प्रतिबिम्ब स्वयं बन जाता था ॥
इन फूलों को जो रूप मिला, नदी झरनों को संगीत मिला ।
हर कली में रूप तुम्हारा है, कण-कण में वास तुम्हारा है ॥
हर फूल में गंध तुम्हारा है, भंवरों का गुंज तुम्हारा है ।
झरनों में कलरव तेरा है, सबमें स्वरूप तुम्हारा है ॥
जब जब कोयल पपिहा बोले, कानों में तेरा रस घोले ।
हर पात जो गीत सुनाता है, तेरी बोली में गाता है ॥
झरनों में गीत तुम्हारा है, मधुवन में वास तुम्हारा है ।
शाल्म वृक्ष व पर्वत चोटी, सबको इन्तजार तुम्हारा है ॥

पर्वत की आँखों की धारा, नदी-झरना बन झर-झर बहती ।
शीतल समीर का झोंका भी, तेरी आँचल शीतल लगती ॥
वृक्षों पर कोयल जब कूके, मन प्राण में तब अग्नि फूंके ।
तन-मन में आग लगाती है, तेरी याद सदा तड़पाती है ॥
मन में जो पीर उठे सजनी, पल-पल जारे शीतल रजनी ।
तुम याद में मेरी जलती हो, मैं विरह अग्नि में जलता हूँ ॥
हे प्राण प्रिय इस जगति का, सब प्राण राम में बसता है ।
मैं बसता हूँ तेरे उर में, शत्रु घर हो, अब डरता हूँ ॥
जग बसता है मेरे उर में, मैं तेरे उर में बसता हूँ ।
शत्रु गर तुझको उर में ले, उसे मार नहीं मैं सकता हूँ ॥
यह खेल नियति का है विचित्र, जग स्रष्टा रोदन करता है ।
मन जब स्थिर करता हूँ, आँखों से नीर टपकता है ॥
मेरा अरण्य रोदन सुनकर, तरु शिलाखण्ड पर्वत रोते ।
पत्नी वियोग में व्यथित देख, करूणा कर सब आँसू धोते ॥
अफसोस बड़ा मेरे मन में है, पति धर्म नहीं बचा पाया ।
संकट में तुमको जलने से, रक्षा न तेरी मैं कर पाया ॥
यह वृक्ष लता, पर्वत, झरना, सुन राम प्रतिज्ञा करता है ।
सीता की रक्षा प्रण मेरा, या प्राण विसर्जित करता है ॥
हे सूर्य देव, जलचर, नभचर, संवाद राम का कह देना ।
वह बच न पायेगा जहाँ कहीं, यह सत्य उसे समझा देना ॥

तत्पश्चात् प्रभु श्रीराम लक्ष्मणजी को पुनः समझाते हुए कहते हैं-

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारूणाः ।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम् ॥

मेरे भाई! मुझे राज्य से निकाला गया, मेरी पत्नी का हरण हुआ और मेरा मित्र सुग्रीव, मेरी चिन्ता छोड़ अपने राज्य में विहार कर रहा है । लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा जाओ और भोग-विलास में फँसे सुग्रीव से कहो कि जो व्यक्ति सहायता का वचन देकर पीछे हटता है, वह दुराचारी होता है । जो किए हुए उपकार को भूल जाता है, उसे कृतघ्न माना जाता है । सुग्रीव से यह भी बताना कि मैंने उसे राज्य दिलवाया है तो उससे छीन भी सकता हूँ । सुग्रीव ने कहा था कि वर्षा ऋतु के बीतते ही वह सीता की खोज करने में मदद करेगा । लेकिन इन चार महीनों में उसने हमारा समाचार भी नहीं लिया । उसे चेतावनी दे देना कि अगर वह अपने वचन से हटता है तो उसे भी बाली के मार्ग पर जाना होगा ।" श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण आक्रोश में आ गये । लक्ष्मण ने कहा- "भैया! आप चिन्ता न करें । मैं अभी सुग्रीव की खबर लेकर आता हूँ । उसने अब तक आपका पराक्रम देखा है । आज मैं उसे अपना पराक्रम दिखाऊँगा ।" यह कहकर लक्ष्मण किष्किन्धा जाने के लिए तैयार हो गये ।

लक्ष्मण को जाते देख श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! आक्रोश में बोला गया एक-एक शब्द बाण की तरह विषैला होता है । क्रोध में मनुष्य अपना संतुलन खो देता है । ऐसे समय में उठाया गया कोई भी कदम उचित नहीं होता । इसलिए जब मन शान्त हो जाए तभी कुछ बोलना चाहिए । कामी पुरुष और क्रोधी को विवेक नहीं होता । जिस प्रकार भूखा व्यक्ति भोजन का विचार नहीं करता, उसी प्रकार कामी पुरुष पात्र-अपात्र का विचार नहीं करता । सुग्रीव काम वासना में फँस चुका है, इसलिए उसका विवेक नष्ट हो चुका है-

आरत के मन होश नहीं, नहीं भावे उपदेश ।
प्रियतम परदेशी रहे, रास न आवे देश ॥



कामी को सुख काम से, धर्मी को सुख धर्म ।
भँवरा को सुख फूल से, मूढ़ न जाने मर्म ॥

इसीलिए हे लक्ष्मण! पहले उसे समझाना। जब वह न माने, तभी भय दिखाना। कभी-कभी समझाने से मनुष्य समझ जाता है। सुग्रीव हमारा मित्र है, अगर वह बात से समझ जाए तो उस पर क्रोध करना उचित नहीं।

क०

मन से मन को जोड़ना, सबसे बड़ा है धर्म।

दो बिछुड़ों को गले मिलाए, यह जीवन का मर्म॥

इसलिए मेरे भाई! अगर समझाने से काम चल जाए, तो लड़ाई की बात करना उचित नहीं है। लेकिन उसके मन में यह भय होना चाहिए कि अगर उसने वचन भंग किया तो, उसका भीषण परिणाम उसे भुगतना पड़ेगा।"

लक्ष्मण का किष्किन्धा की ओर प्रस्थान

श्रीराम से आज्ञा लेकर लक्ष्मणजी वायुवेग से किष्किन्धा की ओर चले। वे अपने परमात्मा स्वरुप बड़े भाई को देखकर, उनकी चिन्ता से अवगत होकर रास्ते की झाड़ियों, पर्वतखंडों को रौंदते हुए तूफान की तरह किष्किन्धा की ओर जा रहे थे। लक्ष्मण के आने की सूचना जब सुग्रीव को मिली तो, वह घबड़ाकर पानी-पानी हो गया। सुग्रीव ने हनुमान्जी को बुलाकर कहा- "लक्ष्मणजी इतने क्रोध में क्यों आ रहे हैं?" यह सुनकर हनुमान्जी ने कहा- "हे वानरराज! आपने वचन भंग का अपराध किया है। आपने श्रीराम से मित्रता की है तो, आपको इस धर्म का पालन करना चाहिए। भोग विलास में पड़कर आपने श्रीराम की सुध तक नहीं ली। श्रीराम ने आपकी इतनी सहायता की और आपने उसे भुला दिया।"

चौ०

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥

उसी समय लक्ष्मणजी द्वार पर पहुँचे।

दो०

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।

ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥

लक्ष्मणजी की गर्जना सुनकर सुग्रीव भय से काँपने लगा। उसने तुरंत अंगद, तारा और हनुमान्जी को लक्ष्मणजी का क्रोध शान्त करने के लिए भेजा। सुग्रीव समझ गए कि लगता है लक्ष्मणजी के आक्रोश से पूरी किष्किन्धा आज नष्ट हो जाएगी। लेकिन सुग्रीव को पता था कि हनुमान्जी, श्रीराम और लक्ष्मण के कृपापात्र हैं। इसलिए सुग्रीव ने हनुमान्जी से प्रार्थना की–

गीत

करूणानिधान को सुनाना
पवनसुत मुझको बचाने आना।
तेरे चरणों में कबसे पड़ा हूँ
संकट के बादल से कबसे घिरा हूँ
चरणों में प्रभु के बिठाना।
पवन सुत ... ...
संकट से मुझको बचाना, करूणानिधान ... ...
बेली चमेली की माला बनाया
आँखों की आंसू से तुझको नहाया
अबकी तू पार लगाना,
पवन सुत ... ...
संकट से मुझको बचाना, करूणानिधान ... ...
पूजा की थाली में चंदन सजाया
सिंदूर व रोरी का तिलक बनाया
कीर्त्तन से प्रभु को रिझाना,
पवन सुत ... ...
संकट से मुझको बचाना, करूणानिधान ... ...

चौ०

सुनु हनुमंत संग लै तारा । करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना ॥

हनुमान्‌जी, तारा और अंगद को लेकर लक्ष्मणजी के पास गये । कहा जाता है कि अगर व्यक्ति क्रोध में हो तो उससे प्रेमपूर्वक बात करनी चाहिए। क्रोध का जवाब क्रोध नहीं होता । व्यक्ति कितना भी कठोर और क्रोधी हो, उससे प्रेमपूर्वक बात करने पर वह शान्त हो जाता है। किसी भी बात का निर्णय क्रोध में नहीं करना चाहिए । हनुमान्‌जी तो महाज्ञानी थे । इसलिए उन्होंने तारा को साथ ले लिया, ताकि स्त्री को देखकर लक्ष्मणजी का क्रोध शान्त हो जाए। स्त्री पर क्रोध करना, उसे प्रताड़ित करना मर्यादा के प्रतिकूल है । हनुमान्‌जी ने विवेक से काम लिया और लक्ष्मणजी को महल के अन्दर ले आये ।

सुग्रीव ने दौड़कर लक्ष्मणजी को गले लगाया और कहा- अब वर्षा समाप्त हो गई है । एक माह के अन्दर सीता माता का पता लगा लिया जाएगा। यह कहते हुए सुग्रीव सखा सहित श्रीराम से मिलने चल दिए। श्रीराम को देखते ही सुग्रीव ने कहा-

चौ०

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ॥

"हे प्रभु! मेरे मन में कोई खोट नहीं है, लेकिन मैं जीव हूँ। काम वासना में फँसना तो जीव का धर्म है ।"

चौ०

नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥

सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने मुस्कुराते हुए सुग्रीव के सिर पर हाथ रखा । उसी समय वानरों की अपार सेना वहाँ पहुँच गई । राम ने सबों को आशीर्वाद दिया और एक-एक से मिले । सुग्रीव ने सैनिकों को आदेश दिया- "तुम सभी दिशाओं में सीता माता का पता लगाओ । अगर एक माह के अन्दर तुमने पता नहीं लगाया तो मैं तुम सबों को मार दूँगा । मुझे गुप्त रूप से पता चला है कि लंकापति रावण ने सीता

माता का अपहरण किया है । तारा ने भी मुझे बताया है कि रावण एक दुराचारी राक्षस है, लेकिन सीता माता की खोज सभी दिशाओं में करो । दक्षिण की ओर हनुमान्, जाम्बवन्त और अंगद अपने साथियों के साथ जाएं ।" श्रीराम ने हनुमान्जी को अपने पास बुलाया और कहा- "तुम मेरे सबसे प्रिय हो, मुझे विश्वास है कि तुम सीता का पता लगा लोगे ।" यह कहकर श्रीराम ने अपनी अंगूठी हनुमान् को दी ।

चौ०

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

हनुमान्जी, अपने साथियों को लेकर दक्षिण दिशा में निकल पड़े । हनुमान्जी काफी दूर निकल गये । घने जंगलों में घूमते-घूमते सभी थक गये, सबों को प्यास लगने लगी । हनुमान्जी ने सोचा कि लगता है पानी के बिना सब मारे जायेंगे-

चौ०

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चहत सब बिनु जल पाना ॥

यही सोचकर हनुमान्जी एक शिखर पर चढ़ गये और पानी का पता लगाने लगे । तभी एक मोटा सा छिद्र उन्होंने देखा, जहाँ से विभिन्न प्रकार के पक्षी निकल रहे थे । हनुमान्जी ने अपने साथियों के साथ उस विवर में प्रवेश किया । अन्दर जाते ही एक सुन्दर तालाब दिखाई दिया । उसके किनारे एक मंदिर था । उस मंदिर में एक तपस्विनी बैठी थी । हनुमान्जी ने उस तपस्विनी से पूछा- "हे देवी! आप कौन हैं? और यह रत्नजड़ित भवन किसका है?" उस वृद्ध महिला ने कहा- "यह भवन मय नामक दानव का है, जो हेमा नामक अप्सरा के प्रेम में फँस गया था, इसी कारण पुलोम नामक राक्षस की बेटी और इन्द्र की पत्नी शची एवं स्वयं इन्द्र ने अपने बज्र के प्रहार से मय को यहाँ से भगा दिया था । मेरा नाम स्वयंप्रभा है । हेमा ने मुझे इस महल की सुरक्षा के लिए कहा है । लेकिन तुमलोग भूखे-प्यासे हो, आओ फल खाओ और पानी पीओ । फिर आगे का वृत्तान्त सुनाती हूँ ।"

उसके बाद हनुमान्जी अपने दल-बल के साथ वृक्षों से तोड़कर फल खाने लगे । फल खाने के बाद सबों ने भर पेट पानी पिया । उसी समय हनुमान्जी ने कहा- "देखो! फल खाने और पानी पीने के पश्चात् अब हमलोग पूर्ण स्वस्थ हो गये हैं ।

प्रकृति और परमात्मा ने जीव की रक्षा के लिए कितना सुन्दर प्रबन्ध किया है । शरीर बिना भोजन और पानी के नहीं चल सकता है ।" हनुमान्‌जी की बात सुनकर अंगद ने हनुमान्‌जी से पूछा- "हे महावीर! भोजन से शरीर की रक्षा होती है, भोजन तो सभी करते हैं, फिर कुछ लोगों की वृत्ति सात्त्विक और कुछ लोगों की तामसी कैसे बन जाती है?"

अंगद की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा- "मेरे प्रिय अंगद! जीवन के लिए भोजन और जल महत्त्वपूर्ण है । जो लोग सात्त्विक भोजन करते हैं, उनकी बुद्धि सात्त्विक बनती है और जो लोग मांसाहार करते हैं, उनकी बुद्धि तामसी बनती है । इसलिए हमारे संत-महात्मा फल-फूल खाते हैं और जीवन को स्वस्थ रखते हैं । फल-फूल और सादा भोजन करने वाले दीर्घायु भी बनते हैं । मांसाहार और अधिक उत्तेजक भोजन करने वाले अल्पायु होते हैं । क्योंकि उनके शरीर की सारी ऊर्जा भोजन पचाने में ही खर्च हो जाती है । सादा भोजन करने पर पेट को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, इससे काफी ऊर्जा बच जाती है । वही ऊर्जा जीवनी शक्ति बढ़ाती है । भोजन और नैतिक आचरण से ही मनुष्य दीर्घायु बनता है । अभी थोड़ी देर पहले हमलोग भूख-प्यास के मारे व्यग्र हो रहे थे, फल खाते ही शरीर में शक्ति लौट आई । इसलिए प्राण-रक्षा के लिए किसी भी तरह भोजन प्राप्त करना पाप नहीं है ।" क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि **"आत्मा रक्षितो धर्मः ।"** आत्मा की रक्षा करना ही धर्म है । हनुमान्‌जी बोल रहे थे और सभी लोग ध्यान से सुन रहे थे । उसी समय हनुमान्‌जी ने एक कथा सुनाई– एक महाप्रतापी संत थे । एक दिन वे कहीं जा रहे थे, गर्मी का दिन और तेज धूप से महात्माजी व्याकुल हो रहे थे । वे भूख और प्यास से छटपटा रहे थे । उन्होंने चारों तरफ देखा कहीं कोई जलाशय या अन्य कोई स्रोत नहीं दिखा । थककर वे एक पीपल के वृक्ष के निकट बैठ गये । भूख और प्यास से वे मरणासन्न हो रहे थे । तभी एक पीलवान अपने हाथी के साथ वहाँ आया और पीपल के वृक्ष की छाँव में बैठकर थोड़ा सुस्ताने लगा । पीलवान ने हाथी को पीपल की डाली काटकर खाने को दिया और स्वयं एक छोटी सी पोटली से अंकुरित मूंग निकालकर खाने लगा । साथ ही उसने मिट्टी का एक पात्र (जिसे टोइयाँ कहते हैं,) में रखे पानी को पीया । तभी महात्मा की नजर पीलवान पर पड़ी । वे अन्न-जल के अभाव में

बेहोश हुए जा रहे थे, उन्होंने हिम्मत करके पीलवान से कहा- "भाई पीलवान! थोड़ा मूंग मुझे भी खाने को दो।"

महात्माजी की बात सुनकर पीलवान ने कहा- "राम-राम! महाराज यह आप क्या कह रहे हैं। मैं जाति का चाण्डाल हूँ और यह मेरा जूठा मूँग है, इसे आप कैसे खायेंगे?" महात्माजी ने कहा- "मैं अन्न के बिना मर रहा हूँ। अगर मैं तुम्हारे जूठे मूँग नहीं खाऊँगा, तो भूख से मर ही जाऊँगा और इस तरह मरना आत्महत्या है, जिससे भारी पाप लगता है। आत्मा की रक्षा के लिए किसी तरह का भोजन वर्जित नहीं होता। तुम मुझे एक मुट्ठी मूँग दो।" पीलवान ने अपनी पोटली से एक मुट्ठी मूँग निकालकर महात्माजी को दिया, महात्माजी ने उसे तुरंत खा लिया। पीलवान ने मिट्टी का टोइयाँ महात्माजी की ओर बढ़ाते हुए कहा- "महाराज! पानी पी लें। पानी का नाम सुनते ही महात्माजी ने कहा- अरे चाण्डाल! तुम मुझे पाप चढ़ाना चाहते हो। तुम्हारा जूठा पानी मैं कैसे पीऊँ?" महात्माजी की बात सुनकर पीलवान ने हाथ जोड़कर कहा- महाराज! आपने मेरा जूठा मूँग भी तो खाया है, क्या उससे आपको पाप नहीं लगा? पीलवान की बात सुनकर महात्माजी ने कहा- "नहीं, मुझे भूख लगी थी, अगर मैं तुम्हारा जूठा मूँग नहीं खाता तो मर जाता, इससे मुझे पाप लगता। लेकिन पानी के बिना मैं जी सकता हूँ, इसलिए तुम्हारा जूठा पानी मैं नहीं पीऊँगा।"

हनुमान्‌जी की बात सभी ध्यान से सुन रहे थे, तभी स्वयंप्रभा ने पीछे से पुकारा- "क्या तुमलोगों ने फल खा लिया। अब तुम्हें यहाँ से लौट जाना चाहिए।" स्वयंप्रभा की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा- देवी! कृपया लौटने का मार्ग बताएँ। हनुमान्‌जी की बात सुनकर स्वयंप्रभा ने कहा- "विवर के मार्ग से लौटोगे, तो तुम्हें कई दिन भटकना पड़ेगा। इसलिए तुम सभी लोग मरे पास आओ और अपनी अपनी आँखों को बन्द कर चुपचाप यहाँ बैठ जाओ।" स्वयंप्रभा की बात सुनकर हनुमान्‌जी, अंगद और जाम्बवन्त सोचने लगे कहीं यह कोई मायानगरी तो नहीं। मन में संदेह होने लगा, तभी स्वयंप्रभा ने डाँटते हुए कहा- तुमलोग किसी तरह के संशय-विपर्यय में मत पड़ो, चुपचाप आँख बन्द करके बैठो। हनुमान्‌जी सबों के साथ आँख बन्द करके बैठ गये। थोड़ी देर बाद जब इनलोगों ने अंपनी आँखें खोलीं तो देखा कि वे सभी समुद्र के किनारे पहुँच गए हैं-

चौ०

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू । पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा । ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा ॥

सभी लोग समुद्र के किनारे आ गये और उधर स्वयंप्रभा श्रीराम के पास गई और उनसे आशीर्वाद लेकर बद्रीकाश्रम चली गई ।

समुद्र के किनारे हनुमान्‌जी सभी वानर-भालू वीरों के साथ विचार करने लगे कि इतने दिन हो गए, किन्तु अभी तक सीता माता का कुछ पता नहीं मिल सका ।

चौ०

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं । बीती अवधि काजु कछु नाहीं ॥

अंगद सोचने लगे कि मैं क्या करूँ? अगर सीता माता का पता न मिला तो, खाली हाथ लौटने पर चाचा सुग्रीव मुझे अवश्य मार डालेंगें ।

चौ०

इहाँ न सुधि सीता कै पाई । उहाँ गएँ मारिहि कपिराई ॥

बहुत देर तक इस पर विचार-विमर्श होता रहा ।

चौ०

अस कहि लवन सिंधु तट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥

इस अवसर पर जाम्बवन्तजी ने कहा- "हे वानर वीरों! आपलोग निराश न हों । प्रभु श्रीराम मनुष्य नहीं हैं, वे परमात्मा हैं, उन पर भरोसा रखो । वे कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकालेंगे ।"

चौ०

तात राम कहुँ नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥

प्रभु श्रीराम अपने भक्तों को चार प्रकार की भक्ति देते हैं । जिनमें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य प्रमुख हैं । प्रभु अपने भक्तों की हमेशा रक्षा करते

हैं । लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि हम निष्ठापूर्वक उनका स्मरण करते हुए उन पर भरोसा रखें । जाम्बवन्त रीछपति हैं, वे अति बलशाली हैं । महाज्ञानी और सभी शास्त्रों के ज्ञाता जाम्बवन्त अत्यन्त पराक्रमी, अजर और अमर हैं । कहा जाता है कि वे प्रतिदिन पृथ्वी की सात परिक्रमा करके तब पूजा पर बैठते हैं ।

विशेष प्रसंग-

(जाम्बवन्त ने लंका विजय में श्रीराम को पूरा सहयोग दिया । युद्ध के उपरान्त जाम्बवन्त अपने नगर में आकर रहने लगे । कहा जाता है कि द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण ने जाम्बवन्त से मल्ल-युद्ध करके उन्हें परास्त कर उनकी बेटी जाम्बवती से विवाह किया था ।)

जाम्बवन्त ने कहा कि वानर-वीरों! परमात्मा उसी की सहायता करता है जो उससे सहायता लेना चाहता है । प्रयास करने वालों को सफलता अवश्य मिलती है । लेकिन मनुष्य अहंकार के कारण परमात्मा को भुला देता है और स्वयं कर्त्ता बन जाता है ।

चाह उठती, जब इरादे चुस्त रहती है ।
आह में, उम्मीद सारी पस्त रहती है ॥

हे वानर वीर! प्रभु पर कभी अविश्वास नहीं करना चाहिए । तुमलोगों ने अगर प्रभु पर विश्वास किया है तो फिर उस विश्वास को गिरने मत दो ।

दो०

निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥

प्रभु, अपने भक्तों को कभी उदास नहीं होने देते । उदास वही होता है, जो सिर्फ अपने ऊपर भरोसा कर लेता है । जबकि सब करने वाले तो प्रभु हैं ।

विशेष प्रसंग-

(जाम्बवन्त ने कहा- मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ । एक बार एक संत प्रभु का कीर्तन करते हुए कहीं जा रहे थे । पागलों की तरह नाचते-गाते संत को देखकर रास्ते

के बच्चों ने उन्हें चिढ़ाना शुरू किया । संत के पीछे से कुछ बच्चे किलकारी मारते और कछ पत्थर उछालते । संत प्रभु का नाम लेते हुए जा रहे थे । किसी एक बच्चे ने संत के ऊपर एक पत्थर चला दिया । पत्थर उनके सिर में लगा, जिससे रक्त बहने लगा । फिर भी वे संत कीर्तन गाते हुए चले जा रहे थे । संत की यह दशा देखकर प्रभु ने सोचा- चलो, बच्चों को रोकें, ताकि संत का कीर्तन भंग न हो, प्रभु संत को बचाने दौड़े । ज्योंही प्रभु संत के निकट पहुँचे, प्रभु ने देखा कि संतजी भी प्रत्युत्तर में पत्थर उठाकर बच्चों की ओर फेंक रहे हैं । यह देख प्रभु वहाँ से लौट गये । दरअसल, जो भक्त भगवान् पर भरोसा करता है, भगवान् उसकी रक्षा करते हैं । संतजी जब तक कीर्तन गा रहे थे, तब तक की जवाबदेही भगवान् पर थी, लेकिन ज्योंही उन्होंने पत्थर उठा लिया, तभी भगवान् ने सोचा कि अब उस भक्त को मेरी क्या आवश्यकता है । अब तो वह स्वयं कर्त्ता बन गया है । जब तक मनुष्य को उसके कर्त्ता होने का अभिमान रहता है, तब तक परमात्मा उसे नहीं मिलता । इसलिए हे वानर वीरों! प्रभु श्रीराम पर पूर्ण निष्ठा रखोगे, तो तुम्हें कभी कोई कष्ट नहीं होगा ।)

जाम्बवन्त ने वानर वीरों को विस्तार से समझाया कि इस संसार में केवल परमात्मा की इच्छा चलती है । आज हमलोगों को जो इतना कष्ट हो रहा है, उसमें भी परमात्मा की कोई न कोई इच्छा अवश्य रही होगी । हमलोगों को उनकी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मा! तुम्हारी इच्छापूर्ण हो । निश्चित रूप से इस दुःख में भी हमारी भलाई होने वाली है ।

समुद्र तट पर काफी कोलाहल हो रहा था, उसी तट के एक कन्दरा में बैठे सम्पाती को यह कोलाहल सुनाई पड़ा । (सम्पाती, जटायु का बड़ा भाई और वरुण का पुत्र था । युवावस्था में सम्पाती और जटायु ने सूर्य पर जाने का निश्चय किया था । दोनों जब सूर्य के निकट पहुँचे तो जटायु सूर्य कां तेज नहीं सह सका और लौट आया, लेकिन सम्पाती सूर्य के निकट पहुँच गया और सूर्य के तेज से उसके पंख जल गये तथा वह समुद्र तट के गिरिकन्दरा में गिर पड़ा । सम्पाती को अपनी भूल का काफी पश्चाताप हुआ । उसी समय चन्द्रमा नामक एक मुनि वहाँ आए, उन्होंने सम्पाती को अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए देखा । मुनि को उस पर दया आ गई । मुनि ने सम्पाती को इस देह के अभिमान को त्यागने का उपदेश दिया और कहा-

चौ०

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं । तासु नारि निसिचर पति हरिही ।
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता । तिन्हहि मिलें होतैं पुनीता ॥

उसी मुनि ने मुझे कहा था- "प्रभु के दूत से जब तुम्हारी भेंट होगी, तो तुम्हारे अहंकार का पाप कट जाएगा ।")

चौ०

एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती । गिरि कंदराँ सुनि संपाती ॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ॥

सम्पाती ने जब कोलाहल सुना तो वह कन्दरा से बाहर निकला । उसने देखा कि बाहर बहुत सारे बन्दर और भालू हैं । उसने सोचा कि बहुत दिनों के बाद आज मुझे भर पेट भोजन मिलेगा ।

चौ०

कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥

सम्पाती की बात सुनकर सभी लोग डर गये । जाम्बवन्त विचार करने लगे कि इस महाकाल से बचना मुश्किल है । अंगद ने कहा कि आज हम सब अकारण मारे जायेंगे । हमलोगों से तो अच्छा जटायु था, जो सीता मैया की रक्षा करते हुए मारा गया ।

चौ०

कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
राम काज कारन तनु त्यागी । हरि पुर गयउ परम बड़भागी ॥

जटायु का नाम सुनते ही सम्पाती ने कहा- "हे वानर! जटायु को क्या हुआ? जटायु तो मेरा छोटा भाई है ।" सम्पाती की बात सुनते ही सबों के प्राण लौट आये । तब जाम्बवन्त ने सम्पाती को पूरी कथा बताई और कहा- "हमारे प्रभु श्रीराम की पत्नी सीता मइया का हरण हो गया है । उसी सीता मैया को बचाने के लिए जटायु ने रावण से युद्ध किया था, जिसमें वह मारा गया । हमलोग उसी सीता माता की खोज कर रहे हैं । कथा सुनते ही सम्पाती जटायु के लिए विलाप करने लगा ।

थोड़ी देर बाद सम्पाती ने जाम्बवन्त आदि वीरों को कहा- हे वीर! दक्षिण दिशा में एक त्रिकूट पर्वत है, उसपर लंका नगरी बसी हुई है । उसी लंका की अशोकवाटिका में सीता उदास मन से बैठी हुई है ।"

चौ०

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ॥

तहँ असोक उपबन जहँ रहई । सीता बैठि सोच रत अहई ॥

सम्पाती की बात सुनकर सभी वीर उठ खड़े हुए और हनुमान्‌जी ने पूछा- कहाँ हैं सीता माता? यह सुनते ही सम्पाती ने कहा- तुमलोग सीता माता को यहाँ से नहीं देख सकते ।

दो०

मैं देखउँ तुम्ह नाही, गीधहि दृष्टि अपार ।

वृद्ध भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ॥

"हे वानर वीरों! गिद्ध की दृष्टि अपार होती है । तुम अपनी आँखों से इतनी दूर तक नहीं देख सकते । गिद्ध आकाश में उड़ते हुए भी जमीन के छोटे-छोटे जीवों को देख लेता है । अब एक ही उपाय है कि जो व्यक्ति सौ योजन के सागर को लाँघ सकता है, वही वहाँ जाए । आपलोग निराश न हों, प्रभु श्रीराम पर भरोसा करें, वे आपको संकट से बचा लेंगे ।

गीत

प्रभु पर तू भरोसा कर, वह संकट से बचा लेगा ।

प्रभु का नाम ईश्वर है, वह सबके मन में रहता है,

जिसे पूरा भरोसा है, उसे वह याद रखता है ।

ये सूरज चाँद तारे, आसमां में उसकी फितरत है,

जहाँ में फूल जो खिलते, सभी में उसकी रहमत है ।

नदी झरनों के कलरव गीत, बनकर गुनगुनाते हैं,
गगन के ओस की बूंदें, चमन को लहलहाते हैं ।
नबी पर है भरोसा तो, वो जीवन को सजा देगा,
तेरे टूटे हुये तारों को, वह फिर से सजा देगा ।
घिरा हो संकटों से गर तो, वह तुझको बचा लेगा,
भंवर में फँस गई किश्ती, तो वह तुझको बचा लेगा ।

विशेष प्रसंग

(एक योजन चार कोस का होता है । सौ योजन का अर्थ है चार सौ कोस । एक कोस दो मील, लगभग तीन कि॰मी॰ के बराबर होता है । इस तरह लंका की दूरी समुद्र तट से बारह सौ किलोमीटर होने का अनुमान है ।)

चौ०

जो नाघइ सत जोजन सागर । करइ सो राम काज मति आगर ॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा । राम कृपाँ कस भयउ सरीरा ॥

सम्पाती ने कहा– "वानर वीरों! राम की कृपा अपरम्पार है । देखो उनकी कृपा से मेरे शरीर में पुनः रोएं उगने लगे हैं और मेरे पंख बढ़ने लगे हैं । तुमलोग प्रभु श्रीराम पर भरोसा रखो, तुम्हारा संकल्प पूरा होगा ।" यह कह सम्पाती वहाँ से चला गया । इधर सभी लोग फिर चिन्ता में पड़ गये । रीछपति जाम्बवन्त ने कहा– सम्पाती ने कहा है कि इस विशाल समुद्र को पारकर किसी को लंका जाना चाहिए । मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूँ ।

चौ०

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी । तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी ॥

दो०

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय धरी महँ दीन्हीं सात प्रदिच्छन धाइ ॥

जाम्बवन्त ने कहा- "जब प्रभु राजा बलि को बांध रहे थे, तब उस समय उनका शरीर विराट हो गया था और मैंने उनके विराट शरीर की सात बार प्रदक्षिणा की थी । लेकिन अब तो यह संभव नहीं है ।" जाम्बवन्त की बात सुनकर अंगद ने कहा- "मैं तो लंका जा सकता हूँ, लेकिन मेरे लौटने में संदेह है । क्योंकि रावण का छोटा बेटा अक्षय कुमार को हमारे गुरु ने वरदान दे दिया था कि अगर वह मुझे एक घूँसा लगा देगा, तो मैं मर जाऊँगा । इसी कारण अगर लंका में अक्षय कुमार से मेरी भेंट हो गई तो, वह मुझे मार डालेगा ।"

चौ०

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा । जियँ संशय कछु फिरती बारा ॥

यह सुनकर जाम्बवन्त ने कहा- "अंगद! तुम तो हमारे नायक हो, तुम यहीं रूककर व्यवस्था सम्भालो । मैं हनुमान्‌जी को उनका बल स्मरण कराता हूँ, क्योंकि हनुमान्‌जी बचपन से ही बलवान थे, अतिबल के कारण वे जंगल में तप कर रहे संत-महात्माओं को क्रीड़ावश बहुत सताते थे । इससे दुःखी होकर एक संत ने हनुमान्‌जी को शाप दे दिया था कि तुम अपना बल भूल जाओ, लेकिन जब कोई तुम्हें तुम्हारा बल याद करायेगा, तभी तुम्हें इसका स्मरण हो सकेगा ।"

विशेष प्रसंग

(हनुमान्‌जी, भगवान् शिव के तेज स्वरुप माता अंजनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । कहा जाता है कि समुद्र मंथन के बाद जब अमृत का बँटवारा होने लगा तो देवता और राक्षस लड़ने लगे । उसी समय भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर देवताओं को अमृत पिलाया था । विष्णु के मोहिनी रूप को देखकर भगवान् शिव को शुक्रपात हो गया था, इस शुक्र को माता अंजनी के कान में फूंक मारकर वायु की सहायता से गर्भ धारण कराया गया था । इसलिए हनुमान्‌जी को शंकर सुवन, पवन पुत्र और केसरि नन्दन भी कहा गया है ।

कहा जाता है कि बचपन में हनुमान्जी लाल सूर्य को खाने पहुँचे थे । यह देख इन्द्र को लगा कि अगर यह बालक सूर्य को निगल गया तो अनर्थ हो जाएगा । इसलिए इन्द्र ने अपने बज्र से हनुमान्जी की ठोढ़ी पर आक्रमण किया। इस कारण हनुमान्जी को बजरंगी (बज्र अंग) भी कहा जाता है । बज्र की चोट से हनुमान्जी जमीन पर गिर गये । यह देख पवनदेव ने संसार में वायु का चलना बन्द कर दिया था । जब संसार के जीव वायु के अभाव में मरने लगे तो इन्द्र आदि सभी देवता पवनदेव को मनाने पहुँचे । पवनदेव ने कहा कि आप सभी लोग मिलकर हनुमान् को अपनी-अपनी शक्ति दें, ताकि वह महाबलशाली बन सके । उसी समय सभी देवताओं ने हनुमान्जी को अपनी-अपनी शक्ति दी । तभी से हनुमान्जी अतिशय बलशाली हो गये । सभी देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियों से हनुमान् को विभूषित किया और सूर्यदेव ने हनुमान्जी को शिक्षा देना स्वीकार किया । हनुमान्जी सूर्य के शिष्य हैं, इसलिए उन्हें सभी शास्त्रों का ज्ञान है । इसी बल को विस्मृत हो जाने का श्राप तपस्वी महात्माओं ने दिया था । इसीलिए जाम्बवन्तजी ने सोचा कि हनुमान्जी को उनके उसी बल की याद दिलाने की जरूरत है ।)

जाम्बवन्तजी द्वारा हनुमान्जी को बल स्मरण कराना

चौ०

पवन तनय बल पवन समाना । बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ॥

"हे हनुमान्जी! आप तो महादेव के अंश से अवतरित पवन पुत्र हैं । आपका विस्तार तो पवन के समान है । आप विराट हैं, महाशक्तिशाली हैं, इस संसार में कौन ऐसा काम है जिसे आप नहीं कर सकते । आप अपनी शक्ति का स्मरण करें और प्रभु श्रीराम के कार्य को पूरा करें । उस समय हनुमान्जी राम-नाम का जाप करने में मग्न थे । राम जय जय राम, श्रीराम जय जय राम का पाठ हनुमान्जी कर रहे थे, उसी

समय जाम्बवन्तजी की बात हनुमान्‌जी को सुनाई पड़ी । उनकी बात सुनते ही हनुमान्‌जी का शरीर बढ़ने लगा और थोड़े ही क्षण में उनका शरीर **"कनक भूधराकार"** बन गया । शरीर के बढ़ते ही हनुमान्‌जी ने गर्जना की । उनकी गर्जना सभी दिशाओं में गूंजने लगी । हनुमान्‌जी का यह विराट स्वरुप देखकर वहाँ सभी लोग अचम्भित हो गये । सभी हाथ जोड़कर हनुमान्‌जी के इस विराट स्वरुप को प्रणाम करने लगे । सभी ने हनुमान्‌जी की प्रार्थना में एक गीत गाया है । आइये, हम लोग भी उस गीत को गाकर हनुमान्‌जी का आशीर्वाद प्राप्त करें-

- प्रार्थना -

संकट से मुझको बचाना,
पवनसुत मुझको बचाने आना!

भक्ति से जिसने पुकारा है तुझको,
संकट से तूने बचाया है उसको ।
आशीष से अपने बचाना
पवनसुत, मुझको बचाने आना ॥

तेरे चरणों में कबसे पड़ा हूँ,
संकट के बादल से पल-पल घिरा हूँ ।
चरणों में मुझको बिठाना,
पवनसुत, मुझको बचाने आना ॥

अब तक किसी ने दिया ना सहारा,
नैया भंवर में है पाया न किनारा ।
अबकी तू पार लगाना,
पवनसुत, मुझको बचाने आना ॥

वानर और रीछों की प्रार्थना सुनकर हनुमान्‌जी प्रसन्न हुए और हनुमान्‌जी ने जाम्बवन्तजी से पूछा-

चौ०

जाम्बवन्त मैं पूँछउँ तोही । उचित सिखावनु दीजहु मोही ॥

मुझे बताइए कि क्या करना चाहिए? जाम्बवन्त ने कहा– "हनुमान्! तुम्हें कुछ नहीं करना है, तुम्हें तो सिर्फ सीता माता का पता लगाना है । उनकी सुधि लेकर तुम लौट आओ, शेष काम प्रभु श्रीराम स्वयं करेंगे ।"

चौ०

एतना करहु तात तुम्ह जाई । सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजीवनैना । कौतुक लागि संग कपि सेना ॥

विशेष प्रसंग–

(हनुमान्जी जब विराटस्वरुप में प्रकट हुए, तो उनके शरीर में राम–कृपा से ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों का दर्शन होने लगा । हनुमान्जी के विराट रूप के देखकर जाम्बवन्तजी ने सोचा कि हनुमान्जी को तो अपार शक्ति प्राप्त हो गई है, यह तो रावण की लंका को कौन कहे, त्रिकूट पर्वत को भी नष्ट कर देंगे ।)

चौ०

सहित सहाय रावनहि मारी । आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥

अगर हनुमान्जी ने अपने पूरे बल का प्रयोग किया, तो श्रीराम रावण का नाश कैसे करेंगे? रावण की मृत्यु तो राम के हाथों ही लिखी है । इसलिए जाम्बवन्तजी कहते हैं कि हनुमान्! तुम लंका जाकर वहाँ दूत की तरह ही नियमों का पालन करते हुए सारे कार्यों को पूरा करके आना । नियम है कि दूत अपने विवेक से शत्रु देश का पूरा समाचार प्राप्त करता है । शत्रु को अपनी शक्ति का बोध कराता है, उसके मन में भय पैदा करता है, शत्रु देश की शक्ति का अन्दाजा लगाता है । इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर शत्रु देश में तोड़–फोड़ भी करता है । इसीलिए जाम्बवन्तजी ने कहा कि तुम तो बुद्धि, विवेक, विज्ञाननिधान हो, इसके साथ ही बुद्धि, विवेक और विज्ञान की शिक्षा तुमने सूर्य से प्राप्त की है । तुम तो सर्वविद्यासम्पन्न हो, तुम समस्त ऋद्धि–सिद्धि के ज्ञाता हो, तुम्हें छह शास्त्रों (वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय और वैशेषिक) का ज्ञान है । सिद्धियों में अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य,

इषित्व और वशित्व को तुमने वश में कर लिया है। तुम चाहो तो पूरे ब्रह्माण्ड को नष्ट कर सकते हो।" लेकिन तुम दूत हो, दूत के दायित्व का निर्वाह करना।

(आज भी गाँवों में लोग कहते हैं कि वहाँ जाना और सब काम सुधिया कर आना। कई लोग प्रश्न उठाते हैं कि हनुमान्‌जी को केवल समाचार लाने को कहा गया था। तो फिर उन्होंने लंका में तोड़-फोड़ करके आग क्यों लगाई? दरअसल हनुमान्‌जी का उद्देश्य लंका की व्यवस्था को भंग करना था, ताकि उसके राजा दुराचारी रावण के कुकर्म से होने वाले परिणामों से लोगों के मन में भय पैदा हो जाए। दूत अवसर आने पर वहाँ कोई भी निर्णय ले सकता है। हनुमान्‌जी ने कहीं अपने से उपद्रव नहीं किया है। जब-जब उन्हें उकसाया गया, उन्हें चुनौती दी गई, तभी उन्होंने बल-प्रयोग किया। अशोकवाटिका में पहले राक्षसों ने उन पर आक्रमण किया। तब हनुमान्‌जी ने जवाब दिया। रावण के लोगों ने हनुमान्‌जी की पूँछ में आग लगाई, हनुमान्‌जी पूँछ को जलने से बचाने के लिए इधर-उधर घूमने लगे, जिस कारण लंका जली। हनुमान्‌जी तो अपनी जान बचा रहे थे, जान बचाना कोई पाप नहीं है। अपना शरीर तो सबको प्रिय होता है। हनुमान्‌जी आग से अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। इसमें हनुमान्‌जी का दोष कहाँ? वे तो लंका की सुधि ले रहे थे, इसमें थोड़ी टूट-फूट हो गई, तो वे क्या करते? दूत का धर्म है कि वह शत्रु देश की पूरी सूचना लेकर आवे। युद्ध तो प्रभु श्रीराम को करना था, लेकिन उनके लिए मार्ग बनाना तो दूत का ही काम है। इसलिए यह शंका निराधार है कि हनुमान्‌जी ने जाम्बवन्तजी की आज्ञा का पालन नहीं किया। वे चाहते तो सीता माता को उठा लाते, लेकिन उन्होंने वैसा नहीं किया। उन्हें सभी नियमों की जानकारी थी, इसलिए उन्होंने लंका में उतना ही किया, जितना आवश्यक था। इसीलिए गोस्वामीजी ने "सुधिआई" शब्द का प्रयोग किया है।)

छं०

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखनिहैं॥

जाम्बवन्त कहते हैं- "प्रभु श्रीराम खेल-खेल में रावण का नाश करेंगे। क्योंकि परमात्मा का अवतार दुष्टों का नाश करने के लिए ही होता है। हनुमान्! दूत की

भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । वह अपने राजा के लिए जो उचित होता है, वैसा ही निर्णय लेता है । ध्यान रखना, दूत को क्रोध नहीं करना चाहिए । दूसरे देश में जाकर अपना चरित्र और विचार उत्तम रखना चाहिए । किसी अपरिचित पर विश्वास नहीं करना चाहिए । अपनी वाणी पर संयम रखना चाहिए और अपनी सुरक्षा में सदैव सतर्क रहना चाहिए । दूत कोई सामान्य व्यक्ति नहीं होता । वह अपने राजा का विश्वासपात्र प्रतिनिधि होता है । उसके किसी एक गलत निर्णय से देश और राजा की प्रतिष्ठा गिर सकती है । इसलिए प्रतिक्षण सतर्क रहना । शत्रु देश का कोई भी व्यक्ति तुम्हें अपने छल-बल से फँसा सकता है । राक्षस बड़े मायावी होते हैं, उनके किसी भी प्रलोभन में मत फँसना । विशेषकर स्त्री के मायामोह से बचना । क्योंकि मायावी लोग स्त्री को माध्यम बनाकर तुम्हारा मार्ग भ्रष्ट कर सकते हैं । शत्रु देश में अपनी लंगोट, अपनी वाणी और अपने कार्यों का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करना । एक एक क्षण की सतर्कता से ही तुम सीता माता का समाचार प्राप्त कर सकते हो ।

ध्यान रखना, तुम जिस कार्य से जा रहे हो, केवल उसी पर ध्यान देना, भटकाव से बचना । क्योंकि जो व्यक्ति अपने लक्ष्य अथवा वह काम, जिसे वह पूरा करने के लिए जाता है, उसे छोड़कर किसी दूसरे काम में लग जाता है तो, वैसा व्यक्ति जीवन में हर जगह विफल ही होता है । अपने लक्ष्य में सफल वही होता है, जो दिन-रात केवल लक्ष्य को ही देखता रहता है । तुम तो ज्ञानियों में महाज्ञानी हो, इसलिए सावधानीपूर्वक अपना काम पूरा कर प्रभु श्रीराम को पूरी सूचना देना । तुम्हारी सूचना पर ही आगे की योजना निर्भर करती है ।

ऐसा देखा भी जाता है कि अयोग्य व्यक्ति की सूचना पर अगर कोई योजना बनाई जाती है, तो वह योजना असफल हो जाती है । तुम तो महाज्ञानी हो, लेकिन मेरे पास अनुभव है और तुम्हारे पास ज्ञान । मैंने अपने अनुभव से तुम्हें इतनी बातें बताई । क्योंकि तुम पहली बार किसी दूसरे देश में जा रहे हो । वहाँ तुम्हें कोई अपना नहीं मिलेगा, परदेस में मनुष्य अपना साथी, माता-पिता, भाई-बन्धु और गुरु वह स्वयं रहता है ।

ध्यान रखना कि वहाँ तुम्हारी सहायता करने वाला कोई नहीं होगा । तुम्हें हर संकट से स्वयं अकेले ही जूझना होगा । लंका के राक्षस बड़े मायावी हैं, वे हमारे

आर्यावर्त में घुसकर जब आतंक फैला सकते हैं, तो वे अन्य कोई भी निम्न स्तर का काम कर सकते हैं । क्योंकि उनके जीवन में नैतिकता नहीं है । वे अनैतिक हैं और अनैतिक व्यक्ति कोई भी अनैतिक काम कर सकता है । जिसका विचार और चरित्र अच्छा हो, उससे मित्रता या शत्रुता करने में बुराई नहीं है, लेकिन जो नीच है, उससे मित्रता तो हो ही नहीं सकती, वह शत्रुता करने योग्य भी नहीं है । क्योंकि दुराचारी व्यक्ति न मित्र योग्य होता है और न शत्रु योग्य । वह अपनी नीचता से किसी को भी अनैतिक तरीके से नीचे गिरा सकता है । इसलिए ऐसे व्यक्तियों से हमेशा दूर रहने में ही कल्याण होता है । इसलिए, हनुमान्! ध्यान रखना, जब तक पूरा भरोसा न हो जाए, तब तक उनकी चापलूसी में मत फँसना । क्योंकि ऐसे लोग तुम्हें कभी भी भीषण परिस्थिति में फँसा सकते हैं । रावण लंका का राजा है । उसने जब सीता माता का हरण किया है, तो वह पूरी तरह सावधान होगा । कहते हैं शत्रु, आग, ऋण और बीमारी को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए । हनुमान्! हमेशा प्रभु श्रीराम का स्मरण करते रहना और सीता माता का पता लगाकर शीघ्र लौट आना । हमलोग इसी तट पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।" हनुमान्जी ने पूरे ध्यान से जाम्बवन्तजी के परामर्शों को सुना और उसी अनुरूप काम करने का आश्वासन दिया ।

दो०

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि ।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रभु श्रीराम का यश सुनता है, वह जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुनगान ।
सादर सुनहिं जे नर तरहिं सिंधु बिना जलयान ॥



किष्किन्धा में श्रीराम की राष्ट्रीयता

श्रीराम परमात्मा हैं, लेकिन वे नर-लीला कर रहे हैं । वे इस मर्त्यलोक में वह सभी काम करते हैं, जो एक सामान्य मनुष्य करता है । कहीं से भी पता नहीं चलने देते कि वे कोई चमत्कारी पुरुष हैं, मनुष्यों के बीच में रहकर मनुष्य के समान आचरण करना श्रीराम की विशेषता है । श्रीराम ने स्वयं कहा है- **"मैं कछु करब जगत नरलीला ।"** राम की श्रेष्ठता इसी में है कि वे प्रत्येक मनुष्य में यह बोध भरना चाहते हैं कि तुम निरीह प्राणी, अबला अथवा हताश नहीं हो । प्रभु जनमानस से कहते हैं- "वन खण्डों में मैं अकेला जब राक्षसों अथवा दुष्टों का नाश करने का संकल्प ले सकता हूँ, तो तुम क्यों नहीं ले सकते हो? तुम भी मनुष्य हो और मैं भी मनुष्य हूँ । तुममें भी वही अनन्त ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, जो मुझमें हो रही है । मनुष्य-मनुष्य में अन्तर नहीं होता, मनुष्य के विचारों, संकल्पों और आचरणों में अन्तर होता है । विचार का अर्थ है- मानसिक ऊर्जा का सम्प्रेषण । जब स्वस्थ मस्तिष्क कुछ चिन्तन करता है, तो विचार पैदा होता है । संकल्प वह है, जो मन में उठे विचारों को पूरा करने का मन बनाता है और आचरण वह है जो विचारों के अनुरूप व्यवहार करता है । विचार का अनुसरण ही आचरण है ।"

श्रीराम ने समाज और देश की पृष्ठभूमि में विचार करने की प्रेरणा जनमानस को दी । उन्होंने जनमानस की बिखरी हुई शक्तियों को बटोरा । जो वनवासी वानर, कोल-भील अपने घरों में संसार से अलग-थलग होकर जी रहे थे, उन्हें घरों से निकालकर चौपालों में बैठाया । लोग जब चौपालों में बैठते हैं, तो समाज की प्रगति की चर्चा होती है । श्रीराम ने इसीलिए वनवासियों को घरों से बाहर निकालकर समाज में खड़ा किया । क्योंकि इन वानर और भीलों के पास शक्ति की कमी नहीं थी, कमी थी तो एक ऐसे नायक की, जो इन्हें मार्ग दे सके, इनका नेतृत्व कर सके । यह विज्ञान का नियम है कि सूर्य की किरण तो चारों तरफ फैली है, लेकिन जब हम लेंस से उस किरण को पार कराते हैं, तो किरण एक बिन्दु पर घनीभूत हो जाती है और वहाँ आग पैदा हो जाती है । किरण तो सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन केन्द्रित नहीं है । इसीलिए श्रीराम ने सोचा कि इन वनवासियों की बिखरी हुई शक्ति को केन्द्रित की जाए । इसी दृष्टि से परमात्मा श्रीराम ने अपना **"रामत्व"** छोड़कर वनवासियों की कुटिया में जाकर

उन्हें चौपालों में एकत्र होने को कहा । क्योंकि उन्हें पता था कि इस आर्यावर्त की बिखरी हुई शक्तियों को इकट्ठी नहीं की गई, तो सारा देश दुश्मनों के हाथ में चला जाएगा । रावण बहुत पहले से ही इस आर्यावर्त को टुकड़ों में बांटने का प्रयास कर रहा था । अगर इन वनवासियों में समाज और राष्ट्र को बचाने का संकल्प नहीं किया गया, तो इस मातृभूमि को बचाना सम्भव नहीं है ।

इसके लिए श्रीराम ने दो नीतियों का अनुसरण किया । पहला यह कि इन वनवासियों को पहले एकत्र किया जाए । इनके मन में देश के प्रति आशा, विश्वास और भक्ति पैदा की जाय। जब देश के सभी लोग एक बन जाएं, तब शत्रुओं पर आक्रमण किया जाय । स्पष्ट है कि उनकी दूसरी नीति थी, आक्रमण ।

श्रीराम विवेकशिरोमणि हैं । वे जानते थे कि अगर अपनी शक्ति का प्रयोग करके एक बार राक्षसों का संहार कर देते हैं और वहाँ के जनमानस अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ नहीं होते हैं तो सम्भव है कि देश पर कल कोई दूसरा शत्रु आक्रमण कर देगा । अतः इसके लिए स्वयं समर्थवान् बनना चाहिए । श्रीराम ने वानर और भीलों को एकत्र कर उनके स्वाभिमान को जगाया । यही कारण है कि जो वनवासी इन राक्षसों के भय से अपने-अपने घरों में बन्द रहते थे, वही लोग जब एकत्र हुए तो उनकी गर्जना से पूरा वन-प्रदेश कम्पित होने लगा । उनकी सामर्थ्य को श्रीराम ने जगाकर उनके स्वाभिमान को ललकारा । यही श्रीराम के कुशल नेतृत्व का उद्देश्य था ।

आज श्रीराम को हम मंदिरों में पूजते हैं, धूप-आरती करते हैं लेकिन उन्होंने जीवन भर वनों में घूमकर संघर्ष किया, दुष्टों का नाश किया । श्रीराम अपनी पूजा कराने के लिए अवतरित नहीं हुए थे, वे तो यह बताने आये थे कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का अंश है । **"ईश्वर अंस जीब अबिनासी ।"** वह चाहे तो अपनी शक्ति का विस्तार कर असम्भव काम को भी पूरा कर सकता है । इसीलिए श्रीराम ने अपने जीवन में कोई चमत्कार नहीं किया, साधारण मनुष्य की तरह वन में भटकते रहे, संत-महात्माओं से जीवन का मार्ग पूछते रहे, अपनी पत्नी के हरण की पीड़ा झेलते रहे, ऐसा कोई परमात्मा नहीं करता । लेकिन उन्हें तो मनुष्य बनकर कर्म करना था और यह बताना था कि मनुष्य के जीवन में अगर ऐसा संकट आवे तो उससे कैसे निकलना चाहिए? मनुष्य है तो सुख-दुःख होगा ही, शरीर है तो वह बीमार पड़ेगा ही, उसे भूख-प्यास

लगेगी ही । इसलिए उन्होंने वैसा दुःख भोगा, जैसा सामान्य मनुष्य भोगता है । एक सामान्य मनुष्य कैसे इतने बड़े संकट का नाश करता है, अकेले इतने बड़े शत्रु से कैसे लड़ता है, इसी विषय को श्रीराम स्थापित करना चाहते हैं । ध्यान रहे कि प्रभु से जब कहा गया कि रावण से लड़ने के लिए अयोध्या से सेना मंगायें तो, उन्होंने कहा–"कोई भी लड़ाई सैनिक नहीं लड़ता, मनुष्य का मनोबल लड़ता है ।" राम के इसी संकल्प ने त्रिलोकविजेता रावण को परास्त किया । इससे स्पष्ट पता चलता है कि जिस प्रकार सलाई की एक तिल्ली की आग से बड़े जंगलों को जलाया जा सकता है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी संकल्पशक्ति से अपने बड़े से बड़े शत्रु का नाश कर सकता है । आवश्यकता है तो, निष्ठा और संकल्प की ।

किष्किन्धाकाण्ड में सर्वत्र श्रीराम की संकल्पशक्ति प्रदर्शित है । वे अपनी पत्नी के हरण से व्यथित हैं, उन्हें शीघ्र सहायता चाहिए । लेकिन वे सहायता के लिए बाली के पास नहीं जाते, क्योंकि बाली उनके शत्रु का मित्र है । इसीलिए उन्होंने अपने शत्रु के मित्र के शत्रु सुग्रीव से मैत्री की । श्रीराम को पता था कि जिस प्रकार मैं पत्नी-वियोग में व्यथित हूँ, उसी प्रकार सुग्रीव भी व्यथित है । तभी उन्होंने सुग्रीव से मैत्री की । दोनों अपनी-अपनी व्यथा के निवारण के लिए एकजुट हुए । क्योंकि शत्रु के शत्रु को अपना मित्र बनाना ही सुनीति है । श्रीराम ने इसी नीति का पालन किया । सुग्रीव के आत्मबल को जगाया और इतनी बड़ी सेना तैयार किया ।

श्रीराम हमारे परमात्मा तो हैं ही, उनमें सभी दिव्यता भरी पड़ी है, लेकिन वे मनुष्य बनकर हम सबों को बता रहे हैं कि तुम सभी आत्मरक्षा और देशरक्षा के लिए स्वयं तैयार हो । परमात्मा के आशीर्वाद से तुम्हें सफलता मिलेगी, लेकिन प्रयास तो तुम्हें ही करना पड़ेगा । मनुष्य के जीवन में भी ऐसी परिस्थिति आती है, जब वह दुःखों और संकटों से परेशान हो जाता है । वह चाहता है कि केवल राम-राम कहकर वह संकटों से मुक्त हो जाए । बिना प्रयास के कोई भी व्यक्ति संकटों से मुक्त नहीं होता । जब श्रीराम को स्वयं शत्रु को परास्त करने के लिए इतना प्रयास करना पड़ा, इतनी भीषण लड़ाई लड़नी पड़ी तो, हम केवल राम-राम कहकर संकटों पर कैसे विजय प्राप्त कर सकते हैं? कहा गया है- **"दैव-दैव आलसी पुकारा ।"** आलसी व्यक्ति ही भगवान् का केवल नाम लेकर संकट से मुक्त होना चाहता है । वह नहीं समझता कि उनका परमात्मा स्वयं शत्रु से लड़ता है, चोट भी खाता है और दूसरी ओर

हम बिना लड़े, आलसी बनकर युद्ध जीतना चाहते हैं । श्रीराम यही तो बताना चाहते हैं कि **"जब मैं परमात्मा बनकर संघर्ष कर सकता हूँ तो तुम ऐसा क्यों नहीं करते?"**

जंगल के आश्रमों में बैठे संत-महात्मा प्रभु का नाम जपते रहे, यज्ञ करते रहे और राक्षस उनकी पिटाई करते रहे । श्रीराम का कहना है कि "यज्ञ से तुम्हें परमात्मा अवश्य मिलेगा, इससे तुम्हारी आत्मा को दिव्यता प्राप्त होगी, लेकिन तुम्हारे शरीर की रक्षा कौन करेगा ?" शरीर और आत्मा अलग-अलग चीजें हैं । शरीर की रक्षा के लिए भोजन अनिवार्य है और आत्मा की पवित्रता के लिए भक्ति आवश्यक है । अगर कोई कहे कि मैं भक्ति करता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसके शरीर में कोई विकार नहीं होगा । बीमारी शरीर का धर्म है, आत्मा को उससे कुछ लेना-देना नहीं है । बीमारी शरीर को होती है, आत्मा को नहीं । कहा गया है- **"शरीरं व्याधिगृहम् ।"**

श्रीराम कहते हैं- "शरीर को अपना काम करने दो । तुम आत्मा हो, शरीर से तुम प्रभावित नहीं होगे ।" शरीर तो वाहन है, वाहन के खराब होने से वाहन का मालिक बीमार नहीं हो जाता । शरीर तो मरणशील है, लेकिन आत्मा कभी नहीं मरती । इसलिए जो दिव्यपुरूष होते हैं, वे शरीर को अलग रखकर देखते रहते हैं । श्रीराम ने वही किया । श्रीराम के शरीर पर संकट आया, सीता का हरण हुआ, शरीर के पराक्रम से ही उन्होंने रावण का नाश किया । श्रीराम के शरीर में जो ईश्वरत्व है, वह अलग खड़ा होकर सब कुछ देखता रहा । श्रीराम के शरीर ने पुत्र-धर्म का पालन किया, पति-धर्म का पालन किया और आर्यावर्त के सुपुत्र होने के कारण उन्होंने देश की रक्षा के लिए संघर्ष किया । यह सब उनका शरीर धर्म था, लेकिन राम परमात्मा भी हैं, इसलिए भक्तों को अपनी भक्ति भी देते हैं । जटायु, बाली को भक्ति देकर उन्होंने मोक्ष प्रदान किया। केवट, शबरी एवं अन्य सन्तों को उन्होंने दिव्यता का वरदान दिया । किष्किन्धा में श्रीराम ने अद्भुत नरलीला की है ।

वर्षा-काल में पत्नी के वियोग में वे सामान्य मनुष्य की तरह वेदना प्रकट करते हैं । इसका अर्थ है कि वे अति सामान्य मनुष्य हैं, जो मनुष्यों की तरह रोते भी हैं । विपत्तिकाल में मनुष्य को धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि विपत्ति में विवेक काम नहीं करता । वर्षाकाल के उपरान्त जब श्रीराम, लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं तो वे लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं- "लक्ष्मण! क्रोध में कोई निर्णय मत करना ।

कोई भी निर्णय शान्त मन से लिया जाता है, क्रोध में लिया गया निर्णय हमेशा गलत होता है ।" श्रीराम पूर्ण समर्थवान् हैं, फिर भी मित्रों का अनादर नहीं करते । सुग्रीव जीव हैं और जीव हमेशा आहार, निद्रा, भय और मैथुन की मूल प्रवृत्ति के अधीन रहता है । ऐसा तो प्रत्येक जीव करता है । लेकिन परमात्मा अथवा गुरु का काम है कि वह अपने शिष्यों को हमेशा जगाकर रखे । श्रीराम सुग्रीव को जगाते हैं । श्रीराम को सुग्रीव की आवश्यकता नहीं है, वे अकेले रावण को परास्त कर सकते हैं । लेकिन वे सुग्रीव को साथ लेकर चलते हैं । श्रीराम ने रावण और कुम्भकर्ण को मारा । लक्ष्मण ने मेघनाथ का वध किया । सुग्रीव आदि वीरों ने लंका के सैनिकों का संहार किया । श्रीराम यह सब जानते हुए सुग्रीव से सहायता लेते हैं, यही युद्ध-नीति है ।

सुग्रीव अपने भाई बाली से परास्त होकर जंगलों में छिपा हुआ है । उसमें हीन-भावना बढ़ गई है । इसलिए श्रीराम ने पहले सुग्रीव के मन में बैठी हीन-भावना का इलाज किया, तब सुग्रीव की वीरता लौटी । आज हमारे समाज में अनेक लोग ऐसे शक्तिशाली हैं, जो असम्भव काम को भी पूरा कर सकते हैं । लेकिन उनमें आत्मबल नहीं है । जिस व्यक्ति के पास आत्मबल होता है, वह बड़ा से बड़ा काम भी पूरा कर लेता है । आज भी हमारे समाज में ऐसे लोग हैं, जो हिमालय की चोटी पर खड़े होकर भारत के राष्ट्रध्वज का अभिवादन करते हैं । समुद्र की लहरों पर अपनी नैया को खेते हैं, और कुछ लोग भय से काँपते हुए घरों में पड़े रहते हैं ।

भय से कम्पित जो रहे, बल विवेक मिट जाय ।
निर्भय मन में सर्वदा, शौर्य शक्ति बढ़ जाय ॥

जो इतिहास पुरुष होते हैं, वे हमेशा समाज में अग्रणी भूमिका निभाते हैं । अगर परिवार, समाज अथवा देश पर कोई संकट आया है तो, किसी को तो आगे बढ़ना ही पड़ेगा । इसलिए वही मनुष्य राष्ट्रपुरुष बनता है, जो सदैव नैतिक नियमों का पालन करते हुए देश की भलाई में लगा रहता है । वैसे ही लोगों को समाज में यश और प्रतिष्ठा मिलती है ।

जो सदा निर्भय रहे, काल सके न खाए ।
बल विवेक से जगत में, कालजयी कहलाए ॥

किष्किन्धा में श्रीराम ने मनुष्य के जीवन को स्वयं आचरण करके आनन्दमय और सुखमय बनाने का उदाहरण प्रस्तुत किया है । संकट के समय मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती, लेकिन श्रीराम कहते हैं- **"संकटकाल में बुद्धि को स्थिर रखना चाहिए, तभी संकट पर विजय प्राप्त किया जा सकता है ।"** क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने ही द्वारा निर्मित मकड़जाल में फँसा हुआ है । अगर संकटकाल में वह धैर्य और विवेक से काम न ले, तो वह एक क्षण भी नहीं जी सकता है । इसलिए जीवन में आशावान् बनकर नैतिक नियमों का पालन करते हुए जीने वाला व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ पुरुष माना जाता है । आज हजारों लोग निराश, हताश बनकर सड़कों पर घूम रहे हैं । वे जीवन जी नहीं रहे हैं, जीवन ढो रहे हैं । हमें समझना चाहिए कि श्रीराम के ऊपर जो संकट आया, उतना बड़ा संकट किसके ऊपर आया होगा । श्रीराम को राज्य से निकाला गया, पिता की मृत्यु हो गई, वन में पत्नी का हरण हो गया, रहने के लिए वनों में स्थान मिला, फिर भी श्रीराम टूटे नहीं । संघर्ष करते रहे, यही कारण है कि हम आज उन्हें परमात्मा मानते हैं ।

आज हम ऐसे अनेक लोगों को जानते हैं, जिन लोगों को अपने जीवनकाल में अनेक कष्ट झेलना पड़ा । आज जिन्हें हम राष्ट्रपुरुष मानते हैं, उनके जीवन में भी कम कष्ट नहीं हुआ । इस संसार में कौन ऐसा है, जिन्हें हम महापुरुष मानते हैं और उनके जीवन में कभी कोई कष्ट नहीं हुआ हो । संकट के कीचड़ में ही सफलता का कमल खिलता है । इसलिए महत्त्व है, मनोबल का, आत्मविश्वास और कुछ करने की तमन्ना का । हमारे देश में ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने समाज और राष्ट्रहित में अपना सब कुछ त्याग कर दिया । वैसे ही लोगों का आज हम अभिनन्दन करते हैं, उनकी जयन्ती मनाते हैं ।

श्रीराम की पूजा हम इसलिए नहीं करते कि वे हमारे परमात्मा हैं, श्रीराम परमात्मा तो हैं, लेकिन सामान्य मनुष्य की तरह आचरण भी करते हैं । अगर वे हमारे प्रभु है तो उनके द्वारा बताये गये मार्गों पर चलना हमारा धर्म है । कहते हैं- **"गुरु और परमात्मा के आचरण के अनुकूल चलनेवाला व्यक्ति ही परमात्म तत्त्व को प्राप्त करता है ।"** श्रीराम ने बताया कि तुम मनुष्य हो, मनुष्य की तरह आचरण करते हुए अपने जीवन को दिव्य बनाओ । अगर तुम्हारा आचरण पवित्र नहीं है, तो लाख

धन-वैभव, साम्राज्य रहते हुए भी तुम निर्बल हो । कोई भी नैतिक व्यक्ति तुम्हें परास्त कर सकता है । राम अकेले थे और त्रिलोकविजेता रावण को उन्होंने हरा दिया । अहिंसा के मार्ग पकड़कर अकेला महात्मा गाँधी भी विशाल ब्रिटिश साम्राज्य को परास्त कर दिया । इसलिए महत्त्व धन-बल का नहीं है, महत्त्व है नैतिक शक्ति का । आज अनेक अरब-खरबपति बरगद के पेड़ के नीचे लंगोटी पहने बैठे किसी बाबा के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं । श्रीराम उसी तरह वृक्ष के नीचे बैठकर त्रिलोकविजेता को परास्त करने की योजना बनाते हैं । उनका यही संकल्प उन्हें परमात्मा बना देता है-

जो दिव्यरूप बन जाता है, उसका विनाश नहीं होता ।
अणु का विनाश तो देखा है, विभु का विनाश नहीं होता ॥

(किष्किन्धाकाण्ड समाप्त)



सुन्दरकाण्ड



श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

सुन्दरकाण्ड

ईशप्रार्थना

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥

राम जगत के मूल हैं, ताको करूं प्रणाम ।
आशीष मिले हनुमान का, जीवन बने निष्काम ॥

हे राम, तुम्हारा गीत, सब भक्तों को आज सुनाऊंगा ।
आशीष मुझे दो अपना, तेरी बात तुझे ही सुनाऊंगा ॥

रा कहत मुख निकसे, निकसत पाप पहाड़ ।
म ऐसा धूर्त है, जो बन्द करत किवाड़ ॥

यह रा शब्द जब से बोला, सब पाप स्वतः बाहर निकला ।
फिर लौट ना पावे पाप कभी, म ने द्वार सदा बदला ॥

हनुमान्‌जी की प्रार्थना

पवनसुत राखो लाज मेरे

मैं सेवक तुम अन्तर्यामी

सबके उर निवसो

चर ओ अचर निरन्तर ध्यावे

मैं अघ भंवर परे - पवनसुत.. ..!

शंकर शेष दिनेश सुरेश

तुमको ध्यान करे

संकट में जब भक्त पुकारे

क्षण में कष्ट हरे - पवनसुत.. ..!

राम सखा के संकट नाशे

औषध लाई धरो

निशिचर वंश सुगम से मारे

ऋषि जन अभय करे- पवनसुत..!

मैं दुखिया तेरे दर ठाढ़े

कबसे द्वार परे

पट खोलो चरणों में ले लो

सब दुःख दूर करो- पवनसुत.. ..!

सब कहते, तुम भक्त शिरोमणि
भक्त को क्यों बिसरे
दीन बन्धु के पद रज कैसे
मेरे माथ पड़े - पवनसुत.. ..!

जब-जब विपति पड़े भक्तन पर
क्षण में विपति हरे
भक्त सुदर्शन दोउ कर जोड़े
कब से चरण पड़े -पवनसुत.. ..!

हनुमत्प्रार्थना

जय हनुमान् बाल ब्रह्मचारी,
भक्त जनों के तुम हितकारी । ॥ 1 ॥

तुम सा वीर जगत् कोई नाहीं,
महावीर तब नाम कहाहीं । ॥ 2 ॥

शिव बिरंचि तेरे उर बसहीं,
विष्णु अनुग्रह तुम पर करहीं । ॥ 3 ॥

राम प्रिय सीता सुत वीरा,
धर्म हेतु तुम धरेउ शरीरा । ॥ 4 ॥

(हनुमान् सतईसा से उद्धृत)

सुन्दरकाण्ड रामचरितमानस का पाँचवाँ काण्ड है । सत्य है कि जीवन में सर्वप्रथम बचपन आता है, फिर युवावस्था, संघर्षकाल, कठिनाइयों से जूझने की तैयारी

एवं इसके पश्चात् जीवन की बगिया में सुन्दर फूल खिलते हैं । इस प्रकार जीवन में सुन्दरता आती है । इस दृष्टि से इस काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहना समुचित है, क्योंकि इससे पूर्व की कथा में बचपन, जवानी, संघर्ष आदि की चर्चा है ।

ध्यान रहे जीवन में केवल सुन्दरता ही नहीं होती, बल्कि हमें अनेक समस्याओं से लड़ना भी पड़ता है । जो व्यक्ति नैतिक जीवन जीते हुए, न सुख में अति प्रसन्न रहता है और न दुःख में निराश होता है, जो सब कुछ परमात्मा का आशीर्वाद मानकर अपना जीवन व्यतीत करता रहता है, उसी के जीवन में ज्ञान का उदय होता है और वैसे ही लोग निष्काम कर्म करते हुए परमात्मा के द्वार में प्रवेश करते हैं ।

इस काण्ड का भक्तों के लिए अत्यन्त महत्त्व इसलिए है कि इसमें हमारे जीवन से संकटों का नाश करने वाले हनुमान्‌जी के पराक्रम की कहानी है । इस काण्ड का पाठ करने वालों का जीवन सदैव सुखद और सुन्दर रहता है, क्योंकि जीवन सुखी तभी होता है, जब उस पर हनुमान्‌जी के आशीर्वाद की वर्षा होती रहती है । जीवन को सुन्दर बनाने वाले इस सुन्दरकाण्ड का महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास ने विस्तार से वर्णन किया है । मैं अपनी मति के अनुसार इस सुन्दरकाण्ड में अपने आराध्यदेव संकटमोचन, भक्तवत्सल हनुमान्‌जी की कहानी सरल भाषा में कहने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ ।

समुद्रतट पर हनुमान्‌जी, जाम्बवन्त, नल-नील, अंगद आदि पराक्रमी वानर वीर बैठे हुए थे । जब यह निश्चय हो गया कि हनुमान्‌जी ही लंका जाऐंगे तो, सभी वानरवीर हनुमान्‌जी के पराक्रम और विशालता को देखकर प्रार्थना करने लगे । अन्य वानर वीरों को यह पता नहीं था कि हनुमान्‌जी इतने बलशाली और बल-विवेक में पूर्ण हैं । उन्हें सभी देवताओं की दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हैं, सूर्य जैसे महाज्ञानी के शिष्य होने के कारण वे सकलगुणनिधान हैं, प्रभु श्रीराम ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की हैं । ऋद्धि-सिद्धि, अणिमा-लघिमा, महिमा-गरीमा आदि की सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त हैं । इन्हीं सिद्धियों के सहारे वे अपने आकार को पूरे ब्रह्माण्ड तक फैला सकते हैं और मसक के समान लघु भी बना सकते हैं ।

अतः जाम्बवान् एवं अन्य वानर वीर हनुमान्‌जी की प्रार्थना करते हुए उन्हें उनकी शक्ति का स्मरण दिला रहे हैं–

हे महावीर, शंकरसुवन, अंजनि माता के प्यारे हो ।
केशरीनन्दन और पवनतनय, देवों की आँख के तारे हो ॥
श्रीराम प्रभु के आशीष से, सगर तट सकल पधारे हो ।
हम भटक-भटक कर चकित हुये, कर क्रंदन में सब व्यथित हुए ॥
अब हार चुके हैं जीवन से, दुश्वार हुए हैं परिजन से ।
कैसे प्रभु चरणों में जाऊँ, परिहास जगत् का सह पाऊँ ॥
अब तक माता को पा न सका, उन्हें ढूंढ प्रभु तक ला न सका ।
धिक्कार हमारे पौरूष का, लंका तक उड़कर जा न सका ॥
हे महारूद्र, वायुनंदन, वायु सम जग में व्यापे हो ।
तुम याद करो पौरूष बल को, शापित हो जिसे विसारे हो ॥
तुम हो अखंड, ब्रह्माण्ड रूप, श्रीराम प्रभु के प्यारे हो ।
इस सागर को तुम लांघ सको, इस विद्या के तुम धारे हो ॥
अणिमा, लघिमा अरू शंभु कृपा, गोपद़ सम सिन्धु बेचारे हैं ।
स्मरण करो हे महावीर, हम सब अब शरण तुम्हारे हैं ॥
शत योजन तक फैला सागर, त्रिकुट सिन्धु किनारे हैं ।
लंका में बैठी है सीता, प्रभु राम नाम सहारे हैं ॥
तुम संकट मोचक हो हनुमत, हम सब संकट के मारे हैं ।
तुम शीघ्र जाओ त्रिकुट शिखर, माता बस तेरे सहारे हैं ॥
सुनते ही माता की पुकार, हनुमत विराट ब्रह्माण्ड बने ।
यह रूप दिवाकर सा उभरा, सब देख चकित स्तब्ध बने ॥

यह विश्वरूप ब्रह्माण्ड देख, सब देव दनुज नतमस्त हुए ।
हे महावीर दो शुभाशीष, हम भक्त सकल संतृप्त हुए ॥
भक्ति, प्रेम, आनंद से, हनुमत को करो प्रमाण ।
उनके ही आशीष से, सिद्ध बने हर काम ॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ने जाम्बवन्त एवं अन्य वानर वीरों की बात सुनकर अपना शरीर बढ़ाया तो सबों की आँखें खुली की खुली रह गईं । इतना विराट स्वरूप इसके पहले कभी किसी ने किसी के पास नहीं देखा था । आखिर वे भगवान् शिव के तेज से उत्पन्न पवनपुत्र हैं और सबसे बड़ी बात कि प्रभु श्रीराम का सीधा आशीर्वाद उन्हें प्राप्त है । कहते हैं- जब किसी पर श्रीराम की कृपा हो जाती है तो, उसे सभी लोग मानने लगते हैं–

चौ०

जा पर कृपा राम की होई । ता पर कृपा करे सब कोई ॥
तिमि सुख सम्पति बिनुहिं बुलाए । धर्म सील अहं जाहि सुहाए ॥

जिस पर राम की कृपा होती है, उसे धन, सम्पत्ति, सुख स्वतः मिल जाता है । हनुमान्‌जी पर तो प्रभु श्रीराम की अहैतुकी कृपा है । उनके लिए संसार में कुछ भी असंभव नहीं है ।

रंक से राजा, रोगी को काया, संकट से सबको बचाया ।
उसी राम ने शक्ति देकर, मुझसे रामकथा कहवाया ॥

चौ०

राम सदा तेरे उर बसइ । कृपा संभू की तुम पर रहइ ॥

हनुमान्‌जी तो शिव और राम दोनों के आशीर्वाद के प्रतीक हैं । इसीलिए सभी वानर वीरों ने हनुमान्‌जी से प्रार्थना की कि अब तुम ही हम सबों की रक्षा करो ।

वानर वीरों की प्रार्थना सुनकर हनुमान्‌जी ने पुनः अपनी शक्ति का स्मरण किया। वे फिर महाविराट रूप में प्रकट हो गये ।

कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ॥

उस समय हनुमान्‌जी को देखने पर लगता था कि सोने का विशाल पहाड़ खड़ा है । हनुमान्‌जी ने सूर्य एवं अन्य देवताओं को प्रणाम किया, अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया और अन्त में भगवान् शिव और प्रभु श्रीराम को हृदय में धारण कर जाम्बवन्तजी से कहा-

चौ०

जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥

हनुमान्‌जी ने कहा कि "आप सभी लोग यहाँ मेरी प्रतीक्षा करें, मैं सीता माता का पता लगाकर शीघ्र ही लौटता हूँ ।"

चौ०

यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥

हनुमान्‌जी जब विराट स्वरूप लेकर आकाश में उड़े, तो सभी लोग यह दृश्य देखकर चकित हो गये । हनुमान्‌जी ने तट पर खड़े एक पर्वत पर छलांग लगाई और अपने पैरों से उस पर्वत को दबाया । पर्वत से जल निकलने लगा । महेन्द्र पर्वत, हनुमान्‌जी के दबाव के कारण पिचकने लगा, जिससे सभी जीव-जन्तु घबड़ा गये । विषैले सांप अपने फण(स्वस्तिक) से विष उगलने लगा और हनुमान्‌जी ने गर्जना करते हुए अपने शरीर को ऊपर की ओर उछाला-

चौ०

बार बार रघुबीर सँभारी । तरकेउ पवनतनय बल भारी ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । एही भाँति चलेउ हनुमाना ॥

जिस प्रकार श्रीराम का अमोघ बाण चलता है, उसी प्रकार हनुमान्‌जी बड़े वेग से उड़े । समुद्र के ऊपर हनुमान्‌जी विशाल स्वरूप में उड़े जा रहे थे । समुद्र ने हनुमान्‌जी को उड़ते हुए देखा, तो उसने सोचा कि हनुमान्‌जी थक गये होंगे, इसलिए

उन्हें थोड़ा विश्राम करना चाहिए । समुद्र ने मैनाक पर्वत को कहा- "तुम पाताल लोक से ऊपर उठ जाओ, जिससे हनुमान्‌जी तुम्हारे ऊपर थोड़ा विश्राम कर लें । पुनः समुद्र ने कहा कि प्रभु राम के पूर्वज महाराज सगर का मुझ पर बहुत उपकार है । उन्हीं के नाम पर मेरा नाम सागर पड़ा है । इसलिए हनुमान्‌जी की सहायता करना हमारा धर्म है ।" मैनाक ऊपर उठकर हनुमान्‌जी के रास्ते में खड़ा हो गया ।

मैनाक ने कहा- "हे महाबली! मैं आपके पिता का मित्र मैनाक हूँ । आप आकाश मार्ग में उड़ते हुए थक गये होंगे, मेरी चोटी पर उतरकर थोड़ा विश्राम कर लें, फिर आगे बढ़ें ।" हनुमान्‌जी ने कहा- "हे पर्वतराज! मैं श्रीराम कार्य से जा रहा हूँ। जब तक मेरा काम पूरा नहीं हो जाता, तब तक मैं विश्राम नहीं कर सकता । आप मेरे पिता के मित्र हैं, इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।" इतना कहकर हनुमान्‌जी ने उस पर्वत को स्पर्श किया कि कहीं यह कोई माया तो नहीं-

दो०

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।।

सत्य है, हम लोग अपने जीवन में देखते हैं कि जो लोग हमेशा विश्राम करते रहते हैं, उन्हें कोई सफलता नहीं मिलती ।

मैनाक ने हनुमान्‌जी से कहा- "प्राचीन काल में पर्वतों के पंख होते थे और वे आकाश में उड़ते रहते थे । इससे पृथ्वी के लोगों में भय रहता था कि कहीं ये पर्वत जमीन पर न गिर जाए । पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के इसी भय के कारण भगवान् इन्द्र ने अपने बज्र से प्रहार कर पर्वतों के पंख काट दिए । लेकिन मैं आपके पिता की सहायता से समुद्र में छिप गया । मैनाक की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा- "हे मैनाक! आपके सत्कार के लिए आपको बहुत धन्यवाद ।" यह कहकर हनुमान्‌जी आगे की ओर बढ़ गए । हनुमान्‌जी को आकाशमार्ग से जाते देख देवताओं ने सोचा कि हमें इनके बल-विवेक की परीक्षा लेनी चाहिए । यह सोच देवताओं ने नागमाता सुरसा को हनुमान्‌जी की परीक्षा लेने हेतु भेजा । सुरसा ने तय किया कि "मैं उसकी परीक्षा तीन तरह से लूँगी । अगर वह तीनों परीक्षाओं में सफल हो गया, तभी उसे सफल माना

जाएगा । उसकी पहली परीक्षा होगी कि क्या वह किसी नारी को देखकर विमोहित होता है, दूसरी- क्या उसके पास बल है और तीसरी- क्या वह किसी विषम परिस्थिति में बुद्धि का प्रयोग करना जानता है?" सुरसा ने इसीलिए सबसे पहले एक सुन्दर नारी का रूप धारण किया । जब हनुमान्जी ने उस पर ध्यान नहीं दिया, तो वह उनके रास्ते में अपना मुँह फैलाकर खड़ी हो गई । हनुमान्जी ने कहा- "माई! तुम कौन हो, और क्या चाहती हो?" सुरसा ने कहा- "मुझे देवताओं ने तुम्हें अपना आहार बनाने के लिए यहाँ भेजा है, मुझे बहुत तेज भूख लगी है और मैं तुम्हें खाकर संतुष्ट होना चाहती हूँ।"

चौ०

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवनकुमारा ॥

राम काजु करि फिरि मैं आवौं । सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं ॥

हनुमान्जी ने कहा- "देखो, राक्षसों ने प्रभु श्रीराम की पत्नी सीता माता का हरण कर लिया है और मैं उन्हीं की खोज में जा रहा हूँ, तुम मुझे जाने दो ।" यह सुनकर सुरसा ने कहा- "मैं मूर्ख नहीं हूँ कि मुँह में आये भोजन को छोड़ दूँ । तुम सीधे मेरे मुँह में प्रवेश करो ।" इस पर हनुमान्जी ने कहा- मैं तुम्हारे मुँह में कैसे प्रवेश करूँ । तुम्हारा मुँह छोटा है और मेरा शरीर बड़ा, तुम अपने मुँह को बड़ा करो (हनुमान्जी यह जानना चाहते थे कि सुरसा को बड़ा-छोटा होने की विद्या का ज्ञान है या नहीं ।) यह सुनते ही सुरसा ने अपना मुँह एक योजन अर्थात् चार कोस का बना लिया । उधर हनुमान्जी ने भी अपने शरीर को और बड़ा कर लिया-

चौ०

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा । कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥

सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥

सुरसा जितना अपने मुँह को फैलाती थी हनुमान्जी उससे दोगुणा स्वरूप बना लेते । फिर अंत में सुरसा ने अपने मुँह को सौ योजन का बना लिया, तब हनुमान्जी ने सोचा इस मूर्ख से प्रतियोगिता करना उचित नहीं है, मुझे तो लंका जाना है । इसलिए उन्होंने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल किया और अपना रूप अत्यन्त छोटा बना लिया ।

अपने इसी छोटे रूप के साथ वे फूर्ति से सुरसा के मुँह में घुसे और उतनी ही तेजी से बाहर निकलकर खड़े हो गये। उनकी बुद्धि देख सुरसा अपने मूल स्वरूप में आ गई और बोली- "हे महावीर! तुम सभी परीक्षाओं में पास हो गये। पहले मैं सुन्दर स्त्री बनकर आई तो तुमने मुझे माई कहा **"सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।"** अर्थात् तुम काम के अधीन नहीं हो। फिर मैंने अपना बल प्रयोग किया, इसमें भी तुम महाबली साबित हुए। तुम बल, बुद्धि और विवेक में निपुण हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि जिस काम के लिए जा रहे हो, उसमें तुम्हें सफलता मिले।"

दो०

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

हनुमान्‌जी ने कहा- "हे दक्षकुमारी! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।" ऐसा कहकर वे आगे की ओर उड़ चले। थोड़ी दूर और जाने पर हनुमान्‌जी को लगा कि मेरे वेग को कोई कम कर रहा है। हनुमान्‌जी ने चारों ओर देखा, सामने एक विशाल प्राणी खड़ा दिखाई दिया। हनुमान्‌जी ने पूछा- "तुम कौन हो?" उसने जवाब दिया- "मेरा नाम सिंहिका है और मैं आकाश में उड़ते हुए जीवों का भक्षण करती हूँ।"

चौ०

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥

विचारणीय

(मुझे लगता है कि रावण ने समुद्र के भीतर रडार की तरह कोई यंत्र लगा रखा था। जो अपने ऊपर से जाते हुए किसी भी जीव को नीचे खींच लेता था। आज भी रडार 150 मील तक की किसी भी उड़ती हुई चीज को प्रभावित कर देता है। संभव है वैसा ही कोई यंत्र उस समय भी रहा होगा।)

हनुमान्‌जी ने सिंहिका पर बड़े वेग से प्रहार किया, उनके प्रहार से सिंहिका नष्ट हो गई। उसके बाद हनुमान्‌जी आगे बढ़े। अत्यन्त तीव्र वेग के कारण हनुमान्‌जी कभी मेघों के ऊपर जाते, कभी नीचे से गुजरते। चार सौ कोस की दूरी तय करना कठिन तो था ही, थकान के कारण हनुमान्‌जी के शरीर से पसीना निकलने लगा।

विशेष प्रसंग

(कहते हैं, हनुमान्‌जी के शरीर से निकला पसीना समुद्र में गिरा और उसे एक मछली खा गई । वह मछली उस पसीने से ही गर्भवती हो गई । फिर उस मछली को किसी मछुआरे ने पकड़कर लंका में बेच दिया । उस मछली के पेट चीरने के क्रम में एक बच्चा निकला, जिसे रावण का भाई अहिरावण पाताल लोक ले जाकर पालने लगा । उसी बच्चे का नाम मकरध्वज पड़ा, जो हनुमान्‌जी को पाताल लोक जाने पर मिला था ।)

हनुमान्‌जी आकाशमार्ग से बढ़ते हुए आगे जा रहे थे, तभी उन्होंने नीचे की ओर त्रिकूट पर्वत पर बसे सुन्दर नगरी लंका को देखा । ऊपर से ही उन्होंने सागर पत्नी सरिता को भी देखा ।

द्रष्टव्य

(सागर की पत्नी, सरिता अपने प्रियतम से मिलने जाती रहती है । सरिता का पानी वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर कम होने लगता है, उसका तट धीरे-धीरे नंगा होने लगता है । यह उसी प्रकार लगता है जैसे कोई नवोढ़ा नायिका अपने प्रियतम से मिलते समय धीरे-धीरे अपना घूँघट हटाती है । सरिता को सागर की पत्नी कहा गया है ।)

हनुमान्‌जी ने सोचा- यह सुन्दर नगर ही लंका है, अब नीचे उतरना चाहिए । उन्होंने शरीर को छोटा बनाया और तट के एक पर्वत पर खड़े होकर लंका को देखा । हनुमान्‌जी को पर्वत पर खड़े देख माता पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा- "प्रभु! हनुमान्‌जी उस शिखर पर उतरकर भी कैसे सुरक्षित हैं?"

चौ०

सैल बिसाल देखि एक आगें । ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥

पार्वतीजी ने पूछा- "हनुमान्‌जी बिना भय के उस पर्वत पर कैसे चढ़ गये । आपने तो शाप दिया था कि जो भी जीव उस पर्वत पर चढ़ेगा, वह जल जाएगा ।"

चौ०

उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥

भगवान् शिव ने कहा- "हे उमा! प्रभु के प्रताप से कुछ भी असम्भव नहीं है ।"

विशेष प्रसंग

(पार्वती के अनुरोध से भगवान् शिव ने विश्वकर्मा के द्वारा लंका नगरी बनवाई थी, गृह-प्रवेश के समय विश्रवा ने उसे दक्षिणा में मांग लिया था । जिस पर कुपित होकर माता पार्वती ने लंका को जलकर भस्म होने का शाप दिया था । पार्वतीजी ने कहा था, यह लंका एक दिन जलकर भस्म हो जाएगी, तब से पार्वतीजी प्रतिदिन जलती हुई लंका देखने के इंतजार में जाती रहती थी । जिस पर्वत पर बैठकर वह लंका देखती थी, उस पर बहुत जीव-जंतु अपने बिट से गंदा कर देते थे । पार्वतीजी के अनुरोध पर शिवजी ने शाप दिया था कि जो भी जीव इस पर्वत पर आएगा, वह जल जाएगा, फिर उसी पर्वत पर हनुमान्जी चढ़ गए और उन्हें कुछ नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त था । इसलिए शिवजी ने कहा कि इसमें कपि की विशेषता नहीं है, इसमें प्रभु की विशेषता है । इस कथा को मैं भूमिका में लिख चुका हूँ ।)

अब, हनुमान्जी ने मसक के समान रूप बनाकर लंका में प्रवेश करने का निर्णय किया । ज्योंही हनुमान्जी प्रवेश करने लगे, तभी लंका द्वार पर बैठी लंकिनी ने उन्हें ललकारा–

चौ०

नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥

ललकार सुनकर हनुमान्जी ने लंकिनी को एक मुक्का लगाया । मुक्का लगते ही लंकिनी गिर गई और उसके मुँह से खून निकलने लगा । वह समझ गई कि आज किसी महाबली से भेंट हो गई । वह उठी और हनुमान्जी को प्रणाम करते हुए बोली– "हे महाबली! मैं पूर्व जन्म में एक अप्सरा थी, शाप के कारण राक्षसी बन गई हूँ, जिस समय रावण ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किया था, तो ब्रह्माजी ने मुझे देखकर कहा था कि जिस समय तुम किसी वानर से मार खाओगी तो समझ लेना कि अब लंका का नाश हो जाएगा । हे महावीर! मैं आपको बार-बार प्रणाम करती हूँ । क्योंकि आज मैंने प्रभु श्रीराम के दूत का दर्शन कर लिया है । अब आप नगर में प्रवेश करें ।"

चौ०

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥

विशेष प्रसंग

(कहते हैं, इस मंत्र का जाप करते हुए अगर कोई व्यक्ति किसी नगर में प्रवेश करता है तो, उसे अवश्य ही सफलता मिलती है । इसलिए हनुमान्‌जी का ध्यान कर इसका जाप करें । सामान्य लोगों को भी जब कभी किसी यात्रा पर अथवा किसी शुभ काम के लिए जाना हो तो, जहाँ जाना हो, उसके पहले से इसका पाठ करते रहें और मन में यह भाव करें कि जिस व्यक्ति से आपको मिलना है, वह व्यक्ति आपकी बात मानने के लिए तैयार है । संकल्पपूर्वक इसे दुहराते रहें और प्रभु का नाम लेते रहें, निश्चय ही सफलता मिलेगी ।)

हनुमान्‌जी का लंका-प्रवेश

हनुमान्‌जी लंका में प्रवेश के समय काफी सतर्क थे । पहले तो हनुमान्‌जी ने आकाश मार्ग से लंका के चारों ओर बारीकी से देख लिया था, क्योंकि किसी भी नगर को ऊपर से देखने पर उस नगर का पूरा चित्र साफ नजर आता है । हनुमान्‌जी ने देख लिया था कि लंका में कितने सिंह द्वार हैं, नगर में कहाँ से प्रवेश किया जा सकता है और इन द्वारों की सुरक्षा कैसी है? क्योंकि दूत बड़ा ही निर्णायक भूमिका निभाता है । दूत के द्वारा दी गई सूचना ही दो राष्ट्रों के बीच अच्छे-बुरे सम्बन्धों का निर्णय करती है । इसलिए हनुमान्‌जी ने पहले लंका के चारों ओर की स्थिति को समझा, फिर एक द्वार से प्रवेश करने का विचार किया । वे सूर्य के शिष्य हैं, महादेव के तेज से विभूषित हैं, पवन के तेज से महाबलशाली हैं, इसलिए सभी विद्याओं में निपुण हैं । उन्हें **"सकलगुणनिधान"** कहा जाता है । क्योंकि वे समस्त विद्या के ज्ञाता हैं । उन्होंने समुद्र लंघन के समय विशाल पर्वत की तरह आकार बना लिया था । बुद्धि और विवेक उन्हें राम-कृपा से प्राप्त है । इस संसार में केवल हनुमान्‌जी ही सर्वगुणसम्पन्न हैं । इसीलिए अपने भक्तों के किसी भी कष्ट का निवारण वे चुटकी बजाकर कर देते हैं । उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । गोस्वामीजी कहते हैं-

चौ०

कवन सो काज कठिन जग माहिं । जो नहि होई तात तुम्ह पाई ॥

इसलिए हनुमान्‌जी अपना प्रत्येक कदम सोचकर रख रहे थे, क्योंकि कोई भूल न हो जाए । मनुष्य भूल तब करता है, जब वह अहंकार में आता है । भूल हमेशा

अहंकार के कारण होती है । लापरवाह व्यक्ति ही भूल करता है, हनुमान्जी सतर्कतापूर्वक लंका में प्रवेश कर रहे हैं, उन्हें किसी मार्ग का पता नहीं है ।

शंका

(हनुमान्जी ने लंका में प्रवेश किया तो उन्हें पता था कि सीता-माता को रावण लंका से दूर अशोकवाटिका में रखा है । इसलिए उन्हें सीधे अशोकवाटिका में जाना चाहिए । लेकिन हनुमान्जी रावण के महल के चारों ओर घूमने लगे । इसका क्या कारण था? दरअसल, हनुमान्जी आकाशमार्ग से ही अशोकवाटिका को देख चुके थे । दूसरी ओर सम्पाती ने भी हनुमान्जी को बता दिया था कि सीता माता अशोकवाटिका में बैठी हुई हैं ।)

चौ०

तहँ असोक उपबन जहं रहई । सीता बैठी सोंचत रहई ॥

सम्पाती ने बता दिया था कि सीता माता अशोक वाटिका में हैं फिर भी रावण के महल के निकट हनुमान्जी क्या खोज रहे थे? सच बात तो यह है कि लंका में प्रवेश के पश्चात् हनुमान्जी सीधे अशोकवाटिका चले गयं । लेकिन वे अशोकवाटिका में प्रवेश नहीं कर सके । क्योंकि वह वाटिका चारों तरफ से मायावी द्वार से बन्द था । जब भी हनुमान्जी दीवार फाँदने का प्रयास करते, वह दीवार और ऊँची हो जाती थी । तब हनुमान्जी ने सोचा निश्चित रूप से रावण के महल से यहाँ आने के लिए कोई दूसरा प्रवेश द्वार होगा ।

हनुमान्जी का रावण के भवन में प्रवेश

उसके बाद हनुमान्जी रावण के महल में आए । वहाँ प्रवेश द्वार खोजने लगे ।

चौ०

मंदिर-मंदिर प्रति गृह सोधा । देखे जहं तहं अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं । अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
सयन किएँ देखा कपि तेहीं । मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥

हनुमान्जी रावण के भवन के प्रत्येक कमरा में घूम-घूमकर द्वार खोजने लगे । लेकिन उन्हें वहाँ कोई द्वार नहीं मिला ।

विशेष प्रसंग

(यहाँ कई लोग प्रश्न उठाते हैं कि जब सम्पाती नें उन्हें बता दिया था, तो रावण के शयनकक्ष में सीता माता को हनुमान्जी क्यों खोज रहे थे? दरअसल वे सीता माता को नहीं खोज रहे थे, सीता माता तक जाने का मार्ग खोज रहे थे। दूसरा प्रश्न यह उठाया जाता है कि रावण के भवन को गोस्वामीजी ने मंदिर क्यों कहा? इसके लिए संत लोग बताते हैं कि मंदिर का एक अर्थ घर भी होता है और दूसरा जहाँ सीता मैया के रहने की सम्भावना है, वह मंदिर नहीं तो और क्या है? भले ही उसमें दुष्टात्मा रावण रहता हो। आज भी तो अनेक मंदिरों में रावण वृत्ति के कई लोग छिपे रहते हैं, फिर भी उसे मंदिर कहा जाता है। लेकिन जहाँ सीता माता के होने की सम्भावना है, वह तो मंदिर है ही। इसीलिए विभीषण के घर को मंदिर नहीं कहा। उसे भवन कहा, क्योंकि विभीषण के यहाँ सीता माता के होने की कोई संभावना थी ही नहीं।)

हनुमान्जी रावण के भवन में घूमते रहे। वहाँ उन्होंने रावण को निद्रावस्था में देखा, उसके बगल में मंदोदरी सोई थी। मंदोदरी मय दानव की पुत्री है। भगवान् विष्णु ने अपने शरीर के चन्दन से मंदोदरी बनाकर मयदानव को दिया था। उसकी इसी सुन्दरता पर मोहित होकर रावण ने मंदोदरी से विवाह किया था। जब हनुमान्जी की नजर मंदोदरी पर पड़ी तो उन्हें एक बार उनके सीता माता होने का भ्रम हो गया। फिर उन्हें भान हुआ कि सीता माता तो कभी रावण के कमरे में हो ही नहीं सकती हैं। यह सोचते हुए वे रावण के भवन से बाहर आ गये।

चौ०

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

हनुमान्जी का विभीषण से भेंट

दो०

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ॥

रावण के भवन में जब कोई मार्ग न मिला, तो हनुमान्‌जी चिंता में पड़ गए। उसी समय उन्हें एक मंदिर दिखाई दिया। हनुमान्‌जी को लगा कि लंका में तो केवल निशिचर रहते हैं, यहाँ प्रभु का भक्त कौन है? वे काफी देर तक इसी उधेड़बुन में रहे कि उसी समय उन्हें भोर होने का भान हुआ।

उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति राम-राम कहते बाहर निकल रहा है। उन्होंने सोचा कि लंका में ऐसा कौन व्यक्ति है जो सुबह उठते ही श्रीराम के नाम का जाप कर रहा है? चलकर इससे बात किया जाए। तभी विभीषणजी की पत्नी सरमा भी बाहर आई।

हनुमान्‌जी तुरंत ब्राह्मण का भेष बनाकर विभीषण के द्वार पर टहलने लगे। विभीषणजी बाहर आए, एक दूसरे को नमस्कार किये। फिर विभीषणजी ने पूछा- आप कौन हैं? क्या आप मुझे दर्शन देने आए हैं? हनुमान्‌जी समझ गये कि यह सचमुच रामभक्त है। **"साधु ते होइ न कारज हानि।"** हनुमान्‌जी ने अपना पूरा वृत्तान्त विभीषणजी को कह सुनाया।

हनुमान्‌जी की कहानी सुनकर विभीषण की आँखों में आँसू आ गये। विभीषण ने हनुमान्‌जी से कहा- "मेरी आँखें प्रभु श्रीराम के दर्शन के लिए तरस गई हैं। मैं तो यहाँ के राक्षसों के बीच उसी प्रकार रह रहा हूँ जिस प्रकार 32 दाँतों के बीच एक जीभ रहती है।" हनुमान्‌जी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इन राक्षसों के बीच यह संत पुरुष कहाँ से पैदा हो गया?

विशेष प्रसंग

(इस ग्रन्थ की भूमिका में मैं अपने प्रिय पाठकों को बता चुका हूँ कि विभीषण महाराज दशरथ और सुबक्षा नामक राक्षसी का पुत्र था। रावण के कहने पर सुबक्षा ने महाराज दशरथ से छलपूर्वक गर्भ धारण कर लिया था। जिससे महाराज दशरथ ऊर्जाहीन हो गये थे और इसी कारण उन्हें कोई सन्तान नहीं हो रही थी। विभीषण का जन्म उसी सुबक्षा के गर्भ से हुआ था। कई स्थानों पर यह भी मिलता है कि विभीषण और त्रिजटा भाई-बहन थे। इसलिए अशोकवाटिका में सीताजी ने उन्हें माँ कहा है। क्योंकि राम से बड़ी होने के कारण सम्बन्ध में भी त्रिजटा सीता के माँ के समान थी। अगर यह कहानी सही है तो त्रिजटा सीता की बड़ी ननद और पूजनीया हुई। इसलिए हनुमान्‌जी को विभीषण में राम की भक्ति का दर्शन हुआ।)

विभीषणजी ने हनुमान्‌जी को अपनी कहानी सुनाई । उसके बाद विभीषणजी ने सीता माता के विषय में भी हनुमान्‌जी को पूरी कहानी बताई । विभीषणजी ने कहा– “हनुमान्‌जी! सीता माता अशोकवाटिका में हैं ।” यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा– “मैं सीता माता का दर्शन करना चाहता हूँ ।”

चौ०

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखी चहउँ जानकी माता ॥

हनुमान्‌जी की बात सुनकर विभीषणजी ने कहा– सीता माता से मिलना आसान नहीं है । अशोकवाटिका, माया की दीवारों से घिरी है । उसमें वही प्रवेश कर सकता है जो उन मायाओं को बेधने की विद्या जानता हो । फिर विभीषणजी ने ही हनुमान्‌जी को अशोकवाटिका में प्रवेश करने की विधि बताई । इस अवसर पर विभीषणजी ने हनुमान्‌जी से प्रार्थना की है– “हे हनुमान्‌जी! आप प्रभु श्रीराम से मेरी दीन-दशा अवश्य कह देंगे और उनसे विनती करेंगे कि प्रभु मेरा उपकार करें ।”

– प्रार्थना –

मुझ पर होगा बड़ा उपकार ।
सुना दो रामजी को मेरी पुकार ॥

भटक-भटक के जीवन हारा ।
कहीं न पाया कोई किनारा ॥
प्रभु जी मेरा करो उद्धार ।
सुना दो, रामजी को मेरी पुकार ॥

सूरज, चाँद, सितारे गावे ।
गीत बसन्ती भँवर सुनावे ॥
कैसे पाऊँ मैं तेरा प्यार ।
सुना दो रामजी को मेरी पुकार ॥

विभीषणजी की प्रार्थना सुनकर हनुमान्‌जी ने विभीषणजी को ढाँढ़स बंधाया और कहा– "आप प्रभु श्रीराम का स्मरण करते रहें, वही आपकी नैया को पार लगा सकते हैं ।" इस अवसर पर आइए, हम हनुमान्‌जी के तरफ से विभीषणजी को आश्वासन दें कि राम की शरण में आनेवाले को कभी कोई कष्ट नहीं होता ।

– भजन –

रघुनाथ की दया से, बेड़ा पार तेरा होगा,
मझधार में हो नैया, वही पार लगा देगा ।
घिर जाए जब गमों से उद्धार तेरा होगा,
रघुनाथ की दया से, बेड़ा पार तेरा होगा ।
संशय में जब पड़ोगे, अविश्वास से भरोगे,
परवरदिगार से तुम, कैसे फिर जुड़ोगे ?
अभिमान को तुम छोड़ो, मन को सरल बनाओ,
तन को पवित्र कर लो, मन में उन्हें बिठाओ ।
समभाव से समर्पण जब इष्ट को करोगे,
संसार का सब दुख झोली में तुम भरोगे ।
करुणा का वह है स्वामी, तेरा कष्ट सब मिटेगा,
संकट के छाये बादल तुझे देखकर डरेगा ।
रघुनाथ की दया से, बेड़ा पार तेरा होगा ॥

चौ०

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥

विभीषणजी ने हनुमान्‌जी को अशोकवाटिका में प्रवेश करने की पूरी विधि बता दी, फिर हनुमान्‌जी अशोकवाटिका की ओर चले। हनुमान्‌जी सोचने लगे कि विभीषणजी प्रभु श्रीराम के भक्त कैसे हो गये? जबकि वे राक्षसकुल में उत्पन्न हुए हैं।

विशेष प्रसंग

(हनुमान्‌जी को इस बात की जानकारी नहीं थी कि विभीषणजी का जन्म कैसे हुआ? वे इतना जानते थे कि लंकानगरी पहले माली, सुमाली और माल्यवान नामक राक्षसों की थी। भगवान् विष्णु ने इन तीन भाइयों को वहाँ से खदेड़कर भगा दिया था। माली दूर द्वीप में जाकर बस गया था। सुमाली भी किसी दूसरे द्वीप में बस गया था। लेकिन माल्यवान को कोई संतान नहीं थी, उसने कोई देश नहीं बसाया। बाद में वह अपने नाती रावण का मंत्री बन गया।

भगवान् विष्णु ने इन तीन भाइयों से लंका छीनकर विश्रवा के बड़े पुत्र कुबेर को दे दिया था, उधर सुमाली लंका को पुनः प्राप्त करने के लिए योजना बना रहा था। उसने अपनी बेटी कैकसी का विवाह विश्रवा से करा दिया। जिससे रावण और चित्रलेखा(सूर्पणखा) का जन्म हुआ। सूर्पणखा रावण की अपनी बहन थी। विभीषण रावण का मुँहबोला भाई था। इसलिए उसमें राक्षस वृत्ति नहीं थी।

कहावत है **"माँ गुण बछड़ु, पिता गुण घोड़। न बहुत त थोड़म थोड़॥"** बेटी माँ पर जाती है और पुत्र पिता पर। यह प्रकृति का नियम है। यह भी नियम है कि अगर किसी पिता के दो पुत्र होते हैं, तो दोनों की प्रवृत्ति अलग-अलग होती है। क्योंकि सन्तान पर पिता के जीन द्वारा किस पूर्वज का जीन उतरता है, यह कहना मुश्किल है। क्योंकि किसी व्यक्ति में उसके पहले की कई पीढ़ियों का जीन संग्रहित रहता है। इसलिए एक ही पिता की अलग अलग सन्तानें गोरे-काले, सुन्दर और कुरुप भी हो सकती हैं।)

अशोकवाटिका में हनुमान्‌जी का प्रवेश

हनुमान्‌जी यही सोचते-सोचते अशोकवाटिका पहुँचे। उन्होंने विधिपूर्वक वाटिका में प्रवेश किया और वहाँ एक वृक्ष की डाली पर बैठ गये। उन्होंने देखा कि सीता माता दुःखी भाव से बैठी हैं।

चौ०

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥

सीताजी सिर झुकाये चिन्ता में बैठी है-

दो०

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥

हनुमान्जी एक घने वृक्ष की डाली पर से सामने अशोक वृक्ष के नीचे सीता माता को मौन अवस्था में बैठी देख अत्यंत दुःखी हो गये । सीता माता को देखकर हनुमान्जी सोचने लगे कि इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले परमात्मा श्रीराम की धर्मपत्नी इस तरह निरीह अबला स्त्री की तरह कैसे बैठ सकती है? जिसके इशारे पर सृष्टि के कण-कण में प्राण संचालित होता है, उसकी पत्नी की ऐसी दशा? जो क्षण मात्र में रंक को राजा बना सकता है ग्रह, तारे नक्षत्रों की गति बदल सकता है और जो महाबलशाली बाली को मार गिरा सकता है, उसकी पत्नी इस अवस्था में हो, मेरे लिए यह देखना भी कष्टकारी है ।

हनुमान्जी को अनुभव हो गया था कि श्रीराम परमात्मा हैं और इस परमात्मा को पाने के लिए देव, गन्धर्व, सुर, असुर सभी प्रयास कर रहे हैं । करोड़ों भक्त जिस परमात्मा को पाने की लालसा में बैठे हैं, उनकी एक कृपा पाने के लिए सभी प्रयास कर रहे हैं । फिर सीता माता तो उनकी पत्नी हैं । सीता माता का इस अवस्था में पड़े रहना कैसे उचित हो सकता है? तभी हनुमान्जी को प्रभु श्रीराम का ध्यान आया । मानो वे श्रीराम से पूछना चाहते हों कि प्रभु, यह सब क्या हो रहा है । प्रभु श्रीराम में हनुमान्जी की गहरी निष्ठा थी, इसलिए अपने मन की शंका को श्रीराम का स्मरण कर वे दूर करना चाहते थे । हनुमान्जी ने श्रीराम का स्मरण किया । अकस्मात् हनुमान्जी को रोमांच होने लगा । लगा कि पूरे शरीर में कोई प्रकाश भर गया हो ।

हनुमान्जी ने अपनी आँखें खोली और वृक्ष के नीचे बैठी सीता माता को एक बार फिर देखा । देखते ही लगा कि सीता माता के चारों ओर दिव्य आलोक फैल रहा

है और सीता माता का विराट स्वरूप हनुमान्‌जी के सामने उभरने लगा । हनुमान्‌जी उस दृश्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गये । ब्रह्म को विराट रूप में तो उन्होंने कभी देखा नहीं था । सीता माता का जो स्वरूप उभरा उसमें हजार-हजार सृष्टि बनते और विनष्ट होते हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, रावण की सोने की लंका भस्म होती स्पष्ट दिखाई दे रही थी । सीता माता के शरीर की ज्वाला से अनन्त ब्रह्माण्ड आलोकित हो रहा था । सृष्टि के समस्त देवतागण हाथ जोड़े चारों ओर से उन्हें घेरे खड़े थे । लगता था मानों कोई महाप्रलय हो रहा है । हनुमान्‌जी के मन में उठी शंकाओं का उत्तर उन्हें मिल गया । हनुमान्‌जी वहीं बैठे-बैठे प्रभु श्रीराम और सीता माता को बार-बार प्रणाम करने लगे ।

उसी समय अशोकवाटिका के प्रवेश द्वार पर ढोल-मृदंग की आवाज सुनाई पड़ी । हनुमान्‌जी ने देखा कि प्रवेश द्वार की ओर से एक महाशक्तिशाली व्यक्ति प्रवेश कर रहा है । उसके साथ अनेक स्त्री और पुरुष नाचते-गाते आ रहे हैं । लगता था जैसे कोई जुलूस आ रहा हो । थोड़ी देर में हनुमान्‌जी ने देखा कि एक विशाल व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सीता माता के निकट आया । हनुमान्‌जी तुरंत समझ गये कि यह वही दुष्ट रावण है । वृक्ष के ऊपर से ही हनुमान्‌जी चुपचाप उसे देखने लगे ।

चौ०

तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किएँ बनावा ॥

उस व्यक्ति ने सीता माता के निकट आकर साम, दाम, दण्ड, भय और भेद के स्वर में गरजने लगा । वह गर्जना करते हुए पहले यही बताने का प्रयास कर रहा था कि तुम विश्वसुन्दरी हो । कहा जाता है कि दुनिया की समस्त स्त्रियाँ तुम्हारे रूप का मुकाबला नहीं कर सकती । इसलिए तुम अपना हठ छोड़ो और मेरी रानी बनकर लंका का राज्य सुख भोगो-

चौ०

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥

रावण ने कहा- "हे सुमुखि! तुम मेरी ओर देखो और मेरी बात मान लो, क्यों एक तापसी के पीछे अपना जीवन बर्बाद कर रही हो । तुम्हारा जीवन तो हमारे रंग

महल के लिए उपयुक्त है । वह तापसी तुम्हें क्या सुख देगा? जो स्वयं जंगलों में मारा-मारा फिर रहा है । इसलिए तुम मेरी बात मान जाओ ।" रावण की बात से दुःखी होकर सीता माता ने घृणा और तिरस्कार के भाव से सामने पड़ी एक तृण को उठाया और रावण की ओर संकेत करते हुए कहा-

चौ०

तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥

"रे दुष्ट! तुम इतने मर्यादाहीन, कायर और डरपोक हो कि मुझे अकेली जानकर मुझे भय दिखा रहे हो, ठीक उसी प्रकार जैसे कि अपने घर पर तो कुत्ता भी बलवान होता है । जितनी गर्जना तुम कर रहे हो अगर मेरे पति के सामने तुम यह गर्जना करते तो तुम्हारी जीभ खींच ली जाती । तुमने छल और चोरी से मेरा हरण किया है । चोर और कपटी समाज में मर्यादा नहीं पाता । और तुमने तो आर्यावर्त की मर्यादा को चुनौती दी है, दूसरे की पत्नी को माँ समझा जाता है । तुम अपनी नगरी में बैठकर गर्जना कर रहे हो, इससे तुम्हारे लोग तो तुम्हें बलशाली अवश्य मान लेंगे, लेकिन मेरे पति के सामने तुम खद्योत की तरह टिमटिमाते रहोगे ।

रावण! मेरे पति सूर्य की तरह एक प्रकाशपुंज हैं और तुम उनके सामने भगजोगनी हो । मेरे पति समुद्र के समान विशाल हैं और तुम कूपमण्डूक हो । तुम क्या मेरे सामने आने की हिम्मत करोगे । ये तुम्हारे साथ जो रानियाँ खड़ी हैं वे सब तुम्हारे अत्याचार से पीड़ित हैं । जो व्यक्ति दूसरे की पत्नी पर बुरी नजर रखता है, उसे महाकुकर्मी कहा जाता है । तुमने तो छल से मेरा हरण किया है, जब तक यह संसार रहेगा, तब तक तुम्हें कोई क्षमा नहीं करेगा ।

अरे रावण! थोड़े ही दिनों में प्रभु श्रीराम यहाँ आएंगे और तुम्हें मृत्युदण्ड देंगे। तुम घोर अत्याचारी, पापी और डरपोक व्यक्ति हो । अगर तुम बलशाली होते तो मेरे पति के सामने मेरा हरण करने का प्रयास करते, लेकिन तुम तो भेष बदलकर कुत्ते की तरह मेरी कुटिया में आये । कोई बलशाली ऐसा नहीं करता । सुना है कि तुमने वेदों को भी पढ़ा है । लेकिन तुम्हें वेद की मर्यादा का ज्ञान नहीं है । तुम्हारे जैसे कुकर्मी को तो नरक में भी जगह नहीं मिलेगी, अब तुम अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करो ।" सीता माता की बात सुनकर रावण और क्रोध में आ गया ।

दो०

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान ॥
परुष बचन सुनि काढि असि बोला अति खिसिआन ॥

क्रोधित होकर रावण ने गर्जना करते हुए कहा- "सीते! तुम मेरी बात मान लो, नहीं तो मैं अपनी तलवार चन्द्रहास से तुम्हारी गर्दन काट दूंगा ।"

यह सुनकर माता सीता ने उसी तृण की ओट लेकर रावण से फिर कहा- "अरे दुष्ट, कोई चोर और लम्पट किसी सती का स्पर्श ही नहीं कर सकता । सती का तेज तुम्हारे इस शान-शौकत को भस्म कर देगा । यह सुनते ही रावण ने कहा-

चौ०

सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना ॥

यह कहते हुए रावण सीता की ओर झपटा, लेकिन मन्दोदरी ने रावण का हाथ पकड़कर रोक लिया । रावण रूक तो गया, लेकिन उसने वहाँ सुरक्षा में लगी राक्षसियों को कहा- "इसे खूब सताओ ताकि इसके मन में भय पैदा हो सके ।" रावण ने सीता से कहा- "अगर तुमने एक महीना (कहीं-कहीं एक वर्ष भी लिखा मिलता है) के अन्दर मेरी बात नहीं मानी तो मैं तुम्हें मार दूंगा ।" (रावण सीता के ऊपर बल प्रयोग करना चाहता था, लेकिन नल-कुबेर की पत्नी रम्भा के शाप के कारण वैसा वह नहीं कर सकता था।)

रावण की बात सुनकर सीताजी ने कहा- "अरे दुष्ट, जो व्यक्ति स्वयं दुराचारी हो । जिसके पास चरित्र का बल न हो, वह सत्य मार्ग पर चलने वाले किसी को भला क्या डिगा सकता है? सत्य है कि पाप कर्म करने वाले व्यक्ति में शक्ति और तेज का अभाव हो जाता है । दुनिया में कोई भी असत्य, किसी सत्य को पराजित नहीं कर सकता है । अरे पापी! तुम मुझे रानी बनाना चाहते हो । जो व्यक्ति अमृत का पान कर चुका हो, उसे तुम डबरा का पानी पीने को कहते हो । हमारे देश में पति और पत्नी का संबंध बहुत पवित्र माना जाता है । पति-पत्नी का संबंध काम वासना का संबंध नहीं होता । यह तो मंदिर में पूजा करने जैसा पवित्र बंधन होता है । किसी कामी पुरुष को क्या पता होगा कि प्रेम का पवित्र बंधन कैसा होता है? तुमने तो प्रेम

को सिर्फ किताबों में पढ़ा होगा । अरे दुष्ट! तुम तो इतने नीच हो कि तुम अपने बड़े भाई कुबेर के पुत्र नल-कुबेर की पत्नी पर बुरी नजर डालने के कारण शापित हो चुके हो ।

विशेष प्रसंग

(सीता माता का संकेत यह है कि रावण एक दिन स्वर्ग लोक गया था । वहाँ उसने अपने बड़े भाई कुबेर के पुत्र नल-कुबेर की पत्नी रम्भा को देखा, रावण उस पर मोहित हो गया । रावण उससे प्रणय याचना करने लगा । इस पर रम्भा ने कहा कि आप हमारे श्वसुर लगते हैं, पिता के समान हैं, आप ऐसा अनैतिक आचरण न करें । लेकिन रावण नहीं माना और उसने उसके साथ बलात्कार किया । दुःखी होकर रम्भा ने रावण को श्राप दिया कि भविष्य में अगर किसी और स्त्री पर बल प्रयोग करोगे तो तुम्हारा सिर खण्डित हो जाएगा । इस कारण रावण सीताजी पर बल प्रयोग नहीं कर सकता था ।)

सीताजी ने रावण को उसी बात का स्मरण करवाया । पुनः जनकनन्दिनी ने कहा-"हमारे पति मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । वे परमात्मा हैं, तुमने मेरा हरण करके अपने काल को आमंत्रित किया है । अरे पापी! तुम अगर लंका की भलाई चाहते हो तो प्रभु श्रीराम से क्षमा मांग लो, वे करूणानिधान हैं, तुम्हें अवश्य क्षमा करेंगे । क्योंकि परमात्मा क्षमा मांगने वाले को अवश्य क्षमा करते हैं । तुम अभिमान के घोड़े पर चढ़े हो । तुम्हारी भूल के कारण लंका के निर्दोष लोग मारे जाएंगे । तुम कैसा राजा हो कि अपने स्वार्थ के कारण लंका को बर्बाद कर देना चाहते हो। स्वार्थी व्यक्ति अंधा हो जाता है । उसे पाप पुण्य कुछ नहीं दिखता । तुम्हारी आँखों पर कामवासना की चर्बी चढ़ी हुई है । जिस कारण मेरी पवित्रता को भंग करना चाहते हो । क्योंकि कामी पुरुष को संसार के सभी लोग काम वासना की पुतली ही नजर आते हैं ।" सीताजी की धिक्कारपूर्ण वाणी को सुनकर रावण तिलमिला उठा । यह तो संसार का नियम है कि यदि किसी व्यक्ति को तुम सत्य बात कहोगे तो उसे बुरा लगेगा । यह कोई भी पसंद नहीं करता कि उसकी बुराई कोई उसे बताये । व्यक्ति बुरा कर्म तो करता है, लेकिन वह चाहता है कि उसकी बुराई कोई न जाने । रावण एक अहंकारी व्यक्ति था । उसने अपनी शक्ति से सबों को परास्त कर दिया था, इसी कारण वह अहंकारी बन गया था । शक्तिशाली को अगर अहंकार हो

जाए तो उसका नाश होना सुनिश्चित हो जाता है । रावण जब अपनी पत्नियों के सामने सीताजी का धिक्कार सुना तो वह तिलमिला गया । सत्य है कि कोई भी व्यक्ति अपने किसी अधीनस्थ के सामने लज्जित होना नहीं चाहता । लेकिन सीताजी ने सबों के सामने उसे धिक्कारा, जिससे वह क्रोधित हो उठा और तमतमाते हुए वहाँ से चल दिया। जाते समय उसने राक्षसी स्त्रियों को आदेश दिया कि सीता को और परेशान करो–

दो०

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद ।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद ॥

हनुमान्जी डाली पर बैठे हुए सब कुछ देख रहे थे । रावण को गरजते हुए देखकर हनुमान्जी के मन में बार-बार आक्रोश आ रहा था कि उनकी नजरों के सामने सीता माता का अपमान हो रहा है । कई बार वे इतना उतावले हो जाते थे कि वे उसी जगह रावण से निपट लेना चाहते थे । मन में विचार आता था कि इसी जगह रावण की गर्दन मरोड़ दें, क्योंकि किसी पुत्र के सामने उसकी माता को कोई धमकाये, कोई वीर पुरुष इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता । हनुमान्जी उसी जगह रावण से दो-चार हाथ कर लेना चाहते थे । लेकिन वे विवेकशील थे, इसलिए अपने को सम्भाल लेते थे । हनुमान्जी को इस बात का स्मरण था कि वे दूत बनकर आए हैं । जब तक उन पर आक्रमण न हो, तब तक अपनी ओर से लड़ाई की घोषणा करना उचित नहीं है और उन्हें ऐसा करने का आदेश भी नहीं था ।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि अभी थोड़ी देर पहले उन्होंने स्वयं सीता माता का विराट स्वरूप भी देख लिया था । प्रभु श्रीराम की अमोघ शक्ति का भी उन्हें ज्ञान था । इसलिए हनुमान्जी ने अशोकवाटिका में रावण के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझा । रावण के जाने के पश्चात् त्रिजटा सीताजी के पास आई और सीताजी के चारों ओर बैठी राक्षसियों को बताने लगी कि "तुम सभी लोग सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो, क्योंकि मैंने रात स्वप्न में देखा है कि एक बन्दर लंका को जला रहा है और रावण की सभी भुजायें कटी हुई हैं, उसके बाल मुड़े हैं और वह गदहे पर बैठकर दक्षिण की ओर जा रहा है ।" यह स्वप्न सुनकर सभी राक्षसी डर गई और सीताजी के चरण पकड़कर बैठ गई । थोड़ी देर बाद वे सब अपने-अपने घर चली गईं । इधर सीताजी त्रिजटा के साथ बैठी रही । त्रिजटा भगवान् श्रीराम की

भक्ति करती थी । वह राक्षस कुल की नहीं थी । विभीषण की बहन होने के कारण महाराज दशरथ का अंश भी उसमें था । वह सात्त्विक विचार की थी और इसी कारण सीताजी ने त्रिजटा को माँ कहा ।

चौ०

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी । मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ॥

सीताजी ने त्रिजटा को शायद इसलिए माँ कहा कि वह विभीषण की बहन है और विभीषण दशरथ के अंश से उत्पन्न हैं तो इस संबंध से भी वह सीता से बड़ी थी । सीताजी जब चारों तरफ से निराश हो गयी तो उन्होंने त्रिजटा से कहा कि "हे माता! अब बचने की कोई उम्मीद नहीं है । एक महीना के अन्दर यह दुष्ट रावण मुझे मार डालेगा । तो उससे अच्छा यही है कि मैं एक चिता बनाकर उसमें आग लगाकर स्वयं भस्म हो जाऊँ । क्योंकि शत्रु से प्रताड़ित होने के बजाए अग्नि में जलना अच्छा है । आप कहीं से अग्नि का प्रबंध कर दें, ताकि मैं उसमें जल सकूँ ।"

चौ०

आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ।

सीता माता की बात सुनकर त्रिजटा ने कहा– "हे सुकुमारी! रात में अग्नि कहाँ से मिलेगी? अपने मन में धैर्य रखो, संकट के समय मन को विचलित मत होने दो। क्योंकि मन के विचलित होने से अथवा आक्रोश में भरकर कोई भी निर्णय लेने से, बाद में पछताने के सिवाय और कुछ नहीं बचता । तुम प्रभु श्रीराम पर भरोसा रखो, वे अवश्य कोई न कोई रास्ता निकालेंगे। अकारण चिन्ता करने से शक्ति कम होती है और निराशा के कारण जीने की कामना नष्ट हो जाती है, जिससे मनुष्य का नाश हो जाता है । इसलिए जब तक सांस चल रही है ईश्वर पर भरोसा रखो, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा ।" यह कहते हुए वहाँ से त्रिजटा चली गई ।

अब सीताजी अकेली हो गई और गहरी चिन्ता में डूब गयी, वे आकाश के तारों की ओर देखते हुए सोच रही थीं कि काश! आकाश से एक तारा गिर जाए और मैं उसी में जलकर भस्म हो जाऊँ ।

चौ०

देखिअत प्रगट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकउ तारा ॥

विरह में मनुष्य व्यग्रता के कारण सहारा खोजने लगता है, सीताजी कभी चन्द्रमा से तो कभी अशोक वृक्ष से अग्नि मांगने लगी । यह विरह की प्रगाढ़ता की व्यग्रता है (राम ने भी सीता की खोज करते समय, वृक्षों से सीताजी का पता पूछा था । विरह जब प्रगाढ़ बन जाता है तो, मनुष्य का विवेक काम नहीं करता । सीताजी उसी कारण अशोक से अंगार मांग रही हैं । मनुष्य जब चारों तरफ से परिस्थितियों से घिर जाता है तो वह तिनके का सहारा खोजने लगता है । कहा भी जाता है **डूबते को तिनके का सहारा । (कामार्ता हि प्रकृतिः कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।)**

सीताजी को पता है कि अशोक का वृक्ष तो शोक हरने वाला है । फिर भी अशोक से अग्नि मांग रही है ।

चौ०

सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥

इसलिए सीताजी को भी अशोक के नवपल्लव में अग्नि दिखाई दे रही है । सीताजी का विरह बढ़ता जा रहा था और उधर हनुमान्जी सब कुछ देखकर व्याकुल हो रहे थे । तभी उन्होंने राम की मुद्रिका सीताजी के सामने गिरा दी । सीताजी मुद्रिका देखकर पहले यह समझी कि अशोक ने अग्नि गिराया है । लेकिन जब उन्होंने हाथ में लेकर उस मुद्रिका को देखा तब वे आश्चर्य में पड़ गयीं ।

सीताजी ने सोचा कि अवश्य ही किसी मायावी ने मुझे छलने का प्रयास किया है । फिर मन में संदेह होने लगा, कहीं प्रभु श्रीराम को कुछ हो तो नहीं गया । ऐसी शंका मन में उठने लगी । सीताजी मन में तर्क-वितर्क कर रही हैं । उसी समय हनुमान्जी वृक्ष के ऊपर से रामनाम का गान करने लगे । श्रीराम का नाम सुनकर सीताजी और आश्चर्य में पड़ गईं । वे इधर-उधर देखकर बोलने लगीं–

चौ०

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई । कही सो प्रगट होति किन भाई ॥

अपने प्रभु श्रीराम का नाम सुनते ही सीताजी की सारी चिंता मिट गई और कहने लगी कि "हे भाई! तुम कौन हो और कहाँ से बोल रहे हो ।" फिर उनके मन में संदेह होने लगा कि कहीं कोई राक्षस मुझे छलने का प्रयास तो नहीं कर रहा । अगर यह

छल है तो राम की मुद्रिका यहाँ कैसे आ गयी। माया से तो यह बन नहीं सकती और प्रभु श्रीराम को कोई पराजित नहीं कर सकता। तभी हनुमान्‌जी वृक्ष की डाली से कूदकर सीताजी के सामने खड़े होकर प्रार्थना करने लगे—

जय-जय-जय श्री जनककुमारी, जय रघुवर के प्राणते प्यारी।
आदि शक्ति है नाम तुम्हारा, ज्योति अनन्त विभु विस्तारी॥
कण-कण में है वास तुम्हारा, जड़ चेतन में साँस तुम्हारा।
जलचर, नभचर, थलचर जेते, प्राण रूप बसते तुम तेते॥
चौदह भुवन स्वरूप तुम्हारा, अंत अनंत सुगम विस्तारा।
प्राण रूप तुम मातु जानकी, शील शक्ति करूणानिधान की॥
मम उर बसहु निरंतर माता, रोग, शोक को करो निपाता।
दैहिक दैविक शोक निवारो, संकट से हरजन को उबारो॥
तेरी महिमा कण-कण ब्यापे, असुर निरंतर भय ते काँपे।
रघुवर हृदय प्राण वैदेही, सकल भुवन के परम सनेही॥
वेद पुराण संतमत, तुम हो आदि अनन्त।
कष्ट हरो संकट हरो, तारो मातु तुरन्त॥
तुम स्वत्वरूप, ममत्व रूप, आनंदरूप अविकारी हो।
तुम जगत प्राण अविचल विराम, इस विश्व जगत की माता हो॥
संकट में माता जग जब पड़ता, तेरे स्वरूप का जप करता।
त्रिलोक में तेरी गाथा को, हर जीव-जन्तु हर पल जपता॥
संकट में विचलित जब होऊँ, तेरे स्वरूप का ध्यान करूँ।
त्रिलोक में तेरी गाथा का, हर जन-जन में विस्तार करूँ॥

तुम शील शक्ति के परम रूप, तुम महाविभु के हो स्वरूप।
तेरी आँचल की छाया में, हमें मिलता माँ तेरा मातृरूप॥
तु आदि अनन्त अविनाशी हो, साकेत लोक के वासी हो ॥
तुम ही स्वधा, स्वाहा तुम हो, अविचल अनंत अविनाशी हो ।
सब वेदों के वेद हो, सब ग्रंथन के ग्रन्थ।
सब जीवों के प्राण हो, मुझे दिखाओ पन्थ॥

इस तरह की प्रार्थना करते हुए पुनः हनुमान्‌जी ने माता को विश्वास दिलाते हुए कहा–

चौ०

यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

इस भाव को सुनने के बाद भी सीताजी के मन में संदेह होने लगा कि मनुष्य और बन्दर की दोस्ती कैसे हो सकती है और दूसरी बात है कि इस व्यक्ति को राम की मुद्रिका कैसे मिली । सीताजी गहरे संदेह में पड़ गयी ।

विशेष प्रसंग

(यहाँ प्रश्न उठता है कि हनुमान्‌जी जब मसक के समान रूप बनाकर लंका में प्रवेश किये थे, तब यह मुद्रिका कहाँ थी । इसके उत्तर में संतों का मत है कि जब पहाड़ के समान हनुमान्‌जी मसक बन सकते हैं, तो मुद्रिका उसी विद्या से सूक्ष्म क्यों नहीं बन सकती और फिर उनकी गदा को भी तो सूक्ष्म बनना था । ऐसा लघिमा विद्या के कारण हुआ ।)

सीताजी इसी उधेड़-बुन में पड़ी हुई थीं कि तभी हनुमान्‌जी ने कहा– हे माता! तुम मुझ पर संदेह मत करो । मैं प्रभु श्रीराम का दूत हूँ । चलते समय प्रभु ने मुझे दो बातें बताने के लिए कहा था । जैसे कि जयन्त ने आपके पाँव में चोंच मारा था, उस घटना की जानकारी आप दोनों के सिवाय किसी को नहीं है और दूसरी घटना वनवास काल में प्रभु श्रीराम ने आपके चेहरे को कुंकुम से सजाया था, आपके बालों

को उन्होंने अपने हाथों से संवारा था। इस घटना का वर्णन करने के लिए प्रभु ने मुझे आदेश दिया था कि लंका नगरी में मुझे देखकर आपको भरोसा हो सके । हे माता! मैं श्रीराम का दूत हूँ और आपका पता लगाने के लिए आया हूँ–

हे जगद् जननी सीता मइया, प्रभु राम ने मुझे पठाया है ।
शतवार नमन हो चरणों में, प्रभु का संदेश लाया है ॥
जब से तुमने त्यागा उनको, तन मन से वे हीन हुए ।
जैसे सरिता बिन पानी के, वैसे रघुवर बिनु प्राण हुए ॥
हे मातु, विरह की अग्नि में, श्रीराम अहर्निश पुकारते हैं ।
जैसे दीपक की ज्योति में, कण कीट शलभ बन जलते हैं ॥
वे वृक्ष लता पशु पक्षी से, पागल बन बातें करते हैं ।
तेरी यादों की अग्नि में, दिन रात हवन सा जलते हैं ॥
प्रभु ने भेजा है, मुझको, बोले जयन्त की बात कहना ।
मुद्रिका मनोहर लाया हूँ, यह बात सिय से तुम कहना ॥
माँ दुर्गा के नौ रूपों को, हनुमत् ने सतत प्रणाम किया ।
तब मौन तोड़ माँ सीता ने, वात्सल्य प्रेम स्वीकार किया ॥

(माता सीता पुनः सोचने लगती हैं कि यह हनुमान् भगवान् का दूत है अथवा कोई मायावी राक्षस तो नहीं है, जो मुझे बहकाने की कोशिश कर रहा है। जगद् जननी जानकी को इस प्रकार शंका करते समझ कर हनुमान्जी बोलते हैं–

चौ०

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की ॥

अब सीताजी को हनुमान् पर विश्वास बन जाता है। इसके दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं। प्रथमतः हनुमान्जी अपने वचन में करुणानिधान शब्द का प्रयोग करते हैं। विशिष्ट अवसर पर 'विशिष्ट शब्दों का प्रयोग कैसे किया जाए, इसका ज्ञान हनुमान्जी को

पुरा-पुरा था क्योंकि वे सूर्य देव के शिष्य थे। ध्यातव्य है कि 'करुणानिधान' भगवान् राम को कहा जाता है क्योंकि वे दया के सागर हैं। इस बात को माता जानकी जानती थीं और दूसरी बात यह है कि 'करुणानिधान' संस्कृत का तत्सम शब्द है जिसे ज्ञानी व्यक्ति ही प्रयोग कर सकता है। राक्षस अथवा नीच मूढ़ व्यक्ति ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते।

द्वितीयत: हनुमान्‌जी जब माता सीता को प्रणाम करते हैं, तब वे उल्टे मुँह करके आशीर्वाद देती हैं। अपने मुख को हनुमान् के सामने सीधे नहीं करती हैं। इस पर हनुमान् समझ जाते हैं और वहीं खड़े-खड़े सीता माता के मूलरूप दुर्गा स्वरूप के नौ अलग-अलग रूपों की वन्दना संस्कृत श्लोकों के माध्यम से करने लगते हैं और साथ ही माता सीता को नौ बार माँ-माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। इसे सुनकर माता समझ जाती हैं कि यह निश्चय ही प्रभु का दूत है।

यह संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग कर रहा है और साथ ही नव रूपों की जो आराधना इसने जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह किसी राक्षस अथवा अधम व्यक्ति से संभव नहीं है। यह सोचकर और देखकर माता सीता हनुमान्‌जी को भगवान् का दूत समझ कर सीधे मुँह करके बात करती हैं और अपना हाल-चाल बताती हैं।) यह भी द्रष्टव्य है कि 'रामचरितमानस' में भी गोस्वामीजी नौ बार माता शब्द का प्रयोग किए हैं ।

दो०

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥

हनुमान्‌जी की बात सुनकर सीताजी को पूरा विश्वास हो गया । तब सीताजी ने पूछा कि "हे वीर! पहले यह बताओ कि प्रभु श्रीराम और भ्राता लक्ष्मण कैसे हैं?" सीताजी की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने पूरी घटना का वर्णन किया । सीताजी की आँखों से आँसू बहने लगे । आँखों में आँसू लेकर सीताजी कहने लगी ।

"हे कपि! प्रभु क्या मुझे कभी याद करते हैं । मैं तो प्रभु से बिछुड़ चुकी हूँ, पता नहीं इस जीवन में फिर कभी उनका दर्शन होगा या नहीं ।"

चौ०

कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥

सीताजी प्रभु श्रीराम के विरह में रोये चली जा रही थी । तभी हनुमान्जी ने सीताजी से कहा– "हे माता! प्रभु श्रीराम को आप से अधिक दुःख है । वे दिन-रात आपकी याद करते रहते हैं । उन्होंने कहा है कि उनका मन तो सीता में लगा रहता है ।" यह सुनते ही सीताजी भाव विभोर हो गईं । सीताजी की हालत देखकर हनुमान्जी ने कहा कि "आप मन से चिन्ता को दूर करें और प्रभु की शक्ति पर भरोसा रखें । अगर प्रभु श्रीराम मुझे आदेश दिये होते तो मैं अभी आपको लेकर प्रभु के पास पहुँच जाता, लेकिन मुझे ऐसा आदेश नहीं मिला है ।"

चौ०

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई । प्रभु आयसु से नहिं राम दोहाई ॥

हनुमान्जी की बात सुनकर सीताजी ने कहा– "हे कपि! "क्या प्रभु श्रीराम के पास तुम्हारे समान ही लोग हैं । अगर ऐसा है तो यहाँ बड़े ही बलवान राक्षस रावण की सेना में हैं ।" यह सुनते ही हनुमान्जी को लग गया कि माता को मेरे बल पर संदेह है–

चौ०

मोरें हृदय परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ।
कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ॥

हनुमान्जी ने अपना विराट रूप प्रकट किया । क्योंकि उन्हें अणिमा और लघिमा विद्या का ज्ञान था । हनुमान्जी का रूप देखकर सीताजी के मन में भरोसा हो गया ।

चौ०

सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥

हनुमान्जी ने जब अपना विराट रूप दिखाया तो सीताजी को हनुमान्जी की शक्ति पर भरोसा हो गया । हनुमान्जी ने कहा– "हे माता! मेरे पास कोई बल नहीं है, लेकिन मुझे प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त है । इसलिए संसार में मेरे लिए कोई भी

काम असंभव नहीं है ।" हनुमान्जी की शक्ति को देखकर सीताजी ने हनुमान्जी को बहुत आशीर्वाद दिया । हनुमान्जी दोनों हाथ जोड़कर आशीर्वाद ग्रहण कर रहे हैं और चुपचाप खड़े हैं ।

चौ०

अजर अमर गुननिधि सुत होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥

सीताजी ने कहा– "तुम मेरे आशीर्वाद से अजर और अमर बन जाओ ।" फिर भी हनुमान्जी हाथ जोड़े खड़े हैं । तब अन्त में सीताजी ने कहा कि "तुम्हें प्रभु श्रीराम का आशीर्वाद मिले ।" यह सुनते ही हनुमान्जी गद्‌गद हो गये । हनुमान्जी ने कहा– "हे माता! आज मैं धन्य हो गया ।"

चौ०

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुंदर फल रूखा ॥

यह सुनकर सीताजी ने हनुमान्जी से कहा "हे पुत्र! इस वाटिका में बड़े ही बलवान राक्षस इसकी सुरक्षा में लगे हैं ।" यह सुन हनुमान्जी ने कहा– "हे माता मुझे उसकी चिन्ता नहीं कि सुरक्षा में कौन है? मुझे तो आपका आदेश चाहिए ।"

चौ०

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

हनुमान्जी ने कहा– आपके आदेश और आशीर्वाद का इतना प्रभाव है कि मैं किसी भी संकट पर विजय पा सकता हूँ । इसलिए आप मन के संदेह को छोड़कर आदेश दें ।

हे माता! आप इसकी चिन्ता न करें कि लंका के राक्षस बड़े बलशाली हैं केवल बली होना काफी नहीं होता, जिस बल में सत्य हो, कार्य के प्रति निष्ठा हो और उस पर परमात्मा का आशीर्वाद हो, वही बल सार्थक होता है । इन राक्षसों में बल होगा, माया भी होगी, छल–कपट भी होगा, लेकिन वे सत्यमार्ग पर नहीं हैं । असत्य का अनुसरण कर रहे हैं और दूसरी बात है कि बल के साथ बुद्धि और विवेक का होना भी अनिवार्य है । हाथी बलवान होता है, लेकिन उसमें बुद्धि और विवेक का अभाव है ।

बल का उपयोग कैसे किया जाए, यह विवेकशील व्यक्ति ही जानता है । मैं तो लंका में अकेला आया हूँ, लेकिन मुझे प्रभु श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त है । जिस व्यक्ति पर परमात्मा की कृपा रहती है, उसे दुनिया की कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती । इसलिए हे माता! आप मुझ पर अपनी कृपा बनाए रखें । ये राक्षस मेरा कुछ नहीं कर सकते हैं । तीसरी बात यह है कि मुझे भूख लगी है, मैं यहाँ फल खाना चाहता हूँ, प्रकृति द्वारा प्रदत्त फलों को खाने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है । फल प्रकृति का है, यह किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है । वृक्षों में जो फल लगे हैं, उस पर न किसी देवता और न किसी राक्षस का स्वामित्व है । हे माता! प्रभु श्रीराम कहते हैं कि जब तक तुम्हें कोई क्षति न पहुँचाए, तब तक तुम उन पर आक्रमण मत करना । मैं तो फल खाने जा रहा हूँ । फल, पानी, हवा, इन प्राकृतिक चीजों के उपयोग करने पर कैसे कोई प्रतिबंध लगा सकता है? फल, जल और हवा भी प्रकृति की है। दीवार बनाकर इन प्राकृतिक चीजों पर अपना स्वामित्व स्थापित करना अन्याय है । हमारे प्रभु कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को जीने अधिकार है । बिना कारण किसी को मत सताना, अगर कोई तुम पर आक्रमण करता है तो उसका प्रत्युत्तर देने में कोई पाप नहीं है । हे माता! लंका का राजा रावण अनीतिपूर्ण आचरण कर रहा है । यह प्रकृति के विरूद्ध काम कर रहा है । मर्यादा के विरूद्ध आचरण करने वाला स्वयं अपनी ही आँखों में दोषी बन जाता है । मैं सत्यमार्ग पर चल रहा हूँ । यह सत्य का मार्ग कभी गलत नहीं हो सकता । मैं प्रभु श्रीराम का दूत हूँ, दूत का काम लड़ाई करना नहीं है। लेकिन अपनी रक्षा करने के लिए वह स्वतंत्र होता है । अगर किसी राक्षस ने मुझ पर आक्रमण किया, तो मैं उसे उचित उत्तर दूंगा ।"

हनुमान्‌जी की बात सुनकर सीता माता ने हनुमान्‌जी की बुद्धि और विवेक पर भरोसा किया, तभी उन्होंने फल खाने का आदेश दिया । माता सीता का आदेश पाकर हनुमान्‌जी अशोकवाटिका के चारों ओर देखने लगे ।

अशोकवाटिका की मायाओं का विध्वंस

अशोकवाटिका में हनुमान्‌जी सोचने लगे कि यह वाटिका माया से अभिरक्षित है । कोई भी व्यक्ति आसानी से इसमें प्रवेश नहीं कर सकता । इसलिए पहले इस माया को नष्ट करना चाहिए । उन्हें भूख लगी थी, सबसे पहले उन्होंने सोचा कि फल

तो वृक्ष पर लगे हैं और वृक्षों पर से फल तोड़ना अपराध है । इसलिए वे वृक्षों की डाली पर चढ़ गए और जोर-जोर से डालियों को हिलाना शुरू किया । वृक्ष के सारे फल जमीन पर आ गिरे । फिर हनुमान्‌जी उन फलों को खाने लगे । क्योंकि फल जब जमीन पर गिर जाए, तो वह प्रकृति का फल बन जाता है । हनुमान्‌जी ने भरपेट फल खाया, जल पिया फिर और फल खाने की इच्छा से कौतुहलवश दूसरे वृक्षों को भी हिलाना शुरू कियां । जिससे अनेक वृक्ष उखड़ गये । इस तरह हनुमान्‌जी ने पूरी अशोकवाटिका को खेल-खेल में उलट-पुलट कर रख दिया । उनका यह काम देखकर अशोकवाटिका में जो राक्षस पहरा दे रहे थे, वे हनुमान्‌जी पर टूट पड़े । खेल-खेल में हनुमान्‌जी ने सबको पीटकर भगा दिया । राक्षस भागे-भागे अपने राजा रावण को सूचना देने पहुँचे । रावण के दूतों ने कहा- "हे महाराज! अशोकवाटिका में एक महाबलशाली बन्दर घुस आया है, जो पूरी अशोकवाटिका को तहस-नहस कर रहा है ।" रावण के आदेश से उसका छोटा बेटा अक्षय कुमार काफी सेना लेकर अशोकवाटिका में पहुँचा । हनुमान्‌जी को पता चल गया कि यही अक्षय कुमार है, जिससे बालिपुत्र अंगद को भय है । अगर यह जीवित बच गया तो, इससे अंगद को खतरा है । हनुमान्‌जी खड़े थे, तभी अक्षय कुमार ने उन पर आक्रमण कर दिया । हनुमान्‌जी ने तुरंत एक वृक्ष उखाड़ा और अक्षय कुमार पर चला दिया । उसी वृक्ष से दबकर अक्षय कुमार अन्य सैनिकों के साथ मारा गया । दूसरे बचे हुए सैनिकों ने भागकर इसकी सूचना रावण को दी । रावण ने समझा कि अक्षय कुमार को मारनेवाला कोई साधारण बन्दर नहीं है, इसलिए उसने अपने पुत्र मेघनाथ से कहा- "तुम स्वयं जाओ और उस बन्दर को बांधकर ले आओ । क्योंकि मैं देखना चाहता हूँ कि वह कौन बन्दर है?"

चौ०

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥

विशेष प्रसंग

(रावण को जब वरदान मिला था तो उसने स्वयं ब्रह्माजी को कहा था कि **नर बानर के लेखे नाहीं** । उसे भय हो गया कि यह वैसा ही कोई बन्दर तो नहीं है । इसलिए वह सम्भलकर चलना चाहता था । रावण ने मेघनाद को इसीलिए कहा कि उसे

मारना मत, बाँधकर ले आना । कहा जाता है कि शत्रु, आग और बीमारी को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए ।)

रावण के आदेश से मेघनाद काफी सैनिकों को लेकर अशोकवाटिका में गया । तब तक हनुमान्जी पूरी अशोकवाटिका के सौन्दर्य को नष्ट कर चुके थे । मेघनाद को आते देख हनुमान्जी ने भयंकर गर्जना की । उनकी गर्जना सुनकर पूरी लंका दहल उठी । मेघनाद ने आते ही अपने भीषण बाण से आक्रमण कर दिया । हनुमान्जी ने एक क्षण में अपनी गदा के प्रहार से सभी बाणों को नष्ट कर दिया । इसी बीच हनुमान्जी ने एक वृक्ष उखाड़कर मेघनाद पर चला दिया । वृक्ष के प्रहार की चोट से मेघनाद मूर्छित हो गया । थोड़ी देर बाद जब मूर्छा टूटी, तो मेघनाद ने समझा कि इस बन्दर को आसानी से परास्त कर बांधा नहीं जा सकता । तब उसने हनुमान्जी पर ब्रह्मास्त्र चलाने का निर्णय किया । मेघनाद को लग गया कि यह कोई महापराक्रमी बन्दर है, इसको केवल ब्रह्मास्त्र से ही बांधना उचित है । यह सोचकर मेघनाद ने हनुमान्जी पर ब्रह्मास्त्र चला दिया । ब्रह्मास्त्र को आते देख हनुमान्जी ने अस्त्र पर बैठे ब्रह्माजी को प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये–

दो०

ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार ।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार ॥

हनुमान्जी ने सोचा कि ब्रह्मा सृष्टि के नियामक हैं, अगर मैंने ब्रह्म अस्त्र को नहीं माना तो परमात्मा का नियम टूट जाएगा । इसलिए वे ब्रह्म अस्त्र के सामने खड़े हो गए ।

मेघनाद ने अपने ब्रह्मास्त्र के नागपाश से हनुमान्जी को बांध लिया ।

हनुमान्जी को नागपाश में बंधते देख माता पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा– "हे प्रभु! हनुमान्जी नागपाश में कैसे बंध गये ।" भगवान् शिव कहते हैं–

चौ०

जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भव बंधन काटहिं नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा । प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा ॥

भगवान् शिव कहते हैं- "जो प्रभु श्रीराम जीव का बन्धन काटते हैं, उनके दूत को भला कौन बांध सकता है! इसलिए हे पार्वती! प्रभु के खेल को चलाने के लिए हनुमान्जी को बँधना जरूरी है।"

हनुमान्जी को बंधते देख सभी राक्षस कौतुहलवश हनुमान्जी के निकट आ गये। मेघनाद हनुमान्जी को लेकर रावण के दरबार में पहुँचा। वहाँ जाते ही हनुमान्जी ने देखा कि दरबार में देवता, दिक्पाल, गंधर्व सभी हाथ जोड़े खड़े हैं। उनकी कायरता देखकर हनुमान्जी मुस्कुराने लगे। उधर रावण हनुमान्जी को देखकर काफी क्रोधित हुआ। लेकिन जब उसे स्मरण आया कि इस बन्दर ने मेरे पुत्र को मारा है तो वह दुःखी हो गया। रावण ने हनुमान्जी से पूछा-

चौ०

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥

"तुमने राक्षसों को किस अपराध के लिए मारा? क्या तुम्हें डर नहीं लगा?" रावण की बात सुनकर हनुमान्जी ने कहा- "हे रावण! तुम अपराध की बात पूछते हो, मुझे भी पता है कि बिना अपराध के किसी को नहीं मारना चाहिए। मैं प्रभु श्रीराम का दूत हूँ, वे जगद्पिता परमेश्वर हैं। मैं उन्हीं का दूत हूँ-

दो०

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि॥
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

हे रावण! मैं प्रभु श्रीराम का दूत हूँ। जिनकी पत्नी का तुमने छलपूर्वक हरण किया है। मैं उसी प्रभु का दूत हूँ, जिनके इशारे पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाचता है। लेकिन तुम कौन हो? जिसके दरबार में देवता, गंधर्व कायरतापूर्ण ढंग से हाथ जोड़े खड़े हैं। लेकिन मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जिसके दरबार में देवता हाथ जोड़े खड़े हों, वह इतना नीच कर्म कैसे करेगा? हमारे प्रभु श्रीराम विश्व के प्राणों में रमण करने वाले हैं। लेकिन मैंने सुना है कि तुम्हारा नाम रावण है। जिसका अर्थ है- रूलाने वाला (रौ+अन=रावण)। तुम तो संसार को रूलाने वाले हो। इसीलिए इन पवित्र देवताओं को तुमने बलपूर्वक बंदी बना रखा है। मैंने तो यह भी सुना है कि तुम महान्

तपस्वी विश्रवा के पुत्र और महामुनि पुलस्त्य के पौत्र हो । इस महान् वंश में तुम्हारे जैसा राक्षस कैसे पैदा हो गया? मुझे तो लगता है कि निश्चित रूप से तुम धर्मविरोधी लोगों की गोद में पले हो । तुम्हारी परवरिश वैदिक संस्कृति की गोद में नहीं हुई है । मनुष्य के जीवन पर पिता कुल और माता कुल का संयुक्त प्रभाव पड़ता है । तुम्हारे पिता का कुल तो वन्दनीय है, लेकिन तुम्हारी माता का कुल निश्चित रूप से वैदिक संस्कृति के विरूद्ध होगा । मुझे लगता है कि तुम्हारी परवरिश भी अनैतिक वातावरण में हुआ है । क्योंकि ऐसे ही लोग धर्म विरूद्ध आचरण करते हैं । परवरिश का जीवन पर प्रभाव पड़ता है ।

मैंने यह भी सुना है कि अब तक तुम कितनी बार पराजित होकर लंका भाग आए थे । फिर भी तुम अहंकार के कारण इन बन्दी देवताओं और राजाओं के बीच में विराजमान हो । अगर तुम स्वाभिमानी होते तो, सहस्रबाहु और बाली से पराजित होकर किसी को मुँह नहीं दिखाते । जिस बाली ने तुम्हें अपनी काँख में दाब लिया था, उसी बाली को प्रभु श्रीराम ने एक बाण में मार गिराया । इस बार तुमने प्रभु श्रीराम की पत्नी का हरण कर, उन्हें चुनौती दी है । अतः अब तुम बच नहीं सकोगे ।

"अरे रावण! पहले तो मैं तुम्हें बता दूं कि तुम्हें यह भी पता नहीं किसी अतिथि से कैसा व्यवहार करना चाहिए । मैं जब लंका में आया तो तुम्हें चाहिए था कि मेरे भोजन और विश्राम की व्यवस्था करते, लेकिन तुमने मेरा सत्कार नहीं किया । मुझे भूख लगी थी अत: मैं फल खाने लगा । यह तो कोई अपराध नहीं था । मुझे फल खाते देख तुम्हारे राक्षसों ने मुझ पर आक्रमण कर दिया । मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारे राक्षसों ने मुझ पर आक्रमण क्यों किया? क्या यही तुम्हारा राजधर्म है कि किसी अतिथि को खाते हुए देखकर उस पर आक्रमण कर दिया जाए । इससे तो लगता है कि तुम्हारे देश में नीति धर्म नहीं है?"

यह सुनकर रावण ने कहा- "तुमने अक्षय कुमार को क्यों मारा?" यह सुन हनुमान्जी ने कहा- "मैंने कहाँ मारा! मैं तो अशोकवाटिका में फल खा रहा था, उसी समय तुम्हारे पुत्र और अन्य राक्षसों ने मुझ पर प्रहार करना शुरू कर दिया । मैं तो अपना बचाव कर रहा था, इसी बचाव में अक्षय कुमार सहित तुम्हारे हजारों सैनिक मारे गये । इसमें मेरी गलती कहाँ है? अपना बचाव करना हमारा धर्म है ।" हनुमान्जी

की बात सुनकर रावण ने कहा– "चलो यह तो ठीक है, लेकिन तुमने वृक्षों को उखाड़कर उस सुन्दर अशोकवाटिका को नष्ट क्यों कर दिया? राक्षसों ने तो तुम्हें मारा, लेकिन वृक्षों ने तुम्हारा क्या नुकसान किया था?" यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा–

चौ०

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा । कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा ॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे । तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे ॥

"अरे रावण! मैंने कोई भूल नहीं की । भूख लगी थी, केवल गिरे हुए फल को ही खाया । वृक्षों से फल तोड़ा नहीं । और मैं बन्दर हूँ, वृक्षों की डालियों से खेलना मेरा स्वभाव है । जब तुम्हारे सैनिकों ने मुझ पर आक्रमण किया तो, उसी आक्रमण के बचाव में मैंने वृक्ष उखाड़कर अपनी रक्षा की । जिससे तुम्हारे सैनिक दबकर मर गये, इसमें मेरा दोष कहाँ है?"

हनुमान्‌जी ने पुनः कहा– मैं तो तुम्हारी सहायता कर रहा था । अगर मैं भूखे पेट प्रभु श्रीराम के पास लौट जाता, तो इससे तुम्हारी शिकायत होती । इसलिए अशोकवाटिका में जो उपद्रव हआ, उसके लिए तुम दोषी हो । इस पर तुम्हारे पुत्र मेघनाद ने मुझे ब्रह्मास्त्र से बांध लिया है । इस प्रकार बंध जाने से मुझे कोई दुःख नहीं है, क्योंकि मैं अपने प्रभु का काम करने आया हूँ ।

हे रावण! मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम एक अच्छे कुल के व्यक्ति हो, तुमने सीता माता का हरण कर जो पाप किया है, उसके लिए तुम्हारे पूर्वज तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगे । मेरा परामर्श है कि प्रभु श्रीराम से बैर मत करो और माता को उन्हें लौटा दो । रावण! तुम ऐसी मूर्खता मत करो, तुम बहुत अहंकारी हो गये हो, तुम्हें प्रभु श्रीराम की शक्ति का ज्ञान नहीं है–

चौ०

राम चरन पंकज उर धरहू । लंका अचल राज तुम्ह करहू ॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥

रावण! तुम्हारे पूर्वज महान् तपस्वी थे, तुम्हारे दादा पुलस्त्य महान् संत थे, उनके वंश में दाग मत लगाओ । हमारे प्रभु बड़े दयालु हैं, उनकी शरण में जाओगे तो वे अवश्य ही तुम्हें क्षमा कर देंगे ।"

हनुमान्‌जी का रावण को समझाना

श्रीराम स्वयं परमेश्वर हैं, जो जग का पालन करते हैं ।
कण-कण में राम का वास सदा, हर तन में सांस को भरते हैं ॥
इस जगती के हैं मूल राम, चर अचर जगत के प्राण राम ।
सब के भीतर है एक राम, बाहर भीतर सर्वत्र राम ॥
जिस सरिता का काई मूल न हो, निस्तेज धार कहलाती है ।
निष्प्राण देह बिनु आभा के, दुर्गन्धयुक्त बन जाती है ॥
दशशीष तुम्हारे पापों का, है अन्त यहीं होने वाला ।
तू सम्हल सको तो सम्हल जा, वरना महाकाल आनेवाला ॥
जब देव दनुज नतमस्तक हो, श्रीराम को शीष झुकाते हैं ।
ग्रह लोक अतल, भूतल मिलकर सब वन्दन-वार सजाते हैं ॥
जो सृष्टि प्रलय का ज्ञाता हो, उससे ही बैर उठाये हो ।
बसते जो प्राणों-प्राणों में, तुम वही शीश उठाये हो ॥
आमंत्रण है तुमको रावण, प्रभु चरणों को स्वीकार करो ।
इस स्वर्णमयी लंका का, संरक्षण कर कल्याण करो ॥
श्रीराम दया के सागर हैं, उनको तुम नमन करो ।
चरणों में झुककर के उनके, अपराध सकल स्वीकार करो ॥

तुम वेद धर्म के ज्ञाता हो, सत्कर्म से प्रभु का नाता है ।
तोड़ो अभिमान के मोह पाश, श्रीराम वेद के ध्याता हैं ॥
सुध लेने सीता मइया की, तेरी नगरी में आया हूँ ।
शुभचिन्तक हूँ मेरी मानो, तुम्हें धर्म सिखाने आया हूँ ॥
जो जगन्मात कहलाती है, बंदी बन बाग में बैठी है ।
सौभाग्यमयी सीता मइया, आंगन में तेरी बैठी है ॥
श्रीराम को शीश झुकाओगे, जीवन में सब सुख पाओगे ।
अवसर को हाथ से जाने पर, सिर धुन-धुनकर पछताओगे ॥

दो०

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि ।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥

जो परमात्मा इस जगत् के मूल कारण हैं, उसके बिना इस संसार में कुछ भी संभव नहीं है । जिस प्रकार, जिस नदी का कोई मूल नहीं होता, उसमें बरसात में तो पानी आ जाता है, लेकिन बरसात बीतते ही पानी सूख भी जाता है । इसलिए तुम मूल परमात्मा की शरण में जाओ ।

चौ०

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ॥

"हे रावण! राम के द्रोही को ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी क्षमा नहीं करते । इसलिए तुम प्रभु श्रीराम की शरण में जाओ ।" हनुमान्‌जी की बात सुनकर रावण ने व्यंग्य करते हुए कहा- "अरे बन्दर! तुम मुझे उपदेश दे रहे हो । मैं तुम्हें अभी मृत्युदंड देता हूँ ।" रावण की बात सुनते ही राक्षस हनुमान्‌जी को मारने दौड़े । उसी समय विभीषणजी सभा में प्रवेश करते हैं । विभीषणजी ने रावण को कहा- किसी देश के दूत को मारना उचित नहीं है ।

विभीषण की बात सुनकर रावण ने कहा- "ठीक है, इसे मारो मत, लेकिन इसका अंग-भंग कर दो ।" निर्णय हुआ-

दो०

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥

पूँछ में आग लगाने की बात सुनकर हनुमान्‌जी मन ही मन मुस्कुराने लगे ।

चौ०

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ॥

हनुमान्‌जी ने सोचा कि राक्षस लोग इतने मूर्ख हैं कि मेरी पूंछ में आग लगाना चाहते हैं । लेकिन इन मूर्खों को पता नहीं है कि बन्दर को इस तरह सजा नहीं दी जाती है । यह ठीक ही कहा गया है कि राक्षसों के पास बल तो है, लेकिन बुद्धि नहीं है । इसलिए बलवान् व्यक्ति अगर बुद्धिहीन हो तो, वह कोई लड़ाई नहीं जीत सकता । केवल बल से कुछ नहीं होता । बल तभी तक सार्थक है, जब तक वह बुद्धि के अधीन है ।

लंकादहन

हनुमान्‌जी अपनी पूंछ सीधी करके दरबार के बीच में खड़े हो गए । राक्षसों ने पूंछ में अपने-अपने घरों से तेल और कपड़ा लाकर लपेटना शुरू किया । वे लोग पूंछ में कपड़ा लपेटते जा रहे थे और पूंछ बढ़ती चली जा रही थी । हनुमान्‌जी ने अपनी पूंछ को इतना बड़ा कर लिया कि नगर का सारा वस्त्र और तेल समाप्त हो गया और फिर भी पूंछ खाली ही रही ।

चौ०

रहा न नगर बसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥

हनुमान्‌जी सभा के मध्य बैठ अपनी पूंछ बढ़ाए चले जा रहे थे । फिर भी किसी राक्षस को इस रहस्य का ज्ञान नहीं हो रहा था । ठीक ही कहा गया है, जब नाश

मनुज पर छाता है, पहले विवेक मिट जाता है। सभी राक्षस जोश में भरे थे, सोच रहे थे कि अब तो यह बन्दर जल ही जाएगा। और इधर हनुमान्‌जी मुस्कुराते हुए बड़ी गंभीरता से देख रहे थे कि किस-किस के घर से तेल और कपड़ा आ रहा है। जब लंका का पूरा वस्त्र और तेल समाप्त हो गया तो किसी राक्षस ने उसमें आग लगा दी। जैसे ही हनुमान्‌जी की पूंछ में आग लगी, सभा में बैठे सभी लोग ताली बजाते हुए नाचने लगे। इन राक्षसों को यह भी होश नहीं था कि सभामध्य में आग लगाने का परिणाम क्या होगा?

चौ०

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥

हनुमान्‌जी ने आग देखकर तुरंत अपना रूप लघु कर लिया।

चौ०

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥

इन राक्षसों को यह भी पता नहीं था कि पूंछ में आग लगाने पर जब बन्दर भागेगा, तो क्या होगा ? पूंछ में आग लगते ही हनुमान्‌जी कूदकर सोने की लंका के ऊपर चढ़ गये। हनुमान्‌जी ने अपने पिता पवनदेव का स्मरण किया। स्मरण करते ही उनके चारों तरफ से तेज हवा बहने लगी-

दो०

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥

हनुमान्‌जी ने एक गर्जना की और फिर लंका के घरों पर कूदना शुरू कर दिया। उन्होंने उन घरों पर पहले कूदना शुरू किया, जहाँ से तेल और कपड़ा आया था। उसके बाद हनुमान्‌जी को स्मरण आया कि लंका में प्रवेश हेतु जिन प्रवेश द्वारों पर कीलाबन्दी की गई थी, उसको तहस-नहस करना है।

हनुमान्‌जी घुम-घुमकर लंका के महत्त्वपूर्ण ठिकानों को जलाने लगे। जिस प्रकार आज भी शत्रु देश पर हमला करके उसके नगर की उपयोगी सेवा को सर्वप्रथम

क्षतिग्रस्त किया जाता है। उसी प्रकार हनुमान्जी खोज-खोजकर वहाँ के सारे महत्त्वपूर्ण ठिकानों को जलाने लगे। नगर की औरतें-बच्चे आदि चिल्ला-चिल्लाकर अपने राजा रावण को गालियां देने लगे। थोड़े ही देर में पूरी लंका में अग्नि की ज्वाला ही दिखाई पड़ने लगी और सम्पूर्ण नगर अस्त-व्यस्त हो गया। लंका के सारे महत्त्वपूर्ण ठिकाने धू-धू करके जलने लगे। लंका के जलने से अग्नि की जो ज्वाला ऊपर की ओर उठ रही थी, उससे सोने की लंका एकरूप बन गई थी। बीच-बीच में जंगल की हरियाली दिख रही थी, लेकिन आग की लपट से वह भी लाल-पीली हो रही थी। हनुमान्जी ने जब लंका के चारों प्रवेशद्वार, सैनिक छावनी, आयुध कारखानों को जला दिया, तब उन्होंने रावण के महल की ओर रूख किया। रावण का महल लंका के मध्य में था, हनुमान्जी उसे भी जलाने की कोशिश करने लगे। लेकिन लंका सोने की थी, आग से जल नहीं पा रही थी, इससे हनुमान्जी काफी चिन्तित हो गए। यही सोचकर हनुमान्जी अकस्मात् एक अंधेरी कोठरी के निकट पहुँच गए। चारों ओर आग की ज्वाला फैली हुई थी, लेकिन वहाँ काफी अंधेरा था। उसी समय हनुमान्जी को किसी के कराहने-पुकारने की आवाज सुनाई पड़ी। उन्होंने चारों ओर खोजा, तभी उन्होंने देखा कि एक विचित्र-सा प्राणी मिट्टी में गड़ा हुआ है, इसके पाँव ऊपर की ओर बंधे थे और सिर मिट्टी के अंदर धंसे थे। वह व्यक्ति पुकार रहा था कि मुझे बचाओ।

शनिश्चर और हनुमान् की भेंट

हनुमान्जी ने नीचे की ओर देखा और पूछा– "हे विचित्र प्राणि! तुम कौन हो?" नीचे से आवाज आई– "हनुमान्! मैं शनिश्चर हूँ। रावण ने मुझे बन्दी बनाकर उल्टा गाड़ दिया है। आप पहले मुझे बाहर निकालिए।" हनुमान्जी ने कहा– "मैं तुम्हें क्यों निकालूँ?" यह सुनकर शनिश्चर ने कहा– "मैं इस समय तुम्हारी सहायता करूँगा।" शनिश्चर की बात सुनकर हनुमान्जी ने कहा– "जो स्वयं बन्दी हो, वह दूसरे की सहायता कैसे कर सकता है?" शनिश्चर ने कहा– "मैं माया के कारण रावण की जाल में फँस गया था। मैं तो रावण से युद्ध करने आया था। लेकिन उसने मुझे माया में फँसाकर बन्दी बना लिया।" शनिश्चर की बात सुनकर हनुमान्जी को दया आ गई। हनुमान्जी ने शनिश्चर की दोनों टाँग पकड़कर उसे ऊपर की ओर खींचा। बाहर

निकलते ही शनिश्चर ने हनुमान्‌जी से कहा- "आप मुझे पीछे से पकड़ लें, ताकि मेरा चेहरा आपकी ओर न हो। नहीं तो मेरी आँखों की ज्वाला से आप भी जल जाऐंगे। आप मुझे पीछे से पकड़कर चारों ओर घुमा दे अथवा नचा दें। मेरी दृष्टि जहाँ-जहाँ जाएगी, वह भाग जलकर भस्म हो जाएगा। क्योंकि आपकी अग्नि से सोना नहीं जलने वाला है।" तब हनुमान्‌जी को पता चला कि उनके द्वारा लगाए आग से सोने की लंका क्यों नहीं जल पा रही थी। हनुमान्‌जी ने शनिश्चर को पीछे से पकड़ा और चारों ओर घुमा दिया। सोने की लंका देखते ही देखते भस्म हो गई। इसके बाद शनिश्चर ने हनुमान्‌जी से कहा- "आपने मेरी बड़ी सहायता की है, आज से हम दोनों मित्र हो गए।"शनिश्चर ने कहा कि हनुमान्! आपके भक्त मंगलवार को आपकी पूजा-वन्दना करेंगे और मेरा भक्त शनिवार को मेरी पूजा करेगा। आज से हम दोनों मित्र हैं, इसलिए हम दोनों की पूजा अब शनिवार और मंगलवार दोनों ही दिन होगी। मैं आपको वरदान देता हूँ कि जो कोई भी व्यक्ति आपकी पूजा करेगा अथवा जो आपका भक्त होगा, उसे कभी मेरा कोप नहीं लगेगा और न ही आपके भक्तों पर साढ़ेसाती का कोई प्रभाव पड़ेगा।"

हनुमान्‌जी ने पूछा- "शनिश्चर! आपके शरीर में तो काफी घाव लगा हुआ है।" हनुमान्‌जी की बात सुनकर शनिश्चर ने कराहते हुए कहा- "पूरे शरीर में काफी पीड़ा हो रही है।" यह सुनते ही हनुमान्‌जी ने शनिश्चर के शरीर को पुनः स्पर्श किया। उनके स्पर्श से शनिश्चर के शरीर का दर्द नष्ट हो गया। फिर हनुमान्‌जी ने कहीं से थोड़ा तेल और सिन्दूर लाकर शनिश्चर के शरीर पर लगाया, जिससे उसके शरीर का दर्द जाता रहा, फिर उसने हनुमान्‌जी से विदा मांगी। शनिश्चर के जाते समय हनुमान्‌जी ने देखा कि वह लंगड़ाकर चल रहा है। यह देख हनुमान्‌जी ने पूछा- "शनिदेव! आप लंगड़ाकर क्यों चल रहे हैं?" यह सुनकर शनिश्चर ने कहा- "हनुमान्! रावण ने छल से मुझे बन्दी बनाकर अपने कारागार में डाल दिया, जब मुझे पता चला कि मंदोदरी को प्रसव पीड़ा हो रही है तो, मैंने कारागार से अपना एक पैर निकाला और मंदोदरी के गर्भ को नष्ट करना चाहा, तभी रावण वहाँ पहुँच गया, उसने मेरी टाँग देखकर अपनी गदा से एक भीषण प्रहार किया। जिस कारण मेरी टाँग टेढ़ी हो गई। उसी समय मेघनाद का जन्म हुआ।" शनिश्चर इतना कह कर अपने लोक चले गए लेकिन उससे पहले हनुमान्‌जी ने यह कह कर उन्हें विदा किया, मेरी पूजा के साथ-साथ आपकी आरती जो गाएगा, वह संकटमुक्त रहेगा-

तुम हो ग्रहों में महान,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम।

सब संकट के तुम हो त्राता,
छायानंदन भाग्य विधाता।
करूँ हर पल तेरा ध्यान,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम॥

दीन, दुःखी तेरे दर पै आवे,
सब संकट से मुक्त करावे।
राजा रंक सुजान,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम॥

आत्मबली मंगल के दाता,
हनुमत शंकर के तुम धाता।
ऋद्धि-सिद्धि के खान,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम॥

सुख संपत्ति सुत के तुम दाता,
जीवन रक्षक भाग्यविधाता।
सर्वशक्ति गुणवान,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम॥

सिगनापुर में जो कोई आता,
मनोवांछित फल नर पाता।
सुदर्शन देत प्रमाण,
शनिदेव तुझको मेरा सलाम॥

इधर हनुमान्जी की पूंछ में अभी तक आग जल रही थी । जब हनुमान्जी ने महसूस कर लिया कि अब पूरी लंका जल गई तो, उन्होंने विभीषण के घर की ओर देखा । विभीषण के घर को देखकर हनुमान्जी काफी प्रसन्न हुए ।

चौ०

जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक विभीषन कर गृह नाहीं ।

आग के कारण हनुमान्जी को अपनी पूंछ में जलन हो रही थी । अतः उन्होंने वहीं समुद्र में छलांग लगायी।

दो०

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।
जनकसुता के आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥

हनुमान्जी ने समुद्र में स्नान करने के उपरान्त अशोकवाटिका में प्रवेश किया । अशोकवाटिका में सीताजी चिन्तित भाव से बैठी थी । हनुमान् ने जाकर उन्हें प्रणाम किया । हनुमान्जी को सुरक्षित देख सीताजी ने उन्हें पुनः आशीर्वाद दिया । आशीर्वाद पाकर हनुमान्जी गद्गद हो गये ।

हनुमान्जी हाथ जोड़कर सीता माता के सामने खड़े हो गये और विनीत भाव से बोले- "हे माता! आते समय प्रभु श्रीराम ने आपको देने के लिए एक मुद्रिका दी थी, आप भी मुझे कोई ऐसी पहचानी दें, जिससे हमारे प्रभु को भरोसा हो जाए कि आप स्वस्थ और सुरक्षित हैं ।" अब सीताजी विचार करने लगीं कि "मेरे पास क्या शेष है जो मैं हनुमान् को दूं । मेरे प्रभु ने जो मुद्रिका भेजी है, उसे मैं लौटा नहीं सकती । क्योंकि भेंट लौटाना अपमानजनक होता है । (जिस प्रकार यदि कोई आपको पत्र लिखे और उसी पत्र की पीठ पर आप उसका जवाब लिख दें तो इससे उसका अपमान होता है) मुद्रिका वह भेज नहीं सकती थीं तो, फिर और क्या भेजा जाए? और सीताजी के पास जो चुड़ामणि है, उसे वह उतार नहीं सकतीं क्योंकि वह सुहाग का प्रतीक है । दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सीताजी को पता था कि संसार में तीन मणि हैं । पहला रघुकूल मणि, दूसरा चूड़ामणि, तीसरा करमणि(मुद्रिका) और

सीताजी को यह भी पता था कि इनमें से दो मणि जहाँ कहीं भी रहेगी, इनके प्रभाव से उस देश का पराजय संभव नहीं हो सकेगा । सीताजी ने सोचा कि एक मणि को तो वहाँ लौटना ही होगा । तभी प्रभु श्रीराम विजयी हो सकते हैं । उन्होंने फिर से विचार किया कि मुद्रिका लौटाने से मेरे प्रभु का अपमान होगा, दूसरी बात मेरे प्रभु को विश्वास कैसे हो कि मैं सुरक्षित हूँ और हनुमान्‌जी मुझसे मिलकर लौटे हैं । जहाँ तक चूड़ामणि की बात है तो इसे मैं कैसे उतार सकती हूँ । इस चूड़ामणि को देवासुर संग्राम में विजयी होने के कारण देवराज इन्द्र और राक्षसराज पुलोम की पुत्री इन्द्र पत्नी शची ने मेरे ससुर महाराज दशरथ को भेंट स्वरुप दिया था । उनसे माता कौशल्या को मिला और माता कौशल्या ने आशीर्वाद स्वरुप इस चूड़ामणि को मुझे दी थी । तभी सीताजी ने हनुमान्‌जी की ओर देखा । हनुमान्‌जी के हृदय में प्रभु श्रीराम विराजमान थे । यह देख सीताजी ने सोचा कि जब प्रभु विराजमान हैं ही, तो हनुमान्‌जी को चूड़ामणि देने में कोई दोष नहीं है ।

चौ०

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥

विशेष प्रसंग

(मुझे स्मरण है कि जब मैं हाईस्कूल में पढ़ रहा था, तो एक बहुत बड़े सन्त मेरे घर आये थे । उन्होंने वहाँ कई दिनों तक सत्संग किया । एक दिन मैंने उनसे पूछा- "महाराजजी! सीताजी ने हनुमान् को चूड़ामणि क्यों दी? जबकि चूड़ामणि को सुहाग की निशानी माना जाता है ।" मेरे बड़े भाई बहुत बड़े कीर्तन गायक थे, उन्होंने ही मुझे एक पंक्ति बताई थी-

चूड़ामनि सुहाग था तो जनकसुता क्यों दीन्ह ।
ब्रह्मचर्य हनुमान थे तो चूड़ामनि क्यों लीन्ह ॥

सन्त बाबा ने उसी समय मुझे समझाया कि "सीताजी ने हनुमान्‌जी के हृदय में प्रभु राम की छवि का दर्शन कर लिया था । सीताजी ने चूड़ामणि हनुमान्‌जी को नहीं,

श्रीराम को समर्पित थी । पुनः उन्होंने बताया कि सीताजी ने सोच-समझकर चूड़ामणि हनुमान्‌जी का दी थी कि इससे लंका में दो मणि नहीं रह पायेगी । एक- रघुकुलमणि और दूसरा- चूड़ामणि । क्योंकि करमणि मुद्रिका तो सीताजी के पास आ गई थी । दो मणि जहाँ रहेगी, वहाँ पर पराजय नहीं हो सकता ।

दूसरा अर्थ यह था कि प्रभु श्रीराम ने हाथ की मुद्रिका भेजकर यह बताया था कि सीता मेरा हाथ तुम्हारे सिर पर है । श्रीराम ने मुद्रिका के द्वारा अपना आशीर्वाद भेजा था, ऐसा कहा जा सकता है ।

सीताजी समझ गईं कि प्रभु ने मुद्रिका के द्वारा अपना आशीर्वाद भेजा है तो, मैं अपना सिर झुकाती हूँ और प्रतीक रूप में सीताजी ने अपने सुहाग का प्रतीक चूड़ामणि प्रभु श्रीराम को भेजा । तीसरी बात यह है कि पति सुहाग है और उसी पति को सीताजी अपनी सुहाग निशानी भेज रही हैं । इसलिए सीताजी ने बेहिचक चूड़ामणि अपने पति प्रभु श्रीराम के पास भेज दी । इसके साथ यह संकेत दी थी कि आपने अपने हाथ से आशीर्वाद भेजा है तो, मेरा सिर आपके चरणों में समर्पित है । यही तो समर्पण भाव है, इसलिए चूड़ामणि देने में कोई दोष नहीं था । मंगलसूत्र और चूड़ामणि पति की कुशलता के प्रतीक चिह्न हैं । जब तक पति जीवित रहता है, तभी तक औरतें चूड़ामणि और मंगलसूत्र धारण करती हैं । इसलिए आवश्यकता पड़ने पर इन शुभ प्रतीकों को पति को समर्पित कर देने में कोई बुराई नहीं है ।

चौ०

कहेहु तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

"हे तात! मेरे प्रभु को कहना कि उनकी सीता संकट में है, और आप दीन दयाल हैं । सबके दुःख हरण करने वाले हैं, शीघ्र मेरे भी दुःख का हरण करें ।" (कई लोग मानते हैं कि ऊपर की पंक्ति में जो दीनदयाल शब्द आया है, सीताजी ने विशेष प्रयोजन के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है । इस पंक्ति का बार-बार पाठ करने से मनुष्य बड़े से बड़े संकट से निकल जाता है । इसलिए मेरा परामर्श है कि जब कभी मनुष्य बड़े से बड़े संकट में पड़ जाए, मानसिक तनाव, चिन्ता में पड़ जाए तो,

एकान्त में निष्ठापूर्वक प्रभु के चित्र के सामने बैठकर इस पंक्ति का बार-बार पाठ करें, वह संकट से मुक्त हो जाएगा ।)

विशेष प्रसंग

(इस शब्द के सम्बन्ध में कई संतों का मत है कि एक बार तुलसीदासजी प्रभु श्रीराम के दरबार में गये । वहाँ सभी देवगण बैठे थे, तुलसीदास ने जाते ही कहा- "प्रभु! आपके दरबार में सभी लोग उपस्थित हैं लेकिन यह दरबार अभी भी अपूर्ण है ।" यह सुनकर प्रभु श्रीराम ने तुलसीदास से पूछा- "मेरे दरबार में क्या कमी है?" यह सुन तुलसीदासजी ने कहा- "आपका नाम दीनदयाल है, लेकिन इस दरबार में कोई दीन नहीं है । इसलिए मैं आया हूँ कि आप मुझे अपने दरबार में शामिल कर लें, तभी आपका दीनदयाल नाम सार्थक होगा ।" यह सुनकर प्रभु श्रीराम ने तुलसीदास को अपने दरबार में शामिल कर लिया ।)

अब, सीताजी ने हनुमान्जी को बताया- "तुम आये तो लगा कि मेरा दुःख अब समाप्त हो गया, लेकिन अब जा रहे हो तो-

चौ०

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना।।
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राति।।

अब तुम जा रहे हो, तुंम्हारे जाते ही मेरा दुःख पुनः शुरू हो जाएगा । लेकिन प्रभु को बताना कि अगर एक माह के अन्दर वे नहीं आते हैं, तो रावण मुझे मार देगा ।" सीताजी की आर्तवाणी सुनकर हनुमान्जी ने कहा- "हे माता! आप चिन्ता न करें । प्रभु श्रीराम आपसे कहीं अधिक दुःखी हैं, वे दिन-रात केवल आपकी चिन्ता करते रहते हैं । आपके विरह में वे न ठीक से सोते हैं, न जागते हैं । उनकी व्यग्रता आपसे कहीं अधिक है । मैं तो प्रभु का सिर्फ दूत हूँ, मेरी इच्छा तो हो रही है कि मैं आपको साथ लेकर चला जाऊँ, लेकिन मेरा ऐसा करना उचित नहीं होगा । क्योंकि मेरे प्रभु की ऐसी आज्ञा नहीं है ।" (हनुमान्जी सोच रहे हैं कि सीता माता को मैं अपनी पीठ पर बैठाकर कैसे ले जा सकता हूँ, क्योंकि वे तो पर पुरुष को स्पर्श भी नहीं करतीं हैं और दूसरी बात है कि रावण को मारना भी है । अगर मैं सीता माता को ले गया, तो रावण का अत्याचार समाप्त नहीं होगा) इसलिए हनुमान्जी ने सीता माता को बहुत

समझाया कि आप धैर्य रखें । प्रभु श्रीराम आवेंगे, आप कुशलतापूर्वक लौटेंगी और प्रभु स्वयं इस राक्षस-वंश का नाश करेंगे ।

दो०

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥

विशेष प्रसंग

(हनुमान्‌जी प्रभु श्रीराम के दूत बनकर लंका गये थे । प्रभु ने उन्हें अपनी पत्नी को देने के लिए अपनी मुद्रिका दी थी । प्रभु का अर्थ ही होता है जो पूर्ण प्रभुत्व से युक्त हो । जो शील, शक्ति, मर्यादा, नैतिकता, आयुष्य और दिव्य शक्तियों से विभूषित हो, उसी को प्रभु कहा जाता है । आजकल प्रभुता का अर्थ धन-वैभव से लगाया जाता है । लेकिन सही अर्थ में प्रभु का अर्थ है सात्विक वृत्ति से युक्त होना ।)

श्रीराम ने हनुमान्‌जी को ही अपनी मुद्रिका क्यों दी? दरअसल श्रीराम को पता था कि हनुमान्‌जी दिव्य शक्तियों से विभूषित हैं । इसलिए जब सभी वानरवीर सीताजी की खोज में निकल रहे थे, तो प्रभु श्रीराम ने हनुमान्‌जी को रोक लिया और कहा- "सीता को यह मुद्रिका देना । सम्भव है मुद्रिका देखकर सीता के मन में सन्देह हो तो, तुम उन्हें चित्रकूट की एक घटना बताना । मैंने एक दिन सीता के माथे पर मैनसिल का तिलक और उनके कपोल पर कई चित्र बनाए थे । मैंने स्वयं अपने हाथों से उनका शृंगार भी किया था । इस बात को कोई नहीं जानता । तुम जब यह घटना उन्हें बताओगे तो उन्हें विश्वास हो जाएगा कि तुम्हें मैंने ही भेजा है और इसमें कोई माया नहीं है।" श्रीराम ने हनुमान्‌जी को जाते समय एक मन्त्र बताया था जिसके पाठ से कोई भी व्यक्ति महान् सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।

उसी समय श्रीराम ने हनुमान्‌जी को विशेष शक्ति भी प्रदान की थी । हनुमान्‌जी अणिमा, लघिमा, महिमा-गरिमा, इन समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर सके थे । सत्य है कि परमात्मा का आशीर्वाद जिसे प्राप्त हो जाता है, वह विराट बन जाता है । तभी हनुमान्‌जी **कनक भूधराकार सरीरा** का रूप धारण कर लंका की यात्रा पर निकले थे ।

दूसरी ओर जब हनुमान्‌जी सीताजी से विदा मांगने पहुँचे तो सीताजी ने अपनी चूड़ामणि उन्हें दी और कहा– "हे हनुमान्! प्रभु श्रीराम को मेरी विरह–व्यथा सुनाना और कहना कि जो प्रभु जयन्त की कुटिलता के कारण उस पर ब्रह्मास्त्र चला चुके थे, आज वही मुझसे दूर बैठे हैं ।"

हनुमान्‌जी माता सीता से **"अजर अमर गुन निधि सत होहुँ करहुं सदा रघुनायक छोहुं"** का आशीर्वाद लेकर लंका से प्रस्थान किये ।

विशेष प्रसंग

(संतों के बीच एक कथा प्रचलित है कि एक बार गुरु नामदेवजी श्रीराम कथा कह रहे थे। कथा क्रम में उन्होंने कहा कि हनुमान्‌जी जब अशोकवाटिका पहुँचे थे, उस समय वहाँ चारों तरफ सफेद फूल खिले हुए थे । यह सुनते ही एक श्रोता उठकर खड़ा हुआ और कहा– "महाराज! अशोकवाटिका में लाल फूल खिले हुए थे ।" इसपर गुरु नामदेव ने कहा– "नहीं, वहाँ सफेद फूल खिले थे ।" श्रोता ने फिर कहा– "वहाँ लाल फूल थे ।" इस पर गुरुजी ने कहा– "वहाँ लाल फूल थे कि सफेद फूल, तुम्हें कैसे पता?" इस पर श्रोता ने गुरुजी से कहा– "मैं हनुमान् हूँ, प्रतिदिन भेष बदलकर आपकी कथा सुनने आता हूँ। मुझे पता है कि लंका की अशोकवाटिका में केवल लाल ही फूल खिले थे। यह सुन गुरुजी ने कहा– नहीं, तुम गलत बोल रहे हो । वहाँ कोई लाल फूल नहीं था ।"

यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा– "तब तो इसका निर्णय सीता मैया को ही करना पड़ेगा।" यह सुन गुरु नामदेव और हनुमान्‌जी सीता मैया के पास जाने को तैयार हुए। दोनों श्रीराम के दरबार में पहुँचे। दोनों भक्तों को आए देख श्रीराम ने पूछा– "कहो, कैसे आए!" इस पर हनुमान्‌जी ने कहा– "गुरुजी ने अपनी कथा में कहा है कि अशोकवाटिका में सफेद फूल खिले थे । लेकिन मैंने देखा कि वहाँ कोई सफेद फूल था ही नहीं, वहाँ तो केवल लाल फूल खिले थे । इसका फैसला सीता मैया से कराने आए हैं ।"

यह सुन प्रभु श्रीराम मुस्कुराने लगे और उन्होंने सीताजी की ओर देखा । सीताजी ने कहा– "तुम दोनों का कथन सत्य है । अशोकवाटिका में सफेद फूल ही थे, लेकिन हनुमान्‌जी जब वहाँ पहुँचे, तो रावण मुझे प्रताड़ित कर रहा था । इस प्रताड़ना को सुनकर

हनुमान्जी अत्यन्त क्रोधित हो गए । क्रोध के कारण इनकी आँखें लाल हो गई थीं, जिससे अशोकवाटिका का सब कुछ हनुमान्जी को लाल ही लाल दिखाई देता था । क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि इस संसार को तुम वैसा ही देखते हो, जैसा तुम्हारा मन रहता है । इसलिए कहा जाता है कि यह संसार न दुःखपूर्ण है, न सुखपूर्ण है । दरअसल, मनुष्य स्वयं दुःखपूर्ण और सुखपूर्ण रहता है । यह संसार उसे वैसा ही दिखता है, जैसा वह स्वयं रहता है ।")

हनुमान्जी के जाते ही सीताजी पुनः दुःख के सागर में डूब गई । सीताजी श्रीराम को संबोधित कर कहने लगी–

गीत

हे प्राणनाथ जीवन रक्षक, जगती के प्राण के प्यारा हो ।
चर अचर जीव व जड़ चेतन, सबकी आंखों के तारा हो ॥
किस भूल से तुमने त्याग दिया, इस तन में प्राण तुम्हारा है ।
मैं देह बनी देही तुम हो, हर सांस में वास तुम्हारा है ॥
जल बिनु मीन नदी बिनु वारि, वैसे ही नाथ पुरुष बिनु नारी ।
पति परित्यक्त है पातक भारी, पुष्प बिना जस हो फुलवारी ॥
स्वर्ण हिरण के मोह में पड़, परित्यक्त बनी अबला नारी ।
बिन प्राण बनी काया मेरी, कैसे भोगूं विपदा भारी ॥
यह मोह बड़ी ठगनी प्रियतम, अपनों से दूर भगाया है ।
जो तुम्हें छोड़ धन सुत मांगे, वह जीव अधम गति पाया है ॥
सोने का मृग नहीं होता, यह भाव समझ नहीं पाई मैं ।
चक्षु माया के भ्रम में पड़, छाया को सत्य बताई मैं ॥

इस जगती की है रीति प्रिय, जब जीव ब्रह्म से भागा हो ।
संकट में जीवन तब पड़ता, जब धर्म भाव वह त्यागा हो ॥
तेरे संग वन में जब आई, आदर्श रूप तब मेरा था ।
तब नारी जाति की गौरव थी, जगती में मान हमारा था ॥
मेरी भूल क्षमा करना प्रियतम, चरणों में मुझे बिठा लेना ।
तू अविनाशी तेरी शक्ति मैं, अपने में मुझे मिला लेना ॥

शास्त्रों में भी कहा गया है-

"पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्त्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥"

पति के विरह शोक से उनका हृदय बड़ा विकल हो गया था वे उस नदी की तरह लग रही थी जिसका जल नहरों के द्वारा इधर-उधर निकाल दिया गया हो, और नदी सूख गयी हो । इसी प्रकार वे उत्तम उबटन आदि के न लगने से कृष्णपक्ष की रात्रि के समान मलिन दिखाई दे रही थीं ।

विशेष प्रसंग

(हनुमान्‌जी जब लंका जा रहे थे, तो जाम्बवन्त ने उन्हें सीताजी की सुधि लाने को कहा था । लेकिन हनुमान्‌जी ने वहाँ लंका जला दिया । इसका कारण यह है कि हनुमान्‌जी दूत थे और दूत का काम अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना है । इसलिए हनुमान्‌जी ने लंका में अपनी ओर से कभी कुछ नहीं किया । जब जब उन पर आक्रमण हुआ, तब उन्होंने जवाब दिया । अशोकवाटिका में जब वे फल खा रहे थे तो उन पर आक्रमण हुआ । उस आक्रमण के उत्तर में अशोकवाटिका उजड़ गई । उनकी पूँछ में आग लगाई गई, उसके प्रतिकार में पूरी लंका जल गई । इसमें उनका कोई कसूर नहीं था । सीताजी की सुधि लाने के लिए उन्हें घर-घर में भटकना पड़ा । हनुमान्‌जी दूत बनकर लंका गए थे, तो उन्हें लंका की पूरी जानकारी लेनी ही थी । लंका में कितने द्वार हैं, वहाँ की सुरक्षा का क्या इन्तजाम है, इस बात की

जानकारी तो उन्होंने आकाश मार्ग से ही प्राप्त कर ली थी । लेकिन जब उनकी पूँछ में आग लगा दी गई, मतलब उन्हें जान से मारने की कोशिश की गई, तब उन्होंने लंका को जलाया और सबसे पहले लंका के चार प्रवेश द्वारों और रावण के सैनिक ठिकानों में आग लगा दी । जिससे लंका की सुरक्षा व्यवस्था भंग हो गई । हनुमान्जी ने अपनी ओर से कुछ नहीं किया । आज्ञा के विरूद्ध उन्होंने कुछ नहीं किया । दूत का धर्म है कि वह किसी पर आक्रमण न करे, हनुमान्जी ने किसी पर आक्रमण नहीं किया और बचाव करना तो प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है । लंका दहन के पीछे हनुमान्जी का राजनैतिक उद्देश्य भी था । वे जानते थे कि जिस लंका पर प्रभु श्रीराम को आक्रमण करना है, पहले उसकी व्यवस्था को भंग कर दिया जाए । इसी कारण उन्होंने भयंकर दुर्गों को नष्ट कर दिया और लंका में आग लगा दी । आज प्रायः सामान्य लोग कहते हैं कि मैंने सभी कामों को सुधिया दिया है । इसका अर्थ है कि उन्होंने उस काम के पूरा होने में जो थोड़ा-बहुत विघ्न था, उसे नष्ट कर दिया है । इसलिए हनुमान्जी ने लंका में जो कुछ भी किया, उनका आचरण मर्यादा के अनुकूल ही था । प्रभु श्रीराम का दूत कभी कोई ऐसा आचरण कर ही नहीं सकता, जो मर्यादा के प्रतिकूल हो । क्योंकि श्रीराम का कृपापात्र हमेशा अपने कार्यों और विचारों से समाज में पूजा जाता है । इसी विश्वास से सीताजी ने हनुमान्जी को अपना चूड़ामणि उतार कर दिया ।)

हनुमान्जी का गर्व नाश

हनुमान्जी जब लंका से चलने लगे तो उनके मन में गर्व हो गया कि मैंने अकेले पूरी लंका का तहस-नहस कर दिया । यह खबर प्रभु श्रीराम को लग गई । प्रभु ने सोचा कि अगर हनुमान् को गर्व हो गया, तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा । जब हनुमान्जी सीता माता को प्रणाम कर लंका से चलने लगे, तो उन्होंने भयंकर गर्जना की-

चौ०

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥

हनुमान्जी जब चलने लगे तो उन्होंने एक भयंकर गर्जना कर दी, इस गर्जना को सुनकर गर्भवती राक्षसणियों के गर्भ गिर गए । हनुमान्जी ने सोचा कि लंका में जो वीर राक्षस हैं, उन्हें तो लड़ाई में प्रभु श्रीराम मार ही देंगे, वे तो नष्ट हो ही जायेंगे । लेकिन जो गर्भवती स्त्रियाँ हैं, जब उनकी सन्तानें होंगी तो वे फिर से उत्पात मचाने

लगेंगी । इसलिए हनुमान्‌जी ने उन सबों का गर्भ गिरा दिया कि भविष्य में कोई राक्षस पैदा ही न हो सके ।

विशेष प्रसंग

(कहा जाता है कि लंका सोने की थी और वहाँ का राजा रावण बहुत ही अहंकारी, क्रोधी और व्यभिचारी था । अन्य देश के शान्तिप्रय लोगों पर आक्रमण करना, उनका धन-सम्पत्ति लूटना, वहाँ की सुन्दर स्त्रियों का हरण करना, आदि उसका धर्म बन गया था । इसी अहंकार के कारण वह किसी भी देव, दानव, गंधर्व पर अकारण आक्रमण कर देता था और उसको लूट लेता था । उसकी सेना के राक्षस भी पराजित देश की औरतों को उठाकर अपने देश ले आते थे । रावण स्वयं तो अत्याचार करता ही था, उसने अपने सैनिकों को भी अत्याचार, अनाचार और दुराचार करने की छूट दे रखी थी । गोस्वामीजी ने लिखा है-

दो०

श्रीमद् बक्र न किन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नयन सर केहि जग बेधि न जाहिं ॥

धन पाकर कौन आदमी टेढ़ा नहीं हो जाता, प्रभुता पाने वाला कैसे न बधिर होगा, किसी मृगलोचनी से कौन घायल नहीं होता, ऐसा शास्त्रों का मत है । रावण की लंका में अपार धन-सम्पत्ति थी, यहाँ तक कि पूरा नगर ही सोने का बना हुआ था और सोना जहाँ रहेगा, वहाँ विवेक नहीं रहता । वहाँ तो जड़ता आ जाती है । अगर लंका सोने की नहीं होती, तो रावण इतना अहंकारी और व्यभिचारी नहीं होता । हनुमान्‌जी ने सोचा- "रावण धन-वैभव के मद में धर्म-नीति सब कुछ भूल चुका है, इसलिए पहले उसके धन को नष्ट कर देना चाहिए, क्योंकि धन को विवेक का नहीं, जड़ता का प्रतीक माना जाता है, इसीलिए लक्ष्मी की सवारी उल्लू को बनाया गया है । हनुमान्‌जी ने सोचा कि पहले लंका को जलाकर उसकी जड़ता का नाश कर देना चाहिए । जब तक रावण के पास सोने की लंका रहेगी, तब तक उसका अहंकार नष्ट नहीं होगा । सम्भव है लंका के जलने से रावण को सद्‌बुद्धि आ जाए और वह सीता माता को वापस कर नैतिक जीवन जीने का अभ्यास करे ।" इसीलिए हनुमान् ने सोने की लंका जलाकर रावण की जड़ता मिटाने का प्रयास किया ।)

हनुमान्‌जी ने फिर अपना विराटरूप बनाया और उत्तर की ओर प्रस्थान किया। प्रभु श्रीराम को लगा कि हनुमान् जैसे भक्त को अहंकार नहीं होना चाहिए। लंका से लौटते समय हनुमान्‌जी को प्यास लगी। आकाश में उड़ते हुए उन्होंने देखा कि नीचे एक मुनि तपस्या में लीन हैं। हनुमान्‌जी वहाँ उतरे और मुनि से पूछा- "मुनिवर! मैं प्रभु श्रीराम का दूत हूँ, लंका से लौट रहा हूँ। मुझे प्यास लगी है, कृपा कर कोई जलाशय बताइए।" मुनि के संकेत से वे जलाशय में जल पीने जाने लगे, इसके पहले उन्होंने माता सीता द्वारा दिए गए चूड़ामणि को एक स्थान पर रख दिया और जल पीने चले गए। जब जल पीकर आये तो उन्होंने वहाँ चूड़ामणि नहीं देखा। मुनि से पूछने पर पता चला कि जब वे जल पीने गये थे, इसी बीच एक बन्दर आया और चूड़ामणि को उठाकर इस कमण्डल में रख दिया। तुम अपना चूड़ामणि इस कमण्डल से निकाल लो। हनुमान्‌जी ने कमण्डल में झांका तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ तो बहुत सारे चूड़ामणि रखे हुए हैं। पूछने पर मुनि ने कहा कि इसके पहले जितनी बार राम जन्म हुआ और हनुमान्‌जी चूड़ामणि लेकर आये, सभी के चूड़ामणि इसी कमण्डल में रखे हुए हैं। यह सुनकर हनुमान्‌जी को पता चला कि वे अकेले हनुमान् नहीं हैं, इसके पहले भी कई सारे हनुमान् हो चुके हैं। थोड़ी देर बार जब मुनि की माया समाप्त हो गई, तो हनुमान्‌जी अपना चूड़ामणि लेकर समुद्र के इस पार आ गए।

हनुमान्‌जी की लंका से वापसी

चौ०

नांघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥

लंका से हनुमान्‌जी जब आकाशमार्ग से लौटने लगे, तो कपियों ने दूर से ही विशाल पहाड़ की तरह हनुमान्‌जी को आते देखा। हनुमान्‌जी श्रीराम के अमोघ बाण की तरह बड़े वेग से लौट रहे थे। इतना वेग था कि समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठ जाती थी। लहरों के कारण समुद्र के नीचे बैठी मछलियाँ और अन्य जीव-जन्तु घबड़ाकर इधर-उधर भाग रहे थे। हनुमान्‌जी के वेग से काले-काले मेघ तितर-बितर हो रहे थे। काले मेघों के गुच्छों को चीरते हुए सोने के समान चमकते हुए हनुमान्‌जी बढ़े आ रहे थे। उनकी गर्जना सुनकर आकाश में उड़ने वाले पक्षी भय से इधर-उधर भाग रहे थे। नीचे उतरते समय समुद्र की लहरों में उफान आने लगा। समुद्र

घबड़ा कर ऊपर की ओर देखने लगा, तभी हनुमान्‌जी भीषण गर्जना करते हुए किनारे पर उतरे। उनके उतरने से किनारे पर बैठे अनेक भालू, वानर वीर दूर-दूर तक तितर-बितर हो गये। हनुमान्‌जी किनारे पर उतरे, फिर अपना रूप छोटा बनाया तब जाम्बवन्त, अंगद, नल-नील सभी खुशी-खुशी उनके निकट पहुँचे। जाम्बवन्त ने हनुमान्‌जी का अभिनन्दन किया, फिर हनुमान्‌जी ने सभी वानर वीरों को लंका की कहानी संक्षेप में बताई।

चौ०

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥
मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

हनुमान्‌जी को देखकर सबों को लगा कि अब हम प्रभु श्रीराम को खुशखबरी सुनाने चलें। सभी कई दिनों से समुद्रतट पर भूखे-प्यासे पड़े थे। इसलिए सबसे पहले वे मधुवन में आये और फल खाने लगे। रखवालों ने जब रोका तो सभी वीरों ने उसे पीटकर भगा दिया। रखवाले भागे-भागे सुग्रीव के पास पहुँचे। सुग्रीव को जब पता चला कि हनुमान्‌जी लौटे हैं तो वे हर्षित होकर समझ गये कि सीता माता का पता चल गया।

चौ०

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥

फल खाकर हनुमान् आदि वीर सुग्रीव के पास पहुँचे। सुग्रीव ने हनुमान्‌जी को गले लगाकर स्वागत किया।

चौ०

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना।

सुग्रीव सबों के साथ प्रभु श्रीराम के पास चले। दूर से ही श्रीराम ने जब सुग्रीव आदि को आते देखा तो समझ गये कि लगता है सीता मिल गई। निकट आकर सबों

ने प्रभु श्रीराम को प्रणाम किया । तब जाम्बवन्त ने कहा– "हे रघुनाथ! आपकी कृपा जिस पर रहती है, वह संसार का कठिन से कठिन काम भी पूरा कर लेता है ।"

चौ०

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ।

यह सुनते ही प्रभु श्रीराम ने हनुमान्‌जी को गले लगा लिया ।

चौ०

सुनत कृपानिधि मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए ।।
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्रान की ।।

श्रीराम ने पूछा– "हे हनुमान्! मेरी जानकी किस हालत में है ।" हनुमान्‌जी ने कहा– "आपके विरह में वह सूखकर कांटा हो गई है । दिन-रात आँसू बहाती रहती हैं ।" प्रभु श्रीराम ने थोड़ा व्यंग्य करते हुए पूछा– "ऐसी हालत में वह जीवित कैसे हैं?" हनुमान्‌जी ने समझ लिया कि प्रभु मजाक कर रहे हैं । तो उनके मजाक का उत्तर मजाक में ही देना चाहिए–

दो०

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ।।

हनुमान्‌जी ने कहा– "वहाँ आपका नाम चौबीसों घंटा पहरा देता रहता है, वही किवाड़ का काम कर रहा है । सीता माता अपने नेत्रों को आपके चरणों में लगाये रहती है, वही ताला बना हुआ है । फिर आप ही बतायें सीता माता के प्राण कैसे निकले?" हनुमान्‌जी ने समझा कि प्रभु सीता माता के विरह को जाँच रहे हैं तो, फिर हनुमान्‌जी ने कहा–

चौ०

चलत मोहि चूड़ामनि दिन्ही । रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही ।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी । बचन कहे कछु जनककुमारी ।।

हनुमान्‌जी ने श्रीराम को सीताजी का चूड़ामणि दिया । प्रभु समझ गये कि मैंने सीता को अपना हाथ दिया था, सीता ने मेरे सामने अपना सिर झुका दिया है । उस सिर(चूड़ामणि) की रक्षा करना अब मेरा धर्म है । श्रीराम यह सोच ही रहे थे कि हनुमान्‌जी ने एक और नहले पर दहला दिया। **"बचन कहे कछु जनककुमारी ।"** यहाँ हनुमान्‌जी ने सीता माता नहीं कहा । उन्होंने जनककुमारी कहा । मतलब सीता माता अभी संकट में पड़ी है । स्पष्ट है कि जिस स्त्री का पति हो और वह अगर बिना पतिवाली की तरह अकेली कहीं पड़ी हो तो, उसे पतिवाली कैसे कह सकते हैं? सीता माता तो जैसे अभी भी जनककुमारी ही हैं। पति के रहते पिता के नाम से हनुमान्‌जी सीता माता को सम्बोधित कर रहे हैं । श्रीराम हनुमान्‌जी का व्यंग्य समझ गये कि मेरे रहते मेरी पत्नी को हनुमान् जनककुमारी क्यों कह रहे हैं । प्रभु मुस्कुराने लगे, फिर गंभीर होकर हनुमान् से पूछने लगे कि "सीता ने और क्या कहा?"

यह सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा- "माता ने कहा है कि प्रभु श्रीराम तो दीनबन्धु हैं तो फिर उन्होंने मुझे कैसे भुला दिया है?" माता ने यह भी कहा है कि मेरा एक ही अपराध है कि वियोग की इस अवस्था में मेरे प्राण क्यों नहीं निकल गये । लेकिन इसमें भी मेरा कोई अपराध नहीं है, यह तो मेरे नेत्रों का अपराध है कि वे मेरे प्राण निकलने ही नहीं देते । ये दिन-रात आपकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं । माता ने यह भी कहा है कि मेरा शरीर तो विरह की अग्नि में जल गया होता, लेकिन आँखों के आँसू से विरह की अग्नि बार-बार बुझ जाती हैं ।"

चौ०

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वास जरइ छन माहिं सरीरा ॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी । जरैं न पाव देह बिरहागी ॥
सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहें भलि दीनदयाला ॥

हे प्रभु! माता के विरह का और वर्णन मैं नहीं कर सकता ।

दो०

निमिष-निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति ।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ॥

"हे प्रभु! अब समय आ गया है कि हम सब चलें और माता को संकट से मुक्त कराकर ले आवें ।" यह सुनते ही श्रीराम ने कहा-

चौ०

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥

प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

सुनु सुत तोंहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥

प्रभु श्रीराम ने हनुमान्‌जी को पहली बार जब पुत्र कहा तो हनुमान् उनके चरण पकड़कर भाव-विभोर हो गये । परमात्मा किसी को पुत्र कहे, इससे बड़ा सम्मान उसके लिए और क्या हो सकता है?

दो०

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ॥

चौ०

बार बार प्रभु चहइ उठावा । प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥

प्रभु कर पंकज कपि के सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥

हनुमान्‌जी चरण पकड़े हुए हैं, प्रभु उन्हें उठाते हैं । लेकिन हनुमान्‌जी उठ नहीं रहे हैं । यह दृश्य देखकर भगवान् शिव आनन्द-विभोर हो रहे हैं । किसी तरह प्रभु श्रीराम ने हनुमान्‌जी को उठाया, गले लगाया फिर निकट बैठाकर पूछा- "हे पुत्र! लंका का क्या समाचार है?" श्रीराम की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने लंका की पूरी कहानी प्रभु श्रीराम को बता दी । श्रीराम ने हनुमान्‌जी की बात सुनकर उन्हें परम आशीष प्रदान किया । हनुमान्‌जी ने प्रभु श्रीराम को एकान्त में सीता माता के संवाद निश्छल भाव से सुना दिया । लंका की पूरी बात सुनकर श्रीराम ने सुग्रीव आदि वानर सेना को आदेश दिया कि इस वन प्रदेश में जितने भी वनवासी एवं वानर वीर हैं, उन्हें एकत्र कर लंका प्रस्थान करने का आदेश दिया जाए । आदेश सुनते ही पूरे क्षेत्र के लोग एकत्र होकर

समुद्र की ओर चल पड़े । जब पूरी सेना समुद्र की ओर चली, तो पृथ्वी डोलने लगी। सभी दिशाओं से घोर गर्जना करते हुए वानरवीर और वनवासी तुमुलनाद करते हुए जय श्रीराम के घोष के साथ आगे बढ़ने लगे । इसतरह श्रीराम सबों के साथ समुद्र के तट पर पहुँच गये । वहाँ अब मंत्रणा होने लगी कि समुद्र को कैसे पार किया जाए।

हनुमान्‌जी के लौटने पर लंका की रणनीति

चौ०

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब तें जारि गयउ कपि लंका ॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा । नहिं निसिचर कुल केर उबारा ॥
जासु दूत बल बरनि न जाई । तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥

हनुमान्‌जी लंका की पूरी शासन व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करके लौट आये और इधर प्रभु श्रीराम समुद्र के किनारे लंका जाने की तैयारी में लग गये ।

उधर लंका में आपातकालीन बैठक हुई । लंका के स्त्री-पुरुष और बच्चे रावण के दरबार में एकत्र हुए । सबों के चेहरे पर भय था । सभी यही कह रहे थे कि एक साधारण दूत ने लंका को तहस-नहस कर दिया । अब अगर उसका स्वामी आएगा, तो हमारी कैसी हालत करेगा? दरबार में सभी लोग चिन्तातुर बन बैठे थे और महल में मयदानव पुत्री मंदोदरी अपने पति रावण को मनाने का प्रयास कर रही थी ।

विशेष प्रसंग

(ऐसा कहा जाता है कि सीता माता विश्व की सर्वोत्तम सुन्दर महिला थी और उसके बाद मंदोदरी को सुन्दर माना जाता था । क्योंकि मंदोदरी का जन्म भगवान् विष्णु के चन्दन से हुआ था । माता पार्वती को जब रावण ने भगवान् शिव से मांग लिया था तो पार्वती के अनुरोध पर भगवान् विष्णु ने अपने चन्दन से एक दूसरी स्त्री पैदा किया था और उसे मयदानव के पास रख दिया था । रावण ने जिस समय पार्वती की मांग की थी, उस समय किसी गण ने रावण को बता दिया कि वास्तविक पार्वती को भगवान् शिव ने मयदानव के यहाँ छिपा दिया है । यह सुन रावण माता पार्वती को छोड़ मयदानव के यहाँ गया और वहीं से मंदोदरी को प्राप्त कर उससे विवाह कर लिया ।)

मंदोदरी अपने पति रावण को बार-बार मना रही है कि आप **"सीता सीत निसा सम आई,"** उस सीता को लौटा दें, जिसके कारण हमारी पूरी लंका तबाह और बर्बाद हो रही है । मंदोदरी ने पुनः कहा- "हे नाथ! सीता को लौटा दें, नहीं तो-

चौ०

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥

हे स्वामी! सीता का हरण कर आपने जो पाप किया है, उस पाप के लिए आपको भगवान् शिव भी क्षमा नहीं करेंगे ।" यह सुनकर रावण ने अहंकारपूर्वक कहा- "सचमुच स्त्रियाँ स्वभाव से डरपोक होती हैं । आज मुझे पता चला कि विश्वविजेता रावण की पत्नी कितनी कमजोर है । तुम्हें पता नहीं होगा कि अगर बन्दर-भालू लंका में आएंगे, तो हमारे राक्षस उसे जीवित ही खा जायेंगे । इस प्रकार रावण मंदोदरी की बातों की अवहेलना करता रहा ।"

चौ०

मंदोदरी हृदयँ कर चिंता । भयउ कंत पर बिधि बिपरीता ॥

स्वाभाविक है कि जब किसी को अच्छी बात कही जाए और वह न माने, तो समझ लेना चाहिए कि परमात्मा उससे रूष्ट हो गये हैं, उसका नाश अब निश्चित है । रावण सभा में बैठा था तभी गुप्तचरों ने उसे सूचना दी कि श्रीराम अपनी सेना सहित समुद्र तट पर आ गये हैं । रावण ने अपने मंत्रियों से पूछा- "अब आप लोगों का क्या परामर्श है?" सभी चाटुकार मंत्री हंसने लगे और बोले- "महाराज! इसमें चिन्ता की क्या बात है? इन बन्दरों को आसानी से हमारे राक्षस परास्त कर देंगे ।"

दो०

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥

सचिव, बैद्य और गुरु अगर भय अथवा लोभ से प्रिय बात बोलें, तो समझ लेना चाहिए कि अब उसका नाश शीघ्र ही होगा । क्योंकि चाटुकारों की गलत प्रशंसा से

मनुष्य का मन बढ़ जाता है और फिर वह अच्छे-बुरे का निर्णय नहीं कर पाता और उसका पतन हो जाता है ।

चाटुकारी अतिशय करे, समझो मन में पाप ।
वेश्या धन दोहन करे, फिर देत संताप ॥

इसलिए अपने पास वैसे व्यक्ति को ही रखना चाहिए जो सही और उचित सलाह दे । रावण इन्हीं चाटुकारों से घिरा रहता था जो उसके गलत कामों को भी अच्छा मानते थे । यह सभी जानते थे कि रावण अपने पराक्रम के कारण अन्धा और कामी हो गया है, उसे हमेशा दूसरे की पत्नी पर नजर रहती है । कहा भी जाता है काम, वासना और धन से मनुष्य कभी संतुष्ट नहीं होता । इसलिए शास्त्रों में संतोष को सबसे बड़ा धन माना गया है । कहा जाता है-

कामी निर्बल होत है, धन बल रहे अनन्त ।
भडुआई के कारणे, तड़प-तड़प मरे अन्त ॥

सभा में उसी समय विभीषणजी आते हैं उनसे भी उनकी राय पूछी गई । विभीषणजी ने कहा- अगर आप मेरी राय पूछते हैं तो-

चौ०

सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ॥

"हे महाराज! अगर आप हमसबों का कल्याण चाहते हैं तो शीघ्र ही दूसरे की पत्नी का त्याग कर दें । क्योंकि जो चौदहों भुवन का स्वामी हो, उससे बैर करना उचित नहीं है । हे स्वामी! श्रीराम मनुष्य नहीं हैं, वे ब्रह्म हैं ।

चौ०

ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनन्ता ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही । भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥

आप बैदेही को लौटा दें और श्रीराम की शरण में चले जाएं, वे आपको अवश्य ही क्षमा कर देंगे ।" विभीषण की बात सुनकर रावण के नाना माल्यवान ने भी रावण

को बहुत समझाया, लेकिन रावण नहीं माना । जब सभी अपने-अपने घर चले गये तब विभीषणजी ने कहा-

चौ०

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

विभीषणजी ने हाथ जोड़कर रावण को समझाया कि मैं आपका छोटा भाई हूँ । मेरी बात मान लीजिए और लंका की रक्षा करें ।

दो०

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥

विभीषण की बात सुनकर रावण क्रोधित हो गया । रावण ने कहा- "अरे कुल कलंक! मेरी लंका में रहते हो, मेरा अन्न खाते हो और शत्रु का पक्ष लेते हो ।" उसने क्रोध और अहंकार में आकर विभीषण पर एक लात चला दी ।

(कहा जाता है कि कभी भी क्रोध में कोई निर्णय नहीं करना चाहिए । क्रोधी व्यक्ति अपना विवेक खो देता है । क्रोध में अगर अहंकार आ जाए तो वह संसार को मसल देना चाहता है । रावण क्रोधी भी है और अहंकारी भी, इसलिए उसे किसी का उचित परामर्श अच्छा नहीं लगता । क्योंकि-

जब नाश मनुज पर छाता है । पहले विवेक मर जाता है ॥)

अब, रावण ने विभीषण को फटकारते हुए कहा-

चौ०

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥

इस प्रकार विभीषणजी की बात को रावण ने नहीं माना । तब विभीषणजी ने सोचा- "अब प्रभु श्रीराम के शरण में जाने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है ।" विभीषणजी ने अपने मित्रों को एकत्र कर प्रभु श्रीराम की शरण में जाने के लिए प्रस्थान किया ।

चौ०

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

हे रावण! मैं अब प्रभु के शरण में जा रहा हूँ-

चौ०

अस कहि चला विभीषनु जबहीं । आयूहीन भए सब तबहीं ॥

विभीषणजी रावण को त्याग कर प्रभु श्रीराम के शरण में चले गये ।

विभीषणजी का श्रीराम से भेंट

विभीषणजी जब श्रीराम के शिविर की ओर चले तो मन में प्रभु का चिन्तन करने लगे । विभीषणजी को आते देख कपियों ने उन्हें शिविर के बाहर ही रोका, फिर सुग्रीवजी श्रीराम को सूचित करने गये ।

चौ०

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । आवा मिलन दसानन भाई ॥

सुग्रीवजी ने कहा- "हे प्रभु! यह शत्रु का भाई है । हो सकता है कि यह हमारा भेद लेने आया हो ।" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे सखा! विभीषण शत्रु का भाई अवश्य है, लेकिन वह मेरी शरण में आया है ।" हनुमान्जी को तो पता था कि विभीषणजी प्रभु के भक्त हैं, इसलिए उन्होंने भी समर्थन किया कि विभीषणजी से अवश्य मिलना चाहिए और प्रभु श्रीराम की प्रतिज्ञा भी तो है कि शरण में आने वाले को स्वीकार किया जाए-

दो०

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥

चौ०

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

प्रभु श्रीराम ने कहा कि जो व्यक्ति अपने हित के कारण शरणागत की रक्षा नहीं करता, वह महापापी है । और दूसरी बात है, करोड़ों पापों से घिरा व्यक्ति जब मेरे सामने आता है, तो मेरी दृष्टि पड़ते ही उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

(ऐसा मनोविज्ञान भी मानता है कि किसी प्रभावशाली व्यक्ति के सामने जब कोई सामान्य व्यक्ति पहुँचता है, तो महापुरुष की विचार ऊर्जा से प्रभावित होने लगता है । आँख से ऊर्जा का प्रक्षेपण होते ही दूसरे व्यक्ति की ऊर्जा प्रभावित होने लगती है । जब कोई किसी सन्त के पास जाता है, तो सन्त की तपस्या से उत्पन्न ऊर्जा भक्तों के जीवन में रूपान्तरण कर देती है । इसलिए हे सुग्रीव! विभीषणजी को आदर सहित मेरे पास ले आओ । अगर उसका मन पवित्र नहीं होगा, तो वह मेरे पास आने से स्वयं डरेगा । इसीलिए श्रीराम ने कहा- "मेरी नजर पड़ते ही विभीषण के पूर्वजन्म के सारे पाप कट जाएंगे ।")

चौ०

पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई । मोरें सनमुख आव कि सोई ॥

प्रभु श्रीराम कहते हैं- "अगर उसके मन में पाप होगा, तो वह मेरे सामने आ ही नहीं सकेगा । क्योंकि पापी परमात्मा के सामने नहीं जा सकता । जिस प्रकार अन्धकार सूर्य से भागता है, उल्लू प्रकाश से भागता है, उसी प्रकार जिसके मन में पाप रहता है, छल और कपट रहता है, वह सन्तों के पास नहीं जा सकता और विभीषण अगर प्रायश्चित करने आया है तो उसे अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए । मनुष्य तो पाप करता ही है । लेकिन वह अगर सच्चे मन से अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता हो और अपने जीवन में परमात्मा को उतारना चाहता हो, तो उसे मौका अवश्य मिलना चाहिए । क्योंकि मनुष्य का जीवन कर्मभूमि है । मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके कार्य, विचार और संस्कारों के आधार पर होता है । इसीलिए इस संसार को कर्मभूमि कहा गया है । विभीषण रावण का भाई है, अगर उसके मन में पुण्य का उदय हुआ है, अगर वह अपने पापों को भुलाकर मुझे भजना चाहता है, मुझे प्राप्त करना चाहता है तो उसको अवश्य मौका मिलना चाहिए । अगर

पापी समझकर समाज उससे घृणा करता रहे, तो वह पाप में और अधिक डूब जाएगा। इसलिए विभीषण को आदर सहित यहाँ ले आओ ।

चौ०

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

अगर विभीषण का मन निर्मल है, तो वह अवश्य ही मुझे प्राप्त कर लेगा ।

चौ०

भेद लेन पठवा दससीसा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥

अगर रावण ने उसे भेद लेने भी भेजा हो तब भी चिन्ता करने की कोई बात नहीं है । क्योंकि-

चौ०

जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥

इस संसार में जितने भी राक्षस हैं, हमारा लक्ष्मण एक पल में उन सबों का नाश कर सकता है, इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं है । लेकिन अगर वह मेरी शरण में आया है तो मैं उसकी रक्षा अवश्य करूँगा ।" श्रीराम की बात सुनकर सुग्रीव विभीषण को प्रभु के पास ले आए ।

विभीषणजी प्रभु को देखते ही भाव-विह्वल होकर दण्डवत् हो गए । श्रीराम के चरणों में बैठकर विभीषणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे-

चौ०

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी । रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥

मैंने अब तक आपके बारे में सुना था, लेकिन आपके दर्शन नहीं कर सका था, इसलिए हे परमात्मा! मेरी शरणागति स्वीकार करो, मेरे पापों को क्षमा करो, क्योंकि राक्षसकुल में होने के कारण मैं तामसी बन गया हूँ । जिस प्रकार उल्लू को अन्धेरा अच्छा लगता है, उसी प्रकार मुझे भी अब तक पाप ही अच्छा लगता था । लेकिन आपके दूत हनुमान्जी जब लंका गये थे, तब मेरे मन में सात्विक वृत्ति जगी । मैंने

हनुमान्‌जी से भी प्रार्थना की थी कि आप मुझे प्रभु से मिला दें, ताकि मैं अपने पापों का प्रायश्चित कर सकूँ। आज तक मैं दुष्टों की संगति में रहा, अब मुझे अपने चरणों में बैठने की अनुमति दे दें।

दो०

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥

विभीषणजी की आँखों से आँसू बहने लगे। वे एकटक प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण को देखने लगे। इस अवसर पर विभीषणजी ने प्रभु श्रीराम की एक अद्‌भुत प्रार्थना की है।

– प्रार्थना –

श्रीराम तुम्हारे चरणों में, मैं अपना शीष झुकाता हूँ।
स्वीकार करो या ठुकरा दो, चरणों में फूल चढ़ाता हूँ ॥
जीवन भर भटका है जग में, काँटे ही काँटे हैं पग में।
पलकों में पाला है जिनको, अपमान नहीं सह पाता हूँ।
जिन सांसों को पीकर सारे, थे कभी आँख के वे तारे।
अब हार चुका हूँ जीवन में, संकट में तुझे बुलाता हूँ।
जिस तन के खातिर धन पाया, जीवन खोया और जहां पाया।
उस धन ने जीवन को खाया, अब भोग नहीं कर पाता हूँ ॥
श्रीराम तुम्हारे चरणों में ... ...

चौ०

अस कहिं करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥

प्रभु श्रीराम तुरंत उठे और विभीषणजी को गले लगा लिया । श्रीराम ने विभीषणजी से हाल-समाचार पूछा ।

चौ०

कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥

लंकेश शब्द सुनते ही विभीषणजी की आँखों में आँसू आ गये । विभीषणजी ने समझा कि प्रभु श्रीराम ने मुझे रावण के जीवित रहने पर भी कैसे लंकेश कह दिया ।

विषय साक्ष्यः- ध्यातव्य है कि भगवान श्रीराम ने विभीषणजी को 'लंकेश' कहकर सम्बोधित किया, इसके पीछे के कारण का अभिप्राय भूमिका भाग में उजागर हुआ है। (दरअसल विभीषण को देखते ही श्रीराम समझ गये कि यह कौन है और विभीषणजी भी यह जानते थे कि उनसे श्रीराम का क्या नाता है ।)

इसके बाद यह समझना ही अभीष्ट है कि श्रीराम को इस बात की जानकारी थी कि विभीषण मेरा भाई है। अतः बड़ा भाई होने के कारण अयोध्या का उत्तराधिकार पहले विभीषणजी को मिलना चाहिए। इस कारण श्रीराम रावण के जीवितावस्था में ही विभीषण को लंका का राजा बनाकर अयोध्या की तरफ से निश्चिन्त हो गए। इस प्रसंग में यह भी वर्णन मिलता है कि उस समय समुद्र तट पर बालू की लंका बनाकर विभीषणजी का राज्याभिषेक हुआ था, जिसे बाद में हनुमान की लंका के नाम से जाना गया और जो आज भी समुद्र तट पर विराजमान है।

विशेष प्रसंग

(रावण को पता था कि दशरथ का पुत्र ही उसको मारेगा । इसलिए आनन्द रामायण में इसकी चर्चा है कि रावण ने एक बार कौशल्या का हरण कर लिया था और तमिंगली मछली के यहाँ छिपाकर रख आया था क्योंकि वह चाहता था कि कौशल्या को ही नष्ट कर दें तो फिर पुत्र कहाँ से आयेगा? दुर्भाग्यवश वह इस कार्य में सफल नहीं हुआ तब उसने सुबक्षा नामक राक्षसी को दशरथ के पास उसे लुभाने के लिए भेजा, यह कथा विस्तार से भूमिका में आई है ।)

प्रभु श्रीराम ने विभीषणजी का राजतिलक कर दिया। उसके बाद विभीषणजी, सुग्रीव, हनुमान्‌जी समुद्र पार करने की विधियों पर विचार करने लगे। विभीषणजी ने श्रीराम से कहा- "श्रीराम! मैं जानता हूँ कि आप एक बाण में सागर को सोख सकते हैं, लेकिन मेरा विचार है कि पहले सागर से अनुमति ली जाए, क्योंकि सागर आपके पूर्वज महाराज सगर का उपकृत रहा है और उन्हीं के नाम पर तो इसका नाम सागर पड़ा है।" लेकिन विभीषणजी की बात लक्ष्मणजी को अच्छी नहीं लगी। लक्ष्मणजी ने कहा कि-

चौ०

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

"हे विभीषणजी! कायर लोग ही इस तरह की बातें करते हैं। मैं तो चाहता हूँ कि समुद्र को एक बाण में सोख लिया जाय।" उसी समय प्रभु श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! किसी पर आक्रमण करने से पहले उसे अवश्य समझा देना चाहिए। ताकि भविष्य में जब समझौता हो तो शर्मिन्दा न होना पड़े। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसा अवसर आता है। लेकिन दूसरे पक्ष को बिना सफाई का अवसर दिए उसपर आक्रमण कर देना उचित नहीं है। अन्यथा बाद में पछताना पड़ता है। बिना सोचे समझे फैसला करना, आक्रोश में निर्णय करना उचित नहीं होता। जो लोग आक्रोश में निर्णय करते हैं, किसी लोभ या लालच में पड़कर निर्णय करते हैं, वैसे ही लोग पछताते हैं। इसलिए पहले समुद्र से प्रार्थना करना उचित है।" श्रीराम समुद्र के निकट गये, उसे प्रणाम किया फिर कुश की चटाई पर बैठकर समुद्र से पार जाने का मार्ग मांगने लगे।

इधर विभीषण के आने के बाद रावण ने एक दूत को श्रीराम के शिविर में भेजा। दूत श्रीराम की श्रेष्ठता देखकर बहुत प्रभावित हुआ। क्योंकि जिस मनुष्य की शत्रु भी प्रशंसा करे, उसे अवश्य ही सफल व्यक्ति मानना चाहिए। कहा जाता है कि शत्रुता भी मर्यादापूर्वक होनी चाहिए। असभ्य आचरण करके शत्रुता का निर्वाह नहीं किया जाता है। यह शत्रुता नहीं पशुता होती है। दूत श्रीराम के शिविर का निरीक्षण कर रहा था तभी वानर वीरों ने उसे पकड़ लिया। उसे पूरे शिविर में घुमाया गया और उसकी नाक और कान काटने का प्रयास किया जाने लगा। तभी उसने प्रभु श्रीराम की शपथ दे दी। लक्ष्मणजी उसकी दीन-दशा देखकर मुस्कुरा रहे थे। लक्ष्मणजी

ने कहा कि इसे छोड़ दो, लेकिन जाते समय लक्ष्मणजी ने उसे एक पत्र दिया और कहा कि रावण को कहना कि "अरे कुलघातक! अब तुम्हारा काल आ गया है ।" यह कहकर लक्ष्मणजी ने पत्र देकर दूत को छोड़ दिया । दूत लंका गया, रावण ने दूत को देखते ही पूछा- "दूत! बताओ स्त्री वियोग में तड़पते उन दोनों तपस्वियों की क्या हालत है, जिनके मन में मेरा भय व्याप्त है ।" दूत सिर झुकाये खड़ा रहा । फिर रावण ने पूछा- "अरे तुम बोलते क्यों नहीं? उस तपसी से भेंट हुई या कि वे लोग भाग गये?" रावण की बात सुनकर दूत ने लक्ष्मणजी का पत्र दिया । रावण ने बायें हाथ से लक्ष्मणजी का पत्र लिया । इसके बाद दूत ने रावण से कहा- "हे महाराज! विभीषणजी जब श्रीराम के पास पहुँचे तो जाते ही श्रीराम ने उन्हें लंका का राजा बना दिया । जब वानरवीरों को पता चला कि मैं लंका का दूत हूँ, तो उन लोगों ने मुझे पकड़कर मेरे नाक और कान काटने चाहे । यह देख लक्ष्मणजी को दया आ गई । उन्होंने मुझे छुड़ा दिया । हे महाराज! श्रीराम के दल में हजारों वीर सैनिक हैं, एक-एक वीर के पास इतनी शक्ति है कि वह अकेला लंका पर विजय प्राप्त कर सकता है ।

चौ०

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा । सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा ॥

राम के दल में जितने वीर हैं, उनमें से सबसे कम बल वाला वही है जिसने लंका को तहस-नहस किया है । वहाँ ऐसे-ऐसे वीर हैं, जो पूरे त्रिलोक को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं । मैंने सुना है कि अट्ठारह पदुम सैनिक राम के दल में हैं । यह भी सुना है कि वहाँ कोई भी ऐसा सैनिक नहीं है, जो आपको पराजित न कर सकें । सभी यही कहते हैं कि मैं दसशीश को धूल चटा दूंगा । अभी श्रीराम सागर तट पर समुद्र से मार्ग मांग रहे हैं । लेकिन उनका भाई लक्ष्मण बार-बार गर्जना कर समुद्र को बाण से सोखने के लए आतुर है ।" यह सुन रावण ने कहा कि "जो मूढ़ सागर से रास्ता मांगता हो, उसे वीर कैसे कहा जाएगा?

चौ०

सहज भीरु कर बचन दृढाई । सागर सन ठानी मचलाई ॥

अब मुझे पता चल गया कि राम कितना बुद्धिमान है ।" उसी समय रावण ने लक्ष्मण का पत्र पढ़ा । लक्ष्मण की बात से रावण मन ही मन डर गया । लेकिन सभा में बैठे लोगों को बताया-

चौ०

भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर बाग बिलासा ॥

रावण ने कहा कि यह तपस्वी मुझे उपदेश दे रहा है । जमीन पर सोकर आकाश को छूने का प्रयास कर रहा है । रावण की बात सुनकर दूत ने कहा- "हे महाराज! आप सीताजी को श्रीराम को लौटा दें ।" यह सुनते ही रावण क्रोध में आ गया और दूत पर चरण प्रहार किया । दूत उसी समय लंका छोड़कर चला गया । कहा जाता है कि अत्याचारी का साथ देने वाला भी अत्याचारी होता है । अगर कोई अत्याचार करे तो उसका विरोध करना चाहिए और विरोध सम्भव न हो, तो साथ अवश्य छोड़ देना चाहिए ।

विशेष प्रसंग

(यह शास्त्र का नियम है कि शठ अथवा मूर्ख व्यक्ति को पहले समझाना चाहिए । क्योंकि उसके पास बुद्धि नहीं होती । जिस व्यक्ति पर पशुता चढ़ जाती है, उसके साथ पशु के समान ही व्यवहार करना चाहिए । जब पशु बलवान् हो जाता है, तो उसे बुद्धि से नियंत्रित किया जाता है । जिस प्रकार हाथी जैसे बलवान् जानवर को छोटे से लोहे के अंकुश से नियंत्रित किया जाता है । रावण बलवान है, उसे शास्त्रों का ज्ञान है लेकिन अहंकार के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । अहंकारी व्यक्ति अपने सामने प्रत्येक व्यक्ति को छोटा समझता है ।

यह नियम है कि कभी भी शत्रु को छोटा नहीं समझना चाहिए । लेकिन जो अहंकारी होता है, वह अपने अहंकार के कारण प्रत्येक व्यक्ति को छोटा समझता है । ऐसे ही लोग जीवन की लड़ाई में हार जाते हैं । रावण के पास बल भी है, शास्त्रों का ज्ञान भी है । लेकिन अहंकार के कारण वह विवेक से काम नहीं ले पा रहा है । इसलिए वह लक्ष्मणजी को छोटा समझ रहा है । शत्रु को बिना जाने पहचाने, उसकी शक्ति को बिना जाने उससे लड़ाई करना मूर्खता है, रावण भी वही मूर्खता कर रहा है । वह यह भूल गया है कि एक बन्दर अगर उसकी लंका को तहस-नहस कर सकता है, तो हजार बन्दर मिलकर कितना बड़ा तूफान खड़ा कर सकता है । इसलिए कहा जाता है कि लड़ाई केवल बल से ही नहीं जीती जाती । उसके लिए बुद्धि का होना अनिवार्य है। रावण को यह जानना चाहिए कि सत्य और असत्य की लड़ाई में हमेशा सत्य जीतता है । रावण कामी है और काम के वशीभूत होकर ही उसने सीता का हरण किया है।

शास्त्रों में कहा गया है कि कामी और क्रोधी व्यक्ति अल्पायु होता है । क्योंकि कामी पुरुष की जीवनी शक्ति बाहर निकलती रहती है और क्रोधी व्यक्ति की जीवनी शक्ति उसी के क्रोध में नष्ट होती रहती है । इसीलिए संत-पुरुष काम और क्रोध पर पहले नियंत्रण करते हैं, तभी उनकी ऊर्जा ऊर्ध्वगामिनी होकर ब्रह्म तक पहुँच पाती है । कहा जाता है कि काम का प्रवाह नीचे की ओर और राम का प्रवाह ऊपर की ओर होता है । जब काम ऊर्जा मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनहद, विशुद्ध, आज्ञाचक्र के मार्ग से ऊपर की ओर बढ़ती है । तभी वह सहस्रार में पहुँचकर ब्रह्म में विलीन हो जाती है । तभी जीव मुक्त होता है । कामी पुरुष की ऊर्जा काम के मार्ग से नीचे की ओर बहती रहती है, जिससे वह ऊर्ध्वगामी नहीं बन पाते ।

मनुष्य प्रकृति से ऊर्जा ग्रहण करता है । यह ऊर्जा भोजन के द्वारा वह संग्रह करता है । भोजन शरीर में जाकर रस बनता है, रस से रक्त बनता है, रक्त से माँस बनता है, माँस से मज्जा बनती है । उसी से शरीर में ऊर्जा, तेज अथवा वीर्य बनता है । अनुमान है कि एक क्विंटल भोजन में पाँच-दस ग्राम ही वीर्य बन पाता है, उस कीमती वीर्य ऊर्जा को कामी-पुरुष यों ही नष्ट कर देता है ।

मनुष्य इसलिए मजदूरी करता है कि वह धन प्राप्त करे । शाम में उसे धन अथवा मजदूरी मिलती भी है, लेकिन उस धन को वह नदी में फेंक देता है और फिर दूसरे दिन उसी धन को कमाने के लिए परिश्रम करने लगता है । ऐसे ही मनुष्य पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करते हैं और एक दिन मर जाते हैं । यह बहुत ही अजीब बात है कि प्रत्येक मनुष्य जीना चाहता है, स्वस्थ रहना चाहता है । नाम, यश, धन-वैभव सब कुछ पाना चाहता है । लेकिन बुरा काम करना नहीं छोड़ना चाहता । वह चालाकी से सबको बेवकूफ बनाते हुए नाम, यश, धन पाना चाहता है । लेकिन वह नहीं समझता कि संसार का यह नियम है कि बुरा कर्म करने वाला कभी भी सुखी नहीं हो सकता । थोड़े समय के लिए भले ही वह तिकड़म करके धन प्राप्त कर सकता है, लेकिन बहुत दिन तक वह तिकड़म नहीं कर सकता । क्योंकि कोई भी व्यक्ति सभी लोगों को बहुत दिनों तक बेवकूफ नहीं बना सकता । जिस प्रकार गलत माध्यम से, अधर्म से कमाया हुआ धन स्थायी नहीं होता । उसी प्रकार तिकड़म से प्राप्त नाम, यश भी स्थायी नहीं होता ।

शास्त्रों में कहा गया है कि-

अधर्मे नैधते यावत् ततो भद्राणि न पश्यति ।
यो पापात् धनं जयति समूलं तु विनश्यति ॥

अधर्म का धन बाढ़ के पानी की तरह कुछ दिनों के लिए फलता दिखता है । लेकिन थोड़े ही दिनों में वह समूल नष्ट हो जाता है । कहा जाता है– "सुकृति की पाँच पैसे की कमाई अच्छी है लेकिन कुकृत की लाखों की कमाई अच्छी नहीं है ।" आज भी हम समाज में देखते हैं कि जो लोग गलत माध्यम से धन कमाते हैं, उनका धन थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाता है । जिस प्रकार बाढ़ का पानी आता है तो, तबाही मचा देता है और दो दिनों में सारा पानी सूख भी जाता है । इसलिए गोस्वामीजी ने लिखा है कि –

चौ०

समूल मूल जिन्ह सरितहिं नाहीं । बरस गये पुनि जाहि सुखाहिं ॥

जिस नदी का मूल हिमालय से नहीं रहता उस नदी में वर्षा का पानी तो भर जाता है लेकिन तुरन्त सूख भी जाता है ।

हम आज भी अपने समाज में देखते हैं कि जिनकी कमाई स्थाई नहीं होती, वे कर्ज लेकर अथवा अनाज बेचकर, चोरी–डकैती कर धन तो प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन पानी के बुलबुले की तरह उनका धन तुरन्त नष्ट भी हो जाता है । उस धन से क्या लाभ, जो चार दिन सुख देकर चला जाए, उस जवानी से क्या लाभ, जिसे हम यों ही नष्ट कर रहे हैं । ऐसे ही लोगों को आत्मघाती कहते हैं । रावण महाबलशाली था, लेकिन व्यभिचार के कारण वह सबों की नजर में गिर गया । यहाँ तक कि उसकी पत्नी मंदोदरी, भाई कुम्भकर्ण, नाना माल्यवान सबों ने उसे बुराई करने से रोकना चाहा, लेकिन अहंकारवश उसने किसी की बात नहीं मानी । क्योंकि कामी, क्रोधी, लोभी और आर्त व्यक्ति को उपदेश अच्छा नहीं लगता–

आरत के मन होश नहीं, जो कोई दे उपदेश ।
प्रियतम परदेश बसे, रास ना आवे देश ॥

लोभी को उपदेश नहीं दिया जा सकता । कामी पुरुष को मर्यादा का ख्याल नहीं रहता, नशा का सेवन करने वाला परिवार के नैतिक बन्धनों को तोड़ देता है ।

रावण जैसा महान् बलशाली जब काम के वशीभूत हो गया, तो उसने जगद्जननी सीता को बुरी नजर से देखने लगा। इसके पहले रावण ने भगवान् शिव से माता पार्वती को भी मांगा था। वह इतना दुराचारी हो गया था कि अपने बड़े भाई की पुत्र वधू रम्भा से भी दुष्कर्म करने में नहीं डरा। इसलिए कहा जाता है कि अहंकारी और नशा का सेवन करने वाले पर कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। नशा करने वाला कभी भी कोई उपद्रव कर सकता है, क्योंकि वह होश में नहीं होता। जो बेहोश हो जाए उसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है। ऐसे ही लोगों को मदान्ध कहा जाता है। जो मद के कारण अन्धा हो गया हो। इसलिए शास्त्रों में कहा जाता है कि नशा का त्याग कर दो, क्योंकि उससे मूल प्रवृत्ति, अथवा स्वरूप मूल नष्ट हो जाता है।

रावण महाप्रतापी था, लेकिन अनेक बुरे विचारों से घिरा था। उसे पूरे ब्रह्माण्ड में लोग जानते थे, डरते भी थे, लेकिन किसी के मन में आदर नहीं था। इसलिए सफलता और प्रसिद्धि में अन्तर है। उसने देवता, गंधर्व, यक्ष सब को हरा दिया। इसमें उसे सफलता मिली, इसलिए वह आदर सहित प्रसिद्ध नहीं हो सका। श्रीराम को प्रसिद्धि मिली, प्रसिद्धि में सफलता स्वतः आ जाती है। प्रसिद्धि में आदर है। सफलता तो उल्टे-सीधे काम करके भी पाई जा सकती है-

सफलता जिन्दगी की हसरत है, प्रसिद्ध होना एक बड़ा मकसद है।
सफल होना मुश्किल नहीं, प्रसिद्धि अल्लाह की रहमत है॥

जीवन में प्रसिद्धि मिले, आदर और सम्मान मिले, ऐसी कामना सभी करते हैं। लेकिन वह पूरा कैसे हो, इसके लिए प्रयास नहीं करते। घर-गृहस्थी, बाल-बच्चे और परिवार की चक्की में पिसाने वाला समाज से आदर नहीं पाता। संसार के चक्रव्यूह में उलझकर मनुष्य सत्कर्म करना, अच्छा कर्म करना, प्रभु का स्मरण करना भूल जाता है और जीवन के अन्त में रोने लगता है। क्योंकि-

भाई कहे तुम मेरा बन्धु, मातु कहे सुत मेरा।
पत्नी कहे तुम प्राणपति हो, कैसे बनूं प्रभु तेरा॥

मनुष्य अगर अच्छा कर्म करने का संकल्प ले ले तो, वह स्वयं अच्छा आदमी बन जाता है। प्रातः काल का समय अच्छे विचारों और अच्छे संकल्पों का होता है।

उस समय क्रोध न करें, संगीत गुनगुनायें, योग-व्यायाम कर ऊर्जा ग्रहण करें, तो दिन-भर वह समय प्रसन्नता से कट जाता है ।

प्रातःकाल में योग साधना, दिन का करो प्रारम्भ ।
जैसा मन का भाव रहेगा, दिन होगा आरम्भ ॥

हमारा परिवार हमारा मंदिर है । हमारा काम प्रभु की पूजा है । काम जो भी हो, परन्तु जो व्यक्ति अपना प्रत्येक काम प्रभु को समर्पित करके करता है, उसके जीवन में कभी कोई कष्ट नहीं होता । ऐसे लोग कभी दुःखी नहीं होते । दुःखी वही होता है, जिसको परमात्मा पर भरोसा नहीं है । वह इतना अहंकारी बन जाता है कि अपने दुःख के लिए दूसरों को दोषी मान लेता है ।

उपनिषद् में कहा गया है कि- **तेन त्यक्तेन भूञ्जीथा** । इस संसार को त्याग भाव से भोगो । जो व्यक्ति परमात्मा पर भरोसा करता है, उसे संसार में कभी कोई दुःख नहीं होता । वह मान लेता है कि सभी जगह परमात्मा का निवास है । जो हो रहा है, परमात्मा कर रहा है । इसलिए असली भक्त वही है जो सर्वत्र परमात्मा को ही देखता है ।

गी०

मंदिर में गर तुम बसते हो, और कहाँ नहीं बसते हो ।
पता बताओ झाँक के देखूँ, जहाँ नहीं तुम रहते हो ॥

रावण में सभी गुण थे, लेकिन वह व्यभिचारी बन गया । अगर उसके जीवन में व्यभिचार नहीं रहता, तो वह भी प्रसिद्ध हो सकता था । उसे भी समाज में आदर मिलता । आज भी दक्षिण के कई क्षेत्रों में रावण की पूजा होती है, अगर वह नैतिक होता तो वह पूरे देश में आदर पाता और कोई भी रावण-दहन को महोत्सव नहीं बनाता ।)

श्रीराम का समुद्र पर रोष प्रकट

श्रीराम तीन दिनों तक समुद्रतट पर बैठे समुद्र को मनाने का प्रयास कर रहे थे । लेकिन समुद्र नहीं मान रहा था । तीन दिन बीतने के बाद श्रीराम ने कहा-

दो०

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीत ॥

श्रीराम ने कहा- जो जड़ होता है, उसको भय से वश में किया जाता है। क्योंकि अपनी जान का डर सबको होता है।

चौ०

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥

मूर्ख से विनय, कुटिल से प्रीत और कूंजस को उपदेश नहीं दिया जाता। क्योंकि उस पर उसी प्रकार कोई असर नहीं होता है, जिस प्रकार बंजर खेत में बीज बोने से कोई फायदा नहीं होता है। यह सोच श्रीराम ने अपना धनुष उठा लिया। ज्योंही श्रीराम ने अपने बाण का संधान किया, बाण के भय से समुद्र में ज्वाला उठने लगी। समुद्र की मछली, मगर, साँप व्याकुल हो इधर-उधर भागने लगे। तब समुद्र ने सोचा कि श्रीराम के बाण से समुद्र में प्रलय हो जायेगा, वह तुरंत सोने की थाल में रत्न-आभूषण लेकर हाथ जोड़े प्रभु के सामने आया। आते ही उसने कहा- "हे श्रीराम! आप मुझ पर क्रोध न करें। क्योंकि हम जड़ हैं और जड़ को विवेक नहीं होता।" समुद्र ने कहा-

चौ०

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

समुद्र कहता है कि "ढोल को उचित आघात से ही बजाया जाता है, जो गंवार शूद्र है उसे भय दिखाया जाता है और जो पशुवत् आचरण करने वाली नारी है उसे प्रताड़ित किया जाता है। इसलिए हे श्रीराम! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये सब जड़ हैं। उसी प्रकार ढोल, गंवार शूद्र और पशुवत् नारी इनमें भी विवेक नहीं है।

हे श्रीराम! आप अगर आज्ञा दें तो मैं सूख जाऊँगा, लेकिन इससे लाखों जीव-जन्तु मर जायेंगे और इससे प्रकृति का नियम भी टूट जाएगा। फिर भी अगर आप आज्ञा दें तो मैं सूखने को तैयार हूँ।" यह सुन श्रीराम ने कहा- "आप मेरे पूर्वज

महाराज सगर के उपकार के नीचे दबे हैं। आज मैं आपसे लंका जाने का मार्ग मांग रहा हूँ। अब आपही बतायें कि मैं समुद्र कैसे पार करूँ।" यह सुन समुद्र ने कहा– "आपके दल में नील और नल दो भाई हैं। जिन्हें शाप मिला हुआ है कि उनके छूने से पत्थर भी पानी में तैरने लगता है।" यह सुन श्रीराम ने कहा– "मैंने जो बाण संधान किया है, उसका प्रयोग कहाँ करूँ?" श्रीराम की बात सुनकर समुद्र ने कहा कि "इसे उत्तर दिशा में छोड़ दें।" श्रीराम ने अपने बाण को आकाश की ओर छोड़ दिया।

(समुद्र रावण का मित्र था। वह हमेशा रावण से भयभीत रहता था। इसीलिए उसने श्रीराम को कहा कि आप अपने बाण को उत्तर दिशा- आर्यावर्त की ओर छोड़ें ताकि आर्यावर्त के लोगों का नुकसान हो।)

श्रीराम ने समुद्र की बात मानकर नल-नील एवं अन्य वीरों को समुद्र में पुल बनाने का निर्देश दिया।

दो०

सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं जे तरहिं सिंधु बिना जल़जान॥



जीवन को सुन्दर और सुखद बनाने की विधि

सुन्दरकाण्ड

सुन्दरकाण्ड जीवन का पाँचवाँ पड़ाव है । बालकाण्ड से जीवन निरन्तर बढ़ते हुए सुन्दरतम क्षण का अनुभव कर रहा है । मानस जीवन का महाकाव्य है, इसलिए सुन्दरकाण्ड में जीवन उच्चतम स्थान पर पहुँच गया है । यहाँ से जीवन की कहानी फलागम की ओर बढ़ेगी । अब तक जीवन ने बचपन से लेकर कई उतार-चढ़ाव देखा है । अरण्यकाण्ड से जीवन पर घात-प्रतिघात प्रारम्भ होता है, किष्किन्धा में जीवन को सुदृढ़ बनाने की योजना बनती है और सुन्दरकाण्ड में उसी योजना के सुन्दर क्षणों का अनुभव होता है ।

प्रथमतः, सुन्दरकाण्ड में संकटमोचन श्रीराम के परमभक्त हनुमान्‌जी की यश, कृति और शौर्य की कहानी है । हनुमान्‌जी संकटमोचक हैं, वे भक्तों का कष्ट तो मिटाते ही हैं, श्रीराम पर आये संकटों का भी वही निवारण करते हैं । इसलिए हम सभी हनुमान्‌जी की उपासना इस भाव से करते हैं कि वे हमारे संकटों का नाश करें और हमारे जीवन को सुन्दर बनायें । आज लाखों पाठक अपने जीवन को संकटमुक्त बनाने के लिए सुन्दरकाण्ड का पाठ करते हैं और अपने जीवन को सुख शान्ति से परिपूर्ण करने के लिए हनुमान्‌जी का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं । कहा जाता है कि जो व्यक्ति निष्ठापूर्वक हनुमान्‌जी की प्रार्थना करता है, हनुमान्‌जी उसके सारे संकटों का नाश कर देते हैं । यह सुन्दरकाण्ड का आध्यात्मिक पक्ष है ।

द्वितीयतः, सुन्दरकाण्ड से जीवन को व्यावहारिक बनाने की कला का हमें ज्ञान होता है । लंका जाने के लिए हनुमान्‌जी को तैयार किया गया, उन्हें अपने बल का बोध कराया गया, उनकी प्रशंसा की गई, तब हनुमान्‌जी लंका जाने के लिए तैयार हुए । ऐसा हमारे जीवन में भी होता है कि जब हम किसी बड़े काम का संकल्प लेते हैं तो, घर-परिवार के सभी लोग उस संकल्प को पूरा करने में सहयोग करते हैं । मनुष्य को स्वयं पता नहीं होता कि उसके अन्दर कितनी क्षमता भरी है । वह पहले साधारण व्यक्ति बना रहता है, लेकिन जब उसे लोगों का सहयोग और समर्थन प्राप्त होता है तो उसकी शक्ति बढ़ जाती है । आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं वे पहले तो सामान्य व्यक्ति थे, लेकिन जब उन्हें अपनी शक्ति का बोध होता है तो, वही सामान्य व्यक्ति असामान्य बन जाता है । इतिहास में जिन महापुरुषों की चर्चा है, ऐसा

नहीं कि वे सभी अतिमानव थे। भगवान् बुद्ध, महावीर, गुरुनानक देव, ये सभी पहले सामान्य व्यक्ति ही थे। सामान्य गृहस्थ की तरह जीवन व्यतीत करते थे। लेकिन जब उन्हें अपनी शक्ति का बोध हुआ तो, वे हमारे लिए आदर्श बन गए। महात्मा कबीर जुलाहा थे, तुलसीदास, वाल्मीकि, रविदास सामान्य लोग थे। लेकिन जब इन लोगों ने अपनी शक्ति को जगाया तो महान बन गये। मनुष्य महान पैदा नहीं होता, वह अपने कर्मों से महान बनता है। प्रभु श्रीराम, श्रीकृष्ण महान पैदा हुए नहीं, महान बन गये। क्योंकि उनका भी जन्म और बचपन सामान्य मनुष्य की तरह ही बीता। लेकिन श्रीराम और कृष्ण ईश्वर के अवतार थे, इसलिए मनुष्य रूप में, परमात्मा के रूप में हमारे बीच विराजमान हो गये। परमात्मा को भी मानव धर्म निर्वाह के लिए गुरु से शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी।

हनुमान्जी जब लंका जाने को तैयार हुए, तो बुजुर्ग जाम्बवन्त ने उन्हें नैतिक नियमों का उपदेश दिया ताकि, वे विदेश में जाकर अपना काम पूरा कर सकें। आर्यावर्त के इतिहास में सीताजी पहली महिला थीं, जो समुद्र पार विदेश गईं और हनुमान्जी दूसरे व्यक्ति हैं जो दूसरे देश में जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति जब अपना घर छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाता है तो, उसे संयमपूर्वक रहना पड़ता है। हनुमान्जी तो विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए जा रहे हैं। इसलिए उन्हें बहुत ही सतर्क रहने का उपदेश दिया गया। वे श्रीराम के दूत बनकर सीता का पता लगाने जा रहे हैं। दूत का काम बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। वह अपने मालिक की बात को दूसरे देश के मालिक से कैसे कहता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितना विवेकशील है। साथ ही वहाँ उसे अपनी सुरक्षा स्वयं करनी पड़ती है। उससे थोड़ी सी भूल हो जाए तो, अनर्थ हो सकता है। इसलिए दूत को बलशाली, बुद्धिमान् और धैर्यवान् होना चाहिए। हनुमान्जी को इसीलिए **"बलबुद्धिनिधान"** कहा गया है। इसका प्रमाण हमें तब मिलता है, जब हनुमान्जी समुद्र में प्रवेश करते हैं। वहाँ सुरसा नामक राक्षसी एक सुन्दर नारी का रूप लेकर हनुमान्जी को भ्रमित करने का प्रयास करती है। ध्यान रहे कि ऐसी मान्यता है कि स्त्री के मोह में फँसते पुरुष को देर नहीं लगती। गोस्वामीजी कहते हैं- **"नारि नैन सर काहि न लागा।"** और फिर वे कहते हैं- **"मृग लोचनि के नैन सर केहि जग बेधि न जाई।"** स्त्री के रूप सौन्दर्य से कौन प्रभावित नहीं होता, लेकिन जो लोग संयमी होते हैं, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में निष्ठावान् होते हैं, वे काम के वशीभूत नहीं होते। सुरसा ने अपने रूप के जाल में

हनुमान्‌जी को फँसाना चाहा । लेकिन हनुमान्‌जी निष्ठावान् व्यक्ति थे । अतः वे बच निकले । तब सुरसा ने बल का प्रयोग किया । हनुमान्‌जी ने अपने बल से उसे परास्त किया और अपनी बुद्धि के सहारे सुरसा के मायाजाल को तोड़कर अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित किया । इसका अर्थ है कि मनुष्य को सदैव अपने बल, बुद्धि और विवेक के अनुरुप काम करना चाहिए । हममें से अधिकांश लोग जीवन की लड़ाई में इसलिए विफल हो जाते हैं कि हम अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान् नहीं रहते । होना तो यह चाहिए कि जिस कार्य के लिए संकल्प लिया गया है, केवल उसी कार्य के लिए प्रयास किया जाए । प्रयास में भटकाव हो तो, मनुष्य सफल नहीं हो पाता । वह कहीं नहीं पहुँच पाता । हनुमान्‌जी को कोई भटकाव प्रभावित नहीं कर सकता । अतः वे विघ्नों को रौंदते हुए आगे बढ़ते चले गये । मैनाक पर्वत ने उन्हें विश्राम का भी प्रलोभन दिया, लेकिन हनुमान्‌जी ने स्पष्ट कह दिया कि जिस व्यक्ति को अपने लक्ष्य तक पहुँचना है, वह विश्राम कैसे करेगा? हनुमान्‌जी लंका में प्रवेश करते हैं, लंका माया की नगरी है । वे अशोकवाटिका में जाते हैं लेकिन अशोकवाटिका की माया को नहीं समझ पाते । इसके बाद वे विभीषणजी से मदद लेते हैं । विभीषणजी रावण के भाई अवश्य थे, लेकिन रावण से प्रताड़ित होकर दुःखी रहा करते थे । हनुमान्‌जी ने इसीलिए रावण से प्रताड़ित व्यक्ति की सहायता ली । अगर विभीषण मार्ग नहीं बताते, तो हनुमान्‌जी अशोकवाटिका में प्रवेश नहीं कर पाते । यह युक्ति सही है कि मनुष्य जब किसी अनजान शहर में जाये तो, वहाँ के किसी विश्वस्ततम व्यक्ति से मैत्री कर ले, ताकि किसी संकट के आने पर वह उससे सहायता ले सके ।

अशोकवाटिका में सीताजी अकेली बैठी हैं, रावण वहाँ जाता है, वह सीताजी को धमकाता है । अगर हनुमान्‌जी वहाँ रावण से भिड़ जाते, तो सब कुछ गड़बड़ हो जाता । उन्होंने संयम से काम लिया और विधिपूर्वक सीताजी से भेंट किया ।

हनुमान्‌जी को भूख लगी थी, वे फल खाने गये । लेकिन उन्होंने फल तोड़ा नहीं, गिरे हुए फलों को खाया । जब गिरे हुए फल कम पड़ गये तो डालियों को हिलाकर पहले फल नीचे गिराया फिर खाया । गिरे हुए फल को खाना अपराध नहीं है । हनुमान्‌जी को फल खाते देख रावण के सैनिकों ने उन पर आक्रमण किया, हनुमान्‌जी ने उसका जवाब दिया । पहली बात तो यह कि विदेश में जाकर किसी पर आक्रमण करना उचित नहीं है । लेकिन दूत का धर्म है कि अगर उस पर कोई आक्रमण करे, तो वह अपना बचाव करते हुए प्रतिकार कर सकता है ।

हनुमान्‌जी ने लंका में प्रवेश के समय ही आकाशमार्ग से लंका की पूरी सुरक्षा व्यवस्था को देख लिया था । अब आंतरिक सुरक्षा देखने की आवश्यकता थी । इसीलिए उन्होंने अशोकवाटिका में उत्पात मचाया । यह कोई लड़ाई नहीं थी, इसी कारण मेघनाथ ने उन्हें बंदी बनाकर रावण के दरबार में खड़ा कर दिया । अगर हनुमान्‌जी जाम्बवन्त के कहे अनुसार सीता माता की सुधि लेकर लौट आते, तो उन्हें न रावण से भेंट होती और न वे लंका को क्षतिग्रस्त करते । दूसरी ओर वे राम के दूत थे, तो रावण को समझाना, उसे भय दिखाना और सावधान करना भी अनिवार्य था । हनुमान्‌जी कोई कायर व्यक्ति नहीं थे कि वे सीताजी को देखकर चुपचाप भाग आते । इससे रावण के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती । दूत का कर्त्तव्य है कि वह अपने शत्रु देश की पूरी सूचना संग्रह कर अपने मालिक को बताये । रावण की सभा में जाकर हनुमान्‌जी ने उसे उकसाया और ललकारा । उस पर रावण ने क्रोधित होकर हनुमान्‌जी की पूँछ में आग लगाने को कह दिया । हनुमान्‌जी को पता चल गया कि रावण मदान्ध हो गया है, वह अपना विवेक खो चुका है । बन्दर की पूँछ में आग लगाकर रावण ने स्वयं अपनी मूर्खता का प्रमाण दे दिया । यहाँ हनुमान्‌जी ने कुछ नहीं किया, वे अपनी पूँछ की आग बुझाने के लिए इधर-उधर कूदने लगे, जिससे लंका के प्रमुख स्थल जलकर भस्म हो गए । यह संकेत है कि बिना विचार कर कभी भी अविवेकपूर्ण आचरण नहीं करना चाहिए । जिस प्रकार मनुष्य अपने ही नख से खरोंच खरोंचकर अपने शरीर को लहू-लुहान कर लेता है, उसी प्रकार रावण ने अहंकार और क्रोध में आकर लंका को तहस-नहस करने के लिए हनुमान्‌जी को आमंत्रित कर लिया । लंका दहन के लिए रावण स्वयं जिम्मेवार है ।

लंका एक स्वतंत्र देश था, वहाँ के राजा अगर राजधर्म का निर्वाह करते तो लंका सुरक्षित रहती । लेकिन उसके मन में विकार आ गया और वह अनैतिक आचरण करने लगा । वह बहुत शक्तिशाली था, इसी शक्ति के कारण वह मदान्ध हो गया था । जो अहंकार से अंधा हो जाए, जिसकी विवेक की आँखें बन्द हो जाए, वही अंधा होता है । ऐसे व्यक्ति को कोई भी अच्छी बात बुरी लगता है । भाई विभीषण ने उसे बहुत समझाया । बुजुर्ग नाना माल्यवान ने भी उसे बहुत समझाया । यहाँ तक कि उसकी पत्नी मंदोदरी ने भी काफी समझाया, लेकिन विवेक चक्षु बन्द होने के कारण उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता था । ऐसा सामान्य लोग भी करते हैं, जब किसी को कोई प्रिय वस्तु नहीं मिलती, तो वह आक्रामक हो जाता है । वह वैसा ही व्यवहार करने लगता

है जैसा विवेकहीन पशु करता है। पशु को जब पता चल जाता है कि दूसरा उसकी बात नहीं मान रहा है, तो वह अपने सींघों से आक्रमण कर देता है। मनुष्य को लोभ, स्वार्थ और अहंकार की तृप्ति नहीं होती तो वह आक्रामक हो जाता है। रावण भी कामी और अहंकारी पुरुष था। वह संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु को प्राप्त कर लेना चाहता था, लेकिन जब वह वस्तु उसे नहीं मिलती थी तो, उसे वह नष्ट कर देता था। वह स्वयं को त्रिलोक विजेता मानता था, संसार की सभी सुन्दर वस्तुएं उसकी सम्पत्ति थी। उसकी लोभ, इच्छा इतनी प्रबल हो गई थी कि उसे सोने की लंका से संतोष नहीं होता था। वह आर्यावर्त को भी रौंद देना चाहता था। इसी लोभ-लिप्सा के कारण वह समस्त लोकों पर आक्रमण करता रहता। उसके जीवन में कभी संतोष नहीं रहा। इसी लोभ-लिप्सा के कारण रावण का नाश हो गया।

मनुष्य अपने ही विचारों, संस्कारों और कार्यों के आधार पर अपने जीवन की दिशा तय करता है। रावण ने अपने चारों ओर चाटुकारों और जयकार करने वालों को एकत्र कर रखा था। यह उसका सबसे बड़ा दोष था। सच पूछा जाए तो लोग किसी व्यक्ति की जयकार दो कारणों से करते हैं, पहला अगर वह व्यक्ति गुरु है, पूज्य है अथवा आदरणीय है, अथवा देश और समाज के लिए जनहित का कार्य किया हो। दूसरा वैसे लोग होते हैं जो पैसा देकर अपनी जयकार बोलवाते हैं। ये दूसरे प्रकार के लोग बड़े खतरनाक होते हैं। ये अपना नाश तो करते ही हैं, पूरे समाज को भी डूबो देते हैं। रावण को इस तरह का कोई भी व्यक्ति पसन्द नहीं था, जो उसकी जयकार नहीं बोलता हो। अकेले हनुमान्‌जी ने उसके सारे अहंकार तोड़ दिए। पूरी लंका में उन्होंने तबाही मचा दी। इसका अर्थ है- हनुमान्‌जी चाहते थे कि रावण राजा है तो, राजा के दायित्व का निर्वाह करे। वह अकारण दूसरों से लड़ता था, इन्द्र अथवा दिक्पालों को बन्दी बना लिया था। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि वह स्वर्ग में सीढ़ी लगाकर चढ़ना चाहता था। यह उसकी महात्त्वाकांक्षा थी। कर्मठ व समर्थवान व्यक्ति को सफलता मिले, यह अच्छी बात है, लेकिन अनैतिक आचरण करने वाले महात्त्वाकांक्षी व्यक्ति को जब सफलता मिलती है तो, उसे उन्माद हो जाता है। इसीलिए अंगद ने रावण से कहा था- अरे रावण! मनुष्य तीन बीमारी से मरता है। कफ, पित्त और वायु। यही तीन बीमारी है, जो मनुष्य को रोगी बनाती है। अगर किसी को इनमें से कोई एक बीमारी हो जाती है तो उसका इलाज हो जाता है। लेकिन जब उसे एक ही साथ तीनों बीमारी हो जाए, तो उसे सन्निपात कहते हैं। इस बीमारी से

बचना मुश्किल है । रावण को एक ही साथ तीनों बीमारी हो गई थी । वह कामी, क्रोधी और अहंकारी हो गया था । हनुमान्‌जी ने लंका में आग लगाकर लंका को जला दिया, जिससे रावण के वैभव का तो क्षय हुआ, साथ ही भरी सभा में रावण को चुनौती देकर उसके अहंकार को भी झकझोर दिया । जिस सभा में उसकी जयकार बोलने वाले लोग बैठे हों, हनुमान्‌जी ने वहीं पहुँचकर उसके अहंकार को घायल कर दिया । लंका का दहन तो एक बहाना मात्र था, असल तो रावण के अहंकार को तोड़ना था ।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सुख चाहता है, लेकिन वह सुख को खरीदकर अथवा लड़ाई में जीतकर पाना चाहता है । शान्ति और सुख घृणा से प्राप्त नहीं होती । घृणा से तो केवल घृणा मिलती है । हनुमान्‌जी ने पहले रावण को समझाया, जब वह नहीं माना तो, उन्होंने उसके अहंकार के कारण सोने की लंका को ही नष्ट कर दिया । मनुष्य आज इतना दुःखी इसीलिए है क्योंकि वह अहंकारी है । किसी को धन का अहंकार है, किसी को कुर्सी का तो, किसी को बल अथवा रूप का अहंकार है । अहंकारी व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता । यदि रावण परमात्मा को पाना चाहता है तो, उसे सीधे विभीषण की तरह प्रभु के शरण में चले जाना चाहिए था । इससे उसको मुक्ति भी मिल जाती और लंकाद्वीप के लोग भी सुरक्षित रह जाते । लेकिन अहंकारी रावण का सब कुछ लुट रहा था, फिर भी वह सिर उठाये खड़ा था ।

सच पूछा जाए तो रावण एक नहीं, आज हजारों रावण हमारे समाज में हैं । हनुमान्‌जी यही चाहते थे कि रावण अपना रावणत्व छोड़ दे और वैदिक मर्यादा का पालन करे । इसीलिए उन्होंने पहली बार केवल लंका को जलाया । इसका अर्थ था कि जिस सोने की लंका पर तुम्हें गर्व है, मैं उसी को नष्ट कर देता हूँ ।

एक कहावत है– एक महात्माजी अपनी कुटिया में रहते थे । दिन भर जो कुछ भी दान में उन्हें मिलता, वे उसे खाते और जो बच जाता उसे एक बर्तन में रख देते । यह खबर जब एक मूषक को मिली तो, वह उस बर्तन में रखे अन्न को खाने लगा । इस कारण वह मूषक मजबूत और बलिष्ठ होने लगा और आश्रम में अधिक उत्पात मचाने लगा । इससे महात्माजी को बड़ी चिन्ता हुई । मूषक ने उनके कम्बल, बिछावन और यहाँ तक कि उनके पहनने के कपड़ों को भी काट डाला । तब महात्माजी ने उस अन्न के बर्तन को सिकहर लगाकर छप्पर में टाँग दिया । अब उस मूषक को अन्न मिलना बन्द हो गया । अन्न के अभाव में मूषक कमजोर होने लगा और आश्रम छोड़कर भाग गया ।

मनुष्य के जीवन में भी वही वृत्ति काम करती है । उसके पास जब धन आ जाता है तो, धीरे-धीरे वह बुरी प्रवृत्तियों में फँसने लगता है । जिस कारण वह बुरा आदमी बन जाता है । इसलिए संतों का मानना है कि धन-वैभव परमात्मा ने तुम्हें दिया है तो, उसका उपयोग करो, उपभोग नहीं । क्योंकि जो धन तुम्हारे पास आया है, पहले वह किसी और का था । उसने गलत काम किया तो वह धन उसके पास से चलकर तुम्हारे पास आ गया । तुम भी गलत करोगे तो, वह दूसरे के पास चला जाएगा । धन किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, जो लोग इस धन को अपना समझ लेते हैं, उनके पास धन नहीं रहता-

जिस खूँटे पर नाम खुदाया, बदले खूंटा अनेक ।
क्षण की तृप्ति कब सुख देगी, सुख देगा बस एक ॥

★ ★ ★

जो जग सिरजा उसका है जग, मत का अपना गीत ।
नदी नाल झरना उपवन में, किसने भरा संगीत ॥

★ ★ ★

चार ईंट की महल अटारी, उस पर तेरा नाम ।
जिसने किया जगत का सृजन, फिर भी रहा गुमनाम ॥

★ ★ ★

लंका में किये गए उत्पात से हनुमान्‌जी के बल, विवेक और बुद्धि का प्रबल प्रमाण मिलता है । एक साधारण सा वानर प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त कर कितना विराट बन जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य अगर अच्छा आचरण करे और वह प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करता रहे तो, महान बन सकता है । आज हम जिन संतों की पूजा करते हैं, वे भी साधारण मनुष्य हैं । लेकिन उन्होंने अपनी साधना से प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है । संतों के पास कोई धन-वैभव नहीं होता, उनके पास केवल प्रभु का आशीर्वाद होता है । जिस कारण बड़े-बड़े धनपति भी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं । यही कारण है कि त्रिलोकविजेता रावण भी हनुमान्‌जी की गर्जना के सामने टिक नहीं सका । क्योंकि हनुमान्‌जी के पास चरित्र का बल था । उनका विचार नैतिक था । नैतिक व्यक्ति के पास बड़े-बड़े धनपति भी नहीं टिकते । मनुष्य की पहचान उसके कार्यों, विचारों और संस्कारों से होती है । समुद्र के तट पर हनुमान्‌जी

एक साधारण वानर की तरह बैठे थे । जाम्बवन्त ने उन्हें उत्साहित किया । उनकी सोई हुई शक्तियों को जगाया, तब उनके मन में विचार आया कि उन्हें महान बनना है । फिर वे विराट बन गये । अगर ऐसा विचार निरन्तर हमारे मन में उठता रहे, तो हम भी महान बन सकते हैं । मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि इस ब्रह्माण्ड में महती और क्षुद्र दोनों ही प्रकार की ऊर्जा बह रही है । अगर हम महती ऊर्जा को ग्रहण करना चाहें तो, अपने मन को स्थिर कर उसे ग्रहण कर सकते हैं । संत लोग इसी ऊर्जा को ग्रहण करने का प्रयास करते रहते हैं । दूसरी ओर अगर हम क्षुद्र ऊर्जा को ग्रहण करना चाहें तो वह भी हमारे पास.आ जाती है । सब कुछ हमारी इच्छा पर निर्भर करता है । अगर हम सफल होना चाहते हैं, तो सफल होने का मन बनाना पड़ता है, फिर जीवन में अपार सफलता मिलने लगती है । जिस प्रकार वर्षाकाल में अगर हम अपनी बाल्टी आँगन में रख दें, तो बाल्टी पानी से भर जाएगा, शेष पानी बह जाता है । उसी प्रकार, परमात्मा कहते हैं कि पहले तुम पांत्र बनो, तुम्हारा पात्र जैसा होगा, वैसा ही फल तुम्हें मिलेगा । इसलिए जीवन में अगर सफलता चाहते हो तो, पहले तुम्हें वैसा मन बनाना पड़ेगा । पहले विचार करो, फिर सफलता के लिए प्रयास करो ।

कहते हैं तुम्हारा जीवन विचारों पर ही निर्भर है । जैसा विचार करोगे, वैसा बनोगे । जीवन केवल जीवन है, उसे सफल और असफल बनाना तुम्हारे हाथों में है । जीवन पूर्ण संकल्पित होता है, वैकल्पिक नहीं । जीवन की सफलता में कभी हाँ, कभी ना, नहीं चलती । अगर जीवन में सफलता चाहते हो, तो पहले सफल होने का मन बनाओ । कुछ लोग अकारण अपने को असमर्थ मान लेते हैं और कहने लगते हैं कि मैं यह काम नहीं कर सकता । ऐसा कमजोर लोग सोचते हैं । लेकिन जो निष्ठावान हैं, वे अपने परिश्रम से अनिश्चय को भी निश्चय बना लेते हैं । हनुमान्‌जी हमारे सामने सबसे बड़े उदाहरण हैं ।

मैंने सुना है कि एक व्यक्ति किसी कारण से चलने-फिरने में असमर्थ हो गया था । तब घर वालों ने उसे डॉक्टर से दिखाया । डॉक्टर ने पूरी तरह से जाँच करके बताया कि इसे कोई बीमारी नहीं है । लेकिन वह व्यक्ति बार-बार कहता रहा कि मैं खड़ा नहीं हो सकता हूँ, चल नहीं सकता हूँ । डॉक्टर समझ गया कि इसे मनोवैज्ञानिक रोग है । डॉक्टर ने घरवालों को उसके इलाज के लिए कुछ रास्ता बताया । घरवाले उसे लेकर आ गए । घरवालों ने उस बीमार व्यक्ति से कहा कि डॉक्टर ने कहा है कि आपको घर से दूर एकान्त में झोपड़ी बनाकर रहने पर लाभ होगा । वह व्यक्ति

मान गया । गाँव से अलग खेत में एक झोपड़ी बनाई गई और उस व्यक्ति को उसमें रखा गया । घरवालों को तो पता था कि क्या करना है? दो–चार दिन उस बीमार व्यक्ति को हाथ पकड़कर यहाँ–वहाँ बैठाया गया, वह झोपड़ी में अकेले रहता था । एक रात जब वह सोया था, घरवाले पूरी तैयारी से उस झोपड़ी के पास गए और उस झोपड़ी में आग लगा दिए । जब झोपड़ी जलने लगी, तो वह चिल्लाने लगा और अपने घरवालों को पुकारने लगा । जब वहाँ कोई नहीं आया, तो वह अपाहिज बना व्यक्ति अपनी जान बचाने के लिए दौड़कर उस जलती हुई झोपड़ी से बाहर आ गया और जोर–जोर से लोगों को पुकारने लगा । घरवाले भी वहाँ पहुँच गए और उनलोगों ने पूछा– क्या हुआ? अपाहिज बने व्यक्ति ने रोषपूर्वक कहा– "देखते नहीं, झोपड़ी में आग लग गई ।" यह सुन घरवाले मुस्कुराते रहे, उसी में से एक व्यक्ति ने कहा– "यह ठीक है कि झोपड़ी में आग लग गई, लेकिन आप उछल–कूद कैसे मचा रहे हैं?" तब उसे याद आया कि मैं तो अपाहिज था, चल फिर नहीं सकता था, फिर अभी मैं खड़ा कैसे हो गया हूँ? तब से उसकी बीमारी ठीक हो गई ।

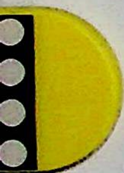
इसलिए मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि जो व्यक्ति बीमार बनना चाहता है, वही बीमार बनता है । जिसको बीमार बनने की फुर्सत नहीं है, वह कभी बीमार नहीं बनता। आजकल तो बीमार बनना सम्मान की बात है । लोग अपनी बीमारी को बड़े शौक से प्रचारित करते हैं । किसी को कमर में दर्द हो और अगर आप उससे पूछें कि आपको क्या हुआ? तो वह दस बीमारियों के नाम बता देगा । यहाँ दर्द है, वहाँ दर्द है । मतलब यह कि बीमार होना गौरव की बात है । हमें ऐसी मनोवृत्ति से बचने की आवश्यकता है ।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान्‌जी के शौर्य की कहानी है । अगर हमें हनुमान्‌जी का आशीर्वाद चाहिए तो, उनके आदर्शों पर चलना पड़ेगा, तभी सुन्दरकाण्ड के पाठ से हमें लाभ हो सकता है । आजकल भक्तगण मंगल के दिन बड़े ही आदर भाव से सुन्दरकाण्ड का पाठ करते हैं, अगर उनके जीवन में हनुमान्‌जी के द्वारा बताये मार्गों का थोड़ा भी अंश उतर जाए, तो हनुमान्‌जी के आशीर्वाद से वे भी यशस्वी बन सकते हैं ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

कॉ॰ गीताप्रेस

लङ्काकाण्ड



श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामकथा

लंकाकाण्ड

ईशप्रार्थना

नमस्तुभ्यं दिव्यरूपं नमस्तुभ्यं चराचर ।
नमस्तुभ्यं जगत्प्राण सर्वकल्याणकारक ॥
दिव्यशक्तिसुसम्पन्नो यशस्वी भवति सर्वदा ।
दिवाकरः सर्वपूज्यते न पूज्यते निशाचरः ॥

जिस राम ने तुझको जनम दिया, सुत दारा सम्पत्ति मान दिया ।
हर सांस में जिसने प्राण दिया, हर संकट से परित्राण किया ॥
उस राम से नेह लगाना है, जीवन में सब सुख पाना है ।
प्रभु श्रीराम के आशीष से, इस तन में राम बसाना है ॥

लंका विजय अभियान

समुद्रतट पर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवन्त, अंगद, नल, नील आदि बैठे हैं, उनके चारों ओर करोड़ों वानरवीर एवं स्थानीय वनवासी वीर सैनिक एकत्र हैं । अनुमान किया जा रहा है कि श्रीराम के दल में लगभग अट्ठारह पदुम सैनिक हैं (एक लाख शंख को महाशंख कहते हैं, एक लाख महाशंख को बृंद कहते हैं । एक लाख बृंद को महाबृंद कहते हैं । एक लाख महाबृंद को पदुम कहते हैं । एक लाख पदुम को महापदुम, एक लाख महापदुम को खर्ब, एक लाख खर्ब को महाखर्ब । एक हजार महाखर्ब को समुद्र । एक लाख समुद्र को ओघ और एक लाख ओघ को महौघ कहते हैं) जो बार-बार प्रभु श्रीराम का जयघोष कर रहे हैं और लंका में प्रवेश के लिए आतुर हैं । उसी समय विभीषणजी शिविर में प्रवेश करते हैं और प्रभु श्रीराम की चरणवन्दना करने लगते हैं ।

वन्दना

अगर राम तेरा सहारा न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ।
कई जन्मों का नाता है तुझसे, मेरी हर सांसों में बसे हो तुम कब से ।
आशीष तेरा जो मुझ पर न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ॥
अगर राम तेरा ... ...!

संकट में जब जब पुकारा है तुमको, गर्दिश से हरदम निकाला है हमको ।
चरणों का तेरा सहारा न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ॥
अगर राम तेरा ... ...!

मंत्र न भाया, मुझे तंत्र न भाया, चरणों की सेवा गुरु ने बताया ।
निश्छल बन मैं आया न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ॥
अगर राम तेरा ... ...!

गीता समझाया हमें, मानस समझाया, प्रेम भक्ति का मार्ग सुझाया ।
पर तेरा आशीष न होता, तो दुनिया में कोई हमारा न होता ॥
अगर राम तेरा ... ...!

विभीषणजी की वन्दना सुनकर प्रभु श्रीराम द्रवित हो गये । श्रीराम ने कहा- "हे सखा! मैंने आप पर उपकार नहीं किया है । आप वर्षों तक निशिचरों के बीच रहकर भी मेरा स्तवन करते रहे, मुझे बार-बार पुकारते रहे हैं । आप लंका का साम्राज्य त्यागकर मेरी शरण में आये हैं । आपने महान त्याग किया है, बदले में मैंने आपको क्या दिया? आपने इतना बड़ा साम्राज्य छोड़ा, संसार का सुख-सम्पत्ति, परिवार सबको छोड़ दिया है । आपके इसी त्याग के कारण मैंने आपको स्वीकार किया है । जो व्यक्ति यह संसार छोड़कर मेरे पास आता है, अथवा जो इस संसार में त्याग भाव से जीता है, जो अपना सब कुछ परमात्मा का समझकर एवं उसे परमात्मा का प्रसाद स्वरुप

मानकर संसार की समस्त वस्तुओं का उपयोग करता है, वह मेरा बन जाता है । जो संसार का उपभोग करता है, वह मुझे नहीं पा सकता । आपने लंका में रहकर अपार सुख-सम्पत्ति को त्याग भाव से भोगा है, ये सारे वैभव आपका मतिभ्रष्ट नहीं कर सके । वैभव, धन-सम्पत्ति ने आपके मन में विकार पैदा नहीं किया, आपके मन में कोई अहंकार नहीं हुआ, क्योंकि जीव ब्रह्म का अंश है । संसार में आते ही वह रूप, जवानी और संसार के सुखों में लिप्त होकर अपने मूल स्वरुप को भुला देता है, इससे वह भटककर मुझसे दूर चला जाता है । आपने लंका में रहकर अपने जीवन को निर्विकार बनाया है, इसलिए आप मुझे प्रिय हैं । दरअसल संसार में आते ही जो व्यक्ति प्रलोभनों में फँसकर परमात्मा को भूल जाता है, उसके जीवन से सुख, शान्ति, यश, मर्यादा सब कुछ नष्ट हो जाती है और वह जीवन भर मरुभूमि में प्यासे मृग की तरह भटकता रहता है । आप पल-पल मेरा स्मरण करते रहे हैं, इसलिए आप मेरे अतिशय प्रिय हैं ।"

श्रीराम की बात सुनकर विभीषण जी ने कहा- "हे प्रभु! आप तो करुणा के अवतार हैं । इतने वर्षों तक मैं लंका में परमात्मा विरोधी लोगों के बीच रहा । पता नहीं, किस पाप के कारण मैं इतना कष्ट भोगता रहा । मैंने अवश्य ही पूर्व जन्म में कई भीषण अपराध किए होंगे, जिस कारण इतने वर्षों तक मैं आपसे दूर रहा ।"

विशेष प्रसंग

(विभीषणजी जानना चाहते हैं कि इतने वर्षों तक किस अपराध की सजा वे भोगते रहे । दरअसल शास्त्रों के अनुसार संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण- तीन प्रकार के कर्म होते हैं । संचित कर्म वह कर्म है जो जीव के सूक्ष्म और कारण शरीर में संग्रहित रहता है । आजकल कम्प्यूटर में जो हार्डडिस्क होता है, जिसमें अनेक आंकड़े संग्रहित रहते हैं, उसी प्रकार जीव के नष्ट हो जाने पर भी उसके कर्मों का लेखा-जोखा कारण शरीर में संग्रहित रहता है, जो शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता । जीव के दूसरे जन्म में प्रवेश के साथ ही उसके कारण शरीर पर संचित कर्मों का संग्रह रहता है । फिर प्रारब्ध, सूक्ष्म शरीर को नए कर्म करने की प्रेरणा देता है और क्रियमाण कर्म हमारे स्थूल शरीर को प्रभावित करता है । इस तरह संचित और कारण, प्रारब्ध और सूक्ष्म, क्रियमाण और स्थूल का परस्पर सम्बन्ध है । विभीषण की माँ राक्षस कुल की थी, इसलिए

विभीषण पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा । इसलिए कहा जाता है कि गर्भकाल में माता को नैतिक आचरण करना चाहिए । क्योंकि उसका सीधा प्रभाव होने वाले बच्चों पर पड़ता है ।

विभीषणजी का वंश पवित्र है, लेकिन माता का आचरण नैतिक नहीं है । जन्म के पश्चात् जिस वातावरण में उनका परवरिश हुआ, वह कभी भी नैतिक परिवेश नहीं कहा जाएगा । इसलिए वे स्वयं अच्छा आचरण करते थे, लेकिन राक्षसों की संगति में थे । आज इसी का परिणाम उन्हें भुगतना पड़ रहा था । इसलिए श्रीराम से वे कहते हैं कि मैं तो शुद्ध आचरण करने वाला व्यक्ति हूँ, फिर मुझे इतना कष्ट क्यों सहना पड़ा? विभीषणजी कहते हैं कि मैं तो बत्तीस दातों के बीच एक जीभ की तरह रह रहा हूँ ।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य पर उसकी संगति का भी विशेष प्रभाव पड़ता है । संतों को जब दुष्टों के साथ रहना पड़ता है तो, उन्हें भी बड़ा कष्ट होता है । मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा सुख यही है कि वह अपने जैसे लोगों के बीच ही निवास करे ।

समुद्रतट पर श्रीराम वानर सैनिकों के साथ विचार कर रहे हैं । विचारक्रम को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि समुद्र के परामर्शानुसार विश्वकर्मा पुत्र नल, नील की सहायता से समुद्र के ऊपर तैरता हुआ पुल बनाया जाए । यह सुनते ही जाम्बवन्त ने सैनिकों को आदेश दिया कि "आप सभी वीर विभिन्न दिशाओं में जाएं और पत्थरों को उठाकर ले आवें ।" नील और नल दोनों भाई बहुत बड़े शिल्पी थे । उन्हें जाम्बवन्तजी ने कहा- "इन पत्थरों पर आप अपनी शिल्पकला का प्रदर्शन करें, ताकि इन पत्थरों से समुद्र पर पुल बनाया जा सके । जाम्बवन्तजी ने यह भी कहा कि दो पत्थरों को जोड़ने के लिए एक पत्थर पर **"रा"** और दूसरे पत्थर पर **"म"** लिखें ।" कहा तो यह जाता है कि नील और नल को किसी मुनि ने शाप दिया था कि "तुम दोनों द्वारा फेंकी गई कोई भी वस्तु पानी में डूबेगी नहीं, अपितु वह तैरने लगेगी ।" बचपन में दोनों भाई मुनि आश्रमों में जाकर बड़े उत्पात करते थे । वे लोग भगवान् की मूर्ति अथवा अन्य आवश्यक वस्तुओं को उठाकर जलाशय अथवा समुद्र आदि में फेंक देते थे, जिससे दुःखी होकर मुनि ने शाप दे दिया था । मुनि का दिया हुआ यही अभिशाप आज श्रीराम और सम्पूर्ण वानर सेना के लिए वरदान बन गया ।

द्रष्टव्य

(इस संबंध में दूसरा वैज्ञानिक मत यह है कि नल, नील दोनों सधे हुए इंजीनियर थे। आज जो आर्कमिडिज का सिद्धान्त प्रचलित है कि जब किसी ठोस वस्तु को द्रव्य में डूबाया जाता है तो वह वस्तु जितना भी द्रव्य हटाता है, उसका वजन ठोस द्वारा हटाये गये द्रव्य के बराबर होता है। उस काल में इसी नील और नल ने सिद्धान्त का पालन किया, जिससे पत्थर समुद्र में तैरने लगा। इससे पता चलता है कि उस समय भी भौतिक विज्ञान की जानकारी नल और नील को थी।)

सभी वानर सैनिक दूर-दूर से पत्थर खंडों को लाते और नल, नील उन्हें खोखला कर समुद्र में तैराने लगते। कहा जाता है कि हनुमान्‌जी ने बड़े-बड़े पहाड़ों को वहाँ लाकर नल, नील को दिया था। कई संत लोग तो यह भी बताते हैं कि हनुमान् जब गोवर्धन पर्वत को उठाकर ला रहे थे तो, उसी समय उन्हें सूचना मिली कि रामसेतु बनकर तैयार हो गया है, फिर उन्होंने उस पर्वत को वहीं छोड़ दिया। आज भी वह पर्वत मथुरा वृन्दावन में है। उधर सेतु का निर्माण कार्य चल रहा था और इधर प्रभु श्रीराम, विभीषण, जाम्बवन्त विचार-विमर्श कर रहे थे। शिलाखण्डों पर श्रीराम का नाम लिखकर नल, नील पत्थरों को पानी में फेंक रहे थे और इन सारे कार्यों को देखकर श्रीराम मुस्कुरा रहे थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि केवल राम नाम लिख देने से पत्थर पानी में तैरने कैसे लग जाते हैं?

विशेष प्रसंग

(शाम हुई तो श्रीराम को समुद्र पर उन पत्थरों के तैरने के कारण पर संदेह होने लगा। वे चुपके से अपने शिविर से बाहर निकले और समुद्रतट पर जाकर उन्होंने एक पत्थर उठाया और पानी में रख दिया। पत्थर डूब गया, यह देख श्रीराम बड़े उदास हुए, वे सोचने लगे कि मेरे द्वारा फेंका गया पत्थर पानी में डूब गया और वानर सैनिकों द्वारा पानी में रखा गया पत्थर कैसे तैर रहा है? श्रीराम इसी चिन्ता में पड़े थे कि पीछे से हनुमान्‌जी ने आकर कहा- "प्रभु! क्या बात है?" इस पर श्रीराम ने कहा- "तुमलोगों ने रामनाम लिखकर पत्थरों को समुद्र में फेंका तो वह तैरने लगा। लेकिन मैं स्वयं अपने हाथों से पत्थर फेंक रहा हूँ तो वह डूब रहा है।" श्रीराम की बात सुनकर हनुमान्‌जी ने हंसते हुए कहा- "प्रभु! आपसे बड़ा आपका नाम है।"

चौ०

राम एक तापस तिय तारिं । नाम कोटि खल कुमति सुधारिं ॥

राम ने तो केवल अहिल्या का उद्धार किया है, लेकिन राम के नाम ने करोड़ों का उद्धार किया है । हनुमान्‌जी ने कहा- "हे प्रभु! दूसरी बात यह है कि जिन पत्थरों को आपने फेंक दिया, जिन्हें आपने बाहर फेंक दिया वह तो डूबेगा ही । राम ने जिसको त्याग दिया, उसको कौन शरण देगा ।"

इसी संदर्भ में संतों ने एक और घटना का वर्णन किया है । जब पत्थर के तैरने की बात मंदोदरी और रावण को पता चली तो, मंदोदरी ने रावण से कहा- "हे नाथ! श्रीराम का नाम लिखकर वानरों ने पानी पर पत्थरों को तैरा दिया, इससे पता चलता है कि श्रीराम सचमुच परमात्मा हैं, उनसे बैर करना उचित नहीं है ।" यह सुन रावण ने व्यंग्य करते हुए मंदोदरी से कहा- "पानी में पत्थर तैराना कौन सी बड़ी बात है, मैं भी तैरा सकता हूँ ।" मंदोदरी को रावण की बात पर विश्वास नहीं हुआ । रावण ने कहा- "चलो मैं भी तुम्हें पत्थर तैरा कर दिखाता हूँ ।" रावण और मंदोदरी रात में छिपकर समुद्र के किनारे पहुँचे । रावण ने एक पत्थर का टुकड़ा निकाला और उसे समुद्र में छोड़ दिया । पत्थर तैरने लगा । रावण ने कहा- "देखो, मेरे प्रताप से भी पत्थर तैर रहा है ।" मंदोदरी ने मान लिया कि उसका पति रावण एक महान व्यक्ति है । दोनों चुपचाप महल में लौट आये । लेकिन मंदोदरी के मन से संदेह नहीं मिटा । उसने बड़े प्रेम से रावण से पूछा- "हे नाथ! आपको मेरी शपथ है, कृपया बतायें कि आपका पत्थर पानी में कैसे तैरने लगा ।" पहले तो रावण ने टाल-मटोल किया फिर उसने कहा- "मंदोदरी! मैंने भी उस पत्थर पर रामनाम लिख दिया था, इसीलिए पत्थर तैरने लगा ।")

रामेश्वरम् की स्थापना

बन्दर सेना कुशलतापूर्वक सेतु निर्माण में लगी थी और उधर श्रीराम ने निश्चय किया- "पहले इस समुद्रतट पर भगवान् भोलेनाथ की स्थापना करूँगा, फिर उनकी पूजा कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर ही लंका की ओर प्रस्थान करूँगा ।" ऐसा निश्चय करने के पश्चात् श्रीराम ने हनुमान्‌जी से कहा- "तुम बाबा की नगरी **'काशी'** जाकर बाबा से शिवलिंग मांग लाओ ।" हनुमान्‌जी काशी गये और बाबा भोलेनाथ से दो शिवलिंग प्राप्त कर वापस लौटने लगे ।

इधर हनुमान्‌जी को आने में देर हो रही थी और उधर शिव की पूजा का मुहूर्त बीता जा रहा था । श्रीराम ने कहा– "लगता है हनुमान्‌जी को आने में विलम्ब है, कहीं उनके विलम्ब के कारण शुभ मुहूर्त न टल जाए ।" श्रीराम ने निर्णय किया कि बालू का ही शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा की जाए । बालू का शिवलिंग बनाया गया और पंडित की खोज होने लगी । जाम्बवन्त आदि मित्रों ने श्रीराम को परामर्श दिया– "रावण महापंडित है, उसी को बुलाकर पूजा करायी जाए ।"

कई संतों का मत है कि रावण को जब भगवान् शिव की पूजा के सम्बन्ध में पता चला तो वह सीताजी को लेकर श्रीराम के पास आया और विधिपूर्वक श्रीराम और सीता के द्वारा बाबा भोलेनाथ की पूजा सम्पन्न कराया । फिर वह सीताजी को लेकर चला गया । एक संत ने यह भी बताया कि सीताजी की सोने की मूर्ति राम के बगल में रखकर रावण ने पूजा सम्पन्न करायी । यह लोककथा हो सकती है, लेकिन भोलेनाथ की पूजा समुद्रतट पर श्रीराम ने की और पूजा के उपरान्त उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया । कहते हैं पूजाकाल में श्रीराम ने पहली बार कहा था **"रामस्य ईश्वरः यः सः रामेश्वरः** अथवा **रामः दासः यस्य सः ।"** राम जिसका दास है, वह रामेश्वर है । यह सुनकर भगवान् शिव ने तुरंत जवाब दिया–**"रामस्य दासः सः रामेश्वरः (रामः ईश्वरः यस्य सः) ।"** अर्थात् राम का जो दास है, वह रामेश्वर है ।

भगवान् शिव को आशुतोष कहा जाता है । आशु का अर्थ है, शीघ्र और तोष का अर्थ है, प्रसन्न होने वाला । स्पष्ट है कि भगवान् शिव भक्त की प्रार्थना से बहुत ही जल्द प्रसन्न हो जाते हैं । तो आइए, हमलोग भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए उनकी वंदना करें–

शिववन्दना

हे महादेव हे शिवशंकर, जगती के प्राण के धाता हो ।
तुम विभुरुप, हो चिदाकाश, आदिशक्ति के ज्ञाता हो ॥
चिन्मय स्वरुप, ब्रह्माण्डरुप, निर्गुण अखण्ड, हो गुणातीत ।
चर-अचर जीव के स्रष्टा हो, सब जीव सृष्टि के हो अतीत ॥

तुम ओंकार निर्गुण अचल, कल्याण रूप शिव तेरा है ।
हे महाकाल द्वादश स्वरूप, ज्योतित रूप सब तेरा है ॥
हे भृकुटिविलास, नीलकण्ठ, मृत्युंजय नाम तुम्हारा है ।
सब जीव जगत के प्राणों में, उत्सर्जित प्राण तुम्हारा है ॥
तुम व्याप्त अचल अविनाशी हो, हर उर में अन्तर्वासी हो ।
उस रूप को सादर नमन प्रभो, सेवक में जीवनन्यासी हो ॥
संकल्प सिद्धि के हेतु प्रभु नतमस्तक दास तुम्हारा है ।
संकट के बन्धन को तोड़ू, केवल आशीश तुम्हारा है ॥
यह निराकार तेरा स्वरुप, मम हृदय कोष में वास करें ।
ममता, जड़ता व काम क्रोध, जीवन से मेरे नाश करें ॥
आशीश मुझे दो शिवशंकर, चरणों में शीश झुकाता हूँ ।
बन क्रियाहीन उस बिल्वपत्र से, अभिषेक तुम्हारा करता हूँ ॥
वरदान मुझे दो हे शम्भो, हर रोग शोक से मुक्त रहूँ ।
जीवन में हर क्षण मंगल हो, तेरी भक्ति में व्यस्त रहूँ ॥
जो शिवशक्ति का ध्यान करे, शंकर उसका कल्याण करे ।
रघुनन्दन का यह दिव्य वचन, हर घर में जो यह गान करे ॥

कहे सुदर्शन भक्ति से, शिव का करो अभिषेक ।
प्राप्त करो सियाराम को, सबका मालिक एक ॥

महामृत्युंजय मंत्र से, जीवन ज्योति बढ़ाओ ।
बिल्वपत्र अरु पुष्प से, शिव का आशीश पाओ ॥

पूजाकाल में की गई इस शिववन्दना से भगवान् आशुतोष प्रसन्न हुए और पूजा सम्पन्न होने के बाद सभी लोगों ने हर-हर महादेव का जयघोष किया । पुनः सभी लोग भगवान् भोलेनाथ का आशीर्वाद पाने के लिए प्रार्थना करने लगे-

: प्रार्थना :

भोला भण्डारी को मनायेंगे हम ।
बेलवा के पतिया चढ़ायेंगे हम ॥
बैल के सवारी बाबा डमरु बजावे ।
बघवा के छाला पहने भस्म लगावे ॥
भांग धतुर चढ़ायेंगे हम ।
बेलवा के पतिया चढ़ायेंगे हम ॥
भोला भण्डारी को मनायेंगे हम ॥

हाथ में त्रिशूल सोहे गले मुण्डमाला ।
चाँद शोभे मथवा पर विषधर प्याला ॥
त्रिनेत्रधारी को रिझायेंगे हम ।
बेलवा के पतिया चढ़ायेंगे हम ॥
भोला भण्डारी को मनायेंगे हम ॥
प्राणरूप जग में हैं आशुतोष बाबा ।
रक्षा करे भक्तन के हमर भोले बाबा ॥
आशीश बाबा के पायेंगे हम ।
बेलवा के पतिया चढ़ायेंगे हम ॥
भोला भण्डारी को मनायेंगे हम ॥

वेद पुराण विधि पता नहीं मुझको ।
जड़ और चेतन का पता होगा तुझको ॥
सिर अपना बाबा को झुकायेंगे हम ।
बेलवा के पतिया चढ़ायेंगे हम ।
भोला भण्डारी को मनायेंगे हम ॥

थोड़े समय पश्चात् हनुमान्जी शिवलिंग लेकर समुद्रतट पर पहुँचे । हनुमान्जी ने देखा कि पूजा तो सम्पन्न हो चुकी है, उन्हें बड़ा दुःख हुआ । हनुमान्जी ने रूष्ट होकर श्रीराम से कहा– "मैं इतनी दूर से शिवलिंग लेकर आया हूँ और आपने पूजा समाप्त कर ली । मैं इस शिवलिंग का क्या करूँ? भगवान् शिव से मैंने दो शिवलिंग मांगा था । एक यहाँ के लिए और एक अपने लिए ।" हनुमान्जी की बात सुनकर श्रीराम ने कहा– "तुम चिन्ता मत करो, मैं दोनों शिवलिंगों को यहीं स्थापित कर देता हूँ ।" इस पर हनुमान्जी ने कहा– "यह बालू का शिवलिंग कितने दिन चलेगा?" इस पर श्रीराम ने कहा– "हनुमान्! इस बालू के शिवलिंग को अपनी पूँछ में लपेटकर उखाड़ लो तो, मैं इस स्थान पर काशी से लाए विश्वेश्वर शिवलिंग को स्थापित कर दूँगा । हनुमान्जी ने तुरंत अपनी पूँछ से बालू से बने शिवलिंग को लपेटा और खींचना शुरू किया । बहुत जोर लगाने पर भी वह शिवलिंग टस से मस नहीं हुआ । लेकिन उनकी पूँछ टूट गई और हनुमान्जी मूर्छित होकर गिर गये । थोड़ी देर बाद वे उठे, प्रभु को प्रणाम किया और अपनी भूल के लिए क्षमा मांगा । आज भी रामेश्वरम् के शिवलिंग के दर्शन के दौरान हम देखते हैं कि इसका ऊपरी भाग पूंछ के दबाव के कारण थोड़ा पिचका हुआ है ।

श्रीराम ने कहा– "हनुमान्! इस विश्वेश्वर शिवलिंग को यहाँ से उत्तर जाकर स्थापित करो, जो विश्वनाथ के नाम से जाना जाएगा । आज से जो भी व्यक्ति विश्वनाथ शिवलिंग की पूजा किये बिना रामेश्वरम् की पूजा करेगा तो, उसे कोई फल प्राप्त नहीं होगा ।"

विशेष प्रंसग

(ऐसा सन्तों का मत है कि शिवलिंग की पूजा अद्‌भुत फलदायक होती है। संसार में बारह ज्योतिर्लिंग हैं, जो बड़े प्रसिद्ध हैं। इसके सम्बन्ध में कथा कही जाती है कि एक बार ब्रह्मा जी को इस संसार की रचना के कारण अभिमान हो गया। वे कहीं जा रहे थे, रास्ते में उन्हें एक विशाल खम्भा समान एक आकार खड़ा मिला। ब्रह्माजी सोचने लगे कि यह क्या है? उनके मन में जिज्ञासा हुई कि इसका पता लगाना चाहिए। वे आकाश की ओर उड़े तथा वर्षों उड़ते रहे, लेकिन उस विराट स्तम्भ का कोई ओर-छोर पता न चल सका। वे निराश होकर बैठ गये। तभी भगवान् शिव प्रकट हुए। भगवान् शिव ने ब्रह्माजी से पूछा- "हे परमपिता! आप उदास क्यों हैं?" यह सुन ब्रह्माजी ने कहा- "हे कल्याणकारी शिव! मैं इस विराट स्तम्भ का पता नहीं लगा पा रहा हूँ।" भगवान् शिव ने ब्रह्माजी को कहा- "आप मेरा त्रिशूल लें और इस स्तम्भ को काट डालें।" यह सुन ब्रह्माजी ने कहा- "मैं इस लिंग समान स्तम्भ को नहीं काट सकता।" यह सुन भगवान् शिव ने अपने ही त्रिशूल से उस लिंग समान स्तम्भ को बारह टुकड़ों में काट डाला और उसे विभिन्न दिशाओं में फेंक दिया। वही बारह टुकड़े आज द्वादश ज्योतिर्लिंग के नाम से जाने जाते हैं। जिनके नाम क्रमशः - (1) सोमनाथ, (2) मल्लिकार्जुन, (3) महाकालेश्वर, (4) ओंकारेश्वर, (5) केदारनाथ, (6) भीमेश्वर, (7) विश्वेश्वर, (8) त्र्यम्बकेश्वर, (9) वैद्यनाथ, (10) नागेश्वर, (11) सेतुबंध रामेश्वरम् एवं (12) घृश्मेश्वर हैं। इस तरह रामेश्वरम् शिवलिंग की स्थापना करके प्रभु श्रीराम ने भगवान् भोलेनाथ को प्रसन्न किया-

द्वादश ज्योतिर्लिंगम्

हे महाकाल केदारेश्वर वैद्यनाथ नागेश्वरः।
मल्लिकार्जुन सोमनाथ ओंकारेश्वर भीमेश्वरः॥
त्र्यम्बकेश्वर विश्वनाथ घृश्मेश्वर रामेश्वरः।
नमस्तुभ्यं ज्योतिर्लिङ्ग आयुष्मान् कुरु मम॥

पूजा के पश्चात् विभीषणजी श्रीराम के पास गये और कहा- "हे प्रभु! समुद्र पर सेतु बाँधना एक दुष्कर कार्य था, लेकिन उसे आपके वीर वानरों ने पूरा कर लिया। हे

प्रभु! इस सेतु को तोड़ने के लिए रावण ने कई बार प्रयास किया, लेकिन हनुमान् और लक्ष्मणजी ने उनके सारे प्रयास विफल कर दिये । रावण नहीं चाहता था कि इस सेतु का निर्माण कार्य पूरा हो । यह रावण की पहली हार है । यह कार्य आपकी कृपा से क्षण मात्र में ही पूरा हो जाता, लेकिन आपने वानरों और भालुओं को प्रेरित करके सब काम पूरा करा लिया । जो वानर भालू जंगलों में भटका करते थे, वे ही आज़ पूर्ण प्रशिक्षित सैनिक बनकर लंका पर आक्रमण करने के लिए आतुर हैं । यह सब आपके नेतृत्व का फल है कि आपने इनकी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर एकाग्र कर दिया । अब ये सैनिक ब्रह्माण्ड के किसी भी सैनिक को परास्त कर सकते हैं । इन वानरों और भालुओं के मन में अपनी मातृभूमि के प्रति जो समर्पण की भावना है, वह निश्चित रूप से प्रशंसनीय है । जिस राष्ट्र में ऐसी एकता हो, उस राष्ट्र पर किसी की नजर नहीं लग सकती । लंकेश ने आर्यावर्त की बिखरी हुई शक्तियों को देखकर ही इस भूमि पर घुसपैठ किया था । लेकिन आपने बिना अयोध्या की सहायता से समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र किया । सचमुच ये सारे कार्य आपके समान आर्यावर्त के सपूत से ही सम्भव है । माता, मातृभूमि और धर्म– ये तीनों प्रत्येक मनुष्य की अपनी धरोहर हैं । अभी प्रातः काल जाम्बवन्तजी कह रहे थे कि रावण ने एक ही साथ हमारी मातृभूमि और हमारी संस्कृति की प्रतीक सीता माता पर आक्रमण किया है । इसकी सजा रावण को अवश्य ही मिलेगी । हमने किसी भी देश अथवा धर्म पर कभी कोई आक्रमण नहीं किया । हमारे जीवन का उद्देश्य है, नैतिक कर्म और परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयास करना । हमें सोने की लंका नहीं, खेतों में लहराते फसल, वृक्षों पर लदे फल और नदियों का मीठा जल चाहिए । क्योंकि हमारा देश अध्यात्म प्रधान है । भौतिकता के प्रलोभन से हम अपना धर्म नहीं छोड़ सकते । हम किसी पर आक्रमण करना नहीं चाहते, लेकिन कोई दूसरा अगर हमारी अस्मिता और मर्यादा को छूता है, तो उसे हम बर्दाश्त भी नहीं कर सकते ।

यह सुन श्रीराम ने कहा– "हे सखा विभीषण! आर्यावर्त एक धर्मप्रधान देश है, हमारे पूर्वजों ने हमें यही सिखाया है कि दूसरों की सम्पत्ति पर लोभ मत करो । हम आर्य हैं, आर्य संस्कारयुक्त होते हैं । हम सहिष्णु हैं, हम केवल अत्याचार और अनाचार का विरोध करते हैं । रावण अगर लंका में रहकर राज्य करता तो, हमें कोई ऐतराज नहीं होता । लेकिन वह मदान्ध होकर देवताओं, यक्षों और गंधर्वों पर अकारण आक्रमण करके उन्हें काफी सता रहा है । रावण ब्राह्मण है, वह वेदों का ज्ञाता है फिर भी अनाचार कर

रहा है, जिस कारण उसका वध अनिवार्य है । ब्राह्मण जब तक वैदिक कर्म करता है, वह तभी तक पूज्य है अन्यथा वह वध के योग्य हो जाता है ।

राम और विभीषणजी में बातचीत हो रही थी तभी श्रीराम का जयघोष करते हुए हजारों वानर सैनिक, हनुमान्‌जी, सुग्रीव और जाम्बवन्त के साथ प्रभु श्रीराम के पास पहुँचे । जाम्बवन्तजी ने कहा– "हे प्रभु आपकी कृपा से नल, नील की देख–रेख में समस्त वानर सैनिकों ने सेतु को तैयार कर दिया है । आप हमें आदेश दें कि हम सेतु पार कर लंका में प्रवेश करें ।"

प्रभु श्रीराम ने समस्त वानर वीरों को बालू निर्मित रामेश्वरम् का आशीर्वाद प्राप्त करने को कहा । श्रीराम ने कहा– "हे वानर सैनिकों! भगवान् शिव हमारे आराध्यदेव हैं । जो व्यक्ति सिर्फ मेरी पूजा करता है और शिव को नहीं पूजता उसे स्वप्न में भी मेरा दर्शन नहीं हो पाता ।"

चौ०

सिव द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

दो०

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥

चौ०

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ॥

दो०

श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥

प्रभु श्रीराम ने आदेश दिया– "आप सभी अब दूसरे देश की सीमा में प्रवेश करेंगे, उस देश में हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना होगा, जिससे वहाँ की मर्यादा टूटे ।

आप सभी सतर्क होकर वहाँ विचरण करेंगे, क्योंकि शत्रु देश के लोग कभी भी आप के ऊपर आक्रमण कर सकते हैं । वहाँ किसी प्रलोभन में न पड़ेंगे, कहीं अकेले नहीं जाएंगे, अनजान व्यक्ति के द्वारा दिया गया कोई खाद्य पदार्थ स्वीकार नहीं करेंगे । बिना परीक्षा के किसी पर भरोसा न करें, क्योंकि युद्धकाल में प्रतिक्षण सतर्क रहना पड़ता है । राक्षस मायावी होते हैं, अगर आपने थोड़ी भी भूल की तो, आपकी जान जा सकती है । इसलिए वहाँ हमेशा संगठित होकर रहें और शत्रु के किसी भी आक्रमण के मुकाबला के लिए तैयार रहें । कहा जाता है कि अपने देश में प्रत्येक शत्रु बलवान होता है । हमें संयम और नियमपूर्वक रहकर युद्ध करना है । मैं अभी भी चाहता हूँ कि रावण युद्ध का मार्ग छोड़ दे, क्योंकि युद्ध किसी समस्या का उत्तर नहीं है । हमारा उद्देश्य तो यही है कि रावण मेरी सीता को लौटा दे और हमारे देश में घुसपैठ बन्द करे । अन्त समय तक मैं रावण को युद्ध न करने की सलाह देता रहूँगा, क्योंकि रावण की भूल के कारण लंका के निर्दोष नर-नारी की हत्या उचित नहीं है । फिर भी रावण नहीं माना तो आप सबों को एकजुट होकर युद्ध करना ही पड़ेगा । हे वानरवीरों! क्रोध में आकर युद्ध करने से अपना ही नुकसान होता है । क्योंकि क्रोध में कोई भी निर्णय सही नहीं होता । युद्धकाल में आप सभी मन को शान्त रखेंगे और तब राक्षसों के आक्रमण का उत्तर देंगे । क्योंकि क्रोधी व्यक्ति कभी भी युद्ध में सफल नहीं होता । क्रोध एक बीमारी है, उससे हमेशा बचना चाहिए ।" इस प्रकार श्रीराम ने वानरवीरों को समझाया । तत्पश्चात् सेतु मार्ग से लंका प्रस्थान का आदेश दिया । श्रीराम और लक्ष्मण को हनुमान्जी ने अपने कंधे पर बैठाकर सागर पार कराया । इस तरह सभी वानर सेना सेतु मार्ग एवं आकाशमार्ग से सागर के उस पार पहुँचे । उस पार जाते ही श्रीराम ने सुबेल पर्वत पर चढ़कर लंका का निरीक्षण किया । इसके बाद सबसे पहले एक सुरक्षित स्थान पर सैनिकों ने शिविर लगाया और फिर लंका के जंगलों में जाकर फलाहार किया ।

लंका में वानर सेना के प्रवेश होते ही चारों ओर खलबली मच गई । मंदोदरी घबराकर फिर से रावण को समझाने पहुँची । मंदोदरी ने कहा- "जिस राम ने अत्यन्त बलशाली राक्षसों का नाश किया है, उससे आप बैर त्याग दें । अब तक आप बहुत राज्य कर चुके हैं, मेरी बात मानकर, सीता को वापस लौटा दें और अपना राज्य पुत्र को देकर हमदोनों तपस्या करने चलें । क्योंकि शास्त्र सम्मत है कि जीवन के चौथेपन का हो जाने पर सन्यास ले लेना चाहिए । हे नाथ! इस जीवन का क्या ठिकाना है, जब तक साँस चल रही है, तभी तक यह राजपाठ है ।" इस अवसर पर मंदोदरी ने एक बड़ा सुन्दर गीत गाया है । आइए हम सब मिलकर उस गीत को प्रेम से गायें-

भजन

जीवन का कौन ठिकाना, सजन रे राम भजो ।

काम क्रोध अभिमान में पड़कर,

जीवन नरक बनाया, सजन रे राम भजो ।

जीवन का कौन ... ...!

विषय वासना काम न आवे, धन वैभव सब रोग बढ़ावे,

क्षण-क्षण उमर घटावे, सजन रे राम भजो ।

जीवन का कौन ... ...!

दस द्वारे का पिंजर काया, रूप जवानी मन भरमाया,

मर्कट नाच नचाया, सजन रे राम भजो ।

जीवन का कौन ... ...!

प्रभु का द्वार दिखा नहीं मद में,

उसका नाम न कभी सुनाया, कथा पुराण से दूर भगाया ।

कभी न शीश झुकाया, सजन रे राम भजो ।

जीवन का कौन ... ...!

लंका के सुबेल पर्वत पर श्रीराम, लक्ष्मण और विभीषण की वार्ता

समुद्र पार करने के पश्चात् समस्त वानर सेना शिविर बनाकर विश्राम करने लगी और इधर श्रीराम, लक्ष्मण और विभीषण सुबेल पर्वत के शिखर पर एक रमणीक स्थान देखकर पत्तों के आसन बनाकर बैठ गये ।

चौ०

सिखर एक उतंग अति देखी । परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए । लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
ता पर रुचिर मृदुल मृग छाला । तेहिं आसन आसीन कृपाला ॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना । कह लंकेस मंत्र लगि काना ॥

प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण और विभीषणजी बातचीत कर रहे हैं और हनुमान्जी तथा अंगद **"चरन कमल चापत बिधि नाना"** प्रभु के पाँव दबा रहे हैं । सचमुच वे लोग बड़े भाग्यशाली होते हैं, जिन्हें परमात्मा के चरण दबाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

विचारणीय

(भारत में प्राचीन काल से ही चरण छूने, माता-पिता तथा गुरुजन के पैर स्पर्श करने का विधान रहा है । इस बात से विज्ञान भी सहमत है कि हाथ की दस एवं पैर की दस अंगुलियों से ऊर्जा का स्राव होता रहता है । गुरुजनों के शरीर में जो ऊर्जा उनके तप से अर्जित होती है, शिष्य उसी ऊर्जा को उनके पाँव छूकर ग्रहण करता है । ऊर्जा शिष्य के शरीर में भी होती है और गुरु के शरीर में भी। दोनों में अन्तर यह होता है कि गुरु की ऊर्जा सिस्टेमैटिक होती है । गुरु के शरीर की ऊर्जा के सम्पर्क में आते ही शिष्य के शरीर की ऊर्जा भी सिस्टेमैटिक हो जाती है । चुम्बक और लोहा में यही अन्तर है कि चुम्बक के लौहकण सिस्टेमैटिक होते हैं और लोहे के कण अव्यवस्थित । जैसे चुम्बक के सम्पर्क में जाते ही लोहा भी चुम्बक हो जाता है । उसी प्रकार गुरुजन के सम्पर्क में आते ही शिष्य का स्वरुप बदल जाता है ।

चौ०

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ॥

हम जब अपने बच्चों को आशीर्वाद देते हैं, तो ऐसी ही मंगलकामना करते हुए कहते हैं- आयुष्मान् भव, विजयी भव, खुश रहो आदि । हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जब हम किसी बड़े को प्रणाम करते हैं, तो उनके आशीर्वाद से आयु, विद्या, बल और बुद्धि की बढ़ोत्तरी होती है । **"चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ।"** इसीलिए बड़ों का पैर छूने का विधान है ।

विभीषणजी ने श्रीराम से पूछा- "हे प्रभु! आपने इन जंगलों में भटकने वाले बन्दर और भालू के बल पर समुद्र में सेतु बांधने और लंका पर आक्रमण करने का संकल्प कैसे किया? लंका में बड़े-बड़े मायावी और बलवान राक्षस हैं, उनसे लड़ने के लिए आपने इन साधारण वानरों को तैयार किया है, क्या ये वानर बलशाली राक्षसों से लड़ सकेंगे?"

विभीषणजी की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- "सखा विभीषण! युद्ध केवल सैनिकों के बल पर नहीं लड़ा जाता । इसके लिए प्रबल इच्छा शक्ति, मनोबल और एकाग्रता की जरूरत पड़ती है । राक्षस बलवान हैं, मायावी भी हैं, लेकिन वे असत्य मार्ग पर चल रहे हैं । वे भय के कारण रावण की दासता में पड़े हुए हैं, हमारे वानर वीर हमसे प्यार करते हैं, और मैं उन्हें अपना मानता हूँ, वे भी मुझे अपना मानते हैं । मैं उन्हें कहता हूँ, मेरे साथ आगे बढ़ो और रावण कहता है, जाओ युद्ध करो । दोनों में यही अन्तर है । मैं स्वयं उसका नेता हूँ, इसलिए उन्हें मुझ पर भरोसा है । कहावत है- **स्वयं आगे बढ़कर अगली पंक्ति में खड़े होकर पीछे से आदमी को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जाती है** । कहते हैं- "आगे से मनुष्य और पीछे से पशु को हांका जाता है ।" दुनिया की बड़ी-से-बड़ी सेना युद्ध हार जाती है, जब उसका सेनापति पीछे खड़ा रहता है । इन वानर सैनिकों की ऊर्जा शक्ति को मैंने एकाग्र किया है । इसलिए हमलोगों का उद्देश्य एक सूत्री बन गया है । देखते-देखते वृक्षों की डालियों पर कूदने वाले वानरों ने इतना बड़ा सेतु बना लिया । यह सब संघटित ऊर्जा का ही प्रभाव है । जिसे अपनी ऊर्जाओं को एकत्र कर केन्द्रित करने की कला का ज्ञान रहता है, वह शिखर पुरुष बन जाता है ।"

विशेष प्रसंग

(सूरज की किरणें पूरे संसार में फैली रहती हैं, लेकिन जब उन्हीं किरणों को लेंस से पार कराया जाता है तो नीचे अग्नि पैदा हो जाती है । ऊर्जा को संघटित करने का महत्त्व भी तो यही है ।)

विभीषणजी ने श्रीराम से पूछा- "हे प्रभु! मनुष्य परमात्मा को क्यों नहीं प्राप्त करता, जबकि वह प्रयास तो सदैव करता ही रहता है ।" यह सुनकर प्रभु श्रीराम ने कहा- "भक्त की भक्ति चार स्तरों से होकर गुजरती है । आस्था, भरोसा, समर्पण और विसर्जन । भक्ति में इन चार शब्दों का बड़ा महत्त्व है । भक्ति के लिए आवश्यक है कि जिसके प्रति

आपके मन में भक्ति हो, उस पर पूरी आस्था हो । तभी आप भक्ति की ओर बढ़ सकते हैं । भक्ति का पहला सोपान आस्था है और आस्था के लिए आवश्यक है कि जिस पर आप आस्था कर रहे हैं, उसे पूरा का पूरा स्वीकार करें । क्योंकि किसी को स्वीकार करना हो, तो उसे पूर्ण रूप में ही स्वीकारें । ऐसा न हो कि कृष्ण की आँखें बड़ी सुन्दर हैं तो, तुम आँख को स्वीकार कर लो और दूसरे अंगों को छोड़ दो ।

जहाँ भाव समर्पण मन से हो, वहाँ तर्क विवेक नहीं होता ।
आस्था का जहाँ विसर्जन हो, वहाँ खंडित विश्वास नहीं होता ॥

आस्था पहला सोपान है । इसलिए सोच समझकर ही किसी पर आस्था करनी चाहिए । ध्यान रहे कि आस्था कभी-कभी डिग भी जाती है । क्योंकि आस्था में विचार करने की गुंजाईश होती है । संभव है कि विचार करते समय तुम्हारी आस्था टूट जाए । इसलिए आस्था ही सब कुछ नहीं है । यह भक्ति की ओर उठा पहला कदम है । आस्था किसी के सम्बन्ध में सुनकर भी की जाती है, क्योंकि आस्था अनुभव नहीं है । कोई दूसरी बात सुनने पर आस्था को वापस भी लिया जा सकता है । इसलिए आस्था में लौटने की भी गुंजाईश बनी रहती है । हम चाहें तो आस्था करें अथवा न करें ।

भरोसा- भरोसा अथवा विश्वास भक्ति का दूसरा सोपान है । मन में किसी के प्रति पहले आस्था जगती है, फिर उस पर भरोसा होता है । भरोसा भी अनुभव नहीं है। यह किसी शास्त्र अथवा श्रेष्ठजन के द्वारा दिया गया एक मार्ग है । तुमने किसी से कुछ सुना, तुम्हारे मन में आस्था जगी, तुमने बिना तर्क-वितर्क किये ही उस पर आस्था कर ली । फिर तुम्हें लगा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है । तुम्हारे मन में अब भरोसा होने लगा कि वह व्यक्ति ठीक कह रहा है । तुम्हारे मन में उसके प्रति अच्छा भाव आने लगा । अब तुम भक्ति के दूसरे पायदान पर आ गये । तुम भक्ति की ओर चल रहे हो, अभी पहुँचे नहीं हो । इसलिए जब तक पहुँच नहीं जाते, लौटने की गुंजाईश है । इसलिए तुम जब चाहो, भरोसा छोड़कर लौट सकते हो । क्योंकि दूसरे पायदान से भागने की पूरी स्वतंत्रता और संभावना तुम्हारे पास है । तुम मानने या न मानने के लिए स्वतंत्र हो । कोई जरूरी नहीं कि भरोसा करके भक्ति तुम पा ही लो । क्योंकि भरोसा को टूटने की जब तक संभावना बनी रहेगी, तब तक भक्ति और तुम्हारे बीच में दूरी बनी रहेगी । दूरी अभी मिटी कहाँ है? तुम तो दूरी को कम करने का प्रयास कर रहे हो । बीच में बहुत बड़ी खाई है । खाई की गहराई देखकर तुम यह कह सकते हो कि कौन इतना जहमत उठाये,

लौट चलो घर को । क्योंकि तुम अभी कहीं हो नहीं, तुम्हारे आने की खबर अभी किसी को नहीं है । तुम्हारी प्रतीक्षा भी कोई नहीं कर रहा है । इसलिए पूरा निर्णय तुम्हारे हाथ में है । जब तक तुम निर्णय करते रहोगे, तब तक कहीं पहुंचने अथवा किसी को पाने का कोई अर्थ ही नहीं है । इसलिए भरोसा में पुनर्विचार की पूरी संभावना है ।

समर्पण- भक्ति का तीसरा सोपान है समर्पण । समर्पण का अर्थ है- किसी के प्रति पूरी निष्ठा से स्वयं को अर्पित कर देना । उसकी मर्जी पर छोड़ देना । यहाँ मर्जी तुम्हारी नहीं, उसकी है । क्योंकि तुम परमात्मा के चरणों में अपनी पूरी निष्ठा से गिर चुके हो । अब परमात्मा को सोचना है कि तुम्हें उठाये या न उठाये । यहाँ निर्णय तुम्हारा नहीं चलेगा । परमात्मा तुम्हें चारों ओर से देख-समझकर अपना निर्णय देगा । क्योंकि तुमने समर्पण तो अवश्य किया है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ तुम अपने मन के किसी कोने में छुपाए हुए हो । क्योंकि मन तो अभी भी तुम्हारे पास है । मन तो अभी भी अलग खड़ा है । तुम शरीर से तो समर्पित हो चुके हो, लेकिन तुम्हारा मन अभी भी अहंकार के घोड़े पर बैठकर अपनी मूछों पर ताव दे रहा है । तुम्हें अभी भी लग रहा है कि मैं जो परमात्मा के चरणों में गिर चुका हूँ, कहीं कोई देख न ले । लोग यह न कहें कि इतना बड़ा आदमी, धनी अथवा कोई ऊँचा अधिकारी होकर, कैसे परमात्मा के पास गिरा है । मुझे ऐसा करते देख कर लोग मुझ पर हसेंगे । अभी तुम्हारे अन्दर ऐसा भाव है । क्योंकि हृदय में काफी कुछ तुमने छिपा रखा है । अभी भी तुम्हारे मन में ऐसा भाव है कि मैं ऐसा करूँगा, तो लोग मुझ पर हसेंगे । समर्पण में तुम्हारा **"मैं"** भाव अलग है और भक्ति अलग इस प्रकार द्वैत बना हुआ है । जब तक तुम और परमात्मा अलग-अलग रहोगे, तब तक तुम्हारे मन में भक्ति घटित नहीं हो सकती । परमात्मा को भी यह पता है कि तुम कभी भी उनके चरणों से उठकर भाग सकते हो । अभी तुम चरणों पर गिरे हो, क्योंकि तुम सोच-समझकर गिरे हो । फिर सोच-समझकर उठकर भाग भी सकते हो । इसकी पूरी सूचना परमात्मा को है । यहाँ तुम्हारे ठहरने और भागने दोनों की संभावना है और संभावना कभी भी प्राप्ति नहीं मानी जाती । जैसे- कोई व्यक्ति किसी को आत्म समर्पण करता है तो, यह आत्म समर्पण का नाटक होता है । क्योंकि जब तक भक्त और भगवान् के बीच में किसी प्रकार का पर्दा, दुराव-छिपाव, मैं और तुम, भक्त और भगवान् का द्वैत भाव बचा रहेगा, तब तक पूर्ण भक्ति कैसे घटित होगी?

विसर्जन- भक्ति की ओर बढ़ने में विसर्जन चौथा और अंतिम सोपान है । विसर्जन का अर्थ है, लय हो जाना । स्वयं को मिटा देना । यह विसर्जन केवल भक्त कर सकता है, ज्ञानी नहीं । ज्ञानी अपने ज्ञान के प्रकाश से दूसरों को मिटा देता है, स्वयं बचा रहता है । लेकिन भक्त स्वयं को मिटा देता है । जिस प्रकार पतंग दीपक में स्वयं लय हो जाता है, वह यह नहीं पूछता कि दीपक तुम रहोगे या मैं । वहाँ प्रश्न पूछने की कोई गुंजाईश नहीं है । क्योंकि वहाँ विसर्जन है । यहाँ दो होने का सवाल ही नहीं है । केवल एक है और एक ही बचा रहता है ।

भक्त और भगवान् जब तक दो हैं, तब तक कहीं कोई विसर्जन नहीं है । ज्योंही नदी का पानी सागर में गिरा, फिर वहाँ कोई नदी नहीं है । जीव तभी तक जीव है, जब तक वह परमात्मा में नहीं मिल जाता । मिल जाने पर बताना मुश्किल है कि इस परमात्मा में जीव कहाँ है? सागर में बताया नहीं जा सकता कि गंगा का पानी किस ओर है । क्योंकि वहाँ दो की कोई संभावना है ही नहीं । शास्त्रों में कहा जाता है- सारूप्य, सायुज्य और सामीप्य भक्ति । सामीप्य और सायुज्य भक्ति में दो की संभावना है । लकिन सारूप्य भक्ति में दो की कोई संभावना ही नहीं है । वहाँ केवल एकरुपता है । जब तक सागर नदी को पुकार रहा था और नदी भी अपने प्रियतम महासागर से मिलने को आतुर थी, तभी तक दोनों दो थे । लेकिन नदी ज्योंही सागर में गिरी तो, नदी का अर्थ ही नष्ट हो गया । इसलिए भक्त जब तक भक्त बना हुआ है, किसी की पूजा कर रहा है, तब तक वह स्वयं ही अपने को **"परमात्मा"** में विसर्जित नहीं मानता । क्योंकि वह अभी भी **"वह"** बना हुआ है और परमात्मा अभी परमात्मा बने हुए हैं । इसलिए तो वह पूजा कर रहा है । भक्त आखिर अपने और परमात्मा के बीच में पूजा की दीवार क्यों खड़ी कर रहा है । जब तक वह पूजा करता रहेगा, तब तक दो का भाव बना रहेगा । जिस दिन उसके हाथ से पूजा की थाल गिर जाएगी, उसी दिन वह स्वयं परमात्मा बन जाएगा ।

जब भक्त परमात्मा में विसर्जित हो जाता है, तभी उसे सायुज्य और सारूप्य भक्ति प्राप्त हो पाती है । इन वानरों ने पूरी तरह स्वयं को मुझमें विसर्जित कर दिया है । अब वे मुझसे अलग नहीं हैं । केवल दृष्टि भेद और अज्ञान के कारण अलग दिख रहे हैं । इसीलिए सभी वानरों में मैं स्वयं निवास करने लगा हूँ । इसलिए ये विराट बन गये हैं । मनुष्य जब तक अपने धन, बल और पद के अभिमान में पड़ा रहता है, तब तक वह मुझे नहीं पा सकता । जिस दिन वह अपने अहंकार को मुझमें विसर्जित कर देता है, उसका अहं विसर्जित हो जाता है तो, वह स्वयं परमात्मा बन जाता है । केवल अहंकार

के कारण वह मुझसे दूर खड़ा रहता है। इन वानरों का अब अपना कुछ नहीं है। उनके लिए केवल मैं ही रह गया हूँ। इसलिए इन वानरों ने इतना बड़ा काम पूरा किया है। बड़ा सें बड़ा काम धन या बल से पूरा नहीं होता, यह तो मनोबल से पूरा होता है। आजतक जितने भी लोग सफल हुए हैं, वे अपने मनोबल के कारण ही सफल हुए-

चौ०

जा पर जाके सत्य सनेहुं। सो तेहिं मिलई न कछु संदेहु॥

जीवन में वही व्यक्ति हारता है, जिसको अपनी जीत पर भरोसा नहीं होता। जो जीतना नहीं चाहता, वही हारता है। यह प्रकृति का नियम है कि जो दुःखी रहना चाहता है, वही दुःखी बनता भी है। इसलिए सुखी रहने का मन बनाओ, जीवन भर सुखी रहोगे। मनुष्य अपने बारे में जैसा विचार करता है, वैसा ही बन भी जाता है। क्योंकि विचार से ही शरीर में आशा और निराशा के कीटाणु पैदा होते हैं। यही कारण है कि आशावादी लोग स्वस्थ और दीर्घायु बनते हैं और निराशावादी लोग असमय ही काल.के गाल में समा जाते हैं। इसलिए हमेशा प्रसन्न रहते हुए अपने सभी काम प्रभु को समर्पित करने वाले को कभी असफलता नहीं मिलती।)

श्रीराम वहीं से लंका का निरीक्षण कर रहे हैं। कभी-कभी बिजली चमकती है, आकाश में मेघ छाए हुए हैं। श्रीराम ने वहीं से देखा कि लंका के एक पर्वत शिखर पर एक सुन्दर भवन बना है, जहाँ बैठकर रावण मनोरंजन कर रहा है। श्रीराम ने सोचा- "रावण कितना मूर्ख है कि उसकी लंका में शत्रु सेना का प्रवेश हो गया है और वह मनोरंजन कर रहा है। हे सखा विभीषण! रावण अविवेकी राजा है। उसका शत्रु समुद्र बांधकर लंका में आ गया। अब उस पर आक्रमण होने वाला है। लेकिन वह नाच-गान में मग्न है। समुद्रतट से लंका बहुत अधिक दूर नहीं है। उसे सोचना चाहिए कि उसका शत्रु जब समुद्र बांधकर इस पार लंका के निकट आ गया है तो, उसे और सावधान हो जाना चाहिए था। वह शत्रु को अपने ही देश में युद्ध करने के लिए आमंत्रित कर रहा है। यह राज-धर्म नहीं है। इससे पता चलता है कि वह राजा का धर्म छोड़कर विलासी व्यक्ति बन गया है।" श्रीराम ने चेतावनी देने के लिए एक बाण का संधान कर रावण की ओर छोड़ा। उस बाण से रावण का छत्र मुकुट कटकर गिर गया। सभी सभासद् घबड़ा गये, लेकिन रावण मुस्कुराकर बात को टाल दिया। यह अपशगुन देखकर मंदोदरी को काफी चिन्ता हुई। उसने रावण को समझाते हुए कहा-

चौ०

कंत राम बिरोध परिहरहू । जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥

मंदोदरी ने रावण को समझाया– "हे नाथ! आप राम का विरोध त्याग दें ।" मंदोदरी द्वारा बार–बार हठ करने पर रावण ने कहा–

चौ०

बिहँसा नारि बचन सुनि काना । अहो मोह महिमा बलवाना ॥

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥

नारी के हृदय में दुःसाहस, झूठ, चंचलता, माया, भय, अविवेक, अपवित्रता और निर्दयता, ये आठ अवगुण हमेशा रहता है । यह सुनकर मंदोदरी समझ गई कि उसका पति अब काल के वश में हो गया है, उन्हें समझाने से कुछ नहीं होगा–

मो०

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।

मुरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥

अंगद का रावण की सभा में जाना

श्रीराम के शिविर में इस विषय पर चर्चा होने लगी कि "लगता है रावण को अब सद्बुद्धि नहीं होने वाली है । पहली बार हनुमान्जी ने लंका का तहस–नहस किया था । अब श्रीराम की सेना लंका में प्रवेश कर गई । श्रीराम ने स्वयं अपने बाण से रावण का मुकुट काटकर गिरा दिया, फिर भी रावण सावधान नहीं हुआ । जो व्यक्ति इतनी चेतावनी के बाद भी सावधान न हो, उसका नाश हो जाता है । यह तो जीवन का सामान्य नियम है कि हमेशा अपने मित्र और शत्रु दोनों के व्यवहार पर नजर रखना चाहिए । जो व्यक्ति अहंकारवश अपने विरोधियों की गतिविधि पर नजर नहीं रखता, वह निश्चित रूप से संकट में पड़ जाता है । क्योंकि शत्रु किस समय कौन सी चाल चल दे, कहना मुश्किल है । इसीलिए कहा जाता है कि हमेशा श्वान और कौऐ की तरह सतर्क रहना चाहिए । लेकिन रावण अपने देश में शत्रु सेना के प्रवेश के पश्चात् भी सतर्क नहीं हो पा रहा है । उसके ऊपर युद्ध का उन्माद चढ़ा हुआ है । अब तक उसने निर्बल लोगों को परास्त किया है, वह समझ रहा है कि उसी तरह श्रीराम की

सेना को भी मार-पीट कर लंका से खदेड़ देंगे । कहावत है- "धन का बढ़ना अच्छा, लेकिन मन का बढ़ना अच्छा नहीं ।" रावण कामी पुरुष है, इसीलिए काम के वशीभूत होकर वह रिश्ते-नाते की मर्यादा भी नहीं मानता । कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की पाँच माताएँ होती हैं । अपनी माता, पत्नी की माता, गुरु की पत्नी, भाई की पत्नी एवं मातृभूमि । रावण इस मर्यादा को भी तोड़ चुका था । उसने भगवान् शिव, जिनकी वह पूजा करता था, उनकी पत्नी माता पार्वती को भी मांग लिया था । लेकिन माता पार्वती ने जब भगवान् विष्णु का स्मरण किया, तब विष्णु ने अपने शरीर के चन्दन से मंदोदरी को बनाया और मय नामक राक्षस को दे दिया । मय से रावण ने मंदोदरी को प्राप्त किया । उसने अपनी पतोहू नलकुबेर की पत्नी से दुष्कर्म किया और इस बार जगद् जननी सीता को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है ।" कहते हैं-

क०

कामी को सुख काम से, धन-बल रहत अनन्त ।
भडुआई के कारणे, तड़प-तड़प मरे अन्त ॥

श्रीराम विवेकशील हैं । इसलिए वे रावण को बार-बार सावधान कर रहे हैं । लेकिन जब मनुष्य काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत हो जाता है, तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । लोभ के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत छोटा हो जाता है, क्योंकि मांगनेवाले का हाथ हमेशा नीचा रहता है, मांगना हमेशा ही कायरता का परिचायक है ।

(मैं अपने मित्रों को हमेशा परामर्श देता हूँ कि किसी से कुछ भी मांगना भीख लेने के समान है । तुम किसी से धन मांगो या अपनी प्रियतमा से प्रेम मांगो । मांगते ही तुम छोटे हो जाते हो । मांगने वाला कभी स्वाभिमानी व्यक्ति नहीं बन पाता । इसलिए मेरा व्यक्तिगत परामर्श तो यह है कि परमात्मा का आशीर्वाद भी स्वाभिमान पूर्वक मांगना चाहिए । क्योंकि मांगना हर हालत में कायरता है । और कायर व्यक्ति या किसी से कुछ मांगने वाला व्यक्ति कभी इतिहास पुरुष नहीं बनता है । रावण प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम की भिक्षा मांगता था । यह उसके चरित्र का कमजोर पक्ष है । रामचरितमानस की कथा हमारे लिए आदर्श कथा इसलिए है कि इन कथाओं के अच्छे-बुरे गुण से हमारा जीवन प्रभावित होता है । जो व्यक्ति इतनी चेतावनी के बाद भी सावधान न हो, उसका तो नाश होना आवश्यक है ही ।)

समुद्रतट पर इस तरह मंत्रणा हो रही है कि अब रावण को कैसे समझाया जाए । इतना कुछ हो जाने पर भी अगर रावण यदि सावधान हो जाए, तो युद्ध टाला जा सकता है । क्योंकि युद्ध का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता । युद्ध मनुष्य का स्वाभाविक गुण नहीं है । युद्ध, क्रोध, काम, लोभ ये सब क्षणिक आवेश हैं । इसी आवेश के कारण अनर्थ हो जाता है । समस्याओं का समाधान बातचीत से किया जा सकता है । युद्ध से तो पाशविक प्रवृत्ति वाले लोग जय-पराजय का निर्णय करते हैं । कहा भी जाता है **"शत्रुता ऐसी करो कि समझौता हो जाने पर भी शर्मिन्दा न होना पड़े ।"**

श्रीराम चाहते हैं कि रावण को समझाकर युद्ध को रोका जाय, लेकिन अपने उन्माद के कारण रावण समझ नहीं पा रहा है । राम की चिन्ता देखकर जाम्बवन्त ने कहा- "हे मर्यादापुरुषोत्तम! मेरा विचार है कि एक बार फिर रावण को समझाने का प्रयास किया जाए । इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस बार महापराक्रमी अंगद को उसे समझाने हेतु भेजा जाए ।"

चौ०

मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा । दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥

यह सुनकर श्रीराम ने अंगद को लंका भेजे जाने का आदेश दिया ।

चौ०

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ । परम चतुर मैं जानत अहऊँ ॥
काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकहीं सोई ॥

श्रीराम ने कहा- "हे अंगद! तुम स्वयं चतुर हो, राजनीति और धर्मनीति को जानते हो, तुम दूत बनकर रावण को समझाने जाओ और अपने बल, बुद्धि और विवेक से वहाँ की स्थिति देखना और जो तुम्हें उचित लगे वैसा निर्णय करना । दूत का धर्म है कि अपने स्वामी की बातों का उचित-अनुचित विचार कर दूसरों को बताये । क्योंकि दूत अगर विवेकशील है, तो बिगड़ी हुई बात को भी अपनी वाक्पटुता से बना दे सकता है । उसे निर्णय करने की समझ होनी चाहिए ।" क्रोध में कहे गये वचनों को भी वह कोमल वाणी में बोल सकता है । इसलिए दूत को बहुत ही समझदार होना चाहिए । उद्दंड दूत बने हुए काम को भी बिगाड़ देता है । दूत का अर्थ है-

भरोसा। उसके निर्णय से दो व्यक्तियों में प्रेम हो सकता है और शत्रुता भी हो सकती है।" इसलिए श्रीराम ने बाली कुमार युवराज अंगद को दूत बनाकर भेजने का निर्णय लिया। युवराज अंगद के लिए श्रीराम का दूत होना बड़े महत्त्व की बात है। अंगद कोई साधारण सैनिक नहीं है। वह किष्किन्धा का भावी सम्राट् है। ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को दूत बनाना एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है। श्रीराम का आदेश पाकर-

चौ०

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥

अंगद रावण के सभा की ओर गए। अंगद को देखकर लंका के छोटे-बड़े वीर उसे पकड़ने के लिए दौड़े। उनमें से रावण का एक बेटा भी था। अंगद ने अपने ऊपर आक्रमण करने वाले राक्षसों को पीट-पीटकर अधमरा कर दिया। अंगद की मार से रावण का एक बेटा तो वहीं मर गया। यह देख पूरी लंका में खलबली मच गई। हनुमान्‌जी के भय से तो वे सब कांप ही रहे थे कि अंगद कालपुरुष बनकर रावण की सभा में प्रवेश किया। जाते ही अंगद ने रावण को ऊपर से नीचे तक देखा। अंगद को लगा कि यह तो काजल का पहाड़ है। अंगद को देखते ही सभी सभासद् उसके भय और उसके सम्मान में खड़े हो गए।

रावण ने अंगद को देखते ही पूछा- "अरे बन्दर! तुम कौन हो?" उसकी बात सुनते ही अंगद ने कहा- "मैं प्रभु श्रीराम का दूत और महापराक्रमी बाली का पुत्र हूँ। मेरे पिता कभी तुम्हारे मित्र हुआ करते थे। इसलिए मैंने सोचा कि तुम्हें समझाऊँ, क्योंकि तुम महान कुल में उत्पन्न हुए हो। भगवान् शिव के भक्त भी हो। लेकिन तुम बड़े अभिमानी हो। इसलिए हे रावण! तुम अपने दाँतों में तिनका दबाओ, अपने सभी सखा-कुटुम्ब के साथ हाथ जोड़कर सीता माता को आगे करके प्रभु श्रीराम के पास निर्भय होकर चलो।"

चौ०

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥

अंगद की बात सुनकर रावण क्रोध में पागल हो गया। उसने कहा-

चौ०

रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥

"अरे बन्दर, तुम किस बाली की बात कर रहे हो ।" बाली का नाम सुनते ही रावण थोड़ा सकुचा गया ।

चौ०

अंगद बचन सुनत सकुचाना । रहा बाली बानर मैं जाना ॥

फिर रावण ने कहा- "बाली नाम का एक वानर था, जिससे कभी हमारी भेंट हुई थी । लेकिन तुम एक तपसी के दूत कैसे बन गये । अच्छा, एक बात बताओ कि बाली अब कैसे हैं?" यह सुनते ही अंगद ने कहा-

चौ०

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥

अंगद ने कहा- "रावण! दस दिन बाद तुम स्वयं बाली के पास जाना और गले लगाकर हाल-समाचार पूछ लेना ।"

अंगद ने कहा- "रावण! मैं श्रीराम का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूँ । तुम्हें इतनी समझ नहीं है कि तुम मुझे बैठने का आसन देते, मेरा स्वागत करते, क्योंकि तुम जान चुके हो कि मैं तुम्हारे मित्र का बेटा हूँ । तुमने तो अभी तक मुझे बैठने को भी नहीं कहा है । चलो मैं स्वयं अपनी पूंछ का आसन बनाकर बैठ जाता हूँ ।" अंगद अपनी पूँछ को गोल घुमाकर मोढ़ा बनाया और उसके ऊपर बैठ गया । अंगद का मोढ़ा रावण के आसन से बहुत ऊँचा हो गया । तब अंगद ने रावण से कहा- "अब बताओ, तुम क्या कहना चाहते हो? तुमने कहा है कि मैं तपसी का दूत हूँ । अरे मूर्ख! जिसे तुम तपसी कहते हो, उसकी तो ब्रह्मा, शिव और देवता तक सेवा करते हैं ।"

चौ०

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ॥

अंगद की बात सुनकर रावण और क्रोधित हो गया और कहा- "अरे बन्दर! मैं नीति और धर्म जानता हूँ । इसीलिए मैं तुम्हें सजा नहीं दे रहा हूँ । अन्यथा हमारे

सैनिक तुम्हारे सिर को धड़ से अलग कर देते । अगर तुम बाली के पुत्र नहीं होते, तो तुम अब तक जीवित नहीं बचते । मैं तो सोच रहा था कि तुम मेरी शरण में आए हो । मैं तुम्हें अपना प्रधान सेनापति नियुक्त करता हूँ । अभी भी समय है । अगर जीवन में सुख, ऐश्वर्य और भोग चाहते हो तो, बताओ मैं तुम्हें अभी नियुक्त करता हूँ । क्योंकि तुम्हारे जैसा निर्भीक व्यक्ति की लंका में जरूरत है । तुम जिसके दूत बनकर आए हो, वह खुद नारी-विरह में आँसू बहा रहा है । तुम्हारा सुग्रीव डरपोक है, मेरा भाई विभीषण दिन भर राम-राम कहता रहता है । एक जाम्बवन्त था जो बूढ़ा हो गया है। नल-नील कलाकार है । हाँ एक बन्दर है जिसने लंका को जलाया था, लेकिन वह अकेला क्या करेगा?" यह सुनते ही अंगद ने कहा- "अच्छा! उसने लंका को जलाया था? यह बात तो हम नहीं जानते-। लेकिन वह तो हमारे दल का मात्र एक छोटा बन्दर है । हो सकता है यहाँ आकर उसने कोई उत्पात किया हो । लेकिन इस बात पर कोई भरोसा नहीं करेगा, क्योंकि वह तो सबसे कमजोर है ।"

दरअसल, अंगद यह कहना चाहते हैं कि "बिना प्रभु श्रीराम के आशीर्वाद से कोई भी व्यक्ति बलवान नहीं होता । और जिस व्यक्ति को आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है, वह ऐसा छोटा-मोटा काम नहीं करता । जिस बन्दर के बारे में तुम कह रहे हो, वह तो सुग्रीव का सेवक है । वह तो यहाँ सीता माता का पता लगाने आया था । खैर, वह तो छोटा-मोटा काम करता ही रहता है । लेकिन अरे मूर्ख रावण! जब एक छोटा बन्दर बिना प्रभु की आज्ञा से लंका को जला दिया, तो दूसरे वीर जब यहाँ आएंगे तो तुम्हारा क्या हाल होगा । एक छोटे बन्दर से तुम भयभीत हो, तो हमारे वीर वानर जब यहाँ आएंगे तो उनसे कौन लड़ेगा? लेकिन मुझे आश्चर्य है कि जब एक बन्दर ने तुम्हारी लंका को तहस-नहस कर दिया, तो जब सभी महावीर यहाँ एकत्र होंगे, तो उनकी मार से तुम्हारी लंका पाताल में चली जाएगी । मुझे तो लगता है कि अगर तुम बुद्धिमान होते, तो अब तक प्रभु श्रीराम के शरण में चले गये होते ।" यह सुन रावण ने अंगद को डांटते हुए कहा- "रे दुष्ट बन्दर! मुझे क्रोध मत दिलाओ ।" क्रोध की बात सुनकर अंगद ने रावण को बीच में रोकते हुए कहा- दसग्रीव! जो व्यक्ति एक साधारण बन्दर के वेग को रोक नहीं सका, उसने अशोक-वाटिका उजाड़ दी, तुम्हारे पुत्र को मार दिया, लंका को जला दिया, फिर भी न तुम्हें क्रोध आया, न शर्म लगी और अब हेंकड़ी दिखा रहे हो ।"

अंगद की बात सुनकर रावण ने कहा– "तुम्हारे ऐसा कुलघातक पुत्र कैसे बाली के घर पैदा हो गया? तुम तो अपने बाप को ही खा गये और जिसने तुम्हारे बाप को मारा, आज तुम उसी के दूत बने बैठे हो। तुम्हें शर्म नहीं आती?" यह सुन अंगद ने कहा– "मुझे तो शर्म आती है, क्योंकि मैं ऐसे व्यक्ति के सामने बैठा हूँ, जो मेरे पिता की काँख में कितने दिनों तक दबा पड़ा था। मैं उसी बाली का बेटा हूँ जिसके सामने तुम हाथ जोड़कर, गिड़-गिड़ाकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भीख मांग रहे थे। अरे रावण! एक बात अभी मुझे समझ में नहीं आ रही है कि तुम कौन रावण हो? मैंने सुना है कि एक रावण को सहस्रबाहु ने मनोरंजन के लिए पकड़ रखा था।"

यह सुनते ही रावण ने कहा– "अरे मूर्ख! तुम रावण को नहीं जानते! जिसका यश दिक्-दिगन्त तक फैला हुआ है। जिसने अपनी भुजाओं पर कैलाश पर्वत को उठा लिया था और जिसने महादेव को अपना सिर अर्पण कर दिया था। मेरी भुजाओं के बल को समस्त संसार के लोग जानते हैं। जिसके चलने से पृथ्वी डोलती है, तुमने उस रावण को नहीं सुना है–

दो०

तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥

यह सुनते ही अंगद को क्रोध आ गया। अंगद ने कहा– "रे मूर्ख! तुम प्रभु श्रीराम को मनुष्य कहते हो, वे तो परमात्मा हैं। जिन्होंने परशुराम को क्षण मात्र में परास्त कर दिया। मेरे पिता बाली को एक बाण से ही मार दिया। जो भगवान् शिव का अमरत्व प्राप्त माला धारण करते थे।"

अंगद ने कहा– "जिस प्रभु श्रीराम ने महापराक्रमी बाली का वध किया, तुम उसे मनुष्य कहते हो। अरे, तुम्हें तो यह भी पता नहीं कि क्या गंगाजी सामान्य नदी है। कामधेनु क्या साधारण गाय है, कल्पवृक्ष और सामान्य वृक्ष में तुम्हें कोई अन्तर नहीं लगता। अरे तुम तो गरुड़जी को पक्षी, काक भुशुण्डी को कौआ, शेषनाग को साँप मानते हो। चिन्तामणि को पत्थर मानते हो और परमात्मा की भक्ति को भी सामान्य मानते हो। तुम्हें तो हीरा ओर कोयला में अन्तर भी नहीं समझ में आता।

जिस महावीर ने तुम्हारी लंका को तहस-नहस कर दिया, उसे तुम साधारण वानर मानते हो । तुम एक साधारण मनुष्य हो, कामी और व्यभिचारी हो, दूसरे की स्त्री पर बुरी नज़र रखते हो, तुम्हें तो एक पतिव्रता स्त्री और साधारण स्त्री में भेद का भी ज्ञानं नहीं है । अरे रावण! आज जिस सिर पर तुम मुकुट धारण किये हो, तुम्हारे उसी सिर से साधारण बन्दर और भालू गेंद खेलेंगे ।" यह सुनकर रावण और क्रोधित हो गया । रावण ने गर्जना करते हुए कहा- "अरे मूर्ख वानर! मैं अब तक तुम्हें क्षमा करता रहा हूँ और तुम बकवास किए जा रहे हो । तुम्हें पता नहीं है मेरा भाई कुम्भकर्ण और पुत्र मेघनाद महाबलशाली हैं और मेरा बल तो समुद्र की तरह अथाह है । अगर तुम्हारा स्वामी बलवान है, तो बार-बार दूत क्यों भेजता है? (मूर्ख व्यक्ति समझौता के प्रस्ताव को कायरता समझता है) अरे बन्दर! मैंने जब अपना मस्तक भगवान् शिव को चढ़ाया था, तब मैंने अपनी ललाट पर विधाता का यह लिखा हुआ रूप देखा कि मेरी मृत्यु किसी मनुष्य के हाथ से होगी । यह देख मैं खूब हंसा था । ब्रह्मा की मूर्खता पर मुझे हंसी आ रही थी ।"

रावण की बात सुनकर अंगद ने कहा- "माया का खेल दिखाने वाले सड़कों पर खूब तमाशा दिखाते हैं । इन्द्रजाल करने वाले शरीर क़ो चीर-फाड़ भी कर देते हैं तो क्या इससे वह वीर हो जाता है? अब तक तूने अपनी काफी बड़ाई कर ली, मेरी एक बात सुन । प्रभु श्रीराम कहते हैं कि सियार को मारने से सिंह को यश नहीं मिलता । इसलिए हमारे प्रभु तुम्हें बार-बार चेतावनी दे रहे हैं । जिस प्रकार चींटी को मारकर हाथी बलशाली नहीं बनता, वह चींटी को भागने का मौका देता है । फिर भी वह न भागे तो उसके पाँव के नीचे दबकर मर जाता है । जो व्यक्ति स्वयं मरना चाहता हो, उसे कौन बचा सकता है ।अरे रावण! अगर तुम इतना बलशाली हो, तो सीता माता का हरण एकान्त में क्यों किया? प्रभु श्रीराम के सामने जाते, तुमने तो कायर की तरह चोरी से पराई स्त्री का हरण किया है । तुम्हें तो नरक में भी जगह नहीं मिलेगी । तुम्हारे जैसे पापी को तो मैं अभी सजा दे सकता हूँ । यहाँ मैं दूत बनकर आया हूँ, अन्यथा तुम्हें पीटकर और सीता माता को साथ ले जाता । तुम्हारे जितने भी सैनिक खड़े हैं, उन्हें मैं घसीट-घसीटकर मार सकता हूँ । तुम्हें तो शास्त्र का ज्ञान है, लेकिन लोभ के कारण तुम्हारा सारा ज्ञान नष्ट हो चुका है । लोभी और कामी पुरुष का अपना कोई स्वाभिमान नहीं होता । रोगी, क्रोधी, प्रभु विरोधी, संतों का विरोधी, अपना पेट भरने वाला पेटु, दूसरे की निन्दा करने वाला और पापी, ये सब जीवित मुर्दे के समान है।"

यह सुन रावण क्रोध में लाल हो उठा और उसने कहा– "आज तक मेरे सामने देवता और गंधर्व भी आँख उठाकर बात नहीं करते हैं, तुम किसके बल पर इस तरह प्रलाप कर रहे हो? तुम्हारा स्वामी, जिसके बल पर तुम इतना बोल रहे हो, वह इतना गुणहीन है कि उसे निकम्मा समझकर उसे वन में निकाल दिया गया है। दूसरा, उसकी स्त्री का हरण हो गया है और तीसरा मेरे डर से वह रात में सोता भी नहीं होगा।"

दो०

अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥

श्रीराम की निन्दा सुनते ही अंगद क्रोध में आ गया।

चौ०

जब तेहिं किन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥

अपने प्रभु की निन्दा सुनते ही अंगद उछलकर जमीन पर खड़े हो गये और एक मुक्का जमीन पर मारा। मुक्का लगते ही पृथ्वी डोल गई और सभा में बैठे सभासद् औंधे मुंह गिर पड़े। मुक्का के प्रहार से रावण का सिंहासन डोल गया।

रावण भी अपने सिंहासन से औंधे मुंह गिरा, जिससे उसका मुकुट जमीन पर गिर गया। शर्म के मारे रावण ने जल्दी में दो चार मुकुट अपने सिर पर रख लिया, लेकिन चार मुकुट अंगद ने वहीं से राम के शिविर की ओर फेंक दिया। राम के शिविर की ओर मुकुट को आते देख वानर सेना में खलबली मच गई। वानर सोचने लगे कि कहीं कोई उल्कापात तो नहीं हुआ या रावण ने चार बज्र तो नहीं चला दिया है। बन्दरों को डरकर भागते देख श्रीराम ने कहा– "तुमलोग डरो मत। यह रावण का मुकुट है जिसे अंगद ने फेंका है।" हनुमान्‌जी ने उस मुकुट को पकड़ लिया और श्रीराम के सामने रख दिया।

विशेष प्रसंग

(रावण के चार मुकुट अंगद जी ने क्यों फेंका? इसके सम्बन्ध में संतों का मानना है कि अंगद ने रावण की पूरी जाँच की, जाँच से पता चला कि रावण से निपटने के

लिए साम, दाम, दण्ड, और भेद ये चार प्रकार की विधि बताई जाती है । इन्हीं चार विधियों में से पहले एक का प्रयोग होता है, फिर दूसरे का । अंगद ने सोचा कि रावण पूरी तरह मदान्ध हो गया है, इस पर इन चार विधियों का प्रयोग करना पड़ेगा । इसीलिए अंगद ने रावण के चार मुकुटों को फेंका ।)

फिर अंगद ने कहा- "अरे दुष्ट रावण! तुम कुएं में गिरकर मर क्यों नहीं जाते ।"

चौ०

रे त्रिय चोर कुमारग गामी । खल मल रासि मंदमति कामी ॥

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि कालबस खल मनुजादा ॥

"अरे रावग! स्त्री चोर और कुमार्ग पर चलने वाले तुम तो बीमार हो गये हो । दुष्ट, पापी, मंदबुद्धि और कामी को बीमार कहते हैं । यदि कफ, पित्त और वायु में से कोई किसी को हो जाए तो वह बीमार हो जाता है । लेकिन तुम्हें तो एक ही साथ कफ, पित्त और वायु तीनों रोग हो गया है । इसी को सन्निपात कहते हैं । एक बीमारी से तो मनुष्य को बचाया जा सकता है, लेकिन जब एक साथ तीनों हो जाए, तो उसे बचाना मुश्किल हो जाता है । तुम तो जीवित मूर्दे के समान हो गये हो । आँख रहते ही तुम प्रभु श्रीराम को मनुष्य कहते हो । लगता है तुम्हारी आँख, नाक, कान, बुद्धि सब नष्ट हो गई है । अब तुम्हें कोई नहीं बचा सकता । मेरा मन तो करता है कि इस गुलर के फल के समान लंका को तुम्हारे सहित डूबा दूँ । गुलर का फल बन्दरों को अच्छा भी लगता है ।" यह सुन रावण ने कहा- "मैं आश्चर्य में हूँ कि बाली ने कभी भी इस तरह गाल नहीं बजाया, लेकिन तुम लबरा की तरह बोल रहे हो । यह सुनते ही अंगद ने फिर गर्जना कर भरी सभा में चुनौती दी कि "तुम मुझे लबरा कहते हो, तो सुनो!"

चौ०

जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मय हारी ॥

"अरे रावण! अगर मैं लबरा हूँ तो सुन! मैं तुम्हारी सभा में अपना पाँव रोपता हूँ, अगर कोई वीर है, तो मेरे पांव को डिगा कर दिखा दे । अगर ऐसा किसी ने कर दिया तो, मेरी प्रतिज्ञा है कि तुम्हें मारकर श्रीराम तो सीता सहित लौट जायेंगे, परन्तु मैं यहाँ अपने आप को हार जाऊँगा ।" (कई लोग इस चौपाई के सम्बन्ध में कहते हैं कि अंगद दूत था और दूत को क्या अपने स्वामी के पत्नी को हारने का अधिकार है?

यहाँ ऐसी बात नहीं है । चौपाई में स्पष्ट लिखा है कि **"फिरहिं रामु सीता"** और **"मय हारी"** । राम और सीता तो लौटेंगे ही, मैं अपनी हार स्वीकार कर लूँगा ।)

अंगद की प्रतिज्ञा सुनकर सभी राक्षस पाँव को हिलाने दौड़े । लेकिन किसी ने पाँव को डिगाया तक नहीं । तब मेघनाथ पिता की आज्ञा से पाँव को उखाड़ने के लिए पहुँचा ।

चौ०

झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरू नाई ॥

मेघनाथ ने भी पाँव हिलाने का काफी प्रयास किया, लेकिन अंगद का पांव पहाड़ के तरह अडिग रहा । यह देख पूरी सभा में अंगद का भय व्याप्त हो गया । जब मेघनाथ सिर झुकाकर बैठ गया, तो रावण स्वयं अंगद का पाँव उखाड़ने आया ।

चौ०

कपि बल देखि सकल हियँ हारे । उठा आपु कपि कें परचारे ॥

अंगद बीच में पाँव जमाये खड़ा है और बलवान राक्षसों को परचारे (ललकार) रहे हैं । रावण को अपनी लघुता पर बड़ा खेद हुआ । वह स्वयं पाँव उखाड़ने चला । रावण ने ज्योंही अंगद के पाँव की ओर हाथ बढ़ाया ।

चौ०

गहत चरन कह बालिकुमारा । मम पद गहें न तोर उबारा ॥

अंगद ने कहा– "ऐ रावण! मेरा पाँव पकड़ने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम श्रीराम की शरण में जाओ, वही तुम्हारा कल्याण करेंगे ।"

चौ०

गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥

अंगद की बात सुनकर रावण शर्म के मारे लाल हो गया और लौट गया ।

(एक संत ने मुझसे एक दिन पूछा था कि "अगर रावण अंगद का पाँव जमीन से उखाड़ देता, तब क्या होता?" इस पर मैंने उत्तर दिया था– "वहाँ अंगद का पाँव नहीं था, श्रीराम की शक्ति थी । अगर श्रीराम की शक्तिपूर्ण पाँव को रावण उखाड़ लेता, तो इससे राम की महिमा घटती । दूसरी बात यह है कि रावण अंगद के पिता

का मित्र था, वह उसके पिता समान था। इसलिए अंगद ने सोचा कि पिता समान व्यक्ति से पाँव छुआना उचित नहीं है। तीसरी बात यह है कि रावण अगर पाँव उखाड़ लेता, तो अंगद ने तो स्वयं कहा था कि मैं हार जाऊँगा। पिता तुल्य व्यक्ति से हार जाने में अंगद की कोई शिकायत भी नहीं होती। इसलिए यह प्रश्न उचित नहीं है। सुग्रीव भी तो रावण से हारकर लौट आया था। अपने से बड़ों से हारने में शर्म की कोई बात नहीं है।")

रावण को शर्म के मारे लौटकर सिर झुकाये बैठे देख माता पार्वती ने भगवान् शिव से इसका कारण पूछा- "रावण के समान त्रिलोक विजेता की ऐसी दुर्गति कैसे हुई?" इस पर भगवान् शिव ने कहा-

चौ०

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥

तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरइ॥

भगवान् शिव ने कहा- "हे पार्वती! जो परमात्मा इस जगत् का प्राण है, जो तृण को बज्र बना सकता है और बज्र को तृण बना सकता है, उसका दूत क्या नहीं कर सकता। परमात्मा का आशीर्वाद जिसे प्राप्त हो जाता है, वह असम्भव काम को भी पूरा कर लेता है।" अंगद का पाँव जब कोई डिगा नहीं सका, तो अंगद ने रावण से कहा- "अरे रावण! अभी भी समय है, चेत जाओ और प्रभु श्रीराम की शरण में चले जाओ।" लेकिन रावण नहीं माना।

तब अंगद ने कहा- "रावण! अब तुम्हारा नाश निश्चित है, क्योंकि तुम महा अभिमानी बन गये हो। जिसके दूत का पाँव तुम्हारे बलवान राक्षस डिगा नहीं सके, अगर वह स्वयं यहाँ आ जाएगा तो तुम्हारी क्या दुर्गति होगी?" कहा जाता है कि मनुष्य पर जब नाश छा जाता है, तो पहले उसकी बुद्धि खराब होती है, जिससे वह उल्टा-पुल्टा काम करने लगता है और फिर उसका नाश हो जाता है। इसीलिए कवि ने कहा है-

"जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मिट जाता है।" और गोस्वामीजी कहते हैं-

चौ०

जाके मति भरम होई खगेसा। सो कह पश्चिम उगहि दिनेसा॥

जब व्यक्ति को दिशाच लग जाता है तो, वह कहता है कि सूर्योदय पश्चिम की ओर हो रहा है। आज भी गांवों में कहा जाता है कि भगवान् अगर किसी कुकर्मी को सजा देना चाहता है, तो उसकी मति को फेर देते हैं। स्वयं किसी को सजा नहीं देते। इस कारण वह ऐसा काम कराने लगते हैं कि काम के दुष्परिणाम से तड़पने लगता है। एक कहावत है-

विप्र टहलुआ, चिक, धन, ओ बेटी के बाढ़।
ताहु से धन ना घटे, तो करो बड़ों से राड़॥

ब्राह्मण अगर नौकर हो, बकरी-खस्सी का व्यापार हो और घर में विवाह योग्य कई बेटियाँ हो, तो ऐसे लोगों का धन स्वतः नष्ट हो जाता है। और इससे भी धन न घटे, तो अपने से बड़ों से लड़ाई शुरू कर देने पर धन स्वतः नष्ट हो जाता है।

रावण, अंगद के समझाने पर नहीं माना और सभा से उठकर अपने महल में चला गया। वहाँ मंदोदरी ने रावण को समझाया- "हे नाथ! पहली बार सीता हरण के समय लक्ष्मण के द्वारा खिंची गई रेखा को आप लांघ नहीं सके और आज एक साधारण बन्दर का पांव आपके वीर राक्षस डिगा नहीं सके। पुत्र मेघनाथ, जो पूरे संसार में अपने बल के लिए प्रसिद्ध है, वह भी अंगद का पांव डिगा नहीं सका। अब तो आपको मान लेना चाहिए, इस संग्राम में आप कैसे जीतेंगे?"

चौ०

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥

"हे नाथ! श्रीराम के बल को आप कई बार देख चुके हैं। अगर सीता आपको बहुत प्रिय लग रही है, तो धनुष यज्ञ के समय आपने सीता को जीता क्यों नहीं? इन्द्र के पुत्र जयन्त की आँख फोड़कर श्रीराम ने उसे छोड़ दिया। आपकी बहन सूर्पणखा के कान-नाक लक्ष्मण ने काट लिया, फिर भी आप नहीं चेते। श्रीराम ने विराध, खर, दूषण एवं बाली को एक बाण में मार दिया और जिसने खेल-खेल में ही विशाल समुद्र को बांध लिया। आज उसी का दूत आप से समझौता करने आया था और आप उस

समझौता को ठुकरा रहे हैं। अब तो लगता है कि हम सबों का नाश होकर ही रहेगा। हे नाथ! अब भी समय है, चेत जाइए। अन्यथा भीषण परिणाम होगा।"

चौ०

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥

परमात्मा डण्डा लेकर किसी को नहीं मारता। पहले उसका धर्म, बल, बुद्धि और विचार का हरण कर लेता है, जिससे स्वयं उसका नाश हो जाता है।

इधर अंगद अपने शिविर में लौट आया, श्रीराम को प्रणाम किया। श्रीराम ने उसे अपने निकट बैठाया। श्रीराम ने पूछा- "अंगद! रावण के चार मुकुट तुमने भेजा था, उसका क्या अर्थ है?" अंगद ने कहा- "राज शासन, साम, दाम, दण्ड और विभेद से चलता है। यह राजा पर निर्भर है कि कब किस नीति का अनुसरण करें।" श्रीराम ने अपने शत्रु रावण को पहले समझाने का प्रयास किया, अगर समझाने से शत्रु समझ जाए तो, लड़ाई टल जाती है। साम का अर्थ होता है- कह सुनकर शत्रु से अपनी बात मनवा लेना, दाम का अर्थ होता है- बाँधना, अपने वश में करना, दण्ड का अर्थ है कि उसे दण्ड देना और अपने विवेक से काम करना। इसलिए अंगद ने कहा कि रावण जैसे अविवेकी पर चारों नीतियों का प्रयोग करना होगा। फिर अंगद ने कहा- "प्रभु! रावण विवेक खो बैठा है, इसलिए धर्म उसके पास नहीं है। धर्म के अभाव में वह पशु बन गया है।" इस तरह अंगद ने रावण की सभा का पूरा विवरण श्रीराम को बताया। अंगद ने श्रीराम से निवेदन किया- "हे प्रभु! रावण के पास अब दूत मत भेजिए। क्योंकि रावण समझौता के प्रस्ताव को हमारी कमजोरी समझ रहा है। विवेकशील व्यक्ति ही शान्ति के प्रस्ताव का सम्मान करता है।"

यह सुन श्रीराम ने कहा- "अंगद! यह धर्मनीति है कि किसी से लड़ाई शुरू करने से पहले लड़ाई के परिणाम से उसे अवगत करा देना चाहिए। शक्तिशाली व्यक्ति को अकारण शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। इससे अहंकार पैदा होता है और अहंकारी व्यक्ति कभी कोई युद्ध नहीं जीत सकता। रावण छोटी-छोटी लड़ाइयों में विजयी बनकर अहंकारी हो गया है। विजयी व्यक्ति को विनीत बन जाना चाहिए। मैंने उसे समझाने का प्रयास इसलिए किया कि युद्ध होने पर लंका के निरपराध लोग मारे जायेंगे। भूल कर रहा है रावण और सजा भोगेगी प्रजा। राजा की मूर्खता से प्रजा को सजा नहीं मिलनी चाहिए। लेकिन रावण लंका का मुखिया है, उस पर जब

आक्रमण होगा, तो अकारण वहाँ की प्रजा मरेगी । वहाँ की प्रजा का इतना ही दोष है कि वह यह जानते हुए कि उसका राजा अनाचारी है, अपने राजा की ओर से लड़ने को तैयार है । अनाचारी का साथ देने वाला भी परिणाम का शिकार होता है । ऐसी स्थिति में वहाँ के लोगों को चाहिए कि वे अपने राजा को समझाये और युद्ध को रोके, क्योंकि युद्ध में पूरी लंका का नाश हो जाएगा । एक व्यक्ति की मूर्खता के कारण पूरे देश का नाश उचित नहीं है । इसलिए हे अंगद! भवितव्यता को कौन रोक सकता है? इस प्रकृति में जो कुछ भी होना है, वह होकर ही रहता है । प्रत्येक वस्तु अपनी गति पर चल रही है । इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता । हम सब केवल सुधारने का प्रयास कर सकते हैं। होना न होना प्रकृति के नियमों के अधीन है । हे अंगद! इस संसार में अकस्मात् कुछ भी नहीं होता, सब पूर्व निर्धारित योजना से होता रहता है । इसलिए तुम्हें रावण की मूर्खता पर चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है । शांति प्रस्ताव भेजकर मैं स्वयं संतुष्ट हो जाना चाहता हूँ कि आक्रमण के पहले मैंने उसे समझाया । लड़ाई के पश्चात् मेरे मन में यह खेद न रहे कि मैंने उसे सम्भलने का मौका नहीं दिया । शत्रु को पहले समझाओ, उसे संभलने का मौका दो, अगर न सम्भले तब आक्रमण करो । रावण मूर्ख है, अब तक छोटा-मोटा युद्ध जीतता रहा है, उसी से उसका मन बढ़ गया है । यही कारण है कि वह अपनी पत्नी मंदोदरी, अपने नाना माल्यवान, भाई विभीषण, हनुमान् और तुम्हारे जैसे व्यक्ति के समझाने पर भी वह नहीं समझ पा रहा है । वह अपने बुजुर्गों और मित्रों को भी अपना दास मानता है, यह उचित नहीं है । मैं अब तक विभिन्न उपायों से उसे समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। जिस प्रकार समुद्र को भी पहले मैंने समझाया । जब वह नहीं माना, तभी उसको अपनी शक्ति का बोध कराया। क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति को अकारण शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए । शक्ति उसी के पास शोभा पाती है, जो विनीत हो ।"

श्रीराम अंगद को समझा रहे हैं, उसी समय सुग्रीव वहाँ आते हैं और कहते हैं- "हे प्रभु! रावण ने हमारे सभी सन्धि प्रस्तावों को ठुकरा दिया है । अब हमारे पास लंका पर आक्रमण के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है ।" श्रीराम ने सुग्रीव को आदेश दिया कि आप युद्ध-नीति का विचार करें और लंका के विभिन्न द्वारों पर अपनी योद्धाओं को नियुक्त करें । यह आदेश सुनते ही-

चौ०

हरषित राम चरन सिर नावहिं । गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं ॥

लंका पर आक्रमण

सुग्रीव, जाम्बवन्त, हनुमान्, अंगद सबों को पूरी जानकारी थी कि लंका के दुर्ग को पार करना कठिन है । क्योंकि रावण ने समुद्र से हटकर बसी लंका के चारों ओर पानी से भरे हुए बड़े बड़े नाले बनवाये थे । उसके भीतर किले की दीवार थी, जिसको लांघकर लंका में प्रवेश करना असम्भव था । चार प्रवेश द्वार थे, जिसकी सुरक्षा महाबली राक्षस किया करते थे । लेकिन वानरी सेना के ऊपर भी श्रीराम की कृपा थी, इसलिए सभी वानर वीर बिना भय के लंका को घेरने लगे और धीरे-धीरे लंका में प्रवेश कर गये ।

चौ०

जानत परम दुर्ग अति लंका । प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥

दो०

जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव ।
गर्जहिं सिंघनाद कपि भालु महा बल सींव ॥

प्रभु श्रीराम का नाम लेकर वानर सेना लंका को चारों ओर से घेरने लगे । कहा जाता है- "जिस व्यक्ति पर परमात्मा का आशीर्वाद रहता है, वह बड़े से बड़ा काम हंसते-खेलते पूरा कर लेता है ।" वानर सेना को लंका की विशालता का कोई भय नहीं था । क्योंकि सबों के मन में श्रीराम की विराटता पर पूरा भरोसा था । इसलिए अल्पशक्ति वाला वानर भी परिन्दे की तरह आकाश में उड़कर लंका को सभी दिशाओं से घेरने लगे । और इधर लंका के राक्षस बड़े-बड़े गुम्बजों और दीवारों पर चढ़कर इन वानर सेनाओं से लड़ने के लिए तैयार हो गये । वानर सेनाओं पर जब पत्थरों से प्रहार होने लगा, तो वानर बड़ी चालाकी से उन पत्थरों को पकड़कर फिर उसे राक्षसों की ओर ही फेंकने लगे ।

चौ०

निसिचर सिखर समूह ढहावहिं । कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥

वानर सेना किले के ऊंपर बैठे राक्षसों पर कूद पड़ते और उन्हें पकड़कर जमीन पर ऐसे गिरते कि राक्षस नीचे और वानर ऊपर, जिससे दबकर राक्षस मर जाते । देखते-देखते पूरे किले पर वानर सेना दिखाई पड़ने लगी ।

चौ०

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा । मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा ॥

चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर । जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥

वानर सेना जब लंका के सभी दुर्ग के ऊपर चढ़कर राक्षसों को मारने लगे, तो पूरी लंका में हाहाकर मच गया ।

चौ०

चले निसाचर निकर पराई । प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥

हाहाकार भयउ पुर भारी । रोवहिं बालक आतुर नारि ॥

सब मिलि देहिं रावनहिं गारी । राज करत एहिं मृत्यु हँकारी ॥

रावण को लंका के नर-नारी गाली देने लगे कि हमारे अभागे राजा ने लोभ के कारण लंका की तबाही को निमंत्रण दिया है । हाहाकार सुनकर रावण महल से निकला-

रावणस्तु परं चक्रे क्रोध प्रासादधर्षणात् ।
विनाशं चात्मनः पश्यन् निःश्वासपरमोऽभवत् ॥

रावण ने राक्षस सेना को डांटते हुए कहा- "अरे नीच, इतने दिनों से तुम सभी हमारे राज्य में रहकर सुख भोग रहे थे, अब प्राण बचाने की चिन्ता हो रही है ।" यह सुनते ही राक्षस सेना भय के कारण पुनः लड़ने लगी ।

(युद्ध और प्रेम भय से सम्भव नहीं है । भय के कारण न युद्ध होता है और न प्रेम किया जाता है । रावण की सेना भय के कारण युद्ध कर रही है, क्योंकि युद्ध न करने पर रावण उसे मार देगा और दूसरी ओर युद्ध करता है तो, वानर सेना उसे मार देगी । राक्षस सोचते हैं कि- **"दुइ भाँति भइ मरनि हमारी ।"** यह जानकर राक्षस प्राण का भय त्यागकर लड़ने लगे । इसी बीच राक्षसों के सेनापति राक्षसों के उत्साह को बढ़ाते हुए स्वयं रणभूमि में आगे बढ़ने लगा । इससे राक्षसों का उत्साह काफी बढ़ गया, वे बहादुरी के साथ वानर सेना पर टूट पड़े । राक्षसों ने विभिन्न प्रकार के हथियारों से आक्रमण शुरू कर दिया । उनके आक्रमण से वानर सैनिक इधर-उधर भागने लगे ।)

चौ0

भय आतुर कपि भागन लागे । जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥

वानर दल में खलबली मच गई । उस समय मेघनाथ से हनुमान्जी लड़ रहे थे । हनुमान्जी ने पहाड़ से मेघनाथ पर प्रहार किया । हनुमान्जी के प्रहार से मेघनाथ मूर्छित हो गया । उसके बाद हनुमान्जी किले पर चढ़ गये, तो उनको किले पर चढ़े देख अंगद और नल, नील भी किले पर चढ़ गये । लंका के पश्चिम का द्वार बहुत ही मजबूत था, जिस कारण द्वार तोड़कर लंका के अन्दर प्रवेश करने में वानर सेना को भारी कठिनाई हो रही थी ।

लंका में चार प्रवेश द्वार थे । द्वार के ऊपर के भाग को तो पहले ही हनुमान्जी आग से जला चुके थे, लेकिन द्वार के नीचे का भाग खुल नहीं रहा था । इसी कारण हनुमान्जी ऊपर से कूदकर प्रवेश द्वार बनाये । प्राचीनकाल में राजा अपने नगर की रक्षा के लिए ऐसे ही द्वार बनवाते थे । वानर सेना के उत्पात को देखकर रावण डर गया । तभी हनुमान्जी बड़े-बड़े महलों के खम्भे उखाड़कर राक्षसों पर फेंकने लगे । साथ-साथ प्रभु श्रीराम का गुण गा रहे थे और व्यंग्य से कहते थे- "जो राम को नहीं भजता है, उसकी यही दशा होती है ।" लंका के राक्षस इतने डर गये कि वे आपस में बात करने लगे- "पहले एक वानर आकर लंका को तहस-नहस कर चुका है, अब कई आ गये हैं ।" हनुमान्जी और अंगद बड़े राक्षसों के टांग पकड़कर दूर तक फेंकने लगे । हनुमान्जी और अंगद ने पूरी लंका को दही की तरह मथ दिया । इस तरह दोनों ने मिलकर भयंकर युद्ध किया । लंका के अन्दर हनुमान्जी और अंगद गुम्बजों को तोड़ रहे थे और द्वार के बाहर अन्य वानर सेना राक्षसों से लड़ रही थी । इस तरह शाम हो गई सभी श्रीराम के शिविर की ओर लौटे । प्रभु श्रीराम ने वानर सेना को आशीर्वाद दिया ।

दूसरे दिन जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो दोनों दल बड़े उत्साह से आपस में भिड़ गये । हनुमान्जी के नेतृत्व में जब वानर सेना राक्षसों का संहार करने लगी, तो रावण का बेटा अकम्पन और अतिकाय ने माया का प्रयोग किया । युद्धभूमि में अन्धकार छा गया । जब श्रीराम को यह पता चला, तो उन्होंने एक बाण से माया का नाश कर दिया । इस तरह दिन भर भयंकर युद्ध होता रहा । फिर शाम होते ही सभी अपने शिविर में लौट गये । उधर रावण ने अपने मंत्रियों को बुलाया, सबों ने युद्ध नीति पर विचार

किया । माल्यवान ने रावण को फिर समझाया । लेकिन मेघनाथ ने किसी की बात नहीं मानी । तीसरे दिन जब वानर सेना ने लंका को घेरा तो मेघनाथ स्वयं युद्धभूमि में आ गया । उसने गर्जना करते हुए एक भयंकर बाण वानर सेना पर छोड़ दिया । उसके बाण के सामने एक भी वानर आने का साहस नहीं कर पा रहे थे । देखते-देखते उसने समर-भूमि में प्रलय मचा दिया । तभी हनुमान्‌जी ने एक पहाड़ उखाड़कर दे मारा । पहाड़ के भय से वह आकाश में उड़ गया । उसका सारथी और घोड़ा नष्ट हो गया । मेघनाथ हनुमान्‌जी के निकट नहीं आना चाहता था ।

मेघनाथ-लक्ष्मण युद्ध

क्रोधित मेघनाद श्रीराम के निकट पहुँचा-

चौ०

रघुपति निकट गयउ घननादा । नाना भाँति करेसि दुर्बादा ॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे । कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे ॥

ऐसा हथियार जो हाथ से फेंका जाता हो, उसे अस्त्र कहते हैं और वह हथियार, जिसे हाथ में रखकर चलाया जाता हो, शस्त्र कहलाता है । मेघनाथ अपनी माया को कटते देख और अधिक व्याकुल हो गया । उसने वानर सेना पर और भीषण प्रहार शुरू किया । मेघनाथ की सहायता के लिए कुम्भकर्ण का बेटा कुम्भ और निकुम्भ युद्ध कर रहा था । इधर बाली की पत्नी तारा के पिता एक दल का नेतृत्व कर रहा था । लंका के सभी द्वारों पर एक साथ भयंकर लड़ाई प्रारम्भ हो गई । चारों ओर युद्ध का तांडव शुरू हो गया । प्रलय के समान दृश्य उपस्थित होते देख वानर सेना घबड़ा गई । मेघनाथ का प्रहार वानर सेना पर बढ़ता जा रहा था । यह सूचना जब श्रीराम और लक्ष्मण को मिली कि मेघनाथ वानर सेना का संहार कर रहा है तो, लक्ष्मणजी को क्रोध आ गया । उन्होंने श्रीराम से आज्ञा मांगी, आज्ञा मिलते ही क्रोधावस्था में लक्ष्मणजी दौड़े ।

दो०

आयसु मांग राम कहँ अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ॥

लक्ष्मणजी क्रोधित होकर भगवान् श्रीराम से आज्ञा लेकर युद्ध की ओर दौड़े ।

(यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि लक्ष्मणजी युद्ध के लिए राम से आज्ञा लेकर दौड़े । लेकिन उन्होंने राम से आशीर्वाद नहीं लिया । यहाँ लक्ष्मणजी से भूल हो गई । इधर श्रीराम सोचते हैं, लक्ष्मण ने भूल कैसे कर दी । नियमतः आज्ञा लेकर, प्रणाम कर, आशीर्वाद लेकर ही उन्हें युद्ध में जाना चाहिए । लक्ष्मणजी का यह क्रोध श्रीराम को अच्छा नहीं लगा । क्योंकि क्रोध में मनुष्य विवेक खो देता है । भगवान् न किसी का क्रोध बर्दाश्त करते हैं और न अहंकार । श्रीराम को लगा कि क्रोध में आकर लक्ष्मण मर्यादा भूल गया । प्रभु किसी को माफ नहीं करते । उनका न्याय सबके लिए बराबर होता है । लक्ष्मण ने क्रोध किया और अहंकार में आकर बिना प्रणाम किये मेघनाथ की ओर दौड़े । श्रीराम नहीं चाहते कि उनका सेवक कहीं भी मर्यादा तोड़े । युद्ध के भी तो नियम होते हैं, इसलिए लक्ष्मण की भूल की सजा उन्हें अवश्य मिलनी चाहिए । माता-पिता एवं गुरुजन से आशीर्वाद लेकर ही किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से सफलता मिलती है । इसी कारण लक्ष्मणजी को शक्तिबाण से आहत होना पड़ा ।)

युद्धभूमि में लक्ष्मणजी को जाते देख सतबली वानर, महाबाहु पनस और प्रघस, गज, गवाक्ष, गवै, शरभ और गंधमाधव वानर सेना की रक्षा करने लगे । दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारंभ हो गया । लक्ष्मणजी को युद्धभूमि में आते देख वानर सेना का मनोबल बढ़ गया ।

चौ०

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । कपि जयसील मारि पनि डाटहिं ॥
मारु-मारु धरु-धरु-धरु मारू । सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥

वानरसेना और राक्षस युद्धभूमि में ऐसे लड़ने लगे जैसे समुद्र की दो लहर आपस में टकराती है । यद्ध की भयंकरता को देखकर रावण ने अपनी समस्त सेना को युद्ध में जाने का आदेश दिया । सेनाओं की बाढ़ में पूरी लंका डूब रही थी, रुधिर के प्रवाह से युद्धभूमि लाल हो गया । ऐसा लगता था मानो देवासुर संग्राम हो रहा है । कुछ राक्षस भवन के ऊपर से बानरों पर प्रहार कर रहे थे । इसी बीच श्रीराम स्वयं युद्धभूमि में

पहुँचे और युद्ध में आए राक्षसों का संहार करने लगे । धर्म के पुत्र महाकपि सुषेन ने देखते-देखते हजारों राक्षसों को मार गिराया । इधर मेघनाथ के बढ़ते प्रहार को रोकने के लिए अंगद स्वयं मेघनाथ पर गदा से प्रहार करने लगे। अंगद की गदा के प्रहार को रोकने के लिए मेघनाथ ने भी अंगद पर बज्र के समान अपनी गदा का प्रहार किया। इस आपसी प्रहार में मेघनाथ का रथ और सारथी नष्ट हो गया । इसी बीच राक्षस जम्बूमालि ने हनुमान्‌जी पर गदा का प्रहार किया । इधर लक्ष्मणजी के भीषण बाण से बिरूपाक्ष मारा गया । अग्निकेतू, दुर्जय, रश्मिकेतू, यज्ञकोप ने जब श्रीराम पर आक्रमण किया तो श्रीराम ने एक ही बाण में सबों को मार दिया । इतने भयंकर युद्ध को देख मेघनाथ घबड़ा गया। लक्ष्मणजी अपने बाणों से मेघनाथ पर विकराल बाणों की वर्षा करने लगे । लक्ष्मणजी के बाणों से घायल हो मेघनाथ कराहने लगा, उसके पूरे शरीर में बाण धँस गये । उसने सोचा- अब लक्ष्मण से बचना मुश्किल है ।

चौ0

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा । भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा ॥

नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राच्छस भयउ प्रान अवसेषा ॥

रावन सुत निज मन अनुमाना । संकठ भयउ हरिहि मम प्राना ।

जब मेघनाथ को लगा कि लक्ष्मणजी मेरे प्राण ले लेंगे, तब उसने अपना "वीरघातिनी" शक्तिबाण लक्ष्मणजी पर चला दिया ।

चौ0

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी । तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥

मुरुछा भई सक्ति के लागें । तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ॥

मेघनाथ के बाण लगते ही लक्ष्मणजी मूर्छित होकर गिर गये । तब मेघनाथ ने सोचा कि "लक्ष्मणजी को उठाकर लंका ले जाएं ।" शेषनाग के अवतार लक्ष्मणजी को मेघनाथ उठाने लगा, लेकिन उठा नहीं सका । उसने बहुत प्रयास किया लेकिन लक्ष्मणजी टस से मस नहीं हुए । हारकर मेघनाथ शाम होने के कारण अपने महल लौट गया ।

जब हनुमान्‌जी को यह खबर लगी, तो वे दौड़े और लक्ष्मणजी को अपने शिविर में ले आए । शिविर में हाहाकार मच गया । उसी समय विभीषणजी वहाँ आए, उन्हें पता लग गया कि मेघनाथ ने लक्ष्मणजी को बीरघातनी शक्तिबाण से प्रहार किया है, इस बाण से बचना मुश्किल है । उन्होंने कहा- "हे प्रभु! लक्ष्मणजी की मूर्छा नष्ट करने के लिए लंका के सुषेन वैद्य को बुलाना पड़ेगा ।" इसके लिए हनुमान्‌जी को नियुक्त किया गया । हनुमान्‌जी लंका में सुषेन वैद्य के पास गए । हनुमान्‌जी ने जब सुषेन वैद्य को पूरी बात बताई तो सुषेन ने कहा- "मैं रावण का राजवैद्य हूँ । शत्रु का उपचार करना मेरा धर्म नहीं है ।" यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा- "वैद्यजी! बीमार का उपचार करना तो आपका धर्म है ।" सुषेन ने कहा- "लेकिन मैं शत्रु का उपचार नहीं कर सकता ।" इस पर हनुमान्‌जी ने कहा- "आप तो धर्म की बात करते हैं, वैद्य के लिए एक ही धर्म है कि वह रोगी का ईलाज करे, उसे स्वस्थ बनाए । वैद्य, गुरु, शिक्षक कभी यह नहीं सोचता कि सामने खड़ा व्यक्ति मेरा शत्रु है या मित्र है । धर्म का यह नियम नहीं है । जो भी व्यक्ति इन तीनों के पास जाता है, तो उसे निराश नहीं करना चाहिए ।" यह सुन सुषेन ने कहा- "ठीक है! अगर मेरे द्वार तक कोई रोगी आवे तो उसका उपचार करना मेरा धर्म है । लेकिन शत्रु के शिविर में जाकर शत्रु का उपचार करना मेरा धर्म नहीं है ।" यह कहकर सुषेन अपने कमरे में सोने चला गया । हनुमान्‌जी ने सोचा कि सुषेन स्वेच्छा से हमारे शिविर में नहीं ज़ाएगा । तभी हनुमान्‌जी ने सुषेन के भवन को उठा लिया और उठाकर श्रीराम के शिविर में ले आए । अब तो सुषेन को लक्ष्मणजी को देखना मजबूरी हो गई । सुषेन ने लक्ष्मणजी का परीक्षण किया फिर कहा- "हिमालय के कन्दरा में संजीवनी बूटी मिलती है, अगर सूर्योदय के पहले वह बूटी उपलब्ध हो जाए तो, लक्ष्मणजी को बचाया जा सकता है ।"

दो०

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥

हनुमान्‌जी प्रभु श्रीराम का स्मरण करते हुए बड़े वेग से हिमालय की ओर चले। उधर गुप्तचरों की सूचना से पूरी बात की जानकारी रावण को हुई। वह स्वयं मायावी कालनेमि के पास गया।

चौ०

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥

कालनेमि को रावण ने कहा- "तुम मायावी हो, हनुमान् हिमालय की ओर संजीवनी लाने जा रहा है, उसका मार्ग रोको।" यह सुनते ही कालनेमि ने कहा- "हे महाराज! जिस हनुमान् ने अकेले पूरी लंका को तबाह कर दिया था, उसके वेग को कौन रोक सकता है। उसने कहा कि महाराज अब भी समय है, आप राम की शरण में चले जाएं।" यह सुनते ही रावण क्रोधित होकर कालनेमि को मारने के लिए अपनी तलवार निकालने लगा। कालनेमि समझ गया। इस दुष्ट के हाथों मरने से तो अच्छा है कि हनुमान् के ही हाथों मरूँ। वह तैयार होकर हिमालय के निकट एक कुटी बनाकर साधु भेष में बैठ गया। इधर हनुमान्‌जी बड़े वेग से हिमालय की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। हनुमान्‌जी ने नीचे देखा तो एक कुटी दिखाई पड़ी। उन्होंने सोचा कुटी में रूककर पानी पी लें, तब आगे जाएं।

चौ०

राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥

साधुरुप कालनेमि आँख बन्द करके बैठा था, तभी हनुमान्‌जी ने जाकर उसे प्रणाम किया। उस साधु ने आँखें खोली और कहा- "राम-रावण का युद्ध हो रहा है, जिसे मैं यहीं से देख रहा हूँ। क्योंकि मेरे पास योगदृष्टि है, लेकिन तुम बताओ, क्या चाहते हो?" हनुमान्‌जी ने कहा- "मुझे प्यास लगी है, मुझे जल का स्थान बता दें।" यह सुनते ही साधु ने हनुमान्‌जी को अपनी कमण्डल दी और कहा- "पास के तालाब में जाकर पानी पी लो। फिर जब तुम जल पीकर लौटोगे तो मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा और ज्ञान का रहस्य बताऊँगा।" हनुमान्‌जी कमण्डल लेकर पानी पीने चले गये। ज्योंही उन्होंने तालाब में पांव रखा कि एक मकड़ी ने हनुमान्‌जी का पांव पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। हनुमान्‌जी ने तुरंत उस मकड़ी की गर्दन पर अपना पैर रखकर

दबा दिया । गर्दन दबते ही मकड़ी से एक अप्सरा प्रकट हो गई । अप्सरा ने हाथ जोड़कर हनुमान्‌जी को कहा– "हे महावीर! आपने मेरा कल्याण कर दिया । मैं तो स्वर्ग की अप्सरा हूँ । शाप के कारण मकड़ी बन गई थी । आपने मेरा उद्धार कर दिया । लेकिन आपसे प्रार्थना है कि कुटिया में जो साधु बैठा है, वह मायावी राक्षस कालनेमि है, उससे सावधान रहें ।" हनुमान्‌जी पूरी बात समझ गये । उन्होंने जल पीया और कुटिया में आकर साधु बाबा को अपनी पूँछ में लपेटा और शिलाखण्ड पर पटकना शुरू किया । दो–चार पटका में ही साधु बाबा का राम नाम सत्य हो गया । वहाँ से हनुमान्‌जी हिमालय की कन्दरा में गये । वहाँ उन्होंने मणि के समान प्रकाशवान् अनेक जड़ी–बुटियों को देखा । इतनी जड़ी–बुटियों में प्रकाश देखकर हनुमान्‌जी चकराने लगे, इसमें कौन संजीवनी बूटी है, यह निर्णय करना मुश्किल था ।

(कहा जाता है कि रावण ने वहाँ भी संजीवनी बूटी की तरह अनेक बुटियों को प्रकाशवान् बना दिया था । ताकि बूटी को कोई पहचान न सके ।)

हनुमान्‌जी सोचने लगे कि इसमें संजीवनी बूटी कौन है, इसकी पहचान कैसे करुँ । तभी उन्होंने निर्णय लिया कि इस पहाड़ को ही उठाकर ले चलूँ । ताकि वहाँ सुषेनजी संजीवनी को पहचान सकें । हनुमान्‌जी ने उस पूरे पर्वत-खण्ड को उठा लिया और उसे लेकर आकाशमार्ग से वेगपूर्वक उड़ते हुए लौटने लगे । जब हनुमान्‌जी अयोध्या के ऊपर से गुजर रहे थे, तो भरतजी नन्दीग्राम में बैठे थे, उन्हें लगा कि कोई राक्षस अयोध्या पर आक्रमण करने आ रहा है । भरतजी ने बिना फर का एक बाण उठाया और हनुमान्‌जी पर चला दिया । बाण लगते ही हनुमान्‌जी श्रीराम! श्रीराम कहते हुए भूमि पर गिरे । श्रीराम का नाम सुनते ही भरतजी दौड़े । वहाँ जाते ही भरतजी ने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित पड़े हैं ।

दो०

परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥

सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए । कपि समीप अति आतुर आए ॥

भरतजी सोचने लगे– "हे राम! मैंने यह क्या पाप किया ।" थोड़ी देर में जब हनुमान्‌जी की मूर्छा टूटी तो उन्होंने कहा– "मैं राम का दूत हूँ । संजीवनी लाने हिमालय पर गया था ।" भरतजी ने पूछा– "हे कपि! संजीवनी की क्या आवश्यकता पड़ गई।" तब हनुमान्‌जी ने बताया– "प्रभु श्रीराम की पत्नी सीता का हरण लंकापति रावण ने

कर लिया है । जिसके कारण लंका में युद्ध हो रहा है । उसी युद्ध में मेघनाथ ने शक्तिबाण से लक्ष्मणजी को मूर्छित कर दिया है । उसी भाई लक्ष्मण के उपचार के लिए संजीवनी ले जा रहा हूँ ।" यह सुनते ही भरतजी व्याकुल हो गये । भरतजी ने कहा– "हे महावीर! मैं अयोध्या की पूरी सेना लेकर अपने बड़े भैया श्रीराम की सहायता में जाना चाहता हूँ ।" यह सुनते ही हनुमान्‌जी ने कहा– "हे महात्मा भरत! प्रभु श्रीराम हमेशा आपका स्मरण करते रहते हैं ।" यह सुन भरतजी जोर-जोर से रोने लगे और हनुमान्‌जी को कहने लगे– "हे महावीर! मेरे ही कारण भैया को यह सब दुःख झेलना पड़ रहा है । मैं लंका पर आक्रमण करके अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता हूँ ।" तब हनुमान्‌जी ने कहा– "भैया भरत! आप चिन्ता न करें, प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण पूरी लंका को नाश करने में पूर्ण समर्थ हैं, अब मुझे जाने दें ।" इस पर भरतजी ने कहा– "मैं तो भैया की आज्ञा में बंधा हूँ । लेकिन आप मेरे बाणों पर बैठ जाएं, एक क्षण में मैं आपको लंका भेज देता हूँ ।" यह सुनते ही हनुमान्‌जी ने कहा– "भैया भरत! मैं एक क्षण में ही लंका पहुँच जाऊँगा । आप कष्ट न करें ।"

(कहा जाता है कि हनुमान्‌जी को कभी अहंकार नहीं होता । लेकिन जब उन्हें हिमालय पर जाकर सूर्योदय के पहले संजीवनी लाने को कहा गया, तो उनके मन में भाव आया कि मैं प्रभु श्रीराम के लिए आवश्यक बन गया हूँ । प्रत्येक कठिन काम को मैं ही पूरा करता हूँ । श्रीराम तो अन्तर्यामी हैं, उन्हें लग गया कि अहंकार के कारण हनुमान् अपनी भक्ति से गिर सकता है । क्योंकि अहंकार का नाग भक्ति को डस लेता है । तभी श्रीराम ने कालनेमि और मकर से हनुमान्‌जी को भेंट कराया । भरतजी के बिना फर वाले बाण से हनुमान्‌जी मूर्छित हुए । हनुमान्‌जी के मन से यह भ्रम को तोड़ना भी आवश्यक था कि वे ही इतना वेग से जा सकते हैं । भरतजी ने जब कहा कि मैं आपको बाण पर बिठाकर एक क्षण में लंका भेज देता हूँ । तब हनुमान्‌जी को बोध हुआ कि मेरे समान वेग से चलने वाले और भी हैं । इसीलिए हनुमान्‌जी को भक्त कालनेमि और भरतजी का सामना करना पड़ा ।)

चौ०

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना । मोरें भार चलिहि किमि बाना ॥

हनुमान्‌जी के मन में हुआ कि भरतजी का बाण मेरा भार कैसे थामेगा? लेकिन हनुमान्‌जी ने सोचा– "राम की कृपा जिस पर रहती है उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ।" यह सोचते हुए हनुमान्‌जी पर्वत-खण्ड लेकर दक्षिण की ओर उड़ गये ।

दो०

तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत ।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ॥

श्रीराम का विलाप

हनुमान्‌जी संजीवनी बूटी लेकर आ रहे हैं, लेकिन आधी रात बीत गई, श्रीराम को चिन्ता हो रही है कि अगर हनुमान्‌जी समय पर नहीं आए, तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा ।

चौ०

उहाँ राम लछिमनहि निहारी । बोले बचन मनुज अनुसारी ॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ । राम उठाइ अनुज उर लायउ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मणजी को गले लगाकर कहा- "हे प्रिय भाई! तुमने मेरे कारण माता-पिता, पत्नी सबको छोड़ दिया । तुमने मेरे लिए तो इतना त्याग किया, लेकिन आज मैं तुम्हें मूर्छित पड़ा देख रहा हूँ, तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर पा रहा, मेरा हृदय फटा जा रहा है, जो लक्ष्मण अपने धनुष के टंकार से दसों दिशाओं को हिला देता था, आज वह मेरे सामने शान्त होकर सो रहा है । हे भाई! तुम तो पिछले चौदह वर्षों से मेरे सामने कभी सोये नहीं हो । आज मैं बैठा हूँ और तुम सोये हो । तुमने स्वप्न में भी कभी मेरा अनादर नहीं किया, तो मेरे सामने आज सोये कैसे हो? तुम आज गहरी निद्रा में हो लेकिन यह कैसे हो सकता है? तुमने तो चौदह वर्षों तक न सोने का व्रत ले रखा है । तुम्हें मेघनाथ ने शक्तिबाण मारा है । क्या मेघनाथ के पास इतनी शक्ति है कि वह तुम्हें पराजित कर दे । अगर सुलोचना अपने तप की शक्ति से मेघनाथ को बल-प्रदान कर सकती है, तो हमारी ऊर्मिला भी तो कठिन साधना में लीन है? यह कैसे हो सकता है कि शेषनाग के अवतार लक्ष्मण को मेघनाथ पराजित कर दे । यह तो पूर्ण असम्भव है । हमारी ऊर्मिला सुलोचना से कभी पराजित नहीं हो सकती । मेरे भाई! राम तुम्हारे पास बैठा है । शीघ्र उठो और मुझे प्रणाम करो, फिर मेरा आशीर्वाद लेकर मेघनाथ का वध करो । यद्ध में जाते समय मैंने तुम्हें आशीर्वाद नहीं दिया था, अभी मैं तुम्हें **'विजयी भव'** का आशीर्वाद देता हूँ । आज तक मेरा वचन कभी खाली नहीं हुआ, इसलिए उठो ।"

श्रीराम ने कहा– "मेरे भाई! मैं दुनिया के बड़े से बड़े संकट से लड़ सकता हूँ, दु:ख भोग सकता हूँ, लेकिन तुम्हें गंवा नहीं सकता । तुम तो मेरी आत्मा हो । हे भाई! अगर मैं यह जानता कि यदि मेघनाथ तुम पर शक्तिबाण से प्रहार करेगा, तो बचपन में जब तुम मेघनाथ को रस्सी से बांधकर पीट रहे थे, तो उसके पिता रावण के अनुनय-विनय करने पर भी मैं मेघनाथ को नहीं छोड़ता–

चौ0

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू । पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥

अगर मैं जानता कि इस मेघनाथ के कारण मुझे भाई से बिछोह होगा, तो मैं उसके पिता की बात नहीं मानता ।"

संकेत:– इस चौपाई का अभिप्राय भूमिका में दिया गया है जिससे स्पष्ट है कि भगवान् अपने पिता की नहीं अपितु मेघनाथ के पिता रावण की बात न मानने की बात कर रहे हैं ।

(इसीलिए श्रीराम कहते हैं कि बचपन में अगर मैं जानता कि इसी मेघनाथ के कारण मुझे भाई से बिछोह होगा, तो उसके (ओहू) पिता की बात मैं नहीं मानता । यहाँ ऐसा अर्थ लगाना चाहिए ।)

श्रीराम विलाप कर रहे हैं कि "भाई! दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को धन-सम्पत्ति, मान-मर्यादा, पद सब कुछ मिल जाता है, लेकिन सहोदर (एक माँ की कोख से जन्मा हुआ) नहीं मिलता । जिस प्रकार बिना पंख के पक्षी, बिना मणि के साँप, दीन-हीन हो जाता है, वैसे ही आज मैं बन गया हूँ । मैं कैसे अयोध्या लौटूँगा, लोग यही कहेंगे कि स्त्री के कारण भाई को गँवा दिया ।"

चौ0

निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ॥

(हे तात! जो अपनी माँ का एक ही पुत्र है, उसका तुम प्राण से भी प्यारे हो । इस चौपाई का अर्थ थोड़ी सावधानी से लगाना पड़ेगा । प्राय: टीकाकार यह अर्थ लगाते हैं कि तुम अपनी माता के एक ही पुत्र हो, जबकि लक्ष्मणजी दो भाई थे । इसलिए यह अर्थ नहीं बैठता । गोस्वामीजी ने यह कहा होगा कि जो अपनी माता का एक ही पुत्र है अर्थात् राम और तुम उस राम के प्राण के आधार हो । श्रीराम केवल

अपनी ही बात कर रहे हैं । इसलिए ऐसा अर्थ लगाना उचित है । श्रीराम कहते हैं कि "अवध से चलते समय माता सुमित्रा ने तुम्हें, मुझे सौंपा था । उन्हें मैं क्या मुँह दिखाऊँगा ।" राम नाना विध-विलाप कर रहे हैं । वाल्मीकि ने इस दृश्य का सचित्र वर्णन किया है ।)

अशक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
लक्ष्मणसमो भ्राता तु सचिवः साम्परायिकः ॥

इसका अर्थ है कि मृत्युलोक में ढूंढने पर भी मुझे सीता जैसी पत्नी नहीं मिलेगी, और लक्ष्मण के समान भाई तो अत्यन्त ही दुर्लभ है । राम बार-बार लक्ष्मण को चूम रहे हैं, गले लगा रहे हैं । श्रीराम के आँसू से मूर्छित लक्ष्मण का ललाट भींग रहा है । श्रीरांम को विलाप करते देख विभीषण, सुग्रीव एवं समस्त वानर सेना सिर झुकाये खड़ी है । तभी सुग्रीव ने उत्तर की ओर से एक विशाल पहाड़ को आते देखा । सुग्रीव ने समझा- रावण ने अवश्य ही कोई माया का खेल खेला है । रावण चाहता होगा कि लक्ष्मण के विरह में राम दुःखी होंगे, इसी समय उन पर पहाड़ गिरा दिया जाए । श्रीराम ने भी अपना सिर उठाकर देखा और कहा- "हे सखा! रात्रि में शत्रु शिविर पर प्रहार नहीं किया जाता । युद्ध का नियम है कि सोये हुए, भोजन करते हुए, असावधानता की स्थिति में शत्रु पर आक्रमण नहीं किया जाता और अभी तो रात है । रात्रि में तो युद्ध वर्जित है । रावण को ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए ।"

इसके बाद श्रीराम ने हनुमान्‌जी को विशाल पहाड़ उठाये आते देखा । हनुमान्‌जी नीचे उतरे, श्रीराम ने पूछा- "हे हनुमान्! वैद्यजी ने तुम्हें संजीवनी लाने को कहा था, तुम पहाड़ कैसे ले आए ।" यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा- "हे प्रभु! द्रोणाचल पर जाकर मैंने देखा कि वहाँ अनेक बुटियों से प्रकाश निकल रहा था । मैं निश्चय नहीं कर सका कि इसमें संजीवनी कौन है, इसीलिए पूरे द्रोणाचल को उठा लाया हूँ ।" यह सुनते ही सुषेन वैद्य संजीवनी को पहचान कर पहले उसे प्रणाम किया और निवेदन किया- "हे संजीवनी! मेरे रोगी को ठीक कर दो ।" (प्राचीनकाल में पौधे एवं वृक्ष हंसते-बोलते थे । वे जीवधारी थे, यह आज के विज्ञान की खोज नहीं है । इसीलिए सुषेन ने पहले संजीवनी से अनुमति प्राप्त की । इसीलिए आज भी लोग कहते हैं कि एक वृक्ष लगाओ और पाँच बेटों का पुण्य कमाओ ।) सुषेन ने पत्तों का रस निकाला और लक्ष्मणजी के मुँह में रखा । लक्ष्मणजी फूर्ती से उठ बैठे ।

चौ०

तुरत बैद तब कीन्हि उपाई । उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥
हृदयँ लाइ प्रभु भेटेउ भ्राता । हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥

लक्ष्मणजी को स्वस्थ होते देख प्रभु श्रीराम अति प्रसन्न हुए । इसके बाद पुनः हनुमान्‌जी ने महल सहित सुषेन वैद्य को लंका पहुँचा दिया ।

विशेष प्रसंग

(कथा है- जब श्रीराम और लक्ष्मण शबरी की कुटिया में गये थे तो, शबरी ने प्रेमपूर्वक जूठे बेर खाने के लिए श्रीराम को दिया था । श्रीराम ने उनमें से कुछ बेर लक्ष्मण को खाने को दिया । लक्ष्मणजी ने देखा कि सभी बेर आधा खाये हुए हैं, जूठे हैं । इन जूठे बेरों को कैसे खाया जाए । लक्ष्मणजी ने चुपके से उन बेरों को पीछे की ओर उत्तर दिशा में जोर से फेंक दिया । वे सभी बेर द्रोणाचल पर गिरा । वही बेर संजीवनी बूटी बना । प्रभु श्रीराम ने लक्ष्मण को बेर फेंकते देख लिया, उन्हें बुरा लगा । भक्ति से दी गई वस्तु का तिरस्कार नहीं करना चाहिए । लक्ष्मण ने वही भूल कर दी । इसीलिए प्रभु कृपा से उसी बेर की संजीवनी से लक्ष्मणजी स्वस्थ हुए । उसी तरह हनुमान्‌जी को भी गर्व हो गया था, तभी वे कालनेमि की माया में फंसे और भरतजी के बिना फर के बाण से वे बेहोश हो गये थे । प्रभु किसी के अहंकार को सहन नहीं कर सकते । लक्ष्मणजी को शक्तिबाण लगा, क्योंकि वे युद्ध में श्रीराम को प्रणाम किये बिना चले गये थे । हनुमान्‌जी को भी अभिमान हो गया था और लक्ष्मणजी ने बेर को फेंक दिया था । प्रभु किसी के अभिमान को सहन नहीं कर सकते । कहा जाता है कि हनुमान्‌जी जिस द्रोणाचल को लंका लाये थे, वही द्रोणाचल आज भी लंका में अवस्थित है । आज भी उसपर अनेक जड़ी-बूटियाँ मिलती है । इस प्रकार, एक बार गरुड़जी के भी अभिमान को प्रभु ने नाश किया था । कथा है- वैकुण्ठ में प्रभु ने एक दिन गरुड़ से कहा- तुम पृथ्वी लोक पर जाकर हनुमान्‌जी को बुला लाओ । गरुड़ संसार के सभी जीवों से अधिक वेग से चलने वाले जीव हैं । गरुड़जी हनुमान्‌जी के पास गये, बुलावा सुनकर हनुमान्‌जी ने कहा- "आप चलिए, मैं आता हूँ ।" इस पर गरुड़जी ने कहा कि "आप मेरी पीठ पर बैठ जाएं, मैं शीघ्र ही आपको वैकुण्ठ पहुँचा देता हूँ ।" यह सुन हनुमान्‌जी ने कहा कि "आप चलें, मैं ठीक समय पर प्रभु के पास पहुँच जाऊँगा ।" गरुड़जी को बुरा लगा । वे दुःखी मन से लौट गये । जब गरुड़जी वैकुण्ठ में प्रभु के पास संवाद देने पहुँचे, तो देखते हैं, हनुमान्‌जी वहाँ पहले से बैठे हुए हैं । यह देख गरुड़जी को जो अपने वेग पर गर्व था, वह नष्ट हो गया ।)

कुम्भकर्ण को जगाना और युद्ध में भेजना

संजीवनी के प्रयोग से लक्ष्मणजी स्वस्थ हो गये । यह खबर जब रावण को मिली, तो वह बहुत व्याकुल हो गया । उसने सोचा कि अब कुम्भकर्ण को जगाना चाहिए-

चौ०

ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा । बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥

रावण ने अपने सैनिकों से कहा- कुम्भकर्ण को जगाओ । कुम्भकर्ण छह महीने सोता था और एक दिन जागता था, फिर खा-पीकर सो जाता था । इस बीच उसे जगाना मुश्किल था । रावण ने समय से पहले ही जगाने के लिए अपने सैनिकों को भेजा । बड़े-बड़े ढोल, नगाड़े आदि बजाये गए । उसके शरीर को रौंदा गया, तब जाकर वह जगा । जागते ही उसने अपने भाई रावण को उदास खड़े देखा-

चौ०

कुंभकरन बूझा कहु भाई । काहे तव मुख रहे सुखाई ॥

कुम्भकर्ण ने पूछा- "हे भाई! तुम उदास क्यों हो?" रावण ने कहा- "अयोध्या के दो राजकुमारों ने लंका पर आक्रमण कर दिया है ।" यह सुन कुम्भकर्ण ने कहा- अयोध्या तो बड़ा ही शालीन देश है । वहाँ के राजा दशरथ धर्मात्मा हैं, उनके राजकुमारों ने लंका पर चढ़ाई क्यों कर दी?

तब रावण ने सीता-हरण की बात बताई । यह सुनते ही कुम्भकर्ण दुःखी होकर बैठ गया-

दो०

सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान ।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ॥

चौ०

भल न कीन्ह तैं निसचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ॥

कुम्भकर्ण ने कहा- "हे भाई! तुमने बड़ा अनर्थ किया है । तुमने उस प्रभु से विरोध किया है, जिसके सेवक ब्रह्मा और शिव हैं । अब मुझे स्मरण हो रहा है कि नारद ने जो कहा था और ब्रह्माजी का वरदान भी यही था, कि तुम नर और वानर से मारे जाओगे । अब वह समय आ गया । हे भाई! छोटा-मोटा पाप तो भूल से कोई भी कर लेता है, लेकिन तुमने तो अहंकार में आकर परमात्मा को ही चुनौती दे डाली । अब तक तुम देवता और गंधर्वों से लड़कर अपने को विश्वविजेता मानते थे, इस बार उसी अभिमान के कारण परमात्मा से लड़ने चले हो । मैं तो तुम्हारा भाई हूँ, तुम्हारे आदेश का पालन अवश्य करूँगा । लेकिन यह भी जानता हूँ कि युद्धभूमि में मैं मारा जाऊँगा । इसलिए हे भाई! आओ, मुझे अपने अंग में भर लो और अंतिम विदाई के लिए आशीर्वाद दो । मैं प्रभु का दर्शन करने के लिए व्याकुल हूँ ।"

चौ०

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ॥

कुम्भकर्ण ने रावण को बार-बार प्रणाम किया और कहा- "भैया! तुमने बड़ी भूल कर दी, अब मैं प्रभु से लड़ने जा रहा हूँ, क्योंकि मैं आपके आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता । राक्षस होने के कारण प्रभु की भक्ति भी नहीं कर सकता । ऐसी स्थिति में यही उचित है कि मैं प्रभु के हाथों मोक्ष प्राप्त करूँ ।" कुम्भकर्ण ने प्रभु का स्मरण किया और रावण का आशीर्वाद प्राप्त किया ।

दो०

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक ।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरू महिष अनेक ॥

कुम्भकर्ण मांस-मदिरा खाकर गरजते हुए युद्धभूमि की ओर चला ।

कुम्भकर्ण को युद्धभूमि में आते देख विभीषण दौड़ते हुए उनके निकट आए और प्रणाम किया । विभीषण को कुम्भकर्ण ने गले लगा लिया, विभीषण ने कहा- "भैया! रावण ने मुझे लात से मारकर लंका से निकाल दिया था । उसी लाज के कारण मैं प्रभु श्रीराम के शरण में आ गया ।" यह सुनते ही कुम्भकर्ण ने कहा- "हे भाई! रावण तो काल के वश में हो गया है । लेकिन तुम तो हमारे कुल के दीपक हो । तुमने तो हमारे वंश का नाम रौशन कर दिया । " कुम्भकर्ण ने विभीषण को आशीर्वाद देते

हुए कहा– "तुम जाओ और प्रभु की सेवा करो । मैं तो रावण की आज्ञा में बंधा हूँ। अब तुम मुझे अपना शत्रु समझो ।" कुम्भकर्ण की बात सुनकर विभीषण श्रीराम के पास आए और बोले– हे प्रभु! विशाल शक्तिशाली कुम्भकर्ण युद्धभूमि में आ गया है ।

चौ0

नाथ भूधराकार सरीरा । कुंभकरन आवत रनधीरा ॥

यह सुनते ही वानरवीर पत्थर, वृक्ष उठाकर कुम्भकर्ण की ओर दौड़े । इन पत्थरों और वृक्षों की चोट से कुम्भकर्ण को कुछ नहीं हो रहा था । यह देख हनुमान्‌जी ने कुम्भकर्ण पर मुष्टिका का प्रहार किया । लेकिन कुम्भकर्ण के वेग को कोई नहीं रोक पा रहा था । उसने सुग्रीव सहित अनेक वानर वीरों को अपनी काँख में दाब लिया । सुग्रीव और हनुमान्‌जी की जब मूर्छा टूटी, तो इन दोनों ने कटकटाकर कुम्भकर्ण की नाक और कान काट लिए । लेकिन कुम्भकर्ण ने एक-एक को पृथ्वी पर पटकना शुरू किया । यह देख सभी वीर प्रभु श्रीराम के पास भागे । उधर कुम्भकर्ण विकराल काल की तरह वानर सेना को रौंदते हुए आगे बढ़ रहा था। वानर सेना को वह ऐसे मुँह में दाब रहा था, जैसे-किसी गुफा में फतिंगे घुसकर विलीन हो जाते हैं । बड़े-बड़े वीरों को कुम्भकर्ण अपने मुँह में रख लेता और वे सभी उनकी कानों और नाकों के रास्ते निकल भागते । कुम्भकर्ण का प्रकोप ऐसे लग रहा था जैसे कोई पहाड़ वानर सेना को रौंदते हुए आगे बढ़ रहा है ।

कुम्भकर्ण - विभीषण संवाद

कुम्भकर्ण जब युद्ध भूमि में पहुँचा तो उसकी गर्जना सुनकर श्रीराम के दल के सभी वानर, भालू भय से कांपने लगे । कुम्भकर्ण का यह विराट स्वरुप देखकर ऐसा लगने लगा कि महाप्रलय आ गया। उसी समय विभीषण दौड़ते हुए अपने बड़े भाई कुम्भकर्ण के पास पहुँचे, विभीषण ने उन्हें प्रणाम किया । कुम्भकर्ण ने आशीर्वाद देते हुए कहा– ''मेरे भाई! तुम कुशल तो हो।'' यह सुन विभीषण ने कहा– ''भैया, आपकी अनुपस्थिति में लंकेश ने भरी सभा में मुझे लात मारकर निकाल दिया । मैंने उन्हें बहुत समझाया कि राम ब्रह्म हैं । सीता जगत् जननी हैं, उनसे बैर मत करिए। आपकी इस भूल से पूरी लंका नष्ट हो जाएगी । लेकिन वे मदान्ध बन गए और मुझे राज्य सभा से जलील करके बाहर निकाल दिये । उनके भय के कारण मैं प्रभु श्रीराम की शरण

में आ गया ।'' यह सुन कुम्भकर्ण ने कहा- मेरे भाई लंकेश सचमुच मदान्ध हो गये हैं । वे विवेक खो चुके हैं । तुम तो विवेकशील हो, इसलिए उनकी शरण में आ गये, लेकिन मैं सुषुप्त अवस्था में रहता हूँ । लंकेश ने मुझे कभी होश में नहीं रहने दिया। मांस-मदिरा का सेवन कर मैं हमेशा सोया रहा । मेरी पत्नी बज्रमाला और पुत्र कुम्भ, निकुम्भ सभी लंकेश के भय से कभी मुँह नहीं खोल सके। आज भी उन्होंने अपने स्वार्थ से मुझे जगाया है। और जगते ही उसने मुझे पुनः मदिरा पिलाकर बेहोश कर दिया है ताकि मैं पशुवत् बना रहूँ । मेरे भाई! मैंने लंकेश को बहुत समझाया है, लेकिन वे स्वार्थ में अंधे हो चुके हैं । उन्होंने मुझे भी कायर, राक्षस, कुलद्रोही कह दिया है। मदिरा के क़ारण मैं धीरे-धीरे होश खो रहा हूँ । लेकिन तुमने कुल धर्म का निर्वाह किया और प्रभु श्रीराम की शरणागति प्राप्त की। मेरे भाई तुम धन्य हो जो प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें मिल गया । मैं तो अभागा हूँ, विवेक खोता जा रहा हूँ।

यह सुन विभीषण ने कुम्भकर्ण से कहा- ''भैया- श्रीराम बड़े दयालु हैं, आप युद्ध छोड़ दें और उनकी शरण में चले जायें।'' यह सुन कुम्भकर्ण ने कहा- ''नहीं मेरे भाई, मांस-मदिरा खाकर मैं पशु बन गया हूँ, अब मैं प्रभु श्रीराम की शरण में नहीं जा सकता। तुम धन्य हो मेरे भाई कि उनके चरण कमल छूने का सौभाग्य तुम्हें मिला। जिस हाथ से तुमने प्रभु का चरण हुआ है उस हाथ को मैं चूमना चाहता हूँ, अपने मस्तक में सटाना चाहता हूँ । हे विभीषण ! प्रभु ने तुम्हारे मस्तक पर अपना हाथ रखा होगा । उस मस्तक को मैं चूमना चाहता हूँ। तुम्हारे रोम-रोम में प्रभु का आशीर्वाद व्याप्त हो गया होगा । तुम्हें स्पर्श कर मैं धन्य हो जाना चाहता हूँ। यह सुन विभीषण ने कहा- ''भैया अगर यह युद्ध नहीं रूका तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा।''

यह सुन कुम्भकर्ण कहा- ''नहीं मेरे भाई! अब यह युद्ध नहीं रूकेगा। क्योंकि रावण की जड़ता इसी युद्ध से नष्ट होगी । इस जड़ता को नष्ट करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए युद्ध को होने दो, मेरे भाई! तू मेरी गोद में आ जा, मैं जी भर तुम्हें प्यार कर लूँ, अब मेरे ऊपर मदिरा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, मैं बेहोश होता जा रहा हूँ। युद्ध में केवल शत्रु ही दिख रहा है। विवेक पूरी तरह नष्ट होता जा रहा है।'' इतना कहकर कुम्भकर्ण विभीषण को अपनी बाहों में भरकर रोने लगा ।

थोड़ी देर बाद पुनः कुम्भकर्ण ने विभीषण से कहा- ''मेरे भाई! अब तुम शीघ्र मेरे निकट से चले जाओं और अपने प्रभु श्रीराम को मेरा प्रणाम कहना । एक बात

और उनसे प्रार्थना करना कि युद्ध के समय वे मुझे अधिक न खेलाएं, अब मैं खेलना नहीं चाहता । वे शीघ्र मेरा नाश करें ताकि मैं तामस तन से मुक्त हो सकूँ । अब जा मेरे भाई, मैं अपना-पराया भूलता जा रहा हूँ । लंकेश ने मुझे मदिरा पिलाकर बेहोश कर दिया है ।'' कुम्भकर्ण की बात सुनकर विभीषण लौट आया ।

कुम्भकर्ण - वध

कुम्भकर्ण के प्रकोप से भागते हुए वानर सेना को देखकर श्रीराम ने कहा- "हे सुग्रीव! हे विभीषण, हे लक्ष्मण! तुम सभी लोग अपनी अपनी सेना को सम्भालो । मैं इस राक्षस को देखता हूँ ।" श्रीराम ने धनुष का टंकार किया, जिससे सभी राक्षस बहरे हो गये । श्रीराम के बाण से हज़ारों राक्षस कटकर गिरने लगे । जब कुम्भकर्ण ने देखा कि श्रीराम हमारी सेना का नाश कर रहे हैं तो, वह क्रोध में पागल हो गया । उसने पहाड़ उठाकर कपि सेना पर फेंकना शुरू किया । तब श्रीराम ने कुम्भकर्ण पर बाण से प्रहार किया । राम के बाण कुम्भकर्ण के शरीर को छेदकर निकल जाते थे, लेकिन कुम्भकर्ण को उससे कोई अन्तर उसी प्रकार नहीं पड़ता था जैसे- बिजली मेघ में समा जाती है ।

चौ०

तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं।

इससे कुम्भकर्ण और अधिक क्रोधित होकर वानर सेना पर टूट पड़ा । सभी श्रीराम को पुकारते हुए भागने लगे । तब श्रीराम ने एक भीषण बाण कुम्भकर्ण को मारा, जिससे उसकी एक भुजा कट गई । वह एक भुजा से ही लड़ने लगा और श्रीराम को निकट से देखा । कुम्भकर्ण ने एक ही हाथ से श्रीराम को पकड़ना चाहा, तब प्रभु समझ गये कि देव, गंधर्व, कुम्भकर्ण से भयभीत हैं, इसलिए श्रीराम ने एक तीक्ष्ण बाण कुम्भकर्ण पर छोड़ा । उस बाण को आते देख कुम्भकर्ण समझ गया कि यह श्रीराम का अंतिम बाण है, उसने अपना सिर प्रभु के सामने झुका दिया ।

कुम्भकर्ण महातपस्वी विश्रवा का पुत्र था । उसके शरीर में सात्त्विक वृत्ति थी, लेकिन राक्षस होने के कारण वह मांस-मदिरा का सेवन करता था । इसीलिए उसने रावण को भी समझाया था । लेकिन अहंकार के कारण रावण ने कुम्भकर्ण की बात नहीं मानी । रावण भी विश्रवा का पुत्र था, लेकिन माता कैकसी और नाना सुमाली के द्वारा किये

गये गलत परवरिश के कारण वह गलत आचरण करने लगा था । उसका वैदिक ज्ञान गलत परवरिश के कारण लुप्त हो गया था । श्रीराम का बाण लगते ही कुम्भकर्ण का सिर कटकर गिर गया और जब उसका धड़ पृथ्वी पर गिरा, तो उसके भार से सैंकड़ों बन्दर दबकर मर गये । श्रीराम ने कुम्भकर्ण के सिर को रावण के पास भिजवा दिया। कुम्भकर्ण के नाश होते देख देवता, गंधर्व श्रीराम पर पुष्प-वर्षा करने लगे । श्रीराम शिविर में लौट आये ।

विशेष प्रसंग

(विशाल कुम्भकर्ण के सम्बन्ध में एक कहानी कही जाती है- लंका का युद्ध जब समाप्त हो रहा था तो मंदोदरी ने प्रभु श्रीराम से कहा- "हे प्रभु! इतना भयंकर युद्ध आज तक नहीं हुआ था, क्या भविष्य में इस तरह का कोई और युद्ध होगा?" यह सुन श्रीराम ने कहा- "हाँ मंदोदरी! द्वापर युग में एक बार फिर ऐसा ही भीषण युद्ध होगा ।" इस पर मंदोदरी ने कहा- "हे प्रभु! उस युद्ध को देखने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है ।" तब श्रीराम ने कहा- "ठीक है, इसकी सूचना तुम्हें मिल जाएगी ।"

जब महाभारत का युद्ध हुआ तो कुरुक्षेत्र के मैदान में बलवान भीम ने युद्ध का ध्वज गाड़ा । उसी समय श्रीकृष्ण ने भीम से कहा- "तुम लंका जाओ और मंदोदरी को इस युद्ध की सूचना दो ।" भीम लंका गये, मंदोदरी ने उनका स्वागत किया, उसी समय भीम ने मंदोदरी को श्रीकृष्ण का संवाद सुनाया और कहा- "मैं आपको बुलाने आया हूँ ।" इस पर मंदोदरी ने कहा- "मैं युद्ध देखने अवश्य चलूंगी, लेकिन पहले आप पास के तालाब में स्नान कर लें, भोजन कर लें, फिर हमलोग चलेंगे ।" भीम पास के तालाब में स्नान करने चले गये । जब दोपहर तक भीम स्नान करके नहीं लौटे, तो मंदोदरी ने पता लगाने के लिए अपना दूत भेजा । थोड़ी देर बाद भीम दूत के साथ लौटे । मंदोदरी ने पूछा- "आपको स्नान करने में विलम्ब क्यों हो गया?" यह सुन भीम ने कहा- "मैं पास के तालाब में स्नान कर रहा था, वहाँ पानी इतना गहरा था कि मैं उसमें फंस गया। बार-बार निकलने का प्रयास कर रहा था, लेकिन मैं निकल नहीं पा रहा था । अन्त में आपके दूत ने सहारा देकर मुझे बाहर निकाला । यह सुन मंदोदरी ने कहा- "हे भीम! आप भोजन करके लौट जाएं और श्रीकृष्ण से मेरा प्रणाम अवश्य कह देंगे । क्योंकि अब मुझे इस युद्ध को देखने की लालसा नहीं है । इस पर भीम ने कहा- "आप युद्ध देखने क्यों नहीं जाना चाहती हैं?"

मंदोदरी ने कहा– "हे भीम! मैंने लंका में राम–रावण युद्ध देखा है, मैंने अपने देवर कुम्भकर्ण को लड़ते देखा है, इसलिए मैंने प्रभु श्रीराम से कहा था कि ऐसा युद्ध अगर दोबारा हो तो उसे देखने की मेरी इच्छा है ।

लेकिन पहले यह बताओ कि इस युद्ध का ध्वज किसने गाड़ा है?" यह सुन भीम ने कहा– "युद्ध का ध्वज मैंने गाड़ा है, क्योंकि मुझसे बड़ा बलवान वहाँ कोई और नहीं है ।" तब मंदोदरी ने कहा– "हे भीम! इसीलिए मैं यह युद्ध देखने नहीं जाना चाहती हूँ कि तुमसे बलवान वहाँ और कोई नहीं है । मैंने तुम्हें तालब में स्नान करने भेजा था, लेकिन तुम तालाब में नहीं गये, मेरे देवर कुम्भकर्ण की उल्टी खोपड़ी वहाँ पड़ी थी, जिसमें पानी एकत्र हो गया है, तुम उसी में डूब रहे थे। मैंने उस कुम्भकर्ण को लड़ते हुए देखा है, अब तुम्हारा युद्ध क्या देखूँ? इसलिए तुम लौट जाओ ।")

रावण और मेघनाथ की बातचीत

रावण को दुःखी देखकर मेघनाथ ने अपने पिता को समझाते हुए कहा– "पिताश्री! कल आप मेरा युद्ध कौशल देखेंगे । मैंने अपने इष्टदेव से जो रथ और बल पाया है, उसे मैंने आपको नहीं दिखाया था ।"

चौ०

इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ । सो बल तात न तोहि देखायउँ ॥

(मेघनाथ ने भगवान् शिव की परम अराधना करके दिव्य रथ और पाशुपत अस्त्र(शक्तिबाण) प्राप्त किया था । भगवान् शिव ने माया रचने की शक्ति भी उसे दी थी । उसी बल के विषय में मेघनाथ अपने पिता रावण को समझाया ।)

इस तरह रात बीत गई । दूसरे दिन मेघनाथ ने माया का युद्ध आरम्भ किया ।

दो०

मेघनाथ मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास ।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि ककटि त्रास ॥

मेघनाथ ने आकाश से ही बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी । तभी श्रीराम ने देखा कि लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण मेघनाथ के बाणों से घायल हो रहे हैं । श्रीराम ने

ज्योंही मेघनाथ की माया को काटा तो मेघनाथ ने राम और लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र के समान शक्तिशाली नागपाश छोड़ दिया । नाग-पाश के लगते ही राम और लक्ष्मण नागपाश में बँध गये ।

चौ०

ब्याल पास वश भए खरारी । स्वबस अनंत एक अबिकारी ॥

राम को पाश में बंधते देख जाम्बवन्तजी गदा लेकर दौड़े । जाम्बवन्त की गदा लगते ही मेघनाथ मूर्छित होकर गिर गया । जाम्बवन्त ने मेघनाथ की टांग पकड़कर लंका की ओर फेंक दिया । इधर श्रीराम और लक्ष्मण को नागपाश में बंधे देख सुग्रीव और विभीषण व्याकुल होकर एक दूसरे से उपाय पूछने लगे । तभी विभीषणजी ने बताया कि नागपाश को अधिक समय तक शरीर पर रहना उचित नहीं है । क्योंकि धीरे-धीरे वह शरीर की शक्ति को सोख लेता है । इधर श्रीराम और लक्ष्मण के शरीर में नाग की जकड़न बढ़ती जा रही थी । तभी विभीषणजी ने बताया कि "अगर विष्णुलोक से गरुड़जी आ जाएं, तो वे ही इस नागपाश को काट सकते हैं, उनके अतिरिक्त दूसरा कोई इस पाश को नहीं काट सकता ।" हनुमान्‌जी को कहा गया कि "आप शीघ्र विष्णुलोक जाएं और आदर सहित गरुड़जी को यहाँ लाने का प्रयास करें ।" हनुमान्‌जी विष्णुलोक गये, उन्होंने गरुड़जी को पूरी कथा बताई । गरुड़जी आने के लिए तैयार हो गये, वे श्रीराम के पास आये और अपने तीक्ष्ण दातों से नागपाश का काटा । तब श्रीराम और लक्ष्मण ने स्वयं गरुड़जी को धन्यवाद दिया । गरुड़जी स्वर्गलोक चले गये ।

(गरुड़जी महातपस्वी कश्यप और उनकी दूसरी पत्नी विनता के पुत्र थे और भगवान् विष्णु के वाहन थे । सर्पों का शत्रु होने के कारण गरुड़जी को नागपाश काटने के लिए वहाँ बुलाया गया था ।)

लंका में मूर्छित मेघनाथ को देखकर उसकी पत्नी सुलोचना अत्यन्त घबड़ा गई । सुलोचना शेषनाग की बेटी थी और भोलेनाथ की भक्त थी । अपने पति को मूर्छित देख वह दौड़ती हुई भगवान् भोलेनाथ के मंदिर में गई और दोनों हाथ जोड़कर, अपने पति की प्राण रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगी ।

– प्रार्थना –

भोले नाथ दया करना, मेरा हाथ पकड़ लेना ।
भँवरों में फँस जाए, किश्ती तुम बन जाना ॥
भोले नाथ दया करना ... ... !

जब सब तोड़ा नाता, पितु मात तुम्हीं भ्राता ।
एक तू ही सहारे हो, मुझे पार लगा देना ॥
भोले नाथ दया करना ... ... !

यह जग बेगाना है, नहीं ठौर ठिकाना है ।
विषयों के बंधन से, मुझे मुक्त करा देना ॥
भोले नाथ दया करना ... ... !

यह भोग विषम व्याधि, मद मोह की है आँधी ।
त्रिनेत्र से तुम अपने, मेरा पाप मिटा देना ॥
भोले नाथ दया करना ... ... !

कैलाश के वासी हो, घट-घट के न्यासी हो ।
मैं भटक-भटक हारा, मेरा हाथ पकड़ लेना ॥
भोले नाथ दया करना ... ... !

विशेष प्रसंग

(प्राचीन कथा है, देवासुर संग्राम में मेघनाथ और इन्द्र का युद्ध हो रहा था, युद्ध में मेघनाथ से हारकर इन्द्र नागलोक में भाग गये । तभी से मेघनाथ को इन्द्रजीत भी कहा जाता है । इन्द्र ने शेषनाग से शरणागति मांगी, शेषनाग ने शरणागति दे दी । इन्द्र वहीं छिपकर रहने लगा । इधर मेघनाथ इन्द्र को खोजते-खोजते नागलोक पहुँचा । नगर के

बाहर तालाब पर एक सुन्दर कन्या अपने सहेलियों के साथ खेल रही थी । मेघनाथ उस कन्या को देख उस पर मोहित हो गया । मेघनाथ ने जब उसका परिचय पूछा, तब उसने बताया कि वह शेषनाग की बेटी सुलोचना है । वहीं दोनों में प्रेम हो गया । मेघनाथ सुलोचना को लेकर शेषनाग के पास गया और कहा- "मैं आपकी बेटी से विवाह करना चाहता हूँ ।" शेषनाग इस प्रस्ताव को स्वीकार करने ही वाले थे कि मेघनाथ ने अपने शत्रु इन्द्र को वहाँ छिपे देखा । मेघनाथ ने तुरन्त इन्द्र पर आक्रमण कर दिया । इन्द्र शेषनाग की शरण में था । इसलिए शेषनाग ने भी युद्ध की घोषणा कर दी । दोनों के बीच भयंकर लड़ाई हुई । इस लड़ाई में मेघनाथ ने किसी तरह इन्द्र को बंदी बना लिया । मेघनाथ इन्द्र को बंदी बनाकर और सुलोचना का हरण कर लंका ले आया । शेषनाग को इससे बड़ी पीड़ा हुई और उसने तभी प्रतिज्ञा की कि मेघनाथ से इसका बदला अवश्य लेंगे । यही कारण है कि शेषावतार लक्ष्मणजी और मेघनाथ में इतनी भीषण शत्रुता है । एक-दूसरे से बदला लेना चाहते हैं, इसलिए युद्धभूमि में भी अधिक समय तक मेघनाथ और लक्ष्मणजी का युद्ध होता है ।)

थोड़ी देर बाद में मेघनाथ की मूर्छा टूटती है, वह सोचने लगता है कि "युद्धभूमि में राम और लक्ष्मण को हराना सम्भव नहीं है ।" इसलिए मेघनाथ ने निर्णय किया कि "लंका की देवी निकुम्भिला माता को प्रसन्न करने के लिए और उनसे आशीर्वाद लेने के लिए उनकी गुफा में जाकर यज्ञ करना होगा ।"

(क्षेपक)

विशेष प्रसंग

अहिरावण और महिरावण के द्वारा राम-लक्ष्मण का हरण

रावण जब युद्ध की विभीषिका को देखा तो वह बहुत घबड़ा गया । उसने अपने दूतों को पाताल लोक में भेजा और कहा- "वहाँ मेरे दो मित्र रहते हैं, अहिरावण और महिरावण । दोनों को युद्ध का समाचार सुनाना और उसे मेरे पास आने को कहना ।" दूत का संवाद सुनकर दोनों भाई लंका आये । रावण ने उन दोनों को राम और लक्ष्मण के विषय में बताया । इन दोनों भाइयों ने रावण को कहा- "हमलोग राम और लक्ष्मण को पकड़कर पाताल लोक ले जाते हैं । रावण के परामर्श से दोनों भाई राम के शिविर

के पास पहुँचे। लेकिन शिविर के अन्दर जाने का मार्ग उन्हें नहीं मिल रहा था। शिविर को हनुमान्‌जी ने अपनी पूँछ से बाड़ बनाकर घेर रखा था। इसलिए उनदोनों ने पातालमार्ग से शिविर में प्रवेश किया। दिनभर की थकान के कारण श्रीराम और लक्ष्मण एक शिलाखण्ड पर विश्राम कर रहे थे, तभी इन दोनों भाइयों ने अपनी माया से श्रीराम और लक्ष्मण को बेहोश कर दिया और दोनों को उठाकर पाताल लोक ले गए। जब सुबह हुई तो श्रीराम और लक्ष्मण को शिविर में न पाकर हनुमान्, सुग्रीव और विभीषण चिन्तित हो गये। तभी विभीषणजी ने कहा– "श्रीराम और लक्ष्मण को अहिरावण और महिरावण हरण करके ले गया है।" ऐसा मेरा अनुमान है। यह सुनते ही हनुमान्‌जी ने कहा– "महाराज सुग्रीव! आप निश्चिन्त रहें और मुझे आज्ञा दें, मैं प्रभु श्रीराम और भैया लक्ष्मण को तुरन्त पाताललोक से लेकर लौटता हूँ।" हनुमान्‌जी पाताल लोक चले गये। अहिरावण और महिरावण ने श्रीराम और लक्ष्मण को एक गुफा में छिपा दिया था कि कल इनकी बलि से देवी की पूजा की जाएगी।

विशेष प्रसंग

(लाखों वर्ष पूर्व रामायण में पाताल की चर्चा आई है। लेकिन आज का विज्ञान पाताल आदि लोकों को नहीं मानता। आश्चर्य है कि लाखों वर्ष पूर्व बिना किसी साधन के हमारे संतों ने पाताललोक और अंतरिक्ष की चर्चा कैसे की? रामायण में पाताललोक की चर्चा होने के कारण आज के वैज्ञानिक रामकथा को दंतकथा मानने लगे हैं। हमारे शास्त्रों में नागलोक, यक्ष और गंधर्वलोक की चर्चा है। ये सभी चर्चा सिर्फ दंतकथा ही नहीं हैं।

अभी हाल में रूस के भूगोलवेत्ता ने पृथ्वी में चौदह कि.मी. की खुदाई की और पाया कि चौदह कि.मी. के नीचे एक बहुत बड़ा खाली स्थान है, जहाँ से जीवात्माओं के चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ रही है। इस स्थान को रूसी वैज्ञानिकों ने नरक बताया है। मतलब पृथ्वी के नीचे विज्ञान की नजर में भी कोई लोक है। केवल चौदह कि. मी. पर एक लोक का पता चला है और पृथ्वी का व्यास तेरह हजार मील है तो सोचने की बात है कि इसमें और कितने लोक होंगे? विज्ञान को इसका पता लगाना चाहिए।

कुछ दिन पहले वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि ऊपर के किसी लोक में ऐसे एलियांस रहते हैं जो बड़ी वैज्ञानिक समझ रखते हैं। वे कभी भी पृथ्वी पर आक्रमण कर सकते हैं। थोड़े दिन बाद उन्हीं वैज्ञानिकों ने कहा– एलियांस समुद्र में रहता

है । एलियांस जहाँ भी रहता हो, लेकिन यह बात प्रमाणित हो गई है कि पृथ्वी के अतिरिक्त और भी लोक हैं, जहाँ जीव आदि रहते हैं । इसीलिए हमारे शास्त्रों में चर्चा आई है कि पृथ्वी के नीचे सात लोक हैं और पृथ्वी के ऊपर सात लोक हैं । इसीलिए इसे चौदहभुवन कहा जाता है । अब तो यह बात प्रमाणित हो गई है कि हमारे संतों ने जिन तथ्यों को उजागर किया था, वे सभी तथ्य वैज्ञानिक हैं । इसलिए पाताल, अतल, वितल, सुतल, तलातल आदि लोकों पर विश्वास करना चाहिए और उसी तरह ऊपर के सात लोकों पर भी विश्वास करना चाहिए । सम्भव है, हमारे संतों ने इन नौ ग्रहों को ही लोक कहा हो, यह तो खोज का विषय है । लेकिन इसे दंतकथा नहीं कहनी चाहिए । पृथ्वी से ऊपर के लोकों के लिए संतों ने सात लोकों की चर्चा की है और विज्ञान आकाश के चार भागों का वर्णन करता है- (1). ट्रोपोस्फीयर(क्षोभमंडल), जो पृथ्वी से 35,000 फीट तक है । (2). स्ट्रैटोस्फीयर(समतापमंडल), जो धरती से 65 मील तक का क्षेत्र है । 19000 मील की ऊँचाई पर ब्रह्माण्ड किरण की वर्षा शुरू हो जाती है । (3). ओजोनोस्फीयर और (4). हेक्साफीयर । इस तरह विज्ञान चार तल तक की बात करता है, लेकिन हमारे संत कहते हैं कि ऊपर सात लोक हैं ।)

इधर हनुमान्‌जी मायानगरी पाताललोक के द्वार पर पहुँचे । द्वार पर एक विशाल पहलवान खड़ा था । हनुमान्‌जी जब भीतर जाने लगे, तो द्वारपाल ने उन्हें रोका । हनुमान्‌जी ने कहा- "तुम्हें मालूम नहीं, मैं पवनपुत्र हनुमान् हूँ । मेरा रास्ता रोककर तुम क्यों मरना चाहते हो?" यह सुन द्वारपाल ने कहा- "आप जो भी हों, मेरे जीते जी आप भीतर प्रवेश नहीं कर सकेंगे ।" हनुमान्‌जी ने बलपूर्वक उसे द्वार से हटाना चाहा, लेकिन वह द्वार से नहीं हटा । दोनों में द्वार पर ही युद्ध होने लगा । हनुमान्‌जी ने कहा- "अभी भी समय है, तुम द्वार से हट जाओ अन्यथा मैं तुम पर गदा से प्रहार करूँगा ।" यह सुन द्वारपाल ने कहा- "आप मुझे गदा से डराने की कोशिश न करें, मैं भी मारूतिनन्दन हनुमान् का पुत्र मकरध्वज हूँ ।" हनुमान्‌जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह तो अपने को मेरा बेटा कह रहा है । इस पर हनुमान्‌जी बोले- "अरे मूर्ख! मारूतिनन्दन तो मैं ही हूँ और मैं बाल-ब्रह्मचारी हूँ, मेरी तो कोई स्त्री भी नहीं है, फिर तुम मेरे पुत्र कैसे हुए?" यह सुन मकरध्वज ने कहा- "पिताजी! आप जब लंका जलाकर समुद्र में कूदे थे, तब आपके मुंह में धुआँ के कारण कफ जमा हो गया

था । उस कफ को आपने समुद्र में थूक दिया था, जिसे एक मछली खा गई । उस मछली को किसी मल्लाह ने राजा को बेच दिया । जब उस मछली का पेट चीरा गया तो, मैं पैदा हो गया ।"

(कई संत यह भी बताते हैं कि हनुमान्‌जी जब समुद्र पार कर रहे थे तो उनके शरीर से पसीने की बूंद समुद्र में गिरी थी । जिसे किसी मछली ने खा लिया था और वह मछली गर्भवती हो गई । उसी मछली के गर्भ से मकरध्वज का जन्म हुआ ।)

मकरध्वज ने कहा- "पिताजी! सौभाग्य से मैंने आज आपका दर्शन किया, आप मुझे आशीर्वाद दें । प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण को मेरे राजा ने बेहोश करके गुफा में छिपा रखा है, लेकिन मैं उनका द्वारपाल हूँ । आपको मैं भीतर जाने नहीं दूँगा । क्योंकि यह द्वारपाल का धर्म नहीं है । इसके लिए एक रास्ता है कि आप मुझे बन्दी बनाकर मेरे हाथ, पाँव और मुँह बांध दें, जब मैं आपको रोकने में असमर्थ हो जाऊँगा, तभी आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे ।" महाबुद्धिमान हनुमान्‌जी ने सोचा- "अगर यह मेरा शत्रु होता, तो अभी इसे मजा चखा देता, लेकिन पहली बार अपने बेटे से भेंट हुई है, इसलिए इसकी बात मान लेनी चाहिए ।" हनुमान्‌जी ने मकरध्वज को रस्सी से बांध दिया और भीतर प्रवेश कर गये । हनुमान् गुफा में जाकर राम-लक्ष्मण को खोजने लगे । तभी एक सुन्दर स्त्री वहाँ खड़ी मिली । उसने कहा- "यहाँ किसे खोज रहे हैं ।" यह सुन हनुमान्‌जी ने उस स्त्री को कहा- "मेरे प्रभु श्रीराम और भैया लक्ष्मण को तुम्हारे राजा ने हरण कर लिया है । मैं उन्हें ही खोज रहा हूँ ।" उस स्त्री ने कहा- "मैं, अहिरावण और महिरावण की अघोषित प्रेमिका हूँ । मैं इन दोनों के अत्याचार से उब चुकी हूँ । अगर आप मुझे अपने राम की पत्नी बना दें तो, मैं राम तक पहुँचने का मार्ग आपको बता सकती हूँ ।" हनुमान्‌जी ने उसकी शर्त स्वीकार कर ली । उस स्त्री ने कहा- "अहिरावण और महिरावण एक भंवरा के कारण बचा हुआ है । जब भी उन दोनों में से कोई भी मरता है, तो वह भंवरा अमृत लाकर उसके मुख में रख देता है । इससे वह पुनः जीवित हो जाता है । इसलिए आप पहले उस भंवरे को मारें ।" वह हनुमान्‌जी को भंवरा के पास ले गई । बहुत भंवरों को तो हनुमान्‌जी ने मार दिया, लेकिन एक भंवरे से हनुमान्‌जी ने कहा- "तुम उस स्त्री के पलंग के नीचे छिपकर उस पलंग की लकड़ी को खोखला कर दो ।" भंवरा ने हनुमान्‌जी की बात मान ली । हनुमान् ने उस स्त्री से कहा- "जब श्रीराम मुक्त हो जाएंगे तो आपके पलंग पर बैठेंगे । अगर पलंग उनका बोझ सह लेगा, तो वे अवश्य ही तुम्हारी शर्त स्वीकार कर लेंगे ।"

ऐसा सुन वह स्त्री भी मान गई और उसने गुफा का द्वार बता दिया । हनुमान्जी छिपकर बैठ गये और वहीं से उन्होंने अपने प्रभु का दर्शन किया और बाहर बैठे लोगों को देवी की आवाज में कहा कि आज मैं बहुत भूखी हूँ । मुझे झरोखे से ही प्रसाद अर्पित करो । इस प्रकार हनुमान्जी ने भरपेट प्रसाद ग्रहण किया, फिर बाहर निकले। अहिरावण और महिरावण से हनुमान्जी का भयंकर युद्ध हुआ । हनुमान्जी ने दोनों को मारकर श्रीराम और लक्ष्मण को मुक्त कराया । उसी समय श्रीराम को मकरध्वज के विषय में हनुमान्जी ने बताया । यह सुनते ही श्रीराम ने मकरध्वज को पाताललोक का राजा बना दिया । उसके बाद श्रीराम हनुमान्जी के अनुरोध पर उस स्त्री के कमरे में गये । श्रीराम ज्योंही पलंग पर पांव रखे, पलंग टूट गया । श्रीराम ने उस स्त्री को मुक्त किया और हनुमान्जी के कंधे पर बैठकर दोनों भाई अपने शिविर में लौट आये ।

मेघनाथ का पतन

मेघनाथ रावण का बड़ा ही पराक्रमी पुत्र था । वह बचपन से ही अपने पराक्रम के कारण संसार में विख्यात हो गया था । जिस समय उसका जन्म हुआ, उसी समय उसकी भीषण गर्जना सुनकर लोगों को लगा कि मेघ गर्जन कर रहे हैं । इसीलिए उसका नाम मेघनाद रख दिया गया । उस मेघनाद को जब पता चल गया कि श्रीराम और लक्ष्मण को परास्त करना सम्भव नहीं है, तो उसने निकुम्भिला देवी का आशीर्वाद पाना चाहा । भगवान् शिव ने उसकी तपस्या से जो रथ दिया था, वह तो श्रीराम के बाण से नष्ट हो गया । इसीलिए उसने निकुम्भिला देवी के मंदिर में यज्ञ करने का निश्चय किया । उसे पता था कि यह यज्ञ गुप्त रूप से किया जाता है और किसी भी तरह इस यज्ञ में विघ्न नहीं पड़ना चाहिए । मेघनाथ गुप्त मार्ग से यज्ञभूमि में पहुँच गया । मंदिर के चारों ओर उसने अपने विश्वस्त सैनिकों को नियुक्त कर दिया ताकि, कोई परिन्दा भी भीतर प्रवेश न करे । मेघनाथ ने यज्ञ प्रारम्भ किया ।

(कहते हैं, जब मनुष्य संसार से हार जाता है तो, परमात्मा की शरण में जाता है । प्रत्येक व्यक्ति को पहले अपने ऊपर बहुत भरोसा रहता है । जब उसका अहंकार टूटता है और दुनिया की थपेड़ों से वह घायल होने लगता है, तब उसे मंदिर का द्वार सुझता है । मंदिर का अर्थ है विश्वास, भरोसा । इसलिए मनुष्य मंदिरों में अपने उसी भरोसा को खोजने जाता है, जिसे वह रूप, जवानी,

धन-वैभव और अहंकार के नीचे दबाये रहता है । संकट के समय वह अपने उन्हीं अहंकारों के मलवे में परमात्मा के भरोसा को खोजता फिरता है ।)

जीवन भर मेघनाथ निर्बल, देव-दानव, यक्ष, गंधर्व को रौंदता रहा और वही पाप जब पहाड़ बनकर उसके सिर पर गिरने लगा, तो वह जीवन से हताश और निराश होकर निकुम्भिला देवी के मंदिर में पहुँचा । मंदिर में वह किसी पवित्र भाव को लेकर नहीं गया, उसका भाव था-हिंसा । भगवान् किसी को हिंसा के लिए आशीर्वाद नहीं देते । श्रीराम और लक्ष्मण मेघनाथ के स्वार्थ के शत्रु हैं । वह अपने को दिव्य बनाने के लिए यज्ञ नहीं कर रहा है । उसकी भावना दूषित है । इस दूषित भावना के कारण ही विभीषणजी ने श्रीराम को मेघनाथ के यज्ञ के विध्वंस करने का लिए कहा । प्रभु श्रीराम ने स्वयं कहा-

चौ०

लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु बिधंस जग्य कर जाई ॥

मेघनाथ ने देवताओं को इतना सताया है कि सारे देवगण भय के कारण लोककल्याण के कार्य भी नहीं कर पा रहे हैं ।

श्रीराम ने आदेश दिया- "हे लक्ष्मण! मेघनाथ यज्ञ करके निकुम्भिला देवी के आशीर्वाद से अजेय बनना चाहता है । तुम जाकर उसका नाश करो ।"

लक्ष्मणजी ने सोचा कि "बदला लेने के लिए अच्छा मौका मिला है । उसने मुझे शक्तिबाण से घायल किया था, आज मैं उसका नाश कर दूंगा ।" लक्ष्मणजी, सुग्रीव, विभीषण और हनमान्जी चुने हुए वीर सैनिकों को लेकर मंदिर की ओर चले।

दो०

रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत ।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ॥

लक्ष्मणजी प्रभु श्रीराम को प्रणाम करके आशीर्वाद लेकर चल दिये । विभीषणजी मंदिर जाने का रास्ता बता रहे थे । मंदिर में मेघनाथ बैठकर यज्ञ कर रहा था । एक साथ सभी वानर-वीर यज्ञ पर टूट पड़े । देखते-देखते यज्ञ को विध्वंस कर दिया । फिर भी मेघनाथ उठ नहीं रहा था । मेघनाथ निकुम्भिला माता को प्रसन्न करने

के लिए यज्ञ कर रहा था और इधर वानर सेना उसके यज्ञ को विध्वंस कर मेघनाथ की पिटाई कर रहे थे । पिटाई से जब मेघनाथ बहुत पीड़ित हो गया, तब उसने अपनी आँखें खोली । उसने देखा- सामने उसके शत्रु लक्ष्मण और उसके काका विभीषण खड़े हैं. उनके साथ हजारों वानर सैनिक यज्ञ-भूमि की ध्वजा पताका को तहस-नहस कर रहे थे । उसने रोषपूर्ण ढंग से अपने काका विभीषण को धिक्कारते हुए कहा- हे कुलघातक! अरे कुलकलंक! तुम इतने नीच हो कि शत्रु से मिलकर अपने भतीजे पर आक्रमण करा रहे हो । लंका के लोग तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगे । तुम्हारे द्रोह के कारण लंका के अनेक वीर यहाँ तक कि महाबली कुम्भकर्ण भी मारे गये । हे कुलघातक विभीषण! आज तुम मेरे शत्रु के साथ-साथ खड़े हो, तुम्हें शर्म नहीं आती। इस मंदिर में आने का मार्ग केवल तुम जानते हो, तुमने इस रहस्य को भी शत्रु को बता दिया । हे राक्षस कुलकलंक! केवल तुम्हारे कारण आज लंका के बड़े-बड़े वीर नष्ट हो रहे हैं और वैसे समय में जब मैं पूजा कर रहा था । उस समय तुमने मेरे ऊपर आक्रमण करा दिया । यह बहुत बड़ी कायरता है । पूजा काल में किसी को भी विघ्न पैदा नहीं करना चाहिए ।" यह प्रताड़ना सुनकर विभीषण ने गरजते हुए कहा- "मेघनाथ! मैं राक्षस कुलकलंक नहीं हूँ। राक्षसों का नाश तो तुम्हारे पिता कर रहे हैं । उसने अपने स्वार्थ के लिए जगद्जननी सीता का हरण कर जघन्य पाप किया है । वर्षों से तुम्हारे पिता ने देव, दनुज, गंधर्व के ऊपर अत्याचार किया और तुम उसकी स्वार्थपूर्ति में कायर बनकर उसकी अनैतिक आज्ञा का पालन करते रहे । यह वीर-पुरुष का धर्म नहीं है । तुमने अपने दुराचारी पिता का समर्थन करके लंका की मर्यादा को कलंकित किया है । मेघनाथ! मैंने हमेशा रावण के अत्याचार का विरोध किया, लेकिन तुमने हमेशा अपने पिता का समर्थन कर मुझे चुप करा दिया । तुम्हारे पिता ने बुजुर्ग माल्यवान को बार-बार अपमानित किया । आज तुम्हारा यह यज्ञ राक्षस जाति के कल्याण के लिए नहीं हो रहा है, इस यज्ञ के पुण्यफल से तुम्हारे पिता के अत्याचार और तुम्हारे अहंकार का पोषण होगा । इसीलिए इस यज्ञ को विध्वंस करने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है ।" यह सुन मेघनाथ ने कहा- "काका! तुमने तो आज अपने भतीजे पर आक्रमण कराया, तुम्हें कौन माफ करेगा?" यह सुन विभीषण ने कहा- "नहीं मेघनाथ नहीं! मैंने भतीजे पर नहीं, एक अत्याचारी पर आक्रमण कराया है । एक अत्याचारी समाज को नष्ट कर सकता है । इसलिए तुम और तुम्हारे पिता को जीवित रहना उचित नहीं है ।" तब वानर वीरों ने उसके बाल पकड़कर लातों से मारना शुरू

किया । जब मेघनाथ को अपनी मृत्यु का आभास होने लगा, तो वह त्रिशूल लेकर दौड़ा । यह वही त्रिशुल था, जब उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे दिव्यरथ और त्रिशूल दिया था । मेघनाथ को दौड़ते देख अंगद और हनुमान् मेघनाथ पर टूट पड़े । उसने शिव के त्रिशूल से दोनों को नीचे गिरा दिया । मेघनाथ अपने पराक्रम से वानर सैनिकों पर प्रहार करने लगा । यह देख लक्ष्मणजी ने बज्र के समान बाण मेघनाथ पर छोड़ दिया । इस बाण को आते देख मेघनाथ अन्तर्ध्यान हो गया । वह माया रूप से युद्ध करने लगा । सबसे पहले जब उसने देखा कि लक्ष्मण भीषण बाणों का प्रहार कर रहा है तो, उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया । ब्रह्मास्त्र को आते देख लक्ष्मणजी ने उन्हें प्रणाम किया, फिर ब्रह्मास्त्र लक्ष्मण की परिक्रमा कर लौट गया । उसके बाद मेघनाथ ने भगवान् शिव के द्वारा प्रदत्त पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया । वह भी लक्ष्मणजी के माथे को स्पर्श करता हुआ लौट गया । तब अन्त में मेघनाथ ने नारायण अस्त्र का प्रयोग किया । नारायण अस्त्र भी लक्ष्मण के चारों ओर घुमकर लौट गया । यह देख मेघनाथ बहुत चिन्तित हुआ । वह समझ गया कि आज लक्ष्मण से बचना मुश्किल है । उसने अपने सेनापति को बुलवाया और कहा– "तुम लंका जाओ और पिताश्री को कहना कि मैं लड़ाई में लक्ष्मण से घिर चुका हूँ । मेरे सारे अस्त्र-शस्त्र विफल हो रहे हैं । सेनापति, तुम पिताश्री को कहना कि आज मैं युद्धभूमि से ही उन्हें प्रणाम कर रहा हूँ, क्योंकि आज के युद्ध में मेरी मृत्यु निश्चित है । पिताजी इतना करें कि मेरी मृत्यु के बाद वे युद्ध को बन्द करा दें, क्योंकि श्रीराम और लक्ष्मण कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं । श्रीराम स्वयं श्रीविष्णु के अवतार हैं और लक्ष्मण शेषनाग के अवतार हैं । उन्हें ब्रह्माण्ड की कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती । इसलिए लंका के कल्याण के लिए वे युद्ध बन्द कर दें और श्रीराम की शरण में चले जाएं ।" फिर लक्ष्मणजी ने अपनी तपस्या से अर्जित दिव्य बाणों का प्रयोग करते हुए एक बाण चलाया और मेघनाथ का हाथ कटकर गिर गया ।

चौ०

लछिमन मन अस मंत्र दृढावा । एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ॥
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ॥

लक्ष्मण के बाण लगते ही मेघनाथ पृथ्वी पर गिरकर तड़पने लगा । तब हनुमान्जी ने मेघनाथ के शरीर को उठाकर लंका के द्वार पर रख दिया और सिर राम के शिविर में पहुँचा दिया ।

मेघनाथ का पतन सुनकर देवता और गंधर्व फूलों की वर्षा करने लगे । यह खबर सुनते ही दशानन मूर्छित हो गया, सुलोचना और मंदोदरी विलाप करने लगी । तब रावण ने उन दोनों को समझाते हुए कहा–

दो०

तब दसकंठ बिबिध बिधि समुझाईं सब नारि ।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि ॥

रावण ने सुलोचना और मंदोदरी को ईश्वर, जगत् और माया के विषय में खूब समझाया ।

चौ०

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

रावण ने दूसरों को खूब उपदेश दिया । पाप–पुण्य के विषय में बताया ।

विशेष प्रसंग

(कई संतों का मत है कि मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् उसका एक हाथ कटकर सुलोचना के आंगन में जा गिरा । सुलोचना शेषनाग की पुत्री और पतिव्रता स्त्री थी । वह विलाप करती हुई हाथ के निकट आई और बोली– अगर यह हाथ मेरे पति का है, तो वह अपना नाम लिखकर मुझे भरोसा दिला दे । कहते हैं, हाथ ने सुलोचना को भरोसा दिला दिया । सुलोचना विलाप करती रही, थोड़ी देर में उसने अपनी पालकी मंगाई और अपने पति का हाथ लेकर श्रीराम के शिविर की ओर चली । शिविर के बाहर जब वानर सैनिकों को पता चला कि मेघनाथ की पत्नी सुलोचना आई है तो, तुरन्त प्रभु श्रीराम को सूचना दी गई । श्रीराम ने तुरंत आदरपूर्वक सुलोचना को बुलवाया और सुलोचना से आने का कारण पूछा । सुलोचना ने कहा– "हे श्रीराम! आप तो परमात्मा हैं, हमलोग अज्ञानी जीव हैं । मुझे आप यह उपदेश दें कि मेरा पति मेघनाथ कैसे मारा गया? मैंने तो पतिव्रत रखा था, जब से युद्ध शुरू हुआ, तब से मैंने अन्न–जल भी ग्रहण नहीं किया । दूसरी ओर एक ज्योतिषी ने भी मुझे बताया था कि तुम्हारा पति अजेय है । उसे कोई मार नहीं सकता । मेरे पति को वही पराजित कर सकता था जो एक पत्नीव्रती हो और बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन किया हो ।"

सुलोचना की बात सुनकर प्रभु श्रीराम ने कहा- "हे सुलोचने! यह ठीक है कि तुम पतिव्रता हो, तुमने व्रत रखा है और यह भी सत्य है कि मेघनाथ को वही परास्त कर सकता था जो बारह वर्षों से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हो । तुम तो एक पवित्र स्त्री हो । तुम्हारे पतिव्रत धर्म के कारण ही मेघनाथ इतना शक्तिशाली बन गया था । लेकिन तुम्हें यह भी स्मरण होगा कि लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला पिछले बारह वर्षों से तप कर रही है और लक्ष्मण बिना सोये बारह वर्षों से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है । दूसरी बात यह है कि तुम अकेली अपने पति की रक्षा के लिए व्रत कर रही थी और उधर सीता और ऊर्मिला दोनों मेघनाथ के नाश के लिए तप कर रही थी । तुम अकेली थी और वे लोग दो थी । इसीलिए तुम हार गई । फिर भी हे सुलोचने! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी गिनती पंच पवित्र कन्याओं में होगी । अब तुम अपने पति का सिर लेकर लंका लौट जाओ । सुलोचना अपने पति का सिर लेकर लंका लौट गई और पति के शरीर के साथ ही सती हो गई ।)

मेघनाथ की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मणजी अन्य वीरों के साथ जयघोष करते हुए अपने शिविर में लौट आए, सभी ने प्रभु श्रीराम को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद लिया ।

मेघनाथ की मृत्यु के पश्चात् जब श्रीराम, लक्ष्मणजी, जाम्बवन्तजी, हनुमान्‌जी सभी लोग शिविर में बैठे थे, उस समय लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर श्रीराम से पूछा- "भैया! मेघनाथ की मृत्यु से मैं प्रसन्न तो अवश्य हूँ, लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में उठ रहा है कि जो मेघनाथ अपनी गर्जना से युद्धभूमि को हिला देता था, वही आज मिट्टी की ढेर की तरह बिना शय्या के लेटा है । कहाँ गया उसका शौर्य और पराक्रम? इसी विषय को सोचकर मेरा मन उद्विग्न हो रहा है । कृपया मेरे मन को शान्त कीजिए ।"

लक्ष्मणजी की बात सुनकर प्रभु श्रीराम मस्कुराये और बोले- "हे लक्ष्मण! तुम्हारे मन का अशान्त होना स्वाभाविक है । क्योंकि युद्ध के अन्त में, मृत्यु के अन्त में और काम-वासना की पूर्ति हो जाने पर मन में जितनी घृणा उत्पन्न होती है, उतनी अगर हमेशा रहे, तो भोग-विलास और कामनाओं से मनुष्य मुक्त हो जाएगा और वह सन्यास को प्राप्त कर लेगा । यही जीवन का सत्य है ।"

श्रीराम ने पुनः कहा- "लक्ष्मण! मनुष्य जब युवा रहता है, वह शक्ति अर्जित करता है और उसी शक्ति से उसे अहंकार हो जाता है । यही अविद्या, जड़ अथवा

अहंकार है । अहंकार के कारण ही **"मैं देह हूँ"** ऐसा बोध होता है और उसी से सुख अथवा दुःख का अनुभव होता है । यह अहंकार अनन्त चिदाभास में व्याप्त रहता है, जिससे जीवन का सम्पर्क होते ही जीव अहंकारी बन जाता है । विवेकशील लोग अहंकार के बन्धन से मुक्त रहते हैं और शेष अहंकार के कारण पापकर्म करने लगते हैं । यह जो शौर्य शक्ति दिखती है, वह अहंकार का प्रदर्शन है । दूसरी ओर पुण्यकर्म करने वाले लोग अपने अच्छे कर्म के कारण अहंकार करने लगते हैं । फलतः पुण्यकर्म के कारण स्वर्ग तो पाते हैं, लेकिन पुण्य का फल नष्ट होते ही पृथ्वी पर आ गिरते हैं । लेकिन मोक्ष में ऐसा नहीं होता । मोक्ष का अर्थ है- मोह का क्षय हो जाना । मोह का क्षय होते ही जीव, ब्रह्म को पा लेता है । लेकिन जिनका स्वर्ग से पतन होता है, वह पहले चन्द्रमा पर गिरता है, फिर चन्द्रमा के किरण के द्वारा पृथ्वी पर गिरता है । बहुत दिनों तक ब्रीहि में वह प्राणतत्त्व विचरण करने लगता है । ध्यान रहे हम सभी लोग चार प्रकार के भोजन करते हैं- भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य । प्राणतत्त्व इन्हीं भोजन विधि के द्वारा वीर्य बनकर शरीर में आता है । वही वीर्य स्त्री योनि में जाता है और रज से मिलकर झिल्ली बन जाता है । पाँच रात्रि के बाद वह ठोस बनने लगता है । सात रात के बाद माँसपेशी, पन्द्रह दिनों के बाद रूधिर, पच्चीस दिनों के बाद अंकुर, एक मास के बाद सिर, कंधा, हड्डी, पेट उत्पन्न होते हैं । दो मास के बाद हाथ-पाँव की आकृति, तीन मास में अंगों की सन्धि, चार मास में ऊँगली, पाँचवें में कान, नाक, आँख एवं इन्द्रियाँ, छठे में कान के छिद्र, स्त्री-पुरुष के भेद, लिंग, नाभि, सातवें में रोम एवं केश, आठवें में सभी अंग प्रकट हो जाते हैं । वही पिण्ड नाभि के द्वारा भोजन ग्रहण करता है, उस समय जीव को पूर्व जन्म की पूरी कथा का स्मरण रहता है । नौ मास तक जीवन नरक-कुण्ड में पड़ा रहता है, फिर वह योनि मार्ग से बाहर निकलता है । उस दुर्गन्ध भरे स्थान में कीड़ा की तरह दुःख भोगने वाला जीव जब बाहर होश सम्भालता है, तो उसका सम्बन्ध बाहर के चिदाभास से हो जाता है, तब वह अहंकारी बन जाता है । अज्ञानी इस रहस्य को नहीं जानते । लेकिन ज्ञानी पुरुष परमात्मा की शरणागति में जाकर ऐसे पापों से मुक्ति चाहता है ।"

"हे लक्ष्मण! मेघनाथ अहंकारी हो गया था, उसने भगवान् शिव की पूजा तो की, लेकिन अपने जीवन में शिवतत्त्व को नहीं उतारा । इसलिए इतना शक्तिशाली होते हुए भी वह मृत्यु को प्राप्त हुआ । इसलिए हे लक्ष्मण! यह जो संसार दिख रहा है, वह पानी के बुलबुले की तरह है, जो दिखता तो है, पर है नहीं । अगर मेघनाथ अपनी

शक्ति को सत्कर्म में लगाता, तो उसे सत्पुरुष माना जाता । ऐसा व्यक्ति जो अपनी शक्ति से निर्दोष लोगों को सताता हो, बिना कारण अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता हो, वह समाज में कभी भी आदर नहीं पाता ।"

"हे लक्ष्मण! तुम्हारे मन में जो संताप हो रहा है, इसका एक ही कारण है कि तुमने इस संसार से अपने मन को जोड़ लिया है । यहाँ कुछ भी सत्य नहीं है । इसलिए मन में संताप करना उचित नहीं है । संताप करके अपने कर्म से विचलित होना पाप है । लंका का युद्ध, पाप और पुण्य का युद्ध है । तुमने मेघनाथ रूपी पाप का नाश किया है । मेघनाथ का नाश तो होना ही था । तुम तो केवल माध्यम बने हो । तुम नहीं करते तो कोई और करता । यही तो प्रकृति का नियम है । इसलिए अपने मन को स्थिर करो ।" इसके बाद सभी अपने अपने शिविरि में लौट गये ।

रावण की ठगी और माया को देख सीताजी का आश्चर्य में पड़ना

रावण को जब पता चला कि मेघनाथ मारा गया, तो रावण मूर्छित होकर गिर गया । लेकिन जब उसे होश आया तो, वह अपनी तलवार लेकर सीताजी को काटने के लिए अशोकवाटिका की ओर जाने को तैयार हो गया । लेकिन तभी उसका मंत्री सुपार्श्व ने रावण को रोका और कहा- "महाराज! स्त्री हत्या का पाप न करें ।" तब रावण ने सुपार्श्व से कहा- "ऐसा करो, युद्धभूमि में माया की रचना करो और राम-लक्ष्मण एवं वानर सैनिकों को मरे हुए दिखाओ । उसके बाद त्रिजटा से कहो कि वह सीता को विमान से इस दृश्य को दिखाकर आश्वस्त करे कि राम और लक्ष्मण मारे गये । तब सीता मेरी बन जाएगी ।"

सुपार्श्व ने ऐसा ही किया । त्रिजटा ने सीता को विमान पर बिठाकर युद्धभूमि के दृश्य को दिखाया । सीता ने जब यह दृश्य देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । सीताजी ने कहा- "हे माता त्रिजटा! राम तो परमात्मा हैं, वे कैसे मर सकते हैं? मेरे पति इस ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं । वे मुझे छोड़कर असहाय की भाँति पृथ्वी पर कैसे पड़े रहेंगे? और दूसरी बात है कि ज्योतिषी ने मुझे कहा था कि तुम्हारा राम के साथ राज्याभिषेक होगा । यह बात झूठी कैसे हो सकती है । हे माता! तीसरी बात यह है कि अभी तक मेरे पति के न होने पर मुझे कोई अपशकुन नहीं हुआ, मेरी आँख नहीं फड़की, मेरे चेहरे की रौनकता लालिमापूर्ण है, मेरी अंगुलियों में कोमलता बनी हुई हैं,

हाथ की रेखाएं पूर्ववत् हैं, मेरे हृदय में विराजमान मेरे पति का चित्र मलिन नहीं हुआ है, मेरे हृदय में अभी भी पति से मिलने का अनुराग बना हुआ है, मन से काम का भाव नष्ट नहीं हुआ है, मेरी माँग पर सुहाग-सिन्दूर अभी भी दीप्तिमान् हो रहा है। हे माता! अतः मैं कैसे मान लूं, कि मेरे पति जीवित नहीं हैं।" यह सुन त्रिजटा ने कहा- "बेटी सीता! मुझे लगता है यह रावण की माया है। तुम देखना, रावण ने अवश्य ही कोई माया रची है। क्योंकि यह स्त्री का मनोविज्ञान है कि जब उसका पति उसके जीवन में आता है, तो पति को देखकर ललाट के ऊपर सिन्दूर लगाने के स्थान पर जो सुम्नी नाड़ी है, वह सक्रिय हो जाती है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसीलिए सुहागन औरतें उसी सुम्नी नाड़ी पर सिन्दूर लगाकर उसे प्रदीप्त करती रहती है और जब उसका पति नहीं रहता, तो स्वतः सुम्नी नाड़ी निष्क्रिय हो जाती है, क्योंकि उसके शरीर से काम और राग नष्ट हो जाता है। इसीलिए विधवा औरतें अपने माथे पर सिन्दूर नहीं लगाती हैं। क्योंकि विधवा अगर माथे पर सिन्दूर लगावे तो, सुम्नी नाड़ी के सक्रिय होने का भय रहता है। औरत जब विधवा हो जाती है, तो स्वतः उसके मन से कामभाव और राग नष्ट हो जाता है। हे सीते! तुम्हें तो ऐसा कुछ बोध नहीं हो रहा है। फिर कैसे मान लें कि तुम्हारा पति अब नहीं है।" त्रिजटा और सीता पुनः अशोकवाटिका लौट गई।

थोड़ी देर बाद रावण अपने कुछ सैनिकों के साथ अशोकवाटिका पहुँचा, उसके एक सैनिक के हाथ में राम का कटा हुआ सिर था। सिर को दिखाते हुए रावण ने कहा- "हे सीते! तुम्हारा राम युद्धभूमि में मारा गया।" यह सुन सीताजी ने अपने सिर को झुकाये हुए रावण से कहा- "अरे मायावी! तुम कितनी भी मायाजाल रच लो, लेकिन मैं प्रभावित नहीं हो सकती। क्योंकि मैं मानती हूँ कि मेरे पति को कोई कैसे मार सकता है। जो दुनिया को जीवित रखता है, वह स्वयं कैसे मर सकता है? अरे रावण! तुम मुझे माया का सिर दिखा रहे हो, मैं तो देख रही हूँ कि मेरे पति तुम्हारे सिरों को खण्डित कर युद्धभूमि में फेंक रहे हैं और वानर सैनिक तुम्हारे सिर को अपनी लातों से मारकर गेंद खेल रहे हैं। तुम दो-चार दिन और प्रतीक्षा कर लो। लंका के सभी राक्षस तुम्हारे कटे हुए सिरों पर थूकेंगे।" सीताजी की बात सुनकर रावण क्रोध में पागल होकर अपने महल में लौट गया।

इस बीच श्रीराम की आज्ञा से वानर सैनिकों ने लंका में जगह-जगह पर घास-पुआल रखकर उसमें आग लगा दी, जिससे पूरी लंका फिर जलने लगी। यह

देख रावण ने मेघास्त्र चलाया । मेघ के पानी से आग तो बुझ गई, लेकिन रावण के भीतर जो भीषण आग लगी थी वह नहीं बुझी । रावण पागलों की तरह अपने महल में घूमने लगा ।

रावण ने सोचा कि "इस युद्ध में यज्ञ के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के सिवाय और कोई दूसरा रास्ता नहीं है ।" उसी समय मंदोदरी रावण को समझाने पहुँची । मंदोदरी ने कहा– "हे नाथ! आप राम से युद्ध न करें । वे परमशक्ति प्राप्त परमेश्वर हैं । आप सीता को लौटा दें । विभीषण को राज्य देकर हम दोनों तपस्या करने चलें ।" यह सुन रावण ने कहा– "हे प्रिये! मैं जानता हूँ, राम परमात्मा हैं । क्योंकि सामान्य व्यक्ति कुम्भकर्ण और मेघनाथ, अतिकाय, नारान्तक जैसे वीरों को मार नहीं सकता । लेकिन मैं क्या करूँ? अब मैं तप नहीं कर सकता । मैं पूर्ण तामसी बन चुका हूँ । तप करना मेरे लिए सम्भव नहीं है । मैंने सीता का हरण उस उद्देश्य से किया है कि राम यहाँ आकर मेरा उद्धार करेंगे । हे प्रिये! मेरी मृत्यु के बाद तुम सती हो जाना, यही उचित होगा ।" मंदोदरी के जाने के पश्चात् रावण ने सोचा कि इस समय दैत्यगुरु शुक्राचार्य से सहायता लेनी चाहिए । क्योंकि वीर पुरुष मरता भी है तो, बहादुरी से लड़ाई करते हुए मरता है । लड़ते हुए मरने वाला वीर माना जाता है, कायरता पूर्ण मरना भी उचित नहीं है ।

रावण का यज्ञ

रावण शुक्राचार्य के पास गया । शुक्राचार्य ने रावण को बताया– "मैं तुम्हें मंत्र बताता हूँ, तुम इस मंत्र से यज्ञ और हवन करो, उसी यज्ञ से तुम्हें एक दिव्य रथ प्राप्त होगा, जो तुम्हें विजयी बनाएगा ।"

रावण महल के एक गुप्त स्थान में जाकर यज्ञ करने लगा । यज्ञ का धुआँ जब बाहर निकलने लगा तो, विभीषणजी को चिन्ता होने लगी । उन्होंने श्रीराम की आज्ञा से वानर सैनिकों को रावण के महल में भेज दिया । विभीषण की पत्नी सरमा ने वानर सैनिकों को यज्ञ स्थल की ओर संकेत कर दिया । देखते-देखते हजारों वानर सैनिक यज्ञ स्थल में घुस गये । सबों ने वहाँ तोड़-फोड़ शुरू कर दी । कोई रावण को लातों से मार रहा था तो, कोई उसके बाल नोच रहे थे । लेकिन रावण मंत्र जाप में लीन था । वानर सैनिकों ने देखा कि रावण हिल नहीं रहा है, तो वानर सैनिकों ने रावण को लात-मुक्कों से पीटना शुरू किया और सैनिकों ने यज्ञ को पूरी तरह विध्वंस कर

दिया । रावण जब यज्ञ से उठा तो अपने सैनिकों को आदेश दिया कि पूरी शक्ति के साथ वानर सैनिकों पर आक्रमण किया जाए और वह स्वयं अपना रथ लेकर युद्धभूमि में पहुँच गया ।

रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान

क्रोधित रावण युद्धभूमि पहुँचा । उसने जाते ही आग्नेयास्त्र छोड़ा । प्रभु श्रीराम ने रावण के अस्त्र का जवाब दिया । राम और रावण के युद्ध को देखकर लगता था, कुछ ही क्षण में महाप्रलय हो जायेगा । रावण महाप्रतापी योद्धा तो था ही, उसने अपने तपोबल से विभिन्न प्रकार के दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, दूसरी तरफ वह मायावी भी था । सम्भवत: यही कारण था कि इन्हीं गुणों के कारण वह त्रिलोक विजेता बन गया था । रावण अपने अर्जित दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगा । वह जानता था कि उसके बाणों का उत्तर कोई भी देव, दानव, गंधर्व नहीं दे सकता । केवल परमात्मा शक्ति सम्पन्न अवतारी पुरुष ही उसके बाणों को काट सकता है । यह बात प्रभु श्रीराम भी जानते थे । इसलिए प्रभु श्रीराम स्वयं रावण के सामने खड़े हुए । युद्ध के प्रथम चरण में रावण पर श्रीराम ने पहले आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वीर पुरुष पहले शत्रु को मौका देता है, फिर उसके आक्रमण का जवाब देता है । श्रीराम ने वैसा ही किया ।

अपने दिव्यास्त्रों को कटते देख दशानन ने माया का सहारा लिया । वह एकाएक युद्धभूमि से विलीन हो गया और थोड़ी देर में जितने वानर सैनिक थे, सबके सामने एक-एक रावण खड़ा हो गया । यह देख वानर सैनिक भ्रमित हो गये ।

चौ०

अंतरधान भयउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटके भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥

इस चकाचौंध को देखकर वानर-सैनिक भागने लगे । वानर सैनिक घबड़ाकर लक्ष्मणजी और श्रीराम को पुकारने लगे ।

चौ०

भागे बानर धरहिं न धीरा । त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥

यह दृश्य देखकर श्रीराम की ओर से भेष बदलकर जितने देव, यक्ष, गंधर्व लड़ रहे थे, सभी अपनी जान बचाकर भागे । सोचने लगे "जब एक ही रावण देवताओं को जीत सकता है तो, इतने रावण से बचकर हम कहाँ भागेंगे ।" यह दृश्य देखकर प्रभु श्रीराम ने एक ऐसा बाण चलाया, जिससे माया के सभी रावण नष्ट हो गये ।

चौ०

प्रभु छन महुँ माया सब काटी । जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ॥

रावनु एकु देखि सुर हरषे । फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे ॥

श्रीराम ने सभी वानर सैनिकों को पुनः बुलाया । सैनिकों को लौटते देख रावण ने फिर गर्जना की और कहा- "अरे कायरों! मेरे सामने आज तक तुम कभी खड़े नहीं हुए, आज युद्ध करने आए हो ।"

चौ०

हाहाकार करत सुर भागे । खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ॥

रावण की गर्जना सुनकर अंगदजी दौड़े और उन्होंने रावण की टांग खींचकर पटक दिया और दो-चार लात लगा दिया । रावण पुनः उठा, इस बीच अंगद, हनुमान्‌जी, नल और नील तथा दूबिध ने पहाड़ व वृक्षों से रावण पर आक्रमण कर दिया । लेकिन रावण भी कम नहीं था, वह उन्हीं पत्थरों और वृक्षों को रोककर बन्दरों पर चलाना शुरू किया । नल, नील तो उसके सिर पर चढ़ गये और अपने नाखुनों से रावण को घायल कर दिया । यह देखकर रावण अत्यन्त क्रोधित हो गया और उसने वानर सैनिकों पर भीषण आघात शुरू किया ।

चौ०

देखि भालुपति निज दल घाता । कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥

युद्ध का दृश्य ऐसा हो गया कि लगता था, आज प्रलय हो जायेगा । इतना भयंकर युद्ध रावण ने स्वयं भी नहीं देखा था । इसी बीच हनुमान्‌जी ने रावण की छाती में एक लात मारकर उसे मूर्छित कर दिया । रावण को मूर्छित देख उसके सारथी ने रथ को रावण सहित महल में ले गया । रावण की जब मूर्छा टूटी तो उसने सारथी को बहुत डांटा । रावण के पूरे शरीर में श्रीराम के बाणों का घाव लगा था और हनुमान्

जी की लात के चोट से रावण बहुत व्यथित हो रहा था । तभी सुषेन वैद्य ने अपनी दवाओं से रावण का उपचार किया । फिर रावण विश्राम करने चला गया ।

विशेष प्रसंग

(राम रावण के युद्ध के विज्ञान को समझने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीराम और रावण जिन बाणों का प्रयोग कर रहे थे, वे अलग-अलग प्रभाव पैदा कर रहे थे । कभी अग्निबाण चलता था तो, कभी माया के कारण युद्धभूमि अन्धकार में डूब जाती थी । सामान्यतया इसका अर्थ लगाया जाता है कि ये लोग विभिन्न प्रकार के मंत्रों से इस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करते थे ।

दरअसल बाण तो प्रायः एक ही होता है, लेकिन मंत्रशक्ति से उन बाणों को अभिषिक्त किया जाता था । मंत्रशक्ति का विशेष प्रभाव उन बाणों पर होता था और तभी वे बाण विभिन्न स्वरुप ग्रहण कर अपना प्रभाव उत्पन्न करते थे । मंत्रशक्ति को हम आज भी स्वीकार करते हैं । मंत्र का अर्थ ही होता है मन का तंत्र । मन के तंत्र की प्रयोग विधि । जब उन बाणों को अभिषिक्त कर चलाया जाता था तो मन की शक्ति और चलाने वाले का प्रगाढ़ विचार उन बाणों को प्रेरित करता था । आज का भौतिक विज्ञान भी मानता है कि विचार से पदार्थ प्रभावित होता है । कई वैज्ञानिकों ने विचार सम्प्रेषण और मन के वेगों के द्वारा भौतिक पदार्थों को प्रभावित किया है । आईन्सटीन के समय में भी कई वैज्ञानिकों ने इसकी पुष्टि की है । हमारे आध्यात्मिक विज्ञान में भी विचार विज्ञान को बहुत महत्त्व दिया गया है । मैंने स्वयं अंतरिक्ष से प्राण ऊर्जा ग्रहण करने की बात कही है । इसलिए मन में जैसा विचार उठता है, उन्हीं विचारों का प्रक्षेपण हम किसी दूसरे व्यक्ति पर करते हैं । श्रीराम अथवा रावण ने बाणों को अभिषिक्त किया, फिर मन में विचार किया कि इस बाण को अमुक दिशा में अग्निबाण अथवा कोई अन्य बाण बनकर शत्रु दल पर प्रभाव उत्पन्न करना है । जैसा विचार मन में उठता है, बाण का प्रभाव वैसा ही होता है । इन बातों को इस उदाहरण के द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि-

महाभारत में अर्जुन ने भीष्म पितामह को प्रणाम करने के लिए उनके पैर के निकट बाण गिराया और भीष्म पितामह ने अर्जुन को आशीर्वाद देने के लिए बाण चलाया । वह बाण अर्जुन के मस्तक को छूता हुआ निकल गया । अर्जुन प्रणाम करना चाहता था, भीष्म पितामह आशीर्वाद देना चाहते थे । उसी तरह शर-शैय्या पर लेटे भीष्म पितामह को पानी पिलाने के लिए अर्जुन ने पाताल गंगा से जल मंगवाया ।

अभी हाल ही में चीन के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा मिसाइल बादलों पर छोड़ा है, जिससे बादल बरसने लगा और पूरे चीन में काफी बर्फ गिरी । यह आज के लिए चमत्कार और विज्ञान की बात हो सकती है, लेकिन हमारे पूर्वज लाखों वर्ष पूर्व इस तरह का ज्ञान रखते थे । उसी ज्ञान को खोजने की आवश्यकता है । आज दुनिया जिसे विज्ञान की उपलब्धि मान रही है, उन समस्त विद्याओं का ज्ञान भारत को प्राचीनकाल से था, जो मनुष्य के आध्यात्मिक शक्ति से संचालित होता था । लोग मनचाहे बाण चलाकर अग्नि अथवा पानी की वर्षा करा लेते थे ।

युद्ध में हम देखते हैं कि दिव्यास्त्रों के प्रयोग के पहले मंत्र का उच्चारण किया जाता है, फिर मन में विचार किया जाता है कि शत्रु के अमुक अंग को क्षतिग्रस्त करना है । चलाने वाला जैसा विचार करता है, बाण उसी स्थान पर लगता है । इसका अर्थ है- बाण का काम केवल चलना है, लेकिन किस अंग पर लगना है, इसका प्रभाव वह बाण चलानेवाले से ग्रहण करता है ।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि मंत्रों का जो भी प्रभाव हो, लेकिन चलानेवाले के विचार जैसा होगा, वैसा ही प्रभाव वह बाण प्रकट करेगा । इसलिए एक ही तरकस से निकला हुआ बाण कई प्रकार का प्रभाव प्रकट करता हुआ दिखता है । इसका मूलभाव चलानेवाले के विचारों की प्रगाढ़ता और विचारों के घनीभूत स्वरुप का प्रक्षेपण है । जैसे- सूर्य की किरणों को लेंस से पार कराने पर आग उत्पन्न होती है । सब कुछ हमारे विचार पर निर्भर करता है । बाण का काम है संधान किए गए वस्तु पर चोट करना । लेकिन वह कभी अग्निबाण बन जाए, कभी जल वर्षा करने लगे, यह हमारे विचार पर निर्भर करता है । विचार से ही हम निर्णय करते हैं कि मन में काम का विचार उठे या भक्ति की लहर उठे । हमारा जैसा विचार होगा, वैसा ही प्रभाव उत्पन्न होगा । जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं तो यह हम पर निर्भर है कि उस व्यक्ति को प्यार करें या घृणा करें । हम विचार से प्रभावित होकर प्रेम अथवा घृणा करने लगते हैं । हम भी वही हैं, दूसरा व्यक्ति भी वही है । लेकिन विचार बदलते ही प्रभाव बदल जाता है ।

युद्ध में हमने देखा कि कोई बाण शत्रु का प्राण लेने के लिए ही नहीं जाता, वह कभी रथ तोड़ता है, तो कभी घोड़ा को मारता है, कभी शत्रु का मुकुट गिरा देता है । लेकिन शत्रु के सिर को नहीं छूता । राम ने रावण पर अनेक बाण चलाये, लेकिन सभी का प्रभाव अलग-अलग रहा । इससे स्पष्ट होता है कि बाण पर जब मंत्रशक्ति का प्रयोग

होता है तो वह विशिष्ट बन जाता है, उसके बाद चलानेवाले के विचारों से प्रभावित होकर वह शत्रु पर प्रभाव उत्पन्न करता है । यही इन दिव्यास्त्रों का अर्थ है ।)

दूसरे दिन पुनः रावण पूरी शक्ति के साथ युद्धभूमि में जाने के लिए तैयार हुआ । उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि "लंका के सभी लोग युद्ध की ओर प्रस्थान करें ।" युद्ध की तैयारी देखकर लगता था कि आज निर्णायक युद्ध होगा-

चौ०

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
हौं मारिहउँ भुप दौ भाई । अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥

लगता था रावण आज निर्णायक युद्ध करेगा । रावण को पता चल गया था कि राम को परास्त करना सम्भव नहीं है । दरअसल वह जानता भी था कि राम परमात्मा हैं । क्योंकि इसके पहले उसने मंदोदरी को अपना परम उपदेश दे चुका था कि यह शरीर नश्वर है, इसके नाश से दुःखी नहीं होना चाहिए ।

विशेष प्रसंग

"नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि ।"

रावण मंदोदरी को समझाता है कि यह शरीर नश्वर है, लेकिन वह स्वयं इस बात को नहीं स्वीकार करता है । क्योंकि अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है । वह कभी भी विवेक को जागृत होने नहीं देता । वह जानता है कि उसका आचरण गलत है । लेकिन इतना अहंकारी है कि वह अच्छे-बुरे का भेद नहीं कर पाता । उसके हठ और अहंकार के कारण उसकी सोने की लंका तबाह हो रही है, कुम्भकर्ण जैसा भाई और मेघनाथ जैसा पुत्र मारा गया, उसके सभी महाबलशाली सेनापति मारे गये । फिर भी वह अपने हठ पर खड़ा रहा ।

(आज भी हमारे समाज में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो छोटी-छोटी बातों में उलझकर अपना सर्वस्व नाश कर लेते हैं । क्रोध एवं लोभ में पड़कर जीवन भर की कमाई नष्ट कर लेते हैं, फिर भी उन्हें होश नहीं आता । आज रावण के हाथ से सब कुछ फिसलता जा रहा है, लेकिन वह युद्ध के लिए अडिग खड़ा है । कई लोग प्रश्न उठाते हैं कि रावण जब जानता था कि राम से युद्ध कर वह मरेगा, तो उसने कुम्भकर्ण और मेघनाथ को मरने के लिए युद्धभूमि में क्यों भेजा? दरअसल रावण राक्षस था,

विद्वान होने पर भी उसमें पशुता भरी थी । वह शांतिपूर्ण समझौता नहीं कर सकता था । इसलिए जब अंगदजी समझौता का प्रस्ताव लेकर गये तो, रावण ने उसे कायरतापूर्ण प्रयास कहा । इसीलिए अंगदजी जब रावण से मिलकर लौटे थे, तभी अंगद ने श्रीराम से कहा– "हे प्रभु! आप शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं, लेकिन रावण इसे आपकी कमजोरी मानता है ।" इसी पर श्रीराम ने कहा था– "अंगद! युद्ध को टाला नहीं जा सकता, लेकिन टालने का प्रयास तो किया ही जा सकता है । जब समझौता के सारे द्वार बन्द हो जाएं, तभी युद्ध की ओर प्रस्थान करना चाहिए । यह सभी जानते हैं कि लड़ाई–झगड़ा अथवा युद्ध से किसी भी पक्ष को लाभ नहीं होता । महाभारत में श्रीकृष्ण ने युद्ध को टालने का हरसंभव प्रयास किया । जब शान्ति प्रस्ताव विफल हुआ तभी युद्ध हुआ । वर्तमान समाज में भी विवेकशील लोग शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं, लेकिन अविवेकी और उन्मादी लोग नहीं चाहते तभी लड़ाई होती है । रावण अगर स्वयं प्रभु की भक्ति नहीं कर सकता था, तब भी उसे युद्ध का माध्यम नहीं चुनना चाहिए था । उसकी मुक्ति के और भी मार्ग हो सकते थे । लेकिन पूरी लंका को कुम्भकर्ण, मेघनाथ, अरिमर्दन, अतिकाय जैसे वीरों की आहूति देकर अपनी मुक्ति का प्रयास करना उसकी मूर्खता थी । लेकिन राक्षस होने के कारण युद्ध की भाषा के सिवा वह दूसरी भाषा नहीं जानता था । यही उसके वंश के नाश का कारण बना । मेघनाथ और कुम्भकर्ण ने गलत आचरण करने वाला रावण का साथ दिया, जिसकी सजा उसे मिली । क्योंकि अत्याचारी का साथ देने वाला भी अत्याचारी होता है । ऐसा शास्त्रों का मत है ।)

रावण अपने सैनिकों को अन्तिम लड़ाई लड़ने का आदेश दे रहा था, तभी उसकी बहन सूर्पणखा रावण के रंगमहल में पहुँची । उसने स्त्रियाचरित्र दिखाते हुए अपने भाई रावण को धिक्कारते हुए कहा– "भैया! इसी सीता के कारण हमारी लंका का नाश हो रहा है, हमारे सभी वीर मारे गये, इसलिए आप सीता की अभी हत्या कर दें, तभी मेरा बदला पूरा होगा ।" यह सुन रावण ने कहा– "नहीं सूर्पणखा! पहले मैं उन दोनों भाइयों को मारूँगा, फिर सीता को अपनी पटरानी बनाऊँगा । मैं सीता के मोह को छोड़ नहीं पा रहा हूँ ।" यह सुनते ही सूर्पणखा ने कहा– "भैया! जिस सीता के कारण मेरी नाक कटी और जिसके कारण आज पूरी लंका का नाश हो रहा है, उसी को आप पटरानी बनाना चाहते हैं ।" आप महास्वार्थी हैं, अगर आज मेरा पति विद्युत्जिह्व जीवित होता, तो वह मेरी बेइज्जती का बदला अवश्य लेता । लेकिन

आपने मेरे पति की हत्या कर दी और आज जब मेरी बेइज्जती हो रही है, तो आप उस सीता को रानी बनाना चाहते हैं । जिसके कारण उस तपसी ने मेरी नाक-कान काट ली थी । सूर्पणखा ने स्त्रियाचरित्र का सहारा लेते हुए रावण को खूब उकसाया । लेकिन रावण काम और अहंकार के वश में था । इसलिए उसने सूर्पणखा की बात नहीं मानी । कामी पुरुष विवेक खो देता है-

कामी निर्बल होत है, धन-बल रहे अनन्त ।
भडुआई के कारणे, तड़प-तड़प मरे अन्त ॥

विशेष प्रसंग

(सूर्पणखा रामकथा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । सूर्पणखा के उकसाने पर ही रावण सीता हरण करता है । रावण को उकसाने में सूर्पणखा का अपना स्वार्थ है । वह चाहती है कि मैं राम से विवाह कर लूँ । श्रीराम को देखकर वह काम पीड़ित हो जाती है । लेकिन जब उसे पता चलता है कि सीता के रहते हुए श्रीराम उससे विवाह नहीं करेंगे तो, वह सीता को ही खा जाना चाहती है । जब वह ऐसा नहीं कर सकी तो, उसने खर और दूषण को उकसाया । गलत उकसावे में पड़ने के कारण खर, दूषण मारे गए । क्योंकि जो व्यक्ति स्वार्थी व्यक्ति के उकसाने पर कोई काम करता है, उसका नाश हो जाता है । उसके बाद सूर्पणखा रावण को उकसाने जाती है और सीता हरण होता है । इसी उकसाने के कारण ही रावण अपनी मौत को निमन्त्रण दे देता है । कहा जाता है- "स्त्री जितना प्रेम कर सकती है, उससे अधिक वह ईर्ष्या भी कर सकती है ।" सूर्पणखा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए रावण को उकसाती है, जिस कारण रावण का सर्वनाश हो जाता है । जो भी व्यक्ति अपने हित और अहित का विचार किए बिना कोई आचरण करता है, वह अपना नुकसान कर लेता है । युद्ध प्रारम्भ होने पर लंका के सभी लोग रावण को समझाते हैं- युद्ध रोक दो, केवल नारी हठ के कारण सूर्पणखा कहती है, "जिस राम ने मेरा अपमान किया, उसका नाश करो । युद्ध में उसका भाई, भतीजा सब मारा गया, फिर भी वह राम से बदला लेना चाहती है ।"

लड़ाई के अंतिम क्षणों में जब रावण युद्ध करने जाता है, तो पहले ही दिन अंगद और हनुमान् के प्रहार से वह मूर्छित होकर लंका लौटता है । बचे हुए सभी लोग जानते हैं कि लड़ाई में रावण की मृत्यु होगी, ऐसे समय में भी सूर्पणखा रावण को उकसाती है कि सीता की हत्या कर दो ताकि उसका रास्ता साफ हो जाए । क्योंकि सीता जब

तक रहेगी, राम सूर्पणखा से विवाह नहीं कर सकते । इसी के लिए शास्त्रों में यह माना गया कि- **"अवगुन आठ सदा उर रहइ ।"** स्त्री माँ भी है, पत्नी और बेटी भी है, लेकिन जब वह ईर्ष्या में पड़ जाती है, तो विवेक खो देती है । सूर्पणखा के इसी ईर्ष्या और अविवेक के कारण रावण सहित पूरी लंका का साम्राज्य नष्ट हो गया ।)

श्रीराम के शिविर में तैयारी

श्रीराम के शिविर में भी जाम्बवन्त, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, विभीषण से विचार-विमर्श कर युद्ध की नीति पर विचार करने लगे । लंका के चारों ओर महाबली वानर सेनापतियों को नियुक्त किया गया । तभी हनुमान्‌जी ने कहा- "शत्रु पर आक्रमण करने के लिए आवश्यक है कि उस पर सभी दिशाओं से आक्रमण किया जाए, ताकि वह अस्त-व्यस्त हो जाए ।" श्रीराम और लक्ष्मण अपने शिविर में बैठे थे, तभी श्रीराम ने कहा- "लक्ष्मण! विभीषणजी लंका की घेराबन्दी पर विचार कर रहे हैं, तुम उनके विचारों की समीक्षा करो ।" श्रीराम का आदेश पाते ही लक्ष्मणजी विभीषणजी के पास आए और विचार-विमर्श करने लगे । इस बीच श्रीराम अपने शिविर में अकेले बैठे थे । तभी महर्षि अगस्त श्रीराम के पास आये । सभी देव, गंधर्व, ऋषि-मुनि, छिपकर राम-रावण युद्ध देख रहे थे । क्योंकि इन देवताओं को भी भरोसा नहीं था कि श्रीराम युद्ध में विजयी होंगे । यहाँ तक कि इन्द्र भी रावण के भय से श्रीराम की सहायता नहीं कर पा रहे थे । श्रीराम की सहायता में कोई एक देवता भी नहीं आ रहे थे । क्योंकि उन्हें भय था कि अगर रावण बच गया, तो फिर वह इन देवताओं की काफी दुर्गति करेगा ।

महर्षि अगस्त ने श्रीराम से कहा- "हे प्रभु! रावण महाबलशाली है । उसने अपनी नाभि में अमृत छिपा रखा है । जिस कारण आप जितनी बार भी उसका सिर काटेंगे, वह फिर निकल आएगा । यही कारण है कि वह आज तक जीवित बच रहा है । आप भगवान् सूर्यदेव की अराधना करें । आप **"आदित्यहृदय"** नामक मंत्र का जाप करें । सूर्यदेव इस ब्रह्माण्ड के प्राणपोषक हैं, वे आप पर प्रसन्न होकर रावण की नाभि के अमृत को अपनी ताप से सोख लेंगे, तभी आप रावण को मार सकेंगे ।" यह कहकर अगस्त जी चले गये । श्रीराम ने शीघ्र **"आदित्यहृदय"** मंत्र का विधिपूर्वक जाप किया ।

आदित्यहृदय-मंत्र

नमः पुरुवाय गिरये नमः जयाय जयभक्ताय ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमः ।।

हे दिव्य प्रभा आदित्यहृदय, तुम हो जगती के प्राण ।
इस जीव सृष्टि के पूषा हो, सबका करते कल्याण ॥
कण-कण में दिव्य दिवाकर बन, हर अणु को ज्योतित करते हो ।
अणु विभु व जड़ चेतन, सर्वत्र एक तू बसते हो ॥
तू चिदाभास चैतन्य रूप, उस परम ब्रह्म के हो स्वरुप ।
तू ही प्रज्ञा, तू ही विद्या, विज्ञान ज्ञान के सकल रूप ॥
तू ही भूः हो तुम ही भुव हो, तू ही स्वधा सविता तुम हो ।
तू ही वरेण्य हो देव प्राण, धीविभु रूप में बसते हो ॥
अदिति पुत्र अमृत अखण्ड, अन्तर्ज्योति आदि अनन्त ।
हे तमसहार, ब्रह्माण्डद्वार, तू सहस्ररन्ध्र के हो भवन्त ॥
बिस्तार विभु तक है तेरा, अणुरुप तुम्हारा है मेरा ।
इस तन में दिव्य प्रकाश भरो, इस तन में स्वयं निवास करो ॥
संकट छूटे अरिमर्दन कर, तेरे यश का विस्तार करूँ ।
दिव्य प्राण मुझमें तेरा, द्युलोक विभु प्रकाश भरूँ ॥
उत्सर्जित तुम से प्राणतत्त्व, ब्रीहि बन उद्भिज जीता है ।
शत नमन तुम्हें आयुष्यं देहि, यह राम शीश झुकाता है ॥

तुम दिव्यप्राण ऊर्जा अनन्त, ब्रह्माण्ड रूप सर्वत्र व्याप्त ।
भर दो तेजस्वी मुझमें प्रताप, कर सकूँ अमंगल को समाप्त ॥
हे सूर्यदेव शत-शत प्रणाम, तुम करो सतत अमृत प्रदान ।
कर सकूँ विखण्डन शत्रु शीश, मुझको दो दिव्य अभय वरदान ॥

(सामान्य पाठक भी अपनी किसी भी समस्या के निदान के लिए इसका पाठ कर सकते हैं । सूर्य का ध्यान करें और उनसे प्रार्थना करें कि वे आपको संकट पर विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दें, इसके साथ कम-से-कम ग्यारह बार गायत्री मन्त्र का पाठ करें ।)

श्रीराम ने भगवान् सूर्यदेव की विधिपूर्वक अराधना की । सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर श्रीराम को **"विजयी भव"** का आशीर्वाद दिया ।

(कहा जाता है कि किसी भी बड़े काम को पूरा करने के लिए परमात्मा का आशीर्वाद लेना चाहिए, तभी सफलता मिलती है । आज के युग में भी माता-पिता और गुरु के आशीर्वाद से काम प्रारम्भ करने वाले को सफलता मिलती है । प्रभु श्रीराम परमात्मा हैं, फिर भी सूर्यदेव का आशीर्वाद प्राप्त कर रहे हैं । परमात्मा तो प्रत्यक्ष नहीं दिखते, इसलिए गुरु को ही परमात्मा मानकर पूजा जाता है ।)

वानर सैनिकों का रावण पर आक्रमण

प्रभु श्रीराम ने युद्ध टालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन रावण नहीं माना । क्योंकि रावण काल के वश हो गया था । जो व्यक्ति काल के वश हो जाता है, उसे कितनी भी अच्छी बात समझायी जाए, वह नहीं समझता । एक छोटी सी भूल पराई स्त्री पर कुदृष्टि रखना, रावण के सम्पूर्ण वंश के नाश का कारण बना । जो व्यक्ति इन्द्रियों के वश में हो जाता है, उसका विवेक नष्ट हो जाता है । क्योंकि इन्द्रियाँ भोग चाहती है । आँख को सुन्दर दृश्य चाहिए, जिह्वा को स्वाद चाहिए, हाथ को स्पर्श चाहिए, नाक को सुगन्ध चाहिए और कर्मेन्द्रियों को काम की तृप्ति चाहिए । लेकिन इन इन्द्रियों को अपना विवेक नहीं होता । ये मन के नियंत्रण में रहते हैं । मन इन्द्रियों का मालिक है, लेकिन वह विवेकहीन है । इसीलिए इन्द्रियों से ऊपर मन और मन से ऊपर बुद्धि को माना गया है । मन को बुद्धि नियंत्रित कर सकती

है । लेकिन बुद्धि भी हमेशा विवेकपूर्ण निर्णय करे, यह आवश्यक नहीं है । क्योंकि कभी-कभी बुद्धि खतरनाक निर्णय भी ले लेती है । इसलिए बुद्धि पर भरोसा नहीं किया जाता । बुद्धि को विवेक से निर्यंत्रित किया जाता है ।

(भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा है- "हमारी इन्द्रियाँ भोग-लिप्सा में लिप्त रहती हैं। वह हमेशा मन से निर्यंत्रित होती है । मन, बुद्धि से और बुद्धि, विवेक से निर्यंत्रित होती है, तभी शुभ फल पाप्त होता है ।")

रावण, दशानन है । इसका अर्थ है, रावण पर दस इन्द्रियों का प्रभाव है । उसकी दसों इन्द्रियाँ वेगवान् है । उसकी प्रत्येक इन्द्रीय प्रबल है, इसीलिए उसे दशानन या दसशीश कहा गया है । जो इन्द्रियों के वश में हो, उसे दशानन या दसशीश कहा जाता है । इन्द्रीय प्रधान व्यक्ति को मर्यादित नजरों से नहीं देखा जाता । जिस प्रकार किसी कामी व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिलती, उसी कारण रावण को समाज में कभी प्रतिष्ठा नहीं मिली । भय के कारण ही लोग उसके अधीन थे । हमारे पाठक बन्धुओं को याद होगा कि सीता हरण के समय जब रावण सीताजी के निकट जाता है, तो गोस्वामीजी कहते हैं- **सो दससीष स्वान की नाई** । वह कुत्ते की तरह छुप-छुपकर सीता के निकट जाता है । त्रिलोक विजेता रावण काम के वश में होकर श्वान की तरह आचरण करने लगता है । यह तो स्वाभाविक बात है कि जब मनुष्य कोई भी गलत काम करता है, तो वह समाज से छुपकर करता है । काम-पीड़ित व्यक्ति, नशा सेवन करने वाला, चोरी करने वाला, धर्म और राष्ट्र विरोधी आचरण करने वाला, कायर और डरपोक होता है । पाप और पुण्य में यही तो अन्तर है । जो काम सबके सामने किया जाय, वह पुण्य है और जो छिपकर किया जाय, वह पाप है । इसीलिए जब मनुष्य मंदिर जाता है, तो ढोल-नगाड़ा बजाते हुए जाता है । लाउडस्पीकर पर मंत्र का पाठ करने लगता है । लेकिन वही व्यक्ति जब गलत आचरण करने लगता है, तो छुपकर करता है । बड़ा से बड़ा व्यक्ति भी गलत कामों को सरेआम नहीं कर सकता । इसलिए प्रत्येक गलत काम, मनुष्य अन्धेरी रात और एकान्त कमरे में करता है । दिन में भी गलत काम होता है, लेकिन वह थोड़ा कम गलत होता है, रात में अधिक गलत होता है । क्योंकि रात में छुपने की गुंजाईश है, दिन में प्रकाश के कारण उसी काम को पर्दे के पीछे या **"अन्डरटेबुल"** किया जाता है ।

सुग्रीव के आदेश से वानर सैनिकों ने लंका पर आक्रमण कर दिया । चारों दिशाओं से वानर सैनिकों ने भीषण आक्रमण कर दिया । यह देख रावण ने भी अपने

सैनिकों को आक्रमण का आदेश दिया । दोनों ओर से सैनिक एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे–

चौ०

दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि ।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ॥

दोनों ओर से सैनिक अस्त्र-शस्त्र, पत्थर-पहाड़, वृक्षों से एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगे । तभी रावण अपने महाबली वीरों के साथ रणभूमि में प्रवेश किया । रावण उस समय महाकाल की तरह विराट दिख रहा था । लगता था, आज वह पूरे ब्रह्माण्ड को तहस-नहस कर देगा । रावण को आते देख उसके सैनिकों में भी काफी उत्साह आ गया । वे सभी जीवन मरण की लड़ाई लड़ने लगे । रावण अट्टहास करते हुए और भीषण गर्जना करते हुए युद्धभूमि के बीच में आकर खड़ा हो गया और राम की प्रतीक्षा करने लगा । तभी हनुमान्‌जी ने श्रीराम से कहा– "हे प्रभु! आप मुझे आज्ञा दें, आज मैं इस दुराचारी का अन्त कर दूंगा । कल मैंने इसे अपने लात के प्रहार से मूर्छित कर दिया था । आज मुष्टिका के प्रहार से इसे पाताल में भेज दूंगा ।" यह सुन श्रीराम ने कहा– "हनुमान्! क्रोधी शत्रु पर क्रोध से नहीं, शान्ति से प्रहार करना चाहिए । क्रोधी व्यक्ति निर्बल होता है । जब क्रोधी व्यक्ति आक्रमण करे तो, मन को शान्त करके उसके आक्रमण का उत्तर देना चाहिए । क्रोध की अवस्था में जब साँसे तेजी से चलने लगे, तो तुम्हारे आक्रमण में बल नहीं रहेगा । जिस प्रकार समुद्र की लहरों में बहुत बल नहीं होता । रावण अभी कल की पराजय से आक्रोश में है । आजतक वह कभी किसी से नहीं हारा, लेकिन कल तुमने उसे बुरी तरह पीटकर मूर्छित कर दिया था । इसका आक्रोश उसके मन में है । वह विवेक खो चुका है । इसलिए शान्ति से उसके आक्रमण का उत्तर देना है ।" यह कहते हुए श्रीराम ने समस्त दिव्य शक्तियों को, माता-पिता, गुरुजन एवं सूर्यदेव को प्रणाम किया और शिविर से बाहर आकर चारों ओर युद्ध के दृश्य का निरीक्षण किया ।

इधर श्रीराम युद्धभूमि में रावण की प्रतीक्षा कर रहे थे । श्रीराम को युद्धभूमि में अकेले खड़ा देख विभीषणजी को भारी चिन्ता हुई ।

चौ०

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा । देखि बिभीषन भयउ अधीरा ।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥

रावण को विशाल रथ पर बैठे देख विभीषणजी के मन में संदेह हुआ कि श्रीराम पैदल रावण का मुकाबला कैसे कर सकेंगे । श्रीराम समझ गये कि विभीषण को मेरी शक्ति पर संदेह हो रहा है । यह जान श्रीराम ने विभीषणजी से कहा–

चौ०

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ।

"हे सखा! युद्ध में रथ नहीं जीतता । युद्ध सेनाओं के बल पर नहीं जीता जाता ।"

श्रीराम का विभीषण को उपदेश

चौ०

सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥

श्रीराम ने कहा– "हे सखा! जिस रथ से युद्ध जीता जाता है, उसके शौर्य और धैर्य पहिया होते हैं । सत्य और शील उसके ध्वजा हैं, बल, विवेक, दम और परोपकार घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता की डोरी से रथ में जुड़े हुए रहते हैं । ईश्वर का भजन सारथी है, बैराग्य ढाल है, संतोष तलवार है, दान फरसा है, बुद्धि शक्ति है और विवेक धनुष है । ब्राह्मणों और गुरुओं का पूजन कवच है । जिस योद्धा के पास यह सब गुण है, उसे संसार में कोई परास्त नहीं कर सकता ।

चौ०

सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

श्रीराम ने कहा- "हे सखा! मनुष्य प्रबल संभावना का केन्द्र है । उसमें विराट शक्ति है । जो व्यक्ति सम्यक् राह पर चलते हुए उस विराट शक्ति को पहचान लेता है, वही व्यक्ति संसार विजेता होता है । जो असत्य का, अनीति और पाप का सहारा लेता है, वह कभी युद्ध नहीं जीत सकता । हे सखा! प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण युद्धभूमि में खड़ा है । जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य को हमेशा युद्ध करना पड़ता है । यह युद्ध राम-रावण का है, लेकिन यह तो प्रतीकात्मक है, ऐसा युद्ध तो प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन अपने जीवन में लड़ता रहता है । कभी कोई समाज से लड़ता है, अपने परिवार से लड़ता है, यहाँ तक कि माता-पिता और पति-पत्नी के बीच ऐसा युद्ध होता रहता है । जीवन जीने के लिए भी युद्ध करना पड़ता है ।" हे सखा! आज यह युद्ध राक्षसों के विरूद्ध हो रहा है । ऐसा नहीं है कि ये राक्षस केवल लंका में रहते हैं । ऐसे राक्षस प्रत्येक समाज में काफी संख्या में रहते हैं । अनीतिपूर्ण आचरण करने वाले को ही राक्षस कहा जाता है । ऐसा अनीतिपूर्ण आचरण करने वाले तो सर्वत्र हैं, इस युद्धभूमि में लंका के राक्षसों का तो अन्त हो जाएगा, लेकिन हमारे घरों में जो राक्षस हैं, हमारे मन में जो विकारों के राक्षस फन उठाकर हमें डसने अथवा काटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, उनका नाश कैसे हो? इन बुरे राक्षसों को मार देने से बुराई का अन्त नहीं होगा, हमें बुराई के राक्षस को मारना होगा ।

हे सखा! परमात्मा ने मनुष्य को शुभ, स्वस्थ और नैतिक कर्म करने भेजा है । अनैतिक कार्य प्रकृति के विरूद्ध होता है । प्रकृति का अर्थ है- प्र+कृति । जो कृति पहले से है । यह सम्पूर्ण सृष्टि नियमों में बंधी हुई है । यहाँ हमारा अपना कोई नियम नहीं चलता । सर्वत्र केवल नियम है । ये ग्रह, तारे, नक्षत्र सभी नियम के अधीन चल रहे हैं । सूर्यमण्डल के ग्रह समान दूरी पर चलते हुए समानता बनाए हुए हैं । एक दूसरे के गुरूत्वाकर्षण से प्रत्येक नक्षत्र आकाश में गति कर रहा है । सभी नियम में बंधे हैं । यह युद्ध भी प्रकृति के नियम के अन्तर्गत हो रहा है । जब-जब नीति के विरूद्ध अनीति का प्रभाव बढ़ने लगता है, तो प्रकृति का समान अनुपात बिगड़ने लगता है । उसी अनुपात की स्थापना के लिए समय-समय पर दिव्य शक्तियों का आविर्भाव इस पृथ्वी पर होता है । हे सखा! यह प्रकृति उस परमसत्ता का प्रतिबिम्ब है । यहाँ मनुष्य का अपना कुछ नहीं है, सब प्रकृति का है । प्रकृति अपना काम करती रहती है, जन्म और मरण जीव की स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस युद्ध में जो मारे जा

रहे हैं, वे अगले जन्म की तैयारी कर रहे हैं । क्योंकि जन्म, मृत्यु की प्रतीक्षा है और मृत्यु अगले जन्म की तैयारी है ।

हे सखा! मनुष्य अगर स्वाभाविक स्थिति में है, वह स्वस्थ है, स्वयं अपने स्वरुप में स्थिर है, तो वह बुरा नहीं बन सकता । बुरा वह होता है जो अपने स्वरुप और स्वभाव को छोड़कर दूसरी चीज बन जाता है । इसी को स्वधर्म कहते हैं । स्वधर्म का अर्थ है- अपने मूल स्वरुप में स्थिर रहना । अपने कर्त्तव्यों पर अडिग रहना । जो बुरे लोग हैं, उन लोगों ने अपने मूलरूप को छोड़ दिया है । अपने मूलस्वरूप का त्याग ही अधर्म है और वैसे ही लोग राक्षस माने जाते हैं । हे सखा! लंका में रहते हुए भी आप सद्वृत्ति के प्रतीक हैं । आपने अपना स्वभाव नहीं छोड़ा । लेकिन रावण ने अपने मूलस्वरूप का त्याग कर अनाचार और अत्याचार का मार्ग पकड़ लिया । उसने यह काम स्वेच्छा से किया है । मनुष्य का मूल स्वरुप सदाचार है, सत्य, दया, करूणा और प्रेम है । रावण ने इन सबों को छोड़ दिया । वह अहंकार, काम-क्रोध के वशीभूत हो गया है । ये तो विकृतियाँ हैं, गंदगी है । इसलिए उसका आचरण दूषित हो गया। क्योंकि मन में विकार उत्पन्न होते ही मनुष्य का आचरण प्रभावित होने लगता है । हमारी आँखें संसार को देखती हैं, तब उस संसार को पाने का लोभ हो जाता है, उसी लोभ के कारण मनुष्य गलत आचरण करने लगता है । मनुष्य के अन्दर भी तो काई न कोई राक्षस बैठा रहता है, राक्षस केवल लंका में ही नहीं रहता, मनुष्य के मन में भी रहता है । उस राक्षस को मारने के लिए तलवार की नहीं, विवेक, दम, सत्य, शील की आवश्यकता होती है ।

हे सखा! आप जिस रथ की बात कर रहे हैं, वह तो संसार का रथ है, जिसका कोई अर्थ नहीं है । असल रथ तो हमारा शरीर है- **"आत्मानं रथिनं विद्धि ।"** आत्मा रथी है और शरीर रथ है । बुद्धि सारथी है, मन लगाम है । जिस व्यक्ति को ऐसा रथ प्राप्त हो जाता है, वह संसार का श्रेष्ठ पुरुष बन जाता है । हे सखा! जो मनुष्य सद्विचारों से प्रेरित होकर चलता है, वही विजयी बनता है ।

सद्विचार सद्वृत्ति से, जीवन करत प्रकाश ।
जैसे रवि को देखकर, पंकज बने सुवास ॥

जीवन तभी सुवास बनता है सुन्दर और सुखद बनता है, जब उसमें सद्वृत्ति हो । मनुष्य अपनी बुराईयों के कारण ही बुरा बनता है । बुरा होना कोई नहीं चाहता । लकिन वह बुरी आदतों के कारण अपनी अनन्त कामनाओं के कारण बुरा बन जाता है । एक सुन्दर व्यक्ति भी काम आदि विकारों के कारण बुरा बन जाता है ।

क०

काम का वेग खद्योत सम, क्षण-क्षण करे हिलोर ।
लहर उठे जिमि जलनिधि, देखि चन्द्र इजोर ॥
रमा विलास वमन जस त्यागे, प्रभु से नेह लगाये ।
मनोवांछित फल नर पावे, एक छोड़े सब पाए ॥
दिव्य अनन्त अनादि अगम प्रभु, विभु से अणु बनाये ।
ध्यान करो उस दिव्य विभु का, जो तन को ब्रह्म बनाये ।

हे सखा! मनुष्य अगर अपने विकारों पर विजय प्राप्त कर ले, तो उसे संसार की कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती ।

– षड्विकार –

कामी मरै अग्नि में कैसे, कीट पतंग दीप में जैसे ।
निज संताप क्रोधी जल मरहीं, जस घर्षण ते जंगल जरहीं ॥
शील मर्यादा लोभी बेचे, मांस देख कुकुर सम नोचे ।
अहंकारी को शील न भाई, नहीं कछु लाज न कछु शरमाई ॥
मोह बंधे पशु सम जग जाने, जगत जोंक सम त जग जावे ।
ईष्यालु मन चैन न आवे, जरत तवा सम चैन न पावे ॥

हे मित्र! इस युद्धभूमि में आप अनेक निर्दोष लोगों को मरते देख रहे हैं । हमारी नजर में ये निर्दोष हैं, लेकिन प्रकृति ऐसे लोगों को नहीं मारती, जो शील और मर्यादा

में बंधे हुए हैं । इस प्रकृति में सब कुछ नियमबद्ध हैं । इस प्रकृति में केवल संक्रमिकता है । संक्रमिकता का अर्थ है लयबद्धता । हमारी सांसें लयबद्धता से चल रही है, क्योंकि सांसें प्रकृति से जुड़ी है । जब इन सांसों का क्रम भंग होता है, तो विकार उत्पन्न हो जाता है । सांस ही हमें अस्तित्व से जोड़े रखती हैं । इसलिए हे सखा! यहाँ आश्चर्य कुछ नहीं है ।

हे सखा! इस संसार में सुख और दुःख, आशा और निराशा, हार और जीत सब मन का भाव है । लोग कहते हैं संसार में दुःख है । दरअसल संसार में दुःख नहीं है, दुःख तो मनुष्य के मन के भाव में है । संसार तो संसार है । दुःख और सुख मनुष्य स्वयं है । किसी के सुख-दुःख से संसार को क्या लेना देना है । इसलिए मन के भावों को पवित्र करो ।

हे मित्र! जिस दिन मनुष्य को स्वस्थ रहना आ जाए, स्वस्थ विचार आ जाए, जीवन जीने की स्वस्थ विधि का ज्ञान आ जाए, उस दिन यह संसार स्वर्ग बन जाएगा ।

मनुष्य का जीवन बड़ा ही बहुमूल्य होता है । इस जीवन को अगर शुरू से ही सम्भालने का प्रयास किया जाय तो, यह दिव्य बन सकता है । रावण की परवरिश गलत लोगों के द्वारा हुई, जो स्वयं दुराचारी हो, जिसका आचरण अनैतिक और आपत्तिजनक हो, वह किसी को कैसे सुधार सकता है । रावण के नाना सुमाली ने बचपन से ही उसे विद्वेष, घृणा, हिंसा, प्रतिशोध का पाठ सिखाया था । जिस कारण कभी भी उसके अन्दर सद्वृत्ति का बीज अंकुरित नहीं हो सका । जिसका परिणाम यह हुआ कि एक व्यक्ति के कारण पूरी राक्षस जाति का नाश हो रहा है । इसलिए हे मित्र! परवरिश और चित्तवृत्ति का व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है । रावण युद्ध से सब कुछ पा लेना चाहता है । युद्ध से राज्य खण्ड मिल सकता है, राज्य की जनता का प्रेम और आदर नहीं मिल सकता । रावण का यही अहंकार है ।

हे मित्र! जीव की उत्पत्ति चिदाभास, महाशून्य से होती है । यह चिदाभास ही अस्तित्त्व है । शक्तिरूप में चिदाभास से जीव का क्षरण होता है । फिर वह चन्द्रमा को प्राप्त होता है, चन्द्रमा से ब्रीहि, वनस्पति और फिर वीर्य और रज बनकर जीव में आता है । वीर्य और रज का संयोग होता है, तो गर्भ में आता है और फिर सूर्य उसमें प्राणशक्ति देता है । इसके बाद वह जीव बनता है । वह जीव जब गर्भ से बाहर

निकलता है, तो अपार दिव्य शक्तियों से भरा होता है । अगर समुचित परवरिश हुई तो वह जीव प्रतिभावान् बनता है । अगर वह अपने परवरिश काल में ही विकारों से ग्रसित हो गया तो वही स्वस्थ और सुन्दर जीव कुरुप और अनाचारी बन जाता है । रावण महर्षि विश्रवा का पुत्र है । वह प्रतिभावान् और विद्वान् है, लेकिन गलत परिवेश में परवरिश होने के कारण हिंसक और अत्याचारी बन गया है । क्योंकि मनुष्य में दोनों सम्भावनाएं हैं । जन्म से कोई बुरा नहीं होता । प्रकृति कभी भी गलत लोगों को पैदा नहीं करती । वह गलत बन जाता है और यही उसके नाश का कारण बनता है ।

हे मित्र! रावण को मैंने कई बार समझाया, समझौते के लिए दूत भेजा, लेकिन वह नहीं माना । दूसरे की पत्नी पर नजर रखना, दूसरे के धन पर लोभ करना, दूसरे की मर्यादा, धर्म और नैतिकता को भंग करने का प्रयास करना कभी उचित नहीं माना जाता । लेकिन रावण ने अपनी पत्नी मंदोदरी की भी बात नहीं मानी । जो व्यक्ति अपने शुभचिंतकों, मित्रों, गुरुजन एवं परिवार के बड़े लोगों की बात नहीं मानता, उसका नाश हो जाता है ।

हे मित्र! रावण काल के अधीन होकर गर्जना कर रहा है । वह शक्तिशाली है, विद्वान् है, सुन्दर है, लेकिन ये सारे गुण उसके दुराचार के सामने बौने से हो गये हैं । इतना गुणी होने पर भी अगर उसे नहीं मारा गया, तो समाज से परमात्मा के प्रति विश्वास उठ जाएगा और प्रकृति का नियम बिगड़ जाएगा । प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने नैतिक नियमों के अन्तर्गत कर्म करने की अनुमति देती है । जब कोई इन नियमों को तोड़ता है, तो प्रकृति उसे सजा भी देती है । रावण ने ब्रह्मा जी से वरदान लिया है कि वह नर और वानर को छोड़कर किसी से न मरे । पहले वह अमर होना चाहता था, लेकिन अमर होना प्रकृति के नियमों के विरूद्ध है । ध्यान रहे कि तपस्या करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है । राक्षस, यक्ष, गंधर्व, देव, मनुज कोई भी तपस्या कर सकता है । अगर तपस्या के नियमों का पालन किया जाता है, तो ब्रह्मदेव उसे वरदान भी देते हैं । यह भी प्रकृति का ही नियम है । लेकिन जब कोई उस वरदान का गलत उपयोग करने लगता है, तो प्रकृति उसके नाश का भी उपाय खोज लेती है ।

हे सखा! जीव की आत्मा अमर होती है । क्योंकि आत्मा एक दिव्य शक्ति है और शक्ति का कभी नाश नहीं होता । विराट शक्तिपुंज से प्राणतत्त्व जीव में प्रतिबिम्बित होने लगता है । उस जीव का मूल उद्देश्य केवल परमात्मा की प्राप्ति

है । ताकि वह पुनः विराट परमात्मा में विलीन हो सके । लेकिन वह जब अपनी इन्द्रियों के वश में हो जाता है और नीचे की ओर गिरने लगता है । यही जीव अथवा मनुष्य के पराभव का काल होता है ।

यह सुनकर विभीषण ने कहा– हे परमात्मा! आप तो चर–अचर और जीवों के स्वामी हैं। आप अणु और विभु के ज्ञाता हैं, आप तो इन्द्रियातीत निर्गुण और निराश्रय हैं । आप तो स्वयं उत्पत्ति और विनाश के कारण हैं । माया के कारण आप मनुष्य रूप में दिख रहे हैं-

नमस्ते रामराजेन्द्राय नमस्ते सीतामनोरमाय ।
नमस्ते चन्द्रकोदण्डाय नमस्ते भक्तवत्सलाय ॥

हे भक्तवत्सल! **"त्राहि मां भवसागरात्"** हे प्रभु! मेरी रक्षा करो । हे श्रीराम! मुझे इस संसार के मोह से मुक्त करा दो ।

विभीषण की आर्तवाणी सुनकर श्रीराम ने कहा– हे मित्र! जो व्यक्ति शांत स्वभाव से सीता सहित मेरा ध्यान करता है, मुझे ही अपना सब कुछ मान लेता है, मुझमें ही विसर्जित हो जाता है, वह संसार के समस्त दुःखों के पार जाकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

हे मित्र! प्रत्येक जीव जन्म के पहले स्वतंत्र होता है । लेकिन जन्म लेते ही सम्बन्धों में बंट जाता है । जिस प्रकार सोया हुआ मनुष्य न अहंकारी होता है और न ही विकारी होता है । माया का खेल उसके जगते ही प्रारम्भ हो जाता है । जो व्यक्ति अहं, ममता एवं भ्रान्तिरूप माया मय मनोधर्मों को त्याग कर इन्द्रियों को वाह्य विषयों से अलग कर आत्म स्वरुप में लीन हो जाता है, तभी वह परमात्मा को प्राप्त करता है । यह संसार माया के कारण विभिन्न रूपों में दिखता है । हे मित्र! मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी साधना से विवेक को जागृत करें, स्वधर्म की पहचान करें और अपने कर्मों को नैतिक बनायें ।

हे मित्र! स्वस्थ और नैतिक जीवन के लिए आहार का बड़ा महत्त्व है । शाकाहारी भोजन करने वाले को काम, क्रोध और अहंकार का वेग नहीं झेलना पड़ता । मांसाहार से मस्तिष्क विकृत होता जाता है जिससे वह गलत आचरण करने लगता है । इसलिए सात्त्विक लोग मांसाहार का त्याग करते हैं । जानवर मांसाहार करता है,

क्योंकि जीव को ही जीव खाता है । लेकिन जब मनुष्य मांसाहार करने लगता है, तो उसका विवेक नष्ट हो जाता है और वह हिंसक बन जाता है । मनुष्य हिंसक प्राणी नहीं है, राक्षस मांसाहार करता है, इसलिए वह हिंसक बन गया है । इस वृत्ति का त्याग करना चाहिए ।

सुखी होना, स्वस्थ और प्रसन्न रहना तो प्रत्येक जीव चाहता है । अगर उसका भोजन सात्त्विक है, तो उसे सुख, सम्पत्ति और नाम सब कुछ स्वतः ही मिल जाता है । हिंसा, लड़ाई, झगड़ा मनुष्य का कर्म नहीं है । मनुष्य तो प्रेम करना जानता है । इसलिए हमें पशुवत् आचरण से बचना चाहिए ।

हे मित्र! मैंने लंका पर आक्रमण किया, क्योंकि लंका अत्याचारियों का गढ़ बन गया था । आर्यावर्त के संत-महात्माओं, वनवासी एवं अन्य लोगों को रावण बिना कारण सताने लगा था । देश में धर्म की स्थापना के लिए मुझे लंका पर आक्रमण करना पड़ा । अगर लंका का नाश नहीं होता तो पूरे संसार में अत्याचारियों एवं धर्म विरोधी लोगों का आधिपत्य हो जाता और इससे प्रकृति का नियम बिगड़ जाता ।

श्रीराम की बात सुनकर विभीषण ने कहा- हे प्रभु! जीव पापकर्म क्यों करता है? जब सब कुछ परमात्मा के हाथों में है और जब सब कुछ परमात्मा कराता है, तो जीव को दोषी क्यों माना जाता है? रावण पापी है, लेकिन उसे पाप करने की प्रेरणा कौन देता है?

विभीषण की बात सुनकर प्रभु श्रीराम ने कहा- जीव अपने कर्मों का फल भोगता है । पूर्वकाल के कर्म प्रारब्ध में संचित रहते हैं, जिसका फल उसे इस जीवन में भोगना पड़ता है । इसीलिए संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों की चर्चा की गई है । हमारे संचित कर्म फल और प्रारब्ध पूर्वजन्म के कर्मों का फल है । उन कर्मों के फल को जीव भोगता ही है । लेकिन क्रियमाण कर्म वर्तमान का कर्म है, वह परवरिश और वातावरण से ही प्रभावित होता है । जिस वातावरण में जीव रहता है, वैसे ही कर्म करने की प्रेरणा उसे होने लगती है । कभी-कभी जीव के प्रारब्ध के कर्म भी वर्तमान के क्रियमाण कर्मों को प्रेरित करता है । इसीलिए जीव पूर्वजन्म के पाप-पुण्य से प्रभावित होता है । कभी-कभी संत-पुरुषों के घर में भी दुष्ट संतान पैदा हो जाती है । जब दुष्ट जीवात्मा गर्भ में प्रवेश कर जाता है, तब ऐसा होता है ।

हे मित्र! जीव अपना सारा खेल अपने कर्त्तापन के बोध से बिगाड़ लेता है। कर्त्ता होने का अहंकार जीव को घसीटकर नीचे पटक देता है। अहंकार के कारण जीव राजा बनना चाहता है, धन, यश, मान-मर्यादा को जीत लेना चाहता है। यही अहंकार है। जब तक वह अपने कर्मों के फल के प्रति आसक्त रहता है, तब तक वह कर्त्तापन के भाव से मुक्त नहीं हो पाता। यही कर्म-बन्धन है। रावण सब कुछ जीत लेना चाहता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि प्रेम, करुणा, दया, वात्सल्य, मैत्री, यश और मर्यादा को बलपूर्वक जीतकर पाया नहीं जा सकता। क्योंकि प्रेम देने की चीज है, प्रेम लेने के प्रयास से कदापि नहीं मिल सकता। वह प्रेम को भी बलपूर्वक जीत लेना चाहता है, यही उसका अहंकार है। इसीलिए उसके सारे कर्म अनैतिक होते जा रहे हैं।"

विशेष प्रसंग

(गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- **"न कर्मफलसंयोगम्"** जीव जैसा कर्म करता है, वैसा फल भोगता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- **"लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान्"** प्रकृति कर्मों का फल तो देती है, लेकिन इस फल के देने में परमात्मा कहीं नहीं होता। जीव स्वयं अपने कर्मों से ही सम्बन्ध जोड़ लेता है। आगे श्रीकृष्ण कहते हैं- **"मा कर्मफलहेतुर्भूः"** जो जीव कर्मफल से नहीं जुड़ता, वह मुक्त हो जाता है। आगे श्रीकृष्ण कहते हैं- "मनुष्य का स्वभाव उसका कर्त्तापन और कर्मफल ही जीव को उर्ध्वगति और निम्नगति प्रदान करता है।" **"स्वभावस्तु प्रवर्तते"** अपना स्वभाव मनुष्य स्वयं बनाता है।)

इसलिए जीव स्वभाव के अधीन हो जाता है। जीव अच्छा आचरण और बुरा आचरण करने के लिए स्वतंत्र है। रावण अपने ही स्वभाव से प्रेरित कर्मों का फल भोग रहा है। इसलिए ज्ञानी पुरुष अपने अहंकार को ज्ञान के प्रकाश से नष्ट कर ज्ञान के प्रदेश में प्रवेश कर जाता है। जीव जब जन्म लेता है, तभी वह अज्ञान से घिर जाता है। उसी अज्ञान को फिर अपने कर्मों से नष्ट कर, ज्ञान स्वरुप परमात्मा को पाना पड़ता है। **"अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्"** ज्ञान जीव का अधिकार है, लेकिन अज्ञान के आवरण के कारण वह मूढ़ बन जाता है। रावण भी ज्ञानी है, लेकिन उसका ज्ञान अहंकार के नीचे दब गया है। जिस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वही जीव और परमात्मा को समझ पाता है। "आहार, निद्रा, भय और मैथुन- ये मनुष्यों और

पशुओं में समान ही है । मनुष्यों में विशेषता यही है कि उनके पास विवेक रहता है । विवेक से शून्य मनुष्य तो पशु के समान है ।"

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना ॥

प्रभु श्रीराम की बात सुनकर विभीषणजी ने कहा– हे प्रभु! रावण दुराचारी है, उसने जीवन भर पाप किया है, क्या उसे मुक्ति नहीं मिल सकती है?

श्रीराम ने मुस्कुराते हुए कहा– हे सखा! जीव रावण तो परमात्मा का अंश ही है, वह अलग कहाँ है । परमात्मा और उसके बीच अहंकार खड़ा है । जिस दिन अहंकार गिर जायेगा और वह अपने विवेक को जागृत कर लेगा, उसी दिन वह मुक्त हो जाएगा । मनुष्य जीवन भर पाप करता है और उसका फल भी भोगता रहता है । ऐसा नहीं होता, इस जीवन में उसे फल नहीं भोगना पड़ता, पापी व्यक्ति कभी सुखी नहीं रहता । वह सुखी दिखता है, लेकिन सुखी रहता नहीं । लेकिन जिस दिन वह अहंकार प्रेरित कर्मों का प्रायश्चित कर लेता है, उसी दिन वह परमात्मा में मिल जाता है ।

विशेष प्रसंग

(श्री कृष्ण ने भी गीता में कहा है– **"अन्तकाले च मामेकं स्मरणं कृत्वा कैवल्यम्"** अन्त समय में भी अगर जीव परमात्मा को पा लेता है, तो वह मुक्त हो जाता है ।

लेकिन वही मनुष्य परमात्मा को पाने का प्रयास कर सकता है, जो मन से अपनी भूल स्वीकार करता है और परमात्मा से क्षमा मांगता है । छल और कपट से परमात्मा की पूजा करने वाला ईश्वर को नहीं पाता । जो व्यक्ति निष्कपट होकर परमात्मा की आराधना में लय हो जाता है, वह निष्पाप होकर अपने सभी पापकर्मों से मुक्त हो जाता है । श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षिष्यामि मा शुचः ॥

कृष्ण कहते हैं- अगर तुम निष्काम भाव से मेरी शरण में आ जाओ, तो मैं तुम्हें सारे पाप बन्धनों से मुक्त कर दूँगा ।)

प्रभु श्रीराम की बात सुनकर विभीषणजी ने कहा- "हे प्रभु! आत्मा, परमात्मा से अलग होकर इस संसार में शरीर प्राप्त कर इतना अत्याचार क्यों करने लगती है?"

यह सुन श्रीराम ने कहा- "हे सखा! आत्मा, परमात्मा से अलग कहाँ होती है, यह सारा ब्रह्माण्ड एक ही परमात्मा का स्वरुप तो है । माया के कारण हम उसे अलग-अलग देखते हैं । जितने भी चर-अचर, पेड़-पौधे, पहाड़ दिख रहे हैं, यह सब हमारी दृष्टि भेद के कारण हैं । हमने मान लिया है कि यह पहाड़ है, यह पेड़-पौधा है, यह ऊपर से दिख रहा है । अन्दर एक ही तत्त्व प्रवाहित हो रहा है ।"

(आज का विज्ञान भी मानता है कि जो संसार दिखता है, पेड़-पौधे, पदार्थ दिखते हैं, वह सब मूलरूप में ऊर्जा ही हैं । जिसे विज्ञान कास्मिक धूल(चिदाकाश) कहता है । मनुष्य और पशु-पक्षी में इन्द्रियों का भेद ही है । मनुष्य के पास दस इन्द्रियाँ हैं और पशु के पास कम इन्द्रियाँ होती हैं । पहाड़ के पास एक इन्द्रीय है ।)

श्रीराम की बात सुनकर विभीषणजी ने बार-बार उन्हें प्रणाम किया और कहा- "हे प्रभु! मनुष्य जानता है कि वह पाप कर रहा है, फिर भी वह बार-बार पाप करता रहता है । शास्त्रों में वर्णन है कि चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव मनुष्य तन को प्राप्त करता है । फिर भी उसे बोध नहीं होता और वह बार-बार पाप करता रहता है । ऐसा किसलिए होता है?"

यह सुन श्रीराम ने कहा- "हे सखा! यह संसार परमात्मा का प्रतिबिम्ब है । मनुष्य भी प्रतिबिम्ब ही है । जब मनुष्य इस संसार को अपना मान लेता है, उसमें आसक्त हो जाता है, तभी विघ्न-बाधा उपस्थित होने लगती है । इस संसार को अपना मानकर भूल करने वाला व्यक्ति ही दुःखी होता है । नदी बहती है, बहना नदी का काम है । हम किनारे पर खड़े हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि नदी हमारी बन गई । वृक्ष की छाया में हम बैठे हैं, थोड़ी देर में वहाँ से चल देंगे, इससे वृक्ष हमारी नहीं बन गई । धन, यश, पुत्र हमें मिला है, उसे किसी ने मुझे दिया है, वह हमारी नहीं हो गई । शरीर किसी ने दिया है, इससे शरीर हमारा नहीं हो गया । हम कहते हैं- मेरा घर, मेरा पुत्र, मेरा धन । इसी तरह हम यह भी कहते हैं- मेरा हाथ, मेरा शरीर । यह मेरा कौन है? यहाँ कुछ भी तुम्हारा नहीं है, सब कुछ उसका ही है ।"

"हे मित्र! जब मनुष्य अपने अहं भाव को छोड़ देता है, तभी वह सब कुछ **"मैं"** अथवा **"तेरे-मेरे"** की आसक्ति से मुक्त होता है । आसक्ति के कारण ही वह बार-बार जन्म लेता है। फिर भी वह आसक्ति को नहीं छोड़ता । जितने भी शरीरधारी जीव हैं सभी आसक्त हैं । माया के कारण सभी शरीर में आसक्त हो जाते हैं और आत्मा को भूल जाते हैं । शरीर को ही सब कुछ मान लेते हैं, शरीर ही भोग में लिप्त होता है । इन्द्रियाँ भोग के लिए व्याकुल रहती हैं । इन्द्रियों को भोग का सुख चाहिए । काम-वासना तृप्ति के लिए वह बार-बार प्रयास करता रहता है । रावण जैसा व्यक्ति वासना के वशीभूत हो गया है । उसे और अधिक वासना की पिपासा थी । सत्य है किसी भी व्यक्ति को काम की तृप्ति नहीं होती । इसी काम-वासना और अपनी अनन्त कामनाओं की पूर्ति के लिए वह व्याकुल रहता है । इसी व्यग्रता में वह परमात्मा को याद करना भूल जाता है ।"

"हे सखा! संसार की आसक्ति उसे बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म लेने के लिए मजबूर कर देती है । जब जीव को शरीर मिलता है, उस समय उसे बोध रहता है कि उसे परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए । लेकिन मोह-बन्धन के कारण उसके विवेक पर पर्दा चढ़ जाता है । वह सब कुछ भूल जाता है । अगर जीव को अन्य योनियों में भोगे हुए दुःख का स्मरण रहे तो, वह फिर कभी भोग में युक्त नहीं होगा । मनुष्य को अनुकूल परिस्थिति मिलती है तो, उसे सुख मिलता है । प्रतिकूल परिस्थिति से दुःख होता है । इसका कारण यह है कि हम परिस्थिति से उत्पन्न सुख और दुःख को अपना मान लेते हैं । इस संसार की परिस्थिति को अपना मान लेने से ही सारी गड़बड़ी शुरू हो जाती है । पुत्र मेरा है, उसने मेरा अपमान कर दिया । धन मेरा है, चला गया । हम दुःखी हो गये । पुत्र के अपमान, धन का चला जाना हमारे दुःखों का कारण बना। जबकि पुत्र का अपमान और धन दोनों मेरा नहीं है । इसी को आसक्ति कहते हैं । जब अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में मनुष्य समभाव रखने लगता है, तो वह सुख और दुःख से पार चला जाता है । जिस प्रकार मनुष्य अपना कर्म करने के लिए स्वतंत्र है, उसी प्रकार नदी, वृक्ष, धन-वैभव, यश भी स्वतंत्र है । उसे जब हम अपना मान लेते हैं, तभी दुःख होता है ।"

"हे सखा! देहाभिमान ही दुःख का कारण है । देह को ही दूसरी देह, धन-सम्पत्ति से आसक्ति होती है ।" (गीता में कहा गया है- जो व्यक्ति न सुख में प्रसन्न होता है, न दुःख में दुःखी होता है, वह सुख-दुःख से ऊपर उठ जाता है । क्योंकि

न दुःख तुम्हारा है, न सुख तुम्हारा है। दोनों क्षणिक हैं। इसलिए सुख-दुःख दोनों से ऊपर उठने का प्रयास करो।

शास्त्रों में कहा गया है **"देहाभिमानत्वात् सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति"** देह के कारण ही मनुष्य पाप करता है और आसक्ति में फंस जाता है। इसलिए कृष्ण ने गीता में कहा है- शरीर को अपना मान लेने से दुःख होता है। अगर शरीर अपना होता तो, वह कभी साथ नहीं छोड़ता।

कहा गया है-**"शरीरं व्याधिमंदिरम्"** शरीर तो व्याधि का घर है। व्याधि शरीर को होती है, आत्मा को कैसे व्याधि हो सकती है। क्योंकि जीवात्मा अजर है, वह अमर और अविनाशी है। यह न कभी जन्म लेता है और न मरता है। यह तो अनन्त प्रवाह चल रहा है। बन्धन तो यह संसार है। "पुत्र, दारा, गुहा, द्विष आदि के कारण ही बन्धन पैदा होता है। हे सखा! यह मान लो कि इस संसार में तुम्हारा कुछ नहीं है। जिस दिन तुम इस भाव को मान लोगे, उस दिन तुम स्वयं मुक्त हो जाओगे।"

विशेष प्रसंग

(विज्ञान कहता है कि मस्तिष्क घटना को याद रखता है और भुला देता है। विस्मरण मनुष्य का वरदान है। अगर मस्तिष्क घटनाओं को न भूले, तो मनुष्य पागल हो जाएगा। इसलिए भूलना जीवन के लिए आवश्यक है। हमारे मस्तिष्क में एक ग्रन्थि होती है, जिससे स्राव होता रहता है, तभी हम किसी भी बात को याद रख पाते हैं। जब वह स्राव बन्द हो जाता है तो हम सब कुछ भूल जाते हैं। कई बार चोट लगने पर या अन्य किसी कारण से जब उस ग्रन्थि का स्राव रूक जाता है, तो मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। वह अपनों को भी पहचान नहीं पाता। कभी-कभी आदमी कोमा में चला जाता है। वह भी एक प्रकार का विस्मरण है। उसे कुछ भी याद नहीं रहता। उसी प्रकार जब मनुष्य मरता है तो, उसकी वही ग्रन्थि नष्ट हो जाती है। जिस कारण वह पिछले जन्म की किसी बात को याद नहीं रखता। कभी-कभी कुछ लोग पिछले जन्म की बात भी कहते हैं।

इसका कारण यह है कि वह घटना उसके सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर में संग्रहित रहती हैं। लेकिन ऐसा प्रायः नहीं होता। सूक्ष्म और कारण शरीर में पिछले जन्म की घटनाओं का संग्रह रहता है। उसी प्रकार मनुष्य को पूर्वजन्म का कर्म प्रभावित करता है। पाप और पुण्य दोनों का प्रभाव जीवन पर पड़ता है। पुण्य कार्य

तो परमात्मा के नियम के अन्तर्गत किया जाता है, लेकिन पाप कर्म, नियम विरूद्ध कर्म माना जाता है । इसलिए जीव को उसका फल भोगना पड़ता है । इसलिए प्रत्येक जीव अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार सुख और दुःख के फल को भोगने के लिए बार-बार जन्म लेता है और मरता है । जब तक कर्मफल पूरा नहीं होता, तब तक जन्म-मरण के चक्र में जीव भटकता रहता है ।

ईशावास्योपनिषद् का पहला मंत्र है- "यह सम्पूर्ण संसार परमात्मा का दिया हुआ है । यह सम्पत्ति दूसरे की है । मनुष्य संसार के धन-वैभव को जब तक प्रभु का प्रसाद अथवा दूसरे की सम्पत्ति मानकर उपयोग करता है, तब तक उस सम्पत्ति का वह भोग करता है । लेकिन ज्योंही वह उस सम्पत्ति का उपभोग करने लगता है तो, उस सम्पत्ति का नाश हो जाता है । जो व्यक्ति परमात्मा की सम्पत्ति को परमात्मा के काम में लगाता है, जनकल्याण, धर्म-कर्म करता है, तो परमात्मा उसे और देता रहता है । परमात्मा अपने भक्त को जब चार हाथ से देता है और भक्त अगर उस धन का नैतिक खर्च करता है, तो दो हाथों से वह कितना खर्च करेगा? अपने धन का कुछ अंश अगर धर्म-कार्य और परोपकार में खर्च किया जाए, तो बचे हुए धन का कभी नाश नहीं होता । जिस प्रकार, मनुष्य धन कमाता है, अगर उस कमाई में से वह सरकार को टैक्स दे देता है, तो बचा हुआ धन नैतिक धन बन जाता है । अगर टैक्स नहीं देता है तो, उसका सारा धन, काला धन बन जाता है ।

ठीक उसी प्रकार, परमात्मा के दिए धन का कुछ अंश अगर हम जनकल्याण में खर्च करते हैं, तो बचा हुआ धन हमारा अपना बन जाता है, नैतिक बन जाता है । हमारा जीवन प्रभु का दिया हुआ है । जब हम इस जीवन को गलत काम में लगा देते हैं, तब प्रभु हमारा जीवन छीन लता है । जब सब कुछ प्रभु का है, तो उस धन पर अपना नेमप्लेट लगाने से क्या फायदा ।

जो जग सिरजा उसका है जग, मत गा अपना गीत ।
नदी नाल झरना उपवन में, किसने भरा संगीत ॥

जो व्यक्ति इस भाव से संसार में रहता है, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता ।")

"हे सखा! रावण यह मानने लगा है कि यह पूरा संसार उसका है । यह उसका अभिमान है, यहाँ सब कुछ प्रकृति का है । जिस प्रकार सूर्य एवं अन्य ग्रह उस विराट

ब्रह्म का है, उसी प्रकार जीव भी उसी का है। सभी एक ही स्वामी के अंश हैं, किसी पर किसी की मालकियत नहीं है। सब कुछ तेरा है, मेरा कुछ नहीं है, ऐसा मानने वाले को जीवन में कभी दुःख नहीं होता। इसलिए हे मित्र! यह सारा ब्रह्माण्ड एक ही का स्वरुप है, इसके अतिरिक्त जो कुछ भी दिख रहा है वही भ्रम है, मिथ्या है।"

राम-रावण युद्ध

रावण अपने विशाल रथ पर चढ़कर युद्धभूमि में श्रीराम और लक्ष्मण को खोज रहा था और उधर श्रीराम भी बड़े शान्तभाव से रावण के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ ही समय में दोनों दल के सैनिक आपस में भिड़ गए और भीषण गर्जना करते हुए एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। इस भीषण दृश्य को देखने के लिए देवता, गंधर्व आकाश में खड़े थे। लगता था कि दोनों दल के सैनिक आज प्रलय मचा देंगे। वानर सेना के भीषण आक्रमण से विचलित होकर राक्षस सेना पीछे हटने लगी। रावण ने जब देखा कि उसकी सेना पीछे लौट रही है, तो वह अपने सैनिकों को भय दिखाकर आगे बढ़ने के लिए पुकारने लगा। फिर रावण ने अत्यन्त ही भीषण प्रकोप वाला बाण चलाया। उस बाण के प्रभाव से पूरी युद्धभूमि घटाटोप अन्धकार में छिप गया।

यह देख लक्ष्मणजी ने रावण को ललकारते हुए कहा– "अरे दुष्ट! वानर भालू पर क्या बल दिखा रहे हो?" और फिर लक्ष्मणजी ने रावण के ऊपर भयंकर बाणों की वर्षा शुरू कर दी। लक्ष्मण और रावण में भयंकर युद्ध होने लगा। लक्ष्मणजी ने उसके रथ को तोड़ दिया और सारथी को मार डाला। यह देख रावण ने लक्ष्मणजी पर शक्तिबाण चला दिया। बाण के प्रभाव से लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये। रावण चाहता था कि वह मूर्छित लक्ष्मण को उठाकर अपने महल में ले जाए और अपने पुत्र-वध का बदला ले ले। रावण के लाख प्रयास करने पर भी शेषनाग के अवतार लक्ष्मण नहीं उठे। इस बीच हनुमान्जी ने रावण पर बज्र मुष्टिका का प्रयोग किया। मुष्टिका के लगते ही रावण पृथ्वी पर गिरकर बेहोश हो गया। रावण को गिरते देख उसका दूसरा सारथी बेहोश रावण को उसके रथ में लिटाकर महल में ले गया। महल में जब रावण को होश आया तो उसने सारथी को बहुत डांटा। क्योंकि वह युद्ध से भागना नहीं चाहता था। कुछ समय बाद रावण रात्रि विश्राम करने चला गया।

विशेष प्रसंग

(रावण अपने महल में चला गया और इधर देवताओं को चिन्ता होने लगी कि इस युद्ध में अगर रावण नहीं मरा तो, बहुत बड़ा अनर्थ हो जाएगा । इसलिए इन्द्र ने सोचा कि भगवान् शिव से सहायता लेनी चाहिए । इन्द्र और शची भगवान् शिव के पास कैलाश पर्वत पहुँचे । माता पार्वती ने इन्द्र और शची का स्वागत किया तथा हाल समाचार पूछा । इन्द्र ने राम-रावण युद्ध का पूरा विवरण माता पार्वती को सुनाया । पार्वतीजी यह जानकर चिन्तित हुईं कि रावण अभी तक मरा नहीं है । जब इन्द्र ने पूछा कि "भगवान् आशुतोष कहाँ हैं?" पार्वतीजी ने बताया कि "जब से राम-रावण युद्ध प्रारम्भ हुआ है, तब से भगवान् शिव रुष्ट होकर एकान्त में ध्यान मग्न हो गये । क्योंकि भगवान् शिव इस युद्ध के पक्ष में नहीं थे । वे नहीं चाहते थे कि रावण का वध हो । इसीलिए रुष्ट होकर चले गये हैं ।"

मौका अच्छा देखकर इन्द्र ने माता पार्वती से कहा- "हे माता! देवासुर संग्राम में भगवान् कार्तिकेय ने जिस धनुष का प्रयोग किया था, वह धनुष आपकी कुटिया में रखा हुआ है । आप वह धनुष मुझे दे दें । श्रीराम इसी धनुष से रावण का वध करेंगे ।" पार्वतीजी ने तुरंत वह धनुष इन्द्र को दे दिया । इन्द्र, धनुष लेकर चले आए । इन्द्र ने तुरंत अपने सारथि मातलि को बुलाया और उस धनुष को अपने रथ पर रखकर युद्धभूमि में भेज दिया ।)

चौ०

सुरपति निज रथ तुरत पठावा । हरष सहित मातलि लै आवा ॥

युद्धभूमि में राम और रावण आमने-सामने खड़े थे, भयंकर युद्ध चल रहा था, तभी इन्द्र द्वारा भेजे गए रथ पर सवार होकर राम रावण पर प्रहार करने लगे । वानर सेना के आक्रमण से बार-बार राक्षस घबड़ा कर भाग रहे थे, यह देख रावण ने तुरंत माया का प्रयोग किया । श्रीराम ने एक ही बाण में रावण की पूरी माया को नष्ट कर दिया । फिर श्रीराम ने रावण के ऊपर भीषण प्रहार किया । रावण ने गर्जना करते हुए कहा- अरे तपसी! क्यों मरना चाहते हो, अभी भी समय है युद्धभूमि से भाग जाओ, मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा ।

यह सुन श्रीराम ने रावण को कहा- संसार में तुम्हारे जैसे लोग ही केवल बकवास करते हैं । बोलकर अपनी बड़ाई क्यों कर रहा है? तुम तो केवल बोल रहे

हो, बोलने वाले वीर पुरुष नहीं होते । तुमने आज तक कमजोर और डरपोक लोगों को हराया है । आज मैं तुम्हें युद्ध का अर्थ बता देता हूँ । यह सुन रावण ने कहा- अरे तपसी! युद्धभूमि में उपदेश दे रहे हो, अब तो तुमने बैर ठान लिया है, तो उसका फल भी चखो ।

रावण-वध

रावण ने राम पर बड़े वेग के साथ अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार शुरू कर दिया । दोनों में भीषण युद्ध होने लगा । युद्धभूमि में बाण ऐसे चल रहे थे, जैसे सर्प मेघ बनकर वर्षा कर रहे हो । रावण के बाण से अपने रथ के घोड़े को घायल होता देख श्रीराम को क्रोध आ गया । उन्होंने एक ही बार तीस बाणों का संधान किया, जिससे रावण की भुजाऐं और सिर कटकर पृथ्वी पर जा गिरा । लेकिन थोड़ी देर में ही भुजाएं और सिर पुनः यथास्थान जुड़ गये । श्रीराम ने बार-बार उसके सिर और भुजाओं को काटा और बार-बार वे नये बनते गये । इससे रावण को बड़ा बल मिला । उसने फिर अपने बाणों से ऐसा भीषण प्रहार किया कि श्रीराम का रथ बाण से घिर गया । यह देखकर लक्ष्मण सहित वानरवीर घबड़ा गये । सभी लोग राम को खोजने लगे ।

इसी बीच श्रीराम ने शक्तिबाण चलाकर रावण के सभी बाणों को नष्ट कर दिया । राम के शक्तिबाण को देखकर रावण क्रोध में आ गया । युद्धभूमि में विभीषणजी श्रीराम के बगल में खड़े हो गये थे । विभीषण को देखते ही रावण ने उस पर शक्तिबाण चला दिया । शक्तिबाण आता देखकर श्रीराम स्वयं विभीषणजी के आगे खड़े हो गये । शक्तिबाण से विभीषणजी तो बच गये, लेकिन श्रीराम को शक्तिबाण से थोड़ी देर के लिए मूर्छा आ गई । उसके कारण श्रीराम को चोट लगी । यह देख विभीषण ने रावण पर गदा का प्रहार किया । गदा की चोट लगते ही रावण ने कहा- "अरे कुलकलंक! तुमने अपने बड़े भाई पर गदा प्रहार किया? तुम एक तपस्वी के बल पर अपने बड़े भाई पर आक्रमण कर रहे हो?"

दो०

उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥

रावण की बात सुनकर विभीषण ने कहा– "आज आप भाई होने का ढोंग कर रहे हैं । याद रहे कि आपने उचित परामर्श देने के कारण मुझे लात से मारकर निकाल दिया था । अगर मैं प्रभु श्रीराम के पास नहीं आता तो कहाँ जाता? अब मैं प्रभु की शरण में आ गया हूँ, अगर आप मेरे भाई हैं, तो मेरा परामर्श मानें अब भी समय है, श्रीराम की शरण में आ जाएं, वे आपके सारे अपराधों को क्षमा कर देंगे । आपके कारण भाई कुम्भकर्ण, मेघनाथ एवं लंका के अनेक वीर मारे गये, फिर भी आप अपने हठ पर अड़कर राक्षस कुल का सर्वनाश करा रहे हैं ।" यह सुनते ही रावण का शरीर क्रोध से जलने लगा । वह श्रीराम के ऊपर बड़े-बड़े प्रभावशाली बाणों का प्रयोग करने लगा । विभीषण श्रीराम के निकट आ गये । विभीषण को अपने पीछे खड़ाकर श्रीराम ने भी भयंकर बाणों का प्रहार शुरू कर दिया ।

विशेष प्रसंग

(ध्यान रहे कि जब भगवान् शिव कैलाश लौटकर पार्वती से धनुष के विषय में पूछते हैं तो पार्वतीजी बड़ी सरलता से कहती हैं कि मैंने कार्तिकेय का वह धनुष इन्द्र को दे दिया है । यह सुनते ही भगवान् शिव बड़े क्रोधित हो गये । उन्होंने पार्वती जी से कहा– आपने ऐसा अनर्थ क्यों कर दिया । उस धनुष से श्रीराम रावण को मारने में समर्थ हो जायेंगे, यह उचित नहीं है । आज पूरे आर्यावर्त में संत-महात्मा आदि धर्म के नाम पर अधर्म कर रहे हैं । कुछ लोगों के कारण धर्म का मूल उद्देश्य नष्ट हो रहा है । रावण उसका विरोध कर रहा है । यह मैं मानता हूँ कि रावण का आचरण आपत्तिजनक है, लेकिन वह मेरा भक्त भी है । इतना कहते हुए भगवान् शिव आकाशमार्ग से लंका की युद्धभमि में पहुँच गए ।

भागवान् शिव को देखते ही रावण ने उन्हें प्रणाम किया और पूछा– "हे प्रभु! आप इस युद्ध में कैसे पधारे?" यह सुनते ही भगवान् शिव ने कहा– "इस युद्ध में मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ । क्योंकि तुम मेरे परम भक्त हो और भक्त की सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है ।" यह सुनकर रावण ने कहा– "हे प्रभु! आप तो सर्वज्ञानी हैं । मैं आपका भक्त हूँ और श्रीराम भी परमात्मा के अवतार हैं । मैं उनके हाथ से मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ । आप हमें आशीर्वाद दें ।"

यह सुन भगवान् शिव ने कहा- "रावण! तुम मेरा त्रिशूल ले लो ।" लेकिन रावण ने भगवान् शिव की बात नहीं मानी । भगवान् शिव लौट गये और रावण घोर युद्ध करने लगा ।)

राम-रावण के घोर युद्ध से दोनों दल के लोग विचलित हो गये-

चौ०

हाहाकार करत सुर भागे । खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो । कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥

अंगद ने रावण का पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया । इससे रावण और बौखला गया ।

विशेष प्रसंग

(कहा जाता है जब रावण वानर सेना की मार से और श्रीराम के बाण से विचलित हो गया, तो उसी समय सारथि ने रावण से कहा- "हे महाराज! वानर जाति गाय को माता मानते हैं । आप ऐसी माया का प्रयोग करें कि राक्षस गाय का रूप धारण कर वानर सेना का संहार करने लगे ।" रावण को यह बात पसन्द आई । उसने अपनी सेना को गाय के रूप में बदल दिया । गाय को देखकर वानर सेना ने आक्रमण बन्द कर दिया । यह देख श्रीराम बड़े चिन्तित हुए । तभी विभीषणजी ने कहा- "प्रभु! गाय पर वानर सेना प्रहार नहीं कर सकती, तो आप अपनी सेना को बाघ और सिंह बना दें । बाघ और सिंह इन नकली गायों से निपट लेंगे और आपको कोई दोष भी नहीं लगेगा ।" श्रीराम ने वैसा ही किया, अब बाघ और गाय आपस में भिड़ने लगे ।)

रावण और श्रीराम का युद्ध घमासान होता जा रहा था ।

(पाठकों को स्मरण होगा कि जटायु की मृत्यु के बाद जब जटायु के सगे-सम्बन्धियों ने श्रीराम को कहा था कि श्राद्ध के बाद भोज होना चाहिए । तब श्रीराम ने कहा था- तुमलोग तो मांसाहारी हो, मांस का भोज मैं नहीं दे सकता, लेकिन तुम सभी लोग लंका चले जाओ, जिस रावण के कारण तुम्हारा जटायु मरा है, उसी रावण के सगे-सम्बन्धियों का मांस तुमलोग युद्ध में खाना । रावण तुम्हारा शत्रु है, उसकी मृत्यु के बाद तुम उससे बदला ले लेना । तभी से गिद्ध लंका में इस युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे ।)

चौ०

खैंचहि गिद्ध आंत तट भये । जनु षंसि खेलत चित गये ॥

राम-रावण युद्ध का समाचार जब सीताजी को त्रिजटा ने बताया, तो सीताजी बड़ी दुःखी हो गईं । यह देख त्रिजटा ने सीता को बहुत समझाया । और उधर श्रीराम को विभीषणजी रावण के हृदय में बाण मारने के लिए कह रहे हैं । इस पर श्रीराम ने कहा- " हे विभीषणजी! मैं रावण के हृदय में बाण कैसे मार सकता हूँ, रावण ने अपने हृदय में तो सीता को बिठा रखा है और मैं सीता के हृदय में वास करता हूँ, मेरे हृदय में पूरा जगत् बसा है । अगर मैंने रावण के हृदय में बाण मारा तो इस सृष्टि का विनाश हो जाएगा ।

छ०

एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है ।

मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ॥

श्रीराम ने कहा कि इसीलिए मैं रावण को मार नहीं पा रहा हूँ । संध्या हो जाने के कारण और रावण के शरीर में श्रीराम के द्वारा किए गए नुकीले घाव की पीड़ा से छटपटाते देख सारथि ने रावण को महल में पहुँचा दिया । दूसरे दिन रावण अपने जीवन की अंतिम लड़ाई लड़ने के लिए घोर गर्जना करते हुए युद्धभूमि में पहुँचा । देखते-देखते दोनों ओर से घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । श्रीराम बार-बार रावण के शीश को काटते और वह फिर जुड़ जाता ।

चौ०

काटत बढ़हिं सीस समुदाई । जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥

यह देख विभीषणजी श्रीराम के पास पहुँचे और बोले- "हे प्रभु! शीश काटने से रावण नहीं मरेगा । क्योंकि इसे वरदान प्राप्त है ।

चौ०

नाभिकुंड पियूष बस याकें । नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥

रावण की नाभि में अमृत है । उसने प्राणायाम(चन्द्रसेवन) के माध्यम से नाभि में अमृत जमा कर रखा है । जब तक अमृत उसके नाभि में रहेगा, तब तक वह मर नहीं सकता ।" यह सुनते ही श्रीराम ने पुनः आदित्यहृदय मंत्र का स्मरण किया और एकतीस बाण एक साथ छोड़ा ।

दो०

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस ।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥

श्रीराम ने दस बाण से सिर काटा, बीस बाण से भुजा काटा और एक बाण से रावण की नाभि से अमृत को सोख लिया । अब रावण असहाय होकर जमीन पर गिर गया । उसके गिरते ही आकाश से सारे देवता फूलों की वर्षा करने लगे ।

छ०

जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो ।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥
सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही ।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही ॥

देवता, गंधर्व, यक्ष सभी बार-बार प्रभु श्रीराम की जयकार बोल रहे थे और फूलों की वर्षा कर रहे थे । अब तो इन्द्रजी भी श्रीराम के दर्शन के लिए आ गये थे । युद्ध जब तक चल रहा था तब तक रावण के भय से इन्द्र कहीं छिपे थे । इन्द्र ने आते ही देखा कि युद्धभूमि में दोनों दल के अपार सैनिक मरे पड़े हैं । उन्होंने आदेश दिया कि "इन मृत सैनिकों के ऊपर अमृत की वर्षा करो ।" अमृत की वर्षा होते ही वानर, भालू जो मृत पड़े थे, जय श्रीराम का नारा लगाते हुए उछलते-कूदते उठ खड़े हो गए ।

चौ०

सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर । जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ॥

अमृत की वर्षा से भालू और कपि जीवित हो गये, लेकिन राक्षस लोग नहीं जी सके । यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या अमृत का प्रभाव राक्षसों पर नहीं पड़ता? दरअसल अमृत तो अमृत है, जिसके मुख में पड़ेगा, वह जीयेगा ही । लेकिन यहाँ भालू और कपि जो युद्धभूमि में गिरे थे, वे चित होकर पड़े थे और श्रीराम का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए थे । लेकिन राक्षस नीचे की ओर मुँह करके पेट के बल गिरे थे और दोनों हाथों से मिट्टी पकड़े हुए थे । इसलिए जब अमृत की वर्षा हुई तो, वह अमृत राक्षसों की पीठ पर गिरा ।

राम-रावण युद्ध की समीक्षा

विशेष प्रसंग

(श्रीराम ने रावण को जमीन पर गिरा दिया । वह पृथ्वी पर पड़कर छटपटाने लगा । इस युद्ध में सत्य की असत्य पर विजय हुई । श्रीराम सत्य मार्ग का अनुसरण कर रहे थे और रावण अनैतिक और अनाचार पर चल रहा था । सच पूछा जाए तो सत्य कभी भी असत्य से पराजित नहीं होता । कई बार असत्य कमजोर पड़ता दिखाई देता है, लेकिन वह हारता नहीं । सत्य और असत्य एक ही परमात्मा से उत्पन्न है । सत्य को नियंत्रित करने के लिए असत्य साथ चलता है । जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार साथ चलता है, सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, सत्य को सत्य साबित करने के लिए, असत्य का रहना अनिवार्य होता है ।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, नैतिक हैं, यह तब पता चलता है, जब रावण सामने आता है । अगर रावण राम के जीवन में नहीं आता तो, श्रीराम को पहचानना मुश्किल हो जाता । रावण पापी है, इसलिए श्रीराम परमात्मा दिखते हैं । अगर संसार में पाप न रहे, तो हम पुण्य को कैसे पहचानेंगे । अन्धकार है, इसलिए प्रकाश हमें अच्छा लगता है । महिषासुर था तभी हम माता दुर्गा को पहचान सके । रावण के कारण ही श्रीराम की मर्यादा बढ़ी । अगर रावण नहीं होता तो, श्रीराम अयोध्या के एक साधारण राजकुमार होते । श्रीराम हमारे परमात्मा हैं, क्योंकि उन्होंने दुष्ट-वृत्ति वाले रावण का नाश किया ।

इसीलिए श्रीराम हमारी अच्छाई के प्रतीक हैं और रावण इस संसार की बुराई का प्रतीक है। रावण जानता था कि श्रीराम परमात्मा हैं, लेकिन उसमें राक्षस-वृत्ति भरी थी। वह चाहकर भी सात्विक नहीं बन पा रहा था। लेकिन उसे भी मुक्ति चाहिए, तभी उसने लड़ाई का रास्ता चुना। रावण को विभीषण, माल्यवान, अंगद और हनुमान् सबों ने बहुत समझाया। लेकिन वह जानता था कि अगर वह श्रीराम की शरण में गया, तो त्रिलोकविजेता रावण की बहुत बड़ी जगहसाई हो जाएगी। लोग यही कहेंगे कि प्राण के डर से रावण, श्रीराम की शरण में चला गया। रावण ने जिन लोगों को परास्त किया था, वे सभी उसकी कायरता पर हंसेंगे। जिससे उसका बहुत बड़ा अपमान होगा। रावण मानता था कि अपमानित होकर जीने से क्या फायदा? जिन देवताओं को उसने बन्दी बना रखा है, कल वही उन पर थूकेंगे। इस अपमान को रावण सह नहीं सकता। इसलिए उसने युद्ध का रास्ता चुना।)

मंदोदरी का विलाप

मंदोदरी को जब पता चला कि उसका पति रावण श्रीराम के साथ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ तो वह विलाप करने लगी।

चौ०

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी।
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥

वह विलाप करती हुई रावण के पास आई और रोते हुए कहने लगी- "हे महापराक्रमी! आज तुम्हारा क्या हाल हो गया?"

चौ०

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥
काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥

विभीषण ने भी जब रावण को असहाय पड़े देखा तो वह भी रूदन करने लगा। श्रीराम ने मंदोदरी और विभीषणजी को बहुत समझाया। श्रीराम ने मंदोदरी को समझाते हुए कहा- "हे देवी! तुम तो भगवान् विष्णु के चन्दन से उत्पन्न हुई हो। तुम्हारा पति जब अनैतिक आचरण करने लगा तो, तुम्हें उसे रोकना चाहिए था। अगर वह नहीं

मानता तो तुम्हें उसका त्याग कर देना चाहिए था । जैसा सखा विभीषण ने किया । लेकिन रावण के इतने अत्याचारों को देखते हुए भी तुमलोगों ने इसका त्याग नहीं किया । मेघनाथ और कुम्भकर्ण जैसा वीर, बिना कारण वीरगति को प्राप्त हुआ । यह सब रावण की हठ के कारण हुआ । हठी व्यक्ति को पहले समझाना चाहिये और जब वह न माने तो, उसका त्याग कर देना चाहिए । विवेकशील लोग अत्याचारी, दुराचारी, हठी, क्रोधी और परस्त्री पर कुदृष्टि रखने वाले का साथ छोड़ देते हैं । अगर सभी लोग रावण का विरोध करते तो, रावण इतना अत्याचारी नहीं बनता । इसने जीवन भर जघन्य पाप किया है । उसी पाप की सजा तुम्हारा पति अभी भोग रहा है । यह सब रावण के कर्मों का फल है ।" यह कह प्रभु श्रीराम अपने शिविर में लौट आए ।

विशेष प्रसंग

(महान पराक्रमी त्रिलोक विजेता महाबली रावण युद्धभमि में अकिंचन और असहाय बनकर पड़ा है । जिस रावण के सामने देवता, गंधर्व, किन्नर, नाग, यक्ष आदि हाथ जोड़े खड़े रहते थे, वह आज क्षत-विक्षत होकर युद्धभूमि में पड़ा है । रावण महान पंडित योद्धा और कुशल राजनीतिज्ञ था । इसी कारण उसने सभी लोकों पर विजय प्राप्त कर ली थी । क्योंकि वह शास्त्रों का ज्ञाता था और योद्धा भी था । यह तो सृष्टि का नियम है कि जो नैतिक कर्म करता है, उसे सफलता मिलती है । इसी नैतिक कर्म के कारण उसने ब्रह्माजी से वर प्राप्त किया था, भगवान् शिव का आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था, क्योंकि वह नैतिक था । ब्रह्माजी ने अनैतिक रावण को वरदान नहीं दिया था । जिस समय उसे वरदान मिला, उस समय उसका कर्म पवित्र था, लेकिन बाद में उस वरदान के कारण वह अहंकारी बन गया । जिस प्रकार त्रिपुरासुर, महिषासुर, भस्मासुर ने नैतिक तप कर्म किया, लेकिन बाद में वह अत्याचारी बन गया, जिस कारण से परमात्मा ने उसे मारा । रावण जानता था कि वह गलत कर्म कर रहा है, उसका आचरण नैतिक नहीं है, लेकिन अहंकार के कारण अपने द्वार तक आए प्रभु श्रीराम को नहीं स्वीकारा । जिस कारण इतने बड़े विद्वान् योद्धा को मारना पड़ा ।

दूसरा कारण- नीतिपूर्ण परामर्श देने वाले अपने अनुज विभीषण को उसने लात मारकर निकाल दिया था । जबकि विभीषण अपने बड़े भाई को नाश से बचाना चाहता था । कहा जाता है-

भाई कितना भी बैरी हो, उससे राज छिपाना ना चाहिए ।
पत्नी कितनी भी प्यारी हो, उसे राज बताना ना चाहिए ॥

रावण ने अपने प्रिय भाई विभीषण को अपमानित कर राज्य से निकाल दिया । रावण के नाश की यहीं से उल्टी गिनती प्रारम्भ हो गई ।

चौ०

रावन जबहिं विभीषण त्यागा । भयेउ बिभब बिनु तबहिं अभागा ॥

यहाँ विभीषणजी ने अत्यांचारी भाई का त्याग किया, संसार का त्याग किया और प्रभु की शरणागति प्राप्त की । विभीषणजी ने अपने स्वार्थ के लिए रावण का त्याग नहीं किया, रावण की भलाई के लिए उसका त्याग किया । क्योंकि अत्याचारी का साथ देना अधर्म है और अधर्म का नाश करना धर्म का कर्त्तव्य है । किसी भी अधर्म करने वाले का जो साथ देता है, उसका भी नाश हो जाता है । इसलिए अधर्मी को पहले समझाओ, जब वह न माने तो उसका त्याग करो । रावण ने सूर्पणखा के कहने पर सीता का हरण किया । रावण को सूर्पणखा ने उकसाया, जिससे उसके मन में काम और लोभ उत्पन्न हो गया । लोभ का अन्त नाश होता है । सूर्पणखा, इर्ष्यावश सीता को राम के जीवन से हटना चाहती थी, क्योंकि श्रीराम ने स्वयं कहा था कि "सीता मेरी पत्नी है, मैं विवाहित हूँ, तुमसे विवाह कैसे कर सकता हूँ?" इसलिए सूर्पणखा ने सीता को रास्ते से हटाना उचित समझा । इसीलिए उसने रावण को बार-बार उकसाया । अशोकवाटिका में वह सीता को स्वयं मारने जाती है, सूर्पणखा को युद्ध से कोई मतलब नहीं है, उसे सीता से ईर्ष्या है । रावण कामी तो था ही, सूर्पणखा का परामर्श मिलते ही उसकी काम-भावना भड़क उठी । उसी काम भावना के कारण वह प्रभु श्रीराम से भिड़ गया । इसलिए कहा जाता है- विवेकशील पुरुष ईर्ष्यालु स्त्री के परामर्श से निर्णय नहीं करता । कोई भी बड़ा निर्णय निष्पक्ष लोगों के परामर्श से लेना चाहिए । जो स्वयं असफल हो, हारा हुआ हो और जिसका कोई स्वार्थ हो, उससे कभी भी परामर्श नहीं लेना चाहिए ।

यही कारण है कि राज्यधर्म और कर्त्तव्य का निर्धारण शासन से चिपके लोग नहीं करते । क्योंकि इसमें उनका स्वार्थ छिपा रहता है । इसीलिए प्राचीन काल में राजधर्म

का निर्धारण जंगल में बैठे संतों के द्वारा किया जाता था। रावण का पराभव उस समय की सबसे बड़ी घटना थी। इतना विराट व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न, अपनी छोटी सी बुराई के कारण युद्धभूमि में पड़ा है। हनुमान्‌जी ने भी रावण को कह दिया था कि–

चौ०

रामचरन पंकज उर धरहुँ। लंका अचल राजु तुम्ह करहुँ॥

रावण को कौन मार सकता था। उसे वरदान प्राप्त था, इसलिए प्रभु को स्वयं आकर रावण का वध करना पड़ा। इसलिए विभीषण का त्याग और सूर्पणखा का रावण को उकसाना उसके नाश का कारण बना। अगर रावण विभीषण, नाना माल्यवान और मंदोदरी की बात मान लेता, तो उसका नाश नहीं होता। लेकिन उसने सही राय देने वालों की बात नहीं मानी और चाटुकारों की बात मान ली। रावण की अनेक पत्नियाँ थीं। उसके मेघनाथ, अक्षयकुमार, महासुरा, नारान्तक, अतिकाय आदि एक से बढ़कर एक महावीर पुत्र थे। फिर भी रावण काम के वशीभूत होकर आचरण करता था। यहाँ तक कि रावण की कामवासना की पूर्ति के लिए उसके पुत्र युद्ध कर रावण को प्रसन्न करता था। यही कारण है कि त्रिलोक विजेता रावण आज युद्धभूमि में गिरा पड़ा है। शास्त्रों में कहा गया है– काम वासना, लोभ और ईर्ष्या मृत्यु का कारण बनती है।)

श्रीराम अपने शिविर में लौटे

प्रभु श्रीराम जब शिविर में लौटे, तो लक्ष्मणजी ने पूछा– "हे प्रभु! रावण एक ज्ञानी और कुशल राजा था। उसके जीवन की क्या गति हुई।" यह सुन श्रीराम ने लक्ष्मणजी को कहा– लक्ष्मण, प्रत्येक व्यक्ति अपने ही कर्मों का फल भोगता है। यह सत्य है कि रावण राजनीति का महापंडित था। पूरे संसार में उससे अधिक राजनीति जानने वाला कोई नहीं है। लक्ष्मण! तुम रावण के पास जाओ और उससे राजनीति विद्या सीखकर आओ। लक्ष्मण रावण के पास जाकर कुछ सीखने में अपना अपमान समझने लगे। फिर भी श्रीराम की आज्ञा से वे रावण के पास गये। रावण अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। उसी समय लक्ष्मणजी वहाँ गये। वे रावण के सिर की ओर खड़े होकर बोले– "रावण! प्रभु श्रीराम ने तुमसे कुछ राजनीति की विद्या सीखने के लिए भेजा है, मुझे कुछ

सिखाओ ।" लक्ष्मण की बात सुनकर कराहते हुए रावण ने लक्ष्मण की ओर देखा और कहा– "लक्ष्मण! तुम अभी नादान हो, राजनीति सीखने के अधिकारी नहीं हो, जाओ अपने बड़े भाई श्रीराम को भेजो ।" लक्ष्मण रुष्ट होकर श्रीराम के पास चले आये । लक्ष्मण ने आते ही श्रीराम को बताया कि "भैया! वह अहंकारी मुझसे बात भी नहीं करना चाहता, उसने आपको ही बुलाया है ।" यह सुन श्रीराम ने मुस्कुराते हुए लक्ष्मण से कहा– "लक्ष्मण! अवश्य ही तुमसे कोई भूल हुई है । तभी रावण ने तुम्हारे अनुरोध को अस्वीकार कर दिया । पहले यह बताओ तुम रावण के पास कैसे गये थे ।" लक्ष्मण ने कहा– "मैं रावण के पास गया, उसके सिर के बगल में खड़ा होकर राजनीति का ज्ञान देने को कहा था ।"

यह सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– "तुमसे यही भूल हो गई, क्योंकि जब तुम रावण से सीखने गये थे, तो उस समय वह तुम्हारा शत्रु नहीं, गुरु था और गुरु के पास जब कोई शिष्य जाता है, तो उसे प्रणाम करता है और उसके पांव के निकट खड़ा होकर आदर सहित प्रश्न पूछता है । लेकिन तुमने ऐसा नहीं किया । चलो! मैं स्वयं चलकर रावण से राजनीति का ज्ञान प्राप्त करता हूँ ।"

रावण युद्धभूमि में कराह रहा था और जटायु के सगे सम्बन्धी गिद्ध उसके शरीर को नोंच रहे थे । रावण अपने कर्मों पर पश्चाताप कर रहा था । तभी श्रीराम वहाँ पहुँचे । जाते ही श्रीराम ने कहा– "हे ब्राह्मण देवता! मैं राम, आपको प्रणाम करता हूँ । आपके ज्ञान को प्रणाम करता हूँ। आज मैं आपको श्रेष्ठ जानकर, आपसे राजनीति और धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ।" यह कहते हुए श्रीराम और लक्ष्मण रावण के पाँव के निकट खड़े हो गये । श्रीराम और रावण के बीच बहुत देर तक राजनीति के गूढ़ रहस्यों पर चर्चा होती रही । श्रीराम के प्रश्नों के उत्तर में रावण ने कहा– हे रघुनाथ! आप तो स्वयं सर्वज्ञानी हैं । लेकिन मैं अपने अनुभव के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण संदेश आपको देना चाहता हूँ ।

रावण का श्रीराम को उपदेश

विशेष प्रसंग

❁ **हे रघुनाथ! राज्य का संचालन वही कर सकता है, जो धर्म का अनुसरण करता हो ।**

* राजनीति धर्म से नियंत्रित होती है । राजनीति के ऊपर से जब धर्म का नियंत्रण समाप्त हो जाता है, तो राजनीति अनर्थ करने लगती है । इसलिए अपनी राजनीति को हमेशा धर्म से नियंत्रित करें ।
* राजनीति तय करने वाले लोग शासक वर्ग के न हो । राजनीति का दिशा निर्देश वैसे लोगों के द्वारा होना चाहिए, जिसे राज्य सुख का लोभ न हो ।
* हे रघुनाथ! एक साथ कई शत्रुओं से लड़ना उचित नहीं है ।
* शत्रुता, हमेशा बराबर वालों से करनी चाहिए । उसी तरह मित्रता भी बराबर वालों से ही करनी चाहिए ।
* राजा, प्रजा का पिता होता है । उसे बिना भेद-भाव का शासन करना चाहिए ।
* दूसरे की स्त्री, धन और दूसरे के ऐश्वर्य पर लोभ करने वाले राजा का नाश हो जाता है ।
* राज्य में गुप्तचर रखना चाहिए, जिसकी सूचना पर सतर्कतापूर्वक काम करना चाहिए ।
* हे रघुनाथ! सफल राजा वही है, जिसका मंत्री, वैद्य, गुरु, मित्र और पत्नी निष्पक्ष होकर, बिना लाभ-हानि के विचार किए हुए परामर्श दे ।
* राजा को चाहिए कि वह स्वयं अपने राज्य की गतिविधियों का निरीक्षण करता रहे ।
* छोटे-बड़े कर्मचारियों के मनाभावों को जानना राजा का कर्त्तव्य है ।
* प्रजा के स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा और रहन-सहन की समुचित व्यवस्था, राजा को करनी चाहिए ।
* राजा को चाहिए कि वह ध्यान रखे कि वह प्रजा का सेवक है, स्वामी नहीं ।

* बगल के देशों की गतिविधि पर भी ध्यान रखना चाहिए, ताकि उसका देश सुरक्षित रह सके ।
* राजकोष का उपयोग हो, उसका उपभोग न हो ।
* प्रजा की भलाई राजा का प्रथम कर्त्तव्य है ।
* अपने सगे सम्बन्धियों को अधिक आश्रय देने से राज्य की व्यवस्था भंग होती है ।
* हे रघुनाथ! जिस राजा का देश सुखी और सम्पन्न है, वही सफल राजा है ।)

बहुत देर तक रावण से श्रीराम वार्ता करते रहे । इसी बीच रावण ने कहा- "हे रघुनाथ! अब मैं बोलने में असमर्थ हो रहा हूँ । मैं और क्या बोलूँ, जीवन भर तो पाप-कर्म किया, तुम्हारा स्मरण नहीं किया, अब तो सब कुछ नष्ट हो चुका है, लेकिन एक प्रार्थना है- "अगर तुम मेरे पापों को क्षमा करो, तो मुझ पर बड़ा उपकार होगा । मेरा भाग्य है कि स्वयं परमात्मा मेरे सामने खड़े हैं ।" रावण धीरे-धीरे श्रीराम की प्रार्थना करने लगा-

- प्रार्थना -

जीवन गुजर गया तो, तेरा नाम याद आया ।
सब छोड़कर चले तो, अपना ख्याल आया ॥
जब तक चली ये साँसें, बाँटा है मिलके सभी ने ।
अपने बने पराये, तब होश मन में आया ॥
सब छोड़कर चले ....
जबसे मिला ये जीवन, इसे भोग में गँवाया ।
यह फूल-सी जवानी, कीचड़ में फेंक आया ॥
सब छोड़कर चले ....

जो था कभी हमारा, अब बन गया पराया ।

कागज की नाव लेकर, भव पार कर न पाया ॥

सब छोड़कर चले ....

जो हाथ थे हमारे, वे रह गये किनारे ।

जीवन की शाम होते, नामोनिशां मिटाया ॥

सब छोड़कर चले ....

इन आँखों में थी मस्ती, हुश्ने शराब आया ।

पीने का वक्त आया, तब होश मैं गँवाया ॥

सब छोड़कर चले ....

इसके बाद रावण का कण्ठ बंद हो गया और प्रभु श्रीराम ने उसे स्वधाम भेज दिया । तब श्रीराम ने विभीषणजी को कहा– "हे सखा! रावण मेरा शत्रु था, अब उसकी मृत्यु हो चुकी है । जीवित व्यक्ति ही किसी का मित्र या शत्रु बनता है । अब उचित सम्मान के साथ उसका संस्कार करो ।"

मरणान्तानि वैराणि निर्वृतं नः प्रयोजनम् ।

क्रियतामस्य संस्कारो ममादेश यथा तव ॥

उसी समय लक्ष्मणजी ने दबी जुबान से श्रीराम को कहा– भैया! अगर आप अनुमति दें तो, आर्यावर्त का विस्तार लंका तक कर दिया जाय और इसे आर्यावर्त में मिला दिया जाय । यह सुनते ही श्रीराम ने कहा– "लक्ष्मण!

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

मैं मानता हूँ कि यह सोने की लंका है, लेकिन यह हमारी नहीं है । अपनी माँ और अपना देश, स्वर्ग से भी बड़ा होता है ।" श्रीराम ने हनुमान्, सुग्रीव आदि महावीरों को आदेश दिया कि अब पुनः लंका के सिंहासन पर विभीषणजी को विधिपूर्वक राजतिलक किया जाए । विभीषणजी का राजतिलक विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया । विभीषणजी ने श्रीराम के चरणों में शीश झुकाया और इन पंक्तियों को बार-बार दुहराया ।

गीत

हे प्रभु हर साँस में तेरा सहारा साथ हो ।
हर नये संकट में तेरा आशियाना साथ हो ॥
जब थके ये पांव, तेरा हाथ मेरे साथ हो ।
जब फंसे मझधार में, साहिल तुम्हारा साथ हो ॥
एषण की भूख कैसे, नाम तेरा साथ हो ।
क्या करे संसार जब, तेरा भरोसा साथ हो ॥
विरह वेदना वेधन करती, क्यों रोऊँ तुम साथ हो ।
मन के घाव किसे दिखाऊँ, जब तुम मेरे साथ हो ॥
कौन जगह खोजूँ मैं जग में, जहाँ न मेरे साथ हो ।
नक्षत्रों की आभा बनकर, पल-पल मेरे साथ हो ॥
मन प्राणों के उर में बस कर, हर क्षण मेरे साथ हो ।
किसे झुकाऊँ शीश जहाँ तुम, हर पल मेरे साथ हो ॥
कैसे मानूँ भटक रहे हम, तेरा साया साथ हो ।
कैसे रूग्ण बने मन मेरा, जब तुम मेरे साथ हो ॥

उसके बाद श्रीराम ने हनुमान्‌जी से कहा- अशोकवाटिका जाकर सीताजी को सभी समाचार सुनाओ और उन्हें आदरपूर्वक यहाँ लाने की व्यवस्था करो ।

चौ०

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु समर जित्यो दससीसा ॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो । सुनि कपि बचन हरष उर छायो ॥

हनुमान्‌जी, प्रभु श्रीराम के आदेश से सीताजी के पास अशोकवाटिका में गये, हनुमान् जी ने कहा- "माता! प्रभु श्रीराम ने युद्ध में विजय प्राप्त कर ली है और विभीषणजी लंका के राजा बन गये हैं ।" उसी समय विभीषणजी अशोकवाटिका पहुँचे, उन्होंने सीताजी को प्रणाम किया और नए-नए वस्त्र-आभूषण भेंट किया । विभीषणजी ने अपना रथ सीताजी के लिए वहाँ खड़ा किया ।

श्रीराम ने आदेश दिया कि सीताजी को अशोकवाटिका से यहाँ लाया जाए । ताकि वानर-भालू अपनी माता को देख सकें । सीताजी अशोकवाटिका से विभीषणजी के रथ पर राम के शिविर के निकट आईं और वहाँ से रथ से उतरकर, प्रभु श्रीराम से मिलने व्यग्रतापूर्वक पैदल बढ़ने लगी । तभी श्रीराम ने कहा- सीते! तुम बहुत दिनों तक रावण के घर में रही हो, इसलिए तुम्हारी मर्यादा पर ऊँगली उठाई जा सकती है । क्योंकि कोई भी स्त्री अगर दूसरे के घर में निवास करती है, तो समाज की ऊँगली उसपर उठने लगती है । यही लोकमर्यादा है । तुम्हें अग्नि में प्रवेश कर अपनी साक्षी देनी होगी कि तुम पवित्र हो ।

यह सुनते ही सीताजी ने कहा- मैं अग्नि में प्रवेश करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन हमारे करूणानिधान श्रीराम मेरे पति मुझे बतायें कि रावण ने बलपूर्वक मेरा हरण किया था और मैं इतने दिन आपके विरह में बिना जल की मछली की तरह तड़पती रही, रावण ने मुझे अपने महल में नहीं, अशोकवाटिका में रखा था । उसने हरण के समय ही मेरा स्पर्श किया था, उसके बाद उसने कभी भी मेरा स्पर्श तक नहीं किया था । फिर मेरी पवित्रता की अग्नि-परीक्षा का क्या अर्थ है?

विशेष प्रसंग

(प्रभु श्रीराम जानते हैं कि सीता असली सीता नहीं है । असली सीता तो पंचवटी में अग्नि के पास सुरक्षित है ।

चौ0

सुनहुँ प्रियाब्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करब जगत नरलीला ।
तुम पावक महं करौ निबासा । तब लगि करौं निसाचर नासा ॥

हमारे भक्तों को स्मरण होगा कि श्रीराम ने स्वयं सीताजी को अग्नि में समर्पित किया था । इस रहस्य की जानकारी लक्ष्मण को भी नहीं थी । कोई नहीं जानता था कि असली सीता का हरण नहीं हुआ था । इसलिए श्रीराम ने लोकमर्यादा के पालन के लिए कहा कि सीता की अग्नि परीक्षा करो । इससे लोगों को पता चल जाएगा कि सीता का सतीत्व सुरक्षित है और असली सीता को अग्नि से प्राप्त भी करना था । इसलिए अग्नि परीक्षा की गई । यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि भारत की मर्यादा रही है कि पति के लिए एक पत्नी और पत्नी के लिए एक पति । जब पत्नी या पति किसी दूसरे के घर निवास करे, तो मन में संदेह उठना स्वाभाविक है । लेकिन प्रश्न है कि क्या केवल पत्नी के सतीत्व की ही परीक्षा होनी चाहिए? पुरुष के एक पत्नीव्रत के निर्वहन की परीक्षा नहीं होनी चाहिए । लेकिन हमारा देश पुरुष प्रधान है, इसलिए सीताओं की ही अग्नि परीक्षा होती है । पुरुष स्वामी है, देवता है, ऐसा मानकर पुरुष की परीक्षा नहीं होती ।)

सीताजी का अग्नि परीक्षा से बाहर निकलना

श्रीराम के आदेश से लक्ष्मणजी ने अग्नि प्रज्वलित की और तब सीताजी ने श्रीराम को हृदय में धारण कर अग्नि में प्रवेश किया, उनका प्रतिबिम्ब अग्नि में नष्ट हो गया और फिर अग्निदेव ने पूर्व की सीता को प्रगट कर दिया । सीताजी पुनः अग्नि से बाहर निकली । देवताओं ने पुष्प-वर्षा शुरु कर दी ।

दो0

जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार ।
देखि भालु कपि हरषे जये रघुपति सुख सार ॥

सीता और श्रीराम वहाँ विराजमान हुए । इन दोनों को देखकर देवताओं ने स्तुतिगान किया ।

छ०

जय राम सदा सुखधाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ॥
भव बारन दारन सिंह प्रभो । गुन सागर नागर नाथ बिभो ॥

सभी देवता श्रीराम और सीता के दर्शन कर उनकी स्तुति करने लगे । उन देवताओं के साथ महाराज दशरथ भी वहाँ पधारे, श्रीराम और लक्ष्मण एवं सीता ने पिता को प्रणाम कर आशीर्वाद लिया ।

अयोध्या लौटने की तैयारी

सभी देव, गंधर्व अपने-अपने लोक चले गये । तभी श्रीराम ने सीता सहित रात्रि विश्राम किया । प्रातःकाल विभीषणजी प्रभु श्रीराम के स्नान एवं पूजन की सामग्री लेकर वहाँ उपस्थित हुए । विभीषणजी ने कहा- हे प्रभु! आप शीघ्र स्नानादि से निवृत हो जाएं । पुष्पक विमान तैयार है, उसी पर हम सभी अयोध्या के लिए प्रस्थान करेंगे । अयोध्या का नाम सुनते ही श्रीराम के आँखों में आँसू आ गये । श्रीराम ने कहा- विभीषण! आपलोगों के सहयोग से शत्रु रावण मारा गया, सीता मुझे प्राप्त हो गई, अब भरत से मिलने के लिए मन व्यग्र हो रहा है । मुझे स्नान, भोजन कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है । मुझे शीघ्र अयोध्या पहुँचाओ -

तं विना कैकेइपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं रोचते वस्त्राण्याभरणानि ॥

विभीषण की आज्ञा से सभी वानर-भालू स्नानादि से निवृत्त हुए । विभीषणजी श्रीराम, सीता और लक्ष्मण को नए-नए वस्त्र, अलंकार भेंट किये । लंका के बहुमूल्य वस्त्र, रत्न-अलंकार, मुक्त हस्त वानर और भालू सैनिकों के बीच बाँटे गये । हनुमान्‌जी, जाम्बवन्त, सुग्रीव, अंगद, नल, नील आदि वीर सेनापतियों का, विभीषणजी ने विशेष सत्कार किया ।

कुबेर का रथ, पुष्पक विमान वहाँ लाया गया। विभीषणजी ने कहा- "प्रभु! सबसे पहले हम सभी अयोध्या चलना चाहते हैं, वहाँ आपका राजतिलक हो जाए, फिर हमलोग लौटेंगें। यह सुन लक्ष्मणजी ने कहा- हे विभीषणजी! इस एक विमान पर इतने लोग कैसे जा सकेंगे? इसके बाद विभीषण ने कहा- विमान की यही विशेषता है कि इस पर जितने लोग बैठते जाते हैं, उतनी जगह बनती जाती है। पुष्पक विमान पर सभी आराम से बैठ गए-

चौ०

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥

विशेष प्रसंग

(संतों का मत है कि ज़ब विमान से श्रीराम लौट रहे थे तो, भारत के दक्षिण में एक बहुत बड़े द्वीप की ओर संकेत करते हुए श्रीराम ने हनुमान्‌जी को कहा- "हे हनुमान्! अभी हम सब अयोध्या चलेंगे, लेकिन तुम इस द्वीप पर विशेष रुप से निवास करोगे। क्योंकि भविष्य में अगर कभी विभीषणजी अथवा उनके पुत्र और पौत्र को लंका-नाश और रावण के वध के कारण कोई आक्रोश उपजे और वे आर्यावर्त पर आक्रमण करना चाहे, तो तुम इसी द्वीप पर से उन्हें रोक देना।" कहते हैं- प्राचीनकाल में उस द्वीप का नाम हनुमान् द्वीप रखा गया था। वही बाद में हण्डमान बना, फिर उसी को अण्डमान निकोबार द्वीप समूह कहा जाने लगा। समुद्र में बसा यह द्वीप आज भी हनुमान्‌जी की कृपा से फल-फूल रहा है।)

प्रभु श्रीराम ने सीताजी को पहले समुद्र में बांधे गए सेतु को दिखाया, फिर उन्होंने पर्वतराज हिरण्यनाभ(मैनाक) को दिखाया, उसके बाद रामेश्वरम् को प्रणाम करते हुए किष्किन्धा पहुँचे। सीताजी ने कहा- "हे रघुनाथ! मैं चाहती हूँ कि किष्किन्धा की तारा, सुग्रीव पत्नी रोमा एवं अन्य स्त्रियाँ मेरे साथ अयोध्या चलें।" श्रीराम की आज्ञा से सभी शीघ्र ही तैयार होकर विमान पर बैठ गये। श्रीराम की आज्ञा से विमान पुनः ऊपर उड़ा।

चौ०

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥

वन जाते समय श्रीराम जिन-जिन स्थानों पर रूके थे, उन्होंने उन सभी स्थानों को सीताजी को दिखाया।

चौ०

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब के अस्थाना॥

श्रीराम ने दण्डकारण्य में सभी ऋषि-मुनियों से मिलकर उनका समाचार पूछा।

विशेष प्रसंग-

(मानस के अनुसार श्रीराम दंडकारण्य में कुछ दिन निवास किये थे। कहा जाता है कि बहुत पहले एक बड़ा प्रतापी राजा था, जिसका नाम था दण्ड। एक दिन वह शुक्राचार्य की बेटी पर आसक्त हो गया। उसने उस युवती से दुष्कर्म किया। जब यह बात शुक्राचार्य को मालूम हुआ, तो उन्होंने राजा दंड को शाप दे दिया कि "तुम्हारा राज्य नष्ट हो जाए और वह मरुभूमि बन जाए।" पहले कभी राजा दंड का राज्य मरुभूमि बन गया था, बाद में वहाँ जंगल उग आये। इसीलिए उसे दंडकारण्य कहते हैं।

शुक्राचार्य बड़े ही प्रतापी ऋषि थे। उन्होंने ज़ीवन भर देवताओं का विरोध किया। इसीलिए रावण शुक्राचार्य से परामर्श करने पहुँचा। शुक्राचार्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह महर्षि भृगु का बेटा था। भृगु की पत्नी त्रिभुवन भगवान् विष्णु की उपासना करती थी। उसकी नजर में देवता और राक्षस में कोई भेद नहीं था। राक्षस भृगु के आश्रम में रहते और बाहर उपद्रव करते। इस पर देवताओं ने भगवान् विष्णु की प्रार्थना की और कहा कि भृगु के आश्रमों में रह रहे राक्षसों का नाश करें। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने भृगुआश्रम के राक्षसों के नाश के लिए अपना चक्र छोड़ दिया। चक्र को आते देख भृगु की पत्नी ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना किया कि इन राक्षसों को क्षमा कर दिया जाए।

उसी समय उसे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया और उसकी प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने उसे स्वधाम भेज दिया । लेकिन राक्षसों ने खबर फैला दी कि विष्णु ने त्रिभुवन का वध कर दिया है । यह सुन भृगु पुत्र शुक्राचार्य ने प्रतिज्ञा कर ली कि- "आज से वे देवताओं का विरोध करेंगे ।" तभी से शुक्राचार्य देव विरोधी हो गए थे । रावण इसी कारण उनसे परामर्श लेने जाया करता था ।)

हनुमान्‌जी का माता अंजनी से मिलना

श्रीराम वहाँ ऋषि भारद्वाज से मिलने लगे, तभी हनुमान्‌जी ने कहा- "हे प्रभु! अगर आज्ञा दें तो, मैं अपनी माता अंजनी से मिल जाऊँ ।" यह सुनते ही श्रीराम प्रसन्न होकर बोले- ठीक है, उन्हें मेरा भी प्रणाम कहना, तब तक मैं इस आश्रम में रूकता हूँ । हनुमान्‌जी बड़े वेग से अपनी माता अंजनी के दर्शन के लिए गये । जाते ही हनुमान्‌जी ने माता अंजनी के चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया । माता अंजनी ने पूछा- "पुत्र! माता सीता का पता चल गया । तुमने दुष्ट रावण को अवश्य ही मारा होगा ।" यह सुनते ही हनुमान्‌जी ने कहा- "माता! सीता मैया सुरक्षित प्रभु श्रीराम को प्राप्त हो गई है । प्रभु ने स्वयं अपने हाथों रावण का वध किया है ।"

यह सुनते ही माता अंजनी क्रोधित हो गई, उन्होंने हनुमान्‌जी को डांटते हुए कहा- क्या! रावण को मारने के लिए प्रभु को जाना पड़ा? जब तुम वहाँ थे तो, प्रभु को जाने की क्या आवश्यकता थी? धिक्कार है तुम्हें, तुमने मेरे दूध की लाज नहीं रखी । जिस दिन तुम लंका गये थे, उसी दिन मैंने अपनी आँखों में पट्टी बांधकर व्रत रखा था कि तुम मेरे व्रत के प्रभाव से रावण का वध करोगे । लेकिन तुमने वैसा नहीं किया । देखो, मेरी आँखों की पट्टी का प्रभाव । और माता अंजनी ने ज्योंही आँख की पट्टी खोली, सामने खड़ा विशाल पर्वत चूर-चूर हो गया । उसके बाद माता अंजनी ने अपनी छाती से दूध की धारा निकाली, दूध की धारा से पर्वत का खण्ड टुकड़ा-टुकड़ा हो गया । तब माता अंजनी ने कहा- "हनुमान्! मैंने इसी दूध को पिलाकर तुम्हें बड़ा किया था ।" हनुमान्‌जी चुपचाप सुनते रहे, फिर माता की आज्ञा लेकर श्रीराम के पास लौट आये ।

श्रीराम का विमान फिर आगे बढ़ा। उन्होंने गंगाजी का दर्शन किया। गंगाजी से आशीर्वाद लेकर निषादराज गुह के पास पहुँचे। गुह ने श्रीराम का स्वागत-सत्कार किया। वहीं से श्रीराम ने हनुमान्‌जी को कहा- "हनुमान्! तुम अयोध्या चले जाओ, वहाँ भरत बड़ी व्यग्रता से मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। तुम धीरे-धीरे उसे मेरे आने की सूचना देना। क्योंकि एक ही बार जब वह मुझे देखेगा, तो पागल हो सकता है। वह अत्यन्त ही आत्म-ग्लानि और अपराध-बोध में जी रहा है।

हे हनुमान्! पहले तुम भरत की मनःस्थिति को समझना। सम्भव है, राज पद पाकर उसके मन में कोई विकार हो गया हो। मैं जानता हूँ भरत वैसा नहीं कर सकता, लेकिन पहले तुम उसके मन की स्थिति को समझना।" हनुमान्‌जी बड़े वेग से अयोध्या पहुँचे। इधर श्रीराम निषादराज गुह के आतिथ्य में रूके। श्रीराम को देखते ही निषादराज-

चौ०

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥

इस तरह प्रभु श्रीराम निषादराज से काफी देर तक बातचीत करते रहे। पुनः श्रीराम समस्त वानर भालुओं के साथ शृंगवेरपुर से सूर्योदय होते ही निकलने की तैयारी करने लगे।

दो०

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहि भगवान॥



जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों एवं अस्तित्व की रक्षापरक संघर्ष, लंकाकाण्ड

लंकाकाण्ड हमारे जीवन की कहानी का छठा सोपान है । यहाँ तक जीवन अपनी पूर्णता पर पहुँचता है। इसके बाद जीव का आनन्द काल शुरू होता है । स्वाभाविक है कि मनुष्य जब नैतिकता के आधार पर संघर्ष करता है, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयास करता है तो उसके मार्ग में काँटे भी मिलते हैं और मनुष्य जब उन काँटों को रौंदकर आगे बढ़ जाता है, तभी उसको सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त होती है । जीवन की राह में केवल फूलों की पंखुड़ियाँ ही नहीं मिलती, काँटे भी मिलते हैं । क्योंकि जीवन केवल फूलों का सेज नहीं हैं, यहाँ आँकड़-पाथर भी है । हमारे समाज में एक तरफ श्रीराम के समान सौम्य व्यक्तित्व है तो, दूसरी ओर रावण की तरह दुष्टवृत्ति वाले लोग भी हैं ।

प्रश्न है कि मनुष्य के जीवन में युद्ध की आवश्यकता क्यों पड़ती है? युद्ध तो पशुता है, अगर मनुष्य विवेकशील है, तो पूरी मानवता युद्ध की विभीषिका क्यों झेलती है? यह सभी जानते हैं कि युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं है, युद्ध तो मानवता को सर्वनाश कर देता हैं जब जब इस देश में युद्ध हुआ है, हमनें इसमें बहुत कुछ खोया है । रामायण काल में विज्ञान ने काफी प्रगति कर ली थी । राक्षसों के पास जो युद्ध-विद्या का ज्ञान था, उस उन्नत विद्या के कारण ज्ञान के क्षेत्र में समृद्ध माने जाने वाले देवता बार-बार पराजित होते रहे । देवताओं के पास भी उन्नत विद्या थी- ब्रह्मास्त्र, पाशुपत अस्त्र, अग्निबाण, वायुबाण यह सब इतना समृद्ध था कि आज के अणु बमों को भी वे बाण निस्तेज कर देने वाले थे । महर्षि विश्रवा ने अपनी गर्भवती पत्नी के पेट पर हाथ रखकर बता दिया था कि गर्भ में कैसा बालक पल रहा है । श्रीराम ने एक बाण से विभिन्न दिशाओं में खड़े सात साल वृक्षों को काट दिया था, ऐसा नाभिकीय ऊर्जा के विस्फोट से ही संभव हुआ था । समुद्र में बाँध बाँधने के लिए नल और नील ने जिस विद्या का प्रयोग किया था, उसी को आज आर्कमिडिज का सिद्धान्त कहते हैं । इसका अर्थ है- रामायण काल में नाभिकीय ऊर्जा के विज्ञान का

ज्ञान लोगों को था । यहाँ तक कि सीता के हरण के समय लक्ष्मणजी ने ऐसी रेखा खींची थी, जो शत्रु को तो जला देती थी, लेकिन मित्र को कोई नुकसान नहीं करती थी । विज्ञान की वैसी उन्नत स्थिति आज कहाँ उपलब्ध है? लेकिन रामायण काल का युद्ध समस्त विज्ञान को निगल गया । उसी तरह लाखों वर्ष बाद जब महाभारत का युद्ध हुआ तो, विज्ञान काफी प्रगति कर चुका था, लेकिन युद्ध में सारा ज्ञान नष्ट हो गया । जब-जब देश में युद्ध होता है, तो भयंकर विध्वंस के सिवाय कुछ नहीं बचता । इसलिए युद्ध मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है ।

रावण अपने देश में शान्तिपूर्ण ढंग से रह रहा था । लेकिन उसकी लोभ-लीप्सा बढ़ने लगी । वह आर्यावर्त को भी अपने अधीन करना चाहता था । श्रीराम ने इसी कारण रावण का नाश किया । रावण चाहता तो शान्ति से अपनी लंका को सुरक्षित रखता और स्वयं भी सुरक्षित रहता । उसने जितनी विद्याएं अर्जित की थी वह आज भी सुरक्षित रहती । लेकिन रावण की भूल के कारण इतना भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सब कुछ नष्ट हो गया । रावण की पशुता इतनी बढ़ गई थी कि उसे लड़ाई के सिवाय और कुछ नहीं दिखता था । इसी अहंकार के कारण वह भगवान् शिव से भी लड़ चुका था, वह मदान्ध हो गया था । जो व्यक्ति दूसरे का धन और दूसरे की स्त्री पर बुरी नजर रखता है, उसे मदान्ध कहते हैं । रावण विद्वान् भी था और पराक्रमी भी । लेकिन अहंकार के कारण वह विवेकहीन हो गया था ।

हमारे संतों का मानना है कि मनुष्य का आचरण उसके भोजन और परिवेश पर निर्भर करता है । "जैसा अन्न, वैसा मन" यह कहावत है । मनुष्य तो एक शान्तिप्रिय जीव है, उसे शान्तिपूर्वक रहने में आनन्द आता है, लेकिन जब वह तामसी भोजन का प्रयोग करता है, तो उसकी चित्तवृत्ति दूषित हो जाती है । यही कारण है कि माँसाहार करनेवाला व्यक्ति अधिक क्रोधी और आक्रामक होता है । शास्त्रों में माँसाहार को तामसी भोजन कहा गया है । जो लोग शान्ति चाहते हैं, वे तामसी भोजन से बचते हैं । रावण स्वयं माँसाहारी था, जिस कारण वह नैतिक आचरण नहीं कर सकता था । उसने स्वयं स्वीकार किया है कि इस तामसी शरीर से सात्त्विक आवरण संभव

नहीं है । इसी तामसी भोजन के कारण रावण का अत्याचार बढ़ने लगा था । वह पूरे संसार का अधिकारी बनना चाहता था । श्रीराम ने रावण की इसी प्रवृत्ति को नष्ट करने का संकल्प लिया, क्योंकि इस प्रवृत्ति को अगर रोका नहीं जाता, तो पूरे देश में अनाचार और दुराचार फैल जाता और देश के सभी लोग अनैतिक बन जाते ।

श्रीराम ने समझ लिया कि रावण के अत्याचार क्षेत्र में पूरा आर्यावर्त आ गया है । अगर यह प्रवृत्ति बढ़ी तो सारा देश रक्ष-संस्कृति के अधीन हो जाएगा और आर्यावर्त से वैदिक संस्कृति का नाश हो जाएगा । इससे आर्यावर्त की अस्मिता ही नष्ट हो जाएगी । इसके लिए श्रीराम ने रावण को समझाने का प्रयास किया । कहा जाता है किसी व्यक्ति को सुधारने के लिए पहले उसे समझाना चाहिए, फिर भी वह न समझे तो उस पर बलप्रयोग करना चाहिए । राम-रावण युद्ध के लिए श्रीराम ने अपनी ओर से कभी पहल नहीं किया । श्रीराम परमात्मा हैं और परमात्मा कभी विनाश नहीं करता, वह सृजन करता है । वह अपने सृजन की रक्षा के लिए, अपने संसार की रक्षा के लिए, विशेषकर अपने भक्तों की रक्षा के लिए वैसे दुष्टों का नाश करता है, जो उनकी सृष्टि और उनके भक्तों को कष्ट देता है, उन्हें सताता है । भक्तों की रक्षा करना परमात्मा का धर्म है । इसीलिए कभी उसे धनुष-बाण उठाना पड़ता है, तो कभी उसे चक्र धारण करना पड़ता है । परमात्मा अपनी ही सृष्टि को कैसे नाश करेगा? महिषासुर, त्रिपुरासुर, हिरण्यकशिपु, रावण और कंस । ये सब परमात्मा के ही संतान थे । परमात्मा ने इन्हें बलवान् होने का आशीर्वाद दिया था, इन लोगों ने आशीर्वाद से बल तो प्राप्त कर लिया । लेकिन उस बल का सदुपयोग नहीं किया । भस्मासुर ने भगवान् शिव से वरदान प्राप्त किया और शिव को ही नाश करने का प्रयत्न करने लगा । क्योंकि शक्ति प्राप्त कर इन दुष्टों ने विवेक से काम नहीं लिया । उन्मत्त, अभिमानी और अहंकारी हो गए । अगर परमात्मा इनके उन्माद का नाश नहीं करता तो, प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता । इस सृष्टि का जब निर्माण हुआ तो, सभी ग्रह-नक्षत्र को संतुलन के आधार पर स्थिर किया गया । तभी तो इतने विशाल ग्रह आकाश में दौड़ रहे हैं, लेकिन एक ईंच का भी अन्तर नहीं पड़ रहा है । क्योंकि एक

ग्रह अपने आकर्षण से दूसरे ग्रह का संतुलन बनाए हुए है । यह जो हमारा सूर्यमण्डल का परिवार है, सूर्य से एक ग्रह निकट है तो दूसरा बहुत दूर । इस दूरी का एक ही कारण है कि एक ग्रह दूसरे ग्रह का संतुलन बनाए हुए है । पूरा सूर्यमण्डल संतुलन के आधार पर आकाश में विचरण कर रहा है। जब ग्रह-नक्षत्र संतुलन के आधार पर चल रहे हैं तो, हमारे जीवन में भी संतुलन होना चाहिए । परमात्मा यही चाहता है कि उसके सृष्टि में सभी सुखी रहें, प्रेम और श्रद्धा से रहें और प्रकृति का संतुलन बनाए रखें । क्योंकि प्रकृति नैतिक नियमों के आधार पर टिकी हुई है । उसमें थोड़ी सी भी अनैतिकता आती है तो, संतुलन बिगड़ जाता है । हमारे जीवन में भी वही स्थिति है, हमारा शरीर भी संतुलन पर ही चल रहा है । जब हमारे शरीर का संतुलन बिगड़ता है, किसी विटामिन की कमी हो जाती है अथवा जब शरीर को प्राणवायु नहीं मिलती है अथवा शरीर के अंगों में जब रक्त-संचालन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है तो, वह अंग बेकार हो जाता है, हमारा शरीर बीमार हो जाता है । भोजन से शरीर पलता है, लेकिन वही भोजन अगर अधिक हो जाए अथवा कम हो जाए तो शरीर बिगड़ जाता है । ठीक उसी प्रकार इस संसार में संतुलन ही सब कुछ है । संतुलन का अर्थ है- नियमबद्ध आचरण । हमारे समाज में भी सड़कों पर चलते हुए लोग जब नियम तोड़ते हैं तो, अव्यवस्था फैल जाती है । किसी नगर में बहुत घर होता है, अगर उसमें दो-चार घर उपद्रव करने लगे या आतंकवादी बन जाए, अनाचारी बन जाए तो, नगर की व्यवस्था भंग हो जाती है । उस व्यवस्था को पुनः लागु करने के लिए सरकार पुलिस बल का प्रयोग करती है । दुष्टों को सजा देती है, तब समाज में शांति आती है । यहाँ भी हमारा उद्देश्य वही है ।

श्रीराम ने वही व्यवस्था की जो, हम आज अपने समाज में करते हैं । आज भी हम दुष्टों को सजा देते हैं । उस समय भी श्रीराम ने दुष्टों को सजा दी । श्रीराम ने कोई चमत्कार नहीं किया, उन्होंने वही किया जो आज हम करते हैं । आज भी हम वैसे व्यक्ति को सजा देते हैं, जो किसी महिला के साथ अभद्र आचरण करता है । आज का हमारा भारत आतंकवाद से परेशान है । श्रीराम के समय भी बाहर के

देशों के लोग हमारे देश में आकर उपद्रव मचाते थे । स्त्री समाज को प्रताड़ित करते थे, नैतिक लोगों को परेशान करते थे । श्रीराम ने वैसे ही लोगों का नाश किया । वही काम आज हम भी करते हैं । जब कोई किसी अबला को सताता है तो, उसे सजा देते हैं । जब कोई हमारे देश पर आक्रमण करता है तो, हम उसका मुकाबला करते हैं । ठीक यही काम श्रीराम ने भी किया ताकि समाज में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रह सके । परमात्मा संसार को शान्तिपूर्ण देखना चाहता है । लेकिन जब-जब महिषासुर, त्रिपुरासुर और रावण जैसा व्यक्ति समाज में पैदा हो जाता है, जिससे समाज और देश की व्यवस्था टूटने लगती है तो, उसी परमात्मा को पुनः उन दुष्टों के नाश के लिए आना पड़ता है ।

चौ०

जब जब होहिं धरम कैं हानि । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानि ।
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

यों तो परमात्मा प्राणरूप में सर्वत्र व्याप्त हैं ही, लेकिन जब दुष्टों का नाश करना होता है, तभी वे शरीर धारण करते हैं । आज तक जितने भी अवतार अथवा संत इस भूमण्डल पर आए हैं, वे किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही आये हैं । परमात्मा अकारण पृथ्वी पर नहीं आते, उन्हें और भी बहुत काम है । श्रीराम इस पृथ्वी पर किसी कारण विशेष से आए, अगर नहीं आते तो रावण का नाश नहीं होता । फिर परमात्मा तो मुखिया हैं, परिवार की सुरक्षा का भार तो उन्हीं पर है । जिस प्रकार परिवार के मुखिया सभी सदस्यों के बीच संतुलन बनाकर रखता है, तभी परिवार चलता है, अन्यथा परिवार टूट जाता है । हमारे परिवार और हमारे शरीर में जिस प्रकार संतुलन की आवश्यकता है, उसी प्रकार इस संसार को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए भी संतुलन की आवश्यकता है ।

श्रीराम युद्ध नहीं चाहते थें, क्योंकि वे परमात्मा है । संसार के प्रत्येक जीव उनकी संतान है, वे कभी उनका नाश नहीं चाहते । लेकिन जिस प्रकार परिवार में

कोई सदस्य बुरा आचरण करने लगता है, उद्दंड बन जाता है, आतंकी बन जाता है, दूसरे सदस्यों के साथ मार-पीट करने लगता है, तो घर के मुखिया को उसे सजा देनी पड़ती है और जब स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो, उस परिवार का नाश हो जाता है ।

श्रीराम हमारे परिवार के मुखिया हैं, परमात्मा और गुरु हैं । उन्हें तो इस संसार परिवार के सभी सदस्यों की रक्षा करनी है । इसी कारण श्रीराम को धनुष बाण उठाना पड़ा और उनके धनुष बाण उठाते ही संसार में तबाही मच गई । क्योंकि बहुत बड़ी बीमारी को नष्ट करने के लिए बहुत बड़ा प्रयास भी करना होता है । राम ने कभी नहीं चाहा कि युद्ध हो । इसलिए वे बार-बार समझौता करने का प्रयास करते रहे । लेकिन समझाया तो उसे जाता है, जो समझना चाहता हो । जो समझने के विरुद्ध खड़ा हो जाए, उसे कैसे समझाया जा सकता है । जब रावण नहीं समझा तो, श्रीराम को युद्ध का सहारा लेना पड़ा । श्रीराम युद्धभूमि में भी रावण को समझा रहे थे, उन्होंने तो संधि का प्रस्ताव भी भेजा, लेकिन रावण नहीं माना । क्योंकि जो स्वयं मरना चाहता हो, उसे बचाना मुश्किल है । जो थोड़ा भी बचने का प्रयास करेगा, उसे बचाया जा सकता है । श्रीराम को पता था कि युद्ध होगा तो, महाविध्वंस होगा और महाविध्वंस में कुछ नहीं बचता । इसलिए विवेकशील लोग हमेशा युद्ध से बचते हैं । जब समझौता के सारे रास्ते बन्द हो जाते हैं, तभी युद्ध अनिवार्य होता है ।

हंसना, खेलना, प्रेम करना सबको अच्छा लगता है । लेकिन हमारे मन में जब अहंकार आ जाता है, जब हम स्वार्थ के वशीभूत हो जाते हैं, दूसरों का हक छीन लेना चाहते हैं तो, परिवार में कलह हो जाता है । जब तक हम एक-दूसरे की भावना की कद्र करते हैं, तब तक परिवार में कलह नहीं होता और जब हम दूसरों का हक मार लेना चाहते हैं, दूसरों को नीचा दिखाना चाहते हैं, तभी किसी के मन में आक्रोश होता है । यही आक्रोश जब विस्फोट करता है, तो युद्ध होता है ।

यह सभी जानते हैं कि युद्ध आक्रोश की कोख से जन्म लेता है । आज तक युद्ध का कोई शुभ परिणाम नहीं हुआ । युद्ध में विजय प्रापत करना अहंकार का प्रदर्शन

है । सभी जानते हैं कि रावण अन्त तक युद्ध करता रहा । मंदोदरी उससे कहती है- "इस युद्ध में आपके भाई, पुत्र, सगे-सम्बंधी सभी मारे गए ।" फिर भी रावण युद्ध करता रहा । मंदोदरी ने फिर कहा- जब पूरी लंका नष्ट हो गई, आपके सारे अपने लोग मारे गये तो, आप किसके साथ विजयोत्सव मनाएंगे । इस पर रावण कहता है- मैं यश प्राप्त करना चाहता हूँ । लेकिन रावण यह नहीं समझ सका कि यश और विजय का अर्थ क्या होता है?

महाभारत की लड़ाई भी भीषण थी, सब कुछ नष्ट हो गया । पांडवों को विजय मिली, लेकिन वे विजयोत्सव किसके साथ मनाएं? कोई उनका अभिनन्दन करने वाला भी नहीं बचा । अन्त में पाण्डवों को हिमालय पर्वत में गल जाना पड़ा । आखिर किस कारण यह लड़ाई लड़ी गई । जब लड़ाई से प्राप्त परिणाम का सुख ही नहीं मिले, तो फिर लड़ाई किसलिए?

आज तक इस संसार में लगभग चार हजार लड़ाइयाँ लड़ी गईं हैं । जितनी बार युद्ध हुआ है, उतनी बार इस संसार ने उस समय की समस्त उपलब्धियों को गंवा दिया है । भारत ने भी न जाने कितनी बार अपनी प्रगति और ज्ञान-विज्ञान को लड़ाइयों में ध्वस्त कर दिया है । एक बार जब लड़ाई होती है और उससे जो विध्वंस होता है, उससे उबरने के लिए हजार पीढ़ियाँ नष्ट होती रहती हैं । रामायण और महाभारत में आण्विक बाणों का जो प्रयोग हुआ है, उसके कितने बुरे परिणामों को हम शास्त्रों में पढ़ते और देखते हैं । एक अणु बम अगर फूटता है, तो उससे लगभग पन्द्रह हजार सेंटीग्रेड ताप पैदा हो जाती है, जबकि एक हजार सेंटीग्रेड ताप पहुँचते ही लोहा भी पिघलने लगता है । इस तथ्य को सभी जानते हैं, फिर भी संसार में युद्ध हो रहा है और इसका परिणाम निर्दोष लागों को भुगतना पड़ रहा है । 1945 में अमेरिकी प्रेसिडेंट टुरुमैन के आदेश से जापान के हिरोशिमा और नागाशाकी में बम गिराया गया । जिसका भीषण परिणाम आज की नई पीढ़ी भी भुगत रही है ।

प्राचीनकाल में अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग आत्म रक्षा के लिए किया जाता था । लेकिन अब तो केवल दूसरों को मारने के लिए ही विभिन्न प्रकार के अणु बम, परमाणु

बम, जैव बम आदि की खोजें हो रही हैं । कितना दुर्भाग्य है कि आज तक किसी वैज्ञानकि ने मानवता की रक्षा के लिए मनुष्य को सुखी बनाने के लिए एक भी बम अथवा कोई मशीन नहीं बनाया । लेकिन मानवता के नाश के लिए हजारों बम बन चुके हैं ।

युद्ध तो पशुता का प्रदर्शन है । आज का युद्ध केवल विनाश के लिए किया जाता है । प्राचीनकाल में ऐसे अस्त्र-शस्त्र होते थे, जिससे लोगों का कल्याण भी होता था । श्रीराम ने जो युद्ध किया, वह स्वार्थ की लड़ाई नहीं थी, उसमें विश्वकल्याण की भावना थी । इसीलिए इस युद्ध की कहानी को आज लोग भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं । अगर इस कहनी में जन-कल्याण नहीं होता, तो रामायण एक इतिहास की पुस्तक होती । इतिहास में भी लड़ाइयाँ लड़ी गईं, लेकिन उन लड़ाइयों में कहीं कोई जन-कल्याण नहीं था । आज भी विश्व में अनेक लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं, लेकिन उन लड़ाइयों में कहीं भी लोक-कल्याणकारी भावना नहीं है । जब दो अहंकारी व्यक्ति एक साथ खड़े होते हैं, तो वहीं से लड़ाई शुरू हो जाती है । आज की लड़ाई केवल स्वार्थ की लड़ाई है । इतिहास गवाह है कि राजपूतों का पराभव इसीलिए हुआ कि एक व्यक्ति कहता था कि मेरी मूंछों से तुम्हारी मूंछें बड़ी क्यों? इसी पर लड़ाई हो जाती थी । इसी अहंकार और जिद के कारण राजपूत के बहादुर क़ौम पराधीन बन गए ।

लंका का युद्ध अथवा महाभारत का युद्ध हो, अल्हारूदल की लड़ाई हो या गाँव-समाज की लड़ाई हो, प्रत्येक लड़ाई का कोई तथ्यपूर्ण कारण नहीं होता । क्योंकि मनुष्य आजकल व्यसनों का दास हो गया है । उसका खान-पान, रहन-सहन आपत्तिजनक और दूषित हो गया । जब मनुष्य की अनैतिक कामना पूर्ण नहीं होती, तो वह आक्रामक हो जाता है और युद्ध करने लगता है । ऐसे लोगों का भोजन ही आपत्तिजनक है । हिंसात्मक प्रवृत्ति का जन्म, मांसाहार और मादक द्रव्यों के सेवन से होता है । मनुष्य जब शान्त और प्रेमपूर्ण रहता है, तो वह आक्रामक नहीं होता । आक्रामक बनने के पहले उसे मादक द्रव्यों का सेवन करना पड़ता है, ताकि उसके

मन से प्रेम, करुणा, दया नष्ट हो जाए और वह हिंसात्मक बन जाए । इसीलिए अधिकांश जूर्म रात में ही होते हैं, जब मनुष्य किसी नशा के कारण बेहोश रहता है। क्योंकि होश में कोई व्यक्ति कैसे किसी का गला दबा सकता है । इसलिए गला दबाने के पहले वह पशु बन जाता है, तभी वह कोई जुर्म कर पाता है । भगवान् बुद्ध, महावीर कभी जुर्म नहीं कर सकते थे । ये लोग कभी हिंसा नहीं कर सकते थे, क्योंकि इनके हृदय में इतना प्रेम भरा है कि उस प्रेम के कारण वे पूरी तरह अहिंसक बन गये । अहिंसक व्यक्ति भी लोगों को पराजित करता है । मनुष्य युद्ध में लड़ते हुए भी परजित होता है और अहिंसक व्यक्ति से भी पराजित होता है । लेकिन दोनों के पराजय में अन्तर है । युद्ध में पराजित व्यक्ति को आत्मग्लानि होती है और अहिंसक व्यक्ति से पराजित व्यक्ति का स्वाभिमान बढ़ जाता है ।

राम-रावण युद्ध में रावण ने प्रतिशोध की लड़ाई लड़ी । श्रीराम ने शान्ति की लड़ाई लड़ी । आज हमारे देश में वैसी ही लड़ाई की जरूरत है, जो हमें सुख और शान्ति से जीने दे । संसार का प्रत्येक व्यक्ति शान्ति से जीना चाहता है, जीवन का भय प्रत्येक व्यक्ति को होता है । फिर भी आज जगह-जगह लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं । श्रीराम की लड़ाई प्रतिशोध की लड़ाई नहीं थी, श्रीराम समग्र देश में शान्ति की स्थापना चाहते थे । जब किसान का खेत उबड़-खाबड़ हो जाता है अथवा खेत में पौधों के साथ कुछ गलत पौधा पैदा हो जाता है तो, किसान उन गलत पौधों को छांटकर निकाल देता है । उसी तरह समाज में भी जब गलत लोग पैदा हो जाते हैं, तो स्वच्छ समाज की स्थापना के लिए गलत लोगों को हटाना पड़ता है । श्रीराम ने भी वही किया । उन्होंने ऐसे समाज की स्थापना का संकल्प लिया, जो राम राज्य बन सकें । इस राम राज्य की स्थापना में जो लोग गलत हैं और जिन्हें सुधारा नहीं जा सकतां था, श्रीराम ने उन्हें हटा दिया ।

राम-रावण युद्ध से पूरी लंका तबाह हो गई, लंका के एक-एक वीर मारे गये । केवल विभीषण बचा । श्रीराम ने विभीषण को लंका का राजा बनाया । अब प्रश्न है कि विभीषण ने किस लंका पर राज्य किया? सारी लंका तो उजड़ चुकी

थी । यह सत्य है कि लंका के उजड़ने का कारण रावण का अहंकार था । उसने विभीषणजी को राज्य से निकाल दिया, क्योंकि विभीषण नैतिक बात करते थे । जो दुराचारी बन जाता है, उसे नैतिक बात अच्छी नहीं लगती । रावण को पहले हनुमान्जी ने समझाया, फिर अंगद ने समझाया, विभीषण जब समझाने गया तो उसे लात मारकर निकाल दिया । बुजुर्ग नाना माल्यवान् को भी रावण ने अपमानित कर दिया । मंदोदरी ने कई बार समझाया, लेकिन पत्नी की बात भी वह नहीं माना, उसने युद्ध की घोषणा कर दी । वह देख रहा था कि एक-एक योद्धा मारे जा रहे हैं, फिर भी वह युद्ध में खड़ा था । कुम्भकर्ण जैसा भाई जब रावण को समझाने लगा, तो रावण ने उसे भी अपमानित्र कर दिया । बेटा इन्द्रजीत ने युद्ध न करने का अनुरोध किया, लेकिन वह किसी की बात नहीं माना । केवल उसके हठ के कारण उन्नत वैज्ञानिकता से समृद्ध लंका नष्ट हो गई । लंका में योद्धाओं के पास जो अस्त्र-शस्त्र थे, वे भी इतने उन्नत ही थे जैसे श्रीराम के अस्त्र-शस्त्र थे । विज्ञान के क्षेत्र में इतना उन्नत देश केवल रावण के हठ के कारण नष्ट हो गया । ऐसी उन्नति में काफी समय लगा होगा । लेकिन एक युद्ध ने उस प्रगति को हजारों वर्ष पीछे धकेल दिया । न जाने अब तक विश्व में कितनी बार विज्ञान उन्नत हुआ होगा और कितनी बार खण्डहरों में दब गया होगा । आज अगर श्रीराम के काल से अब तक का ज्ञान सुरक्षित रहता तो, हम भी अपने देश की उड़नतस्तरी दूसरे नक्षत्र पर भेजते ।

आज वैज्ञानिक कहते हैं- अंतरिक्ष में और भी कई स्थान हैं, जहाँ जीव रहते हैं । वे विज्ञान के क्षेत्र में इतने उन्नत हैं कि वहाँ तक पृथ्वीवासी को पहुँचने में, उस ज्ञान को प्राप्त करने में हजारों वर्ष लग जाएंगे । इसका अर्थ है- उन स्थानों पर युद्ध के लिए उन्मादी लोग नहीं रहते होंगे । सम्भव है, वे अपना भला-बुरा सोचते होंगे, तभी उनका ज्ञान सुरक्षित है । आज हमारे देश का और पूरे संसार का ज्ञान काफी बढ़ रहा है । अगर इस समय किसी ने भूल कर दी और आण्विक युद्ध प्रारम्भ हो गया तो, फिर यह विश्व आदिसभ्यता के युग में चला जाएगा । फिर यहाँ तक आने में लाखों वर्ष लगेंगे ।

मनुष्य अगर युद्ध को टाल देता है तो, अब समय आ गया है कि पूरा विज्ञान मानवता की रक्षा के लिए समर्थ हो जाएगा । आज तो विज्ञान कवल विध्वंस की नई-नई तकनीक खोज रहा है । जब विध्वंस की आवश्यकता नहीं रहेगी तो, वही विज्ञान निर्माण का कार्य करने लगेगा । रामायण में श्रीराम ने और महाभारत में श्रीकृष्ण ने इसीलिए युद्ध को रोकना चाहा । आज रामायण और महाभारत इस नई पीढ़ी को यही संदेश दे रहा है कि युद्ध को रोको अन्यथा, रामायण और महाभारतकाल की तरह पूरी सभ्यता नष्ट हो जाएगी । क्योंकि आज के विज्ञान के पास इतना सामर्थ्य है कि वह पूरी दुनिया को एक बार नहीं, दस-बीस बार नष्ट कर सकता है । उस विज्ञान से क्या लाभ, जिससे पूरी मानवता नष्ट हो जाए । विज्ञान तो जीवन देता है, जीवन को नाश नहीं करता । आज अगर विज्ञान की हमें पूरी समझ हो जाए, तो अंतरिक्ष में बसे किसी भी लोक से हम पिछड़े नहीं रहेंगे । तब हम खोज सकेंगे कि मनुष्य को रोग-शोक, दुःख, चिन्ता से कैसे मुक्त रखा जाए । मनुष्य दीर्घायु कैसे बने, मनुष्य के अन्दर प्रेम और करुणा कैसे पैदा हो, मनुष्य सैकड़ों वर्षों तक कैसे जीवित रह सकता है । यह ज्ञान भारत को था, लेकिन हमने युद्ध में सब कुछ गंवा दिया । इसलिए मैं मानता हूँ कि रामायण और महाभारत की आज इस युग में हमें आवश्यकता है । रामायण और महाभारत में लोगों ने जिस भूल के कारण अपना सर्वनाश कर लिया, वही भूल फिर न दुहराई जाए । इसलिए रामकथा को व्यक्ति-व्यक्ति में उतारने की आवश्यकता है । युद्ध के मैदान में श्रीराम, विभीषण को उपदेश करते हैं- "नैतिक आचरण करने से ही मनुष्य को यश मिलता है ।"

सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥

मनुष्य अगर भीषण परिस्थिति में भी धैर्य रखता है, शील और मर्यादा का पालन करता है, तभी उसे यश मिलता है । श्रीराम युद्ध नहीं चाहते थे, लेकिन जब युद्ध अनिवार्य हो गया तो, युद्धभूमि में भी वे स्थितप्रज्ञ बने रहे, आक्रोश में कभी नहीं आए । युद्धभूमि में भी श्रीराम केवल लड़ाई के लिए लड़ते रहे, तभी उन्हें यश मिला । महाभारत में श्रीकृष्ण ने यद्धभूमि में अर्जुन को उपदेश दिया ।

श्रीकृष्ण ने कहा- "अर्जुन! करनेवाला कोई और है, तुम तो निमित्त मात्र हो। तुम कुछ कर कहाँ रहे हो? सब कुछ तो प्रकृति कर रही है। तुम कर्त्ता होने के अभिमान को छोड़ दो। तुम सरल और सहज बन जाओ। अगर गीता के ज्ञान को हम अपने जीवन में उतार लें तो, हमारे देश में कभी कोई महाभारत नहीं होगा। आज प्रायः रामकथा कहते समय लोग मुझसे पूछते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में इस पौराणिक कथा की क्या आवश्यकता है?" मैं उन्हें बताता हूँ- "रामकथा महज इतिहास नहीं है, यह हमारे जीवन का नीतिशास्त्र है। नीतिशास्त्र का अर्थ है- क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए। रामकथा यही तो बताती है कि अपने समाज में राक्षस की तरह फैल रहे भ्रष्टाचार से अहिल्या को बचाओ। पत्नी के परामर्श से राम को वनवास जाने का जो आदेश मिलता है, उसे रोको। क्योंकि इस आदेश में ईर्ष्या है, द्वेष है, घर के मुखिया को पत्नी के परामर्श से इतने बड़े सर्वनाश से बचना चाहिए। राज्य अथवा घर का मालिक राजा और मुखिया होता है। जब घर का मुखिया, अपनी पत्नी के परामर्श से राज्य को प्रभावित करनेवाला निर्णय करता है तो, घर बिखर जाता है। पत्नी का जहाँ स्थान है, वहाँ उसे सम्मान मिलना चाहिए। लेकिन परिवार की मर्यादा का ख्याल न करके पत्नी की बात मानकर काम करना उचित नहीं है। घर के मुखिया राजा दशरथ को यहाँ कहना चाहिए था कि पत्नी की बात मानकर मैं अयोध्या को धोखा नहीं दे सकता। अयोध्या उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। राज्य कार्य मंत्रियों के परामर्श से चलता है, पत्नी और पुत्र के परामर्श से नहीं। जो व्यक्ति पुत्रमोह और पत्नीमोह में पड़कर अपने प्राण समान बेटे श्रीराम को घर से निकाल दिया। काम के वशीभूत राजा तड़प-तड़प कर मर गए और पूरा साम्राज्य बिखर गया। अगर राजा दशरथ न्यायप्रिय होते तो, अपनी पत्नी कैकेयी को कह सकते थे कि अयोध्या का राजा कौन बने, इसका निर्णय गुरु वशिष्ठ और मंत्री परिषद् करेगा। लेकिन इतना साहस वे नहीं जुटा पाए।"

आज भी हमारे देश में अनेक दशरथ हैं, जो पत्नी के परामर्श से माता-पिता, भाई-बहन और राम के समान बेटा को घर से निकाल रहे हैं। रामकथा का यही तो

उद्देश्य है कि वह रामायण की घटनाओं को देखे और अपने परिवार का नाश होने से बचाए। हमारे समाज में ऐसे दशरथों और धृतराष्ट्रों की कमी नहीं है, कोई पत्नी मोह के कारण परिवार तोड़ रहा है तो, कोई पुत्र मोह में ऐसा कर रहा है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि रामायण और महाभारत हमें प्रत्यक्ष अनुभव कराता है कि तुम दशरथ और धृतराष्ट्र मत बनो। जिसके परामर्श को मानकर तुम अनर्थ किए जा रहे हो, अपने ही परिवार को विद्वेष की आग में जला रहे हो, एक दिन तुम्हें परामर्श देनेवाला स्वयं तुम्हारा साथ छोड़ देगा।

राम को वनवास होता है, सीता का हरण होता है। श्रीराम बाली को मारते हैं और अन्त में रावण का नाश करते हैं। यह राम का पुरुषार्थ था कि उन्होंने अकेले इतना बड़ा संग्राम किया। श्रीराम चाहते तो अयोध्या से सेना मंगवाकर लंका पर आक्रमण करते, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसका अर्थ है- "प्रत्येक व्यक्ति को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ती है।" कोई किसी की सहायता नहीं करता। सहायता तो मनोबल बढ़ाने का कारण है। अगर मनुष्य स्वयं समर्थ है तो, उसे किसकी सहायता की जरूरत पड़ेगी?

मेरे एक करीबी व्यक्ति राजनीति में सक्रिय हैं। जब कभी वे मुझसे मिलने आश्रम आते हैं, तो यही कहते रहते हैं- "मैंने इस बार उस व्यक्ति को चुनाव जीता दिया, पूरे क्षेत्र में मैं जिसको चाहता हूँ, वही जीतता है।" मैंने एक दिन उनसे पूछा- जब तुम लोगों को चुनाव जीता सकते हो तो, तुम स्वयं चुनाव क्यों नहीं जीतते? यह सुन वह व्यक्ति झेंप गया। ठीक वही बात प्रत्येक मनुष्य के जीवन में लागू होती है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि लंकाकाण्ड का युद्ध हमारे लिए एक सीख है। आज के युग में हमें इस युद्ध विभीषिका से बचने की आवश्यकता है। यही रामकथा का उद्देश्य है।

(लंकाकाण्ड समाप्त)



उत्तरकाण्ड



श्रीगणेशायं नमः

श्रीरामकथा

उत्तरकाण्ड

ईशप्रार्थना

इन्द्रियेषु मनः श्रेष्ठं सर्वपापस्य कारणम् ।
विवेकचक्षुः विनश्यति इन्द्रियाणि सर्वकामेषु ॥

इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है । लेकिन वह सभी पाप का कारण बनता है । जिसके पास विवेक, बुद्धि आ जाती है, वह इन्द्रियों की कामना को नष्ट कर लेता है ।

गुरु वंदना जो करे, तन मन भरे प्रकाश ।
दुःख हरे संकट मिटे, तन हो देव का वास ॥
जिन संतों ने राम का, किया निरन्तर गान ।
ताको मैं वंदन करूँ, इतना दिया जो मान ॥
हे राम तुम्हारा चरित्र, स्वयं में परिपूर्ण है ।
कैसे पाऊँ पूर्णत्व, अभिलाषा अभी अपूर्ण है ॥
इस आश में गीत सुनाता हूं, तेरी पूर्णता में मिल जाऊँ ।
नदी झरनों सा बहकर पल-पल, तेरे सागर में खो जाऊँ ॥

अयोध्यावासी प्रभु श्रीराम के वियोग में चिन्तित बैठे कुछ विचार कर रहे हैं । स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ इकट्ठे होकर सोच रहे हैं कि अब एक ही दिन का समय बाकी रह गया है, जब हम हमारे बीच प्रभु श्रीराम का आगमन होगा । प्रकृति में चारों ओर

सब सुन्दर शकुन हो रहे हैं, सबका मन प्रसन्न है । अयोध्या का चारों कोना रमणीक हो गया है । प्रभु के आगमन में सम्पूर्ण अयोध्या शुभ शकुनों से भर गया है । इस तरह से सभी प्रकार के शुभ लक्षण प्रकट हो ही रहे थे कि इसी बीच श्रीहनुमान्जी का आगमन नंदीग्राम में भरतजी के समीप होता है ।

हनुमान्जी का भरत से मिलन

श्रीहनुमान्जी बड़े वेग से भरत के निवास नंदीग्राम के निकट पहुँचे । हनुमान्जी ने सोचा प्रभु ने कहा है कि भरत को धीरे-धीरे मेरे आने की सूचना देना । अतः हनुमान्जी भरतजी के पास पहुँचकर चुपचाप शान्तिभाव से देख रहे हैं कि भरतजी बैठे हैं, बाल में जटा हो गई है, चेहरा मलिन हो गया है, वस्त्र भी मलिन है, आँखों से आँसू निकल रहे हैं । विरह की अवस्था में भरतजी बैठे हैं-

चौ०

रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भयेउ अपारा ॥

कारन कवन नाथ नहि आयेउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ॥

भरतजी रोए जा रहे हैं, यह देखकर हनुमान्जी बड़े दुःखी हुए । हनुमान्जी ने धीरे से भरतजी को सुनाया- "हे देव, जिस रघुनाथजी के लिए आप इतने व्यग्र हैं, वे शीघ्र ही आपको दर्शन देने वाले हैं ।" श्रीराम का नाम सुनते ही भरतजी, बड़े आश्चर्य से चारों ओर देखने लगे । भरतजी ने कहा- ऐसा सुखद समाचार सुनाने वाले आप कौन हैं?

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।

प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥

अर्थात् "हे महानुभाव! तुम कौन हो, जो इतना सुन्दर समाचार सुना रहे हो, मैं तुम्हें एक लाख गायें दूँगा ।"

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ।

यह सुनकर हनुमान्जी ने कहा-

चौ०

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती । रटहु निरंतर गुनगन पाँती ॥

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता । आयउ कुसल देव मुनि त्राता ॥

भरतजी ने ज्योंही सुना कि प्रभु श्रीराम आ रहे हैं, वे उठकर हनुमान्‌जी को गले लगाये और पूछे कि "हे भाई! तुम कौन हो?"

चौ०

को तुम्ह तात कहाँ ते आए । मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥

हनुमान्‌जी ने कहा- भैया भरत! मैं आपका वही हनुमान् हूँ, जिसे संजीवनी लाते समय आपने मूर्छित किया था । यह सुन भरत ने हनुमान्‌जी को गले से लगा लिया ।

चौ०

मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥

विशेष प्रसंग

(श्रीराम को तो, चौदह वर्षों के लिए वनवास हो गया था, लेकिन भरतजी अपने घर में रहते हुए पत्नी मांडवी के साथ वनवास का दुःख भोग रहे थे । इसलिए श्रीराम ने हनुमान्‌जी को कहा- "तुम धीरे-धीरे भरत को मेरे आने की सूचना देना ।"

इस संवाद का दो अर्थ है । हनुमान्‌जी को कहा गया कि पहले तुम भरत की स्थिति समझना । सम्भव है, राजमद के कारण भरत का मन बदल गया होगा । ऐसा होता भी है कि जब कोई व्यक्ति एक बार राजसुख भोग लेता है तो, उस पद से हटने पर उसे बड़ा दुःख होता है । वह विरोध भी कर सकता है । अगर वह विरोध करता है तो, उसी के अनुकूल तुम आचरण करना । यह श्रीरामजी की सामान्य मनुष्यों की मनोभावना के लिए मन में संदेह है । श्रीराम तो, जानते थे कि भरत ऐसा नहीं कर सकता । फिर भी श्रीराम ने भरत को पहले समझने का आदेश दिया । जब यह बात स्पष्ट हो जाए कि अगर उसके मन में कोई विक़ार आ गया हो तो, उस विकार को नष्ट किया जा सकता है । क्योंकि भरत, श्रीराम का अनन्य भक्त है । उसे वे धन, मद आदि के कीचड़ में

फंसने नहीं देना चाहते । क्योंकि प्रभु का कोई भक्त अगर काम विकार, धन वैभव अथवा संसार के प्रलोभनों में फंसता है तो, प्रभु पहले उसे बचाते हैं, जब वह अहंकार के कारण बच नहीं पाता तो, रावण की तरह उसका नाश कर देते हैं । जीव जब माया में फंसता है तो, प्रभु पहले उसे सावधान करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि एक बार अगर वह माया के कीचड़ में फंसा तो, उसे बचाना मुश्किल हो जाएगा । माया जीवन में आती भी इसीलिए है कि जीव हमेशा सतर्क रहकर सत्कर्म करता रहे । अगर पाप, दुःख, संकट, नर्क, मृत्यु का डर जीव को न रहे तो, वह महाअत्याचारी बन जाएगा । इसीलिए ईश्वर ने पुण्य के साथ पाप, प्रकाश के साथ अन्धेरा, भोग के साथ रोग, सुख के साथ दुःख बनाया । ताकि जीव हमेशा सतर्क होकर अपना कर्म करे । प्रभु कभी नहीं चाहते कि उसका भक्त दुःख, शोक, कष्ट में रहे । वह तो, उसे हमेशा स्वस्थ देखना चाहते हैं । प्रभु ने अपने भक्तों के लिए सारा सुख इस संसार में दिया है । यह भी निर्देश दिया है कि वह इन सुखों का संयमपूर्वक उपयोग करे, उपभोग न करे । संसार के सुख के उपयोग में सुख है, उपभोग में दुःख है । जब मनुष्य उन्मत्त होकर भोग में लिप्त हो जाता है तो, वह प्रत्येक नैतिक कर्म छोड़ देता है । और वह उसी में लिप्त होकर मर जाता है । जैसे- मक्खी मधु पर बैठती है, अगर वह केवल मधु को खाये तो, ठीक है, लेकिन मक्खी अधिक से अधिक खाने के स्वार्थ में मधु में लिप्त हो जाती है, फिर उसका पंख मधु में सट जाता है और वह उसी मधु में फंस कर मर जाती है । संसार के लोग सुख का उपयोग करें, तब तो, ठीक है, लेकिन जब वह सुख में डूब जाता है, वह स्वयं भोग वस्तु बन जाता है तो, वह उसी भोग-वस्तु में स्वयं लय हो जाता है, मर जाता है । भगवान इसीलिए पहले अपने भक्तों को बचाते हैं । भरतजी को भी इसीलिए उन्होंने जांचा कि कहीं धंन के कारण वह बीमार तो, नहीं हो गया है । अगर वह धन मद से बीमार होगा, तब उसका इलाज करना होगा ।

श्रीराम कहते हैं- "अगर वह मेरी भक्ति में लीन होगा, तब उसे मेरे आने की सूचना धीरे-धीरे देना । कहीं मेरे आने की सूचना से वह अति प्रसन्न न हो जाए, जिससे उसकी भक्ति टूट जाएगी । क्योंकि स्वाभाविक है कि मेरे ऊपर जब वह पूरा ध्यान लगाये हुए है तो, ज्योंही उसे मेरे आने की सूचना मिलेगी, वह अपना मानसिक संतुलन खो सकता है । क्योंकि चौदह वर्षों से भरत मेरा ध्यान करते-करते राम बन गया है । अब ज्योंही उसका राम बनना टूटेगा, उसे गहरा धक्का लग सकता है, उसके हृदय की धड़कन भी बन्द हो सकती है, वह पागल हो जा सकता है । क्योंकि कभी-कभी मनुष्य

अत्यन्त दुःख और अत्यन्त सुख में भी पागल बन जाता है । दुःख में आँसू निकलते हैं, यह तो, सभी जानते हैं, लेकिन जब सुख प्रगाढ़ बन जाता है, तब भी मनुष्य रोने लगता है ।

श्रीराम एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक हैं, इसीलिए उन्होंने हनुमान्जी को धीरे-धीरे समाचार सुनाने को कहा ।")

अब, भरतजी ने पूछा- भैया हनुमान्! क्या कभी मुझे प्रभु श्रीराम याद करते हैं? यह सुनकर हनुमान्जी ने कहा-

दो०

राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥

देर तक हनुमान्जी और भरतजी बातचीत करते रहे । हनुमान्जी ने सीता-हरण, लंका की लड़ाई एवं रावण नाश का पूरा विवरण भरतजी को सुना दिया । भरतजी ने कहा- "भैया हनुमान्! इतना बड़ा युद्ध लड़ा गया, लेकिन भैया ने मुझे इस संकट की घड़ी में एक बार भी याद नहीं किया ।" यह सुन हनुमान्जी ने कहा- "भैया भरत, प्रभु श्रीराम बड़े स्वाभिमानी हैं । वे अपनी लड़ाई स्वयं लड़ते हैं । इस लड़ाई का उद्देश्य केवल रावण को मारना नहीं था, बल्कि बुराई को नष्ट करना भी था । इस लड़ाई में प्रभु ने अपने धर्म का पालन किया है, क्योंकि वे परमात्मा हैं । पूरी लड़ाई उन्होंने स्वयं लड़ी है, हमलोग तो, माध्यम बने हुए थे । हनुमान्जी की बात सुनकर पहले तो, भरतजी दुःखी हुए, लेकिन प्रभु श्रीराम की इच्छा जानकर वे चुप हो गये ।

हनुमान्जी ने कहा- "प्रभु श्रीराम, सीता माता और भैया लक्ष्मण के साथ शृंगवेरपुर पहुँच चुके हैं । कल अयोध्या पहुँच जायेंगे ।" उसके बाद हनुमान्जी भरतजी को प्रणाम करके श्रीराम के पास लौट आए ।

इस प्रकार श्रीराम भक्त हनुमान् के मुख से प्रभु श्रीराम के अयोध्या लौटने का समाचार जानकर भरतजी ने कहा- **"चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः"** बहुत दिनों के बाद आज मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ । पुनः भरतजी हनुमान्जी को विदा करके पाँव पैदल अयोध्या लौट आए-

चौ०

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब दूरहि सुनाए ॥

प्रभु श्रीराम के आने का समाचार सुनते ही पूरी अयोध्या में खुशी का माहौल बन गया । घर-द्वार सजाये जाने लगे । प्रभु श्रीराम के आने के पहले ही, पूरे नगर को सजाने की पूरी व्यवस्था की जाने लगी और भरतजी अपनी माताओं को यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अति शीघ्रता से महल के अन्दर प्रवेश किए-

चौ०

पुनि मंदिर महँ बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननीं उठि धाईं । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥

भरतजी ने ज्योंही नगर में समाचार दिया कि प्रभु श्रीराम आ रहे हैं । यह सुनते ही पूरे नगर में उत्साह का वातावरण हो गया । भरत और शत्रुघ्न ने पूरे नगर को सजाने का आदेश दे दिया । सभी घरों पर मंगल-कलश सजाए जाने लगे । जगह-जगह तोरणद्वार बनाए गए । प्रातःकाल होते ही नगर के सारे लोग हाथों में कलश और पुष्प-मालाओं को लेकर अयोध्या की सीमा के निकट पहुँच गए । तीनों माताएं सवारी पर चढ़कर अपने पुत्र और पुत्रवधू के स्वागत के लिए नंदीग्राम तक पहुँच गईं और भरतजी अपने सिर पर चरणपादुका लेकर पैदल श्रीराम के स्वागत के लिए चल पड़े । भरतजी अधिक व्याकुल दिखाई दे रहे हैं और वे बार-बार कह रहे हैं कि कहीं हनुमान्जी ने मेरी परीक्षा लेने के लिए ऐसी खबर तो, नहीं फैला दी है? क्योंकि अपने प्रिय लोगों से मिलने में जब विलम्ब होता है तो, मन में व्यग्रता बढ़ जाती है । उसी समय भरतजी ने देखा कि आकाशमार्ग से एक विमान आ रहा है **"ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।"** भरतजी ने विमान को देखते ही प्रणाम किया । भरतजी को देखकर श्रीराम ने अपना विमान नीचे उतारा । विमान से उतरकर श्रीराम ने सारथी को आदेश दिया "तुम विमान लेकर कुबेर के पास चले जाओ ।" यह वही विमान था, जिसे रावण ने कुबेर से बलपूर्वक छीन लिया था । भरत की आँखों से अश्रु बह रहे थे । वे चरण-पादुका सिर पर लिए खड़े थे । श्रीराम, भरत की ओर हाथ बढ़ाये उन्हें अपनी बाहों में बांधने आ रहे थे, तभी भरतजी ने झुककर श्रीराम का चरणस्पर्श किया

और फिर बोले- "हे प्रभु! आपने मेरी माता का सम्मान किया, मेरे अपराधों को क्षमा किया और अपना राज्य धरोहर रूप में मुझे दिया, मैं आपके उसी राज्य को लौटा रहा हूँ।" भरत से मिलने के पश्चात् श्रीराम शीघ्रतापूर्वक अयोध्या आए आए। नन्दीग्राम में भरत ने चौदह वर्षों तक तपस्या की थी। सबसे पहले श्रीराम ने माता कैकेयी का चरण-स्पर्श किया, फिर माता सुमित्रा और अन्त में माता कौशल्या का चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया। बारी-बारी से सीता और लक्ष्मण ने भी माताओं और गुरुजन का आशीर्वाद लिया। फिर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने वल्कल-वस्त्र का त्याग कर राजसी वस्त्रों को धारण किया-

चौ०

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥

माता कैकेयी मन में क्षोभ लिए हुए बार-बार श्रीराम को आशीष दे रही हैं।

दो०

कैकइ कहँ पुनि-पुनि मिल मन कर छोभु न जाइ।

प्रभु श्रीराम समझ गये कि माता कैकेयी के मन में क्षोभ हैं, अपराध बोध हो रहा है। यह समझकर श्रीराम ने कहा- "हे माता! मैं देख रहा हूँ कि पहले की भाँति आप मुझे प्यार नहीं कर रही हैं। कहीं आपने मेरे हिस्से का प्यार, भरत और शत्रुघ्न को तो, नहीं दे दिया।" यह सुनते ही कैकेयी श्रीराम के गले से लिपटकर जोर-जोर से रोने लगी। श्रीराम समझ गये-माता को पश्चाताप हो रहा है। तभी श्रीराम ने कहा- "माँ! आपको क्षोभ नहीं करना चाहिए। आपने तो, मेरा इतना बड़ा उपकार किया है कि जीवन भर इसे नहीं भूल सकता। आपने तो, देवकार्य पूरा किया और स्वयं कलंकिनी बनी। अगर आपने मुझे वन नहीं भेजा होता तो रावण जैसे अत्याचारी का नाश नहीं होता और हमारी मातृभूमि सुरक्षित नहीं होती। आपने हजार अपमान सहते हुए इस आर्यावर्त का कल्याण किया है। मातृभूमि की रक्षा के लिए आपने अपने सबसे प्रिय पुत्र का त्यागकर राष्ट्र कार्य को पूरा किया है। अगर आपने त्याग नहीं किया होता तो, हमारी मातृभूमि आज राक्षसों के अधीन होती और हम आर्य नहीं रहे पाते। आपके इसी त्याग के कारण आगे आने वाली पीढ़ी आपको राष्ट्रमाता के रूप में जानेगी। जो माँ राष्ट्र के लिए अपने पुत्र का त्याग कर दे, उसे राष्ट्रमाता माना जाता

है । इसलिए आप पश्चाताप के आँसू न बहायें और अपने बेटे को पूर्ववत् प्यार करें । हे माँ! आपको स्मरण होगा कि देवासुर संग्राम के समय जब पिताश्री को बाण लग गया था और वे घायल हो गए थे, उस समय आप भी पिताजी के साथ युद्धभूमि में ही थीं । रथ की धूरी का कील टूट जाने के कारण आपने उस धूरी में अपनी अंगुली लगाकर उस रथ को गिरने से बचाया था । इस घटना से कुपित होकर आपने राक्षसों को शाप दिया था कि **"रघुकुल का कोई दिव्य पुरुष इन राक्षसों का नाश करेगा ।"** मैंने तो, आपके शाप की लाज रखने के लिए राक्षसों के नाश का संकल्प लिया था । वनवास में भी तो, मैं आपकी ही आज्ञा का पालन कर रहा था । इसलिए हे माता! आप अपने मन से क्षोंभ को निकाल दें, क्योंकि मुझे वन भेजने में आप तो केवल माध्यम थीं । लाभ तो, हमारी मातृभूमि को हुआ है । राष्ट्रहित में आपने जो काम किया, उसके लिए यह देश हमेशा आपका ऋणी रहेगा । अगर मैं वन नहीं जाता तो, पहली बात तो, यह कि हमारी मातृभूमि संकट में पड़ जाती । आपने इस आर्यावर्त को बचा लिया । दूसरा, आपका बेटा राम देश में शील, शक्ति और मर्यादा की स्थापना नहीं कर पाता । और इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि भाई भरत का जो आदर्श चरित्र है, उसने राज्यसुख का त्याग कर आगे आनेवाली पीढ़ी को ऐसा मार्ग दिखाया है कि इस त्याग के लिए उसका नाम हमेशा स्मरण किया जाएगा । मैंने तो, राक्षसों का विनाश किया है, लेकिन भरत ने तो, राज्यसुख का त्यागकर मन के मोह, अहंकार, लोभ का नाश कर नया इतिहास बनाया है । हम दोनों की जीवन दिशा बदलने में आपका बहुत बड़ा योगदान है । इसलिए हे माता! कुछ लोग भले ही आपको स्वार्थी, कलंकिनी कहे, लेकिन आगे आनेवाला युग हमेशा आपको नमस्कार करता रहेगा । इसलिए आप क्षोभ को त्याग दें और पूर्ववत् मुझे प्यार करें ।

श्रीराम का राज्याभिषेक

गुरु वशिष्ठ के आदेश से राजतिलक की तैयारी प्रारम्भ कर दी गई । पूरे नगर में महोत्सव का वातावरण बन गया ।

चौ०

कंचन थार आरतीं नाना । जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना ॥

बच्चें-बूढ़े, नर-नारी, सज-धजकर अवध में नाच-गान कर रहे हैं । उधर श्रीराम ने सुग्रीव आदि वानर-भालुओं को उचित व्यवस्था से ठहराने का आदेश दिया । गुरु के आदेश से माताएँ सीताजी को सजाने लगीं । श्रीराम अपने भाइयों, माताओं और बहूओं के साथ विराजमान हुए ।

दो०

वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस ।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥

श्रीराम का यह स्वरुप देखकर देवतागण स्तुति गान करने लगे ।

इस अवसर के लिए सर्वश्रेष्ठ संतों को आमंत्रित किया गया था । मंत्रोच्चारण से पूरा वातावरण यज्ञमय बन गया था । इस पूरे वेदमय वातावरण में प्रभु श्रीराम का राज्याभिषेक किया गया । वैदिक-रीति से सभी नदियों के जल से, श्रीराम का अभिषेक सम्पन्न किया गया । सिद्ध संतों-माताओं एवं गुरुजन ने श्रीराम को अपने आशीर्वादों से पवित्र किया । उसी समय भगवान् शिव, महर्षि अगस्त्य, सप्तर्षि कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भारद्धाज और वशिष्ठ के साथ वहाँ आये और श्रीराम को आशीर्वाद दिये ।

पूज्य संतों ने श्रीराम से कहा- "हे रघुवीर! आपने रावण का नाश करके यश प्राप्त किया है । रावण का अर्थ है सबको रूलाने वाला । (रौ+अन) जो सबको रूलाये उसे ही रावण कहते हैं अथवा **रावयति** (जोर से पुकारने वाला)। आपने कुम्भकर्ण और उसके पुत्र कुम्भ और निकुम्भ, मेघनाथ, अतिकाय, देवांतक और नरांतक का नाश कर सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण किया है । हे श्रीराम! आप वैदिक रीति से युग-युगान्तर तक न्यायपूर्वक राज्य का संचालन करते रहें ।" इसी अवसर पर भगवान् शिव ने श्रीराम को अपने आशीर्वाद से अभिषिक्त किया ।

छ०

जय राम रमारमनं समनं । भवताप भयाकुल पाहि जनं ।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥

सभी ऋषि-मुनियों ने प्रभु श्रीराम का जय गान किया । उसके बाद पूरे राज्य में भरतजी ने वस्त्र-आभूषण बाँटा ।

एक दिन श्रीराम ने सभी वानर भालुओं को अपने पास बुलांया और कहा- "हे सखा! अब तुमलोग अपने-अपने घर जाओ ।" श्रीराम के आदेश से सबों को उचित आदर के साथ विदा किया गया । तब अंगद ने कहा- "हे प्रभु! मेरे पिता ने मुझे आपकी सेवा में नियुक्त किया था, अब मैं कहाँ जाऊँ?" श्रीराम ने अंगद को बहुत समझाया । तब अंगद, सुग्रीव के साथ लौटने के लिए तैयार हुआ । पुनः हनुमान्जी ने सुग्रीव से कहा- "हे महाराज! मैं थोड़े दिन प्रभु श्रीराम की सेवा करके पुनः आपसे मिलने आऊँगा ।'' श्रीराम वैदिक रीति से राज्यकार्य करने लगे ।

चौ0

राम राज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा ॥

कहते हैं, श्रीराम ने नित्यप्रति नए-नए यज्ञ किये, जिससे पूरे आर्यावर्त में सुख और शान्ति का साम्राज्य फैल गया ।

दो0

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज ।

सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥

इस तरह प्रभु श्रीराम राज्यकाज का सम्पादन करने लगे ।

श्रीराम की सत्संग चर्चा

श्रीराम कुशलतापूर्वक राज्य चला रहे थे, एक दिन भरतजी हनुमान्जी के साथ श्रीराम के पास पहुँचे । तब भरतजी ने श्रीराम से पूछा- "हे परमात्म स्वरूप मेरे बड़े भैया! मैंने आपसे कभी कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं किया । बचपन में आपने मुझे कुछ नहीं बताया । आपने केवल प्यार किया। जब आपसे सीखने का समय आया तो, आप देवकार्य से वन में चले गये । मैं अज्ञान के अन्धकार में डूबा हूँ, मेरे अज्ञान को नष्ट

करें और मुझे बतायें कि मेरा जीवन सार्थक कैसे होगा?" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "मेरे प्रिय भाई! मैं तुमसे भिन्न नहीं हूँ । **भरतहिं मोहि कछु अंतर काउ** ।" श्रीराम की करुणा देखकर भरतजी ने पूछा- हे प्रभु! मुझे संतों की महिमा के बारे में कुछ ज्ञान दें ।

चौ0

संतन्ह कै महिमा रघुराई । बहुबिधि वेद पुरानन्ह गाई ॥

भरत की बात सुनकर श्रीराम ने कहा-

चौ0

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ।
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

श्रीराम ने कहा- "हे भाई! संत और असंत में यही अन्तर है कि जिस प्रकार कुल्हाड़ी चंदन को काटती है, फिर भी चंदन अपनी सुगन्ध कुल्हाड़ी को देती रहती है । संत कभी दूसरों का बुरा नहीं करता । वह हमेशा लोगों का कल्याण करता है । निन्दा और स्तुति उसे प्रभावित नहीं करती । संत के हृदय में परमात्मा का निवास होता है । इसलिए संत सर्वत्र पूजा जाता है । संत सद्गुणों के खान होते हैं । उन्हें दूसरे का दुःख देखकर दुःख और दूसरे का सुख देखकर सुख होता है । उनका कोई शत्रु नहीं होता । क्योंकि वे सबको अपना मानते हैं, जो व्यक्ति सबको अपना मानता है, उसका कोई शत्रु नहीं हो सकता है । उन्हें लोभ, मोह, क्रोध और ईर्ष्या नहीं होती । जिसके मन में जैसा भाव रहता है, वह दूसरों को वैसा ही देखता है । जो स्वयं सद्गुणी है, वही दूसरों में सद्गुण देख सकता है और दूसरों को सद्गुणी बना सकता है ।

सुख और दुःख जिसे घायल करता है, उसे संसारी जीव कहते हैं और जो सुख और दुःख से ऊपर उठ जाता है, जिसे सुख से न तो, प्रसन्नता होती है और न दुःख से कष्ट ही होता है, वही संत है । क्योंकि सुख और दुःख मन का भाव है । आशा, निराशा, लाभ, हानि, अपना, पराया, यह सब मन का भाव है । जैसा मन रहता है, वैसा ही संसार दिखता है । मनुष्य जब घृणा की आँख से लोभ अथवा काम के भाव से दूसरों को देखता है तो, वह दूसरा वैसा ही दिखाई देने लगता है ।

विशेष प्रसंग

(भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि सुख और दुःख केवल मन का भाव है । इस संसार में न केवल सुख है, न केवल दुःख । दोनों ही समभाव हैं । मन में अगर प्रेम है तो, सब कुछ प्रेममय दिखता है । मन में अगर घृणा है तो, सब कुछ घृणामय दिखता है ।)

सब कुछ मन पर निर्भर करता है कि वह संसार को कैसा देखना चाहता है । हमेशा मन में प्रेम, करुणा, दया रखनेवाले लोग ही संत माने जाते हैं ।

चौ०

कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मय भगति अमाया ॥

सबहि मानप्रद आपु अमानि । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥

जिन लोगों का मनोभाव ऐसा होता है, वे ही लोग समाज में आदर पाते हैं ।

हे भाई! अब असंतों, दुष्टों के लक्षण सुनो । असंत अथवा दुष्ट वे लोग हैं, जो कभी संगति करने लायक नहीं होते । क्योंकि उनकी संगति हमेशा दुःख देने वाली होती है ।

चौ०

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥

तिन्ह कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ॥

जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई । हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥

खल और दुष्ट हमेशा दूसरों की निन्दा में रूचि रखते हैं । दूसरों की सम्पत्ति देखकर वे जलने लगते हैं । ऐसे लोग हमेशा अपनी भलाई छोड़, दूसरों की बुराई में व्यस्त रहते हैं । दूसरों की निन्दा करना, दूसरों की स्त्री पर बुरी नजर रखना, दूसरों

की सम्पत्ति को हड़पने का प्रयास करते रहना, हमेशा कामविकार से ग्रसित रहना, गुरुजन की निन्दा करना, बड़ों का अपमान करना, दूसरों को नीचा दिखाने का प्रयास करते रहना आदि बुरे लोगों के लक्षण होते हैं ।

प्रभु श्रीराम ने कहा– "हे भाई! जो बुरे लोग होते हैं, वे हमेशा झूठ बोलते हैं, वे झूठ ही खाते हैं, झूठ का जीवन ही जीते हैं ।"

चौ0

झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

श्रीराम ने कहा– "मनुष्य योनि का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि इसी योनि में मनुष्य कर्म करके देवयोनि प्राप्त कर सकता है और पापकर्म करके पशुयोनि प्राप्त करता है और निकृष्ट जीवन जीने लगता है । इस संसार में जितने भी दुःखी लोग हैं, उन्हें किसी ने दुःखी नहीं बनाया, वे स्वयं दुःखी बन गये हैं । दुःख का चिन्तन करने से दुःख और सुख का चिन्तन करने से सुख प्राप्त होता है । सुख और दुःख मनुष्य की सोच पर निर्भर करता है । मनुष्य अपने बारे में अच्छा सोचता है तो, अच्छा फल मिलता है । बुरा सोचता है तो, बुरा फल मिलता है ।"

विशेष प्रसंग

(मनुष्य के जीवन में विभिन्न प्रकार का एण्टीना लगा हुआ है । उसी एण्टीना से सिग्नल प्राप्त कर, वह प्रकृति के केन्द्रों से भाव ग्रहण करता है । जिस प्रकार मनुष्य अपने टी.वी. सेट में संगीत सुनना चाहता है तो, संगीत सुनता है । प्रवचन सुनना चाहता है तो, प्रवचन सुनता है । जो लोग दुःख भोगना चाहते हैं और जिन्हें दुःख भोगने में आनन्द आने लगता है, वैसे लोग ही दुःख, चिन्ता, दुर्घटना और अप्रिय बात सुनना चाहते हैं । वे हमेशा इस संसार से केवल दुःख संग्रह करते हैं । यह तो, मनोविज्ञान भी मानता है कि तुम अगर दुःखी रहना चाहते हो तो, तुम्हारे मन में केवल दुःख का विचार आता है । कई लोग तो, ऐसे हैं, जिन्हें जीवन में जब दुःख नहीं मिलता तो, दुःखपूर्ण घटना वाली किताब, अप्रिय समाचार और टी.वी. में अप्रिय दृश्य देखकर संतुष्ट होते हैं और यह मानते हैं कि चलो दुनिया में मेरे समान पाप करने वाले और भी लोग हैं । कई बार तो, ऐसा भी होता है कि कुछ लोग रात भर चिन्ता करके दुःख

की प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कब दुःख आएगा और मुझे रुलाएगा । इस रोने में भी उसे आनन्द आता है । मनोविज्ञान ऐसे लोगों को ही बीमार मानता है । दूसरी ओर इस संसार में ऐसे भी लोग हैं, जो केवल अच्छी बातें ही सोचते हैं । अपने मन में कभी भी अशुभ, अप्रिय और बुरे विचार नहीं आने देते । वे हमेशा प्रसन्न रहते हैं । प्रकृति के फूलों को देखकर गीत गाते हैं और आनन्दपूर्ण जीवन जीते हैं ।

इसी विषय पर मैंने **"जीवन एक महोत्सव"** नामक पुस्तक लिखी है । जीवन दुःखपूर्ण नहीं है, दुःख तो, आता है लेकिन वह क्षणिक है । जिस प्रकार सुख आया था, चला गया । अब दुःख आया है तो, वह भी चला जाएगा । इसलिए दुःख और सुख को कर्मों का फल मानना चाहिए । हमेशा अपने बारे में अच्छे विचार रखने से अथवा अपने अच्छे गुणों की प्रशंसा करने से शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहता है । क्योंकि सुखी वही रहता है, जो सुखी रहना चाहता है और बीमार वही रहता है, जो स्वयं बीमार रहना चाहता है । बीमार रहने में उसे मजा आता है । बीमार रहने के कारण ही लोग उसकी पुछारी करते हैं, इसलिए वह बीमार रहना चाहता है । आज कल तो, बीमार होना बड़े आदमी का लक्षण बन गया है । विशेषकर ऐसे लोग जो अपने ही घरों में उपेक्षित हैं, वे बीमार बनकर लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते हैं । जिस प्रकार छोटे बच्चे की बात जब घरवाले नहीं सुनते तो, वह अपने ही घर की वस्तुओं के साथ तोड़-फोड़ करने लगता है अथवा आज वह खाना नहीं खाएगा, वह रूठकर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का बहाना बनाता है । ताकि लोग उसके रोने और रूठने का कारण पूछें । प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की सहानुभूति पाना चाहता है । दूसरे की सहानुभूति पाना, स्वयं को प्रताड़ित करना, अपमानित करना, स्वयं को कष्ट देना आत्मघाती कदम है । ऐसे लोग अपने शरीर से प्यार नहीं करते और जो स्वयं से प्यार नहीं करता, वह किसी से प्यार नहीं कर सकता । क्योंकि वह आत्मद्रोही बन जाता है ।)

श्रीराम, भरत और हनुमान्जी को समझा रहे हैं । जीवन और जगत् का खेल बता रहे हैं । दूसरी ओर भगवान् शिव और माता पार्वती, श्रीराम की बात सुनकर मुस्कुरा रही हैं । श्रीराम की बात सुनकर माता पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा- "हे प्रभु! श्रीराम का चरित्र कितना विस्तृत और विशाल है ।" यह सुन शिवजी ने कहा- "हे पार्वती! राम का चरित्र ही अमृत है, इस अमृत को जितना पीया जाय, उतना ही और अधिक

पीने का मन करता है । इस कथा से कभी किसी को तृप्ति नहीं होती । हे पार्वती! जो व्यक्ति संकल्पूर्वक ध्यान से श्रीराम की कथा सुनता है, सुनाता है और कथा की व्यवस्था करता है, वही पुण्य प्राप्त करता है । शेष लोग प्रभु को पाने में असमर्थ रह जाते हैं । क्योंकि उनका अहंकार उन्हें झुकने नहीं देता । जिस कारण उसका नाश हो जाता है । क्योंकि अहंकारी व्यक्ति का ही नाश होता है । जो सरल है, विनीत है, उसका कभी नाश नहीं होता । पिछले जन्म में तुम्हें भी अहंकार हो गया था । जिस कारण तुम्हें मुझसे दूर हटना पड़ा । तुम पूर्वजन्म में दक्ष की पुत्री सती थी । दक्ष को भी अहंकार हो गया था, जिस कारण उसका नाश हुआ । इसलिए मन में कभी अहंकार मत आने देना ।

चौ०

ताते उमा न मैं समुझावा । रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा ॥

होइहि कीन्हि कबहुँ अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ॥

दो०

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।

ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥

जो लोग इस वृत्ति के होते हैं, वैसे लोग हमेशा काम-वासना में लिप्त रहते हैं और मादक द्रव्यों का प्रयोग कर बुद्धि, बल, विवेक यश, मान-मर्यादा का नाश कर लेते हैं । वे दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न होते हैं । ऐसे लोग कभी भी सत्संग में नहीं जाते, अपने को बहुत बड़ा ज्ञानी मानते हैं, जबकि उन्हें कुछ नहीं आता । ज्ञानी पुरुष से वे हमेशा दूर भागते हैं । प्रभु श्रीराम ने कहा- "हे भाई! जो अगला युग आएगा, उसमें ऐसे ही लोग अपने को ज्ञानी मानेंगे । ऐसा इसलिए होगा कि उस युग में जो संत पुरुष होंगे, ज्ञानी और परमात्मा के भक्त होंगे, वे प्रदर्शन नहीं करेंगे ।"

श्रीराम ने कहा- "हे भाई! सबसे बड़ा धर्म वही है, जिससे दूसरों की भलाई हो ।"

चौ०

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

(भगवान् वेदव्यास ने भी लिखा है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम् ॥

व्यासजी का मत है कि मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है, परोपकार करना और सबसे बड़ा पाप है किसी को दुःखी करना ।)

विशेष प्रसंग

(इस विषय में मेरा मत है कि परोपकार का भाव बहुत ही अद्‌भुत है । लेकिन परोपकार सिर्फ वही निष्ठापूर्वक कर सकता है, जो स्वयं अपना उपकार कर चुका हो । क्योंकि जो भूखा हो, वह दूसरों को कैसे खाना खिला सकता है । कोई बीमार व्यक्ति किसी की सहायता कैसे कर सकता है । इसलिए मैं **"आत्मकल्याण केन्द्र"** की स्थापना करके परहित साधना में लगा हूँ और इसका मुख्य उद्देश्य बना रखा है कि पहले स्वयं को भरो, पहले अपने गागर को भर लो, फिर उस गागर से समाज के गागर को भर दो । मेरा मानना है कि जो स्वयं ज्ञानी बन जाता है, वही दूसरों को ज्ञान दे सकता है । एक धनी व्यक्ति ही किसी निर्धन को धन दे सकता है । इसके लिए पहले स्वयं धनी बनना पड़ता है । कोई निर्धन किसी की क्या सहायता कर सकता है । इसलिए मैं मानता हूँ कि पहले अपने को इतना भर लो कि तुम्हारे भर जाने से सभी भर जाए । गोस्वामीजी ने **"स्वान्तः सुखाय रघुनाथगाथा"** कहा है, रामकथा उन्होंने अपने सुख के लिए कही । उनका अपना सुख, इतना बड़ा बन गया कि आज वह सुख पूरे संसार में फैल गया ।

परोपकार का अर्थ है- त्याग । त्याग मनुष्य का अद्‌भुत गुण है । त्याग से सुख मिलता है । सड़क किनारे खड़े किसी भिखारी को हम दस पैसा देते हैं, इससे भिखारी को कम लाभ होता है, देने वाले को अधिक लाभ होता है । भिक्षा देने से हमारे मन में त्याग भाव बनता है । जब हम ग्रहण करते हैं तो, उसमें भी सुख मिलता है, परन्तु जब हम उस प्राप्त धन का त्याग करते हैं, तब उसमें अधिक सुख मिलता है । यही कारण है कि आज धर्म कथाओं, सत्संगों और मंदिरों में परिश्रम से कमाया हुआ धन, लाखों-करोड़ों हम स्वेच्छा से दान कर देते हैं । कई लोग तो, ऐसे होते हैं, जो बड़े से बड़ा दान करके भी गुमनाम बन जाते हैं । इससे उन्हें आत्मिक सुख मिलता

है। इसलिए कहा जाता है कि जो सुख त्याग में है, वह संग्रह में नहीं है ।**"नास्ति त्यागसमं सुखम् ।"**)

प्रभु श्रीराम ने कहा- "मेरे भाई! स्वयं का कल्याण करते हुए त्याग करने से परम सुख मिलता है । जो लोग अपना सर्वस्व, अपना सब कुछ मुझे समर्पित कर देते हैं, अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल मुझ पर छोड़ देते हैं, वे जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं । हे भाई! संसार में व्याप्त अहंकार, राग, मोह जीव को कसकर उसी प्रकार पकड़ लेता है, जिस प्रकार अजगर किसी प्राणी को अपने शरीर के पाश से जकड़ लेता है । मकड़ी अपना जाल स्वयं बनाती है और उसी में फंस जाती है, मक्खी मधु पर बैठती है और उसी में फंस जाती है, इसी प्रकार जीव संसार के बन्धन में फंस जाता है और मर जाता है । लेकिन जो लोग मेरी भक्ति करते हैं, अपना संसार मेरा प्रसाद समझकर स्वीकार करते हैं, वे सीधे मुझे ही प्राप्त होते है । संत पुरुष हमेशा इन बन्धनों से मुक्त रहते हैं । हे भाई! तुमने संतों के विषय में पूछा है तो, सच पूछो, संत नदी के पानी की तरह होते हैं, जो हमेशा दूसरों की प्यास बुझाते रहते हैं । वह बड़ा ही कोमल चित्तवाला और आनन्द से परिपूर्ण होता है । उसे अहंकार कभी स्पर्श भी नहीं करता । वह सुख-दुःख और लाभ-हानि को परमात्मा की इच्छा मानकर स्वीकार करता है । इसलिए उसे न सुख होता है, न दुःख होता है । क्योंकि वह मानता है कि जब उसका कुछ है ही नहीं तो, दुःख-सुख का अनुभव कैसा । इसलिए बरगद के पेड़ के नीचे खुले बदन बैठा साधु जितना प्रसन्न रहता है, जितना सुखी रहता है, उतना महलों में बैठे लोग भी सुखी नहीं रहते । इसलिए मैं हमेशा संतों के हृदय में वास करता हूँ । क्योंकि वहाँ न अहंकार है, न कोई घमंड है-

चौ०

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पर कहहिं न जाना ॥
निज संताप द्रवहिं नवनीता । पर दुख द्रवित संत सु पुनीता ॥

संत दूसरों की ताप से पिघलता है । वह करुणा से भर जाता है, इसलिए मुझे संत बड़े प्रिय होते हैं ।

श्रीराम का नगरवासियों को उपदेश

एक दिन श्रीराम ने अपनी सभा में नगरवासियों को बुलाया और कहा- "हे प्रजाजन! मनुष्य का जन्म बड़े भाग्य से होता है । देवता लोग भी मनुष्य जन्म ग्रहण

करने के लिए लालायित रहते हैं । क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों से परम पद प्राप्त कर सकता है । लेकिन देवता मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते । मोक्ष प्राप्त करने के लिए उन्हें मनुष्य बनना पड़ता है । इसलिए मनुष्य बनने के लिए सभी लोग जन्म-जन्म तक प्रतीक्षा करते हैं । जो लोग मनुष्य तन प्राप्त कर, विषय भोग में लिप्त रहते हैं, वे लोग ही अमृत को छोड़कर विषपान करते हैं । मनुष्य चार लाख योनियों, अण्डज-पिण्डज, जलज-स्वेदज और उद्भिज में भ्रमण करता हुआ इस शरीर को पाता है । इसके पीछे उद्देश्य है, परमात्मा को प्राप्त कर लेना । लेकिन वह संसार के सुख में लिप्त होकर अपना कर्म भूल जाता है और पुनः चौरासी लाख योनियों में भटकने लगता है । इस संसार में मेरी इच्छा के विरूद्ध कुछ नहीं होता । जो कुछ भी दिख रहा है, वह सब मेरा ही रूप है । जो लोग मेरे इस रूप को पहचान कर मेरे अनुरुप काम करते हैं, वे सहजतापूर्वक ही मुझे प्राप्त कर लेते हैं । इसलिए हे प्रजाजन! आप सभी अगर इस तन को धन्य बनाना चाहते हैं तो, मेरी भक्ति के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है । ज्ञान से भी मोक्ष मिलता है, लेकिन वह कठिन मार्ग है । इसलिए आप सभी भक्तिमार्ग का अनुसरण करें ।

चौ०

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ॥

हे प्रियजन! भक्ति बहुत ही सुगम मार्ग है । यह भक्ति हरि कथा और सत्संग से मिलती है । जो पुण्य करने वाले लोग हैं, उन्हीं को संतों के दर्शन होते हैं । संतों के आशीर्वाद से ही इस संसार से दुःख का अन्त होता है ।"

वेदों द्वारा श्रीराम की स्तुति

जब श्रीराम प्रजाजनों को विविध प्रकार से समझाते हैं, उन्हें नैतिक कर्म की प्रेरणा देते हैं । अधर्म, आसक्ति, अनाचार से बचते हुए गृहस्थ धर्म एवं पारिवारिक धर्म का पालन करने की प्रेरणा देते हैं । इस तरह एक राजा के दायित्व का निर्वाह करते हुए राज्य कार्य का संचालन और कर रहे हैं । उसी समय भेष बदलकर चारों वेद, प्रभु श्रीराम के सामने उपस्थित हुए । वेदों ने श्री राम को नमस्कार किया और विभिन्न प्रकार से श्रीराम की स्तुति की ।

वेदों ने कहा- हे सगुण और निर्गुण रूप, हे लावण्य युक्त, हे राजाओं के शिरोमणि! आपकी जय हो । जगद्जननी सीता माता की जय हो । आप शील, शक्ति और मर्यादा के प्रतीक हैं । अपनी भुजाओं के प्रचण्ड बल से आपने इस संकटमय संसार से राक्षसों का नाश किया है । हे प्रभु! आपकी माया के अधीन देव, दानव, राक्षस, नाग, गंधर्व, मनुष्य, चर और अचर भटक रहे हैं । इनमें से जिन पर भी आपकी कृपा दृष्टि होती है, वे समस्त दुःखों से मुक्त हो जाते हैं । हे प्रभु! आप निर्गुण हैं, अगम हैं, अमल और अविनाशी हैं, व्यापक और अनघ हैं । आपके मूल का किसी को पता नहीं है । आपने स्वेच्छा से इस संसार को कष्टमुक्त करने के लिए शरीर धारण किया है । हम जानते हैं कि आप शरीर के बन्धन से मुक्त हैं, क्योंकि आप अजन्मा हैं, अद्वैत हैं । हे प्रभु! आप हमें वरदान दें कि हमेशा हमारा मन आप में लगा रहे । इस संसार के बन्धनों से अपने को मुक्त रखते हुए हम हमेशा आपके स्वरुप को धारण करते रहें । ऐसा वरदान हमें दे । इसलिए हम आपको बार-बार प्रणाम करते हैं ।

छ०

विहुरोग बियोगन्हि लोग हुए भवदंध्रि निरादर के फल ए ।
भव सिंधु अगाध परे नर ते पद पंकज प्रेम न जे करते ॥

"हे प्रभो! आप तो करुणा के सागर हैं । जो लोग आपको नहीं भजते, वे नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं ।" चारों वेद प्रभु की स्तुति करके चले गए ।

काकभुशुण्डि और गरुड़जी

काक भुशुण्डि पूर्वजन्म में भगवान् शिव के भक्त थे । लेकिन मानव सुलभ दुर्बलता के कारण बड़े ही अहंकारी थे । एक दिन वे भगवान् शिव का मंत्र जाप कर रहे थे, तभी उनके गुरु आ गए । वे अहंकार वश खड़े नहीं हुए, जिस कारण भगवान् शिव ने उन्हें शाप दे दिया कि "तुमने गुरु का अपमान किया है, इसलिए तू अजगर हो जा ।" शाप सुनकर गुरु ने भगवान् शिव से आर्त होकर प्रार्थना की कि इसे क्षमा कर दिया जाए । उसी समय गुरु ने **"नमामीशमीशान-निर्वाणरूपम्"** प्रार्थना की थी । उस प्रार्थना को आज भी करने से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं । दूसरे जन्म में लोमस ऋषि ने काक भुशुण्डि को शाप दे दिया था कि "तुम मेरी बात को तर्क से

काट रहे हो, इसलिए तुम कौआ हो जाओ ।" तभी से वे कौआ के रूप में निवास कर रहे हैं । वे पिछले सताइस कल्पों से जीवित हैं– **बिते कलप सात अरुदिसा।**

विशेष प्रसंग

(लोमस ऋषि एक ऐसे संत थे, जो अनन्त काल तक जीवित रहे, लेकिन कहीं भी अपना स्थान नहीं बनाया । कहा जाता है कि यह संसार जब नष्ट होता है तो, उनके शरीर का एक बाल टूटकर गिर जाता है । एक दिन किसी संत ने लोमस ऋषि को कहा– हे महात्मा! आप अनन्तकाल से भ्रमण कर रहे हैं, कोई कुटिया क्यों नहीं बना लेते । यह सुन लोमस ऋषि ने कहा– "हे महात्मा! संसार के नष्ट होते ही मेरे शरीर का एक बाल टूटकर गिर जाता है, पूरे शरीर का बाल तो, गिरता जा रहा है, अब थोड़ा सा बाल छाती पर बचा है, इतने कम दिन के लिए कुटिया बनाकर क्या होगा ।" ऐसी कहानी संतों के मुख से सुनी जाती है ।)

गरुड़जी महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी विनता के पुत्र हैं । वे उच्च कोटि के ज्ञानी हैं । वे भगवान् विष्णु के वाहन हैं । उन्हें भी अपने वेग का बड़ा अहंकार है । कहा जाता है कि एक दिन भगवान् ने गरुड़जी को कहा– "तुम शीघ्र हनुमान्जी को बुला लाओ ।" गरुड़जी हनुमान्जी के पास गये और प्रभु का आदेश सुनाये ।

हनुमान्जी ने कहा– गरुड़जी! आप आगे चलें, मैं शीघ्र आता हूँ । यह सुन गरुड़जी ने कहा– प्रभु ने आपको शीघ्र बुलाया है ।आप मेरे पंख पर बैठ जाएं और शीघ्र चलें । हनुमान्जी ने कहा– आप चिन्ता न करें, आप आगे चलें । गरुड़जी को बड़ा दुःख हुआ । वे प्रभु से हनुमान्जी की शिकायत करने पहुँचे । वहाँ जाते ही उन्होंने देखा कि हनुमान्जी पहले से बैठे हुए हैं । यह देखकर गरुड़जी को बड़ा दुःख हुआ। वे प्रभु से हनुमान्जी की शिकायत करने पहुँचे थे, परन्तु हनुमान्जी तो, पहले से बैठे हुए थे । यह देखकर गरुड़जी को आत्मग्लानि हुई । एक दिन गरुड़जी ने प्रभु से पूछा– "हे प्रभु! मेरे मन में ज्ञान का उदय कैसे होगा?"

इस पर प्रभु ने कहा– गरुड़जी आप काक भुशुण्डि के पास जाइये । गरुड़जी काक भुशुण्डि के पास गए । आदर सहित काक भुशुण्डि ने गरुड़जी को बैठाया और समाचार पूछा । गरुड़जी ने कहा– हे काक भुशुण्डि! मैं आपसे राम-कथा सुनने आया हूँ । यह सुनकर काक भुशुण्डि ने कहा–

चौ०

सुनु खगपति यह कथा पाबनी । त्रिबिध ताप भव भय दावनी ॥

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥

"हे गरुड़जी! राम की कथा तो, अनन्त है । सबसे पहले आदिगुरु भगवान् शिव ने, माता पार्वती को यह अमर कथा कही थी ।

चौ०

रचि महेस निज मानस राखा । पाई सुसमय उमासन भाषा ॥

उसके बाद याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज को यह कथा कही और आज मैं तुम्हें वही कथा कह रहा हूँ ।" इस तरह काक भुशुण्डि ने गरुड़जी को सम्पूर्ण श्रीराम कथा कही ।

चौ०

खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥

इस तरह श्रीराम की यशकृति की गाथा काक भुशुण्ड़ि ने गरुड़जी को सुनाई ।

गरुड़ को उपदेश

काक भुशुण्डि ने गरुड़जी से पुनः कहा- "हे पक्षिराज! प्रभु ने तुम्हें मेरे पास भेजा है, उन्होंने मुझ पर बड़ा उपकार किया है । हे पक्षिराज! इस संसार में मोह ने किसको अंधा नहीं किया? इसी मोह के कारण ही तो, विवेक नष्ट होता है ।"

चौ०

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥

तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

हे पक्षिराज! इस संसार में काम और तृष्णा ने किसी को नहीं छोड़ा है । बड़े-बड़े ज्ञानी, तपस्वी, कवि, विद्वान जो सभी गुणों से पूर्ण हैं, उन्हें भी काम और लोभ ने नहीं छोड़ा । संसार के सभी जीव इन विकारों के जाल में फंसते रहते हैं ।

दो०

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।

मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।।

धन किसको टेढ़ा नहीं बना देता । शक्ति और सामर्थ्य किसको बधिर नहीं बनाता, स्त्री के आँखों के कटाक्ष से कौन बच पाता है? हे पक्षिराज! इस संसार में विकारों के ज्वर से बचना बहुत कठिन है । ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार रूपी साँप ने किसको नहीं डंसा । मोह और माया का बन्धन इतना प्रबल है कि ब्रह्मा और शिव भी उससे डरते हैं । वही माया श्रीराम की दासी है, जिस माया के अधीन यह संसार नाचता है, वही माया श्रीराम के इशारे पर नाचती है । श्रीराम के सामने माया उसी तरह विलीन हो जाती है, जैसे सूर्य के सामने अन्धकार । लेकिन जो व्यक्ति मलिन बुद्धि का है, उसे श्रीराम के दिव्य गुणों के दर्शन नहीं होते । जिनके मन में पाप है, जो स्वयं काम और कामनाओं के वश में हो, वह विकारों के दृष्टिदोष से प्रभु के धवलचरित्र को नहीं देख पाता ।

चौ०

नयन दोष जा कहँ जब होई । पीत बरन ससि कहँ कह सोई ।।

जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ।।

हे पक्षिराज! प्रभु श्रीराम का चरित्र इतना दिव्य है कि जो भी व्यक्ति पवित्र भाव से उनकी भक्ति करता है, उसे संसार का विकार स्पर्श नहीं करता । प्रभु श्रीराम की लीला अपरम्पार है । जब-जब प्रभु अवध में अवतरित होते हैं, तब-तब मैं उनका बाल चरित्र देखने जाता हूँ । श्रीराम का बालपन देखने के लिए, मैं युगों तक प्रतीक्षा करता रहता हूँ । एक दिन प्रभु घुटने के बल चलकर खेल रहे थे । मैं उनका वह रूप देखने के लिए उनके निकट गया । प्रभु ने मुझे पकड़ना चाहा, मैं वहाँ से अज्ञानवश भागा। मैं भागता गया और प्रभु का हाथ मेरा पीछा करता रहा । मैं जिस-जिस लोक में गया, मुझे ऐसा लगा कि प्रभु अब मेरी गर्दन पकड़ने वाले हैं । मैं भागते-भागते थक गया, तब मैं भयभीत होकर अपनी आँख मूंदकर वहीं बैठ गया । और जब मैंने अपनी आँखें खोलीं तो, अपने को प्रभु के पास बैठा पाया । प्रभु ने ज्योंही अपना मुँह खोला, मैं

उनके पेट में पहुँच गया । मैंने वहाँ देखा कि उनके अन्दर अनेक ब्रह्मा, शिव, सूर्य और चन्द्रमा विराजमांन हैं । मैंने वहाँ असंख्य सृष्टि को बनते और नष्ट होते देखा । देवता, मुनि, नाग, मनुष्य, सभी अपने-अपने लोक में विराजमान हैं । मैं काफी डर गया । मैं पुनः प्रभु श्रीराम के पेट में अनेक सृष्टियों के बीच में भटकने लगा । मैं इतना भ्रम में पड़ गया कि यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि अब क्या करूँ ।

दो०

देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर ।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर ॥

प्रभु के मुस्कुराते ही मैं बाहर आ गया । मेरी व्याकुलता को देखकर प्रभु ने मुझ पर दया करते हुए मुझे वर मांगने को कहा । प्रभु ने कहा- "हे काक भुशुण्डि ! जो भी वरदान तुम चाहते हो, आज तुम मुझसे मांग लो ।" यह सुनकर मैंने कहा- "हे प्रभु! शरणागत की रक्षा करनेवाले, आप मुझे अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करें ।" काक का वचन सुनकर प्रभु ने कहा- "जो व्यक्ति मन, वचन और कर्म से मेरी भक्ति करता है, वही मुझे प्रिय है ।

चौ०

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

हे काक! इस संसार के सभी जीवों की उत्पत्ति मुझसे हुई है । इसलिए सभी जीव मुझे प्रिय हैं । लेकिन जो अभिमान छोड़कर मेरी निष्काम भक्ति करता है, जो मेरा सेवक है, वह मुझे सबसे अधिक प्रिय है-

चौ०

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥

सभी मेरी संतान हैं । लेकिन जो काम-क्रोध, मोह के चंगुल में फंस जाता है, वह स्वतः मुझसे दूर चला जाता है । लेकिन जो लोग केवल मेरी भक्ति करते हैं, वही

मुझे प्राप्त कर लेते हैं। हे गरुड़जी! प्रभु ने इस प्रकार से मुझे नानाविध उपदेश सुनाया। इसके बाद माता कौशल्या आई और प्रभु को गोद में उठाकर ले गई।

चौ०

निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥

कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥

गरुड़जी को काक भुशुण्डिजी का परम उपदेश

एक दिन काक भुशुण्डिजी अपने आश्रम में बैठे थे, तभी गरुड़जी वहाँ पहुंचे। गरुड़जी ने विनयपूर्वक काक भुशुण्डिजी से पूछा- "हे काकजी ! प्रभु ने मुझे आपके पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा है, आप कई कल्पों से विराजमान हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार के प्रलय के समय आप कैसे सुरक्षित रह जाते हैं? दूसरी बात है कि इन चार युगों- सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में धर्म का निर्वाह कैसे हुआ? इस प्रश्न का उत्तर हमें समझाइए।"

प्रश्न सुनकर काक भुशुण्डि ने गरुड़जी से कहा- "हे पक्षिराज! मुझे काक योनि पसन्द है। क्योंकि इस योनि में रहते हुए मैं पापकर्म नहीं कर पाता। प्रलय के समय मेरा नाश इसलिए नहीं होता कि भगवान् शिव का आशीर्वाद मुझे प्राप्त है। मैं प्रभु श्रीराम का परम भक्त हूँ। मेरा रोम-रोम राममय बन गया है और राम का कभी नाश नहीं होता। वेदों में वर्णन है कि भक्ति के लिए शरीर का होना आवश्यक है। इसीलिए मैं यह शरीर छोड़ना नहीं चाहता। मुझे भगवान् शिव ने इच्छा मृत्यु का वरदान दिया है। मुझे भय है कि अगर मैं जीवन से मुक्त हो गया तो, फिर मैं प्रभु की भक्ति नहीं कर सकूंगा।"

हे गरुड़जी! जीव परमात्मा का अंश है, वह परमात्मा अंशी है। जीव अंश है, वह अंशी से इसलिए अलग निकला है कि वह परमात्मा से प्रेम कर सके। परमात्मा को अपनी भक्ति से प्रसन्न कर सके। परमात्मा के गुणों का गान कर सके। परमात्मा के करोड़ों नाम हैं। इन सभी नामों के अलग-अलग अर्थ हैं। भक्त, भक्तिपूर्वक उन नामों के बार-बार पाठ करता है और प्रभु के नामों का पाठ करते हुए स्वयं नाममय बन जाता है। करोड़ों नामों में राम-नाम मुझे अधिक प्रिय है। जो भक्त इस राम शब्द का निष्ठापूर्वक पाठ करता है, वह परमतत्त्व को प्राप्त करता है। क्योंकि संसार

में राम के सिवाय और कोई नाम है ही नहीं । दुनिया में जितने भी नाम हैं, सभी प्रभु के नाम हैं । दूसरा कोई नाम है ही नहीं । यह भावपूर्ण अभिव्यक्ति है । कहते हैं कि–

चौ०

भाव कुभाव अलख आलसहुं । नाम जपत मंगल दिसि दसहुं ॥

"हे गरुड़जी! राम इस ब्रह्माण्ड का आदि है और अन्त है । जिस प्रकार जीव पहले अव्यक्त रहता है, फिर व्यक्त हो जाता है और अन्त में फिर अव्यक्त हो जाता है । जीव को व्यक्ति इसीलिए कहते हैं कि वह अव्यक्त से व्यक्त बन गया है । इसीलिए उसे व्यक्ति कहते हैं । मनुष्य थोड़े दिनों के लिए व्यक्त होता है, वह महाशून्य से आता है और फिर महाशून्य में चला जाता है । यह जो चौरासी लाख योनियों का खेल है, वह महाशून्य से आने और महाशून्य में जाने के बीच का खेल है । सच पूछा जाए तो, इस संसार में कुछ भी व्यक्त नहीं है । सब शून्य है और शून्य का ही प्रतिबिम्ब है, जो विभिन्न रूपों में दिखता है । ये सभी प्रतिबिम्ब भ्रम है, जैसे– शीशा में चेहरे का प्रतिबम्ब बनता है । पानी में अपना चेहरा दिखता है । लेकिन हम पानी में नहीं होते । वह भ्रम है, मिथ्या है, असत्य है । उसी प्रकार, यह संसार जो दिखता है, वह है नहीं । वह रूप का भ्रम है, तरंग है । इस संसार में तरंग के सिवाय और महाशून्य के सिवाय कुछ है ही नहीं । हमारे प्रभु श्रीराम ने अवतार ग्रहण किया है, वे निर्गुण हैं, उनका कोई रूप नहीं है । लेकिन भक्तों का कष्ट दूर करने के लिए उन्होंने स्वरुप ग्रहण किया है, ताकि वे दुष्टों का नाश कर सकें । दरअसल ब्रह्म का कोई रूप हो ही नहीं सकता । अगर उनका कोई रूप होता तो, समस्त जीवों में रमण कैसे करते? क्योंकि जो कण–कण में व्याप्त हों, जो अव्यक्त रूप से कण–कण में प्राणरुप में बसते हों, सर्वत्र रमण करते हों, वही राम हैं । राम कोई व्यक्ति नहीं हैं, वे तो, अनन्त हैं ।

चौ०

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

हे गरुड़जी! यह समस्त ब्रह्माण्ड, ग्रह, तारे, नक्षत्र, हजारों सूर्यमंडल, निहारिकाएँ, आकाशगंगा सभी उस दिव्य स्वरुप राम की ही अभिव्यक्ति हैं । इसलिए राम तत्त्व हैं, राम प्राण हैं, राम ही दिव्य शक्ति हैं ।

काक भुशुण्डि का उपदेश सुनकर गरुड़जी ने कहा- "हे काकजी! जब सब कुछ उसी ब्रह्म की अभिव्यक्ति है तो, जीव इतना कष्ट क्यों पाता है ।" गरुड़जी के प्रश्न सुनकर काक भुशुण्डि ने कहा- "सच पूछा जाए तो, किसी जीव को न कोई कष्ट होता है, न उसे सुख होता है । यह सब मन का भाव है । इसलिए भक्त सुख-दुख, मान-अपमान, आशा-निराशा, शुभ-अशुभ से ऊपर उठकर प्रभु का चिन्तन करता है । सिद्ध पुरुषों को न मान से खुशी होती है और न अपमान से दुःख होता है । जब तक जीव मान और अपमान के बीच खड़ा रहता है, तब तक उसे दुःख भी होता है और सुख भी होता है । जब वह सुख-दुःख से बाहर निकलकर खड़ा हो जाता है तो, उसे कोई दुःख नहीं होता ।" कहते हैं-

हद चले से मानवा, बेहद चले से साध ।
हद-बेहद दोनों चले, ताके मता अगाध ॥

"इसलिए हे गरुड़जी! सुख और दुःख का बोध कर्म बन्धन है । आग पर हाथ रखोगे तो, हाथ जलेगा, पानी में रखोगे तो, शीतलता प्राप्त होगी । यही कर्म बन्धन है। इसको आत्मा का सुख-दुःख नहीं मानना चाहिए । यह तो, ऐसा ही भाव है जैसे हवा वहे तो, शरीर को शीतलता प्राप्त होती है, गर्मी से ताप प्राप्त होता है । यह शीतलता और ताप, शरीर का भाव है । सुख और दुःख को हवा के झोंको की तरह समझना चाहिए । क्योंकि यह शरीर का स्थायी भाव नहीं है । क्योंकि दुःख आता है, चला जाता है । सुख आता है, चला जाता है । न दुःख स्थायी होता है और न सुख । शरीर में कभी चोट लग जाती है तो, उस समय पीड़ा होती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि पीड़ा हमेशा रहेगी । दुःख या संकट हमारे किसी कर्म के कारण आया है, वह चला जाएगा । इसलिए यह कहना कि जीवन दुःखपूर्ण है, जीवन में केवल कांटे हैं, गलत है । जीवन में अगर कांटा है तो, फूल भी है ।"

काक भुशुण्डि की बात सुनकर गरुड़जी ने कहा- "हे महात्मा! आप बहुत ही दिव्य ज्ञान की अमृतवर्षा कर रहे हैं । अब मेरे एक प्रश्न का उत्तर बतायें कि चार युगों में किस तरह की भक्ति करके जीव परमात्मा को प्राप्त कर सकता है ।" गरुड़ के प्रश्न सुनकर काक भुशुण्डि ने कहा- "हे पक्षिराज! परमात्मा ने चार युगों में उत्पन्न लोगों के लिए अलग-अलग भक्ति करने का नियम बनाया है । इसका कारण यह है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में विभिन्न प्रकार के लोग होंगे । लोगों की

मनोवृत्ति अलग-अलग होगी । इसलिए वे अलग-अलग विधि से परमात्मा का पूजन करेंगे ।"

चौ०

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ॥

त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ॥

द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥

हे गरुड़जी! सतयुग में परमात्मतत्त्व के चिन्तन कर लोग इस भवसागर को तरेंगे । त्रेता में यज्ञ करके लोग भवसागर तरेंगे । द्वापर में परमात्मा की पूजा-अर्चना करके भवसागर को तैरकर भक्त पार करेगा । लेकिन कलियुग में केवल प्रभु का नाम स्मरण करके भक्त भवसागर का थाह लगाते हुए पार करेगा ।

कलियुग के भक्त को विशेष फल

विशेष प्रसंग

(गोस्वामीजी ने सतयुग, त्रेता और द्वापर के भक्तों के लिए लिखा है कि वे भवसागर को तैर जायेंगे । सागर का थाह नहीं लेंगे, लेकिन कलियुग में भक्त, इस भवसागर का थाह लेते हुए पार करेंगे । कहते हैं, भक्त ने भगवान् से पूछा- "हे प्रभु! कलियुग के भक्त को कोई विशेष कृपा नहीं प्राप्त होगी । क्या कलियुग के भक्त को सागर पार करना ही पड़ेगा ।" इस पर भगवान् ने कहा- "ऐसा करो कि कलियुग में जो भी व्यक्ति नाम-जाप करेगा, उसके लिए यह भवसागर कुएं के समान बन जाएगा ।"

चौ०

यह चरित जो गावे हरिपद पावे ते न परहिं भवकूपा ।

कलियुग का भक्त इस भवकूप में नहीं गिरेगा । यह सुनकर भक्त ने भगवान् से कहा- "हे प्रभु! कलियुग के भक्त अगर कुएं में गिरेगा तो, उसी में मर जाएगा । क्योंकि कलियुग में लोग बहुत ही आलसी होंगे । कोई और आसान रास्ता बताइए ।" तब भगवान्

ने कहा- "ठीक है, कलियुग में जो नाम जाप करेंगे, उनके लिए यह भवसागर गाय के खुर के समान बन जाएगा ।

चौ०

गरल सुधा रिपु करैं बिताई । गोपद सिंधु अनल सीतलाई ॥

मनोबांछित फल नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गावा ॥

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहिं । ते गोपद इव जलनिधि तरहिं ॥

राम भक्त के लिए यह भवसागर गाय के खुर के समान बन जाएगा ।" यह सुनकर भक्त ने कहा- "हे करुणानिधान! कलियुग में गाय के खुर को पार करना भी कठिन है । इस युग में ऐसे लोग होंगे, जो प्यास से तड़पते रहेंगे और कुआँ पर बैठकर इन्तजार करेंगे कि कोई हमारे मुंह में पानी डाल दे । ऐसे आलसी भक्त, गाय के खुर के समान भवसागर को पार कैसे करेंगे?" तब प्रभु ने कहा- "चलो, कलियुग में जो भक्ति करेंगे, उनके लिए **"होहिं अजा खुर"** बकरी के खुर के समान यह भवसागर हो जाएगा ।" इस पर भक्त ने कहा- "राम भक्तों के लिए अगर भवसागर बकरी के खुर के समान रहेगा, तब भी कलियुग के भक्त उसको पार नहीं कर सकेंगे ।" यह सुनकर भगवान् ने कहा- "एक उपाय करो, सबसे अन्तिम उपाय यह नहीं है कि तुम निरन्तर प्रभु का स्मरण करते रहो अपितु अन्त समय में प्रभु का नाम ले लोगे तो, भवसागर सूख जाएगा-

"नाम लेत भवसिंधु सुखाहिं।"

चौ०

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ॥

कलियुग में जो लोग प्रभु का नाम लेते रहेंगे, वे इस भवसागर को पार कर जायेंगे । यह सुनकर भक्त ने कहा- हे प्रभु! कलियुग के भक्तों को कोई विशेष सुविधा प्रदान करें, क्योंकि कलियुग में मनुष्य का मन बहुत ही बलवान रहेगा । वह हमेशा पाप कर्म के विषय में, दूसरों की कमी, बुराई, काम-वासना आदि सोचता रहेगा । इससे उसे बहुत पाप लगेगा । ऐसा कोई वरदान दें कि भक्त को पाप न लगे । यह सुनकर प्रभु ने कहा- "तुम मेरे प्रिय भक्त हो, इसलिए वरदान देता हूँ कि मन से जो तुम

पाप करो, उसका पाप तुम्हें नहीं लगेगा, लेकिन मन से जो पुण्य करोगे, उसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा ।"

चौ०

कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

भक्त ने प्रभु से कहा- "हे प्रभु! भक्त के मन में हमेशा बुरे-बुरे विचारों के तरंग उठते रहते हैं । उन विचारों को कैसे रोका जाए?" भक्त की निर्दोष वाणी को सुनकर भगवान् ने कहा- "इसके लिए एक ही उपाय है कि जिस प्रकार वृक्ष पर अथवा खेत की फसल पर चिड़ियाँ बैठ जाती है तो, लोग उसे ताली बजाकर उड़ा देते हैं । उसी प्रकार, तुम भी अपने मन पर बैठी पाप रूपी चिड़ियाँ को ताली बजाकर उड़ा दो ।

चौ०

रामकथा सुंदर कर तारिं । संसय बिहग उड़ाबन हारिं ॥

जब कभी मन रूपी वृक्ष पर संशयरुपी चिड़िया बैठे तो, उसे राम नाम की ताली बजाकर उड़ा दो । यह सुनकर भक्त ने कहा- "हे दयासागर! अगर उड़ी हुई चिड़िया फिर आकर बैठ जाए, तब क्या करना चाहिए?" भक्त का तर्क सुनकर भगवान् ने कहा- तब तो, एक ही उपाय है कि राम कथा रूपी कुल्हाड़ी से उस वृक्ष को ही काट दो ।

राम कथा कलि कुलिस कुठारि ।

इस संसार में भक्तों को कभी कष्ट नहीं होगा ।)

विशेष प्रसंग

(भवगान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को कहा- "हे अर्जुन! इस कलिकाल में प्रभु को पाने का सबसे सरल मार्ग है **"मन मनो भव,"** हे अर्जुन! तुम मुझमें मन लगा ।" यह सुन अर्जुन ने कहा- "हे कृष्ण! चौबीसों घंटे आपमें कैसे मन लगाए रखूं?" तब श्रीकृष्ण ने कहा- "ऐसा करो, तुम मेरी अहैतुकी भक्ति करो । तुम निष्काम भाव से मेरी भक्ति करते रहो ।" तब अर्जुन ने कहा- हे प्रभु! हमेशा आपकी भक्ति कैसे होगी? तब

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा– "हे पार्थ! तुम यज्ञ करो। यज्ञ से तुम्हें पुण्य प्राप्त होगा।" तब अर्जुन ने कहा– "इस कलियुग में हमेशा यज्ञ करना सम्भव है?"

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा– ''हे पार्थ! तब तुम ऐसा करो कि फल की कामना को छोड़कर तुम प्रेम से मुझे नमस्कार करो। जब तक तुम्हारे मन में यह संशय विपर्यय रहेगा, तब तक तुम मुझे प्राप्त नहीं कर सकोगे। इसलिए संशय को छोड़कर तुम मेरे स्वरुप को अपने मन में धारण करो।" यह सुनकर अर्जुन ने कहा– "मन तो, इतना चंचल है कि वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, फिर आपके स्वरुप को मन में कैसे धारण करूँ?" इस पर श्रीकृष्ण ने कहा– "हे सखा! तुममें तर्क बुद्धि अधिक है, भक्ति में तर्क नहीं किया जाता, भक्ति में केवल समर्पण होता है –**"संशयात्मा विनश्यति"**, जिसके हृदय में संशय रहता है, उसका नाश हो जाता है।" इस पर अर्जुन ने कहा– "हे सखा! मेरी बुद्धि भ्रम में पड़ी हुई है। मैं अपने मन को स्थिर कैसे करूँ।" तब श्रीकृष्ण ने कहा–

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

हे सखा! यह सब अभ्यास से ही सम्भव है। प्रभु की वाणी सुनकर अर्जुन ने कहा– "हे प्रभु! मैं आपके ऐश्वर्यगुण के सामने नतमस्तक होकर, आपका शिष्यत्व ग्रहण करता हूँ– **शिष्यस्ते अहं साधिमां त्वां प्रपन्नम्।** मैं आपका शिष्य बनता हूँ।"

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। भक्त जब तक तनकर खड़ा रहता है, तब तक उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। भक्ति के लिए आवश्यक है कि भक्त के मन में आस्था, भरोसा, समर्पण और विसर्जन का भाव हो। भक्ति में इन चार शब्दों का बड़ा महत्त्व है। भक्ति के लिए आवश्यक है कि जिसके प्रति आपके मन में भक्ति हो, उसपर पूरी आस्था हो, तभी आप भक्ति की ओर बढ़ सकते हैं। भक्ति का यह पहला सोपान है और आस्था के लिए आवश्यक है कि जिस पर आप आस्था कर रहे हैं, उसे पूरा का पूरा स्वीकार करें। क्योंकि किसी को स्वीकार करना हो तो, उसे पूरे रूप में स्वीकार करें। ऐसा न हो कि कृष्ण की आँखें बड़ी सुन्दर हैं तो, तुम आँख को तो, स्वीकार कर लो और दूसरे अंग को न स्वीकार करो –

जब भाव समर्पण मन से हो, वहाँ तर्क विवेक नहीं होता।
आस्था का जहाँ विसर्जन हो, वहाँ खंडित विश्वास नहीं होता॥

काक भुशुण्डि द्वारा जीवन की व्याख्या

गरुड़जी को समझाते हुए काक भुशुण्डि ने पुनः कहा- "हे गरुड़जी! हम दोनों पक्षी रूप में जीवित हैं । यह सब अपने कर्मों का फल है । कर्मफल से प्रभावित होकर जीव विभिन्न योनियों में भटकता रहता है ।"

इस पर गरुड़जी ने पूछा- "हे काक! परमज्ञानी! हमारा शरीर तो, नष्ट हो जाता है, फिर एक जन्म का कर्म-फल दूसरे जन्म को कैसे प्रभावित करता है ।"

गरुड़ के प्रश्न सुनकर परमज्ञानी काकजी ने कहा- "हे पवित्र आत्मा गरुड़जी! संसार में करोड़ों गरुड़ और कौए हैं । लेकिन सत्कर्म फल के अभाव में वे गरुड़ और कौआ रहते हुए भी अज्ञानी हैं और आप गरुड़ होकर प्रभु के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं । यह आपके पूर्वजन्म के प्रभाव का फल है । हमारा शरीर जब नष्ट होता है तो, केवल स्थूल शरीर नष्ट होता है । हमारा सूक्ष्म और कारण शरीर नष्ट नहीं होता । इसी सूक्ष्म और कारण शरीर में हमारा कर्मफल संग्रहित होता है । इसीलिए स्थूल शरीर को नश्वर माना जाता है । हमारा कर्म जो भी होता है, उसके अच्छे-बुरे का हिसाब संग्रहित होने लगता है । जब जीव दूसरे जन्म में प्रवेश करता है तो, उसे दूसरा शरीर अवश्य मिलता है, लेकिन कर्मफल जो सूक्ष्म और कारण में एकत्र है, वह चलता रहता है । शरीर के नष्ट होने से उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । जब तक जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है तब तक कारण शरीर उसके साथ रहता है और अच्छे-बुरे कर्मों का फल देता रहता है । जब जीव को मोक्ष प्राप्त हो जाता है, तभी उसका कारण और सूक्ष्म शरीर कर्मफल सहित नष्ट होता है ।

प्रत्येक जीव को पूर्वजन्म के फल के अनुरूप ही सुख-दुःख भोगना पड़ता है । किसी भी योनि में जन्म लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता । एक कुत्ता गली में भटकता रहता है तो, दूसरा कुत्ता राजा-महाराजा के बगल में बैठा रहता है । इसलिए हे गरुड़जी! योनि कोई भी हो, हमें अपना कर्म पवित्र रखना चाहिए । हे पक्षिराज! जीव अपने ही कर्मों से बंधता जाता है । जब तक कर्म पवित्र रहता है, तब तक वह जीव को पवित्र बनाता रहता है और जब कर्म काम, क्रोध, लोभ से प्रभावित हो जाता है तो, वह बांधने वाला बन जाता है । इसलिए इस भाव को छोड़ देना चाहिए कि यह सब मैं

कर रहा हूँ। क्योंकि अब जीव मानने लगा है कि यह सम्पूर्ण संसार मेरा है। परमात्मा ने इस संसार को बनाया, लेकिन इस बनाने में वे कहीं नहीं है। इसलिए उन्हें अव्यक्त कहा गया है।

इसलिए हे गरुड़जी! जो जीव सत्कर्म करता है और बुरे कर्मों से बचता रहता है, वही परमात्मा को प्राप्त करता है। काम से पीड़ित रहना, बात-बात में क्रोध करना, दूसरों की वस्तु पर लोभ करना, अपने अहंकार का प्रदर्शन करना, ये सारे मार्ग ही पतन के मार्ग हैं। शरीर में कोई रोग हो जाए, केवल तभी मनुष्य बीमार नहीं कहा जा सकता, काम-क्रोध के वश में रहने वाला व्यक्ति भी बीमार ही है। जो व्यक्ति अपने में स्थिर है, जो **"स्व"** में स्थित है, जो अपने स्वभाव में जी रहा है, वही स्वस्थ है। शरीर और मन दो चीजें हैं। शरीर से स्वस्थ होना अलग बात है और मन से स्वस्थ होना अलग बात है। शरीर से मजबूत व्यक्ति भी बीमार रह सकता है। क्योंकि केवल बाहर का शरीर ही बीमार नहीं होता, भीतर का शरीर भी बीमार पड़ता है। बाहर की बीमारी भीतर की बीमारी का प्रत्यक्षीकरण है। पहले भीतर का शरीर बीमार होता है, तब बाहर का शरीर बीमार होता है। जिसका भीतर का शरीर स्वस्थ रहता है, वही बाहर भी स्वस्थ रहता है। इसलिए हे गरुड़जी! पहले भीतर अपने अन्तर्मन को स्वच्छ करना चाहिए। काम-क्रोध आदि पहले भीतर के शरीर को बीमार करते हैं।"

विशेष प्रसंग

(आज का विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों इस बात से सहमत है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों अलग-अलग हैं। मनोवैज्ञानिक तो, अब यह मानने लगे हैं कि जैसा सूक्ष्म शरीर होता है, वैसा ही बाहर का स्थूल शरीर दिखता है। जब कभी कोई बीमारी होती है तो, भीतर के शरीर में उपद्रव शुरु होता है। मनुष्य पहले भीतर से बीमार होता है। जिस प्रकार, दीवार में दीमक लगता है, दीमक पहले अन्दर की दीवार को खोखला बना देता है। लकड़ी की आलमारी में जो दीमक लगता है तो, वह भीतर ही भीतर लकड़ी को खोखला बना देता है। तब वह बाहर दिखने लगता है। उसके बाद हम ऊपर से "पेस्ट कंट्रोल" के दवा का छिड़काव करते हैं। उस दवा से बाहर-बाहर ठीक होता हुआ दीखता है, लेकिन भीतर कुछ ठीक नहीं होता। क्योंकि दीमक भीतर है।

हमारे शरीर में कोई फोड़ा निकलता है, हम समझते हैं कि कोई दवा लगा लेने से फोड़ा ठीक हो जाएगा। दवा से फोड़ा ठीक होता है, लेकिन दूसरी जगह निकल जाता है। क्योंकि फोड़ा को रस भीतर से मिल रहा है। फोड़ा नहीं समझ पा रहा है कि ऊपर से उसे क्यों दबाया जा रहा है। यहाँ दबाओगे तो, फोड़ा को दूसरी जगह निकलना ही पड़ेगा। क्योंकि फोड़ा को आदेश भीतर से आ रहा है। पहले भीतर से आदेश देने वाले को मारना पड़ेगा, तभी फोड़ा रूकेगा। शरीर में फोड़ा होता है, फिर वह घाव बन जाता है। घाव में बैक्टीरिया के चलते कीड़ा लग जाता है। कीड़ा फलने-फूलने लगता है। उस कीड़े को क्या पता कि जिसके शरीर में घाव है, उसे पीड़ा हो रही है। वह तो, घाव से रस लेकर आनन्द मना रहा है। व्यक्ति के लिए घाव पीड़ा दे रहा है, लेकिन उसी घाव से कीड़ा को सुख मिल रहा है।

वही स्थिति शरीर की है। शरीर का भीतरी भाग जब बीमार पड़ता है, उसके बाद ही बाहर कुछ दीखता है। इसलिए आज कई वैज्ञानिकों ने यह मान लिया है कि अगर शरीर बीमार हो तो, सूक्ष्म शरीर का इलाज करो। अब कई लोग तो, **"इन्फ्रारेड कैमरे"** के द्वारा अन्धेरे में भी फोटो ले सकते हैं, जिससे सूक्ष्म शरीर का भी फोटो लिया जा सकता है। इस तरह का विचार डॉ किल्जर ने अपनी पुस्तक The human atmosphere में व्यक्त किया है। वे यह भी मानते हैं कि जब बीमार व्यक्ति के भीतर का फोटोग्राफ लिया जाता है तो, बीमारी साफ दिखने लगती है। इसीलिए हमारे देश में आयुर्वेद बीमारी के मूल का ईलाज करता है।

उसी प्रकार, होमियोपैथ भी भीतर का ईलाज करता है। लेकिन अंग्रेजी दवा बाहर से ईलाज करता है। इसीलिए शरीर में महत्त्वपूर्ण है, सूक्ष्म शरीर। काम, क्रोध आदि मनोवेगों का जन्म पहले भीतर होता है, वही बाहर प्रगट होता है। हमारे पास दस इन्द्रियाँ हैं, जो मन के नियंत्रण में हैं, वे बड़े वेगवान हैं। कहा जाता है- बाघ मनुष्य को एक ही बार में खा जाता है, लेकिन बेलगाम मन मनुष्य को जीवन भर खाता रहता है। इस भागते हुए मन को नियंत्रण करना संभव नहीं है। मन का नियंत्रण केवल प्रभु की भक्ति से ही हो सकता है। क्योंकि भक्ति में मन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सभी इन्द्रियाँ और मन भक्ति में लय हो जाता है। इसी को संयम कहा जाता है। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में लिखा है कि मनुष्य आठ स्थितियों को पारकर परमात्मा में विलीन होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । समाधि में पहुँचते ही मन की सारी दीवारें ढह जाती हैं । समाधि में कुछ नहीं बचता । न ध्यान करने वाला बचता है, न परमात्मा बचता है । बचता है तो, केवल शून्य । यही शून्य महाशून्य में मिल जाता है ।)

इसलिए हे गरुड़जी! स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर क्रियाशील बना रहता है । इसलिए शरीर के नाश हो जाने पर भी शरीर के अच्छे, बुरे गुणों का संग्रह सूक्ष्म शरीर में बना रहता है । वही अगले जन्म को प्रभावित करता है । ऐसा ही उपदेश भगवान् शिव ने मुझे दिया था ।

हे गरुड़जी! प्रत्येक जीव दीर्घायु बनकर इस संसार में आता है । जीव का अर्थ है- जो परमात्मा से जुड़ा हुआ है । संसार अथवा ब्रह्माण्ड की एक-एक चीज परमात्मा की अपार शक्ति से जुड़ी हुई है । परमात्मा से इसी जुड़ने के कारण ही तो, सूर्य में प्रकाश है, ग्रहों एवं तारामण्डलों में अपार शक्ति भरी है । जिन ग्रह नक्षत्रों का सम्पर्क उस विराट दिव्य आलोक से टूट जाता है, वह ग्रह अथवा वह तारा मृत हो जाता है । आकाश में ऐसे अनेक अन्धकूप हैं, जिनका सम्पर्क परमात्मा से टूट चुका है ।

विशेष प्रसंग

(आज का विज्ञान इस बात का समर्थन करता है कि हमारे आकाश में जो नक्षत्र लोक हैं, वह निहारिका से जुड़ा हुआ है । एक निहारिका में सैकड़ों सूर्यमंडल हैं । प्रत्येक सूर्य के नौ ग्रह हैं । ये सभी नौ ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं । वे समानुपात दूरी पर गुरुत्वाकर्षण को बनाकर एक-दूसरे को समानुपातिक सिद्धान्त के अनुसार प्रभावित करते हुए निश्चित वेग से गति कर रहे हैं । ताकि कोई ग्रह-नक्षत्र इधर-उधर न भटक सके । एक ग्रह दूसरे को रोके हुए है ।

विज्ञान कहता है कि पृथ्वी से मंगल की दूरी तीस करोड़ कि॰मी॰ है और शनिश्चर की, सौ करोड़ कि॰मी॰ है । सूर्य की दूरी नौ करोड़ कि॰मी॰ है । इन ग्रहों की दूरी वैज्ञानिक पद्धति पर बनाई गई है । ताकि एक ग्रह, दूसरे को प्रभावित करता रहे, तभी वह खुले आकाश में लाखों कि॰मी॰ की गति से दौड़ रहा है । विज्ञान का यह मानना है कि पृथ्वी एक वर्ष में 58 करोड़ 46 लाख कि॰मी॰ की यात्रा कर सूर्य की परिक्रमा करती है । पृथ्वी एक माह में जितनी दूरी तय करती है, उसे राशि कहते

हैं और राशि बारह होते हैं । चन्द्रमा एक दिन में जो दूरी तय करता है, उसे नक्षत्र कहते हैं, इन नक्षत्रों की संख्या सताईस है । सूर्य का व्यास आठ लाख 86 हजार मील है और पृथ्वी का 13000 कि०मी० है । इतनी विशाल पृथ्वी 28 कि०मी० प्रति सेकेण्ड की गति से दौड़ रही है । इस पृथ्वी को शक्ति सूर्य से प्राप्त होती है और सूर्य को निहारिका से, निहारिका को आकाशगंगा से । आकाश में 20,000 से ऊपर निहारिकाएं हैं और अनेक आकाशगंगा हैं । इन आकाशगंगाओं को महाशून्य (महाआकाश) से शक्ति प्राप्त होती है । जिसे विज्ञान कॉस्मिक धूल कहता है ।

आईन्स्टीन ने भी कहा है- "इस ब्रह्माण्ड को किसी महाशक्ति से ऊर्जा प्राप्त हो रही है ।" इसलिए इस सूर्य को उसी महाशक्ति से शक्ति प्राप्त होती है । विज्ञान का मत है कि इस ब्रह्माण्ड में केवल ऊर्जा है । यह ऊर्जा ताप, प्रकाश और विद्युत् का मेल है । कहा जाता है कि अनन्त आकाश में हाइड्रोजन गैस भरा हुआ है । यह हाइड्रोजन गैस अनन्त काल में हीलियम गैस बन जाता है जिससे सूर्य पर विस्फोट होता रहता है । अनुमान है कि सूर्य पर दो करोड़ डिग्री सेंटीग्रेड ताप है । जिसका दौ सौ बीस करोड़वां भाग पृथ्वी को मिलता है । कई वैज्ञानिक मानते हैं कि सूर्य से ही ऑक्सीजन पृथ्वी पर आता है, जिस ऑक्सीजन से मनुष्य सांस लेकर जीता है । यह सूर्य पृथ्वी से तीन लाख तीस हजार गुणा बड़ा है, लेकिन अनादिकाल से आकाश में दौड़ रहा है, और आपसी गुरुत्वाकर्षण के कारण अनन्त आकाश में टिका हुआ है ।)

"हे गरुड़जी! इस संसार में प्रत्येक प्राणी सुख की कामना लिए भटक रहा है । लेकिन वह अपना सुख उन वस्तुओं में खोज रहा है, जो स्वयं दुःख से भरा हुआ है । इस संसार की वस्तु में और इस वस्तु के संग्रह में दुःख है तो, उससे सुख कैसे मिलेगा । प्रत्येक व्यक्ति मरुभूमि में पानी खोज रहा है । सुख तो, शाश्वत वस्तु में है । जिसकी खोज कोई नहीं करता । ज्ञान और सुख श्रद्धावान् लोगों को मिलता है । जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं होती, उसे न ज्ञान मिलता है, न सुख मिलता है । श्रद्धा और विश्वास के बिना मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नहीं होता ।"

"हे गरुड़जी! यश उसी को प्राप्त होता है जो पुण्य करता हो, और इसी प्रकार अपयश उसी को प्राप्त होता है, जो पाप करता है ।

चौ०

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावई कोई।।

अपमान और अपयश उसी को प्राप्त होता है, जो पापी होता है । इस संसार में दुःख वही भोगता है जो पुण्यकर्म नहीं करता । पुण्य के अभाव में घर में अशान्ति, कलह और बीमारी का प्रकोप होता है । जिस घर में सुबह-शाम प्रभु के नाम का कीर्तन नहीं होता, उस घर में भूत का वास हो जाता है और जिस घर में भजन, कीर्तन, सत्संग, रामकथा और संतों द्वारा प्रवचन होता है, वहाँ हमेशा लक्ष्मी का निवास होता है । जिस घर में गुरुपूजा नहीं होती, अथवा जिस घर-परिवार का कोई गुरु नहीं होता, शैतान उस परिवार का गुरु बन जाता है । हे गरुड़जी! जिस परिवार में पति-पत्नी में प्रेम रहता है, जहाँ माता-पिता एवं बुजुर्गों का आदर होता है, उस परिवार में कभी शोक और अमंगल नहीं होता । भगवान् का निवास वहीं होता है, जहाँ प्रेम रहता है । इसलिए प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए, प्रभु का स्मरण करने वाला कभी दुःखी नहीं होता और उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।"

चौ०

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भव निधि तरहीं ॥

विशेष प्रसंग

(हमारे यहाँ शास्त्रों में जीवन जीने की विधि बताई गई है । जीवन में वही व्यक्ति सुखी रहता है, जो नैतिक नियमों का पालन करता है, मन, वचन और कर्म से सुखद जीवन जीने की कामना करने वाला ही जीवन का आनन्द भोगता है । हमारे जीवन का उद्देश्य ही है, परम सुख की प्राप्ति । लेकिन विडम्बना यह है कि हम सुख खोजने जाते हैं और दुःख बटोरकर ले आते हैं । क्योंकि मनुष्य धन संग्रह करता है तो, धन के साथ चिन्ता, कलह और क्लेश का भी संग्रह कर लेता है । इसलिए सत्कर्म से प्राप्त धन से ही सुख मिलता है । पाप, अनाचार, छिना-झपटी, बेईमानी से प्राप्त धन से कभी सुख नहीं प्राप्त होता । बेईमानी का धन देखने में तो, अच्छा लगता है, लेकिन वह काफी दुःख देता है -

अधर्मे नैधते आढतो ततो भद्राणि पश्यति ।
यो पापात् धनं जयति समूलं तु विनश्यति ॥

पाप का धन बहुत थोड़े दिन के लिए अच्छा लगता है, लेकिन थोड़े ही दिनों में वह मूल सहित नष्ट हो जाता है । इसीलिए हमारे शास्त्रों में आया है कि धन प्राप्त करो, लेकिन वह धर्म से कमाया हुआ हो । पुरुषार्थ चतुष्टय- अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष । हमारे जीवन में अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष की कामना है, लेकिन धर्म के नियंत्रण में । अगर अर्थ कमायें और उस पर धर्म का नियंत्रण न रहे तो, वही अर्थ अनर्थ कर देता है । अधर्म से कमाया हुआ अर्थ, परिवार में अनर्थ कर देता है । उसी प्रकार, काम अगर धर्म के अधीन न हो तो, वह वासना बन जाता है । काम शब्द संस्कृत के मूल धातु, **"कम्"** में अण् प्रत्यय लगने से बनता है । जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म प्रधान है, उसके जीवन में कमाया हुआ अर्थ भी धर्ममय रहता है और काम भी धर्ममय रहता है ।

उपनिषदों में हमारे संतों ने कहा है कि जो व्यक्ति त्याग भाव से जीवन को जीता है, उसे कभी दुःख नहीं होता । त्यागने में जो सुख है, भोगने में वह सुख नहीं है । त्याग का सुख स्थायी होता है और भोग का क्षणिक सुख मन में वितृष्णा पैदा करता है ।)

काक भुशुण्डि ने गरुड़जी को जीवन के रहस्यों से अवगत कराया और कहा – "हे गरुड़जी! आप तो प्रभु के सेवक हैं, आपके मन में कभी कोई विकार न आवे, इसके लिए आपको इस सम्पूर्ण प्रकृति में परमात्मा का दर्शन करना चाहिए । जिस दिन आप इस जगत् के कण-कण में परमात्मा का दर्शन करने लगेंगे, उसी समय आप निमित्त बन जायेंगे और आपके मन से कर्त्ता का बोध नष्ट हो जाएगा । आप कर्त्ता नहीं हैं, निमित्त हैं, ऐसा बोध होते ही आपके मन से कर्मफल की आसक्ति नष्ट हो जाएगी, और आप मोहबन्धन से मुक्त हो जायेंगे । यही मोह, मनुष्य को अपने-परायों से बांधे रखता है । हे पक्षिराज! आप तो प्रभु के सेवक हैं, आपके मन में संशय मोह और माया नहीं होना चाहिए ।"

चौ०

तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया ॥
पठइ मोह मिस खगपति तोहीं । रघुपति दीन्हि बड़ाई मोहीं ॥

"हे पक्षिराज! इस जगत् के सभी जीवों में विकार है। जो इन विकारों से मुक्त हो जाता है, वही प्रभु को पाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर यही षड्विकार हैं, जिसमें बंधकर जीव प्रभु से मिल नहीं पाता।"

चौ०

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥
गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥

हे पक्षिराज! मनुष्य को स्वयं अपने ही विकारों के कारण जीवन में अपमान होता है। इसलिए अच्छे कर्म करने वालों को कभी कष्ट नहीं होता और बुरे कर्म करने वाले, हमेशा दुःखी ही रहते हैं।

चौ०

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥

"हे पक्षिराज! जिस माया, मोह के अन्दर मनुष्य पिसता रहता है, वही माया प्रभु की दासी है। हे पक्षिराज! आगे आने वाला समय बड़ा कठिन आ रहा है। इस समय मनुष्य धीरे-धीरे अच्छे कर्मों को त्यागने लगेगा और बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त होने लगेगा। आगे आने वाला समय कलियुग का समय होगा। इस युग में मनुष्य पूरी तरह अहंकार के अधीन में रहेगा। माता-पिता और गुरुजन का मनुष्य अपमान करेगा। अभिमान और धन के कारण माता-पिता, पुत्र, भाई-भाई में बैर बढ़ेगा। यह युग **"धन-प्रधान"** होगा, धर्म की हानि होगी, काम-वासना में लोग लिप्त रहेंगे और माता-पिता के बजाय, ससुराल के लोग प्रिय बन जाऐंगे।

छ०

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। पितुरूप कुटुंब भए तब तें॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अब लालन दीख नहीं जब लौं॥

प्रत्येक व्यक्ति ससुराल के प्रति आसक्त हो जाएगा और अपने कुटुम्ब, माता-पिता को पुत्र तभी तक आदर देगा, जब तक वह स्वयं असमर्थ है और उसका विवाह नहीं हुआ है । विवाह होते ही वह छलांग लगाकर माता-पिता की गोद से कूदकर अपने ससुर की गोद में चला जाएगा और अपने सास-ससुर को ही माता-पिता मानने लगेगा ।"

"हे पक्षिराज! शास्त्रों में कहा गया है- मनुष्य, पुत्र और पौत्र की प्राप्ति इसलिए चाहता है कि बुढ़ापा में उसे सम्बल प्राप्त हो । लेकिन इस युग में मनुष्य का कर्म इतना नीचा हो जाएगा कि कुकर्म भी उससे शर्म करने लगेगा । पिता-पुत्र, माँ-बेटा, भाई-भाई, भाई-बहन सारे सम्बन्ध नष्ट हो जाएंगे । जीवन से पवित्रता नष्ट हो जाएगी । लोक-लाज और मर्यादा खत्म हो जाएगी । यहाँ तक कि धर्म विरूद्ध आचरण के कारण सारे बन्धन टूट जाएँगे ।"

छ०

कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ॥
नहिं तो,ष बिचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भए मगता ॥

"हे पक्षिराज! इस युग में धर्म की हानि होगी, बेईमानों की संख्या बढ़ेगी, आपस में द्वेष कलह बढ़ेगा, पति-पत्नी के बीच का प्रेम नष्ट हो जाएगा, धन की प्रधानता रहेगी, धन के नीचे सारा सम्बन्ध दब जायेगा । धन के लिए हत्या, लूट में बढ़ोतरी होगी, धन के कारण भाई अपने भाई को, पत्नी अपने पति को छोड़ देगी । इस युग में चोर, लम्पट, धूर्त, बेईमान, अधर्मी, ढोंगी, पाखंडी की पूछ होगी । अज्ञानी, ज्ञानी होने का ढोंग करेगा और मूर्ख, विद्वान् बनने का नाटक करेगा ।

हे पक्षिराज! इस अधर्म की वृत्ति को देखकर इस पृथ्वी से देवता और पवित्र नदियाँ विलुप्त हो जायेंगी । कलियुग के ढाई हजार वर्ष बीतते ही देवता पृथ्वी लोक से विदा हो जायेंगे और पाँच हजार वर्ष बीतते ही पवित्र नदियां गंगा, यमुना आदि लुप्त हो जाएँगी । इस युग में धर्म करने वालों को मूर्ख और अधर्मी को बुद्धिमान् समझा जाएगा । आर्यावर्त में स्त्री को मातृरुप में देखा जाता है, लेकिन कलियुग के आते ही स्त्री का मातृरुप नष्ट हो जाएगा और वह मर्यादा के विरूद्ध आचरण करने लगेगी ।

स्त्री को गृहलक्ष्मी कहा जाता है। लेकिन इस युग में वह घर से बाहर निकलकर, स्वयं पुरुषों की तरह काम करने लगेंगी और जो स्त्री, पुरुषों के लिए सहभागिनी मानी जाती है, वह अब प्रतिस्पर्धा करने लगेगी। उसका रहन-सहन, भेष-भूषा, प्रतिस्पर्धा के कारण बदल जाएगा।"

श्रीराम का माताओं को उपदेश

एक दिन प्रातःकाल श्रीराम अपने कक्ष में ध्यानमग्न हो बैठे थे, तभी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा, तीनों माताएं श्रीराम के कक्ष में गईं। उनके आने की धमक सुनते ही श्रीराम ने अपनी आँखें खोलीं और उठकर माताओं को प्रणाम किया। थोड़ी देर में सीताजी, माण्डवी, ऊर्मिला और श्रुतिकीर्ति भी वहाँ पहुंच गईं। परिवार के सभी सदस्यों को वहाँ आया देख श्रीराम ने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी वहाँ बुलवा लिया। सभी एक अलग कक्ष में प्रसन्नतापूर्वक बैठकर बातचीत करने लगे। सभी को एक साथ एकत्र हुए देख, श्रीराम ने माता कैकेयी की ओर संकेत करते हुए कहा- "माँ! परिवार के सभी सदस्यों को एक साथ बैठे देख मुझे काफी प्रसन्नता हो रही है। मुझे विश्वास है कि हमारी सभी माताएँ बहूओं के व्यवहार से प्रसन्न होंगी।" तीनों माताओं ने कहा- "हे राम! हम सभी अपनी चार बहूओं की सेवा शुश्रुषा से अति प्रसन्न हैं। क्योंकि हमारी बहुओं की माताओं ने इन्हें मिथिला में नारीधर्म, समाज और परिवारधर्म के पालन का पूर्ण प्रशिक्षण दिया है। ये सभी सर्वगुण सम्पन्न हैं। हम सभी इनके व्यवहार से प्रसन्न हैं।"

माता कैकेयी ने प्रेमपूर्वक श्रीराम से कहा- "बेटा! जब से तुम चार भाइयों का जन्म इस परिवार में हुआ, तब से पूरे अवध में आनन्द और मंगल छाया हुआ है। लेकिन मैं आज भी अपराध बोध से ग्रसित हूँ कि किस कारण मैंने इस हरे-भरे परिवार में आग लगा दी थी।" यह कहते हुए माता कैकेयी की आंखें झुक गईं।

यह सुनते ही श्रीराम अपने स्थान से उठे, माता कैकेयी के चरण छूकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये ओर बोले- "माँ! मैंने कभी नहीं समझा कि बड़ी माता, छोटी माता और आप में क्या अन्तर है। आप अकारण अपने को दोषी मान रही हैं। मैं कभी सोच भी नहीं सकता कि कोई माँ अपने प्रिय पुत्र का बुरा चाहेगी। लेकिन जो हुआ, वह सब आपके कारण नहीं हुआ। यह सब तो, नियति का खेल था। हम सबों को दुःख है कि इस खेल में पूज्य पिताश्री चले गये। उनके जाने में

भी यह खेल एक बहाना था। इस संसार से सभी को जाना पड़ता है । जन्म और मृत्यु साथ-साथ चलती हैं । जन्म होते ही मृत्यु प्रारम्भ हो जाती है । मृत्यु एक परीक्षा है । मनुष्य जब मृत्यु को प्राप्त करता है तो, उसे कोई न कोई बहाना चाहिए । पिताजी को तो, कभी जाना ही पड़ता, लेकिन मेरा वनगमन उनकी मृत्यु का एक माध्यम बन गया । अगर मैं वन नहीं जाता तो, भी कभी न कभी पिताजी को तो, जाना ही पड़ता। क्योंकि जिसका जन्म होता है, उसे जाना ही पड़ता है ।"

"माँ! आप मेरे वन गमन में केवल माध्यम बनी हैं । आपने कुछ नहीं किया है । हमारी प्रिय मंथराजी ने भी कुछ नहीं किया है । सभी लोग केवल माध्यम बने, माध्यम बनना अपराध नहीं होता । आपने तो, प्रकृति को अपना नियम पालन करने में सहायता की है । हम चारों भाई आप तीन माताओं के पुत्र हैं । यहाँ भी मेरे पुत्र होकर अवतरित होने में आप माध्यम बनी हैं । हमारा विवाह हुआ, हमारे पूज्य महाराज जनक इसमें माध्यम बने हैं । क्योंकि प्रकृति स्वयं कुछ नहीं करती । उसे कराने के लिए माध्यम चाहिए । हम चार भाइयों को तो, जन्म लेना ही था, ऐसा प्रकृति का निर्देश था । उसकी व्यवस्था थी, लेकिन कोई भी जीव बिना माध्यम के प्रकट नहीं हो सकता। इसलिए हे माता! मेरी प्रार्थना है कि आप निःसंकोच अपने मन से इस अपराधभाव को नष्ट कर दें और मुझे पूर्ववत् अपने वात्सल्य के आंचल के नीचे बैठाकर अपना आशीर्वाद देती रहें । मुझे तो, लगता है कि बड़ी माता और छोटी माता भी पहले की भांति मुझसे प्रेम नहीं करतीं ।"

श्रीराम की बातें सुनते ही तीनों माताएँ श्रीराम को पकड़कर रोने लगीं और कहने लगी- ऐसा मत कहो बेटा! हमारे मन में कभी ऐसा भाव नहीं आया । माता सुमित्रा (जो मगध प्रान्त से आई थीं) बड़े ही स्नेहभाव से बोलीं- "बेटा राम! हम तीनों के मन में आजतक यह भाव नहीं आया कि तुम चारो भाई किस माता के पुत्र हो ।" यह सुनकर माता कौशल्या ने कहा- "मेरे लाल! तुम्हारे पिताजी कहते थे कि तुम परमात्मा के स्वरुप हो । मैं भी यह मानती हूँ कि तुम कोई महान् आत्मा हो । लेकिन पिछले चौदह वर्षों तक तुम मेरी बहू सीता और पुत्र लक्ष्मण के साथ जो कष्ट सहे हो, वह कष्ट हमारे किस पाप के कारण तुम्हें भोगना पड़ा? क्योंकि माता-पिता के पुण्य से पुत्र को सुख मिलता है । हमलोगों ने क्या पाप किया था, जिसका कष्ट तुम्हें भोगना पड़ा? ये चौदह वर्षों का समय हजारों वर्षों की तरह हम सबों को पीड़ा देता रहा । मुझे स्मरण नहीं कि मैंने या हमने अपने जीवन में कभी किसी को सताया हो, किसी

को कष्ट दिया हो तो, हमारे किस पाप की सजा तुम्हें भोगनी पड़ी और दूसरी ओर मैं चौदह वर्षों तक बिना जल की मछली की तरह तड़पती रही, एक तो, तुम्हारे पिताजी के जाने का गम, दूसरा तुम्हारा बिछोह। एक औरत इस बड़े राजभवन में चौदह वर्षों तक बिना प्राण के शरीर लेकर घूमती रही। मैं तो, अपना दुःख किसी को कह भी नहीं सकती थी। तुम, पुत्र लखन और बहू सीता कंकड़-पत्थर पर खाली पैर घूमते रहे, जंगलों में भटकते रहे। अयोध्या में भरत, शत्रुघ्न तुम्हारे वियोग में क्षण-क्षण तड़प रहे थे। बेटी ऊर्मिला, अपने विरह में दग्ध हो रही थी। मैं अपना दुःख किससे बाँटूं? इस महल में हम सभी एक दूसरे से अपरिचित की तरह सांसें गिन रहे थे। हे पुत्र! मुझे बताओ ऐसा क्यों हुआ?"

माता कौशल्या की बात सुनकर श्रीराम ने माता को ढाढ़स बंधाते हुए कहा- "माँ! आप अकारण अपने धवल चरित्र में दोष खोज रही हैं। आप तीनों माताएँ तो, पवित्र आत्मा हैं। पवित्र आत्माएँ पाप नहीं करतीं, उनका सभी काम पुण्य बन जाता है। क्योंकि मन जब पवित्र भाव से कर्म को प्रेरित करता है तो, उसका परिणाम भी पवित्र होता है। इसलिए अकारण अपने पवित्र कर्मों में दोष न खोजें।"

"माँ! यह संसार प्रकृति के नियमों के अधीन चलता है। यहाँ कोई कुछ नहीं कर रहा है, बल्कि करता हुआ दिखता है। हानि, लाभ, यश, अपयश, जीवन, मरण, इसका निर्णय करने वाला कोई और है। कर्मफल का निर्णय यहाँ कोई नहीं करता। प्रत्येक जीव अपने ही कर्मों का फल भोगता है।"

"माँ! चौदह वर्षों तक मैं आपके आंचल के नीचे नहीं बैठा, आपने मेरे सिर को स्नेह से नहीं सहलाया, इसके अभाव में मैं भी कम नहीं तड़पा हूँ। लेकिन यह तो जीवन है, जीवन में केवल वात्सल्य की छांह नहीं मिलती, संघर्ष भी करना पड़ता है। अगर मैं संघर्ष नहीं करता तो, अयोध्या में एक साधारण राजकुमार की तरह जीवन व्यतीत करता। पिताजी ने मुझे राजधर्म के निर्वाह के लिए वन में भेजा। अगर वे मुझे वन में नहीं भेजते तो, आज हमारी मातृभूमि सुरक्षित नहीं रहती। पूरे देश में राक्षसों का आतंक फैला हुआ था, संत-महात्माओं को यज्ञ और नैतिक कर्म करने से रोक दिया गया था, हमारी मातृभूमि खण्डों में बंटती जा रही थी, सम्पूर्ण आर्यावर्त की मर्यादा टूट रही थी। पिताजी चक्रवर्ती सम्राट् थे, उन्होंने सबसे पहले गुरु विश्वामित्र के आश्रम में हमें भेजा। उन्हें पता था कि उस क्षेत्र में बड़े-बड़े राक्षसों का प्रकोप है। फिर भी उन्होंने मुझे वहाँ भेजा। उनका यह राजधर्म था। पुत्र का मोह छोड़कर उन्होंने

राज्य की रक्षा की । वहाँ राक्षस सुकेश की महाबलवती बेटी और सुन्द की पत्नी जिसका महाबलशाली मायावी बेटा मारीच था, उसके प्रकोप से पूरे क्षेत्र को मुक्त करने के लिए मुझे गुरु विश्वामित्र के साथ भेजा । यह उनका महान त्याग था । इसके लिए आप किसे दोष देंगी । वन भेजने में मंझली माता अपने को दोषी मान रही हैं, लेकिन गुरु विश्वामित्र के साथ ताड़का के प्रकोप को शान्त करने के लिए पिताजी ने मुझे जो भेजा, उसके लिए आप किसे दोषी मानेंगी । और बड़ी माता, वहीं से हमलोग सीता स्वयंवर में भी तो, गये थे । उसी यात्रा के कारण आपके घर में चार बहूएँ आईं, उसे तो, आपने शुभ माना और वन जाने की पीड़ा को अशुभ मान रही हैं ।

माँ! इस प्रकृति में न कुछ शुभ है, न अशुभ है । यह सब अपने देखने की बात है । आप किसको शुभ और अशुभ कहेंगी, बाली का मरना, बाली के लिए अशुभ था, लेकिन सुग्रीव के लिए शुभ था । एक ही घटना किसी के लिए शुभ है तो, किसी के लिए अशुभ । दरअसल घटना शुभ-अशुभ नहीं होती, घटना से प्रभावित व्यक्ति का मन उसे शुभ या अशुभ मान लेता है । सूर्य की गर्मी को देखकर कुम्हार खुश होता है और जिस किसान की फसल सूखने लगती है, वह दुःख मानता है । वर्षा होती है तो, किसान सुख मानता है और कुम्हार दुःख मानता है ।

माँ! मेरे वन जाने से आपको दुःख हुआ और जंगल के संत-महात्माओं और गरीब वन-वासियों को अपार सुख मिला । अब आप ही सोचें कि आपका दुःख बड़ा है कि पूरे देश का सुख बड़ा है । आपका बेटा राम, अयोध्या में केवल आपका बेटा था और आज पूरे देश में आपके बेटे की जयकार बोली जा रही है । इसलिए मेरे वन जाने के लिए आप, मंझली माता अथवा पिताजी अपने को दोषी न मानें । यह जो हुआ, यह सब कुछ प्रकृति के आदेश से ही हुआ ।"

"माँ! बचपन से आपने, पूज्य पिताजी और गुरु वशिष्ठ ने हमें अन्याय के विरूद्ध लड़ने की शिक्षा दी । हमने उसी धर्म का पालन किया है । एक राजा अथवा राजकुमार का यह कर्त्तव्य है कि वह देश में उठ रहे राष्ट्रविरोधी हरकतों को शान्त करे । मैंने सुना है कि पिताजी ने भी मंझली माता के साथ देवासुर-सुंग्राम में अपने पराक्रम से देव-विरोधी राक्षसों का नाश किया था । उस युद्ध में मंझली माता ने भी अपने क्षत्राणीधर्म का पालन किया था और विजय के उपरांत इन्द्रपत्नी शची ने पिताजी को आपके लिए चूड़ामणि भेंट की थी । माँ! राजा का यह धर्म है कि वह अपने स्वार्थ का त्याग कर राष्ट्र रक्षा में संलग्न रहे ।

माँ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, अब तक पिताश्री के यश और मान को बढ़ाया है। मैंने राजधर्म का निर्वाह किया है। जीवन में अनेक संकट आए, मैंने सबका मुकाबला किया है। सीता हरण के पश्चात् लंका पर आक्रमण करने के लिए अगर मैं चाहता तो, आपके आदेश से भाई भरत को अयोध्या की सेना भेजने को कहता। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने वहाँ के स्थानीय लोगों को जगाया, राक्षसों के अत्याचार के विरोध में खड़ा होने के लिए प्रेरित किया। उनके स्वाभिमान को जगाया, ताकि मेरे वहाँ से लौट आने पर भी वे अपनी सुरक्षा कर सकें। इसमें मुझे सफलता मिली। आज पूरे देश की प्रजा आपके पुत्र की जय-जयकार कर रही है। माता-पिता के लिए इससे परम सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है कि उसके पुत्र की पूरे देश में जयकार बोली जाय। पिताजी ने राजधर्म का निर्वाह करते हुए काफी यश प्राप्त किया। मैंने उनके यश को गिरने नहीं दिया बल्कि आगे बढ़ाया। आज समुद्र के पार तक दशरथ पुत्र राम का यश फैला हुआ है। यह सब पिताजी एवं आप माताओं कें आशीर्वाद से ही सम्भव हुआ है।"

श्रीराम से ज्ञानपूर्ण बात सुनकर माता कौशल्या ने कहा- "हे पुत्र! मैं तो, आज भी पुत्र-मोह से ग्रस्त हूँ, इसलिए अपनी ममता के कारण ऐसा प्रश्न पूछ रही हूँ। लेकिन तुमने जिस तरह मेरे मन में उठ रहे भाव-विकारों का शमन किया, उससे लगता है कि मेरे मन में गहरा अन्धकार छाया हुआ है, जिस कारण तुम्हारे जैसे परमात्मा की माँ होते हुए भी मैं तुम्हारे ज्ञान के आलोक से वंचित हूँ। पिछले दिन गुरु वशिष्ठ और गुरुमाता अरून्धती यहाँ आयी थीं तो गुरुमाता ने परमात्मा, जीव और माया की चर्चा की थी। वह मेरी समझ में नहीं आई। हे पुत्र! मैं संसार की श्रेष्ठ माताओं में हूँ, जिसका पुत्र इतने ऊँचे ज्ञान की बात करता है। हे पुत्र! यह परमात्मा, प्रकृति, जीव और माया क्या है? इसे समझाओ।"

इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे माँ! सौभाग्य से आज परिवार के सभी सदस्य यहाँ उपस्थित हैं। हम सभी सदस्य आज एक बन्धन में बंधे हुए हैं। यही है संसार का बंधन। कभी आप बचपन में अपने पिता के घर थीं, मंझली माँ, छोटी माँ, सीता आदि सभी बहूएँ अपने-अपने घर थीं। कोई किसी को जानता-पहचानता भी नहीं था। लेकिन संसार के बन्धन के कारण आज हम एक परिवार और एक दूसरे के लिए प्राणों से प्रिय बने हुए हैं। जब कभी हम यहाँ से जाएँगे तो, उस समय भी अलग-अलग हो जाएँगे, वहाँ भी कोई किसी को नहीं

पहचानेगा । इसका अर्थ है कि जन्म के पहले हम एक दूसरे को नहीं जानते थे और मृत्यु के बाद भी फिर एक दूसरे को नहीं जानेंगे । केवल बीच की जान पहचान रहेगी । जन्म के पहले अव्यक्त थे, मत्यु के बाद भी अव्यक्त रहेंगे, बीच में थोड़े दिनों के लिए व्यक्त हो गये हैं । इसलिए मनुष्य को व्यक्ति कहा जाता है । जिस प्रकार, नदी वहती है तो, पानी का बुलबुला कुछ देर के लिए प्रकट होता है और फिर पानी में विलीन हो जाता है । बुलबुला कहाँ से आया और कहाँ चला गया, यह किसी को पता नहीं होता । हम दीपक जलाते हैं, दीपक में प्रकाश आता है, यह प्रकाश कहाँ से आता है, कोई नहीं जानता और दीपक के बुझते ही प्रकाश कहाँ चला जाता है, इसे भी कोई नहीं जानता । उसी प्रकार जीव कहाँ से आता है और कहाँ चला जाता है, इसे कोई नहीं जानता । जब तक जीव व्यक्त रहता है, तभी तक संसार रहते हैं । संसार भी व्यक्त है । किसी अव्यक्त शक्ति का व्यक्त रूप संसार है, यही माया है।

"प्रकृति का अर्थ है अनन्त चेतना, दैवी शक्ति । साथ ही प्रकृति का अर्थ है- शाश्वत नियम जिसका क्षरण न हो । इस प्रकार प्रकृति का अर्थ है- स्थायीत्व और संसार का अर्थ है- नश्वर । जब यह संसार नश्वर है तो, इस संसार के जितने जीव हैं, वह भी नश्वर हैं । संसार के सारे नाते, सम्बन्ध अस्थायी हैं, माता-पिता से पुत्र का सम्बन्ध, भाई-भाई का सम्बन्ध भी थोड़े दिनों का है । मनुष्य जब जन्म लेता है तो, नाता बन जाता है, मरते ही नाता टूट जाता है । जो नाता चार दिनों का है, वह सत्य कैसे हो सकता है? सत्य तो, वह है जिसका नाश न हो । असत्य का नाश होता है, सत्य का कभी नाश नहीं होता । जिसका नाश न हो, वह सत्य है । जिसका नाश हो जाए वह असत्य है । यह संसार नाशवान है इसलिए असंख्य है, झूठा है ।

हे माँ! आप मेरी माँ हैं । लेकिन आपसे मेरा सम्बन्ध तब बना, जब आपकी कोख से मेरा जन्म हुआ । जन्म के पहले मैं आपका पुत्र नहीं था । जब हम सभी इस संसार से चले जायेंगे तो, जाते ही सारे नाता-सम्बन्ध टूट जाएँगे । क्योंकि ये नाते अस्थायी हैं । मनुष्य जन्म लेने के पहले कहाँ रहता है, कोई नहीं जानता । जन्म लेते ही किसी का बेटा, किसी का भाई, किसी का पति बन जाता है । जिसे हम अपना मान लेते हैं । लेकिन मनुष्य को यह भी पता नहीं है कि अब तक वह कितनी माताओं का पुत्र बन चुका है । कितने का भाई और कितनी पत्नियों का पति बन चुका है । उस समय उसे लगता है कि पुराने जन्म का नाता ही स्थायी है । लेकिन मनुष्य के मरते ही वह नाता टूट जाता है और दूसरा नाता शुरू हो जाता है । जिस प्रकार हम

जिस महल में रहते हैं, उस महल को हम अपना महल कहते हैं। उसकी एक-एक दीवार से मोह हो जाता है। लेकिन जब वह महल पुराना होकर गिर जाता है अथवा हम कोई नए महल में चले जाते हैं तो, उस नए महल को अपना बना लेते हैं। पुराने घर को हम याद भी नहीं करते। उसी तरह हम नया वस्त्र बनवाते हैं, उसे बड़े प्यार से सहेजकर पहनते हैं, लेकिन वही वस्त्र जब पुराना हो जाता है तो, उसे छोड़कर दूसरा नया वस्त्र ले लेते हैं। ठीक उसी तरह इस संसार में हमारा सम्बन्ध भी बदलता रहता है।

हे माता! मनुष्य अथवा जीव इस संसार में कई लाख वर्षों से विभिन्न योनियों में जन्म लेता और मरता रहता है। प्रत्येक योनि उसको प्रिय लगती है। लेकिन मृत्यु के बाद उसी योनि को वह एकदम भुला देता है और नई योनि से प्रेम करने लगता है। जैसे- कोई राजा, अपने जीवन में इतना सुख और सम्पत्ति का भोग करता है, वह राजा वाले जीवन से प्रेम करने लगता है। उसे अपने उस जीवन से मोह हो जाता है। लेकिन जब वह मरता है और उसे दूसरी योनि प्राप्त होती है तो, वह राजा वाली योनि को भुला देता है और कीट-पतंग अथवा जानवर की योनि को ही अपना मान लेता है, वह उसी से प्रेम करने लगता है। अगर परमात्मा उससे कहे कि चलो, तुम्हें फिर राजा बना देते हैं तो, वह अपने वर्तमान जीवन को छोड़ना नहीं चाहेगा। क्योंकि इस जीवन से उसे मोह हो गया है, यही मोह संसार है और इस मोह का त्याग विराग है। जिस समय मुझे वन भेजा गया, उस समय की पीड़ा को पिताजी सह नहीं सके। तुम तीनों माताएँ और अयोध्या की प्रजा चौदह वर्षों तक तड़पती रहीं, लेकिन जब मैं हमेशा के लिए अयोध्या छोड़कर चला जाऊँगा, तब यहाँ की प्रजा कैसे सहन करेगी। परन्तु यह सत्य है कि जो जन्म लेता है, उसे जाना ही पड़ता है। जो जीवन थोड़े दिनों के लिए प्राप्त हो, उसे स्थायी जीवन मानकर उससे मोह करने लगना अज्ञान है। इसी अज्ञानता को तोड़ने से हमें सत्य का मार्ग मिलता है।"

माँ! इस संसार में आप लोग मुझसे पहले से आए हुए हैं। जब आप लोग यहाँ आए तो, मैं कहीं और था। यह तो संसार का नियम है कि पहले माता-पिता आते हैं और वह भी अलग-अलग जन्म लेते हैं फिर वे संसार के बन्धन में बंधते हैं और दोनों के संयोग से एक तीसरा जीव उत्पन्न होता है। तीसरा जीव जब पुत्र या पुत्री बनकर पैदा होता है, तब वह उस माता-पिता की संतान बन जाता है। लेकिन इस माता-पिता की संतान बनने के पहले वह किसी दूसरे माता-पिता की संतान रहता है।

एक ही जीव हजारों बार किसी का बेटा बनता है, फिर बाप और अन्त में दादा बनकर किसी तीसरे के घर में पुत्र बनने चला जाता है। इसलिए कहना मुश्किल है कि कौन जीव, कब किसका बेटा और किसका बाप था। इस रहस्य को बताना सम्भव नहीं है। सम्भव है किसी परिवार का दादा बूढ़ा होकर मरे और वह फिर पोता बनकर उसी घर में पैदा हो जाए। आज का दादा, कल पोता बन जाए, इसे कोई नहीं जानता।

हे माँ! तुमने और पिताजी ने हजारों वर्ष पहले से मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए तप किये। तुम्हारे कई जन्मों की तपस्या के फलस्वरूप मैं अपने वचन के पालन के लिए तुम्हारा पुत्र बना। उस समय तुम चाहती तो, अपनी तपस्या के फल से मोक्ष मांग लेती, लेकिन तुम दोनों ने पुत्र मांगा, जिस कारण पुत्र बनकर मुझे आना पड़ा। पुत्र होने के कारण मुझे माता-पिता, भाई, पत्नी सब के धर्मों का निर्वाह करना पड़ा। क्योंकि मनुष्य बनकर मनुष्य धर्म का निर्वाह करना मेरे लिए आवश्यक था। यह सब मैं जानते हुए कर रहा हूँ। लेकिन तुम्हें पूर्व जन्म की किसी घटना का स्मरण नहीं है। यही जीव का धर्म है। शरीर के नष्ट होते ही उसे जीवन की समस्त घटनाओं का विस्मरण हो जाता है।

विशेष प्रसंग

(आज का विज्ञान कहता है कि मनुष्य के मस्तिष्क में एक ग्रन्थि होती है, जिससे निरन्तर स्राव होता रहता है। इस कारण उसे अपने जीवन की समस्त छोटी-बड़ी घटनायें याद रहती हैं। कभी-कभी चोट लगने से जब उस ग्रन्थि से स्राव रूक जाता है तो, मनुष्य सभी बातें भूल जाता है। भूलना जीवन के लिए आवश्यक है। अगर जीवन की सभी छोटी-बड़ी भूलें अथवा बचपन में भूल से की गई कोई गलती, जवानी अथवा बुढ़ापा में याद रहे तो, वह पागल बन जाएगा। इसलिए भूलना भी आवश्यक है। मनुष्य जब बूढ़ा होने लगता है तो, मस्तिष्क की ग्रन्थि से स्राव भी कम हो जाता है, जिस कारण वह बहुत बात भूलने लगता है। अगर अतीत की घटनाएं वर्तमान में याद रहे तो, प्रत्येक व्यक्ति पागल हो जाएगा। बचपन में भूल से किया गया कोई पाप अगर जवानी में याद रहे, मान-अपमान याद रहे तो, मनुष्य का जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए जीवन में भूलना आवश्यक है।)

श्रीराम के उत्तर सुनकर माता कौशल्या ने कहा- हे पुत्र! मैं मानती हूँ कि तुम मेरे पुत्र हो, लेकिन यह कैसे मान लूं कि तुमसे मेरा नाता अस्थायी है?

इस प्रश्न को सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे माता! यही तो, बन्धन है । हमारा और तुम्हारा यह नाता, इस शरीर का नाता है । शरीर के जाते ही नाता भी समाप्त हो जाता है । पिताजी चले गये, जब तक वे जीवित थे, तब तक पिता-पुत्र का सजीव नाता था । अब उनका शरीर नहीं है, अब नाता का केवल स्मरण है, आभास है । मूल रूप से तो, आत्मा है और आत्मा का किसी से कोई नाता नहीं होता, ब्रह्म मूल है, उनका ही प्रतिबिम्ब यह संसार है । संसार में जीव अलग-अलग शरीर धारण कर अलग-अलग जाति, धर्म और नाता बना देता है । इसलिए नाता शरीर से होता है । जिस प्रकार नदी वहती है, नदी के पानी को हम कमण्डल अथवा घड़े में अलग-अलग रख लेते हैं और कहते हैं कमण्डल का पानी या घड़ा का पानी है । इसका अलग-अलग नाम दे देते हैं । जब घड़ा फूट जाता है तो, पानी पुनः नदी में विलीन हो जाता है । तब बताना मुश्किल हो जाता है कि इस नदी में घड़ा का पानी कहाँ है? जिस प्रकार विभिन्न नदियों का पानी जब समुद्र में मिल जाता है तो, समुद्र में मिलते ही यह बताना मुश्किल है कि समुद्र में किस नदी का पानी कहाँ मिला है? उसी प्रकार सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर गिरता है तो, हम अपने आंगन की दीवारों में उस प्रकाश को घेरकर कहते हैं, यह प्रकाश मेरा है ।"

"इसलिए हे माता! इस संसार का सुख भोगते हुए निरपेक्ष बनकर कर्म करने वाला परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । माता कौशल्या ने फिर पूछा- हे पुत्र, अभी तुमने जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में बताया । लेकिन मेरे मन में अब एक और प्रश्न उठ रहा है कि मनुष्य जब तक जीवित रहता है, तब तक उसका धर्म क्या बनता है? प्रभु श्रीराम ने कहा- हे माता! यहाँ जीवन हमारा और आपका नहीं है, जीवन तो, प्रकृति और परमात्मा का है । उसने हम सबों को जीवन दिया है, जीवन उसका था और है । जब जीवन उसका है तो, इस जीवन को उसी के अनुरुप जीना पड़ेगा । यहाँ हमारे करने से कुछ नहीं होगा । हम सभी तो, यंत्रवत् चल रहे हैं । इस यंत्र को चलाने वाला कोई और है । उसके अपने नियम हैं, जैसे- सूर्य, चन्द्र एवं अन्य ग्रह स्वयं नहीं चलते, उन्हें चलने के लिए किसी दिव्य शक्ति ने आदेश दिया है । सूर्य भी अपने मन से नहीं चलता, इस संसार की सभी वस्तुएं अपने नियम से चल रहीं हैं । मनुष्य भी इसी संसार का अंश है । मनुष्य को जीने, चलने, खाने, सोने एवं परिवार चलाने के नियम

के अन्तर्गत ही चलना पड़ता है । नियम के अन्तर्गत चलने वाला मनुष्य, सुख-दुःख एवं अन्य कर्म आदि बन्धनों से प्रभावित नहीं होता । वह स्वस्थ और दीर्घायु बनकर अनेक वर्षों तक जीवन जीता है । इस जीवन को स्वस्थ और सुखी रखने के लिए प्रकृति ने नियम बनाए हैं । आहार-व्यवहार के अपने नियम हैं । जो लोग प्रकृति के नैतिक नियमों का पालन करते हैं, वे स्वस्थ और दीर्घायु बनते हैं । कर्म करते हुए दीर्घायुत्व को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का धर्म है । लेकिन जो व्यक्ति प्रकृति के नियमों को नहीं मानता और विभिन्न विकारों का दास बन जाता है, उस व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जाता है और वह जीवन धर्म का पालन नहीं कर पाता । ऐसे ही लोग अल्पायु, बीमार और अशान्त जीवन जीते हैं ।" मनुष्य जन्म से ही स्वस्थ और सुखी प्राणी है । प्राणी का अर्थ है- जिसमें प्राण हो । प्राण सभी जीवों में रहता है । लेकिन कुछ जीव बोधपूर्वक, होशपूर्वक, अच्छे-बुरे कर्म-फल का विचारकर जीते हैं और जो व्यक्ति जीवन को भोग-विलास में व्यतीत करता है, वही जीवन धर्म के पालन से वंचित रह जाता है ।

माता कौशल्या ने पूछा- "हे पुत्र! यह तो, व्यक्ति का धर्म हुआ । व्यक्ति अपने धर्म का पालन कैसे करें, यह बात तो, समझ में आई । लेकिन व्यक्ति से जुड़े हुए उसके माता-पिता, पत्नी और बच्चे भी होते हैं, उनके साथ स्वधर्म का पालन कैसे किया जाए?"

श्रीराम ने कहा- "हे माता! यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़ा रहता है, लेकिन जब दो अच्छे लोग अथवा अच्छे आचरण वालों का सम्बन्ध आपस में बनता है तो स्वधर्म के पालन में विघ्न नहीं उठता । क्योंकि दोनों अच्छे कर्म करने वाले हैं, जब दोनों का जीवन नैतिक है, दोनों का आचरण और विचार नैतिक है तो, हजार नैतिक कर्म करने वाले एक साथ रह सकते हैं । परिवार में भी अनेक सदस्य होते हैं । आपके परिवार में भी अनेक सदस्य हैं । हम सब आपके परिवार के अलग-अलग अंश हैं । अगर हम सबों का नैतिक जीवन है, हम सभी अपने स्वधर्म का पालन कर रहे हैं, एक दूसरे का सम्मान करते हैं तो, इस बड़े परिवार में भी परिवार धर्म का पालन किया जा सकता है । आपके परिवार में भी कई प्रकार की रूचि वाले लोग हैं । लेकिन जब हम एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए परिवार में रहते हैं तो, ऐसे परिवार को ही सुखी परिवार कहा जाता है । परिवार के सभी सदस्यों का अपना-अपना महत्त्व है । किसी एक-दो को छोड़कर परिवार नहीं

बनता । और कोई एक व्यक्ति अलग खड़ा होकर भी परिवार का नेतृत्त्व नहीं कर सकता । परिवार का अर्थ है- सर्वसम्मति से चलने वाले व्यक्तियों का समूह । जिस परिवार में ऐसा भाव नहीं है, वह परिवार टूट जाता है और वहाँ विभिन्न प्रकार के विवाद खड़े हो जाते है ।"

"हे माँ! पति-पत्नी का जीवन भी परिवार का ही अंश होता है । अगर परिवार स्वस्थ है तो, पति-पत्नी का जीवन भी स्वस्थ रहता है । पति-पत्नी का जीवन, धर्म और नैतिकता का धागे में बांधा रहता है । इन दोनों में से अगर कोई एक अधर्म और अनैतिकता का आचरण करने लगता है, एक-दूसरे का सम्मान करना भूल जाता है तो, सम्बन्धों में दरार पड़ जाती है । और पति-पत्नी के विषैले दाम्पत्य जीवन से नन्हें-मुन्हें बच्चे भी प्रभावित हो जाते हैं । खिलते हुए बच्चों के जीवन में विष भरने लगता है । इसलिए हमारे जीवन का यही धर्म है कि हम नैतिक जीवन जीते हुए परिवार के सदस्यों के मान-सम्मान का विधि-पूर्वक निर्वहन करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करें ।

हे माता! जीवन जीने के लिए दो बातें आवश्यक हैं, प्रथमतः प्रकृति द्वारा बनाए गये नियमों का पालन और दूसरा, लोक व्यवहार में प्रचलित नैतिक नियमों का पालन । प्रकृति के नियमों के पालन से आध्यात्मिक चेतना बढ़ती है और लोक व्यवहार के नियमों के पालन से मनुष्य का वर्तमान जीवन सुख शान्ति से भरा रहता है । इस जीवन को चलाने के लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन में आध्यात्मिक चिन्तन हो, और परमात्मा के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए अपने समस्त कर्म करते रहें । इससे मनुष्य देव-ऋण से मुक्त हो जाता है और उस पर परमात्मा का हमेशा आशीर्वाद बना रहता है । वह जो भी करता है, उसका फल शुभ होता है । दूसरा, जो लोक व्यवहार का पक्ष है, उसमें माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य, पत्नी और पुत्र का पक्ष है, उसमें माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य, पत्नी के प्रति दायित्व निर्वाह और परिवार में रहते हुए लोक-व्यवहार और मर्यादाओं का पालन करना है ।"

श्रीरामजी का भरतजी के प्रति उपदेश

श्रीराम की बात सुनकर भरतजी ने पूछा- "भैया! जीवन में सत्कर्म का उदय कैसे होता है? हमेशा परमात्मा में, विशेष कर आपके चरणों में मन कैसे लगा रहे? इस मन को कैसे नियंत्रित किया जाए?"

प्रश्न सुनकर श्रीराम ने कहा- "मेरे प्रिय भाई! जीवन में सत्कर्म का उदय प्रारब्ध कर्म के प्रभाव से होता है और उसे वर्तमान के कर्मों से और अधिक प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फल अगर शुभ है तो, वर्तमान जीवन में भी अच्छे कर्मों की प्रेरणा होती रहती है और इसके साथ ही माता-पिता, गुरुजन के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से, सत्संग एवं भजन-कीर्तन से भी मन में सत्कर्म का उदय होता है। इसीलिए मनुष्य अपने गुरुजन से आशीर्वाद प्राप्त करता है। आशीर्वाद से ही आयु, विद्या, बल और बुद्धि बढ़ती है। मन में विवेक जगता है और विवेक की प्रेरणा से काम करने वाले को हमेशा सफलता मिलती है।

अब प्रश्न है कि मन को नियंत्रित कैसे किया जाय? सच पूछा जाय तो, मन को नियंत्रित करना बड़ा कठिन है। मन वेगवान घोड़े की तरह भागता रहता है। मन को केवल विवेक से नियंत्रित किया जा सकता है। और विवेक गुरुजन के आशीर्वाद से ही जागृत होता है। मनुष्य हमेशा अपनी इन्द्रियों के वश में रहता है और इन्द्रियाँ मन के वश में रहती है। मन को अगर विवेक से नियंत्रित नहीं किया जाय तो, मन उत्पात करने लगता है। इसीलिए विवेकपूर्ण जीवन जीने वाला मन के विकारों का दास नहीं बनता।"

भरतजी ने पूछा- "भैया! मनुष्य के मन में विकार कैसे उत्पन्न होता है?" श्रीराम ने कहा- "मेरे प्रिय भाई! दुषित मनोवृत्ति से विभिन्न विकारों का जन्म होता है। हमारे मन में समुद्र की लहरों की तरह वासनाएं उत्पन्न होती रहती हैं और वासनाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। एक वासना को पूरा करोगे तो, दूसरी खड़ी हो जाएगी। यह अनन्त है। काम की वासना और धन की वासना को आज तक कोई पूरा नहीं कर सका है। हम जब किसी वस्तु को देखते हैं तो, हमारी आँखें इन लुभावने दृश्यों को देखकर मन को प्रभावित करने लगती हैं और मन, अपनी इन्द्रियों को आदेश देता है कि उस वस्तु को प्राप्त करो। यही हमारी एकाग्रता भंग होती है। हम अपने उद्देश्य को भूलकर गलत वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास करने लगते हैं। वह वस्तु मिल जाती है तो, फिर हम दूसरी वस्तु की ओर हाथ बढ़ा देते हैं। अगर नहीं मिलती है तो, मन में आक्रोश पैदा हो जाता है और आक्रोश से हम तोड़-फोड़ करने लगते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य हिंसक बन जाता है।

मेरे भाई! मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि मनुष्य अपने विवेक से काम करता है और पशु को विवेक नहीं होता। पशु का अर्थ है- जो पाश में बंधा हो।

इसलिए वह हिंसक बन जाता है । मनुष्य हिंसक प्राणी नहीं है, मनुष्य स्वभाव से सरल और सुगम प्राणी है । अगर वह हिंसक बनता है तो, यह उसका आरोपित अवगुण हुआ । उसी तरह काम, क्रोध और अहंकार जब हमारे ऊपर चढ़ जाता है तो, हम पशुवत् आचरण करने लगते हैं ।"

श्रीराम की बात सुनकर भरतजी ने पूछा- "भैया! मन में स्थाई रूप से भक्ति कैसे रहे । आपके चरणों में मन हमेशा लगा रहे, इसके लिए क्या करना चाहिए?" श्रीराम ने कहा- "भरत! भक्ति का अर्थ है समर्पण । भक्ति में तर्क नहीं किया जाता । सारे प्रश्न निर्मल हो जाते हैं । क्योंकि कभी भी प्रश्न उठाकर उत्तर नहीं पाया जाता । प्रश्न से फिर प्रश्न बन जाता है लेकिन जहाँ परमात्मा के प्रति सम्पूर्ण समर्पण हो जाता है वहाँ वाणी मूक हो जाती है । सारे शब्द समाप्त हो जाते हैं । इसलिए समर्पण करना सीखो । समर्पण से ही तुम भक्ति में लीन हो सकते हो । अपने शरीर को परमात्मामय बनाने का प्रयास करो । तभी भक्ति घटित हो सकती है । फिर भरतजी ने पूछा- भैया! आपकी आध्यात्मिक बात सुनकर आज पहली बार लग रहा है कि अपने जीवन को रागमुक्त बनाकर प्रभु की भक्ति का सुख कैसे पाया जा सकता है । लेकिन एक प्रश्न मन में उठ रहा है कि इस संसार में मनुष्य इतना दुःखी क्यों है? मैंने स्वयं पिछले चौदह वर्षों में अपार दुःख सहा । इस दुःख सहने में मेरा अपराध क्या है?"

भरत की बात सुनकर श्रीराम ने मुस्कुराते हुए कहा- "मेरे प्रिय भाई! तुम्हारा अपराध केवल इतना है कि तुम मुझसे अधिक प्रेम करते हो । जिस व्यक्ति से प्रेम किया जाता है, अगर उसे कोई खरोंच भी लगती है तो, प्रेम करने वाले को अधिक दुःख होता है । तुमको मुझसे अधिक मोह है, इसी मोह के कारण तुम्हें इतनी पीड़ा झेलनी पड़ी । अगर तुम्हें धर्म, बुद्धि और विवेक होता तो, तुम मुझसे इतना मोह नहीं करते । यही मोह माया है, छलावा है और इसी कारण आज संसार का प्रत्येक व्यक्ति दुःखी हो रहा है ।

मैं तुम्हारा भाई हूँ, मुझे वन जाना पड़ा, इस कारण तुम्हें दुःख हुआ । तुम्हें अपने कारण दुःख नहीं हुआ । मुझसे जो तुम्हारा मोह है, उसके कारण ही दुःख हुआ । इसी मोह से निर्मोह होने के लिए संतों का उपदेश काम में आता है । मोह, ममता, अपना-पराया, मैं, मेरा, तेरा, यही मोह है । जिस दिन तुम्हारी दृष्टि खुल जाएगी, आँख पर से मोह का अन्धकार नष्ट हो जाएगा, उस दिन तुम सत्य को देखने लगोगे । मेरे

भाई! प्रत्येक व्यक्ति को सत्य से बहुत डर लगता है । क्योंकि सत्य सही चित्र बना देता है । मोह कहता है- मैं तेरा भाई हूँ, सत्य कहता है- मैं केवल मैं हूँ, तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ । क्योंकि सम्बन्ध के कारण मुझसे तुम्हें मोह है । मैं वन गया, तुम्हें अधिक दुःख हुआ, लेकिन जो हमसे दूर खड़े हैं, उन्हें उतना दुःख नहीं हुआ । जितना दुःख तुम्हें हुआ मेरे वन जाने से, उतना किष्किन्धा, दंडक अथवा लंका के लोगों को दुःख नहीं हुआ । क्योंकि उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । इसका अर्थ है- मेरे वन जाने से तुम्हें दुःख नहीं हुआ, सम्बन्ध को दुःख हुआ । जैसे कोई कहता है- अमुक जगह किसी की मृत्यु हो गई । अगर उस नगर से तुम्हारा कोई सम्बन्ध होगा तो, तुम्हें चिन्ता होगी कि कौन मरा, कहाँ मरा, कैसे मरा? तुम बड़ी उत्सुक्ता से यह सब जानना चाहोगे । लेकिन ज्योंही तुम्हें पता चलेगा कि वह कोई अंजान व्यक्ति था तो, तुम राहत की सांस लेने लगोगे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो । लेकिन घटना तो घट गई । पहले तुम दुःखी होने वाले थे, तुम्हें भय था कि कहीं वह अपना न हो । जब तुम्हें पता चल जाता है कि वह तुम्हारा अपना नहीं था तो, तुम शान्त हो जाते हो । इसका अर्थ है- दुःख सम्बन्ध के कारण अथवा सम्बन्ध को ही हो रहा है । यह कैसी विडम्बना है कि जिस घटना से तुम्हें दुःख होने वाला था, उससे तुम बच गये । किसी दूसरे को दुःख हुआ । तुम्हारे किसी अपने का नुकसान हुआ तो, तुम्हें दुःख हुआ । जब किसी दूसरे का नुकसान हुआ तो, तुम्हें दुःख नहीं हुआ । मतलब घटना दुःख का कारण नहीं है, सम्बन्ध दुःख का कारण है ।

मेरे भाई! दुःख और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । जिसे तुम दुःख कहते हो, उसे दूसरे व्यक्ति दुःख नहीं कहते । तुम्हारे सुख से दूसरे को सुख नहीं मिलता । इस घटना से जब तुम्हें दुःख होता है और तुम उस घटना से मोह करने लगते हो, तभी दुःख होता है । इसका अर्थ है- दुःख या सुख मन का स्थायी भाव नहीं है, यह हवा के झोंके की तरह आता और जाता रहता है । जब तक तुम इस हवा के झोंके को पकड़े रहोगे, तुम्हें दुःख का अनुभव होता रहेगा ।

मेरे भाई! मेरा और तुम्हारा जो सम्बन्ध है, वह पूर्णतः अस्थायी है । जब मैं चला जाऊँगा, तब तुम्हारे मन में मेरी केवल याद रहेगी । याद रहना कोई स्थायी कारण नहीं है । जीवन में बहुत अच्छी बुरी बातें याद रहती हैं । जो सम्बन्ध टूट जाय, वह सत्य नहीं होता । हमारे पिताजी बड़े प्रिय थे, वे चले गये । अब उनके कर्मफल के अनुसार दूसरी योनि में उनका जन्म होगा अथवा वे मोक्ष प्राप्त करेंगे । इस रहस्य को हम नहीं

जानते, उन्हें अगर मोक्ष मिल गया, तब तो, वे परमतत्त्व में मिल गये । अगर दूसरी योनि में जन्म हुआ तो, फिर वहाँ उनका एक अलग संसार बसेगा, उस योनि में भी उनसे सम्बन्ध रखने वाले और भी लोग पैदा होंगे । वे भी उन्हें पुत्र, पिता और भाई मानने लगेंगे । उस सम्बन्ध के सामने हम उनके अतीत के सम्बन्धी हो जाऐंगे । यह क्रम निरन्तर चलता रहता है । तुम जिस राम को अपने प्राणों से प्रिय समझ रहे हो, सम्भव है पूर्व जन्मों में तुम्हें ऐसा प्रिय भाई और मिला होगा । सम्भव है कि पूर्व जन्म में हम भाई नहीं रहे हों, हमारा कोई दूसरा ही सम्बन्ध रहा हो । हम शत्रु भी हो सकते हैं, कुछ नहीं कहा जा सकता । यह सब समझना प्रकृति का काम है । हमलोग तो, निमित्त प्रकृति के हाथों का खिलौना हैं । जिस प्रकार रंगमंच पर पात्र अभिनय करने आता है और वह अभिनय में वही करता है, जो उसे करने को कहा जाता है । इसलिए मेरे भाई! इस मोह बन्धन को छोड़ो । केवल यह भाव मन में रखो कि यहाँ किसी के करने से कुछ नहीं होता, सब कुछ प्रकृति कर रही है । प्रकृति यह सब खेल खेल रही है । जिस दिन तुम्हारे मन में ऐसा भाव आ जाएगा, उस दिन तुम्हें कभी कोई दुःख नहीं होगा । दुःख, सुख, जीवन-मरण के लिए जब तुम जिम्मेवार नहीं हो तो, दुःखी होने का कोई कारण ही नहीं है । सागर में तूफान आता है, उससे बहुत जीव नष्ट हो जाते हैं, भूकम्प आता है, उससे बहुत नगर तबाह हो जाता है । जब इन घटनाओं के लिए तुम जिम्मेवार नहीं हो तो, तुम्हें दुःखी होने का क्या कारण हो सकता है? घटनाएं प्रकृति के कारण होती हैं, इनके लिए तुम्हारा दुःखी होना उचित नहीं है ।"

"मेरे भाई! मनुष्य अच्छा कर्म करता है तो, अच्छा फल पाता है । बुरा कर्म करता है, गन्दा और अनैतिक आचरण करता है तो, उसका जीवन नाश होता है, उसके नाश के लिए वह व्यक्ति स्वयं जिम्मेवार है, फिर दुःखी होने से क्या फायदा । तुमने रावण का नाश होते हुए देखा, उसने स्वयं ऐसा आचरण किया, जिसके लिए उसे नाश होना पड़ा । जब उसके बुरे आचरण को कोई रोक नहीं सका तो, उसके नाश से दुःखी होना, कैसे उचित है ।

एक बात और समझ लो, प्रत्येक अच्छे काम के किसी कोने में बुरा भी छिपा रहता है और बुरे काम में अच्छा भी छिपा रहता है । जैसे- जहाँ प्रकाश है, वहाँ अंधकार भी है, सुख है तो, वहाँ दुःख भी है । देवता है तो, वहाँ दानव भी है । जीवन में केवल सुख है, दुःख नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । इसलिए सुख और दुःख दोनों

को प्रकृति का वरदान मानकर समभाव से जीवन में उतारना ही सम्यक् और समग्र जीवन है । क्योंकि कभी भी जीवन एक पक्षीय नहीं होता । जीवन अनेक परिवेशों का मेल है । मन में ऐसे ही भाव पैदा करो, सब कुछ परमात्मा का मानकर स्वीकार करो, तभी जीवन सार्थक बनेगा ।"

श्रीराम की बातें सभी लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे । प्रवचन के एक-एक शब्द को सभी लोग मन में उतार रहे थे । श्रीराम के चुप होते ही सभी लोग थोड़ी देर के लिए शान्त और मौन हो गये । लगता था श्रीराम की एक-एक बात को सभी लोग अपने अन्तर्मन में उतार रहे थे । तभी भरतजी ने मौन तोड़ते हुए कहा-

"हे परमात्म पुरुष! दिव्य आलोक से विभूषित प्रकृति और पुरुष को उत्पन्न करने वाले, इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्राण स्वरुप बसने वाले, जगत् के आदिकारण, मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ । मैं अज्ञानी, अभी तक आपको अपना भाई मानता था, मेरा वह अज्ञान अब दूर हो रहा है । आपने जीवन और जगत् के विषय में जो परम उपदेश दिया, उससे जीवन का अन्धकार नष्ट हुआ । हम तो, यही समझते थे कि यह संसार ही सब कुछ है, लेकिन आपने आज स्पष्ट रूप से बता दिया कि यह संसार तो, मन में विकारों की अभिव्यक्ति है । मन में अच्छे विचार आते हैं तो, यह संसार अच्छा दिखता है, बुरा विचार आता है तो, बुरा दिखता है । लेकिन प्रश्न है कि मन में बुरे विचार आते क्यों हैं? इस संसार में संत भी हैं, दुष्ट भी हैं, आपकी तरह सत्पुरुष भी हैं तो, रावण की तरह दुराचारी भी हैं । कोई राजकुमार है तो, कोई दीन-हीन निर्धन है । इसका क्या कारण है?"

भाव-विभोर भरत की बातें सुनकर श्रीराम ने कहा- "मेरे प्रिय भाई! इस जीवन में दो तरह के कर्मफल प्राप्त होते हैं । पूर्वजन्म के कर्मों का जो फल, कारण शरीर में सुरक्षित रहता है । वह इस जीवन में फल बनकर आता है । उसी के अनुरुप कोई सद् प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है और कोई दुष्ट प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है । दूसरा, जो इस जीवन में क्रियमाण कर्म को करके फल प्राप्त करता है, क्रियमाण कर्म से वर्तमान जीवन प्रभावित होता है । इसी कर्म से देखते-देखते व्यक्ति विद्वान् अथवा धनी बनता है । पूर्वजन्मों के फल जो कारण शरीर में संचित रहते हैं, उसी के परिणामस्वरुप मनुष्य जन्म लेता है । यही कारण है कि कुछ लोग राज परिवार में जन्म लेते हैं और कुछ लोग निर्धन परिवार में । राजपरिवार में जन्म लेने के लिए जीव को प्रतीक्षा भी

करनी पड़ती है और उचित गर्भ का चुनाव भी करना पड़ता है । उचित गर्भ न मिलने पर जीव को अनन्तकाल तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है । क्योंकि सभी गर्भ में सभी जीव प्रवेश नहीं कर सकता । कभी-कभी गलत जीव पवित्र गर्भ में प्रवेश कर जाता है तो, दुष्टात्मा संतान पैदा होती है । ऐसा अनेक बार हुआ है कि किसी संत के घर में दुष्टवृत्ति वाला व्यक्ति पैदा हो जाता है ।

मेरे भाई! तुम्हारे जैसा संत पिताश्री की तपस्या और मंझली माता के पुण्यफल से ही इस जगत् में आया है । अगर तुम्हारा कर्म सात्विक बना रहा तो, तुम और अधिक दिव्यता ग्रहण करोगे । और अगर तुम सत्कर्म से भटक गये तो, नीचे की योनि में जाओगे । यह प्रकृति का नियम है । पूर्वजन्म के अच्छे फल के परिणामस्वरुप जीव अच्छे कुल में जन्म लेता है । लेकिन उसे वर्तमान जीवन में भी उसी नैतिकता का पालन करते रहना पड़ता है । दूसरी और निर्धन परिवार में पैदा होने वाला व्यक्ति भी अपने श्रेष्ठ कर्मों के प्रभाव से नाम, यश, धन और सुख प्राप्त कर सकता है । ऐसा प्रायः देखा जाता है कि गरीब एवं अनपढ़ परिवार में जन्म लेकर मनुष्य अपने कर्मों से समाज में श्रेष्ठ व्यक्ति बन सकता है और सम्पन्न परिवारों में जन्म लेकर भी अपने अकर्म के कारण निर्धन बन जाता है । इसलिए जन्म लेते समय पूर्वजन्म का फल प्रभावित रहता है, लेकिन जन्म के बाद वर्तमान कर्म ही मनुष्य के जीवन की दिशा तय करता है ।"

विशेष प्रसंग

(ऐसा शास्त्रों का मत है कि जन्म लेने के लिए अनन्त आकाश में जीवात्मा व्याकुल रहती है और वह कोशिश करती है कि वह गर्भ में प्रवेश कर जाए, ताकि वह जन्म ले सके । लेकिन इनमें जो दिव्य आत्माएं हैं, वे गर्भ का चुनाव करती हैं । ऐसा भी बताया जाता है कि जब माता पवित्र भाव से दिव्य आत्माओं का स्मरण कर गर्भ धारण करती हैं और उनका आह्वान करती है तभी कोई पवित्र आत्मा माँ के गर्भ में प्रवेश करती है । इसीलिए सबसे पहला संस्कार गर्भधारण संस्कार माना गया है । इसी विज्ञान से माता-पिता अपने सोने के कमरे में गुरुजन एवं दिव्य पुरुषों के चित्र लगाते हैं, ताकि उन चित्रों का प्रभाव गर्भ में आने वाले और गर्भ में पल रहे जीव पर पड़े ।)

मेरे प्रिय भाई! इस समस्त ब्रह्माण्ड में दिव्य शक्तियाँ और दुष्ट शक्तियाँ दोनों विद्यमान हैं । क्योंकि दोनों से प्रकृति का संतुलन बनता है । जो संत पुरुष अपनी साधना से दिव्य शक्तियों को आमंत्रित कर अपने में उतार लेते हैं, वे दिव्य पुरुष बन जाते हैं और जो विध्वंसकारी शक्तियों को उतार लेते हैं, वे राक्षस बन जाते हैं । इस ब्रह्माण्ड में सब कुछ विद्यमान हैं । हम जिसे प्राप्त करना चाहते हैं, वह हमें प्राप्त हो जाते हैं ।

हे भाई! इस जीवन में जो सफलता चाहता है । यश, मान, धन, विद्या, वह जो भी चाहता है, उसे अवश्य ही मिलता है । लेकिन उसे निष्ठापूर्वक चाहना पड़ता है । कोई व्यक्ति असफल, दुःखी या गरीब इसलिए बनता है कि वह सफल होना, धनी होना और सुखी होना नहीं चाहता । इसलिए जीवन में चाहना महत्त्वपूर्ण है । तभी उसके क्रियमाण कर्म का फल प्राप्त होगा ।

भरतजी ने पूछा- "हे परमात्मपुरुष! हम सबों का बड़ा सौभाग्य है कि हम आपके निकट बैठे हैं । आप तो विराट हैं, अगण्य हैं, अनन्त हैं । आप केवल यहीं कैसे हो सकते हैं, क्योंकि अगर आप यहाँ हैं तो, ब्रह्माण्ड के अन्य कणों में, अन्य स्थानों पर कौन है? इसलिए जो मेरा भैया बनकर सामने बैठा है, वह कौन है? मैं मोहवश भ्रमित हो रहा हूँ । इसलिए हे अनन्त! आप मेरे मन के इस मोह का अन्त करें । आज तक जो मेरा बड़ा भाई था, वह कौन था? और आज जिसे मैं देख रहा हूँ, वह कौन है? कृपया मेरे मन के भ्रम को नष्ट कर, मुझे ऐसी शक्ति दें कि मैं आपको देख सकूं ।"

भरत के प्रश्न सुनकर श्रीराम ने मुस्कुराकर कहा- "भरत! मैं तुम्हारा भाई बनकर आया हूँ, यह सत्य है और मैं तुम्हारा भाई नहीं हूँ, यह भी सत्य है । दोनों बातें एक साथ सत्य हैं और दोनों बातें एक साथ असत्य भी हैं । मैंने शरीर धारण किया है, इसलिए तुम्हारा भाई हूँ और मैं शरीर नहीं हूँ, इसलिए तुम्हारा भाई नहीं हूँ । बचपन से जो राम तुम्हारे सामने था, वह शरीर के कारण था । जब तुम शरीर के भीतर देखोगे तो, तुम्हारा भाई वहाँ नहीं मिलेगा ।

भरत! यह पूरा ब्रह्माण्ड तत्त्व से भरा है और तत्त्व का कोई रूप नहीं होता । पदार्थ स्थूल है, लेकिन पदार्थ का भी सूक्ष्म रूप विभु है। अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि जो दिखता है, वह क्या है? जिस प्रकार शरीर की छोटी से छोटी धमनी अथवा कोशिका पूरे शरीर से जुड़ी रहती है, उसी प्रकार एक-एक कण समस्त विराट ब्रह्माण्ड से जुड़ा रहता है । इसलिए कहा जाता है-

यत् पिण्डे तत् ब्रह्मांडे

छोटा से छोटा कण कहीं अन्यत्र बिखरा रहता है । लेकिन वह ब्रह्मांड को संचालित करने वाली परमसत्ता से जुड़ा रहता है । ब्रह्माण्ड के कण, द्रव्य और वाष्प दिखने में भिन्न-भिन्न दिखते हैं, लेकिन वे भिन्न नहीं हैं । एक ही स्वरुप के अनेक प्रतिबिम्ब हैं ।

मनुष्य, जीव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधा, चर-अचर, द्रव्य, वाष्प के तात्त्विक विश्लेषण में कोई भेद नहीं होता । प्रत्येक ठोस, द्रव्य और वाष्प है और प्रत्येक वाष्प ऊर्जा है । ऊर्जा भी पदार्थ की अन्तिम इकाई नहीं है । ऊर्जा ताप, विद्युत् और प्रकाश का योग है । ताप, विद्युत् और प्रकाश की उत्पत्ति शून्य से होती है । कोई भी शून्य न पदार्थ है, न तरल है, न वाष्प है । वह केवल शून्य है । शून्य का अर्थ है जहाँ कुछ भी न हो । जहाँ कुछ भी नहीं, वहाँ परमसत्ता है । क्योंकि वस्तु से वस्तु पैदा होती है । वस्तु से अवस्तु पैदा नहीं होती । जिस प्रकार दो शून्य को जोड़ने से कोई अंक पैदा नहीं होता । शून्य से शून्य ही पैदा होगा । ज्योंही एक या दो अंक पैदा हो जाता है तभी अंकगणित शुरु हो जाता है । शून्य से अंकगणित शुरू नहीं होता, न गिनती शुरु होती है । उसी प्रकार संसार शून्य से पैदा हुआ है, वह केवल दृष्टि भेद है, भ्रम है । अपदार्थ से पदार्थ पैदा नहीं हो सकता । शून्य से शून्य ही पैदा होता है ।"

विशेष प्रसंग

(संसार की वस्तुओं को हम देखते हैं । लेकिन इस देखने पर भरोसा करने वाला भ्रम में पड़ जाता है । यह संपूर्ण संसार केवल भ्रम-पूर्ण है । क्योंकि आईन्स्टीन ने पदार्थ को झुठलाते हुए कह दिया कि जो पदार्थ तुम देखते हो, जो संसार तुम देखते हो, वह ऊर्जा है । तुमसे देखने में भूल हो रही है । दरअसल पदार्थ है ही नहीं, केवल ऊर्जा है । ऐसा विज्ञान मानता है । विज्ञान और अध्यात्म दोनों इस बिन्दु पर सहमत हैं कि संसार है ही नहीं । जिसे हम संसार कहते हैं- पेड़-पौधा, पहाड़, जीव सब का सूक्ष्म रूप ऊर्जा है । जिसे हम पहाड़ कहते हैं, वह तो, ऊर्जा का घनीभूत रूप है । इस संसार की वस्तुओं को हमने नाम दिया है, पहाड़ का चाहे जो भी नाम दो। पहाड़ कहो, गिरि कहो, माउण्टेन कहो, पर्वत कहो । इस नाम में क्या रखा है? नाम तो, तुम्हारा दिया हुआ है । जब तुम स्वयं प्रामाणिक नहीं हो तो, तुम्हारा दिया हुआ

नाम प्रामाणिक कैसे हो सकता है? तुम तो अभी तक स्वयं निश्चित नहीं हो सके हो कि पहाड़ को पर्वत कहें, गिरि कहें या माउण्टेन। इसीलिए तुम्हारी बातों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। तुम तो अपनी दासी को लक्ष्मी कहते हो, किसी धनपति को गरीबदास कहते हो, उसी प्रकार संसार की वस्तुओं को तुमने नाम दिया है। पानी को पानी, रोटी को रोटी, यह सब नाम उसने दिया है जो सवयं अस्तित्वहीन है और जैसा मैंने कहा कि अस्तित्व से कोई अस्तित्व ही पैदा होगा तो, इस विराट महाशून्य ब्रह्मांड से कोई ठोस पैदा कैसे हो सकता है?

विज्ञान भी कहता है कि हमारी आँखें जो देखती हैं, वही निर्णय करती हैं कि यह द्रव्य है या ठोस है। हमारी आँखें स्वयं झूठा रिपोर्ट संग्रह करती हैं। पानी भरे ग्लास में लकड़ी टेढ़ी दिखती है। मरुभूमि में जल दिखता है। खुरदुरे चेहरे में सौन्दर्य दिखता है। हड्डियों के ढाँचे में प्रेमिका दिखती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि तुमने मान लिया है कि यह सौन्दर्य है। यह मेरी प्रेमिका है। यहाँ तुम्हारे मानने पर निर्भर करने लगा है। तुम्हारा मानना कितना प्रामाणिक है उसे तुमसे अधिक कौन जान सकता है। जब तुम अपने नौकर को लखपति अथवा करोड़ीमल कह सकते हो तो, तुम्हारी बात कितनी प्रामाणिक है, इसकी व्याख्या तुम स्वयं करो।

जो दिखता सो सत्य नहीं, ज़ो सत्य है दिखता नाहीं।
विष से भरा स्वर्णघट, सेवत जीवन जाहीं॥

यह सामान्य नियम है कि हमारे शरीर का एक-एक नस, धमनी अथवा कोशिका शरीर के समस्त अंगों में रक्तसंचार कर पोषण करती है। शरीर के करोड़ों बाल, अरबों रोयें भी मूल शरीर से रक्त संचार के कारण जुड़े हुए हैं। यहाँ तक कि मृतप्राय नख भी शरीर से भोजन लेता है। इस तरह शरीर के समस्त अंग हमारे मस्तिष्क से जुड़े हुए हैं, उसी प्रकार हमारा मस्तिष्क भी उस अदृश्य परमसत्ता से जुड़ा हुआ है। मस्तिष्क के लगभग 10 अरब न्यूरोन्स तभी तक संचालित होते रहते हैं, जब तक ब्रह्मांड के प्राणतत्त्व से उसे ऊर्जा मिलती रहती है। जब कभी किसी कारण से उस ब्रह्माण्ड के "ग्रीड पावर स्टेशन" से ऊर्जा का प्रवाह आना बंद हो जाता है तो, न्यूरोन्स काम करना बन्द कर देता है, जिससे रक्त में जो जीवाणु हैं, वह मर जाता है। तभी हम कहते हैं कि मनुष्य मर गया। इसीलिए यह सम्पूर्ण जीव-जगत् और

पदार्थ उस परमसत्ता, जो महाशून्य है, उससे तेल की धार की तरह जुड़े हुए हैं। इसलिए यह कहना कि यह जीव है, यह पदार्थ है, गलत है। विज्ञान कहता है कि पदार्थ उसे कहते हैं जिसमें प्राण न हो। लेकिन दुनिया में कोई कण ऐसा नहीं है, जिसमें प्राण न हों। अणु के नाभिक में भी कम से कम तीन लाख पचास हजार ऊर्जा की बात कही जाती है, ऐसा विज्ञान का मानना है। विज्ञान यह भी मानता है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कास्मिक धूल से बना है। जैसा कि प्राचीनकाल में ही हमारे संतों ने कहा था कि यह ब्रह्माण्ड चिदाकाश से बना है।

इसलिए सभी पदार्थों की उत्पत्ति विचार से माना जाता है। यह विचार ही है, जो पहले शून्य रूप है, भवरूप या अव्यक्त है। हमारा भव ही जब घणीभूत होकर मूर्तिमान् बनता है, तभी पदार्थ की उत्पत्ति होती है। जैसे- सड़क पर पड़ी रस्सी को सांप समझ लेते हैं, लेकिन फिर विवेक कहता है कि यह सांप नहीं रस्सी है और तब हम मान लेते हैं। उसी प्रकार अविवेक कहता है, यह संसार पदार्थ है, विवेक कहता है- ऊर्जा है। इसीलिए हमारे जीवन में भ्रम की स्थिति बनी रहती है। अगर ऐसा नहीं होता तो, जिससे हम आज प्रेम करते हैं, उससे कल घृणा कैसे कर सकते हैं। अब पता चलता है कि जिसे तुम प्रेम कर रहे थे, वह गलत था। वह प्रेम नहीं था, वह अप्रेम था। वह कपट, घृणा या स्वार्थ था। यह दोनों अनुभव तुम्हारे अपने हैं। तुमने स्वयं किसी को प्यार किया, अब घृणा कर रहे हो। दोनों जगह करने वाले तुम स्वयं हो, कोई दूसरा नहीं है। यह मान लो कि तुम्हारा प्रेम करना भी झूठा था और तुम्हारी घृणा भी झूठी है। क्योंकि घृणा मन का अस्थायी भाव है और प्रेम स्थायी भाव। अगर प्रेम है तो, केवल प्रेम रहेगा। प्रेम से घृणा का जन्म नहीं हो सकता। स्वार्थ से घृणा का जन्म हो सकता है। इसीलिए प्रेम की कोई परिभाषा नहीं की जा सकती और न प्रेम का अर्थ ही बताया जा सकता है। जिस प्रकार माँ के वात्सल्य प्रेम का अर्थ शब्दों में नहीं बताया जा सकता। क्योंकि शब्द छोटा है, इसे हमने बनाया है। वात्सल्य विराट है, यह शाश्वत है। अतः शब्द के द्वारा इसकी व्याख्या संभव नहीं है। जिस प्रकार व्याकरण में भूतकाल और भविष्यत्काल होता है, लेकिन वास्तविकता में ऐसा नहीं होता। सत्य तो, यह है कि इस ब्रह्मांड में न कोई भूत है, न भविष्य। केवल वर्तमान है। आज जो ब्रह्मांड है, उसका भूत और भविष्य कैसे

बताया जा सकता है । वहती नदी का, जहाँ से नदी बनी है, उसका भूतकाल क्या है? पानी का भूतकाल बर्फ कहा जा सकता है, लेकिन बर्फ का भूतकाल तो, फिर पानी ही हो जाता है । इसलिए परिधि का कोई भूतकाल नहीं होता । भूत, वर्तमान और भविष्य केवल दृष्टिभेद हैं ।)

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक तत्त्व है, दृष्टि भेद के कारण यह विभिन्न रूपों में दिखता है और विभिन्न रूपों में एक ही परमतत्त्व की प्राण ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है । इसलिए यह कहा जाता है, यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड केवल परमात्मतत्त्व है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । हमारे शरीर का रक्त कण, पत्थर, पौधे, फल, जीव-जन्तु, कण-कण केवल स्वरुप के कारण भिन्न दिख रहे हैं, वस्तुतः ऐसा है नहीं । जिस प्रकार समुद्र में लहरें दिखती हैं, यह केवल दिखता भर है । इन लहरों का अपना कोई अस्तित्त्व नहीं है । इसलिए हमारे आचार्यों ने ब्रह्मांड के कण-कण को ब्रह्म माना है । हम सब ब्रह्म ही तो, हैं । विकारों की चर्बी के कारण आँख सत्य को देख नहीं पाती, उसी आँख को परिमार्जित करने की आवश्यकता है । इसीलिए जीवन में आध्यात्मिक चिन्तन आवश्यक है ।

एक तत्त्व है ऊपर नीचे, एक है सकल जहान ।
जीव-जीव में भेद बतावे, वह है मूढ़ महान ॥

एक और उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी । जैसे- जीव शुक्र और रज के योग से बनता है । शुक्र और रज भी ऊर्जा है । लेकिन दोनों के मिलते ही जीव बन जाता है । शुक्र हमारे जींस से बनता है । जींस ही शुक्र या रज बनाता है । जब दोनों का मेल होता है तो, तात्त्विक परिवर्तन हो जाता है । मतलब पदार्थ बन जाता है । जब उसमें पंच महाभूत मिल जाते हैं तो, पदार्थरूपी शरीर खड़ा हो जाता है । इसका अर्थ हुआ कि अपदार्थ से पदार्थ बन गया । जब पदार्थ का नाश होता है, फिर अपदार्थ बन जाता है । ऐसा अध्यात्म का मत है । लेकिन इधर आकर विज्ञान भी कहने लगा है कि पदार्थ भी जब अतिसूक्ष्म हो जाता है तो, ऊर्जा बन जाता है और फिर वही ऊर्जा पदार्थ बन जाती है । जैसे- ताप की अन्तिम इकाई सौ करोड़ डिग्री सेल्सियस मानी जाती है । जब ताप सौ करोड़ को पार कर जाता है तो, फिर वह पदार्थ बन जाता है । क्योंकि आगे कोई उपाय नहीं है । शायद इसीलिए आईन्सटीन ने अपने

क्वाण्टम सिद्धान्त में कहा कि प्रत्येक वस्तु तरंग है। जिस प्रकार पदार्थ दिखता अवश्य है, लेकिन वह ऊर्जा है। क्योंकि हमने देखने की शक्ति को स्थूल बना दिया है। जब तक हम देखने की स्थूलता को हटाते नहीं, तबतक पदार्थ दिखेगा, ऊर्जा नहीं दिखेगी। मूलतत्त्व को देखने के लिए आँख की स्थूलता को हटाना पड़ेगा। हमारी आँखें समय और पदार्थ में बंध गई हैं। जिस कारण हम सत्य को नहीं देख पाते। उसी स्थूलता को हटाने का एक उपाय यह भी है कि हम स्वयं में अन्तः दृष्टि पैदा करें। यह तभी होगा, जब हम अपने मस्तिष्क को समय और स्थान से मुक्त कर लें। जीवन शरीर और ब्रह्म शरीर में स्थूलता के कारण ही अंतर दिखता है। इसीलिए आईन्सटीन कहते हैं कि अगर जीव प्रकाश की गति से भ्रमण करे तो, समस्त ग्रह-नक्षत्रों की यात्रा के पश्चात् भी उम्र नहीं बढ़ेगी। क्योंकि सूक्ष्म जीव क्वाण्टम किरण की गति से चलता है। उसकी फ्रीक्वेंसी एक अरब हर्ट्ज की होती है। ऐसा विज्ञान का मानना है लेकिन अध्यात्म कहता है, शून्य में गति करने से क्या फायदा। गति से कहाँ जाना चाहते हो? गति का प्रस्थान और अन्त हवा है, जहाँ तुम खड़े हो। क्योंकि सब कुछ वर्तुल में घूम रहा है। इसीलिए तुम ब्रह्मांड हो, ऐसा बोध पैदा करो। तुम्हारा विस्तार असीम हो जाए। इसीलिए हमारे संत इस शरीर से सार्वलौकिक और सार्वकालिक बन गये। कोई भी व्यक्ति अगर ऐसा प्रयास करे तो, वह विराट बन सकता है। इसी दृष्टि से स्वयं को परिमार्जित करते रहना चाहिए।)

"भरत! दुनिया के प्रत्येक जीव, अस्तित्व, प्रकृति, ब्रह्माण्ड, दिव्यप्राण अथवा महाशून्य से जुड़ा हुआ है। इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति महाशून्य से होती है और फिर उसी महाशून्य में विलीन हो जाती है।"

विशेष प्रसंग

(वैज्ञानिकों का मानना है कि सृष्टि की उत्पत्ति को तर्क से जानना सम्भव नहीं है। काफरा नामक वैज्ञानिक ने लिखा है कि सृष्टि का विकास हुआ है। कुछ लोग तो, यह भी कहते हैं कि पूरे ब्रह्माण्ड में केवल जल ही जल था। एक दिन भयंकर विस्फोट हुआ। जल के ऊपर कुछ ठोस पदार्थ जमने लगा, फिर पृथ्वी बन गई। लेकिन कोई भी व्यक्ति प्रमाण सहित कुछ भी बता नहीं सकता है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किसी अदृश्य सत्ता से हुई है। कुछ लोग पृथ्वी की उत्पत्ति

कास्मिक धूल (चिदाकाश) से मानते हैं । यह कास्मिक धूल भी महाशून्य से प्रकट हुआ है । पता नहीं किस वैज्ञानिक उपकरण से हमारे संतों ने उपनिषद में यहाँ लिखा-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

महाशून्य के सम्बन्ध में एक और विचार लोगों के मन में उठ रहा है और इससे महाशून्य की प्रामाणिकता और बढ़ जाती है कि जब कोई पदार्थ है नहीं, कोई ठोस वस्तु का अस्तित्व नहीं है, इस संसार में कोई पहाड़, लोहा, पेड़-पौधा आदि कोई भी वस्तु जब ठोस नहीं हैं तो, निश्चित रूप से वह ऊर्जा है और ऊर्जा का अर्थ है अस्तित्वहीन । स्थूल की खोज हम कर सकते हैं, उसकी पहचान कर सकते हैं, लेकिन जो स्थूल नहीं है, कोई आकार प्रकार नहीं है, उसकी पहचान स्थूलता के आधार पर नहीं हो सकती । परमात्मा अगर स्थूल नहीं है तो, वह निश्चित रूप से अतीन्द्रिय और सूक्ष्म से भी बढ़कर है । दरअसल शून्य का अर्थ होता है, जिसका कोई अस्तित्व न हो । इस संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ हैं, एक है अणु दूसरा है विभु । अणु की जाँच तो, हम कर सकते हैं लेकिन विभु की जाँच नहीं कर सकते । इसलिए हमारे प्राचीन संतों ने परमात्मा को विभु कहा ।

यह सारा ब्रह्माण्ड उसी महाशून्य की अभिव्यक्ति है । वहीं से प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है, जिससे पंचभूतों वाले जीव स्वरुप ग्रहण करते हैं । यह जो संसार दिख रहा है, वह सब उसी महाशून्य की अभिव्यक्ति है, जिसका कोई रूप नहीं है । शायद इसीलिए फ्राँसिस थाम्पसन ने तो, यहाँ तक कह दिया कि अगर तुम इस पृथ्वी पर से एक फूल तोड़ते हो तो, उससे अंतरिक्ष भी प्रभावित होती है । क्योंकि ब्रह्माण्ड में कोई चीज अलग नहीं है । सूक्ष्मता के कारण सब कुछ जुड़ा हुआ है । जिस दिन हम अपनी स्थूलता को छोड़ देंगे, उस दिन परमात्मा से मिल जाएंगे । अपनी स्थूलता के कारण ही हम परमात्मा से अलग हैं । एक बार आईन्स्टीन ने कहा था कि अगर हम ऐसा वाहन बना लें जो प्रकाश की गति से चले तो, मनुष्य यात्रा करता रहेगा, लेकिन उसकी आयु नहीं बढ़ेगी । यह सब इसी स्थूलता के कारण ही हमारी परेशानी बढ़ रही है । जिस दिन हम समय और स्थान से मुक्त हो जाएंगे, उसी दिन महाशून्य से आसानी से मिल सकेंगे ।

यह प्रकृति कितना विराट है, इसकी विराटता की कल्पना से ही मन कांप जाता है। आजतक हमलोग जानते रहे हैं कि हमारा सूर्य सबसे विराट है। लेकिन जब यह पता चला कि ऐसे हजारों सूर्य निहारिका में कहीं छिपे हुए हैं और ऐसी हजारों निहारिकायें आकाशगंगा के किसी कोने में झांक रही हैं, यही नहीं, आकाशगंगा की भी संख्या असंख्य बताई जाती है। इन सबों में जो शक्ति प्राप्त होती है, उसी को तो, ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, गॉड या महाशून्य कहा जाता है। हमारा एक सूर्य ही इतना विराट है, जो अपने ताप से इस पृथ्वी को झुलसा रहा है तो, दूसरे और सूर्य क्या कर रहे होंगे? सूर्य में इतना ताप होना एक अभूतपूर्व घटना है। विज्ञान के लोग कहते हैं कि सूर्य हीलियम नामक गैस से जल रहा है। लेकिन यह हीलियम सूर्यमंडल पर कहाँ से आता है? इसके लिए कहा जाता है कि अंतरिक्ष में हाइड्रोजन का अपार भंडार पड़ा है। सूर्य पर इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन दोनों की उपस्थिति है, जो प्रोट्रॉन में बदल जाता है। फिर हाइड्रोजन और हीलियम के योग से ताप का विस्फोट होता है। सूर्य पर इतना ताप है कि अपने ताप का 220 करोड़वाँ अंश ही पृथ्वी को देता है। इस तरह का अनुमान है कि दस अरब इक्कीस कि.वाट ताप वह पृथ्वी को देता है। इतना ताप अगर एक सूर्य देता है तो, लाखों सूर्य के जो मालिक हैं, उसके पास कितनी शक्ति होगी?

अंतरिक्ष में एक ऐसे हाइड्रोजन गैस का क्षेत्र बना हुआ है कि जिसमें दस लाख सूर्य के बराबर का हाइड्रोजन है। यह हाइड्रोजन बेल्ट हमारी आकाशगंगा का चार करोड़ वर्ष से पीछा कर रहा है। यह हाइड्रोजन बेल्ट ग्यारह हजार प्रकाश वर्ष की लम्बाई में फैला हुआ है। अभी तक वह आकाशगंगा से आठ हजार प्रकाशवर्ष की दूरी पर है और यह 150 मील प्रति सेकेंड की गति से आगे बढ़ रहा है। समझ में नहीं आता कि इस ब्रह्माण्ड में इतना बड़ा रहस्यमय खेल कौन खेल रहा है? निश्चित रूप से वह कोई रूप वाला नहीं होगा, अरूप वाला ही होगा। तभी तो, वह इतना विराट खेल, खेल पा रहा है।)

"जीव उसी महाआकाश और महाशून्य से अभिव्यक्त होता है। इसीलिए उसे व्यक्ति कहा जाता है। पहले वह अरूप था, अब व्यक्त हो चुका है। महाशून्य का अंश जब महाभूतों के सम्पर्क में आता है तो, वही विभिन्न प्रकार के आकार ग्रहणकर

जीव बन जाता है । और जब भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है तो, जीव, बन्धन मुक्त होकर पुनः महाशून्य में विलीन हो जाता है । जैसे- समुद्र से एक लोटा पानी निकाल लिया जाय तो, वह पानी उस लोटे का हो जाता है । लोटा जब फूट जाए तो, पुनः वह पानी समुद्र का पानी बन जाता है । जीव का अर्थ है रूप परिवर्तन । जब तक पंच भौतिक तत्त्व शरीर स्वरुप रहता है, तब तक जीव प्राणरूप में शरीर में बना रहता है और शरीर के नष्ट होते ही वह ब्रह्म बन जाता है । यहाँ भी कर्मों के अनुसार जीव को स्वरुप मिलता है ।"

श्रीराम का उत्तर सुनकर भरत ने कहा- "हे परमात्म स्वरुप! आप मुझे बतायें कि अभी हम आपको देख रहे हैं, लेकिन सो जाने पर देखना बन्द हो जाता है । सोते समय हम स्वप्न देखते हैं । यह स्वप्न क्या है? जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में अगर जाग्रत सत्य है तो, स्वप्न और सुषुप्ति क्या हैं? मैं भ्रम में हूँ कि जाग्रत सत्य है या स्वप्न सत्य है ।"

श्रीराम ने कहा- "मेरे भाई! जाग्रत भी असत्य है और स्वप्न भी असत्य है । क्योंकि दोनों अवस्था अस्थायी हैं, क्षणिक हैं । अब प्रश्न है कि जब दोनों अस्थायी और क्षणिक हैं तो, हमारे लिए आवश्यक क्यों हैं? पहले यह जान लो कि "हमारे" का अर्थ शरीर है । शरीर के लिए दोनों आवश्यक हैं । अगर हमारे का अर्थ आत्मा है तो, न जाग्रत सत्य है, न सवप्न सत्य है । क्योंकि आत्मा इन अवस्थाओं से परे है ।

तुम्हारे मन में जो भ्रम है, वह शरीर के कारण है । शरीर को जाग्रत रहना पड़ता है और उसे स्वप्न में भी जागना पड़ता है, यह शरीर का धर्म है । अब इस बात को समझ लो कि जाग्रत अवस्था में हम संसार को देखते हैं, अनुभव करते हैं । शरीर से दिव्य आलोक का अनुभव नहीं किया जा सकता । क्योंकि शरीर स्थूल है और स्थूल, सूक्ष्म का अनुभव नहीं कर सकता । इसके लिए शरीर के भीतर और मन के पार जाना होता है । जाग्रत अवस्था में हम इन्द्रियों का बोध करते हैं । सोने से इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और हमारा सूक्ष्म शरीर जाग्रत हो जाता है । तभी हम उन बातों का अनुभव करने लगते हैं, जिसे हम स्थूल शरीर से अनुभव नहीं कर पाते । सूक्ष्म शरीर से ही हम अपूर्ण इच्छाओं का भोग करने लगते हैं । यही स्वप्न है । सुषुप्ति

में जीव प्रगाढ़ निद्रा में प्रवेश कर जाता है । निद्रा शरीर के लिए आवश्यक है । प्रायः कहा जाता है कि सोने के बाद मन हल्का हो जाता है, ऐसा इसलिए नहीं होता कि मात्र थकान मिटती है । सोते समय हमें और भी बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है । जाग्रत अवस्था में हम काम करते हैं, जिससे शरीर थकता है, यह थकान केवल सो जाने से नहीं मिटती । सोते समय हमारा सूक्ष्म शरीर, अंतरिक्ष के ऊर्जा केन्द्र से जुड़ जाता है और वहीं से वह ऊर्जा ग्रहण करता है ।"

विशेष प्रसंग

(आज का विज्ञान कहता है कि जब हम काम करते हैं तो, केवल शरीर ही नहीं थकता, मन भी थक जाता है । थका हुआ मन और शरीर अंतरिक्ष से ऊर्जा ग्रहण कर पुनः स्वस्थ बन जाता है । जिस प्रकार, हमारे मोबाइल सेट की बैटरी जब समाप्त हो जाती है तो, हम बिजली के मेन लाइन से उसे जोड़कर चार्ज करते हैं । फिर वह शक्तिशाली मोबाइल बन जाता है । उसी प्रकार, शरीर जब थक जाता है तो, उसे पुनः शक्ति प्राप्त करना पड़ता है । यही विज्ञान का नियम है ।

अध्यात्म का जो महाविज्ञान है, वह कहता है कि इस महाशून्य अनन्त आकाश से प्रत्येक जीव जुड़ा हुआ है–

दो०

हर सांस तेरा प्रान है प्रान जग की सांस है ।
इस जगत की धड़कनों में राम तेरा वास है ।।

प्रत्येक जीव सांस के द्वारा अनन्त ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है । जब तक सांस ब्रह्माण्ड से जुड़ी रहती है, तबतक हम जीवित रहते हैं –

दो०

जब जनम सनातन है मेरा, विभु का विस्तार है तन मेरा ।
कैसे लघुता में बांधूँ मैं, जब अखिल विश्व तन मन मेरा ।।
अंतरिक्ष से झर-झर बहता, इस जगती के प्राण ।
चतुर जीव छक-छककर पीये, करे आत्मकल्याण ।।

मेरे भाई! शरीर के लिए विश्राम आवश्यक है । इसी विश्राम में स्वप्न घटित होता है । स्वप्न में हमारा मन भटकता है । लेकिन स्वप्न अर्धनिद्रा में ही दिखता है । जब जीव सुषुप्ति में चला जाता है, गहरी निद्रा में चला जाता है, तब स्वप्न नहीं दिखता । इसलिए जब मनुष्य गहरी निद्रा में होता है तो, जगाने पर वह जल्दी नहीं उठता । क्योंकि उसका सूक्ष्म शरीर कहीं दूर ऊर्जा ग्रहण कर रहा है । ज्योंही उसे जगाया जाता है तो, अति सूक्ष्म वेग से उसका सूक्ष्म शरीर लौटता है, तब वह जगता है । इसी प्रक्रिया से हम सोते-जागते रहते हैं ।

हे भाई! संसार का कोई अस्तित्व नहीं है । आत्मा का शरीर से सम्बन्ध भ्रान्ति है । और अविवेक के कारण यह सत्य दिखता है । जैसे- स्वप्न में कोई विपत्ति आती है तो, जगते ही विपत्ति नहीं दिखती । उसी प्रकार, जब जीव इस संसार में आसक्त हो जाता है तो, उसके मन में विभिन्न प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने लगते हैं । वही स्वप्न है । मनुष्य के अंदर जो अहं भाव है, उसी से सुख-दुःख का अनुभव उसे होता है । अहंकार की कोटि से सुख और अहंकार की हानि से दुःख अनुभव होता है । इसलिए सुख-दुःख का सम्बन्ध आत्मा से नहीं है । इसलिए ज्ञानी पुरुष आत्मा और अनात्मा के भेद को समझ लेते हैं । इसके लिए गुरुचरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त किया जाता है । सोना से अलंकार बनता है, लेकिन अलंकार पहले सोना ही रहता है, और अलंकार के नष्ट होने पर भी सोना ही बचा रहता है, यही सत्य है ।

हे भाई! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन अवस्थाओं के तीन गुण होते हैं । सत्व, रज और तम । इसके अतिरिक्त तूरिए अवस्था होती है और अन्त में ब्रह्म तत्त्व ही रहता है ।

हे भाई! जिसका मन स्वस्थ हो जाता है, उसका शरीर भी स्वस्थ रहता है । तभी उसे स्वस्थ कहा जाता है । शरीर में रोग होने से शरीर बीमार हो जाता है और मन में रोग होने से मन में विकृति पैदा होती है । इसलिए उसी व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है, जिसका मन स्वस्थ हो । स्वस्थ का अर्थ है- जो स्व में स्थ हो । जो मूल रूप से अपने में स्थिर हो । जो अपने स्वभाव में जी रहा हो । उस पर कोई भी बाहरी अवगुण आरोपित नहीं हो । मन को स्वस्थ करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अनन्य भाव से प्रभु का चिन्तन करता रहे ।

हे परमात्म पुरुष! आप तो सृष्टि के अनादिकारण हैं । आपको प्राप्त करने का सरल मार्ग क्या है? भरतजी ने दोनों हाथ जोड़कर घुटने पर बैठकर श्रीराम से यह प्रश्न पूछा ।"

श्रीराम ने कहा- "मेरे भाई! मुझे प्राप्त करने के दो मार्ग बड़े ही सरल हैं । एक ज्ञान के द्वारा प्रकृति ओर परमात्मा के रहस्यों को जानकर, मुझमें लय हो जाना । इसी को अद्वैत मार्ग कहते हैं । ज्ञान से यह जान लेना कि केवल ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है । इस मार्ग पर ज्ञानी पुरुष चलते हैं । वे तत्त्व का चिन्तन करते हैं और अपने चिन्तन से प्रकृति के मूल तत्त्व को समझकर उसमें लय हो जाते हैं । और दूसरा, अत्यन्त सरल मार्ग है- अपनी अनन्य, अहैतुकी भक्ति से मुझे प्राप्त करना । ये दोनों मार्ग सीधे मेरे पास आते हैं । ज्ञानमार्ग संतों के लिए उपयुक्त है और भक्ति मार्ग गृहस्थों के लिए उपयुक्त है ।" गृहस्थ अपने परिवार में रहते हुए और परिवार धर्म का निर्वाह करते हुए जब अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर देता है तो, उसके मन में भक्ति घटित होने लगती है । भक्त यह मान लेता है कि उसे जो कुछ भी मिला है, धन, मान, मर्यादा, पुत्र, पत्नी, परिवार सब कुछ परमात्मा का दिया हुआ है । भक्त को यह सब कुछ किसी ने उसे दिया है । वह सब उसका अपना नहीं है । जब उसका अपना कुछ है ही नहीं तो, उससे मोह कैसा? जिस क्षण उसके मन में यह भाव पैदा हो जाता है, उसी क्षण से उसके पाँव भक्ति की ओर बढ़ने लगते हैं । यही भाव महत्त्वपूर्ण है । जब वह मान लेता है कि यह धन-वैभव पुत्र उसका है ही नहीं, सब दूसरे का दिया हुआ है, तब वह कह उठता है-

हे परमात्मा! जब सब कुछ तेरा है तो, मेरे मन में इन वस्तुओं के प्रति आसक्ति क्यों? तुम्हारी वस्तु, तुम्हीं को समर्पित ।

(शास्त्रों में कहा गया है कि **त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितं** । तुम्हारी वस्तु तुम्हीं को समर्पित है । इसलिए भक्त गीत गाता है-

जब सब कुछ तेरा है, क्या लागे मेरा ।

यहाँ तक कि जब प्रभु ने यह शरीर हमें दिया है तो, यह शरीर प्रभु का है । दूसरे की सम्पत्ति पर हक जमाना अन्याय है ।

यह जीवन प्रभु ने दिया है, तुम्हें,
इस दुनिया में सब कुछ मिला है तुम्हें ।
अगर आँखों से भक्ति का जल ढारते,
अब आँसू बहाने से क्या फायदा ।

हे भाई! भक्ति बहुत ही सरल मार्ग है । लेकिन भक्ति में भी थोड़ी सतर्कता चाहिए । शरीर को स्वस्थ और स्वच्छ रखते हुए मन में उठने वाले विकारों को नष्ट करके निष्काम भाव से अपनी समस्त वृत्तियों को मुझमें समर्पित कर भक्ति में प्रवेश करना चाहिए । भक्त के मन में जब मेरी भक्ति जग जाती है तो, उसकी समस्त वासना और कामना सूखी हुई लकड़ी की तरह भक्ति की अग्नि से जलकर नष्ट हो जाती है । पूर्वजन्म के उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । है भाई! मैं संतों की आत्मा हूँ। अनन्य भक्ति और श्रद्धा से ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है । जब भक्त का मन निष्पाप हो जाता है तो, मेरा ध्यान करते ही वह मुझमें रम जाता है, उसकी आँखों से आंसू गिरने लगते हैं, वह मुझे देखकर भाव-विह्वल हो जाता है और तब वह मुझे प्राप्त कर लेता है ।

हे भाई! जब भक्त मुझे ही एकमात्र मान लेता है तो, उसके मन से राग, द्वेष, सुख-दुःख, धन-वैभव, मोह-ममता, स्त्री के प्रति आर्कषण सब नष्ट हो जाते हैं । और वह सर्वत्र ही मुझे देखने लगता है । यही भक्ति का समभाव है ।

राम राज्य में सुख-समृद्धि की वृद्धि

श्रीराम के विवेकसम्मत विचारों से अयोध्या में सुशासन चलने लगा । महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र, च्यवन ऋषि एवं अन्य प्रमुख संतों को बुलाकर श्रीराम राज्य संचालन का विचार-विमर्श करते और उन्हीं के निर्देश से अयोध्या में सारी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था की जाती । श्रीराम का मानना था कि जिन संतों को राज्य के धन और शासन का लोभ न हो, उन्हीं के निर्देशन में राज्य पर शासन चलाना चाहिए । क्योंकि राज्य चलाने वाले अगर स्वयं नियम बनाये तो, राज्य में निष्पक्ष नियम व्यवस्था नहीं चलाई जा सकती । श्रीराम का मानना था कि नियम बनाने वाले एवं राजनीति के सूत्र निर्धारित करने वाले वैसे लोग हों, जिनका स्वयं का आचरण नैतिक

हो और किसी व्यक्ति से प्रभावित न हो । अपने आश्रमों में रहकर राज्य में नीति निर्धारण करने वाले लोग ही राज्य-संचालन का सूत्र तय कर सकते हैं । इसलिए हमेशा श्रीराम ने सिद्ध सन्तों के मार्ग निर्देशन में राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व बनवाए । इसी कारण श्रीराम का राज्यकाल रामराज्य के नाम से जाना जाने लगा ।

श्रीराम ने अपने राज्य में समुचित शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाया । फलतः पूरे राज्य में सुख-शान्ति फैल गई, किसान गीत गाते हुए खेती करने लगे, पशुधन में वृद्धि होने लगी, गांव-गांव के चौपालों में बैठकर लोग श्रीराम की यशकृति का गान गाने लगे । पूरा देश सम्पन्न हो गया । नदियों में जल निरन्तर बहने लगा, वृक्ष लताओं में फल-फूल आने लगे, वृक्षों पर पक्षियों के कलरव सुनाई पड़ने लगे, नई-नवेली महिलायें पनघट पर गीत गाने लगीं । बच्चे गुरुकुलों में पढ़ने लगे । पूरे राज्य में कहीं कोई अशान्ति और उपद्रव की शिकायतें सुनाई नहीं पड़ रही थी । सर्वत्र श्रीराम का जय-जयकार होने लगा ।

राम राज्य की सफलता का एक ही रहस्य था कि पूरे राज्य में संत-महात्माओं द्वारा निर्धारित विधि-व्यवस्था से राज्य का संचालन हो रहा था, जिस कारण लोग इस शासन व्यवस्था को रामराज्य कहते थे । श्रीराम स्वयं प्रतिदिन गुरु वशिष्ठ के निकट बैठकर, उनसे विचार-विमर्श करते और उनके बताए गए निर्देशों को अपने राज्य में लागू करते । इससे पूरे राज्य में उनकी ख्याति फैल गई ।

श्रीराम की तीर्थ यात्रा

एक दिन श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ से कहा-"हे गुरुदेव! आपके आशीर्वाद से पूरे राज्य में शांति और व्यवस्था है । सभी लोग अपने-अपने कार्यों को निष्ठापूर्वक कर रहे हैं । अब मेरी इच्छा है कि सीता के साथ अपने पवित्र तीर्थों का दर्शन करूँ ।"

श्रीराम की बात सुनकर वशिष्ठजी ने कहा- "हे राम! आपके मन में बहुत ही उत्तम विचार आया है । गृहस्थों के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर पवित्र तीर्थों का दर्शन और संत-महात्माओं का आशीर्वाद प्राप्त करें । क्योंकि तीर्थ, पवित्र स्थान माना जाता है और वहाँ जाने पर हमेशा मन में पवित्र भाव आते हैं । देश में सर्वत्र तीर्थ नहीं होते, क्योंकि तीर्थों की भूमि में एक विशेष आकर्षण शक्ति रहती है,

जिस कारण वहाँ दिव्य शक्तियों का निवास होता है । जहाँ-जहाँ तीर्थस्थल हैं, वहाँ-वहाँ दिव्य शक्तियों का विशेष आकर्षण केन्द्र रहता है । उस क्षेत्र में जब भक्त भक्तिपूर्वक प्रवेश करता है तो, उस क्षेत्र की दिव्यशक्तियाँ भक्त के शरीर में प्रवेश करती हैं । और भक्त भी दिव्य बन जाता है । इसीलिए हमारे देश में विशेष स्थानों पर ही तीर्थ बनाये गये हैं । अतः हे राम! मैं आपके पवित्र भाव का समर्थन करता हूँ । आप अपने जाने की समुचित व्यवस्था करें और तीर्थों का दर्शन कर पुनः यहाँ आएँ ।"

गुरु की आज्ञा पाकर श्रीराम ने अपने मंत्रियों को तीर्थयात्रा की व्यवस्था करने का आदेश दिया । फिर माताओं से आदेश लेकर तीर्थ यात्रा के लिए तैयार हुए । श्रीराम ने सीता को कहा-"सीते! लंका से लौटते समय मैंने भगवान् रामेश्वरम् का दर्शन नहीं किया था, इसलिए सबसे पहले हमलोगों को रामेश्वरम् चलकर भगवान् रामेश्वरम् की पूजा करनी चाहिए ।" तीर्थयात्रा के लिए लक्ष्मण भी तैयार हो गये। इस तरह सभी लोग पहले रामेश्वरम् गये । श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने विधिवत् रामेश्वरम् की पूजा-अर्चना की । फिर वहाँ से वे पश्चिम भारत की ओर गये । महानदी कृष्णा के दर्शन करते हुए श्रीराम पवित्र नरसिंह तीर्थ गये । उसके बाद सिद्धेश्वर को देखते हुए उन्होंने सफेद भीमकुंड, तुंगभद्रा, भवनाशिनी में स्नान किया । सुग्रीव को जब पता चला कि प्रभु श्रीराम आये हैं तो, वे भी साथ हो गये । उसके बाद शिवकांची और विष्णुकांची गये । विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए वृन्दावन की ओर पधारे । वहाँ से पूर्व और उत्तर भारत की यात्रा पर निकले । वहाँ से राजगीर गये, फिर गया की ओर प्रस्थान किया ।

श्रीराम अपने विमान से एक-एक स्थान का दर्शन कर रहे थे, उसके बाद गया-तीर्थ में पहुँचे । उन्होंने फल्गु नदी में स्नान किया । सीताजी ने फल्गु में स्नान कर बालू का पिण्ड बनाया कि उसी समय महाराज दशरथ का हाथ प्रकट हुआ । बालू के पिण्ड को महाराज दशरथ ने स्वीकार कर लिया ।

श्रीराम प्रेतशिला पर गये, वहाँ उन्होंने पिण्डदान किया । लेकिन पिण्ड ग्रहण करने के लिए पिता का हाथ बाहर नहीं निकला । इस पर किसी पंडित ने कहा-"हे राम, इस अवसर पर तो, सभी के पिता का हाथ बाहर आता है । यह सुनकर श्रीराम

को दुःख हुआ । श्रीराम ने सीता से कहा- "सीते! ऐसा क्यों हुआ?" तब सीताजी ने फल्गू नदी के किनारे पिता के हाथ को प्रकट होकर पिण्ड लेने की बात को स्वीकारा । लेकिन इस पर किसी को भी भरोसा नहीं हुआ । श्रीराम ने कहा-"इसका साक्षी कौन है?"

यह सुनकर सीताजी ने आम के पेड़ से कहा- "हे आम, यह घटना तुम्हारे सामने घटी है, तुम प्रभु को बता दो ।" लेकिन आम के वृक्ष ने गवाही देने से इनकार कर दिया । इसके बाद सीताजी ने आम के वृक्ष को शाप दिया कि मगध में तुम्हारे वृक्ष में फल नहीं लगेगा । उसके बाद सीताजी ने फल्गू नदी से पूछा । फल्गु नदी ने भी इनकार कर दिया । तब सीताजी ने फल्गू को भी शाप दिया, जाओ तुम अधोमुखी होकर बहती रहोगी । उसके बाद ब्रह्मणों से पूछा, फिर गाय से पूछा, लेकिन किसी ने भी स्वीकार नहीं किया । तब सीताजी ने सूर्य से पूछा । उसी समय महाराज दशरथ वहाँ पहुँचे और श्रीराम के हाथ से पिण्ड ग्रहण कर स्वधाम लौट गये ।

गया निवास के बाद श्रीराम गया के प्रमुख विष्णुपाद मंदिर का दर्शन करते हुए बैद्यनाथधाम की ओर गये ।

विशेष प्रसंग

(कहा जाता है कि गयासुर नाम का एक बड़ा ही अत्याचारी राक्षस था । वह बड़ा ही पराक्रमी और देवविरोधी था । उसके अत्याचार से सभी लोग बड़े ही त्रस्त और दुःखी रहा करते थे । संत महात्माओं की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने गयासुर का वध किया था । कहा जाता है कि गयासुर ने भगवान् विष्णु से वरदान मांगा था कि जो व्यक्ति गया में जाकर पिंडदान करेगा, उसके पितरों को मुक्ति मिलेगी । तब से फल्गू नदी के किनारे एक तीर्थ बन गया है । आज भी लाखों लोग प्रतिवर्ष पितृपक्ष में गया जाकर पिण्डदान करते हैं और अपने पितरों के कल्याण के लिए यज्ञ, तप और दान करते हैं ।)

श्रीराम ने इस तरह आर्यावर्त के सम्पूर्ण क्षेत्रों की यात्रा की । चारों दिशाओं में जहाँ-जहाँ तीर्थस्थान, मंदिर और संतों के आश्रम थे, एक-एक स्थान के उन्होंने दर्शन किये और अन्त में कैलास पर्वत पर भगवान् शिव और माता पार्वती के दर्शन के लिए पहूँचे । भगवान् शिव ने श्रीराम का स्वागत किया । फिर श्रीराम पूरे आर्यावर्त का भ्रमण

करके अयोध्या लौटे। अयोध्या में गुरु वशिष्ठ एवं माताओं ने बड़े हर्ष से श्रीराम का स्वागत किया और उसके बाद श्रीराम अनेक वर्षों तक अयोध्या पर शासन करते रहे।

कई संत यह भी बताते हैं कि श्रीराम ने अयोध्या पर ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया।

सीता का वाल्मीकि आश्रम में जाने की योजना

श्रीराम नित्य प्रति दिन अपने कार्यों और कर्त्तव्यों का पालन करते हुए सीताजी के साथ अनन्तकाल तक विहार करते रहे।

एक दिन श्रीराम के मन में यह विचार आया–मैं गृहस्थ धर्म का पालन कर रहा हूँ। परिवार में माता–पिता, भाई और पत्नी के साथ रहकर अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ। ताकि आगे आनेवाली पीढ़ी मुझे अपना आदर्श मानकर उत्तम आचरण करे। मैंने जीवन भर एक पत्नीव्रत का पालन किया, अब मेरा धर्म है कि जब मैं यहाँ से जाने से पहले रघुवंश की परंपरा का पालन करने के लिए अपने पुत्र को दायित्व सौंपकर स्वर्ग लोक चला जाऊँ। श्रीराम ने इस तरह प्रकृति स्वरुप सीताजी के साथ विहार करते रहे। कुछ दिनों के बाद सीताजी की दाई ने श्रीराम को सूचित किया कि सीताजी के गर्भ में आपका अंश पल रहा है। तब तक कुछ महीने बीत गये थे। श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ से परामर्श किया कि सीताजी के गर्भ में मेरा अंश पल रहा है तो, यह सुनकर गुरु वशिष्ठ को बड़ी प्रसन्नता हुई।

गुरु वशिष्ठ ने श्रीराम को बताया– "हे राम! प्रकृति का नियम है कि प्रकृति और पुरुष के सम्पर्क से नया जीव उत्पन्न होता है। यह परम्परा अनन्त काल से चल रही है। इसी कारण प्रकृति का विस्तार और विकास भी हो रहा है। प्रत्येक जीव, पेड़ पौधे इसी प्रक्रिया से विकसित होते आ रहे हैं। मनुष्यों के लिए हमारे शास्त्रों में कुछ नियम बनाऐ गये हैं, जिसका पालन करना चाहिए। इन नियमों के पालन से सन्तान को सुख–शान्ति, यश और सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त होता है। इसको "संस्कार" कहते हैं। यह 'संस्कार' गर्भधारण से प्रारम्भ होता है। जब पति–पत्नी को सन्तान उत्पन्न करने की कामना होती है तो, वह अपने गुरुजन से परामर्श कर शुभ–मुहूर्त में गर्भ धारण करता है। शुभ–मुहूर्त में गर्भ धारण से कोई दिव्यजीव गर्भ में प्रवेश करता है। अकस्मात् गर्भधारण से गलत आचरण वाले जीव के गर्भ में प्रवेश की संभावना

रहती है । इसलिए गर्भधारण को पहला संस्कार माना गया है । जब गर्भ चार-पांच महीने का हो जाता है तो, उसे नष्ट करने के लिए क्षुद्र शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं। इसीलिए **"सीमन्तोन्नयन"** संस्कार करके गर्भ की सुरक्षा की जाती है । और फिर जन्म के समय **'जातकर्म'** संस्कार किया जाता है । इस तरह सोलह संस्कारों की चर्चा है ।" गुरु वशिष्ठ ने सीताजी का 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार कराया । गर्भ के कारण सीताजी थोड़ी कमजोर होती जा रही थीं । श्रीराम ने उनकी स्वास्थ्य रक्षा के लिए पूरा प्रबन्ध कराया ।

एक दिन सीताजी ने श्रीराम से कहा- "हे प्रिये! मैं अब महलों में उब चुकी हूँ । मुझे अयोध्या के उपवन में भ्रमण के लिए ले चलिए ।" श्रीराम के आदेश से लक्ष्मणजी ने भ्रमण की पूरी व्यवस्था की । पूरी तैयारी से श्रीराम, सीता, लक्ष्मण एवं अन्य सेवक वहाँ कई दिनों तक विहार करते रहे । एक दिन गुरु वशिष्ठ ने श्रीराम को कहा- "हे रघुनन्दन! स्त्री जब गर्भवती हो जाए तो, उसे स्वास्थ्यप्रद वातावरण में प्रसन्नतापूर्वक रहना चाहिए । यह समय संतान के स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है ।

विशेष प्रसंग

(आज का विज्ञान भी कहता है कि गर्भ धारण के पश्चात् पति-पत्नी का सम्बन्ध संतान के लिए घातक होता है । जो लोग प्रकृति के इस व्यवस्था की अवहेलना करते हैं, उनकी सन्तान गर्भ में पूर्ण विकसित नहीं होती और उनका मस्तिष्क एवं दूसरे अंग भी रोग से पीड़ित हो जाते हैं । इसलिए गर्भवती महिला को पति के सम्पर्क से बचना चाहिए । इस नियम को न मानने के कारण आज अनेक बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं, तथा अपरिपक्व शरीर के साथ जन्म ले रहे हैं । माता-पिता की भूल का दुष्परिणाम सन्तान को भोगनी पड़ रही है । इसलिए यह आवश्यक है कि गर्भकाल पवित्र काल माना जाय और उसी के अनुरूप आचरण किया जाय । तभी स्वस्थ सन्तान पैदा हो सकती है ।)

वशिष्ठजी के परामर्श से श्रीराम ने सोचा- "इस काल में सीताजी को किसी स्वस्थ एवम् रमणीक स्थान में रहना चाहिए । क्योंकि परिवार के साथ रहने पर सात्विक जीवन जीना सम्भव नहीं है । और यह भी आवश्यक है कि गर्भकाल में प्रतिदिन

गुरुजन से नैतिक उपदेश सुनने से सन्तान को जीवन में काफी लाभ होता है । गुरुजन के सम्पर्क में रहने से ही गर्भ के जीव को दिव्यता प्राप्त होती है ।

एक दिन श्रीराम ने सीताजी से पूछा- हे प्रिये! तुम्हारे शरीर में मेरा अंश पल रहा है । अभी विभिन्न प्रकार के विचार, भोजन की इच्छा का भाव होगा । अगर तुम कुछ चाहती हो तो, मुझे बताओ ।" यह सुनकर सीताजी ने कहा- "मेरे मन में एक इच्छा बलवती हो रही है कि मैं गंगा के तीर पर उपवन में जाकर संतों के सान्निध्य में रहूँ ताकि मेरा मन प्रसन्न रह सके ।" यह सुनकर श्रीराम ने कहा- "हे सीते! तुम्हारे साथ मैं इस कार्य में नहीं जा सकता । तुम्हें इस व्रत का अकेले पालन करना होगा।" श्रीराम ने सोचा कि इस अवस्था में सीताजी को गंगा तट पर किसी आश्रम में अकारण भेजना उचित नहीं लगता। फिर भी सीताजी की इच्छा की पूर्ति आवश्यक है । श्रीराम ऐसा विचार करने लगे ।

एक दिन श्रीराम राजदरबार में बैठे थे । तभी उन्होंने प्रजाजन से पूछा-"हे प्रजाजन! मेरे राज्य में कहीं कोई शिकायत तो, नहीं है?" श्रीराम के प्रश्न सुनकर प्रजाजनों ने कहा-"हे महाराज! जिस राज्य में नीति-धर्म का पालन हो, वहाँ शिकायत कैसे उठ सकती है । शिकायत तो, दुष्ट व्यक्ति की होती है ।" इस तरह की बात चल ही रही थी कि उसी समय राज्य के एक गुप्तचर ने आकर कहा-"हे महाराज! पिछली रात एक धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था कि तुम बिना कारण अपने मैके क्यों चली गई थी? विवाहित स्त्री को पति के बिना कहीं जाकर रहना मन में संदेह पैदा करता है । इस पर उसकी पत्नी ने कहा-"हमारे राजा राम की पत्नी भी तो, वर्षों लंका में जाकर रही थी तो, क्या हमारे राजा ने उन्हें निकाल दिया?" यह सुनकर धोबी ने कहा- मैं राजा राम नहीं हूँ जो तुम्हें अपने घर में रख लूंगा। जब युवती और विवाहित स्त्री दूसरे के घर में किसी भी कारण से रहे तो, यह मर्यादा के विरूद्ध आचरण माना जाता है । क्योंकि स्त्री की पवित्रता, पति के साथ ही सुरक्षित रहती है ।

श्रीराम चिन्तित हो गये । वे अपने महल में आये और अपने भाइयों को बुलाया और धोबी की बात की चर्चा करते हुए श्रीराम ने कहा- "तुम सब मेरे प्रिय भाई हो । मैं जानता हूँ कि लंका विजय के पश्चात् सीता के चरित्र की पवित्रता अग्नि परीक्षा

के द्वारा सूर्य, चन्द्र और अग्नि के सामने सिद्ध हो चुकी है । लेकिन मैं राजा हूँ, राज्य धर्म का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है । लोक-मर्यादा के पालन से ही हम अपने दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं । इसलिए जब समाज में रहना है तो, लोकमत का पालन करना भी अनिवार्य है । इसलिए हे प्रिय भाई लक्ष्मण! तुम कल प्रातः सीता को लेकर वन में जाओ और महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में उन्हें सुरक्षित छोड़ आओ ।"

श्रीराम का आदेश सुनकर लक्ष्मणजी को लगा कि उनके शरीर पर लाखों मन पानी गिर गया है । लेकिन वे तो, श्रीराम के आज्ञाकारी सेवक हैं, उन्होंने सिर झुकाकर आदेश को स्वीकार कर लिया । कल प्रातः होते ही लक्ष्मणजी सीताजी को लेकर वन घुमाने के लिए निकले । वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुँचकर लक्ष्मणजी ने सीताजी से कहा-"भाभी माँ! आप कुछ दिन यहीं विश्राम करें, ऐसा प्रभु श्रीराम का आदेश है ।" यह सुनते ही सीताजी मूर्छित हो गई । थोड़ी देर बाद सीताजी ने लक्ष्मण से कहा- "हे लक्ष्मण! मैं प्रभु के बिना यहाँ कैसे रहूँगी ।" यह सुनकर लक्ष्मणजी भाव-विह्वल होकर रोने लगे ।

चौ०

मुरछित रथ ते भये विकारारा । भूमि गिरत तब आप संभारा ॥
प्रान बिन लछिमन कहँ देखि । गगन गिरा तब भई बिसेषी ॥

लक्ष्मणजी इस दारूण दृश्य को देखकर क्रन्दन करने लगे । तभी आकाशवाणी हुई- "लक्ष्मण! तुम सीताजी को त्यागकर लौट जाओ ।" लक्ष्मणजी, सीताजी को आश्रम के निकट छोड़कर वापस लौट आये ।

चौ०

लय रथ चरन बंदि सिय केरे । चले अबधपुर त्रास घनेरे ॥

सीता अकेले रोती रही । राम के विरह में तड़पती रही । तभी महर्षि वाल्मीकि वहाँ पहुँचे ।

चौ०

करुना करत बिपिन अति भारि । वाल्मीकि आये बन चारि ॥

वाल्मीकि ने देखा कि एक स्त्री करूणापूर्ण होकर रो रही है । उन्होंने सीता को सहारा दिया और पूछा–"बेटी! तुम कौन हो?"

दो०

मुनि पुत्रि मैं जनक की रामप्रिया जगजानि ।
त्यागन हेतु न जा कछु बिधि गति अति बलबानु ॥

सीताजी ने कहा– "हे मुनि, मैं जनक की पुत्री हूँ और श्रीराम की पत्नी हूँ । मैं नहीं जानती कि किस कारण मेरे देवर ने इस वन में त्याग कर दिया है । हे मुनि! पति के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती । लेकिन मैं अभी गर्भवती हूँ। मैं अपने शरीर को नष्ट भी नहीं कर सकती, क्योंकि मेरे गर्भ में रघुकुल का अंश पल रहा है ।"

सीता का दुःख सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने सीताजी को सम्मान सहित अपने आश्रम में बुला लिया। यह खबर सुनते शीघ्र ही मुनि–पत्नियाँ वहाँ एकत्र हुईं और सीताजी की देखभाल करने लगीं ।

इधर लक्ष्मणजी बड़े ही उदास और दुःखी मन से अयोध्या लौटे । आश्रम में सीताजी मुनि–पत्नियों के साथ रहने लगी ।

चौ०

मुनिबर कथा अनेक प्रसंगा । कहहिं सुनीहिं सिय संब बिहंगा ॥
ग्यान अनेक प्रकार बढाए । लछिमन अवध सुनो तब आए ॥
आये जो लछिमन त्यागिए सिबहिं बिकल निज आश्रम गए ।

इस तरह कुछ दिन बीते और उसके बाद श्रीराम पुत्र लव और कुश का जन्म हुआ । गुरु आश्रम में लव और कुश, महर्षि वाल्मीकि की देख–रेख में पलने लगे। महर्षि वाल्मीकि ने अपने ज्ञान से अर्जित समस्त परा और अपरा विद्याएँ, ऋद्धि–सिद्धि एवं सम्पूर्ण धर्नुविधा का ज्ञान लव और कुश को दे दिया । दोनों कुमार समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर निपुण हो गये । वे प्रतिदिन गहन अभ्यास करके शीघ्रता से बड़े होने लगे ।

अश्वमेध यज्ञ की तैयारी

प्राचीनकाल से यह परम्परा चली आ रही है कि जब कोई चक्रवर्ती सम्राट् धर्मपूर्वक अपना साम्राज्य स्थापित करता है तो, उसके मन में यह लालसा होती है कि वह पता लगाये कि उसके साम्राज्य में कहीं असंतोष तो, नहीं है, अथवा उसके सिद्धान्त एवं विचार का कहीं विरोध तो, नहीं हो रहा है । इसलिए वह अश्वमेध यज्ञ करता है ताकि उस यज्ञ के माध्यम से वह अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में अपना आधिपत्य स्थापित कर सके ।

श्रीराम के मन में भी अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा हुई । उन्होंने गुरु वशिष्ठ को बुलाकर परामर्श लिया फिर अपने भाइयों एवं प्रजाजन से विचार-विमर्श कर, अश्वमेध यज्ञ करने का निर्णय लिया । सभी प्रमुख संत-महात्माओं एवं वैदिक कर्मज्ञाताओं को आंमत्रित किया और यज्ञ की तैयारी प्रारम्भ हो गई । यज्ञ के लिए श्यामवर्ण घोड़ा मंगवाया गया । उसे विधिवत् पूजित कर इस आदेश के साथ विदा किया- "यह सौवाँ अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा है, जो लोग श्रीराम का आधिपत्य स्वीकार करते हैं, वे सम्मान सहित इस घोड़े को विदा करें और जो लोग इसे स्वीकार नहीं करते, वे इस घोड़े के साथ जा रहे महापराक्रर्मी शत्रुघ्न से युद्ध करें ।" इस आदेश के साथ घोड़े को विदा किया गया । पीछे से शत्रुघ्नजी महापराक्रमी सेना को लेकर चलने लगे । घोड़ा पूरे देश का भ्रमण करने लगा ।

एक दिन लव-कुश वन-प्रदेश में खेल रहे थे, तभी अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा वहाँ से निकला । घोड़ा को देखते ही लव ने कौतुहलवश घोड़े को पकड़कर एक वृक्ष में बांध दिया । जब शत्रुघ्नजी ने देखा कि एक बालक ने घोड़े को पकड़ लिया है तो, उन्होंने अपने दूत से कहा- "जाओ घोड़े को छिनकर ले आओ ।" जब दूत ने डाँटते हुए घोड़ा देने को कहा तो, लव ने एक तिनका उठाया और उस पर वायव्य मंत्र का प्रयोग किया । मंत्र के प्रभाव से इतनी वेग से हवा बहने लगी कि शत्रुघ्नजी की सारी सेना आकाश में उड़ने लगी । बचे हुए सैनिकों ने श्रीराम को यह सूचना दी । श्रीराम ने लक्ष्मणजी को शीघ्र वहाँ भेजा । लक्ष्मणजी पूरी तैयारी के साथ युद्धभूमि में पहुँचे । दोनों में भयंकर संग्राम छिड़ गया ।

लव ने लक्ष्मणजी पर मोहनास्त्र चलाया। मोहनास्त्र से लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये। जब यह खबर श्रीराम को लगी तो, श्रीराम स्वयं लक्ष्मण की सहायता में पहुँचे। राम और लव के बीच भंयकर संग्राम शुरू हो गया। दोनों के बीच भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। लव और कुश ने श्रीराम पर जितने दिव्यास्त्र चलाये, श्रीराम ने आसानी से सभी अस्त्र-शस्त्रों को शान्त कर दिया।

जब कुश और श्रीराम का भयंकर युद्ध हो रहा था, तब महर्षि वाल्मीकि वहाँ स्वयं पहुँचकर युद्ध को शान्त किया। श्रीराम ने महर्षि को प्रणाम कर पूछा- "हे महर्षि, ये दोनों बालक कौन है?" यह सुनकर महर्षि ने कहा- "कल प्रातःकाल आपके दरबार में मैं इसका पूरा परिचय दे दूँगा।

कल प्रातः काल महर्षि वाल्मीकि, सीता, लव और कुश के साथ राम के दरबार में पहुँचे। राम ने महर्षि का स्वागत किया और लव और कुश को महर्षि ने अपने द्वारा बनाये गए चौबीस हजार श्लोकों की रामकथा को गान करने के लिए कहा। लव और कुश ने सस्वर रामकथा का गान किया। कथा सुनकर श्रीराम एवं सभी सभासद् भाव-विभोर हो गये। श्रीराम ने महर्षि से पूछा-"ये दोनों दिव्य बालक कौन हैं?" महर्षि ने बताया- "कुश आपका पुत्र है और लव को मैंने अपनी मंत्र शक्ति से जल की बूँदों से बनाया है। यह सुनकर श्रीराम ने बड़े प्यार से लव और कुश को अपने बगल में बैठाया। उसके बाद श्रीराम ने सीता को सम्मानसहित अपने बगल में बैठाया। उसके बाद श्रीराम, सीता, लव और कुश, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या में निवास करने लगे। कालान्तर में ऊर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति ने भी प्रभु कृपा से पवित्र गर्भधारण किया और उनका पुंसवन संस्कार आदि किये गये। समय के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के भी पुत्र हुए। सभी लोग अयोध्या में शान्ति और प्रेम से रहने लगे।

विशेष प्रसंग

(कहा जाता है कि बड़े होने पर श्रीराम ने लव को लव देश (जिसे आज लावोस कहा जाता है) का राजा बनाया और कुश को कौशाम्बी का राजा बनाया। इस तरह सम्पूर्ण आर्यावर्त में श्रीराम के अधीन सुशासन चलने लगा।

राम का चरित्र पूर्ण पवित्र है। परमात्मा का पावन गुणगान है, क्योंकि परमात्मा ने स्वयं राम का रूप धारण कर अवतार लिया है। इस संसार में अवतरित हुए हैं। इसलिए उन्हें अवतार कहा जाता है। जो कहीं अन्य स्थानों से संसार में उतरें, जिसका अवतरण हो, वही अवतार है। पूर्व में मैंने लिखा था कि परमात्मा तो, दिव्य आलोक है, दिव्य शक्ति है, वह सूक्ष्म है, निर्गुण है। लेकिन जब भक्तों की आर्त पुकार पृथ्वी से अनन्त की ओर उठती है तो, निर्गुण ब्रह्म सगुन स्वरुप ग्रहण कर, किसी अवतार के रूप में भक्तों के कष्ट निवारण के लिए प्रकट होता है। कोई भी अवतार परमात्मा का मूल रूप नहीं है, यह परमात्मा स्वयं निर्णय करता है कि इतने गुणों के साथ अवतरित होना है।

ऐसा कहा जाता है कि राम बारह कलाओं के साथ प्रकट हुए और कृष्ण सोलह कलाओं के साथ प्रकट हुए। परमात्मा स्वयं निर्णय करता है कि उसे कितनी शक्तियों के साथ मनुष्य बनकर अवतरित होना है। भक्तों के लिए कोई भी अवतार कम या ज्यादा नहीं है। क्योंकि मनुष्य अल्पजीव है, उसके लिए परम शक्तिशाली परमात्मा की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य का तो, परमात्मा की एक झलक से उद्धार हो जाता है। उसी परमात्मा की जब कभी हल्की सी झलक, आभा या छाया किसी व्यक्ति विशेष पर उतर जाती है तो, वह व्यक्ति दिव्य ज्ञान धारण कर समाज में खड़ा हो जाता है, जिसे लोग गुरु मानने लगते हैं। इसलिए गुरु को परमात्मा का अति संक्षिप्त स्वरुप भी माना जाता है। परमात्मा के पास अनन्त दिव्यता है, अवतार परमात्मा का लघु रूप है और गुरु जीवरुप में ब्रह्म के अंश को धारण कर अपने शिष्यों के जीवन में दिव्यता प्रदान करता है।

उसी परमात्मा स्वरुप श्रीराम की गाथा, आर्यावर्त के अनेक संतों ने गाया है। उन संतों की पंक्ति में खड़ा होकर उस विराट परब्रह्म की गाथा, एकबार फिर मैंने सामान्य बोलचाल की भाषा में लिखने का प्रयास किया है। मैं जानता हूँ, यह मेरी अज्ञानता का परिचायक है, क्योंकि सागर तट पर जाकर कोई चींटी सागर की गहराई, लम्बाई, चौड़ाई और उसकी चौहद्दी बताने की घोषणा करे तो, यह उस चींटी का अंहकार प्रदर्शन ही है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिस परमात्मा की गाथा महर्षि

वाल्मीकि और महान संत गोस्वामी तुलसीदासजी ने प्रबुद्ध भक्तों के लिए लिखा, उस महान गाथा को सरल भाषा में सामान्य लोगों के लिए मैंने इसलिए लिखा है कि राम के चरित्र का अमृत पान आसानी से लोग कर सकें। यह सभी सत्य है कि राम के चरित्र को बिना सुने, गाये और मनन किये जीव (मनुष्य) को न तो, जीवन में सुख शांति मिल सकती है और न उसे मुक्ति ही मिल सकती है। राम के आशीर्वाद के बिना भव रोगों से मुक्ति संभव नहीं है।

कहते हैं- **"राम कृपा भवरोग नसाहिं।"** दुनिया में कोई ऐसा रोग, शोक, संताप नहीं है, जो राम भक्तों को सताये। जो व्यक्ति श्रद्धा और विश्वास से इस रामकथा का बार-बार श्रवण करता है, उसे संसार का कोई दुःख स्पर्श नहीं कर सकता। अगर कोई व्यक्ति दुःखी है तो, इसका अर्थ है कि उसके ऊपर राम की कृपा नहीं है। कहा गया है-

हिम ते प्रगट अनल बरू होईं। बिमुख राम सुख पावे न कोई॥

मनुष्य अगर जीवन में सुख पाना चाहता है तो, उसे राम का आशीर्वाद चाहिए। एक बार उसे राम का आशीर्वाद मिल जाता है तो, संसार का सुख स्वतः प्राप्त हो जाता है-

जिमि सुख सम्पति बिनुहिं बुलाये। धर्म सील पहँ आहि सुहाये॥

धर्म करने वाले व्यक्ति पर सदैव राम की कृपा बनी रहती है।

मनुष्य जानता है कि अगर उसे सुख चाहिए तो, उसे सत्कर्म करना पड़ेगा। फिर भी वह अंहकार वश पाप करता रहता है। मनुष्य का जीवन दुःख भोगने के लिए नहीं है। जीवन तो, आनन्द भोगने के लिए है। लेकिन अपने ही पाप कर्म से मनुष्य अपने जीवन को दुःखों से भर लेता है। अभिमान के कारण और जवानी के जोश में वह ऐसा-ऐसा पाप करने लगता है कि वह न केवल अपना बल्कि समाज का शत्रु बन जाता है। इसलिए जीवन में रामकथा का श्रवण आवश्यक माना गया है। जिस व्यक्ति को एक बार राम में मन लग जाता है, फिर वह कभी अपने मन को संसार के मोह बन्धन में फंसने नहीं देता।

तो, आइये, इस अवसर पर अपने मन के लिए एक भक्ति गीत गायें-

गीत

मितवा, रघुवर के चरणों में शीश झुका के देख ले ।
मन मंदिर में प्रभु को तुम बिठा के देख ले ॥
हट जायेंगे संकट सारे, मन के बंधन टुटेंगे ।
जीवन भर माना अपना जिसे, साथ तुम्हारा छोड़ेंगे ॥
अपने तन को मंदिर सा बना के देख ले ।
रघुवर के चरणों में शीश झुका के देख ले ॥
धन-वैभव की लाख चाहना अंत समय में छुटेगी ।
जिस तन पर अभिमान है तेरा, कालसर्पिणी कुटेगी ॥
तन के रोग विषम-व्याधि, मिटा के देख ले ।
रघुवर के चरणों में शीश झुका के देख ले ॥
रामकथा के श्रवण मात्र से रोग शोक सब छुटेंगे ।
तेरे उजड़े इस जीवन में सुख के अंकुर फुटेंगे ॥
अपने मधुर गीत प्रभु को सुना के देख ले ।
रघुवर के चरणों में शीश झुका के देख ले ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है–

दो०

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान ॥

श्रीराम की कथा सुमंगलदायक होती है । जो व्यक्ति इस कथा का पाठ करता है, उसे जीवन में सदैव सुख शान्ति बनी रहती है–

भ0

श्रीराम दया करना ।

यह तन काम क्रोध की गठरी, रोग व्याधि फड़ना ।
षड्विकार के विषमदन्त में, नित-नित पड़ मरना ॥
श्रीराम दया .... ।

रूप जवानी रूचिकर लागे, मद मस्त बने रहना ।
सेमल फूल काक ज्यों सेवें, सिर धुन धुन मरना ॥
श्रीराम दया .... ।

कनक कामिनी मन को मोहें, शील शक्ति हरना ।
अन्त समय में रहा अकेला, मृत्यु पाश डरना ॥
श्रीराम दया .... ।

कहे सुदर्शन एक सत्य है, एक वही शरणा ।
मेरी यही अरदास प्रभु, श्रीराम दया करना ॥
श्रीराम दया .... ।

कलियुग में श्रीराम कथा से लाभ

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ॥

श्रीराम कथा का पठन-पाठन और मंगलगान जीवन को हमेशा सुखी बनाता है । मनुष्य जीव रूप में इस संसार में प्रकट होता है और फिर कर्म में प्रवृत्त हो जाता है । अपने कर्मों के द्वारा वह पुनः परमात्मा मे प्रवेश कर जाता है । जिस प्रकार बहती नदी से एक लोटा जल लेने पर जल लोटा का हो जाता है । पुनः उस जल को जब नदी में डाल देते हैं तो, वह नदी का जल हो जाता है । बहती नदी में पानी का बुलबुला उठता है तो, उसे बुलबुला कहा जाता है । फुटते ही बुलबुला उसी पानी में विलीन हो जाता है । किसी बैलून में हम बाहर से हवा लेकर भरते हैं तो, उसे बैलून कहा जाने लगता है । बैलून के फटते ही हवा पुनः हवा में मिल जाती है । फिर वहाँ कोई

बैलून नहीं बचता । उसी प्रकार जीव ब्रह्म से अलग होता है और पंचतत्त्व के मेल से वह शरीर बन जाता है । अव्यक्त जीव जब व्यक्त हो जाता है तो, उसे व्यक्ति कहते हैं । जब तक पंचतत्त्व का संतुलन बना रहता है, तब तक शरीर जीवित रहता है । पंचतत्त्व का संतुलन जब बिगड़ जाता है तो, जो शरीर जीवात्मा का वाहन रहता है उसका संबंध परमात्मा से टूट जाता है और तब मनुष्य मृत हो जाता है–

दो०

रबड़ खोल में हवा भरे, तब बैलून कहाय ।
निकसी हवा चिपक गई रबड़ा, त्यों जीव दिखाय ॥
जो जितना सूक्ष्म रहे, फ्रीक्वेंसी बढ़ जाय ।
त्यों जीव के भाव शब्द, अन्तरिक्ष में सुनाय ॥
सूक्ष्म रूप तन में बसे, जगत में करत प्रकाश ।
जब तन छोड़े ज्योति बन, जाई मिले आकाश ॥
गगन जगत के मूल हैं, बेलि है संसार ।
फूल खिले चकमक लगे, फिर काल करे संहार ॥
ब्रह्म प्राण, नौ ग्रह दिखे, आकर्षण गति देत ।
एक एक को ले चले, जैसे तन को चेत ॥
दैव झरोखे बैठकर, देखे सबके काम ।
निर्धन को धनपति करे, स्वयं रहे गुमनाम ॥
संत सुधि तप कर, अन्तर् चक्षु खोल ।
सूक्ष्म गति भ्रमण करे, देख जगत के खेल ॥
प्राण वायु अनंत से चलकर, सूर्यदेव तक आये ।
सूर्य रश्मि से इस भूतल को, प्राणवान बनाये ॥

संसार का प्रत्येक जीव परमात्मा से जुड़ा हुआ है । हम परमात्मा से आशीर्वाद इसलिए मांगते हैं कि परमात्मा हमें अपने साथ जोड़े रखें । केवल परमात्मा के आशीर्वाद से ही मनुष्य संकटों से मुक्त रहता है, उसे रोग-शोक नहीं होता, और वह स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु बनता है । श्रीराम कथा का गान-पाठ और श्रवण हम इसलिए करते हैं कि परमात्मा राम का आशीर्वाद हमें प्राप्त हो । हम जितनी देर तक श्रीराम कथा के सत्संग में बैठते हैं, उतनी देर तक परमात्मा से हमारा सम्बन्ध बना रहता है । उतनी देर तक संसार से ध्यान हटाकर परमात्मा की ओर लगाने से हमारे शरीर में दिव्यता आती है । इसीलिए जो संत होते हैं, उनका शरीर और चेहरा दिव्य दिखता है । उनका मुखमंडल प्रकाश से भरा रहता है । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति जो सत्संग में बैठता है, उसे वही दिव्यता प्राप्त हो जाती है । इसलिए कहा जाता है- "सत्संग परमात्मा की दिव्यता प्राप्त करने का साधन है ।" मनुष्य इस संसार में आता है और विभिन्न प्रकार के कर्म बन्धनों में बंध जाता है । इन्हीं कर्मबन्धनों से मुक्ति का अर्थ है- मोक्ष । इसीलिए जो व्यक्ति मोह का अन्त कर लेता है, वह महन्थ बन जाता है । जिसकी आत्मा महान बन जाती है, वह महात्मा बन जाता है । जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को साध लिया है, वह साधु है । और जो मौन हो गया है, वह मुनि है ।

भगवान् कहते हैं कि ज्ञान और भक्ति दोनों से ईश्वर को पाया जा सकता है । ज्ञान का मार्ग कठिन है । उसमें ज्ञान के द्वारा अविद्या को नष्ट कर, स्वयं को ईश्वर में समर्पित करने का तात्विक विधान है । क्योंकि तत्त्व रूप में ईश्वर और जीव में भेद नहीं है । जो भेद दिखता है, वह अविद्या के कारण दिखता है । इसी अविद्या के नाश को ज्ञान कहते हैं । जिस क्षण के ज्ञान के प्रकाश से ज्ञानी षड्विकारों को नष्ट कर लेता है, उसका चरित्र धवल हो जाता है । क्योंकि यह संसार काजल की कोठरी है । यहाँ जीव के आते ही दाग लग जाती है । जीव स्वभावतः अविद्या के कारण नित्यबद्ध और ईश्वर नित्यमुक्त होते हैं । जिस प्रकार स्वप्न देखते समय मनुष्य स्वप्निल शरीर में बँध जाता है, उसी प्रकार जीव शरीर ग्रहण करते ही इस स्वप्निल संसार में बँध जाता है । ज्ञानी इसी स्वप्न को समझाना चाहते हैं । जीव अज्ञान के कारण इस संसार को अपना मान लेता है और उसी में बँध जाता है । इसी बन्धन को मोह कहते हैं । ज्ञानी पुरुष सभी कर्म करता है लेकिन उसके मन में बोध है, वह जगा हुआ है ।

जागते हुए सभी कर्मों को देख रहा है । वह इन कर्मों को करता नहीं है । वह केवल द्रष्टा है । क्योंकि वह कर्मवासना से बँटा हुआ नहीं है । वह केवल कर्म करता है । उसका फल क्या होगा, उसकी चिन्ता उसे नहीं है । लाभ-हानि, शुभ-अशुभ, गुण और दोष की भेद दृष्टि उसे नहीं है । वह कर्म के सागर में चुपचाप तिनके की तरह बहता रहता है । ज्ञानी पुरुष यह समझ लेता है कि जो लोग उसे प्यार करते हैं, उसमें उनका स्वार्थ है और स्वार्थी व्यक्ति कभी किसी को प्यार नहीं करता । ज्ञान अति सूक्ष्म है और मानसिक प्रक्रिया है । मन को स्थिर कर जब चेतना का विस्तार किया जाता है तो, उस विस्तार में सम्पूर्ण सृष्टि समाहित हो जाती है । इसीलिए सिद्ध पुरुष त्रिकालदर्शी बन जाते हैं-

आँखों का है खेल विपर्यय संशय का अज्ञान ।
सत्य असत्य की अबूझ पहेली कैसे हो पहचान ॥

महर्षि पतंजलि कहते हैं- "जब मूलाधार से प्राण ऊर्जा, उर्ध्वगामी बनती है और सातवें घर सहस्रार में पहुँचती है तो, जीव परमात्मा में मिल जाता है । मनुष्य केवल सांस के माध्यम से ही तब तक परमात्मा से जुड़ा रहता है, जब तक उसे मोक्ष नहीं मिल जाता है ।"

यों तो जीव जन्म से ही सिद्ध होता है, क्योंकि वह परमात्मा का अंश है । लेकिन विकारों के कारण वह भटकता रहता है । कहा गया है- **"जन्मौषधि मंत्र तपः ।"** जन्म से ही जीव सिद्ध रहता है । इसीलिए जो लोग ईश्वर को ज्ञान के द्वारा समझना चाहते हैं, वे परमतत्व को समझते हैं । क्योंकि परमात्मा केवल तत्त्व है, कोई रूप नहीं है । रूप तो, हमारी कल्पना है और कल्पना को सत्य नहीं माना जाता ।

हम परमात्मा को विभिन्न नामों से पुकारते हैं । यह नाम हमारा दिया हुआ है । परमात्मा की जो मूर्त्ति बनाई गई है, वह भी मनुष्यों के द्वारा निर्मित है । ज्ञानी कहता है- "परमात्मा तो, अरूप है, उसकी मूर्ति कैसे बनाई जा सकती है । इसलिए वह ज्ञान के द्वारा परमात्मा को भावरुप में स्वीकार करता है । ज्ञानी कहता है- मनुष्य ने बड़ी चालाकी से परमात्मा को मनुष्य रूप में बना लिया है । जबकि परमात्मा का कोई रूप नहीं होता ।"

ज्ञान में ज्योति अनन्त है, सत्यासत्य दिखाये ।
शुभ-अशुभ, सुख-दुःख से परे वही ले जाये ॥
खाली घड़ा अग्नि नहीं जारे, खाली मन प्रभु पाये ।
लोभ-मोह अभिमान भरा मन, डबरा में डुब जाये ॥
नदी झरना में उठे बुलबुला, जल में तैरत जाय ।
अति लघु कण जल में गिरे, गिरते ही डूब जाय ॥
सब कहते हैं चिन्तित हूँ मैं, किसने किया आघात ।
कोई नहीं सताये तुमको, अपने मन की बात ॥
एक तत्त्व है ऊपर नीचे, एक है सकल जहान ।
जीव-जीव में भेद दिखावे, वह है मूढ़ महान ॥

श्रीराम के विभिन्न स्वरुप

1. राष्ट्रीय स्वरूप

श्रीराम ब्रह्म के साक्षात् स्वरुप हैं । वे मनुष्य बनकर नरलीला इसलिए कर रहे हैं कि संसार के लोग उन्हें अपना आदर्श मान लें और उसके अनुरूप आचरण करके जीवन में सुख और शान्ति प्रदान करें । इस रामकथा का केवल यह उद्देश्य नहीं है कि हम केवल राम-राम कहकर कीर्तन गाते रहें । कीर्तन का अर्थ है- **"स्वयं कीर्तन बन जाना ।"** जो कीर्ति का गान करे, उसे कीर्तन कहते हैं । राम हमारे परमात्मा हैं, वें नर रूप में अवतरित होकर हमें जीवन जीने की विधि बता रहे हैं । मनुष्य का जीवन कैसा हो, पिता, माता, पत्नी, भाई, समाज और प्रजाजन से कैसा व्यवहार करना चाहिए, अपने शत्रु और मित्र के साथ किस नीति का पालन करना चाहिए, परमात्मशक्ति सम्पन्न होने पर भी समुद्र के सामने विनय करना, रावण को परास्त करने की शक्ति रखते हुए उससे बार-बार समझौता का प्रयास करना, यह श्रीराम के महानायक होने का

प्रमाण है। बलशाली बाली से मित्रता न कर घर से निष्कासित सुग्रीव से मित्रता करना और उसे उसका अधिकार दिलाना श्रीराम के आदर्श चरित्र का प्रमाण है।

श्रीराम ने लखनलाल और हनुमान्जी को भी अहंकार होने पर क्षमा नहीं किया। क्योंकि श्रीराम बड़े हैं, अभिभावक हैं, इसलिए उनका कर्तव्य है कि अपने प्रियजनों का सदैव मार्गदर्शन करते रहें। श्रीराम राजपुत्र हैं, इस कारण देश की अखण्डता की रक्षा करना उनका कर्तव्य है। और परमात्मा स्वरुप हैं, इसलिए संत-महात्माओं और भक्तों की रक्षा करना उनका देव-धर्म है। सच पूछा जाय तो, श्रीराम ने वृहत् भारत की कल्पना त्रेता युग में ही कर ली थी। हमारे शास्त्रों में सात खण्ड, नौ द्वीप के सम्पूर्ण क्षेत्र को आर्यावर्त कहा गया है। इसलिए श्रीराम केवल परमात्मा ही नहीं है, भारत के इतिहासपुरुष और राष्ट्रपुरुष हैं। सम्भवतः पहली बार श्रीराम ने भारत को एक सूत्र में जोड़ा था। इसलिए श्रीराम को केवल धर्मगुरु या परमात्मा कहकर मंदिरों में ही बैठाकर रखना उचित नहीं है। श्रीराम को राजघरानों और मंदिरों से बाहर निकालकर दलित निषादराज और उपेक्षिता अस्पृश्य शबरी की कुटिया तक लाने की आवश्यकता है। तभी समाज को एकसूत्र में जोड़ा जा सकता है। आज पुनः आवश्यकता है कि राम के उदात्त चरित्र को स्वीकार कर, उनके आदर्श को समाज में प्रचलित कर देश में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जाय।

यह तो, श्रीराम के ऐतिहासिक और राष्ट्रीय चरित्र की बात हुई।

2. भक्ति स्वरूप

श्रीराम परमात्मा हैं, वे नरलीला कर रहे हैं। क्योंकि मनुष्य अपनी सामान्य आँखों से ब्रह्म तत्त्व का दर्शन नहीं कर सकता। यह ज्ञानियों का काम है कि परमात्मा को तत्त्वरुप में एवं भावरूप में समझे। सामान्य मनुष्य परमात्मा को प्रत्यक्ष देखना चाहता है। इसलिए श्रीराम, कृष्ण एवं अन्य अवतारों को स्वरुप ग्रहण करना पड़ा। ताकि परमात्मा सामान्य लोगों से बातचीत कर सकें। महर्षि वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, सुतीक्ष्ण, परमात्मा के निर्गुण स्वरुप को समझ सकते हैं, लेकिन निषादराज गुह, केवट, भीलनी शबरी, निर्गुण स्वरुप को नहीं समझ सकती। इसलिए परमात्मा को सगुणरूप ग्रहण करना पड़ा। परमात्मा स्वयं भक्तों के पास जाता है, यह अद्भुत घटना है। भक्तों के घर परमात्मा का जाना, उसके हठ के सामने झुकना, उसका जुठा बेर खाना आदि

घटना प्रमाणित करती है कि श्रीराम राजकुमार भले ही हों, वे परमात्मा भले ही हों, लेकिन गरीबों को वे भूल नहीं पाते । वे गरीबों का दरबार नहीं करते, अपितु गरीबों के घर जाते हैं और उन्हें उनकी समस्याओं से निजात दिलाते हैं, यही श्रीराम का आदर्श चरित्र है । मैं पहले चर्चा कर चूका हूँ कि प्रभु श्रीराम को पाने के लिए कई मार्ग हैं । जिनमें ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग प्रमुख हैं । शास्त्रों में नौ प्रकार के भक्ति की चर्चा है, जिसे नवधा भक्ति कहते हैं-

कथाश्रवणं हरिकीर्तनं, साख्यभावपादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं पूजनं प्रभोः, दास्यम् आत्मनिवेदनम् ॥
नवधा भक्ति कहे संतजन, कर्म मार्ग अनेक ।
जैसे चाहो प्रभु को सेवो, सबका मालिक एक ॥

इसके अतिरिक्त सायुज्य, सामीप्य, सान्निध्य, सारूप्य आदि भक्ति की चर्चा की जाती है, लेकिन यह सब शास्त्र जानने वालों की भक्ति है । जो निषाद है, दलित है, शबरी है, अज्ञानी है, सरल लोग हैं, उन्हें शास्त्र की भाषा अथवा ज्ञान वैराग्य के दर्शन की समझ नहीं है । उनके लिए केवल भक्ति है । जहाँ पूर्ण आत्मसमर्पण है । सूरदास, मीरा, रविदास, नरसिंह मेहता को शास्त्रीय भक्ति का ज्ञान नहीं था ।

मैंने इस **"संगीतमय श्रीराम कथा"** में उसी आत्म समर्पण वाली भक्ति की चर्चा की है । उस विराट परमात्मा को **"घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित"** स्वरुप को अपना आराध्य माना है, जो जनकपुर में मंडप पर बैठकर सामान्य लोगों की तरह विवाह करता है । गंगा किनारे खड़ा होकर केवट से नाव मांगता है, सोने के मृग के पीछे भागता है, सीता-हरण होने पर रोता है, वृक्षों से सीता का पता पूछता है । श्रीराम की इस नरलीला को सामान्य लोगों तक पहुँचाने के लिए ही मैं शहर-शहर, गांव-गांव में जाकर **"संगीतमय श्रीराम कथा"** कह रहा हूँ ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने रामचरितमानस में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की चर्चा की है । मैंने उसी रामकथा को संगीतमय बनाकर जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है । ऐसा नहीं है कि इस **"संगीतमय श्रीराम कथा"** में मैं कोई नई बात कह रहा हूँ । सभी बातें पुरानी हैं, जिसे सभी जानते हैं, लेकिन उसी पुरानी कथा

को नये कलेवर में साज-शृंगार करके कुछ आधुनिक अलंकार पहनाकर, इत्र सुगन्ध लगाकर, थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया हैं ताकि यह कथा और स्वादिष्ट और सुपाच्य बन जाय । साथ ही आज के इस वैज्ञानिक युग में विज्ञान की कसौटी पर इस कथा के उलझे और अबुझ रहस्यों को नई पीढ़ी के लोगों को बताऊँ । आज के लोग इस **"श्रीराम कथा"** को अंधविश्वास और काल्पनिक कथा कहकर उपेक्षित न करें। क्योंकि मैंने स्वयं इन कथाओं की वैज्ञानिकता को समझा है । जहाँ-जहाँ मुझे लगा कि प्रश्न उठ सकते हैं, उन जगहों पर मैंने विज्ञान परक व्याख्या की है । लेकिन संभव है, कुछ संदर्भ छुट गये हों, जिसे हमारे अन्य मित्र संत हमेशा स्पष्ट करते रहेंगे । इसी दृष्टि से इस श्रीराम कथा को मैंने संगीतमय बनाने का प्रयास किया है ताकि संगीत के माध्यम से सामान्य लोग भी इसे गा सकें । जितने भी भक्ति संगीत लिखे गये हैं, वे सब मौलिक हैं और गाँव के चौपालों, खेत की मेड़ एवं गाँवों की बोली जाने वाली भाषा में लिखे गये हैं । वेदान्त के गूढ़ रहस्यों को गीत के रूप में लिखना कठिन काम है, लेकिन मैंने प्रयास किया है । इसी भाव से ऐसा किया है ताकि भक्तजन इसे स्वीकार करें ।

श्रीराम के भक्ति स्वरुप की चर्चा करते हुए श्रीराम के परमात्मस्वरुप की चर्चा करना मुझे आवश्यक लगता है । मानस में गोस्वामीजी ने लिखा है-

चौ०

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख राशि ॥

श्रीराम ब्रह्म हैं, चिन्मय हैं, जिनका उद्‌भव चिदाकाश से हुआ है । इसलिए वे अविनाशी हैं । इस राम का कभी नाश नहीं होता क्योंकि ब्रह्म सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हैं । इसलिए उसका नाश नहीं होता । वह चेतन है और चेतन का भी नाश नहीं होता । वह अमल है, निर्मल है, उसमें कोई दोष नहीं है, और जो निर्मल है, वह सहज होगा ही । वहाँ सहज राम, सुख देनेवाला है । सुख केवल सहजता से प्राप्त होता है क्योंकि सहज सुख में छल नहीं होता । जिस काम में छल हो, वह दुःख देता है । जो काम निश्छल हो, अपने मौलिक स्वरुप में हो, वह सुख देता है । हम सुख चाहते हैं तो, हमें निश्छल भक्ति करनी पड़ेगी । निश्छल भक्ति का अर्थ है- जिसमें कोई तर्क-कुतर्क और संशय न हो । जहाँ प्रश्न चुक जाय । मीरा ने किसी से यह नहीं

पूछा कि पत्थर की बाँसुरी में संगीत कैसे बजेगा । उसे केवल संगीत सुनाई पड़ा । कोई सच्चा प्रेमी यह नहीं पूछता कि किस विधि से अथवा किस सिद्धान्त से प्रेम करूँ । वह तो, केवल प्रेम करता है और प्रेम का खण्ड नहीं होता । माँ के वात्सल्य का कोई सिद्धान्त नहीं होता । वात्सल्य तो, केवल वात्सल्य है । जिस प्रकार यह बताना मुश्किल है कि कितना प्रेम, कितना वात्सल्य, कितनी प्यास, कितनी पीड़ा, कितना वियोग का दर्द होता है ।

उसी प्रकार यह बताना पूर्णतः मुश्किल है कि उसकी भक्ति कितनी है । उसकी भक्ति कितनी गहरी है । इसीलिए संतों का मानना है कि भक्ति, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, वियोग को खंडो में नहीं समझा जा सकता । क्योंकि यह कहना मुश्किल है कि किसी पत्नी को अपने पति के वियोग से कितना दुःख हुआ । उससे किसी ने कितना प्रेम किया । उसे कितनी प्यास लगी थी । ठीक उसी प्रकार भक्ति जब भक्त में उतरने लगती है तो, बताना मुश्किल होता है कि कितनी मात्रा में भक्ति उतरी है । इसलिए हमारे संत कहते हैं– "केवल भक्ति करो, इस पचड़े में मत पड़ो कि तुम कितनी भक्ति करते हो, कैसी भक्ति करते हो, किस विधि से करते हो, यह सब विषय तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा एक ही विषय है- आत्मसर्मपण ।"

विशेष प्रसंग

इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते है-

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।"

भगवान् कहते है कि तुम मेरे हो, मुझमें समर्पित हो जाओ । जिस प्रकार नदी से एक लोटा जल निकाल लिया जाय, और फिर उस जल को मिलाना पड़े तो, लोटे का जल यह पूछे कि मैं किस विधि से नदी में मिलूं । लोटे का जल नदी का ही है, नदी ही उसका उद्‌गम है । ठीक उसी प्रकार भक्त परमात्मा के विराट स्वरुप का अंश है । उसे पूर्ववत् अपने मूलस्वरूप में विलीन हो जाना है । इसके लिए न कोई तर्क है, न विधि है, केवल समर्पण है, आत्मविस्मरण । अलग होने में बोध का अभाव । यही सारुप्य भक्ति होती है, स्वयं परमात्ममय हो जाना । शरीर के सभी अंग में परमात्मा का प्रकाश भरा हुआ है । शरीर के रोम-रोम में परमात्मा का प्रकाश अबाधगति से

अनवरत भर रहा है । ऐसा बोध होते ही भक्त और भगवान् एक हो जाता है । नदी का जल जब समुद्र में मिलता है तो, वहाँ केवल जल ही बचता है, न कोई नदी रहती है न समुद्र रहता है ।

भक्त और भगवान् तभी तक अलग-अलग है, जब तक बीच में माया-अहंकार खड़ा है । ज्योंही जीव और ब्रह्म के बीच से माया और अहंकार का लोप होता है, जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है । द्वैत के भाव का अभाव होते ही केवल ब्रह्म बच जाता है क्योंकि इस ब्रह्माण्ड में केवल ब्रह्म सत्य है, जो भी संसार दिखता है, वह असत्य है । विज्ञान भी मानता है कि जो भी पदार्थ दिखता है, वह झूठ है क्योंकि पदार्थ है ही नहीं । इसीलिए जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं **"ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या ।"** जगत् मिथ्या है । यह जो बाप-बेटा, पति-पत्नी, वृक्ष-पौधे दिख रहे हैं, वस्तुतः वह है नहीं । केवल दिख रहा है, जो भ्रम है । जैसे- मरूभूमि में जल दिखता है । भक्त अपनी भक्ति की रश्मि से इस भ्रम को नष्ट कर देता है और परमात्मा का सारूप्य भक्ति प्राप्त कर लेता है । वस्तुतः परमात्मा का कोई रूप नहीं है ।

चौ०

ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अनघ अनादि अनंता ॥

ब्रह्म का न कोई नाम है, न रूप है । नाम तो, इसलिए दिया जाता है कि दो व्यक्तियों में भेद किया जाय । जब दूसरा कोई है ही नहीं, इसलिए परमात्मा अनामय है । वह न बूढ़ा होता है, वहाँ न कोई पाप है, केवल वही है, और कुछ नहीं है । ऐसा अनुभव है कि पाप दो व्यक्तियों के होने से ही होता है । अकेला केवल भक्ति होती है, अकेला व्यक्ति पाप नहीं करता । इसीलिए हमारे संत अद्वैत की बात करते हैं । द्वैत में दूसरे का होना अनिवार्य है, भक्त और भगवान् की दूरी बनी रहती है । अद्वैत में दूरी होती ही नहीं ।

विशेष प्रसंग

(गीता में अर्जुन जब तक प्रश्न पूछता रहा, तब तक श्रीकृष्ण ने अपना दिव्य स्वरुप नहीं दिखाया । लेकिन अर्जुन ने जब कहा- **"शिष्यस्ते अहम्"** तब श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि तुमने अब आत्मसमर्पण कर दिया । अर्जुन का अहंकार नष्ट हो

गया । तभी श्रीकृष्ण ने कहा– **"दिव्यं देहि ते चक्षुः"** मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ । इसके बाद ही अर्जुन को इस नश्वर जगत् का बोध हुआ । यही स्थिति भक्त के साथ होती है । भक्त को सूर, मीरा और रविदास की आँख चाहिए, ताकि वह सत्य को देख सके । आइए इस भाव को संगीत के माध्यम से समझें–

गीत

प्रभु मेरे, कैसे यह सृष्टि बनाई ।

यह रहस्य किसी ने नहीं जाना, कैसे ये खेल रचाई ।
चन्द्र रवि किस ज्योति से चमके, ग्रह–नक्षत्र मुस्काई ॥
प्रभु मेरे, कैसे यह .... !

प्राणतत्त्व किस विधि से विचरे, अणु में तार समाई ।
अणु–विभु के भेद को कैसे, समझूँ मन घबड़ाई ॥
प्रभु मेरे, कैसे यह .... !

सूर्य प्राण है इस जगती का, ऊर्जा किसने बढ़ाई ।
किस विधि से आकाश की गंगा, रूप स्वरुप बनाई ॥
प्रभु मेरे, कैसे यह .... !

कोटि सूर्य निहर में चमके, नभ गंगा में ज्योति बरसाई ।
दिव्यलोक से करे नियंत्रण, अणु विभु सब हरषाई ॥
प्रभु मेरे, कैसे यह .... !

क्यों नहीं समझूँ खेल तुम्हारा, क्यों देखूं ललचाई ।
ईश–जीव का मूल एक है, क्यों नहीं लेत मिलाई ॥
प्रभु मेरे, कैसे यह .... !

इसलिए संत मानते हैं कि अनन्य भाव से प्रभु की भक्ति करनी चाहिए ।

3. अवतार स्वरूप

भगवान् श्रीराम परमात्मा के रूप में अवतार ग्रहण कर भक्तों को सुख शान्ति प्रदान करने के लिए इस भूमण्डल पर आये हैं। दरअसल भगवान् का अर्थ होता है- भग + वान्, भग का अर्थ है- जो छह दिव्य शक्तियों से विभूषित हो। जब परमात्मा अवतार ग्रहण करते हैं तो, वे विभिन्न लीला कर स्वलोक चले जाते हैं। उनके जाने के बाद उनके भक्त उनकी स्मृति को आस्था और विश्वास के सहारे मूर्ति अथवा चित्र बनाकर उनकी पूजा करते हैं। मंदिरों में परमात्मा की मूर्ति इसी दृष्टि से स्थापित की जाती है।

यह हमारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी दिव्य परमात्मा का स्थूल रूप है। ब्रह्माण्ड के संबंध में कहा जाता है कि इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि इसमें सैकड़ों सूर्य मण्डल हजारों निहारिकायें और अनेक आकाशगंगा समाहित हैं। इधर हाल के वैज्ञानिकों ने यह मान लिया है कि इस ब्रह्माण्ड का फैलाव पचास करोड़ प्रकाश वर्ष का है। इस विराट ब्रह्माण्ड का नियंत्रण करने वाला परमात्मा जब अवतरित होता है तो, वह ब्रहाण्ड के कण-कण में व्याप्त रहते हुए अवतार का स्वरुप लेता है। विज्ञान कहता है कि इस ब्रह्माण्ड में सब कुछ है। यहाँ नया कुछ नहीं होता। आज जो वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, वह किसी वस्तु की खोज नहीं करते, विधि की खोज करते हैं। किस विधि से किस मात्रा में ऑक्सीजन और हाईड्रोजन को मिलाया जाए तो, पानी बन जाए। पानी तो, वातावरण में पहले से है। विज्ञान ने पानी को नहीं खोजा, विधि को खोजा। उसी प्रकार प्राण-तत्त्व ब्रह्माण्ड में पहले से है। केवल पाँच तत्त्वों की मेल से शरीर प्राण को धारण करने योग्य बन जाता है।

तत्त्वज्ञानी इसी का पता लगाते हैं। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में परमात्मा है लेकिन हमें पता नहीं, उसी प्रकार शरीर में प्राण है इसका भी ज्ञान हमें नहीं है। हम जब तक ब्रह्माण्ड के साथ सांस लेते रहते हैं, तब तक जीवित हैं। तार टूटते ही मृत हो जाते हैं। परमात्मा अवतार लेकर जीव को यही बताता है- "तुम हमेशा परमात्मा से जुड़े रहो। तुम स्वस्थ, प्रसन्न और आनंदित रहो। संसार से जुड़ोगे तो, गये। तुम्हें कोई बचाने वाला नहीं है, क्योंकि संसार तो, स्वयं नाशवान् है।" जो लोग परमात्मा में निष्ठा नहीं करते, वही संसार में जुड़ने का प्रयास करते हैं। क्योंकि आस्था के

विरूद्ध मन में शंका उठती है । आस्था जब डोलने लगती है तो, मन में संदेह उत्पन्न होता है और दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में मन में संशय उठता है । भगवान् कहते हैं, इससे बचो ।

राम मनुष्य बनकर हमारे साथ जीते हैं । हमारे बीच रहकर हमारे समान व्यवहार करते हैं । और साथ रहकर हमें अनीति पर चलने से रोकते हैं । आज की परिस्थिति में श्रीराम, हमारी अनिवार्य आवश्यकता बन गये हैं । अब तो, श्रीराम को मंदिरों से बाहर निकालकर घर में स्थापित करने की आवश्यकता है, ताकि वे प्रत्येक परिवार के बुजुर्ग बनकर परिवार का मार्गदर्शन करें । जब कभी भक्त श्रीराम की मूर्ति अथवा चित्र के सामने बैठता है, तब ऐसा लगता है मानों बाहर का राम भीतर मन में रूपान्तरित हो रहा है । मनुष्य पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाए वह संसार को देखते हुए भी संसार को न देखे । ठीक वैसे ही जैसे- कमल का फूल पानी में रहते हुए भी पानी में लिप्त नहीं होता, यही भक्ति है । भक्ति संसार से भागने में नहीं है । संसार में रहकर उससे अलग रहने में है । शास्त्र कहता है "जब तुम परमात्मा को धारण कर लोगे तो, अनन्त इच्छाओं और वासनाओं की लहरें जो भीतर उठ रही हैं, वह स्वत: शान्त हो जाएँगी । धन की कामना, पुत्र की कामना, यह सब संसार है । यही मनुष्य को नीचे की ओर खींचती है ।" कहा गया है-

कितना भी धन संग्रह कर लो, मन में शान्ति नहीं होती ।
भर लो हीरा मोती घर में, किसी कफन में जेब नहीं होती ॥

भारत में अवतारों की पूजा की जाती है । हम अपने मन के भावों को एकाग्र कर परमात्मा से एकाकार होते हैं । तभी हमें परमात्मा का आशीर्वाद मिलता है । कथा-कीर्तन से मन के विकार नष्ट होते हैं । और इसके प्रभाव से हम अपने चरित्र को निर्मल बनाने का प्रयास करते हैं ।



आत्मनिवेदन

मैं तो सामान्य व्यक्ति हूँ, प्रभु की झलक पाने को आज भी बेकरार हूँ। चाहता हूँ किसी बहाने झरोखे पर बैठे इस प्रभु की एक झलक मिल जाए ताकि जीवन को धन्य बना सकूं। अभी तक कुछ मिला नहीं, जीवन में इतने थपेड़े खाये, अपनों ने ऐसे धक्के दिये कि भागकर श्रीराम के चरणों में थोड़ी शान्ति अनुभव करने लगा हूँ। लेकिन इस संसार के सम्पर्क ने मेरी जिन्दगी को इतना उबड़-खाबड़ और वीरान बना दिया है कि लाख चाहने पर भी प्रभु के नाम का अंकुर उपज नहीं पा रहा है। क्योंकि संसार का कूड़ा करकट मन में इतना इकट्ठा हो गया है कि जीवन का सारा रस सूख चुका है। केवल इस आस में बैठा हूँ कि प्रभु की कृपा दृष्टि कभी तो होगी। जब से राम-कथा गाने लगा हूँ, लोगों की आँखें मेरी वीरान भूमि की ओर उठने लगी हैं। शायद यह भी प्रभु श्रीराम की कोई कृपा होगी। नहीं तो, इतने लोगों का अपार प्रेम मुझे कैसे मिलता?

कैसे कहूँ कि तुमने मेरी जिन्दगी को वीरान बना दिया।
इस राम कथा ने मुझको आम से खास बना दिया॥

बहुत कोशिश कर रहा हूँ कि राम कथा को संगीत के रस में डूबो कर प्रभु को अर्पित करूँ, लेकिन इस तन में इतनी विकृतियाँ भरी है कि हृदय से रस नहीं निकल रहा है, क्योंकि रस तो, सरल हृदय से निकलता है और मेरे हृदय में जो विकारों का कचरा भरा है, उसमें से रस कैसे निकलेगा फिर भी-

गीत गाना चाहता हूँ स्वर में राग नहीं मिलता।
राम को गा सकूँ वह साज नहीं मिलता॥
जो गा सकूं वह साज नहीं मिलता।
तुम्हें अपना बनाया है फिर भी मुझे प्यार नहीं मिलता॥

प्रभु ने तो, बार-बार सावधान किया है कि अगर तुम मुझे पाना चाहते हो तो, मन को निर्मल बनाओ, तुम्हारे हृदय में मैं कैसे बैठूं? वहाँ तो, पहले से तुम्हारे अन्दर विकृतियाँ, काम, क्रोध, अहंकार बैठा है, वहाँ जगह कहाँ है जो मैं बैठूं। मुझे बिठाना चाहते हो तो, पहले जगह तो खाली करो। तुम चाहते हो तुम्हारे मन में विकार भी रहे और मैं भी रहूं। दोनों संभव नहीं है।

जीवन की समीक्षा

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिससे जीवन की तुलना की जाए। आज के युग में धन का बड़ा महत्त्व है। लेकिन धन भी जीवन से बढ़कर नहीं है। लोग मूर्खता वश धन प्राप्त करने के लिए जीवन को कष्टमय कर लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इसलिए कमाता है कि वह सुखी हो जाए। लेकिन वह नहीं समझता कि आज तक धन ने किसी को सुख नहीं दिया। धन से तो, दुःख मिलता है। जितना अधिक धन उतना अधिक दुःख। इसीलिए हमारे संत कहते हैं- **"पायो जी मैंने राम रतन धन पायो"**।

जिस व्यक्ति को राम मिल जाता है, उसे और कोई धन नहीं चाहिए। यही कारण है कि बरगद के पेड़ के नीचे बैठा संत, जितना शान्त और सुखी है, उतना महलों में बैठे लोग कभी सुखी नहीं हो पाते। धन जीवन के लिए आवश्यक है, लेकिन वह सब कुछ नही है। धन जीवन से बड़ा नही है। हमारे समाज में बहुत ऐसे लोग हैं जो मृत्यु के पहले ही मर जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को शतायु, सौ वर्षों तक जीने का अधिकार है लेकिन लोग मूर्खतावश भोग, विलास, काम, क्रोध, धन, वैभव, परिवार आदि के कीचड़ में फंस जाते हैं और कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटने लगते हैं। उन्हें याद भी नही रहता कि उनका कोई जीवन है। ऐसे लोगों को केवल कोल्हू ही याद रहता है। मनुष्य अपनी इच्छा, कामना और वासना को इतना बढ़ा लेता है कि उसे पूरा करने में वह जीवन का सुख छोड़कर अपना सुन्दर जीवन बिता लेता है।

कामना तो कभी पूरी नहीं होती और जीव उसे पूरा करने में ही मर जाता है। कामना का अहंकार मृत्यु का कारण बनता है। इसलिए मेरा मानना है कि मनुष्य का

सबसे बड़ा धन उसका सुन्दर स्वरुप है । यह स्वरुप कैसे बना रहे इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है । क्योंकि स्वरुप वाला व्यक्ति ही धन कमा सकता है । आजकल मनुष्य इतना विकारग्रस्त हो गया है कि जहाँ से हमें जीवन प्राप्त होता है उसे याद भी नहीं रखता । किसी को कभी इस प्रकृति से सम्पर्क नही होता । फलतः हम बीमार पड़ जाते हैं । जब तक हम पृथ्वी के साथ लयबद्ध होकर सांस लेते रहेंगे, तब तक स्वरुप रहेगा। क्योंकि इसी प्रकृति में हमारे राम का निवास है ।

हम प्रातः काल परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा मुझे शक्ति दो, शान्ति दो ।" अंतरिक्ष की ओर दोनों हाथ उठाकर प्रार्थना करना बड़ा उपयोगी होता है। जो व्यक्ति सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनि से ऊर्जा मांगता है, उसे ऊर्जा प्राप्त होती है । मानसिक रूप से सूर्य से ऊर्जा ग्रहण करना बड़ा उपयोगी होता है । इसलिए सूर्यभेदन और चन्द्रसेवन प्राणायाम किया जाता है । प्रकृति अथवा अंतरिक्ष से अपने को जोड़ना सबसे अधिक उपयोगी होता है । प्रकृति की सांस में सांस मिलाकर अंतरिक्ष से ऊर्जा ग्रहण करने पर शरीर और मन को सीधे लाभ होता है।

प्रश्न यह है कि तुम कितने शान्त भाव से अंतरिक्ष से जुड़ते हो । इसी को समक्रमिकता कहते हैं। जो लोग ऐसा नहीं करते, वे जिन्दगी जीने में चूक जाते हैं। हमारी जिन्दगी में अनेक पल हैं लेकिन एक पल मे कितनी जिन्दगी धीमी है, इस पर विचार करना चाहिए। मनुष्य इन पलों को व्यसन में व्यतीत कर देता है । लेकिन संत पुरुष इन पलों को राम में लगा देता है-

रमा विलास मन अंश त्यागे, प्रभु से नेह लगाये ।
मनोवांछित फल नर पावे, एक छोड़े कई पाये ॥
दिव्य अनन्त अनादि अगम प्रभु के, विभु से अणु बनाये ।
ध्यान करो उस दिव्य विभु का जो तन को ब्रह्म बनाये ॥

जिस दिन हमारे मन में प्रभु के प्रति इस तरह का भाव आ जाता है, हमारा जीवन प्रकाशमय बन जाता है-

काम का वेग खद्योत सम क्षण क्षण करे हिलोर ।
लहर उठे जिमि जल निधि, देखि चन्द्र इजोर ॥

इसलिए अगर हमें अनन्त बनना है, ब्रह्म बनना है तो, अनन्त जैसा सोचना पड़ेगा । छोटी सोच से बड़ी चीज नहीं मिलती । अनन्त का चिन्तन करने से मनुष्य अनन्त बन जाता है । इसी दृष्टि से इस श्रीराम कथा को मैंने जीवन का महाकाव्य कहा है । क्योंकि इसमें वह सब कुछ है, जो हमें चाहिए । कहते हैं-

भक्ति गीत से बंजर मन में नव नव अंकुर आये ।
भक्ति प्रेम की रस वर्षा से फूल चमन में खिलाये ॥
ना घट तेरा ना घट मेरा कौन किसे समझाये ।
रैन वसेरा यह जग भाई रात कटे घर जायें ॥

परमात्मा पर आस्था और स्वयं पर विश्वास करें

मनुष्य का मन बड़ा चंचल होता है । वह कहीं भी टिक नहीं पाता, जिस कारण वह कहीं पहुँच नहीं पाता । मनुष्य कहीं न कहीं पहुँचना चाहता है, कुछ पाना चाहता है । लेकिन चंचलता के कारण वह कहीं नहीं पहुँच पाता । इस चंचलता से बचने के लिए मनुष्य को परमात्मा पर भरोसा करना पड़ता है । जो एक बार परमात्मा के दर पर टिक जाता है । उसे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होती । जीवन में भटकाव तभी तक है, जब तक वह संसार में दौड़ता रहता है, ज्योंही इसकी दौड़ परमात्मा तक हो जाती है तो, सारी दौड़ वहीं समाप्त हो जाती हैं । परमात्मा का मिलन होते ही उसकी सारी कामना वहीं नष्ट हो जाती है । मनुष्य जहाँ से चलता है, वह वहीं पहुँच जाता है । फिर अन्यत्र जाने का प्रश्न कहाँ है? मैनें जो श्रीराम कथा कही है, उसका एक ही उद्देश्य है कि मनुष्य की सारी दौड़ राम तक पहुँच कर समाप्त हो जाए अन्यथा कई जन्मों तक मनुष्य दौड़ता रहेगा लेकिन कहीं नहीं पहुँचेगा । इसलिए मैं मानता हूँ कि रामकथा दौड़ते हुए जीवन का विश्राम स्थल है । जो ज्ञानी लोग हैं, उनका यह

अनुभव होगा कि जब वे राम कथा में बैठते हैं तो, मन की चंचलता समाप्त हो जाती है । मन के सारे बुरे विचार नष्ट हो जाते हैं । यही तो हमारे जीवन का उद्देश्य है ।

मनुष्य थोड़े से सुख के लिए भविष्य की अनेक बड़ी-बड़ी परेशानियों को स्वयं बुला ले, यही अज्ञान है, जिसके चक्र में पड़कर मनुष्य कराहता रहता है । सच पूछा जाए तो, जो मनुष्य अपार सुख शांति का महासागर है वह थोड़ी सी भूल के कारण आशांति कलह और तनाव में रहकर अपने सुन्दर जीवन को नष्ट कर लेता है । मुझे लगता है कि मनुष्य के समान दुःखी प्राणी और कोई नहीं है । पशु-पक्षी या अन्य जीव उतना दुःखी नहीं होते, जितना मनुष्य दुःखी रहता है । इसका कारण यह है कि पशु को विचार करने की शक्ति नहीं है, विवेक का अभाव है और मनुष्य बहुत विचारवान् है, वह बहुत सोचता है, चिन्ता करता है, जिस कारणं उसकी अपनी सरलता नष्ट हो जाती है । पशु सरल है, वह ज्ञानी नही बनता, वह अपने भविष्य की बहुत चिन्ता नहीं करता, प्रकृति के साथ बहने लगता है, लेकिन मनुष्य प्रकृति का विरोध करता है, वह प्रकृति के प्रतिकुल आचरण करने लगता है, जिस कारण उसे दुःखी होना पड़ता है ।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है- मनुष्य स्वयं पर विश्वास नहीं करता । वह दूसरों पर तुरन्त विश्वास कर लेता है । लेकिन स्वयं को उपेक्षित मानता है । जिस दिन मनुष्य स्वयं पर विश्वास करना सीख लेगा, उसी दिन सुखी बन जाएगा । मनुष्य दुसरों के साथ रहकर सुख प्राप्त करना चाहता है, वह पत्नी, बच्चे एवं परिवार में सुख खोजता है जहाँ उसे केवल निराशा मिलती है । मनुष्य की परेशानी यह है कि वह अपने साथ जीना नहीं चाहता जीने के लिए उसे दूसरा कोई चाहिए । जो व्यक्ति स्वयं अपने साथ नहीं रह सकता, वह दूसरों के साथ कैसे रहेगा । इसलिए मेरा तो, मानना है कि मनुष्य स्वयं में स्वयं के साथ जीने लगे तो, समझ लेना चाहिए कि वह सिद्ध हो गया । संसार चलाने के लिए अथवा कोई पाप करने के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, लेकिन साधना अकेले की जाती है । जब मनुष्य एक क्षण के लिए भी साथ जी लेता है तो, यही उसका स्वर्ग होता है । स्वर्ग का अर्थ होता है- "स्वयं में जीना व स्वयं में अस्त होना ।" स्वयं को पहचान लेना, मनुष्य के लिए मुश्किल इसलिए है

कि वह अपना सुख दूसरों में खोजता है और वह दूसरा अपना सुख तीसरे में खोजता है । यह भटकाव अनन्त काल से चला आ रहा है । इसलिए मैं अपने मित्रों को परामर्श देता हूँ कि सुख को बाहर मत खोजो, तुम्हारे अन्दर सुख का महासागर लहरा रहा है । अपने से भागो मत, अपनी ओर ध्यान दो ।

राम जन्म के समय श्रीराम ने माता कौशल्या को अपना विराट रूप दिखाया । कौशल्याजी ने देखा कि इस छोटे से बालक में विराट ब्रह्माण्ड छिपा हुआ है । इसका अर्थ है- हमारे अन्दर भी विराट ब्रह्माण्ड है । लेकिन हम उस ब्रह्म को अन्दर खोजने के बजाए बाहर खोजना पसन्द करते हैं । हमें बाहर खोजने में मजा मिलता है, इसीलिए जंगलों और पहाड़ों पर हम भटकते रहते हैं । हमारे संत कहते हैं **"मोको कहाँ ढूंढै बंदे मैं तो तेरे पास रे ।"** इस भाव को मैं अपनी दो पंक्तियों में स्पष्ट करता हूँ-

दूर गगन का चाँद, सदा मोहक लगता है ।
आँगन की परछाई से, डर लगता है ।
जो है कोसो दूर, वही प्रियतम लगता है,
हस्त कमल से नील कमल अपना लगता है ।
मन की गति अनंत है हस्त कमल ना दिखाए,
जो जितना दुर्लभ रहे ता पें प्रीत बढ़ाए ।
जो जितना दुर्गम रहे, मन को वही लुभाए,
घर की पूजा छोड़कर, खोजन दुर्गम जाए ।

आज का मनुष्य स्वतंत्र नही है । कोई भी व्यक्ति स्वयं कोई निर्णय नहीं लेता, वह किसी भी निर्णय के लिए दूसरों पर आश्रित हो जाता है । यह एक प्रकार की दासता है और इसी दासता के कारण उसका विकास नही होता । क्योंकि वह अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण निर्णय दूसरों से पूछकर करता है । जैसे उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं हो, कुछ लोग विचारों के दास होते हैं और कुछ लोग विकारों के

दास होते हैं । मनुष्य भूल जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन है । जीवन को कैसे जीएँ, यह उसका अपना मामला है । तुम्हारे जीवन के संबंध में कोई दूसरा निर्णय नहीं ले सकता, अगर लेता है तो, यह गलत निर्णय होगा । मनुष्य का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि वह दूसरों के समान जीना चाहता है, यह भी उसकी दास्तां है । दूसरों की नक़ल कर अपने जीवन को वैसा ही बनाने का प्रयास करना आत्मघाती कदम है । क्योंकि कोई भी व्यक्ति दूसरों की तरह नहीं बन सकता । परमात्मा ने प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन अपने अनुसार जीने के लिए दिया है । अगर किसी संत को देखकर तुम भी वैसा ही संत बनना चाहते हो तो, यह संभव नहीं है । क्योंकि जब भी तुम्हारी प्रवृत्ति पर किसी बाहर की शक्ति का प्रयोग होगा तो, तुम बिखर जाओगे । इसलिए स्वयं में जीने का प्रयास करो । क्या किसी दूसरे पौधे में हम गुलाब का फूल खिला सकते हैं?

कोई डॉक्टर किसी की जाँच कर यह सर्टिफिकेट दे सकता है कि वह बीमार है या उसे अमुक बीमारी है, लेकिन कोई भी डॉक्टर यह सर्टिफिकेट नहीं दे सकता कि वह पूर्ण स्वस्थ है । क्योंकि स्वस्थ रहना उसका स्वभाव है । सुखी रहना, गीत गाना, मुस्कुराना मनुष्य का स्वभाव है । लेकिन बीमार होना, दुःखी और चिंता में रहना उसका स्वभाव नहीं है । यह आरोपित है, इसलिए इसकी पहचान हो जाती है । लेकिन पूर्ण स्वस्थ की पहचान तो तभी होगी, जब उसके मूल स्वरुप की पहचान की जाएगी और यह मूल स्वरुप हमें परमात्मा से प्राप्त होता है । जिस दिन हमारी आँखें दूसरों को देखना बन्द कर देगी, उस दिन सुखी हो जाएंगे । क्योंकि मनुष्य दूसरों के कारण ही दुःखी होता है ।

मनुष्य अगर संयमपूर्वक सरल जीवन जीते हुए परमात्मा का चितंन करे और उससे आशीर्वाद माँगे तो, वह कभी दुःखी नहीं हो सकता । इसीलिए परमात्मा को करूणानिधान और दयासागर कहा जाता है ।

(उत्तरकाण्ड समाप्त)

जय श्रीराम

जानने योग्य महत्त्वपूर्ण बातें

हमारे शास्त्रों में कई स्थानों पर प्रतीक शब्दों का प्रयोग किया गया है । ये ऐसे शब्द हैं जो सामान्यतः प्रयोग में नहीं आते । लेकिन जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इन प्रतीक शब्दों के अर्थ और व्याख्या का ज्ञान होना चाहिए ।

1. वेद चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ।
2. पुराण अठारह हैं- विष्णु, नारद, भविष्य, गरुड़, कूर्म, मत्स्य, मार्कण्डेय, शिव, पद्म, ब्रह्म, अग्नि, वराह, ब्रह्मवैवर्त, वायु, लिंङ्ग, भागवत, स्कन्द ।
3. उपनिषद् एक सौ आठ हैं- इसमें ईशावास्योपनिषद् मांडूक्य, छान्दोग्य, ऐतरेय, केन, प्रश्न आदि ।
4. शास्त्र माने जाते हैं- चार वेद, छह वेदांग, पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा और स्मृति ।
5. छह आस्तिक दर्शन हैं- सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदांत । इसके अतिरिक्त तीन नास्तिक दर्शन माने गए हैं- चार्वाक, जैन, बौद्ध ।
6. अवस्था- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तूरिय ।
7. आश्रम चार हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ।
8. आकार चार हैं- अंडज, पिंडज, जलज, और उद्भिज ।
9. अलंकार- अलंकार बारह हैं- नूपुर, किंकिणी, हार, चूड़ी, मुंदरी, कंकण, बाजूबंद, कंठश्री, बेसर, बिछिया, टीका, शिरफूल(चूड़ामणि) ।
10. ऋतु- ऋतु छह हैं- बसन्त(चैत्र, बैशाख), ग्रीष्म(ज्येष्ठ, आषाढ़), वर्षा(श्रावण, भाद्रपद) शरद्(आश्विन, कार्तिक), हेमन्त(अगहन, पौष), शिशिर(माघ, फाल्गुन) ।
11. युग चार हैं- सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग । चार युग= 1 महायुग, 71 महायुग= 1 मन्वन्तर, 14 मन्वन्तर= 1 कल्प ।
12. गुण- गुण तीन होते हैं-सत, रज, तम ।
13. तत्त्व- तत्त्व पाँच होते हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश ।

14. त्रिविधकर्म- त्रिविधकर्म तीन होते हैं- संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण ।

15. शरीर- शरीर तीन होते हैं- स्थूल, सूक्ष्म, कारण ।

16. दिक्पाल- दिक्पाल दस होते हैं- पूर्वदिशा इंद्र का आग्नेय कोण(अग्नि), दक्षिण के यम, नैऋत्य के निऋति, पश्चिम के वरूण, वायव्य के वायु, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईशान ।

17. भक्त- भक्त चार प्रकार के होते हैं- आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञाननिवास।

18. भक्ति- भक्ति नौ प्रकार की होती हैं- सत्संग, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चन, वंदन, आत्मनिवेदन, दासत्व ।

19. योनि- योनि चौरासी लाख होती है । जिसमें जीव को भ्रमण करना पड़ता है । नौ लाख जलचर, सताइस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कृमि, दस लाख पक्षी, तेइस लाख चौपाया और चार लाख मनुष्य ।

20. श्रृंगार- श्रृंगार सोलह हैं- अंग शुचि मज्जन, अमल वसन, यावक, केश सवाँरना, मांग में सिन्दूर लगाना, भाव तिलक, चिबुक पर तिल, मेंहदी, अरगजा, भूषण, पुष्प, सुगंध, मुखराज, दाँत रंगना, अधरराग, काजल ।

21. सप्तऋषि- सप्तऋषि सात हैं- कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, जमदग्नि, गौतम ।

22. समीर- समीर तीन हैं- शीतल, मंद, सुगंध ।

23. सिद्धि- सिद्धियाँ आठ हैं:-

1. **अणिमा-** यह प्रथम सिद्धि है जिससे योगी लोग अणु के समान सूक्ष्म रूप धारण कर सकते हैं और किसी को दिखाई नहीं पड़ सकते। इस प्रकार कठिन से कठिन पदार्थ में प्रवेश कर जाते हैं।

2. **महिमा-** इस सिद्धि की सहायता से योगी अपने आप को बहुत बड़ा बना लेते हैं।

3. **गरिमा-** इसका अर्थ है गुरुत्व व भारीपन। इससे साधक चाहे अपने को जितना अधिक भारी बना सकता है।

4. लघिमा– इस सिद्धि के द्वारा साधक अपने को जितना चाहे उतना हल्का बना लेता है।

5. प्राप्ति– जो इच्छित वस्तुएँ होती हैं, इस सिद्धि के प्राप्त होने पर उपलब्ध होने लगती हैं।

6. प्राकाम्य– इससे मनुष्य की इच्छा का आघात नहीं हो सकता है। कभी भी रूकावट नहीं आ सकती है। इच्छा व्यक्त करने पर वह पृथ्वी में समा सकता है और आकाश में उड़ सकता है।

7. ईशित्व– इस सिद्धि के मिलने पर व्यक्ति अपना पराक्रम सबों पर दिखा सकता है। सभी लोग उसके वश में हो सकते हैं।

8. वशित्व– चेतन, स्थावर-जंगम, चराचर सभी भूतों को वश में किया जा सकता है।

24. संस्कार– संस्कार सोलह होते हैं– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, विद्यारंभ, उपनयन, विवाह-संस्कार, समावर्तन, केशान्तक, वेदारंभ, अंत्येष्टि ।

25. काल– काल तीन होतें हैं– भूत, वर्तमान और भविष्य ।

26. दिशा– दिशाएं दस हैं– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चार कोण, आकाश और पाताल ।

27. लोक– लोक तीन होते हैं– ऊपर, नीचे और पृथ्वी ।

28. भुवन– भुवन चौदह होते हैं– सात ऊपर और सात नीचे ।

29. इन्द्रियाँ– इन्द्रियाँ दस होती हैं– पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ । ग्यारहवां मन ।

30. पंचकन्या– पंचकन्या पाँच हैं– अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, और मंदोदरी ।

31. पंचगंगा– गंगा, यमुना, सरस्वती, किरण और धुतपापा ।

32. पंचगव्य- गाय का दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र ।

33. पंचगुण- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ।

34. पंचब्राह्मण- सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, औतकल ।

35. पंचप्राणी- मनुष्य, नाग, गंधर्व, देव और पितर ।

36. पंचदेव- विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और दुर्गा ।

37. पंचनाथ- बद्रीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ, श्रीनाथ ।

38. पंचपिता- पिता, उपनेता, श्वसुर, अन्नदाता, भवत्राता ।

39. पंचप्राण- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ।

40. पंचव्याधि- अर्श, यक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह, और उन्माद ।

41. पंचबक्त्रा- दुर्गा ।

42. अग्नि- अग्नि मुख्यतः तीन है- पेट की अग्नि जठराग्नि, समुद्र की आग बड़वानल और जंगल की आग दावानल । इसके अतिरिक्त दस अग्नियों के नाम भी शास्त्र में मिलते हैं । भ्राजक, रंजक, क्लेदक, स्नेहक, धारक, बंधक, द्रावक, व्यापकं, मापक, श्लेष्मक ।

43. मानस के सात काण्ड- बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुंदरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड ।

44. द्वादशज्योतिर्लिंग- केदारेश्वर, व्यंकटेश्वर, ओंकारेश्वर, मल्लिकार्जुनेश्वर, भीमेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, महाकालेश्वर, सोमनाथ, विश्वनाथ, घुश्मेश्वर, रामेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर ।

45. शक्तिपीठ- शक्तिपीठ बावन हैं ।

46. अवतार- सामान्यतः चौबीस अवतार माने जाते हैं ।

47. ग्रह- ग्रह नौ होते हैं- पृथ्वी, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, सूर्य, शनि, राहु, केतु ।

48. नक्षत्र- नक्षत्र सताइस होते हैं । चन्द्रमा एक पक्ष में जो दूरी तय करता है, उसे नक्षत्र कहते हैं ।

49. राशि– राशियाँ बारह होती हैं, एक मास में पृथ्वी जो दूरी तय करती है उसे एक राशि कहते हैं ।

50. बासुकीतारा मण्डल– विज्ञान को अभी इसकी जानकारी बहुत कम है । अनुमान है कि सूर्यमंडल बीस लाख किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से बासुकीतारा मंडल की ओर भाग रहा है ।

51. सूर्य का व्यास आठ लाख छियासी हजार मील है । सूर्य प्रति सेकेण्ड दस अरब इक्कीस करोड़ किलोवाट शक्ति फेंकता है । सूर्य से दो सौ बीस करोड़वाँ अंश ताप पृथ्वी पर आता है ।

52. पृथ्वी– पृथ्वी पर सत्तर प्रतिशत जलांश हैं । जितना हमारे शरीर में हैं । पृथ्वी पर तेरह करोड़ सोलह लाख वर्गमील जलांश है । समुद्र चार हजार से लेकर पैंतीस हजार फीट तक गहरा है । पृथ्वी एक वर्ष में अठावन करोड़ छियालिस लाख किलोमीटर की दूरी तय करती है । इसकी गति छियासठ हजार छह सौ किलोमीटर की है । पृथ्वी का व्यास तेरह हजार किलोमीटर है । यह अट्ठाईस किलोमीटर प्रति सेकेण्ड से चल रही है ।

53. मनुष्य– मनुष्य पृथ्वी का विवेकशील प्राणी है । मनुष्य अपने कर्मों से परमात्मा को पा सकता है । देवता परमात्मा को नहीं पा सकते । यह मनुष्य 70 वर्ष की अवस्था होने तक सौ टन भोजन खा जाता है । 70 वर्ष का आदमी तेरह वर्ष सोता है । छह वर्ष खाता है, यह अनुमान है ।

54. साधना– साधना का अर्थ है, अपनी इन्द्रियों को ध्यानस्थ देना ।

55. उपासना– परमात्मा की निकटता प्राप्त करना ।

56. आराधना– अपनी साधना को विस्तार कर लोक कल्याण की भावना से परमात्मा के प्रकाश को फैलाना ।

57. नवाह्नपाठ– रामचरितमानस के पाठ को नौ दिनों में पूरा करना ।

58. मासपरायण– मानस के पाठ को एक महीने में पूरा करना ।

59. श्रुति– वेद को सुनकर याद कर उसे पुनः लिखने का ज्ञान ।

60. आगम– जो सब कुछ जान चुके हैं । उनकी कही गई बातें ।

61. निगम- वेद के अर्थ को बोध कराने वाला ग्रंथ ।
62. होता- यज्ञ करने वाला ।
63. ब्रह्मा- यज्ञ कराने वाला ।
64. हवि- यज्ञ का बचा हुआ अंश ।
65. धारणा- योग की अंतिम तीन अवस्थाओं में एक । धारणा में प्रभु के प्रति एकाग्रता होती है । यहाँ प्रभु और साधक अलग-अलग होता है ।
66. ध्यान- विषय अथवा प्रभु के साथ एक लय हो जाना । तेल की धारा की तरह लगातार प्रभु में ध्यानस्थ होना ।
67. समाधि- जहाँ न साधक रहता है, न विषय रहता है । साधक पूर्णतः विलीन हो जाता है । इसी को संयम कहा गया है ।
68. आत्मद्रष्टा- जो अपनी आत्मा का दर्शन कर सके ।
69. संसृति- जन्म-मरण का चक्र ।
70. मोक्ष- जिसके मोह का क्षय हो गया हो ।
71. महंथ-. जिसके मोह का अंत हो गया हो ।
72. महात्मा- जिसकी आत्मा महान बन गई हो ।
73. मौन- जिसकी वाणी मूक हो गई हो ।
74. मुनि- जिसने मन पर नियंत्रण कर लिया हो ।
75. साधु- जिसने इन्द्रियों को साध लिया हो ।
76. शस्त्र- हाथ में रखकर चलाये जाने वाला हथियार ।
77. अस्त्र- फेंक कर चलाये जाने वाला हथियार ।
78. एकदन्त गणेश- पौराणिक कथा है कि समुद्र मंथन से प्राप्त ऐरावत हाथी इन्द्र को मिला । एक दिन वह अधिक मदिरा पी गया । वह तोड़-फोड़ करने लगा, तभी इन्द्र ने अपने बज्र से प्रहार किया उसका एक दाँत टूट गया । वह मूर्छित होकर गिर पड़ा, उसी के सिर काटकर शंकर के गणों ने गणेश को तब लगाया जब शंकरजी ने अपने त्रिशुल से सिर को काट दिया था, इसीलिए वे एकदंत हो गए ।

79. चन्द्रमौली शिव- शिव के माथे पर चन्द्रमा है, कहा जाता है कि चन्द्रमा ने वृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया था। जिससे बुद्ध का जन्म हुआ, उस पर देवता कुपित होकर चन्द्रमा से लड़ने पहुंचे। उनके भय से चन्द्रमा भागकर भगवान् शिव के पास पहुंचा। शिव ने उसे अपने सिर पर स्थान दे दिया।

80. मंगलम् भगवान् विष्णु ....

इस मंत्र में पुंडरीक और काक्ष का नाम आया है। पुंडरीक ब्रह्माजी का मानस पुत्र था। वह एक दिन संध्यावन्दन करने जा रहा था। शाम हो गई थी, तभी जंगल में एक आदिवासी लड़की, जिसका नाम काक्षा था, पुंडरीक को मिली। पुंडरीक और काक्षा में प्रेम हो गया और दोनों ने विष्णु की आज्ञा से विवाह किया। इस पर प्रसन्न होकर विष्णु ने इन दोनों को वरदान दिया कि जहाँ मेरी पूजा होगी, वहाँ तुम दोनों की भी पूजा होगी। इसलिए मंत्र में पुंडरीकाक्ष आया है। कुछ लोग इसे विष्णु का नाम भी मानते हैं।

पुण्डरीकाक्ष अर्थात् पुण्डरीक (कमल) और अक्ष (नयन) कमल के समान आँखों वाला अर्थात् विष्णु। इस शब्द का प्रयोग पवित्रिकरण मंत्र में भी आया है। मान्यता है कि विष्णु का नाम स्मरण कर लेने से व्यक्ति पवित्र हो जाता है।

81. पूजा के फूल -

भगवान् विष्णु	-	बैजयन्ती एवं अन्य सुगंधित फूल
भगवान् शिव	-	धतूरा, अकवन, अपराजिता एवं बेलपत्र
ब्रह्मा	-	सफेद फूल
लक्ष्मी	-	प्रत्येक सुन्दर और सुगंधित फूल
सरस्वती	-	सफेद फूल
हनुमान्जी	-	सफेद एवं पीला फूल। हनुमान्जी को अधिक लाल विशेषकर ऊरूहुल का फूल नहीं चढ़ाना चाहिए।
माँ दुर्गा	-	ऊरूहुल का फूल, गुलाब, चमेली आदि।

82. रूद्राक्ष- कहा जाता है यज्ञ कुंड में सती के जलने के पश्चात् भगवान् शिव क्रोधित हो गये। उनकी आँखों से जब क्रोध टपके तो, वह रूद्राक्ष बन गया । रूद्राक्ष की माला धारण करना हृदय रोगी के लिए बड़ा उपयोगी है ।

83. आरती- आरती का अर्थ-भक्त परमात्मा को अपनी करूण पुकार सुनाना चाहता है ।

84. कुण्डलिनी जागरण- साधक अपने मूलाधार में स्थित प्राण ऊर्जा को स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनहद, विशुद्ध, आज्ञाचक्र और सहस्रार तक ले जाता है, तभी उसे सिद्धि मिलती है ।

85. प्राण- प्राण अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त दिव्यशक्ति का अंश है । जो जीव को प्राणवान् बनाकर रखता है । उसी प्राण का संवर्धन सूर्यभेदन प्राणायाम और चन्द्रसेवन प्राणायाम से किया जाता है ताकि मनुष्य अधिक प्राणवान् हो सके । ब्रह्मांडीय शक्तियाँ अति सूक्ष्म हैं, जब तक जीव इन शक्तियों से जुड़ा रहता है, तब तक वह जीवित रहता है । क्योंकि प्राण ऊर्जा वहीं से आती है ।

86. प्राणायाम- प्राण का संवर्धन करना । प्राणायाम का अर्थ है- प्राण का पोषण । अस्तित्व के साथ सांस लेने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं ।

87. ज्ञानी- जो ज्ञान के द्वारा परमात्मा को समझना चाहता है ।

88. भक्त- जो अपनी भक्ति से पूजा, अर्चना और वन्दना से परमात्मा को प्रसन्न करता है ।

89. निर्गुण- जिस परमात्मा का कोई स्वरुप न हो ।

90. सगुण- जिस परमात्मा का स्वरुप हो ।

91. गुरु- जो अपने शिष्यों की जड़ता को नष्ट करे और उसमें भक्ति का प्रकाश भरे तथा उसकी सर्वविध सुरक्षा करे । ताकि शिष्य को दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट न हो ।

92. शिष्य- जो परमात्मा और अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित हो ।

93. संशय-विपर्यय- मिथ्या, अभिमान, अहंकार एवं अकारण, अज्ञान के कारण संदेह में पड़े रहना ।

94. ज्ञानी और भक्त- ज्ञानी कहता है, दूसरों को मिटा दो और भक्त कहता है स्वयं को मिटा दो ।

95. द्वैत- जहाँ दो का बोध हो । जैसे- भक्त और भगवान् ।

96. अद्वैत- जहाँ कोई दूसरा हो ही नहीं ।

97. शक्तिपात- शक्तिपात का अर्थ है जब किसी विशेष भक्त पर प्रभु की कृपा और उसकी दिव्यता का पात हो ।

98. दिव्य पुरुष- जब सामान्य पुरुष में दिव्यता उतर जाए तो, वह दिव्य पुरुष बन जाता है ।

99. आशीर्वाद- बड़ों के आशीर्वाद से मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बुद्धि बढ़ती है ।

100. गुरुचरण स्पर्श- गुरु के चरण स्पर्श करने से गुरु की ऊर्जा शिष्य के शरीर में प्रवेश कर जाती है । इसीलिए गुरु चरण को शिष्य अपने माथे से स्पर्श करता है ।

101. रस- रस नौ होते हैं- श्रृंगार, हास्य, करूण, वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, शांत और अद्भुत ।

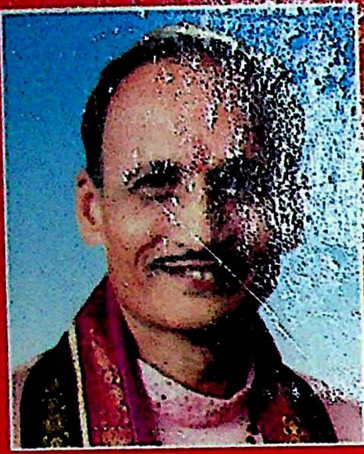
"जय श्रीराम"

!! इति !!

परमपूज्य आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज की

प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें

1. शिक्षा-शास्त्र
2. सूर काव्य में कवि समय (शोध-प्रबन्ध)
3. शिक्षा के चक्रव्यूह में आज का अभिमन्यु
4. दीर्घायु भव
5. आओ शिक्षा-शिक्षा खेलें
6. शिक्षाः एक प्रश्न
7. जीवन को सुन्दर कैसे बनायें
8. जीवन ऊर्जा कैसे बढ़ायें
9. भारत की विभूतियाँ
10. बच्चों की पढ़ाई में माता-पिता की भूमिका
11. सेक्स-शिक्षा की वैज्ञानिकता
12. समग्र-शिक्षा
13. शिक्षा : आदेश या परामर्श
14. जो चाहे सो पावें
15. जब तक जीओ सुख से जीओ
16. जीवन को सफल कैसे बनायें
17. शिक्षा के सागर में जीवन की नाव
18. शिक्षा सागर के विविध मोती
19. ऊँचाईयों को छूती एक जिन्दगी
20. बच्चों के जीवन में शिक्षा के फूल कैसे खिले
21. अपना प्रकाश स्वयं बनो
22. आशीष मुझे दो, लो प्रणाम (काव्यसंग्रह)
23. हनुमान-सतइसा
24. सूक्ति-सागर
25. जीवन और अध्यात्म
26. जय सुदर्शन (पत्रिका)
27. भविष्य के द्वार पर दस्तक
28. उन्मुक्त आकाश के उड़ते पंछी
29. मंदिर में फूल नहीं अहंकार चढ़ाओ
30. Life Energy Centre
31. Godly Things Around You
32. डॉ.वाई.के.सुदर्शन का जीवन दर्शन
33. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-1
34. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-2
35. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-3
36. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-4
37. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-5
38. जीवन जीने की विधि (Methods of Life) भाग-6
39. चलो आकाश को छू लें
40. जीवन प्रवाह है, ठहराव नहीं
41. झर-झर बहत अनंत
42. एक कदम रख कर तो देख
43. भक्ति के दोहे
44. श्रीराम दया करना (भक्ति गीत-संग्रह)
45. ऐसी करनी कर चलो
46. शिक्षा और नैतिकता
47. क्या खोया, क्या पाया
48. आचार्य सुदर्शन का अनंत जीवन-प्रवाह
49. आओ जीवन को महोत्सव बनाएँ
50. भोला महिमा
51. जीवन के विविध रंग
52. बच्चों की समुचित परवरिश
53. सुदर्शन रामायण (जीवन का महाकाव्य)
54. जीवन-संगीत (जीवनोपयोगी दोहे एवं भजन)
55. काल न आवे पास
56. श्रीराम महिमा
57. श्रीहनुमते नमः
58. कन्हैया, मैं नाचूँ तू गा
59. छूट न जाए डगरिया
60. गुरुज्ञान
61. आचार्य सुदर्शन की काव्य-चेतना
62. Basic Concept of Education
63. आचार्यश्री सुदर्शन का सकल ब्रह्माण्ड चिंतन
64. अब भी वक्त है, संभल ऐ नौजवान!
65. जीवन जीने की कला - (प्रथम भाग)
66. जीवन जीने की कला - (द्वितीय भाग)
67. जीवन जीने की कला - (तृतीय भाग)
68. प्राण ऊर्जा कैसे बढ़ाएं
69. जीवन पथ के फूल
70. योग भगाए रोग
71. पाते पाते देवनाम
72. पतझड़ के हरे पत्ते
73. मन की आँखे खोल
74. प्रार्थना से परमात्मा की ओर
75. दाम्पत्य-मैत्री
76. जीवन संगीत
77. Education : A reflection of life
78. आचार्यश्री के भक्तिगीतों में आत्मा के स्वर
79. Mystique of the Enlightment Soul
80. The Sources of Life Energy & Longevity
81. करें योग रहे निरोग
82. जिन ढूंढा, तिन पाइयां
83. वासना से उपासना की ओर
84. Education in Question
85. एकात्म मानव चिनतन और विन्यास
86. आचार्य सुदर्शन : खेत की मेंड़ से अध्यात्म के शिखर तक
87. Light of Blissfulnes
88. गीत गाता चल
89. केवट-गीता
90. प्रातः-प्रार्थना
91. हमें भी पढ़ाओ



व्यक्तिगत परिचय

आचार्यश्री सुदर्शनजी महाराज

[illegible]ी : एम०ए०, पी-एच०डी०, विद्यावाचस्पति, साहित्यविशारद, साहित्यरत्न।

संस्थापक : 1. डॉ०वाई०के० सुदर्शन कृष्णा सिंह एजुकेशनल फाउण्डेशन ट्रस्ट (रजि०)

2. कृष्णा सुदर्शन चैरिटेबल ट्रस्ट
3. आचार्य सुदर्शन फाउण्डेशन
4. "हमें भी पढ़ाओ" एजुकेशन फाउण्डेशन
5. आत्मकल्याण केन्द्र, गुड़गाँव
6. पटना सेन्ट्रल स्कूल सोसाइटी
7. कृष्णा निकेतन गर्ल्स स्कूल सोसाइटी
8. माँ जगतारिणी शक्तिपीठ, सीतामढ़ी
9. आचार्य सुदर्शन सेंट्रल लायन्स आई हॉस्पीटल एण्ड रिसर्च सेंटर, सीतामढ़ी
10. गीतांजलि- (आचार्यश्री सुदर्शन के भक्ति संगीतों पर आधारित)
11. आचार्य सुदर्शन स्पोर्ट्स एण्ड कल्चरल फाउण्डेशन

प्रकाशित पुस्तकें: विभिन्न विषयों पर 80 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें **श्रीराम दया करना** (108) भजनों का संग्रह प्रमुख है।

पत्रिकायें : देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित विचारपूर्ण लेखों का प्रकाशन।

प्रवचन : अब तक 1500 से ऊपर विभिन्न विषयों पर दिये गए प्रवचनों के एपिसोड उपलब्ध।

विदेश यात्रायें : मॉरीशस, इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, जर्मनी, स्वीटजरलैण्ड, फ्रांस, साऊथ अफ्रीका आदि प्रमुख हैं।

योजनायें : पूरे देश में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, गरीब बच्चों के लिए निःशुल्क हमें भी पढ़ाओ केन्द्र, भक्ति संगीत के केन्द्र, हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं के उत्थान के लिये अनेक संस्थाओं की स्थापना।

प्राप्तिस्थान

आत्मकल्याण केन्द्र

सुदर्शनधाम, बादशाहपुर, गुड़गाँव (हरियाणा)

फोन नं.: +91124-2394650 • मो.: 09818203070, 09334118812

वेब साइट: www.shrisudarshanjimaharaj.org • ई-मेल : info@shrisudarshanjimaharaj.org

Printed & Design by : Sharada Enterprises, Patna • Ph. 2667296